भूमिका।

जैनसम्प्रदायशिक्षा इस नामसे यद्यपि यह पुस्तक केवल जैनसम्प्रदायसे सम्बंध रखनेवाली प्रतीति होती है। परन्तु यथार्थमें इसमें जिन विषयोंका वर्णन किया गया है, वे प्रत्येक सम्प्रदायके आबालवृद्ध जनोंके लिये पठन पाठन तथा मनन करने योग्य हैं। रजोदर्शन, गर्भाधान, और गर्भावस्थासे लेकर जन्म, कुमार, युवा, और वृद्धावस्था तककी कर्तव्य शिक्षायें, आरोग्यरक्षा, ऋतुचर्या, रोगनिदान, पूर्वरूप, उपशम डाक्टरी और देशीरीतिसे रोगोंकी परीक्षा, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि वैद्यक विषय बड़ी योग्यता और बड़े विस्तारके साथ लिखे हैं। इसके सिवाय व्याकरण, नीति, राजनीति, सुभाषित, ओसवालवंशोत्पत्ति, पोरवालवंशोत्पत्ति, खंडेलवालवंशोत्पत्ति, माहेश्वरीवंशोत्पत्ति, बारह वा चौरासी जातियोंका वर्णन, ज्योतिष, स्वरोदय, शकुनविद्या, आदि उपयोगी विषयोंका भी इसमें संग्रह है। इस ग्रन्थके अध्ययनसे ऐसा मालूम होता है कि, इसका रचनेवाला बहुत बड़ा अनुभवी और विविध विषयोंकी योग्यता रखनेवाला है। वैद्यक विषयमें तो उसकी असाधारण योग्यता मालूम होती है। जो हो विद्वानोंसे हमारा निवेदन है कि, वे एक बार इस ग्रन्थको आद्यंत पढ़कर परिक्षा करें और ग्रन्थकर्त्ताके परिश्रमको सफल करें। क्योंकि "कर कंघनको आरसीकी जरूरत" नहीं होती है। अलं विस्तरेण।

विषयानुक्रमणिका.

सदाचारवर्णन

रोगसामान्य कारण

त्रिदोषज रोग

रोगपरीक्षा प्रकरण

विषय	पृष्ठ

औषध प्रयोग

औषधोंके अंग्रेजी तथा हिंदी नाम

ज्वरवर्णन

प्रकीर्णरोग

पंचम अध्याय

श्रीः ॥

जैनसम्प्रदायशिक्षा ॥

अथवा

गृहस्थाश्रमशीलसौभाग्यभूषणमाला ॥

प्रथम अध्याय ॥

मङ्गलाचरण ॥

ओंकार उदार अगम्य अपार संसारमें सार पदारथ नामी।
सिद्धि समृद्धि सरूप अनूप भयो सबही सिर भूप सुधामी ॥
मन्त्रमें यन्त्रमें ग्रन्थके पन्थमें जाकुं कियो धुर अन्तरजामी।
पञ्चहि इष्ट बसै परमिष्ठ सदा भ्रमसी करै ताहि सलामी ॥ १ ॥

गुरुमहिमा नमस्कार ॥

महिमा जिनकी सिगरी महिमें जिन दीन्हो महा इक ज्ञान नगीनो।
दूर भग्यो भ्रम सो तम देखत पूरि जग्यो परकाश नवीनो ॥
देतहि देतहि दूनो बधै अरु खायोहि खूटत नाहि खजीनो।
ऐसो पसाय कियो गुरुराय तिन्हें भ्रमसी पदपङ्कज लीनो ॥ १ ॥

प्रकरण प्रथम—वर्णसमाम्नाय ॥

स्वर वर्णोंका विवरण ॥

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ
अं अः ॥

व्यञ्जन वर्णोंका विवरण ॥

क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ ।
ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न ।
प फ ब भ म । य र ल व ॥
श ष स ह । क्ष त्र ज्ञ ॥

इस प्रकार वर्णमाला में कुल ५२ अक्षर हैं—परन्तु पिछले ३ वर्ण (क्ष, त्र और ज्ञ) वास्तव में वर्ण नहीं हैं, किन्तु ये तीनों संयुक्ताक्षर हैं, क्योंकि क् और ष् के संयोग से क्ष्, त् और र् के संयोग से त्र् और ज् तथा ञ् के संयोग से ज्ञ् बनता है, इसलिये मुख्यतया वर्णमालमें ४९ ही अक्षर हैं अर्थात् १६ स्वर और ३३ व्यञ्जन ॥

संयुक्ताक्षरों (संयोगी अक्षरों) का वर्णन ॥

स्+त=स्त । द्+य=द्य । र्+व=र्व । व्+य=व्य । स्+क=स्क । ग्+र=ग्र । न्+त=न्त । क्+र=क्र । प्+र=प्र । र्+ण=र्ण । श्+र=श्र । र्+थ=र्थ । त्+स=त्स । द्+ध=द्ध । र्+घ=र्घ । द्+द=द्द । द्+व=द्व । म्+व=म्व । श्+व=श्व । प्+ण=प्ण । न्+म=न्म । न्+द=न्द । त्+व=त्व । च्+छ=च्छ । क्+य=क्य । प्+ट=प्ट । श्+य=श्य । त्+त=त्त । ब्+द=ब्द । क्+त=क्त । भ्+य=भ्य । त्+प=त्प । न्+द=न्द । व्+म=व्म । न्+द्+र=न्द्र । स्+त्+र=स्त्र । र्+त्+स=र्त्स । र्+भ्+व=र्भ्व ॥

अक्षरों के संयोग में नीचे लिखी हुई बातों को याद रखना:—

१—रेफ जब किसी अगले वर्ण से मिलता है तब उस के ऊपर चढ़ जाता है। जैसे र्+क=र्क इत्यादि, परन्तु जब रेफ से कोई वर्ण मिलाया जाता है तब रेफ उसके नीचे जोड़ा जाता है। जैसे क्+र=क्र इत्यादि ॥

२—प्रायः सब वर्ण अगले वर्ण के साथ अपने आधे स्वरूपसे मिलते हैं, जैसा कि उक्त संयोगी अक्षरों में दिखलाया गया है, परन्तु ङ, छ, झ, ट, ठ, ड, ढ, द, फ, ह, ये वर्ण प्रायः अपने पूरे स्वरूप के साथ अगले वर्णों से मिलते हैं, जैसे ङ्+क=ङ्क। ङ्+ग=ङ्ग। छ्+य=छ्य । छ्+न=छ्न । झ्+य=झ्य । झ्+च=झ्च । ट्+ट=ट्ट । ट्+क=ट्क । ट्+य=ट्य । ठ्+य=ठ्य । ठ्+क=ठ्क । ड्+य=ड्य । ड्+क=ड्क । ढ्+य=ढ्य । ढ्+क=ढ्क । द्+य=द्य । द्+क=द्क । द्+ध=द्ध । द्+म=द्म । फ्+य=फ्य । फ्+ल=फ्ल । ह्+य=ह्य । ह्+म=ह्म । ह्+ल=ह्ल । इत्यादि ॥

३—कोई कोई वर्ण अन्य के साथ मिलने से बिलकुल रूपान्तर में पलट जाते हैं। जैसे श्+र=श्र । त्+र=त्र । ज्+ञ=ज्ञ । क्+ष=क्ष । क्+त=क्त । त्+त=त्त । इत्यादि ॥

बारह अक्षरी का वर्णन ॥

जब व्यञ्जन वर्ण किसी अगले स्वर वर्ण के साथ जोड़े जाते हैं तो वे स्वर मात्रारूप में होकर व्यञ्जन के साथ मिलते हैं, इसी को हिन्दी भाषा में बारहखड़ी कहते हैं। इसका स्वरूप यह है:—

बारह अक्षरी का स्वरूप ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्	क्
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
	ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ	ं	ः
क	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कः

सूचना—व्यञ्जनों के साथ यह बारह स्वरों का मेल दिखलाया गया है, इसमें ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ये ४ स्वर छोड़ दिये गये हैं, क्यों कि इन स्वरों के साथ व्यञ्जन मिले हुए अक्षर प्रायः संस्कृत के शब्दों में देखे जाते हैं, भाषामें इन का उपयोग बहुत ही कम आता है, किन्तु ऌ, ॡ, का संयोग तो संस्कृत के शब्दों में भी बहुत ही कम देखा जाता है, हां आवश्यकता होने पर यथायोग्य इन स्वरों का भी मेल कर लेना चाहिये, इन में से ऋ की मात्रा ृ यह है, ॠ की मात्रा ॄ यह है, ऌ की मात्रा ॢ यह है तथा ॡ की मात्रा ॣ यह है अर्थात् इन स्वरूपों से ये चारों स्वर व्यञ्जनों में मिलते हैं। जैसे क्+ऋ=कृ। क्+ॠ=कॄ क्+ऌ=कॢ। क्+ॡ=कॣ इत्यादि ॥

सूचना दूसरी—ऊपर लिखे स्वरूप में जिस प्रकार से बारह स्वरों के साथ ककार का संयोग दिखलाया गया है, उसी प्रकार से उक्त बारह स्वरों का संयोग खकार आदि सब वर्णों के साथ समझ लेना चाहिये ॥

दो अक्षरों के शब्द ॥

कर। भर। अब। तब। जब। कब। हम। तुम। वह। माता। पिता। दादा। दादी। भाई। नानी। नाना। मामा। मामी। करो। चलो। बैठो। जाओ। खाओ। सोओ। कहो। देवी। नदी। राजा। रानी। बहू। बेटी। सोना। चांदी। मोती। आलू। सीठी। बेटा। सखी आदि ॥

तीन अक्षरों के शब्द ॥

केवल। पाठक। पुस्तक। अन्दर। संवत्। पण्डित। कमल। गुलाब। अनार। चमेली। मालती। सेवती। छुहारा। चिरोंजी। बादाम। सेवक। नौकर। टहल। बगीचा। आराम। नगर। शहर। इत्यादि ॥

चार अक्षरों के शब्द ॥

यन्त्रालय। उपवन। विद्यालय। कालचक्र। भद्रापन। सरस्वती। कटहल। बड़हर।

जमघट । भीडभाड़ । खुशदिल । मोटापन । तन्दुरुस्ती । अकस्मात् । दैवाधीन । प्रजापति। परमेश्वर । आदि ॥

छोटे २ वाक्य ॥

यह लो । अब जाओ । अभी पढ़ो । रोओ मत । सवेरे उठो । विद्या सीखो । जल भरो । गाली मत दो । मत खेलो । कलम लाओ । पत्र लिखो । घर जाओ । सीधे बैठो । दौड़ो मत । यह देखो । बाहर जाओ । घरमें रहो । धर्म करो । ज्ञान कमाओ । इत्यादि ॥

कुछ बड़े वाक्य ॥

अब घर जाओ । तुम क्यों हँसे । झूंठ मत बोलो । सवेरे जल्दी उठो । पढ़ना अच्छा है । तब मत पढ़ना । तुम ने क्या कहा । माता से पूछो । पिता का भय मानो । खेल मत खेलो । हँसना बुरा है । सब को जीव प्यारा है । तब हम जावेंगे । तुम केवल बैठे रहते हो । अपने अध्यापक से पढ़ो । हमारी पुस्तक लाओ । अन्दर मत जाओ । त्रेसठ का संवत् है । पण्डित का कहना मानो । यन्त्रालय छापेखाने का नाम है । विद्यालय पाठ-शाला का नाम है । औषधालय दवाघर का नाम है । कालचक्र सदा फिरता है । इस स-मय अंग्रेज़ों का राज्य है । बुरी तरह से बैठना उचित नहीं है । मीठे वचन बोला करो । बेफायदा बकना बुरा है । पानी छान के पिया करो । दुष्ट की संगति मत करो । खूब परिश्रम किया करो । हिंसा से बड़ा पाप होता है । वचन विचार कर बोलो । मिठाई बहुत मत खाओ । घमंड करना बहुत बुरा है । व्यायाम कसरत को कहते हैं । तस्कर चोर का नाम है । यह छोटा सा ग्राम है । सब का कभी अन्त है । दृढ़ मज़बूत को कहते हैं । स्पर्शेन्द्रिय त्वचा को कहते हैं । घ्राणेंद्रिय नाक को कहते हैं । चक्षु नाम आंख का है । कर्ण वा श्रोत्र कान को कहते हैं । श्रद्धा से शास्त्र को पढ़ो । शास्त्र का सुनना भी फल देता है । संस्कृत में अश्व घोड़े को कहते हैं । कृष्ण काले का नाम है । गृह घर का नाम है । शरीर में श्रोत्र आदि पांच इन्द्रियां होती हैं । मनकी शुद्धि से ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥

कुछ आवश्यक शिक्षायें ॥

जहां तक हो सके विश्वासपात्र बनो । झूंठे का कभी विश्वास मत करो । शपथ खाने-वाला प्रायः झूंठा होता है । जो तुम्हारा विश्वास करता है उसे कभी धोखा मत दो । माता पिता और गुरु की सेवा से बढ़ कर दूसरा धर्म नहीं है । राज्य के नियमों के अनुसार सर्वदा वर्ताव करो । सबेरे जल्दी उठो और रात को जल्दी सोओ । अजीर्ण में भोजन करना विष के तुल्य हानि पहुंचाता है । दया धर्म का मुख्य अंग है, इस लिये निर्दय पुरुष कभी धर्मात्मा नहीं बन सकता है । प्रतिदिन कुछ विद्याभ्यास तथा अच्छा कार्य करो । साधु

महात्माओं का संग सदैव किया करो। जीवदान और विद्यादान सब दानों से बढ़ कर हैं। कभी किसी के जीव को मत दुखाओ। सब काम ठीक समय पर किया करो। स्वामी को सदैव प्रसन्न रखने का यत्न करो। विद्या मनुष्य की आंख खोल देती है। सज्जन विपत्तिमें भी सरीखे रहते हैं, देखो जलाने पर कपूर और भी सुगन्धि देता है तथा सूर्य रक्त ही उदय होता है और रक्त ही अस्त होता है। ब्राह्मण, विद्वान्, कवि, मित्र, पड़ोसी, राजा, गुरु, स्त्री, इन से कभी विरोध मत करो। मण्डली में बैठकर किसी स्वादिष्ठ पदार्थ को अकेले मत खाओ। विना जाने जल में कभी प्रवेश मत करो। नख आदि को दाँतसे कभी मत काटो। उत्तर की तरफ सिर करके मत सोओ। विद्वान् को राजा से भी बड़ा समझो। एकता से बहुत लाभ होते हैं इस लिये इस के लिये चेष्टा करो। प्राण जाने पर भी धर्म को मत छोड़ो ॥

यह प्रथम अध्याय का वर्णसमाम्नाय नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दूसरा प्रकरण (व्याकरण विषयक)

इस में कातन्त्र व्याकरण की प्रथम सन्धि दिखलाई गई है:—

संख्या शुद्ध उच्चारण ॥	अशुद्ध उच्चारण ॥	अर्थविवरण ॥
१ सिद्धो वर्णसमाम्नायः ॥	सीद्धो वर्णा समामनाया ॥	वर्णसमाम्नाय अर्थात् वर्णसमुदाय[1] स्वयंसिद्ध है अर्थात् साधित नहीं है ॥
२ तत्र चतुर्दशादौ स्वराः ॥	त्रै त्रै चतुरक दश्या दउंसवारा	उनवर्णोंमें पहिले चौदह स्वर[2] हैं॥
३ दश समानाः ॥	दशे समाना ॥	उनमें से पहिले दश वर्णों की समान संज्ञा है ॥
४ तेषां द्वौ द्वावन्योऽन्यसवर्णौ ॥	ते खाउ दुधवा वर्णो तसीस वर्णो ॥	उन समानसंज्ञक वर्णों में दो दो वर्ण परस्पर सवर्णी माने जाते हैं॥
५ पूर्वो ह्रस्वः ॥	पूर्वो हंस्या ॥	उन द्विक वर्णों में से पूर्व २ वर्ण ह्रस्व कहाते हैं ॥
६ परो दीर्घः ॥	पारो दीरघा ॥	उन्हीं द्विकों में से पिछले वर्ण दीर्घ कहाते हैं ॥
७ स्वरोऽवर्णवर्जो नामी ॥	सारो वर्णा विन ज्योनामी ॥	अवर्ण को छोड़ कर शेष स्वर नामी कहाते हैं ॥

१. अकार से लेकर हकारपर्यंत ॥ २. अ से लेकर औ पर्यंत ॥

८ एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि।	इकारादीनी संधखराणी ॥	एकारादि संध्यक्षर वर्ण हैं ॥
९ कादीनि व्यञ्जनानि ॥	कदेन हेतुविण ज्यो नामी ॥	ककार आदि व्यञ्जन वर्ण हैं ॥
१० ते वर्गाः पञ्च पञ्च ॥	ते वरगा पंचोपंचा ॥	वेही ककारादिवर्ण ५ मिलकर वर्ग कहलाते हैं और वर्ग पांच हैं॥
११ वर्गाणां प्रथमद्वितीयौ ॥	विरघानाउं प्रथम दुतईया ॥	वर्गोंके पहिले और दूसरे वर्ण॥
१२ शषसाश्चाघोषाः ॥	संखसहेचिया ॥	तथा श ष स ये अघोष हैं ॥
१३ घोषवन्तोऽन्ये ॥	घोखाघोख पतोरणी ॥	दूसरे वर्ण घोषवान् हैं ॥
१४ अनुनासिकाः ङ ञ ण न माः॥	अनुनासका न नानैरी नमा॥	ङ, ञ, ण, न, म, ये वर्ण अनुनासिक हैं ॥
१५ अन्तस्था यरलवाः ॥	अंतसंथा जीरे लवा ॥	य,र,ल,व,को अन्तःस्थ कहते हैं॥
१६ ऊष्माणः श ष स हाः ॥	उकमणा संखोसाहा ॥	श,ष,स,ह,इनको ऊष्म कहते हैं॥
१७ अः इति विसर्जनीयः ॥	आईतीवी सारजनीयो ॥	अः यहां विसर्जनीय है ॥
१८ ᳵक इति जिह्वामूलीयः ॥	काईती जीवामूलियो ॥	ᳵक को जिह्वामूलीय कहते हैं ॥
१९ ᳶप इत्युपध्मानीयः ॥	पाइती पदमानीयो ॥	ᳶप इस को उपध्मानीय कहते हैं॥
२० अं इत्यनुस्वारः ॥	आयोअंत नसुंवारो ॥	अं यहां अनुस्वार है ॥
२१ पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् ॥	पूर्वो फलियोरथोपालपदुंर ॥	पूर्व और परमें अर्थकी उपलब्धि होनेपर पद माना जाता है॥
२२ अस्वरं व्यञ्जनम् ॥	विणज्यो नामी सरुंवरुं ॥	स्वररहितवर्णको व्यञ्जन कहतेहैं
२३ परवर्णेन योजयेत् ॥	वरण अनेतू ॥	व्यञ्जन को अगले वर्ण में जोड़ देना चाहिये ॥
२४ अनतिक्रमयन् विश्लेषयेत्॥	अनेत करम्या विसलष जेतू॥	अतिक्रम न करके संयोग करना चाहिये ॥
२५लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धिः॥	लखोपचायरा दुर्घण संधियेती ॥	शेष संज्ञाओं की सिद्धि लोक की रीति से समझनी चाहिये ॥
इति सन्धिसूत्रतः प्रथमश्चरणः॥	सेती सुतरता प्रथमी संधी समापताः ॥	यह सन्धिसूत्रक्रम से प्रथम चरण समाप्त हुआ ॥

अब प्रथम सन्धि का विवरण यह है:—

प्रथमसूत्र—वर्णसमाम्नाय अर्थात् वर्णसमूह यह है– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, ॥

१–स्वरों में अं, अः, छोड़ दिया गया है, क्योंकि वह अनुस्वार और विसर्ग कोटि में माना गया है ॥

क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न । प फ ब भ म । य र ल व । श ष स ह । यह वर्णसमूह स्वयंसिद्ध अर्थात् अनादिसिद्ध है, किन्तु साधित (बनाया हुआ) नहीं है ॥

द्वितीयसूत्र—उन वर्णों में से पहिले चौदह स्वर हैं अर्थात् अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ, ये स्वर हैं ॥

तीसरासूत्र—उनमें से पहिले दश वर्णों की समान संज्ञा है अर्थात् अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ, इनको समान कहते हैं ॥

चौथा-सूत्र—उन समानसंज्ञक वर्णों में दो २ वर्ण परस्पर सवर्णी माने जाते हैं, जैसे—अ का सवर्णी आ, इ का सवर्णी ई, उ का सवर्णी ऊ, ऋ का सवर्णी ॠ, ऌ का सवर्णी ॡ है ॥

पांचवां सूत्र—उन द्विक वर्णों में से पूर्व २ वर्ण ह्रस्व कहाते हैं, अर्थात् अ इ उ ऋ ऌ, ये ह्रस्व (एकमात्रिक) कहाते हैं ॥

छठा सूत्र—उन्हीं द्विकों में से पिछले वर्ण दीर्घ कहाते हैं अर्थात् आ ई ऊ ॠ ॡ, ये दीर्घ (द्विमात्रिक) हैं ॥

सातवां सूत्र—अवर्ण को छोड़ कर शेष स्वर नामी कहाते हैं अर्थात् इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ इनकी नामी संज्ञा है ॥

आठवां सूत्र—एकारादि सन्ध्यक्षर वर्ण हैं अर्थात् ए ऐ ओ औ इन वर्णों को सन्ध्यक्षर वर्ण कहते हैं, क्योंकि ये सन्धि के द्वारा बने हैं जैसे—अ वा आ+इ वा ई=ए । अ वा आ+ए वा ऐ=ऐ । अ वा आ+उ वा ऊ=ओ । अ वा आ+ओ वा औ=औ ॥

नवां सूत्र—ककार आदि व्यञ्जन वर्ण हैं अर्थात् क से लेकर ह पर्यन्त वर्णों की व्यञ्जन संज्ञा है ॥

दशवां सूत्र—वे ही ककारादि वर्ण पांच २ मिलकर वर्ग कहलाते हैं और वर्ग पांच हैं अर्थात् कवर्ग–क ख ग घ ङ । चवर्ग–च छ ज झ ञ । टवर्ग–ट ठ ड ढ ण । तवर्ग–त थ द ध न । पवर्ग–प फ व भ म ॥

ग्यारहवां तथा बारहवां सूत्र—वर्गों के पहिले और दूसरे वर्ण तथा श, ष, स, ये अघोष हैं, अर्थात् क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ, और श, ष, स, इन वर्णों को अघोष कहते हैं ॥

तेरहवां सूत्र—दूसरे वर्ण घोषवान् हैं अर्थात् ऊपर लिखे वर्णों से भिन्न जो वर्ण हैं उनको घोषवान् कहते हैं ॥

चौदहवां सूत्र—ङ, ञ, ण, न, म, ये वर्ण अनुनासिक हैं अर्थात् इन पांचों वर्णों का उच्चारण मुखसहित नासिका से होता है–इसलिये इन्हें अनुनासिक कहते हैं ॥

पन्द्रहवां सूत्र—य, र, ल, व, को अन्तस्थ कहते हैं अर्थात् पांचों वर्गों के अन्त में स्थित होने से इनकी अन्तस्थ[1] संज्ञा है ॥

सोलहवां सूत्र—श, ष, स, ह, इन को ऊष्म कहते हैं अर्थात् इन के उच्चारण में उष्णता की प्रधानता है, इस लिये ये ऊष्म कहाते हैं ॥

सत्रहवां सूत्र—अः यहां विसर्जनीय है, अर्थात् अः यह कोई भिन्न अक्षर नहीं है किन्तु अकार के पश्चात् इसमें विसर्जनीय[2] (विसर्ग वा दो विन्दु) है ॥

अठारहवां सूत्र—ᳵक इस को जिह्वामूलीय कहते हैं, अर्थात् क और ख से पूर्व ᳵ इस चिह्न को जिह्वामूलीय[3] कहते हैं, क्योंकि इसका उच्चारण जिह्वा के मूल (जड़) से होता है ॥

उन्नीसवां सूत्र—ᳵप इसको उपध्मानीय कहते हैं, अर्थात् प और फ से पहिले ᳵ इस चिह्न को उपध्मानीय कहते हैं ॥

बीसवां सूत्र—अं यहां अनुस्वार है, अर्थात् अं यह कोई भिन्न अक्षर नहीं है किन्तु अकार के ऊपर एक विन्दु है, इसी को अनुस्वार[4] कहते हैं ॥

इक्कीसवां सूत्र—पूर्व और परमें अर्थ की उपलब्धि होने पर पद माना जाता है, अर्थात् प्रकृति[5] और प्रत्यय का जहां अर्थ प्रतीत होता हो उसे पद कहते हैं ॥

बाईसवां सूत्र—स्वररहित वर्ण को व्यञ्जन कहते हैं, अर्थात् क् ख् ग् घ् ङ् इत्यादि वर्णों को व्यञ्जन[6] कहते हैं ॥

तेईसवां सूत्र—व्यञ्जन को अगले वर्ण में जोड़ देना चाहिये अर्थात् व्यञ्जन वर्ण पृथक् नहीं लिखे जाते किन्तु अगले वर्ण में मिला कर लिखे तथा बोले जाते हैं, जैसे—म ध् व् अत्र=मध्वत्र, इत्यादि ॥

चौवीसवां सूत्र—अतिक्रम न करके संयोग करना चाहिये, अर्थात् क्रमसे व्यञ्जन वर्ण को अगले २ वर्ण में मिलाना चाहिये, इसका उदाहरण पूर्वोक्त ही है, क्योंकि पहिले धकार व्यंजन वर्ण वकार में जोड़ा गया, पीछे धकारसहित वकार अकार में जोड़ा गया ॥

पचीसवां सूत्र—शेष संज्ञाओं की सिद्धि लोक की रीति से समझनी चाहिये, अर्थात् जिन संज्ञाओं का वर्णन नहीं किया है उन की सिद्धि भी लोकव्यवहार से ही जान लेनी

---

१. कोई आचार्य अन्तःस्थ संज्ञा मानते हैं, उसका हेतु यह है कि पांचों वर्गों के तथा ऊष्म वर्णों के मध्य में स्थित होने से ये अन्तःस्थ (मध्यवर्ती) हैं ॥

२. अर्थात् वर्ण के आगे दो विन्दुओं को विसर्जनीय वा विसर्ग कहते हैं ॥

३. जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का उच्चारण आधे विसर्ग के समान होता है ॥

४. अर्थात् वर्ण के ऊपर जो एक विन्दु रहता है उसको अनुस्वार कहते हैं ॥

५. जिससे प्रत्यय का विधान हो उसे प्रकृति कहते हैं तथा जिसका विधान किया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं, जैसे सेवक इसमें सेव् प्रकृति तथा अक प्रत्यय है ॥

६. जिनका उच्चारण स्वरों की सहायता विना नहीं हो सक्ता उनको व्यञ्जन कहते हैं ॥

चाहिये, किन्तु उन में शङ्का नहीं करनी चाहिये ॥ यह सन्धिसूत्रक्रम से प्रथम चरण समाप्त हुआ ॥

यह प्रथम अध्याय का व्याकरण विषय नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तीसरा प्रकरण (वर्णविचार)।[1]

१—भाषा उसे कहते हैं जिसके द्वारा मनुष्य अपने मन के विचार का प्रकाश करता है ॥

२—भाषा वाक्यों से, वाक्य पदों से और पद अक्षरों से बनते हैं ॥

३—व्याकरण उस विद्या को कहते हैं जिसके पढ़ने से मनुष्य को शुद्ध २ बोलने अथवा लिखने का ज्ञान होता है ॥

४—व्याकरण के मुख्य तीन भाग हैं—वर्णविचार, शब्दसाधन और वाक्यविन्यास ॥

५—वर्णविचार में अक्षरों के आकार, उच्चारण और उनकी मिलावट आदि का वर्णन है ॥

६—शब्दसाधन में शब्दों के भेद, अवस्था और व्युत्पत्ति का वर्णन है ॥

७—वाक्यविन्यास में शब्दों से वाक्य बनाने की रीति का वर्णन है ॥

वर्णविचार ॥

१—अक्षर-शब्द के उस खंड का नाम है जिस का विभाग नहीं हो सकता ॥

२—अक्षर दो प्रकार के होते हैं स्वर और व्यञ्जन ॥

३—स्वर[2] उन्हें कहते हैं जिनका उच्चारण अपने आप ही हो ॥

४—स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ ये दो भेद हैं, इन्हीं को एकमात्रिक व द्विमात्रिक भी कहते हैं ॥

५—व्यञ्जन[3] उन्हें कहते हैं जिनका उच्चारण स्वर की सहायता विना नहीं हो सकता ॥

६—अनुस्वार और विसर्ग भी एक प्रकार के व्यञ्जन माने गये हैं ॥

७—किसी अक्षर के आगे कार शब्द जोड़ने से वही अक्षर समझा जाता है। जैसे क वा ककार इत्यादि ॥

८—जबतक स्वर किसी व्यञ्जन से नहीं मिलते तबतक अपने असली स्वरूप में रहते हैं परन्तु मिलने पर मात्रारूप में हो जाते हैं. जैसे क्+अ=क, क्+इ=कि, क्+उ=कु क्+ए=के, इत्यादि ॥

---

१. यद्यपि यह प्रकरण वर्णविचार नामक है तथापि उसका प्रारंभ करने से पूर्व व्याकरण की कुछ आवश्यक बातें प्रथम दिखाई गई हैं ॥ २—स्वयं राजन्त इति स्वराः ॥ ३—अन्वग् भवति व्यञ्जनम् ॥

९—जिसमें दो या दो से अधिक अक्षर एक में मिले रहते हैं उसे संयुक्ताक्षर कहते हैं, जैसे अल्प, सत्य, इनमें ल्प और त्य संयुक्ताक्षर हैं ॥

१०—संस्कृत में संयुक्त वर्ण से पहिला ह्रस्व स्वर दीर्घ बोला जाता है किन्तु भाषा में ऐसा कहीं होता है और कहीं नहीं होता है ॥

११—कोई अक्षर संयोग में पूरे स्वरूप से मिलते और कोई आधे स्वरूप से मिलते हैं, जैसे श्+क=श्क ङ्+क=ङ्क, इत्यादि ॥

१२—अक्षरों के दो भेद और भी हैं एक सानुनासिक और दूसरे निरनुनासिक ॥

१३—सानुनासिक उन्हें कहते हैं जिन का उच्चारण मुख और नासिका से हो, इस का चिन्ह अर्द्धचन्द्राकार विन्दु तथा अनुस्वार है जैसे दाँत, काँच, कंठ, अंग, इत्यादि। इन के सिवाय ङ ञ ण न म भी अनुनासिक हैं ॥

१४—ङ ञ ण न म, ये वर्ण प्रायः अपने ही वर्ग के वर्णो से मिलते हैं, जैसे—दन्त, पम्प, कङ्कण, कण्ठ, व्यञ्जन, इत्यादि ॥

वर्णों के स्थान और प्रयत्न[2] का वर्णन ॥

संख्या	स्थान ॥	अक्षर ॥	नाम ॥
१	कण्ठ	अ, आ, कवर्ग, विसर्ग और हकार ॥	कण्ठ्य ॥
२	तालु	इ, ई, चवर्ग, यकार और शकार ॥	तालव्य ॥
३	मूर्धा	ऋ, ॠ, टवर्ग, रेफ और षकार ॥	मूर्धन्य ॥
४	दन्त	ऌ, ॡ, तवर्ग, लकार और सकार ॥	दन्त्य ॥
५	ओष्ठ	उ, ऊ, पवर्ग और उपध्मानीय ॥	ओष्ठ्य ॥
६	कण्ठ और तालु	ए और ऐ ॥	कण्ठतालव्य ॥
७	कंठ और ओष्ठ	ओ और औ ॥	कण्ठयोष्ठ्य ॥
८	दन्त और ओष्ठ	वकार ॥	दन्तौष्ठ्य ॥
९	मुख और नासिका	ङ, ञ, ण, न और म ॥	सानुनासिक ॥

१—देखो संयुक्ताक्षरों का दूसरा नियम ॥ २—प्रयत्न दो प्रकारके होते हैं आभ्यन्तर और वाह्य। आभ्यन्तर के पांच भेद हैं स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत विवृत और संवृत। वाह्य प्रयत्न ११ प्रकार का है—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ॥

प्रयत्नवर्णन ॥

बाह्य ॥	विवार ॥ श्वास ॥ अघोष ॥ अल्पप्राण ॥	विवार ॥ श्वास ॥ अघोष ॥ महाप्राण ॥		संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण ॥				संवार ॥ नाद ॥ घोष ॥ महाप्राण ॥	
					उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ॥				
अक्षर	क च ट त प	ख छ ठ थ फ	श ष स	ग ङ ज ञ ड ण द न ब म	अ	इ ए उ ओ ऋ ऐ ऌ औ	य व र ल	घ झ ढ ध भ	ह
आभ्यन्तर	स्पृष्ट ।		ईषद्विवृत,	स्पृष्ट,	ह्रस्व, विवृत, विवृत ॥		ईषत्स्पृष्ट ।	स्पृष्ट,	ईषद्विवृत ।

स्वरों की सन्धि[1] ॥

स्वर सन्धि के मुख्यतया ५ भेद हैं:—

प्रथम भेद—दीर्घ ॥

परिभाषा ॥	दो शब्दों का स्वरोंद्वारा मिलाप ।	कौन कौन स्वर मिलकर क्या हुआ ॥
जब समान दो स्वर	क्रोध+अग्नि=क्रोधाग्नि ।	अ+अ=आ ।
ह्रस्व वा दीर्घ इकट्ठे	चन्द्र+आनन=चन्द्रानन ।	अ+आ=आ ।
होते हैं तो दोनों को	निद्रा+अवस्था+निद्रावस्था ।	आ+अ=आ ।
मिलाकर एक दीर्घ	प्रति+इति=प्रतीति ।	इ+इ=ई ।
स्वर कर देते हैं ॥	मही+इन्द्र=महीन्द्र ।	ई+इ=ई ।
	लघु+उपकार=लघूपकार ।	उ+उ=ऊ ।
	स्वयम्भू+उदय=स्वयम्भूदय ।	ऊ+उ=ऊ ।
	भू+ऊर्द्ध=भूर्द्ध ।	ऊ+ऊ=ऊ ।
	पितृ+ऋण=पितृण ।	ऋ+ऋ=ॠ ।

१—जब दो वर्ण आपस में मिलते हैं उस को सन्धि कहते हैं ॥

दूसरा भेद—गुण ॥

परिभाषा ॥	दो शब्दों का स्वरों द्वारा मिलाप ।	कौन२ स्वर मिलकर क्या हुआ ॥
ह्रस्व वा दीर्घ अकार	गज+इन्द्र=गजेन्द्र ।	अ+इ=ए ।
से परे ह्रस्व वा दीर्घ	वीर+ईश=वीरेश ।	अ+ई=ए ।
इ, उ, ऋ रहें तो	स्वर+उदय=स्वरोदय ।	अ+उ=ओ ।
अ+इ=ए, अ+उ=	मुख+ऊपर=मुखोपर ।	अ+ऊ=ओ ।
ओ, अ+ऋ=अर्,	महा+उत्सव=महोत्सव ।	आ+उ=ओ ।
होता है ॥	राज+ऋषि+राजर्षि ।	अ+ऋ=अर् ।
	महा+ऋषि=महर्षि ।	आ+ऋ=अर् ॥

तीसरा भेद—वृद्धि ॥

परिभाषा ॥	दो शब्दों का स्वरों द्वारा मिलाप ॥	कौन२ स्वर मिलकर क्या हुआ ॥
ह्रस्व वा दीर्घ अ से परे	परम+एक=परमैक ।	अ+ए=ऐ ।
ए, ऐ, ओ, औ, रहे तो	देव+ऐश्वर्य=देवैश्वर्य ।	अ+ऐ=ऐ ।
अ+ए वा अ+ऐ=ऐ,	परम+ओषधि=परमौषधि ।	अ+ओ=औ ।
अ+ओ वा अ+औ=	महा+औषध=महौषध ॥	आ+औ=औ ॥
औ, हो जाता है ॥		

चौथा भेद—यण् ॥

परिभाषा ॥	दो शब्दों का स्वरों द्वारा मिलाप ॥	किस स्वर को क्या हुआ ॥
ह्रस्व वा दीर्घ इ उ,	विधि+अर्थ=विध्यर्थ ।	इ+अ=य ।
ऋ, से परे कोई	प्रति+आशा=प्रत्याशा ।	इ+आ=या ।
असवर्ण[1] स्वर रहे तो	वहु+आरम्भ=वह्वारम्भ ।	उ+आ=वा ।
इ को य्, उ को व्	वहु+ईर्षा+वह्वीर्षा ।	उ+ई=वी ।
और ऋ को र् हो	अतिथि+उपकार=अतिथ्युपकार ।	इ+उ=यु ।
जाता है तथा अगला	निधि+ऐश्वर्य=निध्यैश्वर्य ।	इ+ऐ=यै ।
स्वर उस य्, व्, र्,	पितृ+आगमन=पित्रागमन ।	ऋ+आ=रा ।
में मिल जाता है ॥	मातृ+ऐश्वर्य=मात्रैश्वर्य ।	ऋ+ऐ=रै ।
	स्वामि+आनन्द=स्वाम्यानन्द ॥	इ+आ=या ॥

१—जिसका स्थान और प्रयत्न एक न हो उसे असवर्ण कहते हैं ॥

पांचवां भेद—अयादि ॥

परिभाषा ॥	दो शब्दों का स्वरों द्वारा मेल ॥	किस स्वर को क्या हुआ ॥
ए, ऐ, ओ, औ,	ने+अन=नयन ।	ए+अ=अय ।
इनसे परे कोई स्वर	गै+अन=गायन ।	ऐ+अ=आय ।
रहे तो क्रमसे उनके	पो+अन=पवन ।	ओ+अ=अव ।
स्थानमें अय्, आय्	पौ+अक=पावक ।	औ+अ=आव ।
अव्, आव्, हो जाते	भौ+इनी=भाविनी ।	औ+इ=आवि ।
हैं तथा अगला स्वर	नौ+आ=नावा ।	औ+आ=आवा ।
पूर्व व्यञ्जनमें मिला	शै+ई=शायी ।	ऐ+ई=आयी ।
दिया जाता है ॥	शे+आते=शयाते ।	ए+आ=अया ।
	भौ+उक=भावुक ।	औ+उ=आवु ॥

व्यञ्जनसन्धि ॥

इस के नियम बहुत से हैं—परन्तु यहां थोड़े से दिखाये जाते हैं:—

नम्बर ॥	नियम ॥	व्यञ्जनों के द्वारा शब्दों का मेल ॥
१	यदि क् से घोष, अन्तस्थ वा स्वर वर्ण परे रहे तो क् के स्थानमें ग् हो जाता है॥	सम्यक्+दर्शन=सम्यग्दर्शन। दिक्+अम्बर=दिगम्बर। दिक् + ईशः=दिगीशः इत्यादि ॥
२	यदि किसी वर्ग के प्रथम वर्ण से परे सानुनासिक वर्ण रहे तो उसके स्थान में उसी वर्ग का सानुनासिक वर्ण हो जाता है ॥	चित् + मूर्ति=चिन्मूर्ति । चित् + मय=चिन्मय । उत्+मत्त=उन्मत्त । तत्+नयन=तन्नयन । अप्+मान=अम्मान ॥
३	यदि च्, ट्, प्, वर्ण से परे घोष, अन्तस्थ वा स्वर वर्ण रहे तो क्रमसे ज्, ड् और ब् होता है ॥	अच्+अन्त=अजन्त । षट्+वदन=षड्वदन। अप्+जा=अब्जा, इत्यादि ॥
४	यदि ह्रस्व स्वर से परे छ वर्ण रहे तो वह च् सहित हो जाता है, परन्तु दीर्घ स्वरसे परे कहीं २ होता है ॥	वृक्ष+छाया=वृक्षच्छाया । अव+छेद=अवच्छेद । परि+छेद=परिच्छेद। परन्तु लक्ष्मी+छाया=लक्ष्मीच्छाया वा लक्ष्मीछाया ॥
५	यदि त् से परे चवर्ग अथवा टवर्ग का प्रथम वा द्वितीय वर्ण हो तो त् के स्थान में च् वा ट् हो जाता है. और तृतीय वा चतुर्थ वर्ण परे रहे तो ज् वा ड् हो जाता है ॥	तत्+चारु+तच्चारु । सत्+जाति=सज्जाति । उत्+ज्वल=उज्ज्वल । तत्+टीका=तट्टीका । सत्+जीवन=सज्जीवन । जगत्+जीव=जगज्जीव । सत्+जन=सज्जन ॥

६ यदि त् से परे ग्, घ्, द्, ध्, ब्, भ्, य्, र्, व्, अथवा स्वर वर्ण रहे तो त् के स्थान में द् हो जाता है ॥	सत्+भक्ति=सद्भक्ति । जगत्+ईश=जगदीश । सत्+आचार=सदाचार । सत्+धर्म=सद्धर्म, इत्यादि ॥
७ यदि अनुस्वार से परे अन्तस्थ वा ऊष्म वर्ण रहे तो कुछ भी विकार नहीं होता ॥	सं+हार=संहार । सं+यम=संयम । सं+रक्षण=संरक्षण । सं+वत्सर=संवत्सर ॥
८ यदि अनुस्वार से परे किसी वर्ग का कोई वर्ण रहे तो उस अनुस्वार के स्थान में उसी वर्ग का पांचवां वर्ण हो जाता है ॥	सं+गति=सङ्गति । अपरं+पार=अपरम्पार । अहं+कार=अहङ्कार । सं+चार=सञ्चार । सं+बोधन=सम्बोधन, इत्यादि ॥
९ यदि अनुस्वार से परे स्वर वर्ण रहे तो मकार हो जाता है ॥	सं+आचार=समाचार । सं+उदाय=समुदाय । सं+ऋद्धि=समृद्धि, इत्यादि ॥

विसर्गसन्धि ॥

इस सन्धि के भी बहुत से नियम हैं उनमें से कुछ दिखाते हैं:—

नम्बर ॥ नियम ॥	विसर्गद्वारा शब्दों का मेल ॥
१ यदि विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां अक्षर, अथवा य्, र्, ल्, व्, ह्, हो तो ओ हो जाता है ॥	मनः+गत=मनोगत । पयः+धर=पयोधर । मनः+हर=मनोहर । अहः+भाग्य=अहोभाग्य । अधः+मुख=अधोमुख, इत्यादि ॥
२ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे क्, ख्, ट्, ठ्, प्, फ्, रहे तो मूर्धन्य ष्, च्, छ् रहे तो तालव्य श् और त्, थ्, रहे तो दन्त्य स् हो जाता है ॥	निः+कारण=निष्कारण । निः+चल=निश्चल । निः+तार=निस्तार । निः+फल=निष्फल । निः+छल=निश्छल । निः+पाप=निष्पाप । निः+टङ्क=निष्टङ्क, इत्यादि ॥
३ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे प्रत्येक वर्ग का तीसरा, चौथा, पांचवां अक्षर वा स्वर वर्ण रहे तो र् होता है ॥	निः+विघ्न=निर्विघ्न । निः+बल=निर्बल । निः+मल=निर्मल । निः+जल=निर्जल । निः+धन=निर्धन, इत्यादि ॥
४ यदि इकार उकार पूर्वक विसर्ग से परे रेफ हो तो विसर्गका लोप होकर पूर्व स्वर को दीर्घ हो जाता है ॥	निः+रस=नीरस । निः+रोग=नीरोग । निः+राग=नीराग । गुरुः+रम्यः=गुरूरम्यः, इत्यादि ॥

यह प्रथम अध्यायका वर्णविचार नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण—शब्दविचार ॥

१– शब्द उसे कहते हैं–जो कान से सुनाई देता है, उस के दो भेद हैं:—

(१) वर्णात्मक अर्थात् अर्थबोधक–जिसका कुछ अर्थ हो, जैसे—माता, पिता, घोड़ा, राजा, पुरुष, स्त्री, वृक्ष, इत्यादि ॥

(२) ध्वन्यात्मक अर्थात् अपशब्द–जिसका कुछ भी अर्थ न हो, जैसे—चक्की या बादल आदि का शब्द ॥

२– व्याकरण में अर्थबोधक शब्द का वर्णन किया जाता है और वह पांच प्रकार का है–संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय ॥

(१) किसी दृश्य वा अदृश्य पदार्थ अथवा जीवधारी के नाम को संज्ञा कहते हैं. जैसे—रामचन्द्र, मनुष्य, पशु, नर्मदा, आदि ॥

(२) संज्ञा के बदले में जिस का प्रयोग किया जाता है उसे सर्वनाम कहते हैं, जैसे—मैं, यह, वह, हम, तुम आप, इत्यादि। सर्वनाम के प्रयोग से वाक्य में सुन्दरता आती है, द्विरुक्ति नहीं होती अर्थात् व्यक्तिवाचक शब्द का पुनः २ प्रयोग नहीं करना पड़ता है, जैसे—मोहन आया और वह अपनी पुस्तक ले गया, यहां मोहन का पुनः प्रयोग नहीं करना पड़ा किन्तु उस के लिये वह सर्वनाम लाया गया ॥

(३) जो संज्ञा के गुण को अथवा उस की संख्या को बतलाता है उसे विशेषण कहते हैं, जैसे—लाल, मीली, दो, चार, खट्टा, चौथाई, पांचवां, इत्यादि ॥

(४) जिस से करना, होना, सहना, आदि पाया जावे उसे क्रिया कहते हैं। जैसे—खाता था, मारा है, जाऊंगा, सो गया इत्यादि ॥

(५) जिसमें लिंग, वचन और पुरुष के कारण कुछ विकार अर्थात् अदल बदल न हो उसे अव्यय कहते हैं, जैसे—अब, आगे, और, पीछे, ओहो, इत्यादि ॥

संज्ञाका विशेष वर्णन ॥

१– संज्ञा के स्वरूप के भेद से तीन भेद हैं–रूढि, यौगिक और योगरूढि ॥

(१) रूढ़ि संज्ञा उसे कहते हैं जिसका कोई खण्ड सार्थक न हो, जैसे—हाथी, घोड़ा, पोथी, इत्यादि ॥

(२) जो दो शब्दों के मेल से अथवा प्रत्यय लगा के बनी हो उसे यौगिक संज्ञा कहते हैं, जैसे—बुद्धिमान्, बाललीला, इत्यादि ॥

(३) योगरूढि संज्ञा उसे कहते हैं–जो रूप में तो यौगिक संज्ञा के समान दीखती हो

---

१. जो दीख पड़े उसे दृश्य तथा न दीख पड़े उसे अदृश्य कहते हैं ॥

परन्तु अपने शब्दार्थ को छोड़ दूसरा अर्थ बताती हो, जैसे—पङ्कज, पीताम्बर, हनूमान्, आदि ॥

२– अर्थ के भेद से संज्ञा के तीन भेद हैं–जातिवाचक व्यक्तिवाचक और भाववाचक ॥

(१) जातिवाचक संज्ञा उसे कहते हैं–जिस के कहने से जातिमात्र का बोध हो, जैसे—मनुष्य, पशु, पक्षी, पहाड़, इत्यादि ॥

(२) व्यक्तिवाचक संज्ञा उसे कहते हैं जिस के कहने से केवल एक व्यक्ति (मुख्यनाम) का बोध हो, जैसे—रामलाल, नर्मदा, रतलाम, मोहन, इत्यादि ॥

(३) भाववाचक संज्ञा उसे कहते हैं जिस से किसी पदार्थ का धर्म वा स्वभाव जाना जाय अथवा किसी व्यापार का बोध हो, जैसे—ऊंचाई, चढ़ाई, लेनदेन, बालपन, इत्यादि ॥

सर्वनाम का विशेष वर्णन ॥

सर्वनाम के मुख्यतया सात भेद हैं–पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक, संबन्धवाचक, आदरसूचक तथा निजवाचक ॥

१– पुरुषवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं–जिस से पुरुष का बोध हो, यह तीन प्रकार का है–उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और अन्यपुरुष ॥

(१) जो कहनेवाले को कहे–उसे उत्तम पुरुष कहते हैं, जैसे मैं ॥

(२) जो सुनने वाले को कहे–उसे मध्यम पुरुष कहते हैं, जैसे तू ॥

(३) जिस के विषयमें कुछ कहा जाय उसे अन्य पुरुष कहते हैं, जैसे—वह इत्यादि ॥

२– निश्चयवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं–जिससे किसी बात का निश्चय पाया जावे, इसके दो भेद हैं–निकटवर्ती और दूरवर्ती ॥

(१) जो पास में हो उसे निकटवर्ती कहते हैं, जैसे यह ॥

(२) जो दूर हो उसे दूरवर्ती कहते हैं, जैसे वह ॥

३– अनिश्चयवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं–जिस से किसी बात का निश्चय न पाया जावे, जैसे—कोई, कुछ, इत्यादि ॥

४– प्रश्नवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं जिस से प्रश्न पाया जावे, जैसे—कौन, क्या, इत्यादि ॥

५– सम्बंधवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं जो कही हुई संज्ञा से सम्बंध बतलावे, जैसे—जो, सो, इत्यादि ॥

६– आदरसूचक सर्वनाम उसे कहते हैं–जिस से आदर पाया जावे, जैसे—आप, इत्यादि ॥

७– निजवाचक सर्वनाम उसे कहते हैं–जिस से अपनापन पाया जावे, जैसे—अपना इत्यादि ॥

विशेषण का विशेष वर्णन ॥

विशेषण के मुख्यतया दो भेद हैं-गुणवाचक और संख्यावाचक ॥

१- गुणवाचक विशेषण उसे कहते हैं-जो संज्ञा का गुण प्रकट करे, जैसे-काला, नीला, ऊंचा, नीचा, लम्बा, आज्ञाकारी, अच्छा, इत्यादि ॥

२- संख्यावाचक विशेषण उसे कहते हैं-जो संज्ञा की संख्या बतावे, इस के चार भेद हैं-शुद्धसंख्या, क्रमसंख्या, आवृत्तिसंख्या, और संख्यांश ॥

(१) शुद्धसंख्या उसे कहते हैं जो पूर्ण संख्या को बतावे, जैसे एक, दो, चार ॥

(२) क्रमसंख्या उसे कहते हैं जो संज्ञा का क्रम बतलावे, जैसे—पहिला, दूसरा, तीसरा, चौथा, इत्यादि ॥

(३) आवृत्तिसंख्या उसे कहते हैं जो संख्या का गुणापन बतलावे, जैसे-दुगुना, चौगुना, इत्यादि ॥

(४) संख्यांश उसे कहते हैं जो संख्या का भाग बतावे, जैसे पंचमांश, आधा, तिहाई, चतुर्थांश, इत्यादि ॥

क्रिया का विशेष वर्णन ॥

क्रिया उसे कहते हैं जिस का मुख्य अर्थ करना है, अर्थात् जिस का करना, होना, सहना, इत्यादि अर्थ पाया जावे, इस के दो भेद हैं-सकर्मक और अकर्मक ॥

(१) सकर्मक क्रिया उसे कहते हैं-जो कर्म के साथ रहती है, अर्थात् जिस में क्रिया का व्यापार कर्ता में और फल कर्म में पाया जावे, जैसे-बालक रोटी को खाता है, मैं पुस्तक को पढ़ता हूं, इत्यादि ॥

(२) अकर्मक क्रिया उसे कहते हैं-जिसमें कर्म नहीं रहता, अर्थात् क्रिया का व्यापार और फल दोनों एकत्र होकर कर्ता ही में पाये जावें, जैसे लड़का सोता है, मैं जागता हूं, इत्यादि ॥

स्मरण रखना चाहिये कि-क्रिया का काल, पुरुष और वचन के साथ नित्य सम्बंध रहता है, इस लिये इन तीनों का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

काल—विवरण ॥

क्रिया करने में जो समय लगता है उसे काल कहते हैं, इस के मुख्यतया तीन भेद हैं-भूत, भविष्यत् और वर्तमान ॥

१- भूतकाल उसे कहते हैं-जिस की क्रिया समाप्त हो गई हो, इस के छः भेद हैं-सामान्यभूत, पूर्णभूत, अपूर्णभूत, आसन्नभूत, सन्दिग्धभूत और हेतुहेतुमद्भूत ॥

(१) सामान्यभूत उसे कहते है-जिस भूतकाल से यह निश्चय न हो कि-काम थोड़े समय पहिले हो चुका है या बहुत समय पहिले, जैसे खाया, मारा, इत्यादि ॥

(२) पूर्णभूत उसे कहते हैं कि जिस से मालूम हो कि काम बहुत समय पहिले हो चुका है, जैसे—खाया था, मारा था, इत्यादि ॥

(३) अपूर्णभूत उसे कहते हैं जिस से यह जाना जाय कि क्रिया का आरंभ तो हो गया है परन्तु उस की समाप्ति नहीं हुई है, जैसे—खाता था, मारता था, पढ़ाता था, इत्यादि ॥

(४) आसन्नभूत उसे कहते हैं जिस से जाना जाय कि काम अभी थोड़े ही समय पहिले हुआ है, जैसे—खाया है, मारा है, पढ़ाया है, इत्यादि ॥

(५) सन्दिग्धभूत उसे कहते हैं जिस से पहिले हो चुके हुए कार्य में सन्देह पाया जावे, जैसे—खाया होगा, मारा होगा ॥

(६) हेतुहेतुमद्भूत उसे कहते हैं जिसमें कार्य और कारण दोनों भूत काल में पाये जावें, अर्थात् कारण क्रिया के न होने से कार्य क्रिया का न होना बतलाया जावे, जैसे—यदि वह आता तो मैं कहता, यदि सुवृष्टि होती तो सुभिक्ष होता, इत्यादि ॥

२– भविष्यत् काल उसे कहते हैं जिसका आरंभ न हुआ हो अर्थात् होनेवाली क्रिया को भविष्यत् कहते हैं. इसके दो भेद हैं—सामान्यभविष्यत् और सम्भाव्यभविष्यत् ॥

(१) सामान्यभविष्यत् उसे कहते हैं जिस के होने का समय निश्चित न हो, जैसे—मैं जाऊंगा, मैं खाऊंगा, इत्यादि ॥

(२) सम्भाव्यभविष्यत् उसे कहते हैं जिसमें भविष्यत् काल और किसी बात की इच्छा पाई जावे, जैसे—खाऊं, मारे, आवे, इत्यादि ॥

३– वर्तमानकाल उसे कहते हैं जिस का आरम्भ तो हो चुका हो परन्तु समाप्ति न हुई हो, इस के दो भेद हैं-सामान्यवर्तमान और सन्दिग्धवर्तमान ॥

(१) सामान्यवर्तमान उसे कहते हैं जहां कर्ता क्रिया को उसी समय कर रहा हो, जैसे-खाता है, मारता है, पढ़ता है, इत्यादि ॥

(२) सन्दिग्ध वर्तमान उसे कहते हैं जिस में प्रारंभ हुए काम में सन्देह पाया जावे, जैसे—खाता होगा, पढ़ता होगा, इत्यादि ॥

४– इनके सिवाय क्रिया के तीन भेद और माने गये हैं-पूर्वकालिका क्रिया, विधिक्रिया और सम्भावनार्थ क्रिया ॥

(१) पूर्वकालिका क्रिया से लिंग, वचन और पुरुष का बोध नहीं होता किन्तु उस का काल दूसरी क्रिया से बोधित होता है, जैसे—पढ़कर जाऊंगा, खाकर गया, इत्यादि ॥

(२) विधिक्रिया उसे कहते हैं जिस से आज्ञा, उपदेश वा प्रेरणा पाई जावे, जैसे—खा, पढ़, खाइये, पढ़िये, खाना चाहिये, इत्यादि ॥

(३) सम्भावनार्थ क्रिया से सम्भव का बोध होता है, जैसे—खाऊं, पढ़ूं, आ जावे, चला जावे, इत्यादि ॥

५– प्रथम कह चुके हैं कि क्रिया सकर्मक और अकर्मक भेद से दो प्रकार की है, उस में से सकर्मक क्रिया के दो भेद और भी हैं–कर्तृप्रधान और कर्मप्रधान ॥

(१) कर्तृप्रधानक्रिया उसे कहते हैं–जो कर्ता के आधीन हो, अर्थात् जिसके लिंग, और वचन कर्ता के लिंग और वचन के अनुसार हों, जैसे–रामचन्द्र पुस्तक को पढ़ता है, लड़की पाठशाला को जाती है, मोहन वहिन को पढ़ाता है, इत्यादि ॥

(२) कर्मप्रधानक्रिया उसे कहते हैं कि जो क्रिया कर्म के आधीन हो अर्थात् जिस क्रियाके लिंग और वचन कर्म के लिंग और वचन के समान हों, जैसे—रामचन्द्र से पुस्तक पढ़ी जाती है, मोहन से वहिन पढ़ाई जाती है, फल खाया जाता है, इत्यादि ॥

पुरुष–विवरण ॥

प्रथम वर्णन कर चुके हैं कि—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष, ये ३ पुरुष हैं, इन का भी क्रिया के साथ नित्य सम्बंध रहता है, जैसे–मैं खाता हूं, हम पढ़ते हैं, वे जावेंगे, वह गया, तू सोता था, तुम वहां जाओ, मैं आऊंगा, इत्यादि, पुरुष के साथ लिंग का नित्य सम्वन्ध है इस लिये यहां लिंग का विवरण भी दिखाते हैं:—

लिंग–विवरण ॥

१– जिस के द्वारा सजीव वा निर्जीव पदार्थ के पुरुषवाचक वा स्त्रीवाचक होने की पहिचान होती है उसे लिंग कहते हैं, लिंग भाषा में दो प्रकार के माने गये हैं–पुलिंग और स्त्रीलिङ्ग ॥

(१) पुलिंग—पुरुषबोधक शब्द को कहते हैं, जैसे—मनुष्य, घोड़ा, कागज़, घर, इत्यादि ॥

(२) स्त्रीलिंग—स्त्रीबोधक शब्द को कहते हैं, जैसे—स्त्री, कलम, घोड़ी, मेज़, कुर्सी, इत्यादि ॥

२– प्राणिवाचक शब्दों का लिंग उन के जोड़े के अनुसार लोकव्यवहार से ही सिद्ध है, जैसे—पुरुष, स्त्री, घोड़ा, घोड़ी, वैल, गाय, इत्यादि ॥

१-पुलिंग से स्त्रीलिंग वनाने की रीतियों का वर्णन यहां विशेष आवश्यक न जानकर नहीं किया गया है, इस का विषय देखना हो तो दूसरे व्याकरणों को देखो ॥

३– जिन अप्राणिवाचक शब्दों के अन्त में अकार वा आकार रहता है और जिन का आदिवदी अक्षर त नहीं रहता, वे शब्द प्रायः पुल्लिंग होते हैं, जैसे—छाता, लोटा, घोड़ा, कागज, घर, इत्यादि ॥

(दीवार, कलम, स्लेट, पेन्सिल, दील आदि शब्दों को छोड़कर) ॥

४– जिन अप्राणिवाचक शब्दों के अन्तमें म, ई, वा त हो वे सब स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे—कलम, चिट्ठी, लकड़ी, दवात, जात, आदि (घी, दही, पानी, खेत, पर्वत, आदि शब्दोंको छोड़कर) ॥

५– जिन भाववाचक शब्दों के अन्त में आव, त्व, पन, और पा हो, वे सब पुल्लिंग होते हैं, जैसे— चढ़ाव, मिलाव, मनुष्यत्व, लड़कपन, बुढ़ापा आदि ॥

६– जिन भाववाचक शब्दों के अन्त में आई, ता, वट, हट हो, वे सब स्त्रीलिंग होते हैं, जैसे— चतुराई, उत्तमता, सजावट, चिकनाहट आदि ॥

७– समास में अन्तिम शब्द के अनुसार लिंग होता है, जैसे—पाटशाला, पृथ्वीपति, राजकन्या, गोपीनाथ, इत्यादि ॥

वचन–वर्णन ॥

१– वचन व्याकरण में संख्या को कहते हैं, इस के दो भेद हैं-एकवचन और वहुवचन॥

(१) जिस शब्द से एक पदार्थ का वोध हो उसे एकवचन कहते हैं, जैसे—लड़का पढ़ता है, वृक्ष हिलता है, घोड़ा दौड़ता है ॥

(२) जिस शब्द से एक से अधिक पदार्थों का वोध होता है उसे वहुवचन कहते हैं, जैसे—लड़के पढ़ते हैं, घोड़े दौड़ते हैं, इत्यादि ॥

२– कुछ शब्द कर्त्ता कारक में एकवचन में तथा वहुवचन में समान ही रहते हैं, जैसे—घर, जल, वन, वृक्ष, वन्धु, वान्धव, इत्यादि ॥

३– जहां एकवचन और वहुवचन में शब्दों में भेद नहीं होता वहां शब्दों के आगे गण, जाति, लोग, जन, आदि शब्दों को जोड़कर वहुवचन वनाया करते हैं, जैसे—ग्रहगण, पण्डित लोग, मूढ जन, इत्यादि ॥

वचनोंका सम्बंध नित्य कारकों के साथ है इसलिये कारकों का विषय संक्षेप से दिखाते हैं-हिन्दी में आठ कारक माने जाते हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध[1], अधिकरण और सम्बोधन ॥

कारकों का वर्णन ॥

१– कर्ता उसे कहते हैं जो क्रिया को करे, उस का कोई चिन्ह नहीं है, परन्तु सकर्मक

१–कोई लोग सम्बंध और सम्बोधन को कारक न मानकर शेष छः ही कारकों को मानते हैं ॥

क्रिया के कर्ता के आगे अपूर्णभूत को छोड़कर शेष भूतों में 'ने' का चिह्न आता है, जैसे—लड़का पढ़ता है, पण्डित पढ़ाता था, परन्तु पूर्णभूत आदि में गुरु ने पढ़ाया था, इत्यादि ॥

२— कर्म उसे कहते हैं जिस में क्रिया का फल रहे, इस का चिह्न 'को' है. जैसे मोहन को बुलाओ, पुस्तक को पढ़ो, इत्यादि ॥

३— करण उसे कहते हैं जिस के द्वारा कर्ता किसी कार्य को सिद्ध करे, इस का चिह्न 'से' है, जैसे—चाकू से कलम बनाई, इत्यादि ॥

४— सम्प्रदान उसे कहते हैं जिस के लिये कर्ता किसी कार्य को करे, इस के चिह्न 'को' के लिये हैं, जैसे—मुझ को पोथी दो, लड़के के लिये खिलौना लाओ, इत्यादि ॥

५— अपादान उसे कहते हैं कि जहां से क्रिया का विभाग हो, इस का चिह्न 'से' है, जैसे—वृक्ष से फल गिरा, घर से निकला, इत्यादि ॥

६— सम्बन्ध उसे कहते हैं—जिस से किसी का कोई सम्बंध प्रतीत हो, इस का चिह्न का, की, के, है, जैसे—राजा का घोड़ा, उस का घर, इत्यादि ॥

७— अधिकरण उसे कहते हैं—कि कर्ता और कर्म के द्वारा जहां पर कार्य का करना पाया जावे, उसका चिह्न में, पर, है, जैसे—आसन पर बैठो, फूल में सुगन्धि है, चटाईपर सोओ, इत्यादि ॥

८— सम्बोधन उसे कहते हैं जिस से कोई किसी को पुकारकर या चिताकर अपने सम्मुख करे, इस के चिह्न—हे, हो, अरे, रे, इत्यादि हैं ॥

जैसे—हे भाई, अरे नौकर, अरे रामा, अय लड़के इत्यादि ॥

अव्ययों का विशेष वर्णन ॥

प्रथम कह चुके हैं कि—अव्यय उन्हें कहते हैं जिनमें लिंग, वचन और कारक के कारण कुछ विकार नहीं होता है, अव्ययों के छः भेद हैं क्रियाविशेषण, सम्बंधबोधक, उपसर्ग, संयोजक, विभाजक और विसयादिबोधक ॥

१— क्रियाविशेषण अव्यय वह है—जिस से क्रिया का विशेष, काल और रीति आदि का बोध हो, इस के चार भेद हैं—कालवाचक, स्थानवाचक, भाववाचक और परिमाणवाचक ॥

(१) कालवाचक—समय बतलानेवाले को कहते हैं, जैसे—अब, तब, जब, कल, फिर, सदा, शाम, प्रातः, परसों, पश्चात्, तुरन्त, सर्वदा, शीघ्र, कब, एकबार, बारंबार, इत्यादि ॥

(२) स्थानवाचक—स्थान बतलानेवाले को कहते हैं, जैसे—यहां, जहां, वहां, कहां, तहां, इधर, उधर, समीप, दूर, इत्यादि ॥

(३) भाववाचक उन को कहते हैं—जो भाव को प्रकट करें, जैसे—अचानक, अर्थात्, केवल, तथापि, वृथा, सचमुच, नहीं, मत, मानो, हां, स्वयम्, झटपट, ठीक, इत्यादि ॥

(४) परिमाणवाचक—परिमाण बतलानेवालों को कहते हैं, जैसे—अत्यन्त, अधिक, कुछ, प्रायः, इत्यादि ॥

२– सम्बंधबोधक अव्यय उन्हें कहते हैं—जो वाक्य के एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बंध बतलाते हैं, जैसे—आगे, पीछे, संग, साथ, भीतर, बदले, तुल्य, नीचे, ऊपर, बीच, इत्यादि ॥

३– उपसर्गों का केवल का प्रयोग नहीं होता है, ये किसी न किसी के साथ ही में रहते हैं, संस्कृत में जो—प्र आदि उपसर्ग हैं वे ही हिन्दी में समझने चाहियें, वे उपसर्ग ये हैं—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, प्रति, परि, अभि, उप ॥

४– संयोजक अव्यय उन्हें कहते हैं–जो अव्यय पदों वाक्यों वा वाक्यखंडों में आते हैं और अन्वय का संयोग करते हैं, जैसे—और, यदि, अथ, कि, तो, यथा, एवम्, भी, पुनः, फिर, इत्यादि ॥

५– विभाजक अव्यय उन्हें कहते हैं जो अव्यय पदों वाक्यों वा वाक्यखण्डों के मध्य में आते हैं और अन्वय का विभाग करते हैं, जैसे—अथवा, परन्तु, चाहें, क्या, किन्तु, वा, जो, इत्यादि ॥

६– विसयादिबोधक अव्यय उन्हें कहते हैं जिनसे—अन्तःकरण का कुछ भाव या दशा प्रकाशित होती है, जैसे—आह, हहह, ओहो, हाय, धन्य, छीछी, फिस, धिक्, दूर, इत्यादि ॥

यह प्रथमाध्याय का शब्दविचार नामक चौथा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पांचवां प्रकरण—वाक्यविचार ॥

पहिले कह चुके हैं कि—पदों के योग से वाक्य बनता है, इस में कारकसहित संज्ञा तथा क्रिया का होना अति आवश्यक है, वाक्य दो प्रकार के होते हैं—एक कर्तृप्रधान और दूसरा कर्मप्रधान ॥

१– जिसमें कर्ता प्रधान होता है उस वाक्य को कर्तृप्रधान कहते हैं, इस प्रकार के वाक्य में यद्यपि आवश्यकता के अनुसार सब ही कारक आ सकते हैं परन्तु इस में

कर्ता और क्रिया का होना बहुत जरूरी है और यदि क्रिया सकर्मक हो तो उस के कर्म को भी अवश्य रखना चाहिये ॥

२– वाक्य में पदों की योजना का क्रम यह है कि—वाक्य के आदि में कर्ता अन्त में क्रिया और शेष कारकों की आवश्यकता हो तो उन को बीच में रखना चाहिये ॥

३– पदों की योजना में इस बात का विचार रहना चाहिये कि—सब पद ऐसे शुद्ध और यथास्थान पर, रखना चाहिये कि उन से अर्थ का सम्बंध ठीक प्रतीत हो, क्योंकि पद असम्बद्ध होने से वाक्य का अर्थ ठीक न होगा और वह वाक्य अशुद्ध समझा जायगा॥

४– शुद्ध वाक्य का उदाहरण यह है कि–राजा ने वाण से हरिण को मारा, इस कर्तृप्रधान वाक्य में राजा कर्ता, वाण करण, हरिण कर्म और मारा, यह सामान्य भूत की क्रिया है, इस वाक्य में सब पद शुद्ध हैं और उन की योजना भी ठीक है, क्योंकि एक पद का दूसरे पद के साथ अन्वय है, इस लिये सम्पूर्ण वाक्य का 'राजा के वाण से हरिण का मारा जाना' यह अर्थ हुआ ॥

५– व्याकरण के अनुसार पदयोजना ठीक होने पर भी यदि पद असम्बद्ध हों तो वाक्य अशुद्ध माना जाता है, जैसे—बनिया वसूले से कपड़े को सींता है, इस वाक्य में यद्यपि सब पद कारकसहित शुद्ध हैं तथा उनकी योजना भी यथास्थान है परन्तु पद असम्बद्ध हैं अर्थात् एक पद का अर्थ दूसरे पद के साथ अर्थ के द्वारा मेल नहीं रखता है, इस कारण वाक्य का कुछ भी अर्थ नहीं निकलता है, इसलिये ऐसे वाक्यों को भी अशुद्ध कहते हैं ॥

६– जैसे कर्तृप्रधान वाक्य में कर्ता का होना आवश्यक है वैसे ही कर्मप्रधान वाक्य में कर्म का होना भी आवश्यक है, इस में कर्ता की विशेष आकांक्षा नहीं रहती है, इस कर्मप्रधान वाक्य में भी शेष कारक कर्म और क्रिया के बीच में यथास्थल रक्खे जाते हैं ॥

७– कर्मप्रधान वाक्य में यदि कर्ता के रखने की इच्छा हो तो करण कारक के चिन्ह 'से' के साथ लाना चाहिये, जैसे—लड़के से फल खाया गया, गुरु से शिष्य पढ़ाया जाता है, इत्यादि ॥

८– वाक्य में जिस विशेष्य का जो विशेषण हो उस विशेषण को उसी विशेष्य से पहिले लाना चाहिये, ऐसी रचना से वाक्य का अर्थ शीघ्र ही जान लिया जाता है, जैसे—निर्दयी सिंह ने अपनी पैनी दाढ़ों से इस दीन हरिण को चाबडाला, इस वाक्य में सब विशेषण यथास्थान पर हैं, इस लिये वाक्यार्थ शीघ्र ही जान लिया जाता है ॥

९– यदि विशेषण अपने विशेष्य के पूर्वः न रक्खे जांय तो दूरान्वय के कारण अर्थ समझने में कठिनता पड़ती है, जैसे– वड़े वैठा हुआ एक लड़का छोटा घोड़े पर चला जाता है। इस वाक्य का अर्थ विना सोचे नहीं जाना जाता, परन्तु इसी वाक्य में यदि

अपने २ विशेष्य के साथ विशेषण को मिला दें-तो शीघ्र ही अर्थ समझ में आ जायगा, जैसे एक छोटा लड़का बड़े घोड़े पर बैठा चला जाता है, यद्यपि ऐसे वाक्य अशुद्ध नहीं माने जाते हैं, किन्तु क्लिष्ट माने जाते हैं ॥

१०-जब वाक्य में कर्ता और क्रिया दो ही हों तो कर्ता को उद्देश्य और क्रिया को विधेय कहते हैं ॥

११-जिस के विषय में कुछ कहा जावे उसे उद्देश्य कहते हैं और जो कहा जावे उसे विधेय कहते हैं, जैसे-बैल चलता है, यहां बैल उद्देश्य और चलता है यहां विधेय है ॥

१२-उद्देश्य को विशेषण के द्वारा और विधेय को क्रियाविशेषण के द्वारा बढ़ा सकते हैं, जैसे अच्छा लड़का शीघ्र पढ़ता है ॥

१३-यदि कर्ता को कह कर उसका विशेषण क्रिया के पूर्व रहे तो कर्ता को उद्देश्य और विशेषणसहित क्रिया को विधेय कहेंगे, जैसे- कपड़ा मैला है, यहां कपड़ा उद्देश्य और मैला है विधेय है ॥

१४-यदि एक क्रिया के दो कर्ता हों और वे एक दूसरे के विशेष्य विशेषण न हो सकें तो पहिला कर्ता उद्देश्य और दूसरा कर्ता क्रियासहित विधेय माना जाता है, जैसे- यह मनुष्य पशु है, यहां 'यह मनुष्य' उद्देश्य और 'पशु है' विधेय जानो ॥

१५-जो शब्द कर्ता से सम्बंध रखता हो उसे कर्ता के निकट और जो क्रिया से सम्बंध रखता हो उसे क्रिया के निकट रखना चाहिये, जैसे- मेरा टट्टू जंगल में अच्छी-तरह फिरता है, इत्यादि ॥

१६-विशेषण संज्ञा के पूर्व और क्रियाविशेषण क्रिया के पूर्व रहता है, जैसे-अच्छा लड़का शीघ्र पढ़ता है ॥

१७-पूर्वकालिका क्रिया उसी क्रिया के निकट रखनी चाहिये जिससे वाक्य पूर्ण हो, जैसे- लड़का रोटी खाकर जीता है ॥

१८-वाक्य में प्रश्नवाचक सर्वनाम उसी जगह रखना चाहिये जहां मुख्यतापूर्वक प्रश्न हो, जैसे-यह कौन मनुष्य है जिसने मेरा भला किया ॥

१९-यदि एक ही क्रिया के जुदे २ लिंग के अनेक कर्ता हों तो क्रिया बहुवचन हो जाती है, तथा उस का लिंग अन्तिम कर्ता के लिंग के अनुसार रहेगा, जैसे-बकरियां, घोड़े और बिल्ली जाती हैं ॥

२०-यदि एक ही क्रिया के अनेक कर्ता लिंग और वचन में एक से न हों परन्तु उन के समुदाय से एकवचन समझा जाय तो क्रिया भी एकवचनान्त होगी, और यदि बहुवचन समझा जाय तो क्रिया भी बहुवचनान्त होगी, जैसे- मेरा धन माल और रुपये पैसे आज मिलेंगे। मेरे घोड़े बैल ऊंट और बिल्ली खो गई ॥

२१–आदर के लिये क्रिया में बहुवचन होता है, चाहें आदरसूचक शब्द कर्ता के साथ हो वा न हो, जैसे– राजाजी आये हैं। पिताजी गये हैं, आप वहां जावेंगे, इत्यादि ॥

२२–यदि एक क्रिया के बहुत कर्म हों और उन के बीच में विभाजक शब्द रहे तो क्रिया एकवचनान्त रहेगी, जैसे—मेरा भाई न रोटी, न दाल, न भात, खावेगा ॥

२३–यदि एक क्रिया के उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष कर्ता हों तो क्रिया उत्तम पुरुष के अनुसार और यदि मध्यम तथा अन्य पुरुष हों तो मध्यम पुरुष के अनुसार होगी, जैसे—तुम, वह और मैं चलूंगा। तुम और वह जाओगे ॥

२४–वाक्य में कभी २ विशेषण भी क्रियाविशेषण हो कर आता है, जैसे—घोड़ा अच्छा दौड़ता है, इत्यादि ॥

२५–वाक्य में कभी २ कर्ता, कर्म तथा क्रिया गुप्त भी रहते है, जैसे—खेलता है, दे दिया, घर का बाग ॥

२६–सामान्यभूत, पूर्णभूत, आसन्नभूत और सन्दिग्धभूत, इन चार कालों में सकर्मक क्रिया के आगे 'ने' चिन्ह रहता है, परन्तु अपूर्णभूत और हेतुहेतुमद्भूत में नहीं रहता है, जैसे—मैं ने दिया, उस ने खाया था, लड़के ने लिया है, भाई ने दिया होगा, माता खाती थी, इत्यादि ॥

२७–बकना, बोलना, भूलना, जनना, जाना, ले जाना, खा जाना, इन सात क्रियाओं के किसी भी काल में कर्ता के आगे 'ने' नहीं आता है ॥

२८–जहां उद्देश्य विरुद्ध हो वहां वाक्य असंभव समझना चाहिये, जैसे—आग से सींचते हैं, पानी से जलाते हैं, इत्यादि ॥

यह प्रथमाध्याय का वाक्यविचार नामक पांचवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

इति श्री जैन श्वेताम्बर धर्मोपदेशक, यतिप्राणाचार्य, विवेकलब्धिशिष्य, शीलसौभाग्य–निर्मितः। जैनसम्प्रदायशिक्षायाः।

प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीय अध्याय ॥

प्रथम प्रकरण—चाणक्यनीतिसारदोहावलि ॥

मङ्गलाचरण ॥

श्रीगुरुदेव प्रताप से, होत मनोरथ सिद्धि ॥
घन ते ज्यों तरु वेल दल, फूल फलन की वृद्धि ॥ १ ॥
वालबोध के कारणे, नीति करूं परकास ॥
दोहा छन्द वनाय के, सुगम करूं मैं जास ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्या को वतलाकर—इस भव और परभव में सुखी करने वाले श्रीपरम गुरु महाराज के प्रताप से मनुष्य को मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त होती है, जैसे मेघ के वरसने से वृक्ष, वेल, दल, फल और फूल आदि की वृद्धि होती है ॥ १ ॥ बुद्धिमानों ने संस्कृत में जिस नीतिशास्त्र को प्रकाशित किया है, उसी को मैं वालकों को वोध होने के लिये दोहा छन्द में वनाकर सुगम रीति से प्रकाशित करता हूँ ॥ २ ॥

शास्त्र पठन से होत है, कीरति इस जग मान ॥
सुखी होत परलोक में, शास्त्र गुरूगम जान ॥ ३ ॥

शास्त्र के पढ़ने से इस लोक में कीर्ति होती है और जिस का इस लोक में यश है वह परलोक में भी सुखी होता है, इस लिये शास्त्र गुरु के द्वारा अवश्य पढ़ना चाहिये ॥ ३ ॥

इल्म पढ़न उद्यम करो, वृद्ध काय पर्यन्त ॥
इल्म पढ़े पहुँचैं जहां, नहिँ पहुँचैं धनवन्त ॥ ४ ॥

वुढ़ापा आ जावे तव भी विद्या पढ़ने का उद्यम करते ही रहना चाहिये, देखो! जिस जगह धनवान् नहीं जा सकता उस जगह विद्यावान् पहुँच सकता है ॥ ४ ॥

सत्य शास्त्र के श्रवण से, चीन्हैं धर्म सुजान ॥
कुमति दूर व्है ज्ञान हो, मुक्ति ज्ञान से मान ॥ ५ ॥

सच्चे शास्त्र के सुनने से वुद्धिमान् जन धर्म को अच्छी तरह पहिचानते हैं, शास्त्र के श्रवण से खराव वुद्धि दूर होकर ज्ञान होता है और ज्ञान से मुक्ति अर्थात् अक्षय सुख मिलता है ॥ ५ ॥

नहिं होवै जिस शास्त्र से, धर्म प्रीति वैराग ॥
निकमा श्रम तहँ क्यों करो, वृथा लवै ज्यों काग ॥ ६ ॥

जिस शास्त्र के सुनने से न तो वैराग्य हो और न धर्म में ही प्रीति हो, ऐसे शास्त्र में व्यर्थ परिश्रम नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस का पढ़ना काकभाषा के समान है ॥ ६ ॥

पैसा दै मैथुन करै, भोजन पर आधीन ॥
खण्ड खण्ड पण्डित पनो, जान विडम्बन तीन ॥ ७ ॥

द्रव्य खर्च कर मैथुन करना, पराये वश होकर भोजन करना और अधूरे २ शास्त्र सीखना, इन तीन बातों से मनुष्य की विडम्बना (फजीहत) होती है ॥ ७ ॥

चरण एक वा अर्द्ध पद, नित्य सुभाषित सीख ॥
मूरख हू पण्डित हुवै, नदियन सागर दीख ॥ ८ ॥

एक पाद अथवा आधा पद भी प्रतिदिन सुभाषित का सीखने से मूर्ख भी पण्डित हो सकता है, जैसे देखो ! बहुत सी नदियों के इकट्ठे होने पर सागर भर जाता है ॥ ८॥

महा वृक्ष को सेविये, फल छाया जुत जोय ॥
दैव कोप करि फल हरै, रुकै न छाया कोय ॥ ९ ॥

बड़े वृक्ष का सेवन करना चाहिये जो कि फल और छाया से युक्त हो, यदि दैव के कोप से फल न मिले तो भी छाया को कौन रोक सकता है ॥ ९ ॥

गुरु छाया अरु तात की, बड़े भ्रात की छांह ॥
राजमान छाया गहिर, दुर्लभ हैं जहँ ताँह ॥ १० ॥

गुरु की छाया, बाप की छाया, बड़े भाई की छाया और राजा से आदर मिलनेरूप छाया (ये छाया मिलने से जगत् में सब प्रकार से मनुष्य खुश रहता है परन्तु) ये छाया हर जगह मिलनी कठिन हैं ॥ १० ॥

नदी तीर जो तरु लग्यो, विन अंकुश जो नारि ॥
राजा मन्त्री हीन जो, तिहुँ विनसे निरधारि ॥ ११ ॥

नदी के किनारे पर लगा हुआ वृक्ष, विना अंकुश के स्त्री और मन्त्रीहीन राजा, ये तीनों प्रायः नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

अतिहिँ दान तैं बलि बँध्यो, दुर्योधन अति गर्व ॥
अति छवि सीता हरण भो, अति तजिये थल सर्व ॥ १२ ॥

बहुत दान के कारण बलि[1]राजा (विष्णुकुमार मुनि के हाथ से) बांधा गया, बहुत अहंकार के करने से दुर्योधन का नाश हुआ और बहुत छवि के कारण सीता हरी गई, इस लिये अति को सब जगह छोड़ना चाहिये ॥ १२ ॥

क्षमा खड्ग जिन कर गह्यो, कहा करै खल कोय ॥
विन ईंधन महि अग्नि परि, आपहि शीतल होय ॥ १३ ॥

1—इस की कथा त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रादि ग्रन्थों में लिखी है ॥

क्षमारूपी तलवार जिस के हाथ में है उस का कोई दुष्ट क्या कर सकता है, जैसे तृण-रहित पृथिवी पर पड़ी हुई अग्नि आप ही बुझ जाती है ॥ १३ ॥

धर्मी राजा जो हुवै, अथवा पापी जार ॥
प्रजा होत तिहि देश की, राजा के अनुसार ॥ १४ ॥

राजा धर्मात्मा हो तो उस की प्रजा भी धर्म की रीति पर चलती है, राजा अधर्मी अथवा जार हो तो उस की प्रजा भी वैसी ही हो जाती है, तात्पर्य यह है कि—जैसा राजा होता है उस देश की प्रजा भी वैसी ही हो जाती है ॥ १४ ॥

बुद्धिगम्य सब शास्त्र हैं नहिँ पावै निरबुद्धि ॥
नेत्रवन्त दीपक लखै, नेत्रहीन नहिँ सुद्धि ॥ १५ ॥

अपनी बुद्धि ही शास्त्र पढ़कर भी ज्ञान का प्रकाश करती है, किन्तु बुद्धिहीन को शास्त्र भी कुछ लाभ नहीं पहुंचा सकता है, जैसे—दीपक नेत्रवाले के लिये चांदना करता है परन्तु अन्धे को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाता है ॥ १५ ॥

पण्डित पर उपदेश में, जग में होत अनेक ॥
चलै आप सनमार्ग में, सो लाखन में एक ॥ १६ ॥

दूसरे को उपदेश देने में पण्डित (चतुर) संसार में अनेक देखे जाते हैं, परन्तु आप अच्छे मार्ग में चलनेवाला लाखों में एक देखा जाता है ॥ १६ ॥

नहीं देव पाषाण में, दारु मृत्तिका माँहि ॥
देव भाव मांहीं बसै, भाव मूल सब मांहि ॥ १७ ॥

न तो पत्थर में देव है, न लकड़ी और मिट्टी में देव है, किन्तु देव केवल अपने भाव में है (अर्थात् जिस देव पर अपना भाव होगा वैसाही फल वह देव अपनी शक्ति के अनुसार दे सकेगा) इस लिये सब में भाव ही मूल (कारण) समझना चाहिये ॥ १७ ॥

क्षमा तुल्य कोइ तप नहीं, सुख सन्तोष समान ॥
नहिँ तृष्णा सम व्याधि हु, धर्म दया सम आन ॥ १८ ॥

क्षमा के बराबर कोई तप नहीं, सन्तोष के बराबर कोई सुख नहीं, तृष्णा के समान कोई रोग नहीं और दया के समान कोई धर्म नहीं है ॥ १८ ॥

तृष्णा वैतरणी नदी, यम है क्रोध जु दोष ॥
कामधेनु विद्या सही, नन्दन वन सन्तोष ॥ १९ ॥

तृष्णा वैतरणी नदी के समान है (अर्थात् इस की थाह नहीं मिलती है), क्रोधरूपी दोष यमराज के सदृश है, विद्या कामधेनु के समान है (अर्थात् सब प्रकारके वांछित फल

१—इसी लिये "यथा राजा तथा प्रजा" यह लोकोक्ति भी संसार में प्रसिद्ध है ॥

२—दया का वर्णन ९१ वें दोहे की व्याख्या में देखो ॥

देने वाली है) और सन्तोष नन्दन वन के समान है (अर्थात् सुख और विश्राम का बाग है) ॥ १९ ॥

गुण पूछहु तजि रूप को, कुल तजि पूँछहु शील ॥
विद्या तजि सिधि पूँछिये, भोग पूँछ धन ढील ॥ २० ॥

रूप को छोड़कर विद्या को पूंछो, कुल को छोड़कर शील को पूंछो, विद्या को छोड़कर सिद्धि को पूंछो तथा धन को छोड़कर भोग को पूंछो, (अर्थात् यदि गुणवान् है तो रूप हो तो क्या और न हो तो क्या, अच्छा शीलवान् अर्थात् आचारवान् पुरुष है तो उस की जाति से क्या प्रयोजन है अर्थात् जाति उत्तम हो तो क्या और उत्तम न हो तो क्या, जो प्रत्यक्ष सिद्धि दिखलाता है तो उस की विद्या का क्या पूंछना और सदा भोग करता है अर्थात् खाता खरचता है तो फिर उस के पास धन का क्या पूंछना) ॥ २० ॥

गुण आभूषण रूप को, कुल को शील सँयोग ॥
विद्या भूषण सिद्धि है, धन को भूषण भोग ॥ २१ ॥

रूप का भूषण (गहना) गुण है, जाति का भूषण शील (अच्छा चाल चलन) है, विद्या का भूषण सिद्धि है और धन का भूषण भोग है (तात्पर्य यह है कि गुण के विना रूप किसी काम का नहीं, अच्छे चाल चलन के विना जाति कुछ काम की नहीं, सिद्धि के विना विद्या कुछ काम की नहीं और भोग के विना धन किसी काम का नहीं है) ॥ २१ ॥

भूमि पड्यो जल होत शुचि, पतिव्रत से शुचि नार ॥
प्रजापाल राजा शुची, विप्र सँतोष सुधार ॥ २२ ॥

पृथिवी पर पड़ा हुआ जल पवित्र है, पतिव्रता अर्थात् शीलवती स्त्री पवित्र है, प्रजा की पालना करने वाला राजा पवित्र है तथा सन्तोष रखने वाला ब्राह्मण पवित्र है ॥ २२ ॥

विन लिम्पी वसुधा सकल, शुची होत मन मान ॥
जहँ लिम्पी तहँ फेर ह्व, लिम्पे वह शुचि थान ॥ २३ ॥

विना लिपी हुई पृथिवी पवित्र होती है, जहां लिपी हुई हो वहां फिर लीपने से वह स्थान पवित्र होता है ॥ २३ ॥

कृषि देखो पहिले प्रहर, दूजे घर सम्भाल ॥
धन देखो तीजे प्रहर, नित प्रति पुत्र निहाल ॥ २४ ॥

१—इस का तात्पर्य यह है कि वैसे तो विना लिपी हुई सब पृथिवी सर्वदा पवित्र ही मानी जाती है क्योंकि पृथिवी और जल आदि पदार्थ स्वभाव से ही शुद्ध माने गये हैं परन्तु जिस स्थान में लीप पोत कर कोई कार्यविशेष किया गया है अतः वह स्थान उस कार्यविशेष के संसर्ग से अशुद्ध होने के कारण फिर लीपने से शुद्ध माना जाता है ॥

पहिले प्रहर में अर्थात् प्रातःकाल खेती का काम देखना चाहिये, दूसरे प्रहर में अर्थात् दोपहर को घर का काम देखना चाहिये, तीसरे प्रहर में धन (माल) का काम देखना चाहिये और पुत्र तथा पुत्री को प्रतिसमय देखते रहना चाहिये, तात्पर्य यह है कि यदि घर का स्वामी इन सब को नहीं देखेगा तो ये सब अवश्य विगड़ जायंगे ॥ २४ ॥

कहा करै मतिवन्त अरु, शूर वीर कवि राज ॥
दैव जु छल देखत रहै, करै विफल सब काज ॥ २५ ॥

बुद्धिमान्-शूरवीर और बड़ा कवि (शास्त्र पढ़ा हुआ पण्डित) भी क्या कर सकता है-यदि दैव (कर्म की गति) ही छल करके सब काम को निष्फल कर रहा हो ॥ २५॥

सब उपकार करो सही, द्यो धन दान जु कोय ॥
लाड़ लड़ाओ बहुत ही, नहिँ वश भाणज होय ॥ २६ ॥

बहुत उपकार भी किया जाय और सब प्रकार का धन माल भी दिया जाय तथा प्रीति से लाड़ भी किया जाय तो भी भानजा (बहिन का पुत्र) वश में नहीं होता (अपनी आज्ञा में नहीं चलता) है ॥ २६ ॥

भगिनीसुत अधिकार में, कबहुँ न दीजै काम ॥
कछु दिन बीते बाद ही, होय महा रिपु वाम ॥ २७ ॥

समझदार मनुष्य को चाहिये कि अपनी बहिन के पुत्र के अधिकार में कभी घर का काम न सौंपे, क्योंकि कुछ दिन बीतने पर वह समय पाकर महाशत्रु तथा उलटा (विरुद्ध) हो जाता है ॥ २७ ॥

जिस नर को कुल शील अरु, विद्या जानी नाँहि ॥
नहिँ करिये विश्वास तिहिँ, चतुर पुरुष मन माँहि ॥ २८ ॥

जिस मनुष्य का शील, कुल और विद्या न मालूम हो, उस का चतुर पुरुषों को विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ २८ ॥

प्रीति कहा मञ्जार सों, कह राजा सों प्रीति ॥
गणिका सों पुनि प्रीति कह, कह जाचक की प्रीति ॥ २९ ॥

मार्जार (बिल्ली) के संग प्रीति क्या है (व्यर्थ है), राजा के साथ भी प्रीति क्या है (यह भी व्यर्थ है, क्योंकि राजा लोग पिशुनों अर्थात् चुगलखोरों के कहने से आगा पीछा न विचार कर थोड़ी सी बात पर ही शीघ्र ही आंख बदल लेते हैं), वेश्या से भी क्या प्रीति है (यह भी व्यर्थ है, क्योंकि वह तो केवल द्रव्य से प्रीति रखती है, उस का जो कुछ हाव भाव और प्रेम है सो केवल रूपचन्द के लिये है) और याचक (भीख

१—तात्पर्य यह है कि कर्म की गति के उलटे होने से कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥

मागने वाले) से भी क्या प्रीति है (यह भी व्यर्थ रूपही है, क्योंकि इस से भी कुछ प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती है किन्तु लघुता ही होती है) ॥ २९ ॥

नर चित कों दुख देत हैं, कुच नारी के दोय ॥
होत दुखी वह पड़न तें, इस विधि सब कों जोय ॥ ३० ॥

देखो ! स्त्रियों के दोनों कुच पुरुषों के चित्त को दुःख देते हैं, आखिरकार वे आप भी दुःख पाकर नीचे को गिरते हैं, इसी प्रकार सब को जानना चाहिये अर्थात् जो कोई मनुष्य किसी को दुःख देगा अन्त में वह आप भी सुख कभी नहीं पावेगा ॥ ३० ॥

सिंघरूप राजा हुवै, मन्त्री बाघ समान ॥
चाकर गीध समान तव, प्रजा होय क्षय मान ॥ ३१ ॥

राजा सिंह के समान हो अर्थात् प्रजा के सब धन माल को लूटने का ही खयाल रक्खे, मन्त्री बाघके समान हो अर्थात् रिश्वत खाकर झूंठे अभियोग को सच्चा कर देवे अथवा वादी और प्रतिवादी (मुद्दई और मुद्दायला) दोनों से घूस खा जावे और चाकर लोग गीध के समान हों अर्थात् प्रजा को ठगने वाले हों तो उस राजा की प्रजा अवश्य नाश को प्राप्त हो जाती है ॥ ३१ ॥

उपज्यो धन अन्याय करि, दशहिँ वरस ठहराय ॥
सबहि सोलवें वर्ष लौं, मूल सहित विनसाय ॥ ३२ ॥

अन्याय से कमाया हुआ धन केवल दश वर्ष तक रहता है और सोलहवें वर्ष तक वह सब धन मूलसहित नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥

विद्या में व्है कुशल नर, पावै कला सुजान ॥
द्रव्य सुभाषित को हुँ पुनि, संग्रह करि पहिचान ॥ ३३ ॥

विद्या में कुशल होकर सुजान पुरुष अनेक कलाओं को पा सकता है अर्थात् विद्या सीखा हुआ मनुष्य यदि सब प्रकार का गुण सीखना चाहे तो उस को वह गुण शीघ्र ही प्राप्त हो सकता है, फिर-विद्या पढ़े हुये मनुष्य को चतुराई प्राप्त करनी हो तो—सुभाषित ग्रन्थ (जो कि अनेक शास्त्रों में से निकाल कर बुद्धिमान् श्रेष्ठ कवियों ने बनाये हैं, जैसे—चाणक्यनीति, भर्तृहरिशतक और सुभाषितरत्नभाण्डागार आदि) सीखने चाहियें, क्योंकि जो मनुष्य सुभाषितमय द्रव्य का संग्रह नहीं करता है वह सभा के बीच में अपनी वाणी की विशेषता (खूबी) को कभी नहीं दिखला सकता है ॥ ३३ ॥

शूर वीर पण्डित पुरुष, रूपवती जो नार ॥
ये तीन हुँ जहँ जात हैं, आदर पावैं सार ॥ ३४ ॥

१—छोटा नाहर ॥

शूर वीर पुरुष, पण्डित पुरुष और रूपवती स्त्री, ये तीनों जहां जाते हैं, वहीं सम्मान (आदर) पाते हैं ॥ ३४ ॥

नृप अरु पण्डित जो पुरुष, कबहुँ न होत समान ॥
राजा निज थल मानिये, पण्डित पूज्य जहान ॥ ३५ ॥

राजा और पण्डित, ये दोनों कभी तुल्य नहीं हो सकते हैं (अर्थात् पण्डित की बराबरी राजा नहीं कर सकता है) क्योंकि राजा तो अपने ही देश में माना जाता है और पण्डित सब जगत् में मान पाता है ॥ ३५ ॥

रूपवन्त जो मूर्ख नर, जाय सभा के बीच ॥
मौन गहे शोभा रहे, जैसे नारी नीच ॥ ३६ ॥

विद्यारहित रूपवान् पुरुष को चाहिये कि-किसी सभा (दर्बार) में जाकर मुंह से अक्षर न निकाले (कुछ भी न बोले) क्योंकि मौन रहने से उस की शोभा बनी रहेगी, जैसे दुष्टा स्त्री को यदि उस का पति बाहर न निकलने देवे तो घर की शोभा (आबरू) बनी रहती है ॥ ३६ ॥

कहा भयो जु विशाल कुल, जो विद्या करि हीन ॥
सुर नर पूजहिँ ताहि जो, मेधावी अकुलीन ॥ ३७ ॥

जो मनुष्य विद्याहीन है, उस को उत्तम जाति में जन्म लेने से भी क्या सिद्धि मिल सकती है, क्योंकि देखो ! नीच जातिवाला भी यदि विद्या पढ़ा है तो उस की मनुष्य और देवता भी पूजा करते हैं ॥ ३७ ॥

विद्यावन्त सपूत वरु, पुत्र एक ही होत ॥
कुल भासत नर श्रेष्ठ सें, ज्यों शशि निशा उदोत ॥ ३८ ॥

चाहें एक भी लड़का विद्यावान् और सपूत हो तो वह कुल में उजाला कर देता है, जैसे चन्द्रमा से रात्रि में उजाला होता है, अर्थात् शोक और सन्ताप के करनेवाले बहुत से लड़कों के भी उत्पन्न होने से क्या है, किन्तु कुटुम्ब का पालनेवाला एक ही पुत्र उत्पन्न हो तो उसे अच्छा समझना चाहिये, देखो ! सिंहनी एक ही पुत्र के होने पर निडर होकर सोती है और गधी दश पुत्रों के होने पर भी बोझे ही को लादे हुए फिरती है ॥ ३८ ॥

शुभ तरुवर ज्यों एक ही, फूल्यो फल्यो सुवास ॥
सब वन आमोदित करे, त्यों सपूत गुणरास ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार फूला फला तथा सुगन्धित एक ही वृक्ष सब वन को सुगन्धित कर देता है, इसी प्रकार गुणों से युक्त-एक भी सपूत लड़का पैदा होकर कुल की शोभा को बढ़ा देता है ॥ ३९ ॥

१—इस बात को वर्तमान में प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं ॥

निर्गुणि शत सें हूँ अधिक, एक पुत्र गुणवान ॥
एक चन्द्र तम को हरै, तारा नहिँ शतमान ॥ ४० ॥

निर्गुणी लड़के यदि सौ भी हों तथापि वे किसी काम के नहीं हैं, किन्तु गुणवान् पुत्र यदि एक भी हो तो अच्छा है, जैसे-देखो ! एक चन्द्रमा उदित होकर अन्धकार को दूर कर देता है, किन्तु सैकड़ों तारों के होने पर भी अंधेरा नहीं मिटता है, तात्पर्य यह है कि-गुणी पुत्र को चन्द्रमा के समान कुल में उद्योत करनेवाला जानो और निर्गुणी पुत्रों को तारों के समान समझो अर्थात् सौ भी निर्गुणी पुत्र अपने कुल में उद्योत नहीं कर सकते हैं॥

सुख चाहो विद्या तजो, विद्यार्थी सुख त्याग ॥
सुख चाहे विद्या कहाँ, कहँ विद्या सुख राग ॥ ४१ ॥

यदि सुख भोगना चाहे तो विद्या को छोड़ देना चाहिये और विद्या सीखना चाहे तो सुख को छोड़ देना चाहिये, क्योंकि सुख चाहनेवाले को विद्या नहीं मिलती है ॥ ४१ ॥

नहिँ नीचो पाताल तल, ऊँचो मेरु लिगार ॥
व्यापारी उद्यम करै, गहिरो दधि नहिँ धार ॥ ४२ ॥

उद्यमी (मेहनती) पुरुष के लिये मेरु पहाड़ कुछ ऊंचा नहीं है और पाताल भी कुछ नीचा नहीं है तथा समुद्र भी कुछ गहरा नहीं है, तात्पर्य यह है कि-उद्यम से सब काम सिद्ध हो सकते हैं ॥ ४२ ॥

एकहि अक्षर शिष्य कों, जो गुरु देत बताय ॥
धरती पर वह द्रव्य नहिँ, जिहिँ दै ऋण उतराय ॥ ४३ ॥

गुरु कृपा करके चाहें एक ही अक्षर शिष्य को सिखलावे, तो भी उस के उपकार का बदला उतारने के लिये कोई धन संसार में नहीं है, अर्थात् गुरु के उपकार के बदले में शिष्य किसी भी वस्तु को देकर उऋण नहीं हो सकता है ॥ ४३ ॥

पुस्तक पर आप हि पढ्यो, गुरु समीप नहिँ जाय ॥
सभा न शोभै जार सें, ज्यों तिय गर्भ धराय ॥ ४४ ॥

जिस पुरुष ने गुरु के पास जाकर विद्या का अभ्यास नहीं किया, किन्तु अपनी ही बुद्धि से पुस्तक पर आप ही अभ्यास किया है, वह पुरुष सभा में शोभा को नहीं पा सकता है, जैसे-जार पुरुष से उत्पन्न हुआ लड़का शोभा को नहीं पाता है, क्योंकि जार से गर्भ धारण की हुई स्त्री तथा उसका लड़का अपनी जातिवालों की सभा में शोभा नहीं पाते हैं, क्योंकि-लज्जा के कारण बाप का नाम नहीं बतला सकते हैं ॥ ४४ ॥

१—तात्पर्य यह है कि-विद्याभ्यास के समय में यदि मनुष्य भोग विलास में लगा रहेगा तो उस को विद्या की प्राप्ति कदापि नहीं होगी, इस लिये विद्यार्थी सुख को और सुखार्थी विद्या को छोड़ देवे ॥

कुलहीन हु धनवन्त जो, धनसें वह सुकुलीन ॥
शशि समान हू उच्च कुल, निरधन सब से हीन ॥ ४५ ॥

नीच जातिवाला पुरुष भी यदि धनवान् हो तो धन के कारण वह कुलीन कहलाता है और चन्द्रमा के समान निर्मल कुल अर्थात् ऊंचे कुलवाला भी पुरुष धन से रहित होने से सब से हीन गिना जाता है ॥ ४५ ॥

वय करि तप करि वृद्ध है, शास्त्रवृद्ध सुविचार ॥
वे सब ही धनवृद्ध के, किङ्कर ज्यों लखि द्वार ॥ ४६ ॥

इस संसार में कोई अवस्था में बड़े हैं, कोई तप में बड़े हैं और कोई बहुश्रुति अर्थात् अनेक शास्त्रों के ज्ञान से बड़े हैं, परन्तु इस रुपये की महिमा को देखो कि–वे तीनों ही धनवान् के द्वार पर नौकर के समान खड़े रहते हैं ॥ ४६ ॥

वन में सुख सें हरिण जिमि, तृण भोजन भल जान ॥
देहु हमैं यह दीन वच, भाषण नहिँ मन आन ॥ ४७ ॥

जंगल में जाकर हिरण के समान सुखपूर्वक घास खाना अच्छा है परंतु दीनता के साथ किसी सूम (कञ्जूस) से यह कहना कि "हम को देओ" अच्छा नहीं है ॥ ४७ ॥

कोई वियापात्र हैं, कोई धन के धाम ॥
कोई दोनों रहित हैं, कोइ उभयविश्राम ॥ ४८ ॥

देखो! इस संसार में कोई तो विद्या के पात्र हैं, कोई धन के पात्र हैं, कोई विद्या और धन दोनों के पात्र हैं और कोई मनुष्य ऐसे भी हैं जो न विद्या और न धन के पात्र हैं ॥ ४८ ॥

पांच होत ये गर्भ में, सब के विद्या वित्त ॥
आयु कर्म अरु मरण विधि, निश्चय जानो मित्त ॥ ४९ ॥

हे मित्र! इस बात को निश्चय कर जान लो कि—पूर्वकृत कर्म के योग से जीवधारी के लिये—विद्या, धन, आयु, कर्म और मरण, ये पांच बातें गर्भ ही में रच दी जाती हैं॥४९॥

चित्रगुप्त की भाल में, लिखी जु अक्षर माल ॥
बहु श्रम सें हू नहिँ मिटै, पण्डित वरु भूपाल ॥ ५० ॥

जो कर्म के अक्षर ललाट में लिखे हैं उसी को चित्रगुप्त कहते हैं (अर्थात् छिपा हुआ लेख) और इसी को लौकिक शास्त्रवाले विधाता के लिखे हुए अक्षर भी कहते हैं, तथा जैनधर्मवाले पूर्वकृत कर्म के स्वाभाविक नियम के अनुसार अक्षर मानते हैं, तात्पर्य इस का यही है कि–जो पूर्वकृत कर्म की छाप मनुष्य के ललाट पर लगी हुई है उस को

१—इस बात को वर्तमान में पाठकगण आंखों से देख ही रहे होंगे ॥ २—इन्हीं बातों को लोक में विधाता का छठी का लेख कहते हैं, क्योंकि दैव और विधाता ये दोनों कर्म ही के नाम हैं ॥

लोग नहीं जान सकते हैं और न उस लेख को कोई मिटा सकता है, चाहे पण्डित और राजा कोई भी कितना ही यत्न क्यों न करे ॥ ५० ॥

वन रण वैरी अग्नि जल, पर्वत शिर अरु शून्य ॥
सुप्त प्रमत अरु विषम थल, रक्षक पूरब पुन्य ॥ ५१ ॥

जंगल में, लड़ाई में, दुश्मनों के सामने, अग्नि लगने पर, जल में, पर्वत पर, शून्य स्थान में, निद्रा में, प्रमाद की अवस्था में और विषम स्थान में, इतने स्थानों में मनुष्य का किया हुआ पूर्व जन्म का अच्छा कर्म ही रक्षा करता है ॥ ५१ ॥

मूर्ख शिष्य उपदेश करि, दारा दुष्ट बसाय ॥
वैरी को विश्वास करि, पण्डित हू दुख पाय ॥ ५२ ॥

मूर्ख शिष्य को सिखला कर, दुष्ट स्त्री को रखकर और शत्रु का विश्वास कर पण्डित पुरुष भी दुःखी होता है ॥ ५२ ॥

दुष्ट भारजा मित्र शठ, उत्तरदायक भृत्य ॥
सर्पसहित घर वास ये, निश्चय जानो मृत्य ॥ ५३ ॥

दुष्ट स्त्री, धूर्त मित्र, उत्तर देनेवाला नौकर और जिस मकान में सर्प रहता हो वहां का निवास, ये सब बातें मृत्युस्वरूप हैं, अर्थात् इन बातों से कभी न कभी मनुष्य की मृत्यु ही होनी सम्भव है ॥ ५३ ॥

विपति हेत रखिये धनहिँ, धन तें रखिये नारि ॥
धन अरु दारा दुहुँन तें, आतम नित्य विचारि ॥ ५४ ॥

विपत्तिसमय के लिये धन की रक्षा करनी चाहिये, धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिये और धन तथा स्त्री, इन दोनों से नित्य अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥ ५४ ॥

एकहिँ तजि कुल राखिये, कुल तजि रखिये ग्राम ॥
ग्राम त्यागि रखु देश कों, आतमहित वसु धाम ॥ ५५ ॥

एक को छोड़कर कुल की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् एक मनुष्य के लिये तमाम कुल को नहीं छोड़ना चाहिये किन्तु एक मनुष्य को ही छोड़ना चाहिये, कुल को छोड़कर ग्राम

१—तात्पर्य यह है कि-इस संसार में मनुष्य की हानि और लाभ का हेतु केवल पूर्व जन्म का किया हुआ कर्म ही होता है, यही मनुष्य को विपत्ति में डालता है और यही मनुष्य को विपत्तिसागर से पार निकालता है, इस लिये उस कर्म के प्रभाव से जो सुख या दुःख अपने को प्राप्त होनेवाला है उस को देवता और दानव आदि कोई भी नहीं हटा सकता है, इस लिये हे बुद्धिमान् पुरुषो! जरा भी चिन्ता मत करो क्योंकि जो अपने भाग्य का है वह पराया कभी नहीं हो सकता है ॥ २—तात्पर्य यह है कि-धन के नाश का कुछ भी विचार न कर विपत्ति से पार होना चाहिये तथा स्त्री की रक्षा करना चाहिये और धन और स्त्री, इन दोनों के भी नाश का कुछ विचार न करके अपनी रक्षा करनी चाहिये अर्थात् इन दोनों का यदि नाश होकर भी अपनी रक्षा होती हो तो भी अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥

की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् कुल के लिये तमाम ग्राम को नहीं छोड़ना चाहिये किन्तु ग्राम की रक्षा के लिये कुल को छोड़ देना चाहिये, ग्राम का त्याग कर देश की रक्षा करनी चाहिये अर्थात् देश की रक्षा के लिये ग्राम को छोड़ देना चाहिये और अपनी रक्षा के लिये तमाम पृथिवी को छोड़ देना चाहिये ॥ ५५ ॥

नहीं मान जिस देश में, वृत्ति न बान्धव होय ॥
नहिँ विद्या प्रापति तहाँ, वसिय न सज्जन कोय ॥ ५६ ॥

जिस देश में न तो मान हो, न जीविका हो, न भाई बन्धु हों और न विद्या की ही प्राप्ति हो, उस देश में सज्जनों को कभी नहीं रहना चाहिये ॥ ५६ ॥

पण्डित राजा अरु नदी, वैद्यराज धनवान ॥
पांच नहीं जिस देश में, वसिये नाहिँ सुजान ॥ ५७ ॥

सब विद्याओं का जाननेवाला पण्डित, राजा, नदी (कुआ आदि जल का स्थान), रोगों को मिटानेवाला उत्तम वैद्य और धनवान्, ये पांच जिस देश में न हो उस में बुद्धिमान् पुरुष को नहीं रहना चाहिये ॥ ५७ ॥

भय लज्जा अरु लोकगति, चतुराई दातार ॥
जिसमें नहिँ ये पांच गुण, संग न कीजै यार ॥ ५८ ॥

हे मित्र ! जिस मनुष्य में भय, लज्जा, लौकिक व्यवहार अर्थात् चालचलन, चतुराई और दानशीलता, ये पांच गुण न हों, उस की संगति नहीं करनी चाहिये ॥ ५८ ॥

काम भेज चाकर परख, बन्धु दुःख में काम ॥
मित्र परख आपद पड़े, विभव छीन लख वाम ॥ ५९ ॥

कामकाज करने के लिये भेजने पर नौकर चाकरों की परीक्षा हो जाती है, अपने पर दुःख पड़ने पर भाइयों की परीक्षा हो जाती है, आपत्ति आने पर मित्र की परीक्षा हो जाती है और पास में धन न रहने पर स्त्री की परीक्षा हो जाती है ॥ ५९ ॥

आतुरता दुख हू पड़े, शत्रु सङ्कटौ पाय ॥
राजद्वार मसान में, साथ रहै सो भाय ॥ ६० ॥

आतुरता (चित्त में घवड़ाहट) होने पर, दुःख आने पर, शत्रु से कष्ट पाने पर, राजदर्बार का कार्य आने पर तथा श्मशान (मौतसमय) में जो साथ रहता है, उसी को अपना भाई समझना चाहिये ॥ ६० ॥

सींग नखन के पशु नदी, शस्त्र हाथ जिहि होय ॥
नारी जन अरु राजकुल, मत विश्वास हु कोय ॥ ६१ ॥

सींग और नखवाले पशु, नदी, हाथ में शस्त्र लिये हुए पुरुष, स्त्री तथा राजकुल, इन का विश्वास कभी नहीं करना चाहिये ॥ ६१ ॥

लेवो अम्मृत विषहु तें, कञ्चन अशुचिहुँ थान ॥
उत्तम विद्या नीच से, अकुल रतन तिय आन ॥ ६२ ॥

अमृत यदि विष के भीतर भी हो तो उस को ले लेना चाहिये, सोना यदि अपवित्र स्थान में भी पड़ा हो तो उसे ले लेना चाहिये, उत्तम विद्या यदि नीच जातिवाले के पास हो तो भी उसे ले लेना चाहिये, तथा स्त्रीरूपी रत्न यदि नीच कुल की भी हो तो भी उस का अङ्गीकार कर लेना चाहिये ॥ ६२ ॥

तिरिया भोजन द्विगुण अरु, लाज चौगुनी मान ॥
जिद होत तिहि छः गुनी, काम अष्टगुण जान ॥ ६३ ॥

पुरुष की अपेक्षा स्त्री का आहार दुगुना होता है, लज्जा चौगुनी होती है, हठ छः गुणा होता है और काम अर्थात् विषयभोग की इच्छा आठगुनी होती है ॥ ६३ ॥

मिथ्या हठ अरु कपटपन, मौढ्य कृतघ्नी भाव ॥
निर्दयपन पुनि अशुचिता, नारी सहज सुभाव ॥ ६४ ॥

झूंठ बोलना, हठ करना, कपट रखना, मूर्खता, किये हुये उपकार को भूल जाना, दया का न होना और अशुचिता अर्थात् शुद्ध न रहना, ये सात दोष स्त्रियों में स्वभाव से ही होते हैं ॥ ६४ ॥

भोजन अरु भोजनशकति, भोगशक्ति वर नारि ॥
गृह विभूति दातारपन, छउँ अति तप निर्धार ॥ ६५ ॥

उत्तम भोजन के पदार्थों का मिलना, भोजन करने की शक्ति होना, स्त्री से भोग करने की शक्ति का होना, सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होना और धन की प्राप्ति होना तथा दान देने का स्वभाव होना, ये छवों बातें उन्हीं को प्राप्त होती हैं जिन्हों ने पूर्व भव में पूरी तपस्या की है ॥ ६५ ॥

नारी इच्छागामिनी, पुत्र होय वस जाहि ॥
अल्प धन हुँ सन्तोष जिहि, इहैं स्वर्ग है ताहि ॥ ६६ ॥

जिस पुरुष की स्त्री इच्छा के अनुसार चलनेवाली हो, पुत्र आज्ञाकारी हो और थोड़ा भी धन पाकर जिस ने सन्तोष कर लिया है, उस पुरुष को इसी लोक में स्वर्ग के समान सुख समझना चाहिये ॥ ६६ ॥

१—परम दिव्य स्त्रीरूप रत्न चक्रवर्ती महाराज को प्राप्त होता है—क्योंकि दिव्यांगना की प्राप्ति पूर्ण तपस्या का फल माना गया है—अतः पुण्यहीन को उस की प्राप्ति नहीं हो सकती है, इस लिये यदि वह स्त्रीरूप रत्न अनार्य म्लेच्छ जाति का भी हो किन्तु सर्वगुणसम्पन्न हो तो उस की जाति का विचार न कर उस का अंगीकार कर लेना चाहिये ॥

सुत वोही पितुभक्त जो, जो पालै पितु सोय ॥
मित्र वही विश्वास जिहि, नारी सो सुख होय ॥ ६७ ॥

पुत्र वही है जो माता पिता का भक्त हो, पिता वही है जो पालन पोषण करे, मित्र वही है जिस पर विश्वास हो और स्त्री वही है जिस से सदा सुख प्राप्त हो ॥ ६७ ॥

पीछे काज नसावही, मुख पर मीठी बान ॥
परिहरु ऐसे मित्र को, मुख पय विष घट जान ॥ ६८ ॥

पीछे निन्दा करे और काम को विगाड़ दे तथा सामने मीठी २ बातें वनावे, ऐसे मित्र को अन्दर विष भरे हुए तथा मुख पर दूध से भरे हुए घड़े के समान छोड़ देना चाहिये ॥६८॥

नहिँ कुमित्र विश्वास कर, मित्रहुँ को न विसास ॥
कवहुँ कुपित ह्वै मित्र हू, गुह्य करै परकास ॥ ६९ ॥

खोटे मित्र का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये, किन्तु मित्र का भी विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि संभव है कि–मित्र भी कभी क्रोध में आकर गुप्त बात को प्रकट कर दे ॥ ६९ ॥

मन में सोचे काम को, मत कर वचन प्रकास ॥
मन्त्र सरिस रक्षा करै, काम भये पर भास ॥ ७० ॥

मन से विचारे हुए काम को वचन के द्वारा प्रकट नहीं करना चाहिये, किन्तु उस की मन्त्र के समान रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि कार्य होने पर तो वह आप ही सब को प्रकट हो जायगा ॥ ७० ॥

मूरख नर सें दूर तुम, सदा रहो मतिमान ॥
विन देखे कंटक सरिस, वेधै हृदय कुवान ॥ ७१ ॥

साक्षात् पशु के समान मूर्ख जन से सदा बच कर रहना अच्छा है, क्योंकि वह विना देखे कांटे के समान कुवचन रूपी कांटे से हृदय को वेध देता है ॥ ७१ ॥

कण्टक अरु धूरत पुरुष, प्रतीकार द्वै जान ॥
जूती सें मुख तोड़नो, दूसर त्यागन जान ॥ ७२ ॥

धूर्त मनुष्य और कांटे के केवल दो ही उपाय (इलाज) हैं–या तो जूते से उस के मुख को तोड़ना अथवा उस से दूर हो कर चलना ॥ ७२ ॥

१—क्योंकि कार्य के सिद्ध होने से पूर्व यदि वह सब को विदित हो जाता है तो उस में किसी न किसी प्रकार का प्रायः विघ्न पड़ जाता है, दूसरा यह भी कारण है कि–कार्य की सिद्धि से पूर्व यदि वह सब को प्रकट हो जावे कि अमुक पुरुष अमुक कार्य को करना चाहता है और दैवयोग से उस कार्य की सिद्धि न हो तो उपहास का स्थान होगा ॥

शैल शैल माणिक नहीं, मोती गज गज नाहिं ॥
वन वन में चन्दन नहीं, साधु न सब थल माहिं ॥ ७३ ॥

सब पर्वतों पर माणिक पैदा नहीं होता है, सब हाथियों के कुम्भस्थल (मस्तक) में मोती नहीं निकलते हैं, सब वनों में चन्दन के वृक्ष नहीं होते हैं और सब स्थानों में साधु नहीं मिलते हैं ॥ ७३ ॥

पुत्रहि सिखवैं शील को, बुध जन नाना रीति ॥
कुल में पूजित होत है, शीलसहित जो नीति ॥ ७४ ॥

बुद्धिमान् लोगों को उचित है कि अपने लड़कों को नाना भांति की सुशीलता में लगावें, क्योंकि नीति के जानने वाले यदि शीलवान् हों तो कुल में पूजित होते हैं ॥ ७४ ॥

ते माता पितु शत्रु सम, सुत न पढ़ावैं जौन ॥
राजहंस विच वकसरिस, सभा न शोभत तौन ॥ ७५ ॥

वे माता और पिता वैरी हैं जिन्हों ने लाड़ के वश में होकर अपने बालक को नहीं पढ़ाया, इस कारण वह बालक सभा में जाकर शोभा नहीं पाता है, जैसे हंसों की पंक्ति में बगुला शोभा को नहीं पाता है ॥ ७५ ॥

पुत्र लाड़ सैं दोष बहु, ताड़न सैं बहु सार ॥
यातैं सुत अरु शिष्य को, ताड़न ही निरधार ॥ ७६ ॥

पुत्रों का लाड़ करने से बहुत दोष (अवगुण) होते हैं और ताड़न (धमकाने) से बहुत लाभ होता है, इस लिये पुत्र और शिष्य का सदा ताड़न करना ही उचित है॥७६॥

पांच वरस सुत लाड़ कर, दश लौं ताड़न देहु ॥
बरस सोलवें लागते, कर सुत मित्र सनेहु ॥ ७७ ॥

पांच वर्ष तक पुत्र का (खिलाने पिलाने आदि के द्वारा) लाड़ करना चाहिये, दश वर्ष तक ताड़न करना चाहिये अर्थात् त्रास देकर विद्या पढ़ानी चाहिये–परन्तु जब सोलहवां वर्ष लगे तब पुत्र को मित्र के समान समझ कर सब वर्ताव करना चाहिये ॥ ७७ ॥

रूप भयो यौवन भयो, कुल हू में अनुकूल ॥
बिन विद्या शोभै नहीं, गन्धहीन ज्यों फूल ॥ ७८ ॥

रूप तथा यौवनवाला हो और बड़े कुल में उत्पन्न भी हुआ हो तथापि विद्यारहित पुरुष शोभा नहीं पाता है, जैसे–गन्ध से हीन होने से टेसू (केसूले) का फूल ॥ ७८ ॥

१–साधु नाम सत्पुरुष का है ॥ २–शील का लक्षण ९१ वें दोहे की व्याख्या में देखो ॥

३–तात्पर्य यह है कि–सोलह वर्ष के पीछे ताड़न कर विद्या पढ़ाने का समय नहीं रहता है क्योंकि सोलह वर्ष तक में सब इन्द्रियां और मन आदि परिपक्व होकर जैसा संस्कार हृदय में जम जाता है, उस का मिटना अति कठिन होता है, जैसे कि बड़े वृक्ष की शाखा सुदृढ़ होने से नहीं नमाई जा सकती है ॥

पर को वसनरु अन्न पुनि, सेज परस्त्री नेह ॥
दूरि तजहु एते सकल, पुनि निवास परगेह ॥ ७९ ॥

पराया वस्त्र, पराया अन्न, पराई शय्या, पराई स्त्री और पराये मकान में रहना, इन पांचों बातों को दूर से ही छोड़ देना चाहिये ॥ ७९ ॥

जग जन्में फल धर्म अरु, अर्थ काम पुनि मुक्ति ॥
जासें सधत न एक हू, दुःख हेत तिहिं भुक्ति ॥ ८० ॥

संसार में मनुष्यजन्म का फल यही है कि-धर्म[1], अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करे, किन्तु इन चारों में से जिस ने एक भी प्राप्त नहीं किया–उस का सब भोग केवल दुःख के लिये है ॥ ८० ॥

परनिन्दा विन दुष्ट नर, कबहूँ नहिं सुख पाय ॥
त्यागि काक जिमि सर्व रस, विष्ठा चित्त सुहाय ॥ ८१ ॥

दुर्जन मनुष्य पराई निन्दा किये विना कभी सुखी नहीं होता है (अर्थात् पराई निन्दा करने से ही सुखी होता है), जैसे कौआ अनेक प्रकार का उत्तम भोजन छोड़ कर विष्ठा खाये विना नहीं रहता है ॥ ८१ ॥

स्तुति विद्या की लोक में, नहिँ शरीर की चाहिँ ॥
काली कोयल मधुर धुनि, सुनि सुनि सकल सराहिँ ॥ ८२ ॥

लोक में विद्या से प्रशंसा होती है–किन्तु शरीर की प्रशंसा नहीं होती है, देखो। कोयल यद्यपि काली होती है–तथापि उस के मीठे स्वर को सुन कर सब ही उस की प्रशंसा करते हैं ॥ ८२ ॥

सवैया[2]—पितु धीरज औ जननी जु क्षमा, मननिग्रह भ्रात सहोदर है।
सुत सत्य दया भगिनी गृहिणी, शुभ शान्ति हु सेवमें तत्पर है ॥
सुखसेज सजी धरणी दिशि अम्बर, ज्ञानसुधा शुभ आहर है।
जिन योगिन के जु कुटुम्बि यहैं, कहु मीत तिन्हैं किन्ह को डर है ॥ ८३

जिन का धीरज पिता है, क्षमा माता है, मन का संयम भ्राता है, सत्य पुत्र है, दया वहिन है, सुन्दर शान्ति ही सेवा करनेवाली भार्या (स्त्री) है, पृथिवी सुन्दर सेज है, दिशा वस्त्र हैं तथा ज्ञानरूपी अमृत के समान भोजन है, हे मित्र ! जिन योगी जनों के उक्त कुटुम्बी हैं बतलाओ उन को किस का डर हो सकता है ॥ ८३ ॥

बादल छाया तृण अगनि, अधम सेव थल नीर ॥
वेश्यानेह कुमित्र ये, बुदबुद ज्यों नहिँ थीर ॥ ८४ ॥

१—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का स्वरूप सुभाषितावलि के २२३ से २२८ वें तक दोहों में देखो ॥
२—यह सवैया "धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी" इत्यादि भर्तृहरिशतक के श्लोक का अनुवादरूप है ॥

बादल की छाया, तिनकों (फूस) की अग्नि, नीच स्वामी की सेवा, रेतीली पृथिवी पर वृष्टि, वेश्या की प्रीति और दुष्ट मित्र, ये छओं पदार्थ पानी के बुलबुले के समान हैं अर्थात् क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं, इस लिये ये कुछ भी लाभदायक नहीं हैं ॥ ८४ ॥

नगर शरीर रु जिव नृप, मन मन्त्रीन्द्रिय लोक ॥
मन विनशे कछु वश नहीं, कौरव करण विलोक ॥ ८५ ॥

इस शरीररूपी नगरी में जीव राजा के समान है, मन मन्त्री अर्थात् प्रधान के समान है, और इन्द्रियां प्रजा के समान हैं, इस लिये जब मनरूपी मन्त्री नष्ट हो जाता है अर्थात् जीत लिया जाता है तो फिर किसी का भी वश नहीं चलता है, जैसे कर्ण राजा के मर जाने से कौरवों का पाण्डवों के सामने कुछ भी वश नहीं चला ॥ ८५ ॥

धर्म अर्थ अरु काम ये, साधहु शक्ति प्रमाण ॥
नित उठि निज हित चिन्तहू, ब्राह्म मुहूरत जाण ॥ ८६ ॥

मनुष्य को चाहिये कि- अपनी शक्ति के अनुसार धर्म, अर्थ और काम का साधन करे तथा प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर अपने हित का विचार करना चाहिये, तात्पर्य यह है कि-पिछली चार घड़ी रात्रि रहने पर मनुष्य को उठना चाहिये, फिर अपने को क्या करना अच्छा है और क्या करना बुरा है-ऐसा विचारना चाहिये, प्रथम धर्म का आचरण करना चाहिये, अर्थात् समता का परिणाम रख कर ईश्वर की भक्ति और किये हुए पापों का आलोचन दो घड़ी तक करके भावपूजा करे, फिर देव और गुरु का वन्दन तथा पूजन करे, पीछे व्याख्यान अर्थात् गुरुमुख से धर्मकथा सुने, इस के पीछे सुपात्रों को अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर पथ्य भोजन करे, फिर अर्थ का उपार्जन करे अर्थात् व्यापार आदि के द्वारा धन को पैदा करे परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि-वह धन का पैदा करना न्याय के अनुकूल होना चाहिये किन्तु अन्याय से नहीं होना चाहिये, फिर काम का व्यवहार करे अर्थात् कुटुम्ब, मकान, लड़का, माता, पिता और स्त्री आदि से यथोचित वर्त्ताव करे, इस के पश्चात् मोक्ष का आचरण करे अर्थात् इन्द्रियों को वश में करके वैराग्ययुक्त भाव के सहित जो साधु धर्म (दुःख के मोचन का श्रेष्ठ उपाय) है उस को अंगीकार करे ॥ ८६ ॥

कौन काल को मित्र है, देश खरच क्या आय ॥
को मैं मेरी शक्ति क्या, नित उठि नर चित ध्याय ॥ ८७ ॥

यह कौन सा काल है, कौन मेरा मित्र है, कौन सा देश है, मेरे आमदनी कितनी है और खर्च कितना है, मैं कौन जाति का हूँ औ क्या मेरी शक्ति है, इन बातों को मनुष्य को

१—इस इतिहास को पांडवचरित्रादि ग्रन्थों में देखो ॥ २—क्योंकि अन्याय से पैदा किया हुआ धन दश वर्ष के पश्चात् मूलसहित नष्ट हो जाता है, यह पहिले ३२ वें दोहे में कहा जा चुका है ॥

प्रतिदिन विचारते रहना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य इन बातों को विचार कर चलेगा वह अपने जीवन में कभी दुःख नहीं पावेगा ॥ ८७ ॥

भयत्राता पतिनी पिता, विद्याप्रद गुरु जौन ॥
मन्त्रदानि अरु अशनप्रद, पञ्च पिता छितिरौन ॥ ८८ ॥

हे राजन्! भय से बचानेवाला, भार्या का पिता (श्वशुर), विद्या का देनेवाला (गुरु) मन्त्र अर्थात् दीक्षा अथवा यज्ञोपवीत का देनेवाला तथा भोजन (अन्न) का देनेवाला, ये पांच पिता कहलाते हैं ॥ ८८ ॥

राजभारजा दार गुरु, मित्रदार मन आन ॥
पतनी माता मात निज, ये सब माता जान ॥ ८९ ॥

राजा की स्त्री, गुरु (विद्या पढ़ानेवाले) की स्त्री, मित्र की स्त्री, भार्या की माता (सासू) और अपने जन्म की देनेवाली तथा पालनेवाली, ये सब मातायें कहलाती हैं ॥ ८९ ॥

ब्राह्मण को गुरु वह्नि है, वर्ण विप्र गुरु जान ॥
नारी को गुरु पति अहै, जगतगुरू यति मान ॥ ९० ॥

ब्राह्मणों का गुरु अग्नि है, सब वर्णों का गुरु ब्राह्मण[1] है, स्त्रियों का गुरु पति ही है तथा सब संसार का गुरु यति[2] है ॥ ९० ॥

तपन घिसन छेदन कुटन, हेम यथा परखाय ॥
शास्त्र शील तप अरु दया, तिमि बुध धर्म लखाय ॥ ९१ ॥

जैसे अग्नि में तपाने से, कसौटी पर घिसने से, छेनी से काटने से और हथौड़े से कूटने से, इन चार प्रकारों से सोना परखा जाता है, उसी प्रकार से बुद्धिमान् पुरुष धर्म की भी परीक्षा चार प्रकार से करके फिर धर्म का ग्रहण करते हैं, उस धर्म की परीक्षा का प्रथम उपाय यह है कि—उस धर्म का यथार्थ ज्ञान देखना चाहिये अर्थात् यदि शास्त्रों के बनानेवाले मांसाहारी तथा नशा पीनेवाले आदि होते हैं तो वे पुरुष अपने बनाये हुए ग्रन्थों में किसी देव के बलिदान आदि का बहाना लगाकर "मांस खाने तथा मद्य पीने से दोष नही होता है" इत्यादि बातें अवश्य लिख ही देते हैं, ऐसे लेखों में परस्पर विरोध भी प्रायः देखा जाता है अर्थात् पहिला और पिछला लेख एक सा नहीं होता है, अथवा उन के लेख में परस्पर विरोध इस प्रकार भी देखा जाता है कि—एक स्थान में किसी बात का अत्यन्त निषेध लिखकर दूसरे स्थान में वही ग्रन्थकर्त्ता अपने ग्रन्थ में कारणविशेष को न

१—जन्म और मरण आदि का सब संस्कार कराने से सब शास्त्रों को जाननेवाला तथा ब्रह्म को जाननेवाला ब्राह्मण ही वर्णों का गुरु है किन्तु मूर्ख और क्रियाहीन ब्राह्मण गुरु नहीं हो सकता है ॥

२—इन्द्रियों का दमन करनेवाले तथा कञ्चन और कामिनी के त्यागी को यति कहते हैं ॥

बतलाकर ही उसी बात का विधान लिख देते हैं, अथवा चार प्रमाणों में से एक भी प्रमाण जिस शास्त्र के वचनों में नहीं मिलता हो वह भी माननीय नहीं हो सकता है, वे चार प्रमाण न्यायशास्त्र में इस प्रकार बतलाये हैं-नेत्र आदि इन्द्रियों से साक्षात् वस्तु के ग्रहण को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, लिंग के द्वारा लिङ्गी के ज्ञान को अनुमान प्रमाण कहते हैं-जैसे धूम को देख कर पर्वत में अग्नि का ज्ञान होना आदि, तीसरा उपमान प्रमाण है-इस को सादृश्यज्ञान भी कहते हैं, चौथा शब्द प्रमाण है अर्थात् आप्त पुरुष का कहा हुआ जो वाक्य है उस को शब्द प्रमाण तथा आगम प्रमाण भी कहते हैं। परन्तु यहां पर यह भी जान लेना चाहिये कि-आप्तवाक्य अथवा आगम प्रमाण वही हो सकता है जो वाक्य रागद्वेष से रहित सर्वज्ञ का कथित है और जिस में किसी का भी पक्षपात तथा स्वार्थसिद्धि न हो और जिस में मुक्ति के यथार्थ स्वरूप का वर्णन किया गया हो, ऐसे कथन से युक्त केवल सूत्रग्रन्थ हैं, इस लिये वे ही बुद्धिमानों के मानने योग्य हैं, यह धर्म की प्रथम परीक्षा कही गई ॥

दूसरे प्रकार से शील के द्वारा धर्म की परीक्षा की जाती है—शील आचार को कहते हैं, उस (शील) के द्रव्य और भाव के द्वारा दो भेद हैं—द्रव्य के द्वारा शील उस को कहते हैं कि—ऊपर की शुद्धि रखना तथा पांचों इन्द्रियों को और क्रोध आदि (क्रोध, मान, माया और लोभ) को जीतना, इस को भावशील कहते हैं, इस लिये दोनों प्रकार के शील से युक्त आचार्य जिस धर्म के उपदेशक और गुरु हों तथा कञ्चन और कामिनी के त्यागी हों उन को श्रेष्ठ समझना चाहिये और उन्हीं के वाक्य पर श्रद्धा रखनी चाहिये किन्तु—गुरु नाम धरा के अथवा देव और ईश्वर नाम धरा के जो दासी अथवा वेश्या आदि के भोगी हों तो न तो उन को देव और गुरु समझना चाहिये और न उन के वाक्य पर श्रद्धा करनी चाहिये, इसी प्रकार जिन शास्त्रों में ब्रह्मचर्य से रहित पुरुषों को देव अथवा गुरु लिखा हो—उन को भी कुशास्त्र समझना चाहिये और उन के वाक्यों पर श्रद्धा नहीं रखनी चाहिये, यह धर्म की दूसरी परीक्षा कही गई ॥

धर्म की तीसरी परीक्षा तप के द्वारा की जाती है—वह तप मुख्यतया बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है—फिर उस (तप) के बारह भेद कहे हैं—अर्थात् छः प्रकार का बाह्य (बाहरी) और छः प्रकार का आभ्यन्तर (भीतरी) तप है, बाह्य तप के छः भेद—अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश और संलीनता हैं। अब इन का विशेष स्वरूप इस प्रकार से समझना चाहिये:—

१—जिस में आहार का त्याग अर्थात् उपवास किया जावे, वह अनशन तप कहलाता है।

१—प्रत्यक्ष आदि चारों प्रमाणों का वर्णन न्यायदर्शन आदि ग्रन्थों में देखो ॥

२—एक, दो अथवा तीन ग्रास भूख से कम खाना, इस को ऊनोदरी तप कहते हैं।

३—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव विषयसम्बन्धी अभिग्रह (नियम) रखना, इस को वृत्तिसंक्षेप तप कहते हैं—जैसे-श्री महावीर स्वामी का चतुर्विध अभिग्रह चन्दनबाला ने पूर्ण किया था।[1]

४—रस अर्थात् दूध, दही, घृत, तैल, मीठा और पक्कान्न आदि सब सरस वस्तुओं का त्याग करना, इस को रसत्याग तप कहते हैं।

५—शरीर के द्वारा वीरासन और दण्डासन आदि अनेक प्रकार के कष्टों के सहन करने को कायक्लेश तप कहते हैं।

६—पांचों इन्द्रियों को अपने २ विषय से रोकने को संलीनता तप कहते हैं।

आभ्यन्तर तप के छः भेद ये हैं कि—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और उत्सर्ग, इन का विशेष स्वरूप इस प्रकार से जानना चाहिये:—

१—जो पाप पूर्व किये हैं उन को फिर न करने के लिये प्रतिज्ञा करना तथा उन पूर्वकृत अपने पापों को योग्य गुरु के सामने कह कर उन की निवृत्ति के लिये गुरु के समीप उस की आज्ञा के अनुसार दण्ड का ग्रहण करना, इस को प्रायश्चित्त तप कहते हैं।

२—अपने से गुणों में अधिक पुरुष के विनय करने को विनय तप कहते हैं।

३—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी और दुःखी पुरुषों को अन्न लाकर देना तथा उन को विश्राम (आराम) देना, इस को वैयावृत्त्य तप कहते हैं।

४—आप पढ़ना और दूसरों को पढ़ाना, संशय उत्पन्न होने पर गुरु से पूंछना, पढ़े हुए विषय को वारंवार याद करना और जो कुछ पढ़ा हो उस के तात्पर्य (आशय) को एकाग्र चित्त होकर विचारना तथा धर्मकथा करना, इस को स्वाध्याय[2] तप कहते हैं।

५—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये चार ध्यान कहलाते हैं, इनमें से पहिले दो ध्यानों[3] का त्याग कर पिछले दो ध्यानों को (धर्मध्यान और शुक्लध्यान को) अंगीकार करना, इस को ध्यान तप कहते हैं।

१—इस विषय का वर्णन कल्पसूत्र की टीका में देखो ॥

२—अच्छे प्रकार से अध्ययन करने को स्वाध्याय कहते हैं, क्योंकि यही स्वाध्याय शब्द का अर्थ है, वह अच्छे प्रकार से पढ़ना तब ही हो सकता है—जब कि ऊपर लिखी विधि के अनुसार किया जावे, क्योंकि महाभाष्य आदि ग्रन्थों में लिखा है कि—चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति—आगमकालेन, स्वाध्यायकालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहारकालेन च, इत्यादि, अर्थात् चार प्रकार से विद्या का लाभ ठीक रीति से होता है—गुरुमुख से अच्छे प्रकार से पढ़ना, फिर उस को एकान्त में बैठ कर विचारना, शंका रहने पर गुरु से पूंछना, फिर उस का स्वयं वर्णन करना तथा पीछे सभा आदि में उस का व्यवहार करना ॥

३—पहिले दो ध्यानों का त्याग इसलिये कहा गया है कि—ये परिणाम में अति हानिकारक होते हैं, देखो आर्तध्यानके ४ भेद हैं—प्रथम अनिष्टार्थसंयोगार्तध्यान अर्थात् इन्द्रियसुख के नाशक अनिष्ट (अप्रिय) शब्दादि विषयों के संयोग न होने की चिन्ता करना, दूसरा—इष्टवियोगार्तध्यान अर्थात् अपने सुखदायक

६—सर्व उपाधियों के परित्याग करने को उत्सर्ग तप कहते हैं ।

इस प्रकार से यह बारह प्रकार का तप है, इस तप का जिस धर्म में उपदेश किया गया हो वही धर्म मानने के योग्य समझना चाहिये तथा उक्त बारह तपों का जिस ने ग्रहण और धारण किया हो उसी को तपस्वी समझना चाहिये तथा उसी के वचन पर श्रद्धा रखनी चाहिये किन्तु जो पुरुष उपवास का तो नाम करे और दूध, मिठाई, मावा (खोया), घी, कन्द, फल और पक्वान्न आदि सुन्दर २ पदार्थों का घमसान करे (भोजन करे) अथवा दिनभर भूखा रहकर रात्रि में उत्तमोत्तम पदार्थों का भोजन करे—उस को तपस्वी नहीं समझना चाहिये क्योंकि—देखो ! बुद्धिमानों के सोचने की यह बात है कि—सूर्य इस जगत् का नेत्ररूप है क्योंकि सब ही उसी के प्रकाश से सब पदार्थों को देखते हैं और इसी महत्त्व को विचार कर लोग उस को नारायण तथा ईश्वरस्वरूप मानते हैं, फिर उसी के अस्त होने पर भोजन करना और उस को व्रत अर्थात् तप मानना कदापि योग्य नहीं है, इसी प्रकार से तप के अन्य भेदों में भी वर्त्तमान में अनेक त्रुटियां पड़ रही हैं, जिन का निदर्शन फिर कभी समयानुसार किया जावेगा—यहां पर तो केवल यही समझ लेना चाहिये कि ये जो तप के बारह भेद कहे हैं–इन का जिस धर्म में पूर्णतया वर्णन हो और जिस धर्म में ये तप यथाविधि सेवन किये जाते हों–वही श्रेष्ठ धर्म है, यह धर्म की तीसरी परीक्षा कही गई ।

धर्म की चौथी परीक्षा दया के द्वारा की जाती है—एकेन्द्रिय जीव से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों को अपने समान जानना तथा उन को किसी भी प्रकार का क्लेश न पहुंचाना, इसी का नाम दया है और यही पूर्णरूप से (वीसं विश्वा) दया कहलाती है—परन्तु इस पूर्णरूप दया का वर्त्ताव मनुष्यमात्र से होना अति कठिन है–किन्तु इस (पूर्णरूप) दयाका पालन तो संसार के त्यागी, ज्ञानवान् मुनिजन ही कर सकते हैं, हां केवल शुद्ध गृहस्थ पुरुष सवा विश्वामात्र दया का पालन कर सकता है, इस लिये समझदार गृहस्थ

द्रव्य तथा कुटुम्ब आदि इष्ट (प्रिय) पदार्थों के वियोग के न होनेकी चिन्ता करना, तीसरा—रोगनिदानार्त ध्यान अर्थात् रोग के कारण से डरना और उस को पास में न आने देने की चिन्ता करना, चौथा—अग्रशोचनामार्तध्यान—अर्थात् आगामि समय के लिये सुख और द्रव्य आदि की प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के मनोरथों की चिन्ता करना । एवं रौद्रध्यान के भी चार भेद हैं—प्रथम–हिंसानन्द रौद्रध्यान—अर्थात् अनेक प्रकार की जीवहिंसा कर के (परापकार वा गृहरचना आदि के द्वारा) मन में आनन्द मानना, दूसरा—मृषानन्दरौद्रध्यान—अर्थात् मिथ्या के द्वारा लोगों को धोखा देकर मन में आनंद मानना, तीसरा—चौर्यानन्द रौद्रध्यान—अर्थात् अनेक प्रकार की चोरी (परद्रव्य का अपहरण आदि) करके आनंद मानना, चौथा—संरक्षणानन्दरौद्रध्यान—अर्थात् अधर्मादि का भय न करके द्रव्यादि का संग्रह कर तथा उस की रक्षा कर मन में आनन्द मानना, इन का विशेष वर्णन जैनतत्त्वादर्श आदि ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

१—वीस विश्वा दया का वर्णन ओसवाल वंशावलि में आगे किया जायगा ॥

पुरुष को चाहिये कि—चलते, वैठते, और सोतेसमय में, वर्तन आदि के उठाने और रखने के समय में, खाने और पीने के समय में, रसोई आदि में, लकड़ी, थेपड़ी आदि ईंधन में, तथा तेल, छाछ, घी, दूध, पानी आदि में यथाशक्य (जहां तक हो सके) जीवों की रक्षा करे—किन्तु प्रमादपूर्वक (लापरवाही के साथ) किसी काम को न करे, दिन में दो वक्त जल को छाने तथा छानने के कपड़े में जो जीव निकलें—यदि वे जीव कुएं के हों तो उन को कुएं में ही गिरवा दे तथा वरसाती पानी के हों तो उन को वरसात के पानी में ही गिरवा दे, मुख्यतया व्यापार करनेवाले (हिलने चलनेवाले) जीव तीन प्रकार के होते हैं—जलचर, स्थलचर, और खचर, इन में से पानी में उत्पन्न होनेवाले और चलनेवालों को जलचर कहते हैं, पृथिवी पर अनेक रीति से उत्पन्न होने वाले और फिरने वाले चींटी से लेकर मनुष्य पर्यन्त जीवों को स्थलचर कहते हैं तथा आकाश में उड़नेवाले जीवों को खचर (आकाशचारी) कहते हैं, इन सव जीवों को कदापि सताना नहीं चाहिये, यही दया का स्वरूप है, इस प्रकार की दया का जिस धर्म में पूर्णतया उपदेश किया गया है तथा तप और शील आदि पूर्व कहे हुए गुणों का वर्णन किया गया हो उसी धर्म को वुद्धिमान् पुरुष को स्वीकार करना चाहिये—क्योंकि वही धर्म संसार से तारनेवाला हो सकता है क्योंकि—दान, शील, तप और दया से युक्त होने के कारण वही धर्म है—दूसरा धर्म नहीं है ॥ ९१ ॥

राजा के सव भृत्य को, गुण लक्षण निरधार ॥
जिन से शुभ यश ऊपजै, राजसम्पदा भार ॥ ९२ ॥

अव राजा के सव नौकर आदि के गुण और लक्षणों को कहते हैं—जिस से यश की प्राप्ति हो, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि हो तथा प्रजा सुखी हो ॥ ९२ ॥

आर्य वेद व्याकरण अरु, जप अरु होम सुनिष्ट ॥
ततपर आशिर्वाद नित, राजपुरोहित इष्ट ॥ ९३ ॥

चार आर्य वेद, चार लौकिक वेद, चार उपवेद और व्याकरणादि छः शास्त्र, इन चौदहों विद्याओं का जाननेवाला, जप, पूजा और हवन का करनेवाला तथा आशीर्वाद का वोलनेवाला, ऐसा राजा का पुरोहित होना चाहिये ॥ ९३ ॥

सोरठा—भलो न कवहुँ कुराज, मित्र कुमित्र भलो न गिन ॥
असती नारि अकाज, शिष्य कुशिष्य हु कव भलो ॥ ९४ ॥

१—क्योंकि जो जीव जिस स्थान के होते हैं वे उसी स्थान में पहुंचकर सुख पाते हैं ॥

२— धर्म शब्द का अर्थ प्रथम अध्याय के विज्ञप्ति प्रकरण में कर चुके हैं कि दुर्गति से वचाकर यह शुभ स्थानमें धारण करता है इसलिये इसे धर्म कहते हैं ॥

खोटे राजा का राज्य होने से राजा का न होना ही अच्छा है, दुष्ट मित्र की मित्रता होने से मित्र का न होना ही अच्छा है, कुभार्या के होने से स्त्री का न होना ही अच्छा है और खराब चेले के होने से चेले का न होना ही अच्छा है ॥ ९४ ॥

राज कुराज प्रजा न सुख, नहिं कुमित्र रति राग ॥
नहिँ कुदार सुख गेह को, नहिं कुशिष्य यशभाग ॥ ९५ ॥

दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा को सुख नहीं होता, कुमित्र से आनंद नहीं होता, कुभार्या से घर का सुख नहीं होता और आज्ञा को न माननेवाले शिष्य से गुरु को यश नहीं मिलता है ॥ ९५ ॥

इक इक बक अरु सिंघ से, कुक्कुट से पुनि चार ॥
पांच काग अरु श्वान षट्, खर त्रिहुँ शिक्षा धार ॥ ९६ ॥

बगुले और सिंह से एक एक गुण सीखना चाहिये, कुक्कुट (मुर्गे) से चार गुण सीखने चाहियें, कौए से पांच गुण सीखने चाहियें, कुत्ते से छः गुण सीखने चाहियें और गर्दभ (गदहे) से तीन गुण सीखने चाहियें ॥ ९६ ॥

छोटे मोटे काज को, साहस कर के यार ॥
जैसे तैसे साधिये, सिंघ सीख इक धार ॥ ९७ ॥

हे मित्र! सिंह से यह एक शिक्षा लेनी चाहिये कि—कोई भी छोटा या बड़ा काम करना हो उस में साहस (हिम्मत) रख कर जैसे बने वैसे उस काम को सिद्ध करना चाहिये, जैसे कि सिंह शिकार के समय अपनी पूर्ण शक्ति को काम में लाता है ॥ ९७ ॥

करि संयम इन्द्रीन को, पण्डित बकुल समान ॥
देश काल बल जानि के, कारज करैं सुजान ॥ ९८ ॥

बगुले से यह एक शिक्षा लेनी चाहिये कि—चतुर पुरुष अपनी इन्द्रियों को रोक कर बगुले के समान एकाग्र ध्यान कर तथा देश और काल का विचार कर अपने सब कार्यों को सिद्ध करे ॥ ९८ ॥

समर प्रबल अति रति प्रबल, नित प्रति उठत सवार ॥
खाय अशन सो बांटि के, ये कुक्कुट गुन चार ॥ ९९ ॥

लड़ाई में प्रबलता रखना (भागना नहीं), रति में अति प्रबलता रखना, प्रतिदिन तड़के उठना और भोजन बांट के खाना, ये चार गुण कुक्कुट से सीखने चाहियें ॥ ९९ ॥

१—गुणग्राही होना सत्पुरुषों का स्वाभाविक धर्म है—अतः इन बक आदि से इन गुणों के ग्रहण करने का उपदेश किया गया है ॥

मैथुन गुप्तरु धृष्टता, अवसर आलय देह ॥
अप्रमाद विश्वास तज, पांच काग गुण लेह ॥ १०० ॥

गुप्तरीति से (अति एकान्त में) स्त्री से भोग करना, धृष्टता (ढिठाई), अवसर पाकर घर बनाना, गाफिल न रहना और किसी का भी विश्वास[1] न करना, ये पांच गुण कौए से सीखने चाहिये ॥ १०० ॥

बहुभुक थोड़े तुष्टता, सुखनिद्रा झट जाग ॥
स्वामिभक्ति अरु शूरता, षट गुण श्वान सुपाग ॥ १०१ ॥

अधिक खानेवाला होकर भी थोड़ा ही मिलने पर सन्तोष करना, सुख से नींद लेना परन्तु तनिक आवाज होने पर तुरन्त सचेत हो जाना, स्वामि में भक्ति (जिस का अन्न जल खावे पीवे उस की भक्ति) रखना और अपने कर्तव्य में शूर वीर होना, ये छः गुण कुत्ते से सीखने चाहियें ॥ १०१ ॥

थाक्यो हू ढोवै सदा, शीत उष्ण नहिँ चीन्ह ॥
सदा सुखी मातो रहै, रासभशिक्षा तीन्ह ॥ १०२ ॥

अत्यन्त थक जाने पर भी बोझ को ढोते ही रहना (परिश्रम में लगे ही रहना) तथा गर्मी और सर्दी पर दृष्टि न देना और सदा सुखी व मस्त रहना, ये तीन गुण रासभ(गधे) से सीखने चाहियें ॥ १०२ ॥

जो नर धारण करत हैं, यह उत्तम गुण बीस ॥
होय विजय सब काम में, तिन्ह छलिया नहिँ दीस ॥ १०३ ॥

ये बीस गुण जो शिक्षा के कहे हैं—इन गुणों को जो मनुष्य धारण करेगा वह सब कामों में सदा विजयी होगा (उस के सब कार्य सिद्ध होंगे) और उस पुरुष को कोई भी नहीं छल सकेगा ॥ १०३ ॥

अर्थनाश मनताप को, अरु कुचरित निज गेहु ॥
नीच वचन अपमान ये, धीर प्रकाशि न देहु ॥ १०४ ॥

धन का नाश, मन का दुःख (फिक्र)[2], अपने घर के खोटे चरित्र, नीच का कहा हुआ वचन और अपमान, इतनी बातों को बुद्धिमान् पुरुष कभी प्रकाशित[3] न करे॥१०४॥

धन अरु धान्य प्रयोग में, विद्या संग्रह कार ॥
आहाररु व्यवहार में, लज्जा अवस निवार ॥ १०५ ॥

१—क्योंकि नीतिशास्त्र में किसी का भी विश्वास न करने का उपदेश दिया गया है, देखो पिछला ६९ वां दोहा ॥ २—अर्थात् चिन्ता को अपने पास न आने देना, क्योंकि चिन्ता अत्यन्त दुःखदायिनी होती है ॥ ३—क्योंकि इन बातों को प्रकाशित करने से मनुष्य का उलटा उपहास होता है तथा लघुता प्रकट होती है ॥

धन और धान्य का सञ्चय करने के समय, विद्या सीखने के समय, भोजन करने के समय और देन लेन करने के समय मनुष्य को लज्जा अवश्य त्याग देनी चाहिये ॥१०५॥

सन्तोषामृत तृप्त को, होत जु शान्ती सुक्ख ॥
सो धनलोभी को कहां, इत उत धावत दुक्ख ॥ १०६ ॥

सन्तोष रूप अमृत से तृप्त हुए पुरुष को जो शान्ति और सुख होता है वह धन के लोभी को कहां से हो सकता है-किन्तु धन के लोभी को तो लोभवश इधर उधर दौड़ने से दुःख ही होता है ॥ १०६ ॥

तीन थान सन्तोष कर, धन भोजन अरु दार ॥
तीन सँतोष न कीजिये, दान पठन तपचार ॥ १०७ ॥

मनुष्य को तीन स्थानों में सन्तोष रखना चाहिये—अपनी स्त्री में, भोजन में और धन में, किन्तु तीन स्थानों में सन्तोष नहीं रखना चाहिये—सुपात्रों को दान देने में, विद्याध्ययन करने में और तप करने में ॥ १०७ ॥

पग न लगावे अग्नि के, गुरु ब्राह्मण अरु गाय ॥
और कुमारी बाल शिशु, विद्वज्जन चित लाय ॥ १०८ ॥

अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कुमारी कन्या, छोटा बालक और विद्यावान्, इन के जान बूझकर पैर नहीं लगाना चाहिये ॥ १०८ ॥

हाथी हाथ हजार तज, घोड़ा से शत भाग ॥
शृंगि पशुन दश हाथ तज, दुर्जन ग्रामहिं त्याग ॥ १०९ ॥

हाथी से हजार हाथ, घोड़े से सौ हाथ, बैल और गाय आदि सींग वाले जानवरों से दश हाथ दूर रहना चाहिये तथा दुष्ट पुरुष जहां रहता हो उस ग्राम को ही छोड़ देना चाहिये ॥ १०९ ॥

लोभिहिँ धन से वश करै, अभिमानिहिँ कर जोर ॥
मूर्ख चित्त अनुवृत्ति करि, पण्डित सत के जोर ॥ ११० ॥

लोभी को धन से, अभिमानी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को उस के कथन के अनुसार चलकर और पण्डित पुरुष को यथार्थता (सच्चाई) से वश में करना चाहिये ॥ ११० ॥

१—क्योंकि इन कामों में लज्जा का त्याग न करने से हानि होती है तथा पीछे पछताना पड़ता है ॥
२—क्योंकि दान अध्ययन और तप में सन्तोष रखने से अर्थात् थोड़े ही के द्वारा अपने को कृतार्थ समझ लेने से मनुष्य आगामी में अपनी उन्नति नहीं कर सकता है ॥ ३—इन में से कई तो साधुवृत्ति वाले होने से तथा कई उपकारी होने से पूज्य हैं अतः इन के निकृष्ट अंग पैर के लगाने का निषेध किया गया है ॥
४—इस बात को अवश्य याद रखना चाहिये अर्थात् मार्ग में हाथी, घोड़ा, बैल और ऊंट आदि जानवर खड़े हों तो उन से दूर होकर निकलना चाहिये क्योंकि यदि इस में प्रमाद (गफलत) किया जावेगा तो कभी न कभी अवश्य दुःख उठाना पड़ेगा ॥

बलवन्तहिँ अनुकूल ह्वै, निबलहिँ ह्वै प्रतिकूल ॥
वश कर पुनि निज सम रिपुहिँ, शक्ति विनय ही मूल ॥ १११ ॥

बलवान् शत्रु को उस के अनुकूल होकर वश में करे, निर्बल शत्रु को उस के प्रतिकूल होकर वश में करे और अपने बराबर के शत्रु को युद्ध करके अथवा विनय करके वश में करे ॥ १११ ॥

जिन जिन को जो भाव है, तिन तिन को हित जान ॥
मन में घुसि निज वश करै, नहिँ उपाय वस आन ॥ ११२ ॥

जिस २ पुरुष का जो २ भाव है (जिस जिस पुरुष को जो २ वस्तु अच्छी लगती है) उस २ पुरुष के उसी २ भाव को तथा हित को जानकर उस के मन में घुस कर उस को वश में करना चाहिये, क्योंकि इस के सिवाय वश में करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ ११२ ॥

अतिहिँ सरल नहिँ हूजिये, जाकर वन में देख ॥
सरल तरू तहँ छिदत हैं, बांके तजै विशेख ॥ ११३ ॥

मनुष्य को अत्यन्त सीधा भी नहीं हो जाना चाहिये—किन्तु कुछ टेढ़ापन भी रखना चाहिये, क्योंकि—देखो ! जंगल में सीधे वृक्षों को लोग काट ले जाते हैं और टेढ़ों को नहीं काटते हैं ॥ ११३ ॥

जिनके घर धन तिनहिँ के, मित्ररु बान्धव लोग ॥
जिन के धन सोई पुरुष, जीवन ताको योग ॥ ११४ ॥

जिस के पास धन है उसी के सब मित्र होते हैं, जिस के पास धन है उसी के सब भाई बन्धु होते हैं, जिस के पास धन हैं वही संसार में मनुष्य गिना जाता है और जिस के पास धन है उसी का संसार में जीना योग्य है ॥ ११४ ॥

मित्र दार सुत सुहृद हू, निरधन को तज देत ॥
पुनि धन लखि आश्रित हुवैं, धन बान्धव करि देत ॥ ११५ ॥

जिस के पास धन नहीं है उस पुरुष को मित्र, स्त्री, पुत्र और भाई बन्धु भी छोड़ देते हैं और धन होने पर वे ही सब आकर इकट्ठे होकर उस के आश्रित हो जाते हैं, इस से सिद्ध है कि—जगत् में धन ही सब को बान्धव बना देता है ॥ ११५ ॥

अर्थहीन दुःखित पुरुष, अल्प बुद्धि को गेह ॥
तासु क्रिया सब छिन्न हों, ग्रीष्म कुनदि जल जेह ॥ ११६ ॥

१—क्योंकि बलवान् शत्रु प्रतिकूलता से (लड़ाई आदि के द्वारा) वश में नहीं किया जा सकता है ॥

२—गुसांई तुलसीदास जी ने सत्य कहा है कि—"टेढ़ जानि शंका सब काहू । वक्र चन्द्र जिमि ग्रसै न राहू" ॥ अर्थात् टेढ़ा जानकर सब भय मानते हैं-जैसे राहु भी टेढ़े चन्द्रमा को नहीं ग्रसता है ॥

धनहीन पुरुष सदा दुःखी ही रहता है और सब लोग उस को अल्पबुद्धि का घर (मूर्ख) समझते हैं तथा धनहीन पुरुष का किया हुआ कोई भी काम सिद्ध नहीं होता है—किन्तु उस के सब काम नष्ट हो जाते हैं-जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटी २ नदियां सूख जाती हैं ॥ ११६ ॥

धनी सबहि तिय जीत ही, सभा जु वचन विशाल ॥
उद्यमि लक्ष्मिहिँ जीतही, साधु सुवाक्य रसाल ॥ ११७ ॥

धनवान् पुरुष स्त्रियों को जीत लेता है, वचनों की चतुराईवाला पुरुष सभा को जीत लेता है, उद्यम करने वाला पुरुष लक्ष्मी को जीत लेता है और मधुर वचन बोलने वाला पुरुष साधु जनों को जीत लेता है ॥ ११७ ॥

दीमक मधुमाखी छता, शुक्ल पक्ष शशि देख ॥
राजद्रव्य आहार ये, थोड़े होत विशेख ॥ ११८ ॥

दीमक (उदई), मधुमक्खी का छता, शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा, राजाओं का धन और आहार, ये पहिले थोड़े होकर भी पीछे वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ११८ ॥

धन संग्रह पथ चलन अरु, गिरि पर चढ़न सुजान ॥
धीरे धीरे होत सब, धर्म काम हू मान ॥ ११९ ॥

हे सुजान ! धन का संग्रह, मार्ग का चलना, पर्वत पर चढ़ना तथा धर्म और काम आदि का सेवन, ये सब कार्य धीरे धीरे ही होते[1] हैं ॥ ११९ ॥

अञ्जन क्षयहिँ विलोकि नित, दीमक वृद्धि विचार ॥
बन्ध्य दिवस नहिँ कीजिये, दान पठन हित कार ॥ १२० ॥

अंजन के क्षय और दीमक के सञ्चय को देखकर—मनुष्य को चाहिये कि—दान, पठन और अच्छे कार्यों के द्वारा दिन को सफल करे ॥ १२० ॥

क्रिया कष्ट करि साधु हो, विन क्षत होवै शूर ॥
मद्य पिये नारी सती, यह श्रद्धा तज दूर ॥ १२१ ॥

क्रियाकष्ट करके साधु वा महात्मा हो सकता है, विना घाव के भी शूर वीर हो

१—इस दोहे का सारांश यही है-कि बुद्धिमान् पुरुष को सब कार्य विचार कर धीरे धीरे ही करने चाहियें-क्योंकि धनसंग्रह तथा धर्मोपार्जन आदि कार्य एकदम नहीं हो सकते हैं ॥

२—देखिये अंजन नेत्र में ज़रा सा डाला जाता है लेकिन प्रतिदिन उस का थोड़ा २ खर्च होने से पहाड़ों के पहाड़ नेत्रों में समा जाते हैं-इसी प्रकार दीमक (जंतुविशेष) थोड़ा २ वल्मीक का संग्रह करता है तो भी जमा होते २ वह बहुत बड़ा वल्मीक बन जाता है—इसी बात को सोचकर मनुष्य को प्रतिदिन यथाशक्ति दान, अध्ययन और शुभ कार्य करना चाहिये-क्योंकि उक्त प्रकार से थोड़ा २ करने पर भी कालान्तर में उन का बहुत बड़ा फल दीख पड़ेगा ॥

सकता है तथा मद्य पीनेवाली स्त्री भी सती हो सकती है, इस श्रद्धा को दूर ही त्याग देना चाहिये ॥ १२१ ॥

नेत्र कुटिल जो नारि है, कष्ट कलह से प्यार ॥
वचन भड़कि उत्तर करै, जरा वहै निरधार ॥ १२२ ॥

खराब नेत्रवाली, पापिनी, कलह करने वाली और क्रोध में भर कर पीछा जवाब देने वाली जो स्त्री है–उसी को जरा अर्थात् बुढ़ापा समझना चाहिये किन्तु बुढ़ापे की अवस्था को बुढ़ापा नहीं समझना चाहिये ॥ १२२ ॥

जो नारी शुचि चतुर अरु, स्वामी के अनुसार ॥
नित्य मधुर बोलै सरस, लक्ष्मी सोइ निहार ॥ १२३ ॥

जो स्त्री पवित्र, चतुर, पति की आज्ञा में चलने वाली और नित्य रसीले मीठे वचन बोलने वाली है, वही लक्ष्मी है दूसरी कोई लक्ष्मी नहीं है ॥ १२३ ॥

घर कारज चित दै करै, पति समुझै जो प्रान ॥
सो नारी जग धन्य है, सुनियो परम सुजान ॥ १२४ ॥

हे परम चतुर पुरुषो ! सुनो, जो स्त्री घर का काम चित्त लगाकर करे और पति को प्राणों के समान प्रिय समझे–वही स्त्री जगत् में धन्य है ॥ १२४ ॥

भले वंश की धनवती, चतुर पुरुष की नार ॥
इतने हुँ पर व्यभिचारिणी, जीवन वृथा विचार ॥ १२५ ॥

भले वंश की, धनवती और चतुर पुरुष की स्त्री होकर भी जो स्त्री पर पुरुष से स्नेह करती है–उस का जीवन संसार में वृथा ही है ॥ १२५ ॥

लिखी पढ़ी अरु धर्मवित, पतिसेवा में लीन ॥
अल्प सँतोषिनि यश सहित, नारिहिँ लक्ष्मी चीन ॥ १२६ ॥

विद्या पढ़ी हुई, धर्म के तत्व को समझने वाली, पति की सेवा में तत्पर रहने वाली, जैसा अन्न वस्त्र मिल जाय उसी में सन्तोष रखने वाली तथा संसार में जिस का यश प्रसिद्ध हो, उसी स्त्री को लक्ष्मी जानना चाहिये, दूसरी को नहीं ॥ १२६ ॥

१—अर्थात् ज्ञान आदि के विना केवल क्रियाकष्ट कर के साधु नहीं हो सकता है, जिस के लड़ाई में कभी घाव आदि नहीं हुआ वह शूर नहीं हो सकता है (अर्थात् जो लड़ाई में कभी नहीं गया), मद्य पीने वाली स्त्री सती नहीं हो सकती है—क्योंकि जो सती स्त्री होगी वह दोषों के मूलकारण मद्य को पियेगी ही क्यों ? इसलिये केवल क्रियाकष्ट करने वाले को साधु, घावरहित पुरुष को शूर वीर तथा मद्य पीने वाली स्त्री को सती समझना केवल भ्रम मात्र है ॥ २—तात्पर्य यह है कि ऐसी कलहकारिणी स्त्री के द्वारा शोक और चिन्ता पुरुष को उत्पन्न हो जाती है और वह (शोक व चिन्ता) बुढ़ापे के समान शरीर का शोषण कर देती है ॥ ३—क्योंकि सब उत्तम सामग्री से युक्त होकर भी जो मूर्खता से अपने चित्त को चलायमान करे उस का जीवन वृथा ही है ॥

निरजर द्विज अरु सतपुरुष, खुशी होत सतभाव ॥
अपर खान अरु पान से, पण्डित वाक्य प्रभाव ॥ १२७ ॥

देवता, ब्राह्मण और सत्पुरुष, ये तो भावभक्ति से प्रसन्न होते हैं, दूसरे मनुष्य खान पान से प्रसन्न होते हैं और पण्डित पुरुष वाणी के प्रभाव से प्रसन्न होते हैं ॥ १२७ ॥

अग्नि तृप्ति नहिँ काष्ठ से, उदधि नदी के वारि ॥
काल तृप्ति नहिँ जीव से, नर से तृप्ति न नारि ॥ १२८ ॥

अग्नि काष्ठ से तृप्त नहीं होती, नदियों के जल से समुद्र तृप्त नहीं होता, काल जीवों के खाने से तृप्त नहीं होता, इसी प्रकार से स्त्रियां[1] पुरुषों से तृप्त नहीं होती हैं ॥ १२८ ॥

गज को टूट्यो युद्ध में, शोभ लहत जिमि दन्त ॥
पण्डित दारिद दूर करि, त्यों सज्जन धनवन्त ॥ १२९ ॥

जैसे बड़े युद्ध में टूटा हुआ हाथियों का दांत अच्छा लगता है—उसी प्रकार यदि कोई सत्पुरुष किसी पण्डित (विद्वान् पुरुष) की दरिद्रता खोने में अपना धन खर्च करे तो संसार में उस की शोभा होती है ॥ १२९ ॥

सुत विन घर सूनो कह्यो, विना वन्धुजन देश ॥
मूरख को हिरदो समझ, निरधन जगत अशेष ॥ १३० ॥

लड़के के विना घर सूना है, वन्धु जनों के विना देश सूना है, मूर्ख का हृदय सूना है और दरिद्र (निर्धन) पुरुष के लिये सब जगत् ही सूना है ॥ १३० ॥

नारिकेल आकार नर, दीसैं विरले मांय ॥
वदरीफल आकार वहु, ऊपर मीठे होंय ॥ १३१ ॥

नारियेल के समान[2] आकार वाले सत्पुरुष संसार में थोड़े ही दीखते हैं परन्तु बेरे[3] के समान आकार वाले वहुत से पुरुष देखे जाते हैं जो केवल ऊपर ही मीठे होते हैं ॥ १३१ ॥

जिन के सुत पण्डित नहीं, नहीं भक्त निकलङ्क ॥
अन्धकार कुल जानिये, जिमि निशि विना मयङ्क ॥ १३२ ॥

जिस का पुत्र न तो पण्डित है, न भक्ति करने वाला है और न निष्कलंक (कलंक-

---

१—केवल वे स्त्रियां समझनी चाहियें जो कि चित्त को स्थिर न रखकर कुमार्ग में प्रवृत्त हो गई हैं क्योंकि इसी आर्यदेश में अनेक वीरांगना परम सती, साध्वी तथा पतिप्राणा हो चुकी हैं ॥

२—नारियल के समान आकार वाले अर्थात् ऊपर से तो रूक्ष परन्तु भीतर से उपकारक, जैसे कि नारियल ऊपर से खराव होता है परन्तु अन्दर से उत्तम गिरी देता है ॥

३—वेर के समान आकार वाले अर्थात् ऊपर से स्निग्ध (चिकने चुपड़े) परन्तु भीतर से कुछ नहीं, जैसे कि वेर ऊपर से चिकना होता है परन्तु अन्दर केवल नीरस गुठली निकलती है ॥

रहित) ही है, उस के कुल में अंधेरा ही जानना चाहिये, जैसे चन्द्रमा के विना रात्रि में अंधेरा रहता है ॥ १३२ ॥

निशि दीपक शशि जानिये, रवि दिन दीपक जान ॥
तीन भुवन दीपक धरम, कुल दीपक सुत मान ॥ १३३ ॥

रात्रि का दीपक चन्द्रमा है, दिन का दीपक सूर्य है, तीनों लोकों का दीपक धर्म है और कुल का दीपक सपूत लड़का है ॥ १३३ ॥

तृष्णा खानि अपार है, अर्णव जिमि गम्भीर ॥
सहस यतन हूँ नहिँ भरै, सिन्धु यथा बहुनीर ॥ १३४ ॥

यह आशा (तृष्णा) की खान अपार है तथा समुद्र के समान अति गम्भीर है, यह (तृष्णा की खान) सहस्रों यत्नों से भी पूरी नहीं होती है, जैसे-समुद्र बहुत जल से भी पूर्ण नहीं होता है ॥ १३४ ॥

जिहि जीवन जीवैं इते, मित्ररु बान्धव लोय ॥
ताको जीवन सफल जग, उदर भरै नहिँ कोय ॥ १३५ ॥

जिस के जीवन से मित्र और बांधव आदि जीते हैं-संसार में उसी पुरुष का जीना सफल है और यों तो अपने ही पेट को कौन नहीं भरता हे ॥ १३५ ॥

भोजन वहि मुनि शेष जो, पाप हीन बुध जान ॥
पीछेउ हितकर मित्र सो, धर्म दम्भ विन मान ॥ १३६ ॥

मुनि (साधु) को देकर जो शेष वचे वही भोजन है (और तो शरीर को भाड़ा देना मात्र है), जो पापकर्म नहीं करता है वही पण्डित है, जो पीछे भी भलाई करने वाला है वही मित्र है और कपट के विना जो किया जावे वही धर्म है ॥ १३६ ॥

अवसर रिपु से सन्धि हो, अवसर मित्र विरोध ॥
कालछेप पण्डित करै, कारज कारण सोध ॥ १३७ ॥

समय पाकर शत्रु से भी मित्रता हो जाती है और समय पाकर मित्र से भी शत्रुता (विरोध) हो जाती है, इस लिये पण्डित (बुद्धिमान्) पुरुष कारण के विना कार्य का न होना विचार[3] अपना कालक्षेप (निर्वाह) करता है ॥ १३७ ॥

१—क्योंकि मूर्ख और भक्तिरहित पुत्र से कुल को कोई भी लाभ नहीं पहुंच सकता है ॥

२—क्योंकि ज्यों २ धनादि मिलता जाता है त्यों २ तृष्णा और भी बढ़ती जाती है ॥

३—कार्य कारण के विषय में यह समझना चाहिये कि—पांच पदार्थ ही जगत् के कर्त्ता हैं, उन्हीं को ईश्वरवत् मानकर बुद्धिमान् पुरुष अपना निर्वाह करता है—वे पांच पदार्थ ये हैं—काल अर्थात् समय, वस्तुओं का स्वभाव, होनहार (नियति), जीवों का पूर्वकृत कर्म और जीवों का उद्यम, अब देखिये कि उत्पत्ति और विनाश, संसार की स्थिति और गमन आदि सब व्यवहार इन्हीं पांचों कारणों से होता है, सृष्टि अनादि है, किन्तु जो लोग कर्मरहित, निरञ्जन, निराकार और ज्ञानानन्द पूर्ण ब्रह्म को संसार का कर्त्ता

व्याधिसहित धन हीन अरु, जो नर है परदेश ॥
शोक तस पुनि सुहृद जन, दर्शन औषध भेष ॥ १३८ ॥

रोगी, निर्धन, परदेश में रहने वाले और शोक से दुःखित पुरुषों के लिये प्रिय मित्र का दर्शन होना औषधरूप है ॥ १३८ ॥

घोड़ा हाथी लोह मय, वस्त्र काष्ठ पाषान ॥
नारी नर अरु नीर में, अति अन्तर पहिचान ॥ १३९ ॥

घोड़ा, हाथी, लोहे से बने पदार्थ, वस्त्र, काठ, पत्थर, स्त्री, पुरुष और पानी, इन का अन्तर एक बड़ा ही अन्तर है ॥ १३९ ॥

तिय कुलीन अरु नरपती, मन्त्री चाकर लोग ॥
थान भ्रष्ट शोभैं नहीं, दन्त केश नख भोग ॥ १४० ॥

कुलवती स्त्री, राजा, मन्त्री (प्रधान), नौकर लोग, दाँत, केश, नख, भोग और मनुष्य, ये सब अपने स्थान पर ही शोभा देते हैं किन्तु अपने स्थान से भ्रष्ट होकर शोभा नहीं देते हैं ॥ १४० ॥

पूगीफल अरु पत्र अहि, राजहंस तिमि वाजि ॥
पण्डित गज अरु सिंह ये, थान भ्रष्ट हू राजि ॥ १४१ ॥

सुपारी, नागरवेल के पान, राजहंस, घोड़ा, सिंह, हाथी और पण्डित, ये सब अपने स्थान से भ्रष्ट होकर भी शोभा पाते हैं ॥ १४१ ॥

जो निश्चय मारग गहै, रहै ब्रह्मगुण लीन ॥
ब्रह्म दृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन ॥ १४२ ॥

जो निश्चयमार्ग[3] का ग्रहण करे, ब्रह्म के गुणों में लीन (तत्पर) हो तथा ब्रह्मदृष्टि के सुख का अनुभव करे, उस को चतुर ब्राह्मण समझना चाहिये ॥ १४२ ॥

मानते हैं वह उन का भ्रम है और यथार्थ तत्त्व को विना विचारे वे ऐसा मानते हैं—सृष्टिविषयक कर्त्ता के विषयमें विशेष वर्णन देखने की इच्छा हो तो वृहत्खरतर गच्छीय महामुनि श्री चिदानन्द जी महाराज (जो कि महात्यागी वैरागी ध्यानी जैन श्वेताम्बर संघ में एक नामी पुरुष हो गये हैं) के वनाये हुए स्याद्वादानुभव रत्नाकर नामक मुद्रित ग्रन्थ में देखो, उक्त मुनिजी ने पक्षपातरहित होकर इस ग्रन्थ को वनाया है. अतः यह ग्रन्थ अत्यन्त माननीय है, यद्यपि यह ग्रन्थ खण्डन मण्डन का है तथापि अत्यन्त पक्षपातरहित है तथा इस ग्रन्थ में वादी के माने हुए मत से ही उस का खण्डन दिखाया गया है, मेरी सम्मति में ऐसा उपकारी ग्रन्थ उक्त विषय में जैन ग्रन्थों में दूसरा कोई नहीं छपा है, इस लिये प्रत्येक जैन भ्राता को योग्य है कि, इस ग्रन्थ की एक पुस्तक मंगाकर अवश्य पढ़ें, इस ग्रन्थ की कुछ प्रतियां हमारे कार्यालय में भी हैं यदि किसी सुजन को आवश्यकता हो तो भेजी जा सकती है—इस का मूल्य केवल २॥ रु० मात्र है ॥

१—इस का उदाहरण प्रत्यक्ष ही है ॥ २—इस का भी उदाहरण प्रत्यक्ष ही दीख पड़ता है ॥

३—अर्थात् व्यवहारमार्ग (व्यवहारनय) को छोड़कर निश्चयमार्ग (निश्चयनय) का ग्रहण करे, नय सात हैं—इन का विषय "नयपरिच्छेद" आदि ग्रन्थों में देखो ॥

जो निश्चय गुण जानि के, करै शुद्ध व्यवहार ॥
जीतै सेना मोह की, सो क्षत्री भुजभार ॥ १४३ ॥

जो निश्चय गुणों को जान कर, शुद्ध शुद्ध व्यवहार करै तथा मोह की सेना को जीत ले, वही बड़ी भुजावाला (बलिष्ठ) क्षत्रिय जानना चाहिये ॥ १४३ ॥

जो जानै व्यवहार नय, दृढ व्यवहारी होय ॥
शुभ करणी सों रमि रहै, वैश्य कहावै सोय ॥ १४४ ॥

जो व्यवहार नय को जानता हो, व्यवहार में दृढ हो तथा शुभ करणी (सुन्दर कर्मों) में रमण करता हो (तत्पर रहता हो) उसीको वैश्य कहना चाहिये ॥ १४४ ॥

जो मिथ्या तम आदरै, राग दोष की खान ॥
विनय विवेक कृतिहिं करै, शूद्र वर्ण सो जान ॥ १४५ ॥

जो मिथ्यातम का आदर करे, राग और दोष की खान हो तथा अपने कर्तव्य विनय को ही जानकर सब कार्य करे, उसी को शूद्र वर्ण जानना चाहिये ॥ १४५ ॥

सज्जन सुनियो कान दै, गृह आश्रम के बीच ॥
नीति न जानै जो पुरुष, करै काम वह नीच ॥ १४६ ॥
तत्व विचारै नीति को, जो नर चित्त लगाय ॥
तीन लोक की सम्पदा, अनायास वह पाय ॥ १४७ ॥

१—निश्चय गुणों को अर्थात् निश्चय नय के गुणों को ग्रहण करे ॥

२—क्योंकि मोह की सेना के काम क्रोध आदि योद्धाओं को जीतना अति कठिन है ॥

३—देखो १४२ वें दोहे का नोट। यह नयों का प्रकरण बहुत बड़ा है-इस वास्ते इस विषय में यहां नहीं लिखा गया है-किन्तु इस का विषय दूसरे ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

४—वैश्य को व्यवहार में सदा दृढ़ रहना चाहिये-तथा अपने वचन पर कायम रहना चाहिये-किन्तु लोगों का धन लेकर दिवाला नहीं निकाल देना चाहिये ॥

५—शुभ करणी में अर्थात् दान, परोपकार, पशुरक्षण, विद्यावृद्धि, साधुसेवा और धर्मव्यवहार में तत्पर रहना चाहिये ॥

६—मिथ्यातम शब्द का अर्थ अज्ञानान्धकार है-अर्थात् अज्ञानान्धकार से होनेवाले कार्यों का आदर करै-जैसे-क्रोध, मान, माया, लोभ और परोपकार आदि निकृष्ट कार्यों को अच्छा समझे-किन्तु ज्ञान-सम्बंधी कार्यों में श्रद्धा न रक्खे ॥

७—क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन वर्णों का विनय करना ही शूद्र का मुख्य कर्त्तव्य है-जैसा कि धर्मशास्त्र में लिखा है कि-"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥ एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ १ ॥" अर्थात् असूयारहित होकर तीन वर्णों की शुश्रूषा (सेवा और विनयादि) करना ही शूद्र का मुख्य कर्त्तव्य है ॥

८-ग्रन्थकर्ता के विनय के दोहे ॥ ९-विना परिश्रम ही ॥

शिशुलीला[1] मैं ने करी, छमौ मोहिँ सुज्ञान ॥
कविता जानौं मैं नहीं, नहिँ मोहिँ पिङ्गल[2] ज्ञान ॥ १४८ ॥
चाणक नीती सार गहि, कमलौ[3] रक्षक कीन ॥
नीतिसार दोहावली, त्रुटि सब छमहु प्रवीन ॥ १४९ ॥

यह द्वितीय अध्याय का चाणक्य नीतिसार दोहावलि नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दूसरा प्रकरण—सुभाषित रत्नावलि के दोहे ॥

उत्तम मध्यम अधम की, पाहँन[4] सिकता[5] तोय[6] ॥ प्रीति अनुक्रम[7] जानिये, वैर व्यतिक्रम[8] होय ॥१॥ रागी औगुण ना गिनै, यही जगत की चाल ॥ देखो सब ही श्याम को, कहत बाल सब लाल ॥ २ ॥ जो जाको गुन जानही, सो तिहि आदर देत ॥ कोकिल अम्बहि[9] लेत है, काग निबोली लेत ॥ ३ ॥ हलन चलन की शक्ति है, तब लौं उद्यम ठान ॥ अजगर ज्यों मृगपतिवदन[10], मृग न परत है आन ॥ ४ ॥ जाही तें कछु पाइये, करिये ताकी आस ॥ रीते सरवर[11] पै गये, कैसे बुझत पियास ॥ ५ ॥ देखो अवसर को भलो, जासों सुधरै काम ॥ खेती सूखे बरसिबो, घन[12] को कौनै काम ॥ ६ ॥ अपनी पहुँच विचारि के, करतब करिये दौड़ ॥ ते ते पाँव पसारिये, जेती लांबी सौड़[13] ॥ ७ ॥ कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों गैर[14] ॥ जैसे बसि सागर विषै, करत मगर सों वैर ॥ ८ ॥ पिशुन[15] छल्यो नर सुजन सों, करत विसास न चूक ॥ जैसे दाध्यो[16] दूध को, पियत छाछ कों फूक ॥ ९ ॥ प्राण तृषातुर[17] के रहैं, थोड़े हू जलपान ॥ पीछे जल भर सहस[18] घट, डारे मिलत न प्रान ॥ १० ॥ विद्या धन उद्यम विना, कहो जु पावै कौन ॥ विना डुलाये ना मिलै, ज्यों पंखे की पौन ॥ ११ ॥ बनती देखि बनाइये, परत न दीजै पीठ ॥ जैसी चलै बयार तब, तैसी दीजै पीठ ॥ १२ ॥ ओछे नर की प्रीति की, दीन्ही रीति बताय ॥ जैसे छीलर[19] ताल जल, घटत घटत घटि जाय ॥ १३ ॥ अन मिलती जोई करत, ताही को उपहास[20] ॥ जैसे जोगी जोग में, करत भोग की आस ॥ १४ ॥ बुरे लगत सिख[21] के वचन,

---

१-बाललीला अर्थात् बच्चों का खेल ॥ २-छन्द का एक ग्रन्थ है ॥ ३-श्रीपाल वा श्रीपालचन्द्र ॥ ४-पत्थर ॥ ५-रेत, बालू ॥ ६-जल ॥ ७-क्रमसे ॥ ८-उलटा ॥ ९-आम को ॥ १०-सिंह के मुख में ॥ ११-तालाव ॥ १२-मेघ ॥ १३-लिहाफ वा रजाई ॥ १४-विरोध ॥ १५-चुगुलखोर, निन्दक ॥ १६-जला हुआ ॥ १७-प्यास से व्याकुल ॥ १८-सहस्र अर्थात् हजार ॥ १९-कम गहिरा ॥ २०-हँसी, ठट्ठा ॥ २१-शिक्षा, नसीहत ॥

मनमें सोचहु आप ॥ कडुई औषध बिन पिये, मिटत न तन को ताप[1] ॥ १५ ॥ रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल ॥ सब ही जानत बढ़त है, वृक्ष बरावर बेल ॥ १६ ॥ उपकारी[2] उपकार[3] जग, सब सों करत प्रकास ॥ ज्यों कटु[4] मधुरे तरु[5] मलय[6], करत सुवासहि जास ॥ १७ ॥ करिये सुख को होत दुख, यह कहु कौन सयान ॥ वा सोने को जारिये, जासों टूटैं कान ॥ १८ ॥ नयना देत बताय सब, हिय[8] को हेत[9] अहेत[10] ॥ ज्यों नाई की आरसी, भली बुरी कहि देत ॥ १९ ॥ फेर न व्है है कपट सों, जो कीजै व्यौपार ॥ जैसे हांड़ी काठ की, चढ़ै न दूजी वार ॥ २० ॥ सुखदायी जो देत दुख, सो सब दिन को फेर ॥ शशि[11] शीतल संयोग में, तपैं[12] विरह[13] की वेर[14] ॥ २१ ॥ भले बुरे सब एकसे, जौ[15] लौं बोलत नाहिं ॥ जान परत है काक[16] पिक[17], ऋतु वसन्त[18] के माहिं ॥ २२ ॥ निसफल श्रोतों[19] मूढ़[20] यदि, वक्तो[21] वचन विलास ॥ हाव भाव ज्यों तीय[22] के, पति अन्धे के पास ॥ २३ ॥ कुल अरु गुण जाने विना, मान न कर मनुहार ॥ ठगत फिरत ठग जगत को, भेष भगत को धार ॥ २४ ॥ हित हू की कहिये न तिहिं, जो नर होय अबोध[23] ॥ ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाये क्रोध ॥ २५ ॥ मूरख को पोथी दई, बांचन को गुनगाथ ॥ जैसे निर्मल आरसी, दई अन्ध के हाथ ॥ २६ ॥ मधुर वचन से मिटत है, उत्तम जन अभिमान ॥ तनक शीत[24] जल से मिटै, जैसे दूध उफान ॥ २७ ॥ जिहिं से रक्षा होत है, हुवै उसी से घात[25] ॥ कहा करै कोऊ जतन, वाड़ काकड़ी खात ॥ २८ ॥ सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय ॥ पवन[26] जगावत आग कों, दीपहिं देत वुझाय ॥ २९ ॥ समय समुझि जो कीजिये, काम वही अभिराम[27] ॥ सिन्धव[28] मांग्यो जीमते, घोड़े को कह काम ॥ ३० ॥ जो जिहिं भावै[29] सो भलो, गुन को कछु न विचार ॥ तजि गजमुक्ता[30] भीलनी, पहिरत गुञ्जाहार[31] ॥ ३१ ॥ जासों चालै जीविका, करिये सो अभ्यास ॥ वेश्या पालै[32] शील तो, कैसे पूरै आस ॥ ३२ ॥ दुष्ट न छोड़ै दुष्टता, नाना शिक्षा देत ॥ धोये हूँ सौ वेर के, काजल होत न श्वेत[33] ॥ ३३ ॥ एक भले सब को भलो, देखो विशद[34] विवेक[35] ॥ जैसे सत[36] हरिचन्द के, उधरे जीव अनेक ॥ ३४ ॥ एक बुरे सब को बुरो, होत सबल[37] के कोप[38] ॥ औगुन अर्जुन के भयो, सब क्षत्रिन को लोप ॥ ३५ ॥

१–दुःख, ज्वर की पीड़ा ॥ २–भलाई करनेवाला ॥ ३ भलाई ॥ ४–कडुआ ॥ ५–वृक्ष ॥ ६–चन्दन ॥ ७–चतुराई ॥ ८–हृदय ॥ ९–भलाई ॥ १०–बुराई ॥ ११–चन्द्रमा ॥ १२–दुःख देता है ॥ १३–जुदाई ॥ १४–समय ॥ १५–तक ॥ १६–कौआ ॥ १७–कोयल ॥ १८–मौसम बहार ॥ १९–सुननेवाला ॥ २०–मूर्ख ॥ २१–बोलने वाला ॥ २२–स्त्री ॥ २३–अज्ञान, मूर्ख ॥ २४–ठंढा ॥ २५–पीड़ा, हानि ॥ २६–हवा ॥ २७–सुन्दर ॥ २८–घोड़ा तथा सधानोन ॥ २९ अच्छा लगता है ॥ ३०–हाथी के मोती ॥ ३१–घुंघुची (चिरमी) की माला ॥ ३२–सदाचार ॥ ३३–सफेद ॥ ३४–बड़ा, अच्छा ॥ ३५–ज्ञान ॥ ३६–सत्य हरिश्चन्द्र राजा, जिन्होंने राज्य आदि को छोड़कर भी सत्य को नहीं छोड़ा था ॥ ३७–बलवान्, जोरावर ॥ ३८–गुस्सा ॥

मान होत है गुनन तें, गुन विन मान न होय ॥ शुक[1] सारिक[2] राखैं सबै, काग न राखै कोय ॥ ३६ ॥ आडम्बर[3] तजि कीजियें, गुण संग्रह[4] चित चाँहि ॥ दूधरहित गउ नहिँ विकै, आनी घण्ट वजाँहि ॥ ३७ ॥ जैसे गुण दीन्हें दई[5], तैसो रूप निवन्ध ॥ ये दोऊ कहँ पाइये, सोनो और सुगन्ध ॥ ३८ ॥ अभिलाषी[6] इक वात के, तिन में होय विरोध[7] ॥ काज राज के राजसुत[8], लड़त भिड़त करि क्रोध ॥ ३९ ॥ नहिँ इलाज देख्यो सुन्यो, जासों मिटत सुभाव ॥ मधुपुट[9] कोटिक[10] देत हूँ, विष न तजत विषभाव[11] ॥ ४० ॥ प्रीति निवाहन कठिन है, समुझि कीजियो कोय ॥ भांग भखन है सुगम[12] पुनि, लहर कठिन ही होय ॥ ४१ ॥ देव सेव फल देत है, जाको जैसो भाव[13] ॥ जैसो मुख करि आरसी, देखै सोइ दिखाव ॥ ४२ ॥ कुल वल जैसो होय सो, तैसी करिये वात ॥ वनिक[14] पुत्र जानै कहा, गढ़[15] लेवे की घात ॥ ४३ ॥ जैसो वन्धन प्रेम को, तैसो वन्ध न और ॥ काठ[16] भेद समरत्थ हूँ, कमल न छेदै भौंर[17] ॥ ४४ ॥ अपनी अपनी गरज[18] सव, वोलत करत निहोर[19] ॥ विना गरज[20] वोलैं नहीं, गिरिवर[21] हूँ के मोर ॥ ४५ ॥ जो सव ही को देत है, दाता कहिये सोय ॥ जलधर[22] वरसत सम[23] विषम[24], थल[25] न विचारत कोय ॥ ४६ ॥ जो समुझै जिहिँ वात को, सो तिहिँ करै विचार ॥ रोग न जानै ज्योतिषी, वैद्य ग्रहन के चार[26] ॥ ४७ ॥ प्रकृति मिले मन मिलत है, अन मिल ते न मिलाय ॥ दूध दही से जमत है, कांजी से फटि जाय ॥ ४८ ॥ वात कहन की रीति में, है अन्तर[27] अधिकाय ॥ एक वचन रिस[28] ऊपजै, एक वचन से जाय ॥ ४९ ॥ एक वस्तु गुण होत हैं, भिन्न प्रकृति के भाय ॥ भैंटा[29] एक को पित करत, करत एक को वाय[30] ॥ ५० ॥ स्वारथ के सव ही सगे, विन स्वारथ कोइ नाहिँ ॥ सेवैं पंछी सरस[31] तरु[32], निरस[33] भये उड़ि जाहिँ ॥ ५१ ॥ सुख वीते दुख होत है, दुख वीते सुख होत ॥ दिवस[34] गये ज्यों निशि[35] उदित[36], निशि गत[37] दिवस उदोत[38] ॥ ५२ ॥ जो भाषै सोई सही, वड़े पुरुष की वान ॥ है अनंग[39] ताको कहैं, महारूप की खान ॥ ५३ ॥ पर घर कवहुँ न जाइये, गये घटत है जोत ॥ रविमंडल[40] में जात शशि[41], हीन[42] कला छवि होत ॥ ५४ ॥ उरही[43] से कोमल प्रकृति, सज्जन परम दयाल ॥ कौन सिखावत है कहो, राजहंस को चाल ॥ ५५ ॥ जनि[44] पण्डित विद्या तजहु, मूरख

१–तोता ॥ २–मैना ॥ ३–ढोंग ॥ ४–संचय ॥ ५–विधाता, ईश्वर ॥ ६–चाहनेवाले ॥ ७–वैर ॥ ८–राजपुत्र ॥ ९–शहद के पुट ॥ १०–करोड़ों ॥ ११–विषैलापन ॥ १२–सहज ॥ १३–श्रद्धा ॥ १४–वनिये का बेटा ॥ १५–किला ॥ १६–लकड़ी के काटने में समर्थ भी ॥ १७–भौंरा ॥ १८–मतलव ॥ १९–खुशामद ॥ २०–वादल का गरजना ॥ २१–श्रेष्ठ पर्वत ॥ २२–मेघ ॥ २३–चौरस ॥ २४–ऊंचा नींचा ॥ २५–स्थान ॥ २६–गति ॥ २७–फर्क ॥ २८–गुस्सा ॥ २९–बैंगन ॥ ३०–वादी ॥ ३१–हरा ॥ ३२–वृक्ष ॥ ३३–सूखा ॥ ३४–दिन ॥ ३५–रात्रि ॥ ३६–उदय होने पर ॥ ३७–वीतने पर ॥ ३८–उदय होता है ॥ ३९–कामदेव ॥ ४०–सूर्यमंडल ॥ ४१–चन्द्रमा ॥ ४२–रहित ॥ ४३–स्वभाव से ही ॥ ४४–मत ॥

धन अवरेख[1] ॥ कुलजा[2] शील न परिहरै[3], कुलटा[4] भूषन देख ॥ ५६ ॥ एक दशा निवहै नहीं, जनि[5] पछितावहु कोय ॥ रवि[6] हू की इक दिवस में, तीन अवस्था होय ॥ ५७ ॥ नर सम्पति दिन पाइके, अति मति करियो कोय ॥ दुर्योधन अति मान से, भयो निर्धन[7] कुल खोय ॥ ५८ ॥ जे चेतन[8] ते क्यों तजैं, जाको जासों मोह ॥ चुम्बक के पाछे लग्यो, फिरत अचेतन[9] लोह ॥ ५९ ॥ घटत वढ़त सम्पति विपति, गति अरहट की जोय[10] ॥ रीती[11] घटिका भरतु है, भरी सु रीती होय ॥ ६० ॥ उत्तम जन की होड़[12] करि, नीच न होत रसाल[13] ॥ कौवा कैसे चलि सकै, राजहंस की चाल ॥ ६१ ॥ उत्तम जन के सङ्ग में, सहजै ही सुख भासै[14] ॥ जैसे नृप [15]लावै अतर, लेत सभाजन वास[16] ॥ ६२ ॥ जो पावै अति ऊंच पद, ताको पतन[17] निदान[18] ॥ ज्यों तपि तपि मध्यान्ह[19] [20]लौं, अस्त होत है भान[21] ॥ ६३ ॥ मूरख गुण समुझै नहीं, तौ न गुणी में चूक ॥ कहा भयो दिन को विभौ[22], देख्यो जो न उलूक[23] ॥ ६४ ॥ विन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ कडुवे वैन[24] ॥ लात खाय पुचकारिये, होय दुधारू[25] धेन[26] ॥ ६५ ॥ सुजन तजहिँ नहिँ सुजनता, कीन्हे हूँ अपकार[27] ॥ ज्यों चन्दन छेदै तरु[28], सुरभित[29] करहि कुठार[30] ॥ ६६ ॥ दुष्ट न छांड़ै दुष्टता, पोषै राखै ओट ॥ सर्पहिँ कैसहुँ हित करौ, [31]चपै चलावै चोट ॥ ६७ ॥ होय बुराई से बुरो, यह कीन्हो निरधार[32] ॥ खाड़[33] [34]खनैगो और को, ताको कूप[35] तयार ॥ ६८ ॥ अति ही सरल[36] न हूजिये, देखो ज्यों वनराय ॥ सीधे सीधे छेदिये, [37]बांको तरु वचि जाय ॥ ६९ ॥ बहुतन को न विरोधिये, निवल जानि बलवान ॥ मिलि भखि[38] जाहिँ पिपीलिका[39], नागहिँ[40] नग[41] के मान[42] ॥ ७० ॥ बहुत निवल मिलि बल करैं, करैं जु चाहैं सोय ॥ तृनगण[43] की डोरी करै, हस्ति हुँ बन्धन होय ॥ ७१ ॥ सुजन कुसङ्गति दोष तें, सज्जनता न तजन्त[44] ॥ ज्यों भुजंगगण[45] संगहू, चन्दन विष न धरन्त ॥ ७२ ॥ पड़ि संकट[46] हू साधुजन[47], नेक न होत मलीन[48] ॥ ज्यों ज्यों कञ्चन[49] ताइये, त्यों त्यों निरमल वान ॥ ७३ ॥ कन कन जोरे मन जुरै, काढ़े निवरै[50] सोय ॥ बूंद बूंद ज्यों घट[51] भरै, टपकत रीतै सोय ॥ ७४ ॥ ऊंचे हु बैठे नहिँ [52]लहै,

---

१-देखो ॥ २-कुलीन स्त्री ॥ ३-छोड़ती है ॥ ४-व्यभिचारिणी स्त्री ॥ ५-मत ॥ ६-सूर्य ॥ ७-नष्ट हुआ ॥ ८-जानदार, समझदार ॥ ९-बेजान ॥ १०-देखो ॥ ११-खाली ॥ १२-बराबरी ॥ १३-उत्तम ॥ १४-मालूम होता है ॥ १५-लगाता है ॥ १६-गन्ध, खुशबू ॥ १७-गिरना ॥ १८-आखिरकार ॥ १९-दो पहर ॥ २०-तक ॥ २१-सूर्य ॥ २२-प्रकाश, रोशनी ॥ २३-उल्लू, घुग्घू ॥ २४-वचन ॥ २५-दूध देने वाली ॥ २६-गाय ॥ २७-बुराई ॥ २८-तो भी ॥ २९-सुगन्धित ॥ ३०-कुल्हाड़ा ॥ ३१-दबने पर ॥ ३२-निश्चय ॥ ३३-गड्ढा ॥ ३४-खोदेगा ॥ ३५-कुआ ॥ ३६-सीधा ॥ ३७-टेढ़ा ॥ ३८-खा जाती हैं ॥ ३९-चींटियां, कीड़ियां ॥ ४०-हाथी को ॥ ४१-पर्वत ॥ ४२-बराबर ॥ ४३-तिनकों का ढेर ॥ ४४ छोड़ते हैं ॥ ४५-सांपों का समूह ॥ ४६-दुःख ॥ ४७-अच्छे आदमी ॥ ४८-दुःखित ॥ ४९-सोना ॥ ५०-पूरा हो जाता है ॥ ५१-घड़ा ॥ ५२-पाता है ॥

गुण विन बड़पन कोय ॥ बैठ्यो देवल[1] शिखर[2] पर, वायस[3] गरुड़ न होय ॥ ७५ ॥ सांच झूंठ निरणय करै, नीतिनिपुण[4] जो होय ॥ राजहंस विन को करै, क्षीर[5] नीर[6] को दोय ॥ ७६ ॥ दोषहिँ को उमँहै[7] गहै, गुण न गहै खललोक[8] ॥ पिये रुधिर[9] पय[10] ना पियै, लगी पयोधर[11] जोंक ॥ ७७ ॥ भलो न होवै दुष्ट जन, भलो कहै जो कोय ॥ विष मधुरो मीठो लवण, कहे न मीठो होय ॥ ७८ ॥ एक उदर[12] एकहि समय, उपजत एक न होय ॥ जैसे कांटे बेर के, सीधे वांके दोय ॥ ७९ ॥ हरत देवता निवल अरु, दुर्वल ही के प्रान ॥ वाघ सिंह को छोड़ि के, लेत छाग[13] बलिदान ॥ ८० ॥ उद्यम कवहुँ न छोड़िये पर आशा के मोद[14] ॥ गागर कैसे फोरिये, उनयो[15] देखि पयोद[16] ॥ ८१ ॥ कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर ॥ समय पाय तरुवर फलै, केतक[17] सींचहु नीर ॥ ८२ ॥ जो पहिले कीजै यतन, सो पाछे फलदाय ॥ आग लगे खोदै कुआ, कैसे आग बुझाय ॥ ८३ ॥ क्यों कीजे ऐसो यतन, जासों काज न होय ॥ परवत पै खोदै कुआ, कैसे निकसै तोय[18] ॥८४॥ सेव्यो छोटो ही भलो, जासे गरज[19] सरोय[20] ॥ कीजै कहा समुद्र को, जासे प्यास न जाय ॥ ॥ ८५ ॥ उद्यम से सब मिलत है, विन उद्यम न मिलाहिँ ॥ सीधी अंगुली घी जम्यो, कबहूँ निकसत[21] नाहिँ ॥ ८६ ॥ कहिये वात प्रमाण की, जासों सुधरै काज ॥ फीको थोड़े लवण[22] से, अधिकहि खारो नाज ॥ ८७ ॥ कहै रसीली[23] वात सो, विगड़ी लेत सुधार ॥ सरस[24] लवण की दाल में, ज्यों नींबूरस डार ॥ ८८ ॥ सुधरी बिगड़ै वेग[25] से, विगड़ी फिर सुधरै न ॥ दूध फटै कांजी पड़े, सो फिर दूध वनैं न ॥ ८९ ॥ विगड़ी हू सुधरै वचन, जैसे वणिक[26] विशेष ॥ हींग मिरी[27] जीरो कहे, हग मर जर लिख लेष ॥ ९० ॥ वहुत किये हूँ नीच को, नीच सुभाव न जात ॥ छोड़ि ताल जल कुम्भ[28] में, कौवा चोंच भरात ॥ ९१ ॥ चतुर क्रूर[29] इक सम[30] गिनै, जाके नाँहि विवेक[31] ॥ जैसे अबुध[32] गमार के, पांच कांच है एक ॥ ९२ ॥ क्रूर न होवै चतुर नर, क्रूर कहै जो कोय ॥ मानै कांच गमार तौ, पांच काच नहिँ होय ॥ ९३ ॥ वेष बनाये सूर[33] को, कायर[34] सूर न होय ॥ खाल उढ़ाये सिंह की, स्याल सिंह नहिँ होय ॥ ९४ ॥ बड़े न लोपैं[35] लाजकुल[36], लोपैं नीच अधीर ॥ उदधि[37] रहै मरजाद में, वहै उमड़ि[38] नदि नीर ॥ ९५ ॥ जैसी संगति वैठिये, इज्जत मिलि है आय ॥ सिर पर मखमल सेहरो, पनहीं मखमल पांय ॥ ९६ ॥ चतुर सभा में मूर्ख

१-मन्दिर ॥ २-चोटी ॥ ३-कौआ ॥ ४-न्याय में चतुर ॥ ५-दूध ॥ ६-पानी ॥ ७-चाव से ॥ ८-दुष्ट जन ॥ ९-खून ॥ १०-दूध ॥ ११ स्तन, थन ॥ १२-पेट ॥ १३-बकरा ॥ १४-खुशी ॥ १५-उमड़ा हुआ ॥ १६-मेघ ॥ १७-कितना ही ॥ १८-पानी ॥ १९-मतलब ॥ २०-पूरी हो ॥ २१-निकलता है ॥ २२-निमक, नोन ॥ २३-मीठी ॥ २४-अधिक ॥ २५-शीघ्र ॥ २६-वनियां ॥ २७-मिर्च ॥ २८-घड़ा ॥ २९-मूर्ख ॥ ३०-समान ॥ ३१-ज्ञान ॥ ३२-मूर्ख ॥ ३३-बहादुर ॥ ३४ डरपोक ॥ ३५-नष्ट करते हैं ॥ ३६-कुल की लज्जा ॥ ३७-समुद्र ॥ ३८-उमड़ कर ॥

नर, शोभा पावत नांहि ॥ जैसे बक[1] शोभत नहीं, हंस मंडली[2] मांहि ॥ ९७ ॥ बुरी करै सोई बुरो, बुरो नांहि कोइ और ॥ वणिज[3] करै सो बानियां, चोरी करै सो चौर ॥ ९८ ॥ झूंठ बसै जा पुरुष के, ताही की अप्रतीत[4] ॥ चोर जुवारी से भलो, याते करत प्रतीत[5] ॥ ॥ ९९ ॥ विना सिखाये हू लहै[6], जाकी जैसी रीत ॥ जनमत सिंहनि को तनय[7], गज पर चढ़त अभीत[8] ॥ १०० ॥ सत्य वचन मुख जो कहै, ताकी चाह सराह[9] ॥ ग्राहक[10] आवै दूर से, सुनि इक एकवदी[11] साह[12] ॥ १०१ ॥ बुद्धि विना विद्या कहो, कहा सिखावै कोय ॥ प्रथम गाम ही नांहि तो, सींव कहां से होय ॥ १०२ ॥ कह रस[13] में कह रोष[14] में, अरि[15] सों जनि[16] पतियाय[17] ॥ जैसे शीतल[18] तप्त[19] जल, डारत आग वुझाय ॥ १०३ ॥ विद्या याद किये विना, विसर[20] जात है मान ॥ विगड़ जात विन खबर तें, चोली को सो पान ॥१०४॥ अन्तर[21] अंगुली चार को, सांच झूंठ में होय ॥ सब मानै देखी कही, सुनी न मानै कोय ॥ ॥ १०५ ॥ जोर न पहुँचै निबल पर, जो पै सबल सहाय ॥ भोडल की फानूस हू, दीप न वातै[22] वुझाय ॥ १०६ ॥ होय भले के सुत[23] बुरो, भलो बुरे के होय ॥ दीपक से काजल प्रकट[24], कमल कीच से होय ॥ १०७ ॥ जो धनवन्त सो देत कछु, देय कहा धनहीन[25] ॥ कहा निचोरै नग्न[26] जन, स्नान सरोवर[27] कीन ॥ १०८ ॥ जाकी जेती[28] पहुँच सो, उतनी करत प्रकाश ॥ रविज्यों[29] कैसे करि सकै, दीपक तम[30] को नाश ॥ १०९ ॥ उत्तम को अपमान[31] अरु, जहां नीच को मान[32] ॥ कहा भयो जो हंस की, निन्दा[33] काग बखान ॥ ११० ॥ यथायोग[34] की ठौर[35] विन, नर छवि[36] पावत नांहि ॥ जैसे रतन कथीर में, काच कनक[37] के मांहि ॥ १११ ॥ विपत बड़े ही सहत हैं, इतर[38] विपत से दूर ॥ तारे न्यारे रहत हैं, गहै राहु शशि[39] सूर[40] ॥ ११२ ॥ विद्या गुरु की भक्ति सों, क्या कीन्हे अभ्यास ॥ भील द्रोण के विन कहे, सीख्यो वाण विलास ॥ ११३ ॥ उद्यम वुधि बलसों मिलै, तब पावत शुभ-साज ॥ अन्ध[41] खंध[42] चढ़ि पंगु[43] ज्यों[44], सबै सुधारत काज ॥ ११४ ॥ फल विचारि कारज करहु, करहु न व्यर्थ अमेल ॥ तिल ज्यों वालू पेरिये, नांहिन[45] निकसै तेल ॥ ११५ ॥ दुष्ट निकट वसिये नहीं, वसि न कीजिये वात ॥ कदली[46] बेर प्रसंग[47] से, विंधहि कण्टकन[48] पात[49] ॥ ११६ ॥ पुन्य विवेक[50] प्रभाव[51] से, निश्चय लक्ष्मि निवास ॥ जवलौं तेल प्रदीप[52] में,

---

१–बगुला ॥ २–समूह ॥ ३–व्यापार ॥ ४–अविश्वास ॥ ५–विश्वास ॥ ६–लेता है ॥ ७–पुत्र ॥ ८–निडर होकर ॥ ९–तारीफ ॥ १०–लेनेवाला ॥ ११–एक बात कहनेवाला ॥ १२–साहूकार ॥ १३–प्रीति ॥ १४–गुस्सा ॥ १५–वैरी ॥ १६–मत ॥ १७–विश्वास करो ॥ १८–ठंढा ॥ १९–गर्म ॥ २०–भूल जाती है ॥ २१–फर्क ॥ २२–हवा ॥ २३–बेटा ॥ २४–पैदा होता है ॥ २५–गरीब ॥ २६–नंगा ॥ २७–तालाब ॥ २८–जितनी ॥ २९–सूर्य के समान ॥ ३०–अँधेरा ॥ ३१–अनादर ॥ ३२–आदर ॥ ३३–बुराई ॥ ३४–उचित ॥ ३५–स्थान ॥ ३६–शोभा ॥ ३७–सोना ॥ ३८–दूसरे ॥ ३९–चंद्रमा ॥ ४०–सूर्य ॥ ४१–अंधा ॥ ४२–कन्धा ॥ ४३–लंगड़ा, पांगला ॥ ४४–समान ॥ ४५–नहीं ॥ ४६–केला ॥ ४७–सोहवत ॥ ४८–कांटों से ॥ ४९–पत्ते ॥ ५०–ज्ञान ॥ ५१–प्रताप ॥ ५२–दीपक ॥

तबलौं ज्योति प्रकास ॥ ११७॥ अरि छोटो गिनिय नहीं, जासों होत विगार ॥ तृन स-मूह[1] को छिनक[2] में, जारत तनिक[3] अँगार[4] ॥ ११८ ॥ ताको अरि कह करि सकै, जाके य-तन उपाय ॥ जरै न तांती[5] रेत में, जाके पनही[6] पाय ॥ ११९ ॥ पण्डित जन को श्रम[7] मरम, जानत जे मतिधीर[8] ॥ बांझ न कबहूँ जानही[9], तन प्रसूत की पीर[10] ॥ १२० ॥ वीर पराक्रम[11] सों करै, भूमण्डल[12] को राज ॥ जोरावर यातें करै, वन अपनो मृगराज[13]॥१२१॥ नृप प्रताप से देश में, दुष्ट न प्रकटै कोय ॥ प्रगटै तेज दिनेश[14] को, तहां तिमिर[15] नहिं होय ॥ १२२ ॥ यह सांची सब ही कहैं, राजा करै सो न्याव ॥ ज्यों चौपड़ के खेलमें, पासा पड़ै सो दाव ॥ १२३ ॥ कारज ताही को सरै[16], करै जो समय निहार[17] ॥ कबहु न हारै खेल जो, खेलै दाव विचार ॥ १२४ ॥ सब देखैं गुण आपने, ऐब न देखै कोय ॥ करै उजालो दीप[18] पर, तले अँधेरो होय ॥ १२५ ॥ अपनी अपनी ठौर पर, सब को लागै दाव ॥ जल में गाड़ी नाव पर, थलै[19] गाड़ी पर नाव ॥ १२६ ॥ ग्राहक सबै सपूत के, सरै[20] काज सपूत ॥ सब को ढांकन[21] होत है, जैसे वन को सूत ॥ १२७ ॥ आप कष्ट सहि और की, शोभा करत सपूत ॥ चरखी पींजण चरख चढ़ि, जग ढंकन ज्यों सूत ॥ ॥ १२८ ॥ सुथिर सुथान[22] न छोड़िये, जब लौं[23] होय न और ॥ पिछलो पांव उठाइये, देखि धरन को ठौर ॥ १२९ ॥ को सुख को दुख देत है, देत करम झकझोर ॥ उरझै सुरझै आपही, धजा[24] पवन[25] के जोर ॥ १३० ॥ भली करत लागे विलँब[26], विलँब न बुरे विचार ॥ भवन[27] बनावत दिन लगैं, ढाहत[28] लगत न वार[29] ॥ १३१ ॥ विनसत वार न लागही, ओछे नर की प्रीत ॥ अम्बर[30] डम्बर सांझ के, ज्यों वालू की भीत ॥ १३२ ॥ बड़े वचन पल-टैं नहीं, कहि निरवाहैं धीर ॥ कियो विभीषण लंकपति[31], पाइ विजय रघुवीर[32] ॥ १३३ ॥ लखियत जननी[33] उदर[34] में, देखि कहै सब कोय ॥ दोहद ही कहि देत है, जैसी सन्तति[35] होय ॥ १३४ ॥ प्रेरक[36] ही से होत है, कारज सिद्ध निदान[37] ॥ चढ़े धनुष हू ना चलैं, विना चलाये बान ॥ १३५ ॥ सुख सज्जन के मिलन को, दुरजन मिले जनाय[38] ॥ जानै ऊख[39] मिठास[40] को, जब मुख नींब चवाय ॥ १३६ ॥ जाहि मिले सुख होत है, तिहिं वि-छुरे[41] दुख होय ॥ सूर[42] उदय फूलै कमल, ता विन सकुचे[43] सोय ॥ १३७ ॥ कारज सोइ

१-तिनकों का ढेर ॥ २-थोड़ी देर में ॥ ३-जरा सी ॥ ४-अग्नि ॥ ५-गर्म ॥ ६-जूता ॥ ७-मेहनत ॥ ८-धीर मतिवाले ॥ ९-बचा जनना ॥ १०-पीड़ा ॥ ११-बहादुरी ॥ १२-पृथ्वी का घेरा ॥ १३-सिंह ॥ १४-सूर्य ॥ १५-अँधेरा ॥ १६-सिद्ध होता है ॥ १७-देखकर ॥ १८-दीवा ॥ १९-जमीन ॥ २०-सिद्ध करता है ॥ २१-ढांकने वाला ॥ २२-अच्छी जगह ॥ २३-तक ॥ २४-झंडी ॥ २५-हवा ॥ २६-देरी ॥ २७-घर ॥ २८-गिराने में ॥ २९-देरी ॥ ३०-बादल ॥ ३१-लंका का मालिक ॥ ३२-रामचंद्र ॥ ३३-माता ॥ ३४-पेट ॥ ३५-सन्तान, औलाद ॥ ३६-प्रेरणा करने वाला ॥ ३७-आखिरकार ॥ ३८-मालूम पड़ता है ॥ ३९-गन्ना, सांठा ॥ ४०-मीठापन ॥ ४१-जुदा होने पर ॥ ४२-सूर्य ॥ ४३-मुर्झा जाता है ॥

सुधारि है, जो करिये समभाय ॥ अतिवरसे वरसे विना, ज्यों खेती कुम्हलाय ॥ १३८ ॥ आपहि कहा वखानिये, भली बुरी के जोग ॥ वूंठे घन की वात को, कहैं बटाऊ लोग ॥ ॥ १३९ ॥ जानै सो वूझै कहा, आदि अन्त विरतन्त[1] ॥ घर जन्मे पशु के कहा, कोउ देखत है दन्त ॥ १४० ॥ जो कहिये सो कीजिये, पहिले करि निरधार[2] ॥ पानी पी घर पूँछनो, नाहिँन[3] भलो विचार ॥ १४१ ॥ पीछे कारज कीजिये, पहिले यतन[4] विचार ॥ वड़े कहत हैं वांधिये, पानी पहिले वार[5] ॥ १४२ ॥ ठीक किये विन और की, वात सांच मत थांप[6] ॥ होत अँधेरी रैन[7] में, पड़ी जेवरी[8] सांप ॥ १४३ ॥ एक ठौर है सुजन[9] खल[10], तजै न अपनो अंग ॥ मणि विषहर[11] विषकर[12] सरप[13], सदा रहत इक संग ॥ १४४ ॥ हिये दुष्ट के वदन[14] से, मधुर[15] न निकसै वात ॥ जैसी कडुई वेलि के, को मीठे फल खात ॥ १४५ ॥ ताही को करिये यतन, रहिये जिहिँ आधार[16] ॥ को वैठे जा डार[17] पर, काटै सोई डार ॥ ॥ १४६ ॥ भागहीन[18] को ना मिले, भली वस्तु को भोग ॥ जैसे पाकी दाख[19]सों, होत काग मुख रोग ॥ १४७ ॥ सव कोऊ चाहत भलो, मित्र मित्र की ओर ॥ ज्यों चकवी रवि को उदय, शशि को उदय चकोर ॥ १४८ ॥ भले वंश सन्तति भली, कवहूँ नीच न होय ॥ ज्यों कञ्चन[20] की खान में, काँच न उपजै कोय ॥ १४९ ॥ शूर वीर के वंश में, शूर वीर सुत[21] होय ॥ ज्यों सिंहिनि के गर्भ में, हिरन न उपजै कोय ॥ १५० ॥ अधिक चतुर की चातुरी[22], होत चतुर के संग ॥ नग[23] निरमल की डांक सें, वढ़त ज्योति छविरंग ॥ ॥ १५१ ॥ पण्डित अरु वनिता[24] लता[25], शोभत आश्रय[26] पाय ॥ है माणिक वहुमोल[27] तेउ[28], हेमजटित[29] छविछाय[30] ॥ १५२ ॥ अति उदारपन वड़न को, कहँलग[31] वरनै कोय ॥ चातक[32] जाँचै[33] तनक घन[34], वरसि भरै मँहि[35] तोय[36] ॥ १५३ ॥ दुष्ट संग वसिये नहीं, अवगुन होय सुभाय ॥ घिसत वंश की अग्नि सें, जरत सबै वनराय ॥ १५४ ॥ करै अनादर गुनिन को, ताहि सभा छवि जाय ॥ गज कपोल[37] शोभा मिटत, जो अलि[38] देत उड़ाय ॥ १५५ ॥ हीन जानि न विरोधिये, वही होत दुखदाय ॥ रज[39] हू ठोकर मारिये, चढ़ै सीस पर आय ॥ ॥ १५६ ॥ विना दिये नहिँ मिलहि कछु, यह समुझै सव कोय ॥ देत शिशिर में पात[40] तरु[41] सुरभि[42] सपल्लव[43] सोय ॥ १५७ ॥ जो सेवक कारज करै, होत वड़े को नाम ॥ पथर तिरत

१-वृत्तान्त, हाल ॥ २-निश्चय ॥ ३-नहीं ॥ ४-कोशिश, उपाय ॥ ५-वाड़ ॥ ६-मान ॥ ७-रात्रि ॥ ८-रस्सी, डोरी ॥ ९-अच्छे आदमी ॥ १०-दुष्ट पुरुष ॥ ११-विष को दूर करने वाला ॥ १२-विष पैदा करने वाला ॥ १३-सांप ॥ १४-मुख ॥ १५-मीठा ॥ १६-सहारा ॥ १७-डाली, शाखा ॥ १८-निर्भाग्य ॥ १९-किशमिश ॥ २०-सोना ॥ २१-वेटा ॥ २२-चतुराई ॥ २३-हीरा मानक ॥ २४-स्त्री ॥ २५-वेल ॥ २६-सहारा ॥ २७-वहुत कीमत का ॥ २८-तो भी ॥ २९-सोने में जड़ा हुआ ॥ ३०-शोभा देता है ॥ ३१-कहां तक ॥ ३२-पपीहा ॥ ३३-मांगता है ॥ ३४-मेघ ॥ ३५-पृथिवी ॥ ३६-जल ॥ ३७-गाल ॥ ३८-भौंरा ॥ ३९-धूल ॥ ४०-पत्ता ॥ ४१-वृक्ष ॥ ४२-वसन्त में ॥ ४३-पत्तों वाला ॥

करनील तें, कहत तिराये राम ॥ १५८ ॥ यह निश्चय कर जानिये, जानेहार सो जाग ॥ गज के भुक्त कवीठ के, ज्यों गिरि वीज विलाय ॥ १५९ ॥ दूर कहा नियरे कहा, होने-हार सो होय ॥ थुर सींचै नाॅलेर के, फल में प्रकटै तोय ॥ १६० ॥ मीठी मीठी वस्तु नहिँ, मीठी जाकी चाहि ॥ अमली मिसरी परिहरै, आफू खात सराहि ॥ १६१ ॥ भले बुरे को जानिवो, जान वचन के वन्ध ॥ कहै अन्ध को सूर इक, कहै अन्ध को अन्ध ॥ ॥ १६२ ॥ चिरंजीवी तन हू तजे, जाको जग जस वास ॥ फूल गये ज्यों फूल की, रहत तेल में वास ॥ १६३ ॥ वृद्धि होत नहिँ पाप से, वृद्धि धर्म से धार ॥ सुन्यो न देख्यो सिं-ह के, मृग को सो परिवार ॥ १६४ ॥ दोप लगावत गुनिन को, जाको हृदय मलीन ॥ धर्मी को दंभी कहै, क्षमाशील वलहीन ॥ १६५ ॥ खाय न खरचै सूम धन, चोर सवै लै जाय ॥ पीछे ज्यों मधुमक्षिका, हाथ घिसे पछिताय ॥ १६६ ॥ दान दीन को दीजिये मिटै जु वाकी पीर ॥ औषध ताको दीजिये, जाके रोग शरीर ॥ १६७ ॥ उत्तम विद्या लीजिये, जदपि नीच पै होय ॥ पड़्यो अपावन ठौर में, कञ्चन तजत न कोय ॥ १६८ ॥ निश्चय कारण विपति को, किये प्रीति अरि संग ॥ मृग के सुख मृगराज सों, होन कवहुँ तन भंग ॥ १६९ ॥ कहा करै आगम निगम, जो मूरख समुझै न ॥ दरपन को दोष न कछू, अन्ध वदन देखै न ॥ १७० ॥ सज्जन के प्रिय वचन से, तन संताप मिटि जाय ॥ जैसे चन्दन नीर से, ताप जु तन को जाय ॥ १७१ ॥ सुजन वचन दुरजन वचन, अ-न्तर वहुत लखाय ॥ वह सव को नीको लगै, वह काहू न सुहाय ॥ १७२ ॥ धन अरु गेंद जु खेल की, दोऊ एक सुभाय ॥ कर में आवत छिनक में, छिन में कर से जाय ॥ १७३ ॥ धन अरु यौवन को गरव, कवहूँ करिये नांहि ॥ देखत ही मिट जात है, ज्यों वादर की छांहि ॥ १७४ ॥ वड़े वड़े को विपति में, निश्चय लेत उवार ॥ ज्यों हाथी को कीच से, हाथी लेत निकार ॥ १७५ ॥ वड़े कष्ट हू में वड़े, करैं उचित ही काज ॥ स्यार निकट तजि खोज के, सिंह हनै गजराज ॥ १७६ ॥ वहु गुन श्रम से ऊँचपद, तनिक दोष से जाय ॥ नीठ चढ़ै गिरि पर शिला, ढारत ही ढरिजाय ॥ १७७ ॥ छोटे अरि

१–जानेवाला ॥ २–समीप ॥ ३–होनेवाला ॥ ४–मूल, जड़ ॥ ५–नारियल ॥ ६–पैदा होता है ॥ ७–पानी ॥ ८–वस्तु, चीज़ ॥ ९–छोड़ देता है ॥ १०–अफीम ॥ ११–तारीफ कर के ॥ १२–अंधा ॥ १३–वहुत समय तक जीने वाला ॥ १४–छोड़ने पर ॥ १५–यश, कीर्त्ति ॥ १६–रहता है, मौजूद है ॥ १७–सुगन्धि ॥ १८–कुटुम्ब ॥ १९–मैला ॥ २०–पाखंडी ॥ २१–कञ्जूस ॥ २२–शहद की मक्खी ॥ २३–गरीव ॥ २४–पीड़ा, तकलीफ ॥ २५–यद्यपि, अगर्चे ॥ २६–अपवित्र, मैला ॥ २७–शत्रु ॥ २८–सिंह ॥ २९–शास्त्र ॥ ३०–वेद ॥ ३१–शीशा ॥ ३२–मुख ॥ ३३–कष्ट ॥ ३४–पानी ॥ ३५–दुःख ॥ ३६–फर्क, भेद ॥ ३७–मालूम होता है ॥ ३८–अच्छा, प्यारा ॥ ३९–अच्छा लगता है ॥ ४०–स्वभाव ॥ ४१–हाथ ॥ ४२–थोड़ी देर ॥ ४३–घमंड ॥ ४४–वचाना ॥ ४५–पास ॥ ४६–छोड़ कर ॥ ४७–मारता है ॥ ४८–मेहनत ॥ ४९–ऊंचा दर्जा ॥ ५०–मुश्किल से ॥ ५१–पहाड़ ॥ ५२–पत्थर ॥ ५३–गिरते ही ॥ ५४–गिर जाता है ॥

को साँधिये[1], छोटे करि उपचार[2] ॥ मरै न मूसा सिंह से, मारै ताहि मँजार[3] ॥ १७८ ॥ सेवक सोई जानिये, रहे विपति में संग ॥ तन छाया ज्यों धूप में, रहे साथ इकरंग[4] ॥ १७९ ॥ दुष्ट रहै जा ठौर पर, ताको करै विगार ॥ आग जहां ही राखिये, जारि[5] करै तिहिँ छाँर[6] ॥ ॥ १८० ॥ विना तेज के पुरुष की, अवँशि[7] अवज्ञा[8] होय ॥ आग बुझे ज्यों राख को, आन छुवै सब कोय ॥ १८१ ॥ नेह[9] करत तिये[10] नीच सों, धन किरपन[11] घर मांहि ॥ वरसै मेंह पहाड़ पर, कै ऊसर के मांहि ॥ १८२ ॥ जहां रहत गुनवन्त[12] नर, ताकी शोभा होत ॥ जहां धरै दीपक[13] तहां, निश्चय[14] करै उदोत[15] ॥ १८३ ॥ मोह प्रवल[16] संसार में, सब को उपजै आय ॥ पालै पोषै खग[17] शिशुन[18], देवैं कहा कमाय ॥ १८४ ॥ बहुत द्रव्य संचय[19] जहां, चोर राजभय होय ॥ कांसे ऊपर वीजुली, परत कहत सब कोय ॥ १८५ ॥ गुरु मुख विद्या विन पढ़े, पोथी अर्थ विचार ॥ सो शोभा पावै नहीं, जार गर्भ युत नार ॥ १८६ ॥ ओछे[20] नर के पेट में, रहै न मोटी बात ॥ आधसेर के पात्र[21] में, कैसे सेर समात ॥ १८७ ॥ गूढ़[22] मंत्र[23] तव तक रहत, होत जु मिलि जन दोय ॥ भई छकैन्नी[24] बात जब, जान जात सब कोय ॥ १८८ ॥ गूढ़ मन्त्र गरुए[25] विना, कोऊ राखि सकै न ॥ धातु[26] पात्र[27] विन हेम[28] के, बाघनि दूध रहै न ॥ १८९ ॥ जो प्राणी परवश[29] परचो, सो दुख लहै[30] अपार ॥ जूथ[31] विछोहो[32] गज सहै, बन्धन अंकुश[33] मार ॥ १९० ॥ मन प्रसन्न तन चैन[34] जिहि, स्वेच्छाचार[35] विहार[36] ॥ संग मृगी मृग सुख सुवै[37], वन वसि तृन आहार ॥ १९१ ॥ उदर[38] भरन के कारने, प्राणी करत इलाज ॥ बाचै नाचै रण[39] भिड़ै[40], राँचै[41] काज[42] अकाज[43] ॥ १९२ ॥ काहू को हँसिये नहीं, हँसी कलह[44] को मूल[45] ॥ हांसि हँसे दोऊ भये, कौरव पाण्डु निमूल ॥ १९३ ॥ प्रापति[46] के दिन होत है, प्रापति बारंवार ॥ लाभ होत व्यापार में, आमन्त्रण[47] अधिकार[48] ॥ ॥ १९४ ॥ अप्रापति[49] के दिनन में, खर्च होत अविचार[50] ॥ घर आवत हैं पाहुने[51], वणिजे[52] न लाभ लिगार[53] ॥ १९५ ॥ दीन धनी आधीन है[54], सीस नमावत[55] काहि ॥ मानभंग[56] की

१-वश में करना चाहिये ॥ २-उपाय ॥ ३-बिल्ली ॥ ४-एक समान ॥ ५-जला कर ॥ ६-राख ॥ ७-जरूर ॥ ८-अनादर ॥ ९-स्नेह, प्रेम ॥ १०-स्त्री ॥ ११-कञ्जूस ॥ १२-गुणी ॥ १३-दीवा ॥ १४-जरूर ॥ १५-उजाला ॥ १६-बलवान् ॥ १७-पक्षी ॥ १८-बच्चों को ॥ १९-संग्रह, एकट्ठा ॥ २०-नीच ॥ २१-वर्तन ॥ २२-गुप्त, छिपा हुआ ॥ २३-सलाह ॥ २४-छःकान की अर्थात् तीन मनुष्यों में ॥ २५-बड़ा आदमी ॥ २६-सोना चांदी आदि धातु ॥ २७-वर्तन ॥ २८-सोना ॥ २९-पराधीन ॥ ३०-पाता है ॥ ३१-झुंड ॥ ३२-छूटा हुआ ॥ ३३-आंकुश ॥ ३४-खुशी ॥ ३५-अपनी इच्छा के अनुसार व्यवहार ॥ ३६-चलना, फिरना ॥ ३७-सोता है ॥ ३८-पेट ॥ ३९-लड़ाई में ॥ ४०-लड़ता है ॥ ४१-कर बैठता है ॥ ४२-करने योग्य काम ॥ ४३-न करने योग्य काम ॥ ४४-लड़ाई ॥ ४५-कारण ॥ ४६-आमदनी ॥ ४७-बुलावा ॥ ४८-इखत्यार ॥ ४९-आमदनी का न होना ॥ ५०-विना विचारे ॥ ५१-मेहमान ॥ ५२-व्यापार ॥ ५३-ज़रा भी ॥ ५४-होकर ॥ ५५-झुकाता है ॥ ५६-प्रतिष्ठा का नाश ॥

भूमि[1] यह, पेट दिखावत ताहि ॥ १९६ ॥ कहैं वचन पलटैं[2] नहीं, जे सतपुरुष[3] सधीर[4] ॥ कहत सबै हरिचन्द्र नृप[5], भर्यो नीच घर नीर ॥ १९७ ॥ प्यारी अनप्यारी[6] लगै, समय पाय सब बात ॥ धूप सुहावत शीत[7] में, ग्रीषम[8] नाहिं सुहात[9] ॥ १९८ ॥ जूवा खेले होत है, सुख सम्पति[10] को नाश ॥ राजकाज नल तें छुट्यो, पाण्डव किय वनवास ॥ १९९ ॥ सरस्वति[11] के भण्डार[12] की, बड़ी अपूरव[13] बात ॥ ज्यों खरचे त्यों त्यों बढ़ै, विन खरचे घटि जात ॥ २०० ॥ देखा देखी करत सब, नांहिनें[14] तत्वविचार ॥ याको यह उनमान[15] है, भेड़ चाल संसार ॥ २०१ ॥ खरचत खात न जात धन, औसर किये अनेक ॥ जात पुन्य पूरन भये, अरु उपजै अविवेक[16] ॥ २०२ ॥ एक एक अक्षर पढ़े, जानै ग्रन्थ विचार ॥ पैंडू[17] पैंड हू चलत जो, पहुँचै कोस हजार ॥ २०३ ॥ लिखी दूरि नहिं होत है, यह जानो तहकीक[18] ॥ मिटै न ज्यों क्यों हूँ किये, ज्यों हाथन की लीक ॥ २०४ ॥ चिदानन्द[19] घट[20] में बसै, बूझत कहा निवास ॥ ज्यों मृगमद[21] मृगनाभि में, ढूंढै फिर वनवास ॥ २०५ ॥ सब काहू की कहत है, भली बुरी संसार ॥ दुर्योधन की दुष्टता[22], विक्रम[23] को उपकार[24] ॥ २०६ ॥ वय[25] समान रुचि होत है, रुचि समान मन मोद[26] ॥ बालक खेल सुहावई[27], यौवन[28] विषै[29] विनोद ॥ २०७ ॥ वह सम्पति किहि काम की, जनि[30] काहू के होय ॥ जाहि कमावै कष्ट करि, विलसै[31] औरहि कोय ॥ २०८ ॥ नृप गुरु शुचि[32] तिय[33] सेविये, मध्यभाव[34] जगमांहि ॥ है विनाश अति निकट से, दूर रहे फल नांहि ॥ २०९ ॥ देखत है जग जात है, तउ ममता[35] से मेल ॥ जानत हू या जगत को, देखत भूली खेल ॥ २१० ॥ सुजन बचावत कष्ट से, रहै निरन्तर[36] साथ ॥ नयन[37] सहाई[38] ज्यों पलक, देह सहाई हाथ ॥ २११ ॥ धनी होत निर्धन कबहुँ, निरधन से धनवान ॥ बड़ी होत निशि शीत ऋतु, ज्यों ग्रीषम दिन मान ॥ २१२ ॥ ज्यों ज्यों छूट अयानपन[39], त्यों त्यों प्रेम विकास ॥ जैसे कैरी[40] आम की, पकड़त पके मिठास ॥ २१३ ॥ थोरा थोरी प्रीति की, कीन्हें बढ़त हुलास[41] ॥ अति खाये उपजै अरुचि, थोड़ी वस्तु मिठास[42] ॥ २१४ ॥ गहे[43] तत्व[44] ज्ञानी[45] पुरुष, बात विचारि विचारि ॥ मथनहारि[46] तजि छाछ को, माखन लेत निकारि ॥ २१५ ॥ जो उपजै सोई

१–स्थान ॥ २–बदलते हैं ॥ ३–अच्छे आदमी ॥ ४–धीरज वाले ॥ ५–राजा ॥ ६–बेप्यारी, बुरी ॥ ७–ठंढ ऋतु ॥ ८–गर्मी ॥ ९–अच्छी लगती है ॥ १०–दौलत ॥ ११–विद्या ॥ १२–खजाना ॥ १३–अद्भुत, विचित्र ॥ १४–नहीं ॥ १५–अनुमान ॥ १६–अज्ञान ॥ १७–एक एक पैर भी ॥ १८–निश्चय ॥ १९–ज्ञान और आनन्द से युक्त अर्थात् भगवान् ॥ २०–हृदय ॥ २१–कस्तूरी ॥ २२–बदमाशी ॥ २३–राजा विक्रमादित्य ॥ २४–भलाई ॥ २५–उम्र ॥ २६–खुशी ॥ २७–अच्छा लगता है ॥ २८–जवानी ॥ २९–भोग का आनन्द ॥ ३०–मत ॥ ३१–भोगता है ॥ ३२–पवित्र ॥ ३३–स्त्री ॥ ३४–बीच के मन से ॥ ३५–मोह, मेरा तेरा ॥ ३६–हमेशा ॥ ३७–नेत्र ॥ ३८–मददगार ॥ ३९–अज्ञानता ॥ ४०–कच्चा आम ॥ ४१–आनन्द ॥ ४२–मीठापन ॥ ४३–लेता है ॥ ४४–असली मतलब ॥ ४५–ज्ञानवान् ॥ ४६–मथने वाली ॥

करै, जिहि कुल जो अभ्यास ॥ छोटे मछै[1] हू जल तिरैं, पंखी उड़ैं अकास ॥ २१६ ॥ यथायोग सब मिलंत है, जो विधि[2] लिख्यो अँकूर ॥ खल गुल भोग गरीबिनी, रानी पान कपूर ॥ २१७ ॥ *हिंसा दुख नी वेलड़ी[4], हिंसा दुख नी खाण ॥ बहुत जीव नरकें गया, हिंसा तणें प्रमाण ॥ २१८ ॥ दया सुक्ख नी बेलड़ी, दया सुक्ख नी खाण ॥ बहुत जीव मुक्तें गया, दया तणें परिमाण ॥ २१९ ॥ जीव मारता नरक छे, राखन्तां छे सर्गं[5] ॥ यह दोनों हैं वाटड़ी[6], जिण भावै[7] तिण लग्ग[8] ॥ २२० ॥ विन कपास कपड़ो नहीं, दया विना नहिं धर्म ॥ पाप नहीं हिंसा विना, बूझो एहिज[9] मर्म[10] ॥ २२१ ॥ धन [11]बंछै इक अ-धर्म[12] नर, उत्तम वंछै मान ॥ ते थानक[13] सँहुँ[14] [15]छंडिये, जिंह लहिये अपमान[16] ॥ २२२ ॥ धर्म अर्थ अरु काम शिव[17], साधन जग में चार ॥ व्यवहारे व्यवहार लख, निश्चय निज[18] गुण धार ॥ २२३ ॥ मूरख कुल आचार थी, जाणत धर्म सदीव[19] ॥ वस्तु सभाव धरम सुधी, कहत अनुभवी[20] जीव ॥ २२४ ॥ खेह खजाना कूँ अरथ, कहत अजानी[21] जेह ॥ कहत द्रव्य दरसाव कूँ, अर्थ सुजानी[22] तेह ॥ २२५ ॥ दम्पति[23] रति [24]क्रीड़ा प्रतें, कहत दुर्मती[25] काम ॥ काम चित्त अभिलाष कूँ, कहत सुमति[26] गुणधाम[27], ॥ २२६ ॥ इन्द्रलोक कूँ कहत शिव, जे आगमदृगहीन[28] ॥ वन्ध अभाव अचल गती, भाषत नित्य प्रवीन[29] ॥ २२७ ॥ एम अ-ध्यातमपद[30] लखी, करत साधना जेह ॥ चिदानन्द[31] जिनधर्म नो, अनुभव पावैं तेह॥२२८॥ मेरा मेरा क्या करै, तेरा है नहिं कोय ॥ चिदानन्द परिवार का, मेला है दिन दोय ॥ ॥ २२९ ॥ ज्ञान [32]रवी वैराग्य जस, हिरदे चन्द्र समान ॥ ताँसु[33] निकट कहु किमि[34] रहै, मिथ्यातम[35] दुख खान ॥ २३० ॥ जैसे कंचुकि[36] त्याग सें, विनसत नांहि भुजंग[37] ॥ देह त्याग थी जीव पिर्ण[38], तैसे रहत अभंग[39] ॥ २३१ ॥ धर्म बधाये धन [40]बंधै, धन बध मन बधि जात ॥ मन बध सब ही वधंत[41] है, बधत बधत बधि जात ॥ २३२ ॥ धर्म घटाये धन घटै, धन घट मन घटि जात ॥ मन घट सब ही घटत है, घटत घटत घटि जात ॥ २३३ ॥ यह जोवन थिर[42] ना रहै, दिन दिन छीजंत[43] जात ॥ चार दिना की चांदनी[44], फेर अँधेरी

१-मछली ॥ २-विधाता ॥ ३-चतुर ॥ * यहां (२१८) से लेकर-ये सब दोहे-मारवाड़ी चालके हैं-अर्थात् इन में मारवाड़ी शब्द अधिक हैं ॥ ४-वेल ॥ ५-स्वर्ग ॥ ६-मार्ग ॥ ७-अच्छा लगे ॥ ८-पकड़ ले ॥ ९-यही ॥ १०-असली हाल ॥ ११-चाँहता है ॥ १२-नीच ॥ १३-स्थान ॥ १४-अवश्य ॥ १५-छोड़ देना चाहिये ॥ १६-अनादर, तिरस्कार ॥ १७-मोक्ष ॥ १८-अपना ॥ १९-सदैव ॥ २०-अनुभव ज्ञानवाले ॥ २१-अज्ञानी, ज्ञान से हीन ॥ २२-अच्छे ज्ञानवाले ॥ २३-जोड़ा, स्त्रीपुरुष ॥ २४-भोग की क्रीड़ा ॥ २५-दुष्ट बुद्धिवाले ॥ २६-अच्छी बुद्धिवाले ॥ २७-गुणी जन ॥ २८-शास्त्ररूपी नेत्र से रहित ॥ २९-चतुर ॥ ३०-आत्मा सम्बंधी स्थान ॥ ३१-ज्ञान और आनंद से युक्त ॥ ३२-सूर्य ॥ ३३-उस के ॥ ३४-कैसे ॥ ३५-मिथ्यारूप अँधेरा ॥ ३६-कैंचुली ॥ ३७-सांप ॥ ३८-भी ॥ ३९-अनष्ट ॥ ४०-बढ़ता है ॥ ४१-बढ़ता है ॥ ४२-स्थिर ॥ ४३-नष्ट होता जाता है ॥ ४४-उजाला ॥

रात ॥ २३४ ॥ तबलग जोगी जगतगुरु, जबलग रहै निरास[1] ॥ जब जोगी ममता धरै तब जोगी जगदास ॥ २३५ ॥ धरम करत संसार सुख, धरम करत निरवान[2] ॥ धरमपन्थ[3] जाणैं नहीं, ते नर पशू समान ॥ २३६ ॥ क्रोधी लोभी कृपण[4] नर, मानी अरु मंद-अन्ध[5] ॥ चोर जुवारी चुगुल नर, आठौ दीखत अन्ध[6] ॥ २३७ ॥ शील रतन सब से बड़ो, सब रतनन की खान ॥ तीन लोक की सम्पदा[7], रही शील में आन ॥ २३८ ॥ ओछी[8] संगति स्वान[9] की, दोनूं बातें दुक्ख ॥ रूठो[10] पकड़े पांव कूं, तूंठो[11] चाटै मुक्ख ॥ २३९ ॥ सतजन[12] मन में ना धरैं, दुरजन[13] जन के बोल ॥ पथरा मारत आम को, तेउ[14] फल देत अमोल ॥ २४० ॥ पात[15] झड़तो[16] इम कहै, सुण तरुवर वनराय ॥ अब के बिछुरे कब मिलैं, दूर पड़ैंगे जाय ॥ २४१ ॥ तरुवर सुणकर बोलियो, सुण पत्ता मुझ बात ॥ या जग की यह रीति है, इक आवत इक जात ॥ २४२ ॥ सुख दुख दोनूं संग हैं, मेटि सकै नहिं कोय ॥ जैसे छाया देह की, न्यारी नेक न होय ॥ २४३ ॥ जिमि पनिहारी[17] जेवड़ी[18], खैंचत कटै पषान[19] ॥ तैसे नर उद्यम कियां, होत सही विद्वान ॥ २४४ ॥ तन धन परिजन[20] रूप कुल, तरुणी[21] तनय[22] तुपार ॥ ये सब हैं पिण[23] बुद्धि नहिं, व्यर्थ गयो अवतार[24] ॥ २४५ ॥ मात तात[25] सुत भ्रात तिय[26], सुगम[27] सबहिं को मेल ॥ सत्य मित्र को जगत में, महा कष्ट से मेल ॥ २४६ ॥ उद्यम[28] से लछिमी[29] मिलै, मिलै द्रव्य से मान ॥ दुर्लभ[30] पारस[31] जगत में, मिलिबो मित्र सुजान[32] ॥ २४७ ॥ उपजो उत्तम वंश में, सज्जन व्यजन[33] समान ॥ परिभ्रमण[34] करि तुरत ही, मेटि ताप सुखदान ॥ २४८ ॥ हय[35] गय[36] अयस[37] नरन की, प्रीक्षक[38] को हि पिछाण[39] ॥ विण प्रीक्षक जन मन तणां, करि न सकै निरमाण ॥ २४९ ॥ हिकमत[40] करि उदरहिं भरउ, किसमत पर रहु नांह ॥ किसमत से हिकमत बड़ी, करि देखो जगमांह ॥ ॥ २५० ॥ सुजन मित्र को स्नेह नित, बधै राफ सम वीर ॥ अंजलि जल सम कुजन[41] को, घटै स्नेह को नीर ॥ २५१ ॥ उत्तम जन अनुराग[42] तें, चोल मजीठ समान ॥ पामर[43] राग[44] पतंग सम, पल में पलटै वान[45] ॥ २५२ ॥ जो जामें निसदिन वसै, सो तामें परवीन[46] ॥

१–आशा से रहित ॥ २–मुक्ति ॥ ३–धर्म का मार्ग ॥ ४–कञ्जूस ॥ ५–मद से अन्धा ॥ ६–अन्धा ॥ ७–सम्पत्ति, दौलत ॥ ८–नीच ॥ ९–कुत्ता ॥ १०–रुष्ट हो कर ॥ ११–तुष्ट हो कर ॥ १२–अच्छे आदमी ॥ १३–बुरे आदमी ॥ १४–तो भी ॥ १५–पत्ता ॥ १६–गिरता हुआ ॥ १७–पानी भरने वाली ॥ १८–रस्सी ॥ १९–पत्थर ॥ २०–कुटुम्ब ॥ २१–स्त्री ॥ २२–पुत्र ॥ २३–परन्तु ॥ २४–जन्म ॥ २५–पिता ॥ २६–स्त्री ॥ २७–सहज ॥ २८–मेहनत ॥ २९–लक्ष्मी, दौलत ॥ ३०–मुश्किल से मिलने वाला ॥ ३१–एक प्रकार का पत्थर जिस को छूने से लोहा सोना हो जाता है ॥ ३२–ज्ञानवान् ॥ ३३–पंखा ॥ ३४–घूमना ॥ ३५–घोड़ा ॥ ३६–हाथी ॥ ३७–लोहा ॥ ३८–परीक्षा करने वाला ॥ ३९–पहिचान ॥ ४०–तदवीर ॥ ४१–खराब आदमी ॥ ४२–प्रेम ॥ ४३–नीच ॥ ४४–रंग ॥ ४५–स्वभाव ॥ ४६–चतुर ॥

सरिता[1] गजकूं ले चलै, उलट चलत है मीनें[2] ॥ २५३ ॥ थिति[3] वय[4] अन्तरवासना[5], ज्ञाति[6] धर्म गुण रूप ॥ जो समान तो मित्रता, अँहनिशि[7] निभै अनूप[8] ॥२५४॥ नम्रे[9] पुरुष[10] थी नम्र रहु, वंक्र[11] दुष्ट थी वक्र ॥ अक्कड़[12] थी अक्कड़ रहो, गुणि जन थी अनवंक्र[13] ॥ २५५ ॥ देश जाति कुल धर्म को, उरं[14] राखे अभिमानं[15] ॥ धन्य तेज नर और तो, खरेज[16] खरं[17] सम[18] मान ॥ २५६ ॥ पर सुख देखी पर जले, परदुंखथीज[19] प्रमोद[20] ॥ नित्य कर्म यह नीचनूं[21], माने महाविनोद[22] ॥ २५७ ॥ गुणग्राही[23] सज्जन सदा, दोषग्राहि[24] छे दुष्ट ॥ पिये खून पयं[25] ना पिये, लगी जोंक थन पुष्ट ॥ २५८ ॥ तन मन धन जीवन अरू, परम[26] देव प्रियँ[27] वस्तु ॥ गिणै संती[28] पति ने सदा, अन्यं[29] न वल्लभ[30] वस्तु ॥ २५९ ॥ शुभतिय[31] से संसार सुख, सुगति[32] सुगुरु[33] से जाण ॥ शुचि[34] मन्त्री से राज नित, सुधरे सदा सुजाण ॥ २६० ॥ प्रायः[35] पर की भूल को, देखे सब संसार ॥ पण[36] न विचारे निजतणी[37], होय जु भूल हजार ॥२६१॥ गती विगर अति आकुला[38], मतीहीन[39] मगरूर[40] ॥ रति शत्रू कृति[41] ढँग विणा, तेज न मूर्ख जरूर ॥२६२॥ नन्दजोति[42] नटखट[43] सदा, [44]पेचीली पर मार ॥ निर्दय[45] निपट[46] सशंक[47] नित, स्वार्थसिद्धि[48] करनार[49] ॥ २६३ ॥ गुण विन रूप न काम को, जिम रोईड़ा[50] फूल ॥ दीसंतां[51] रलियामणां[52], पण[53] नहिं पामे मूल ॥ २६४ ॥ [54]शेरी मित्रहु सौ गुणा, ताली मित्र अनेक ॥ (पण) जेथी सुख दुख [55]हेचिये, सो लाखन में एक ॥ २६५ ॥ नाम रहण दो ठक्करां[56], नाणां[57] नहीं रहन्त[58] ॥ कीरत[59] हन्दा[60] कोटड़ां[61], पाड्यां[62] नहीं पड़न्त[63] ॥ २६६ ॥ कल्पवृक्ष काने सुण्यो, आपे[64] इच्छित[65] भोग ॥ [66]म्हे मन में निश्चय कर्यो, कल्पवृक्ष उद्योग ॥ २६७ ॥ उपजे सुख उद्योग थी, सुधरे वली[67] स्वदेश[68] ॥ ते कारण उद्योग की, हिम्मत धरो हमेश ॥ ॥ २६८ ॥ कुदरत पिण[69] उद्योगि ने, देवे वक्षिस दान ॥ आ अवसर[70] यूरोप ना, लोकज[71]

१–नदी ॥ २–मछली ॥ ३–स्थिति, हालत ॥ ४–अवस्था, उम्र ॥ ५–भीतरी इच्छा ॥ ६–जाति ॥ ७–दिनरात ॥ ८–अद्भुत ॥ ९–नमने वाला ॥ १०–से ॥ ११–टेढ़ा ॥ १२–अकड़ने वाला ॥ १३–सीधा ॥ १४–दिल ॥ १५–घमण्ड ॥ १६–अत्यन्त ही ॥ १७–गधा ॥ १८–समान ॥ १९–दूसरे के दुःख से ही ॥ २०–आनन्द ॥ २१–नीच का ॥ २२–बड़ी खुशी ॥ २३–गुण को लेनेवाला ॥ २४–दोप को लेनेवाला ॥ २५–दूध ॥ २६–उत्तम ॥ २७–प्यारी ॥ २८–पतिव्रता स्त्री ॥ २९–दूसरा ॥ ३०–प्यारी ॥ ३१–अच्छी स्त्री ॥ ३२–अच्छी गति ॥ ३३–उत्तम गुरु ॥ ३४–पवित्र, शुद्ध ॥ ३५–अक्सर ॥ ३६–परन्तु ॥ ३७–अपनी ॥ ३८–व्याकुल ॥ ३९–बुद्धि से रहित ॥ ४०–घमण्डी ॥ ४१–कार्य ॥ ४२– ४३–ऐबदार ॥ ४४–पेंचवाली ॥ ४५–दया से रहित ॥ ४६–अत्यन्त ॥ ४७–शंका के सहित ॥ ४८–अपना मतलब ॥ ४९–करने वाला ॥ ५०–एक प्रकार का जंगली वृक्ष ॥ ५१–देखने में ॥ ५२–अच्छा लगता है ॥ ५३–परन्तु ॥ ५४–उत्तम समय में ॥ ५५–बँटाइये ॥ ५६–हे ठाकुर ॥ ५७–धन ॥ ५८–रहता है ॥ ५९–कीर्त्ति, यश ॥ ६०–रूपी ॥ ६१–किला ॥ ६२–गिराने से ॥ ६३–गिरता है ॥ ६४–देता है ॥ ६५–चाहा हुआ ॥ ६६–मैं ने ॥ ६७–और ॥ ६८–अपना देश ॥ ६९–भी ॥ ७०–समय ॥ ७१–मनुष्य ही ॥

चढ़े विमान ॥ २६९ ॥ आलस भूंडी[1] भूतड़ी[2], व्यन्तर[3] नो वल गाड़ ॥ पेसे[4] जेनी[5] पंडमां[6], बहुधा[7] करे विगाड़ ॥ २७० ॥ जन आलस ना जखम[8] थी, जे कोइ जखमी[9] थाय[10] ॥ पड़े पथारी[11] पाथरी[12], जीवन रहित जणाय[13] ॥ २७१ ॥ भर्यो घड़ो छिलके[14] नहीं, अधुरो[15] झट छिलकाय[16] ॥ विबुध[17] कुलीन[18] बकै नहीं, बके सो नीच वलाय[19] ॥ २७२ ॥ सुख पीछे दुख आत है, दुख पीछे सुख आत ॥ आवत जावत अनुक्रमे[20], ज्यूं जग में दिनरात ॥ २७३ ॥ केशरिकेश[21] भुजंगमणि[22], सुरनारी[23] शूराह[24] ॥ सतीपयोधर[25] विप्रधन[26], चढ़शे[27] हत्थ[28] मुवाह[29] ॥ २७४ ॥ दुष्ट व्यसन[30] दुक्खद[31] सदा, कदी[32] न करवो[33] संग ॥ धन जीवन यश धर्म नो, तुरत करे छे भंग[34] ॥ २७५ ॥ भूख न वासी घाट[35] अरु, नींद न तूटी[36] खाट[37] ॥ कामी जात कुजात[38] नहिँ, देखे रात कि प्रात[39] ॥ २७६ ॥ रसिक[40] संग में रसिक जन, अति पामें आनंद ॥ अरसिक[41] साथे अहर्निस[42], पामे खेद[43] अमन्द[44] ॥ २७७ ॥ वड़े वड़े कूं देखि के, लघु[45] न दीजिये डार ॥ काम पड़ै जब सूचि[46] कों, कहाँ[47] करे तलवार ॥ २७८ ॥ जो मति[48] पीछे ऊपजै, सो मति पहिले होय ॥ काज न बिगड़े आपनो, जग में हँसे न कोय ॥ २७९ ॥ भाग्यहीन[49] कूँ ना मिले, भली वस्तु को भोग ॥ दाख पके मुखपाकवो[50], होत काग[51] कूँ रोग ॥ २८० ॥ करिये काम विचारिके, होय नहीं उपहास[52] ॥ कपि[53] नी पूँछ प्रजालतां[54], भयो लंक[55] को नास ॥ ॥ २८१ ॥ सोरठा—अड़े[56] न साँचहिं[57] आंच, जूंठ[58] न झाले आंचने ॥ पिघले[59] पलमें कांच, पण[60] कदि[61] रत्न न पीघले[62] ॥ २८२ ॥ इक[63] ताणे[64] इक ढील दे, तुटे[65] न काचो[66] तार ॥ ताणतताणत[67] तूटहीं[68], लोहा सांकर सार[69] ॥ २८३ ॥ समयप्रमाणे[70] सर्वदा[71], करिये काम तमाम ॥ दाम[72] हाम[73] निज[74] नाम वलि[75], दीपै कुल शय धाम[76] ॥ २८४ ॥ काजी पण पाजी[77] बने, शाह[78] बने छे चोर ॥ उत्तम ने अधमै करे, लोभी निपट[79] निठोर[80] ॥ २८५ ॥ तिय[81]

१-खराब ॥ २-भूतिनी ॥ ३-भूत ॥ ४-घुसता है ॥ ५-जिस के ॥ ६-हृदय में ॥ ७-अक्सर ॥ ८-घाव ॥ ९-घायल ॥ १०-होता है ॥ ११-बिछौना ॥ १२-बिछाकर ॥ १३-मालूम होता है ॥ १४-छलकता है ॥ १५-अधूरा, अपूर्ण ॥ १६-छलकता है ॥ १७-पण्डित ॥ १८-अच्छे कुल का ॥ १९-दुःख में डालनेवाला ॥ २०-क्रम से ॥ २१-सिंह के बाल ॥ २२-सांप की मणि ॥ २३-देवांगना ॥ २४-शूर का शस्त्र ॥ २५-पतिव्रता का स्तन ॥ २६-ब्राह्मण का धन ॥ २७-चढ़ेगा, आवेगा ॥ २८-हाथ में ॥ २९-मरने पर ही ॥ ३०-खराब आदत ॥ ३१-दुःख देने वाला ॥ ३२-कभी ॥ ३३-करना चाहिये ॥ ३४-नाश ॥ ३५-आटे की रावड़ी (जो मारवाड़ में मट्ठे में बनाई जाती है) ॥ ३६-टूटी हुई ॥ ३७-चारपाई ॥ ३८-खराब जाति ॥ ३९-सवेरा ॥ ४०-शौकीन ॥ ४१-बेशौकीन ॥ ४२-दिनरात ॥ ४३-दुःख, रज ॥ ४४-बहुत ॥ ४५-छोटा ॥ ४६-सुई ॥ ४७-क्या ॥ ४८-अक्ल ॥ ४९-भाग्य से रहित ॥ ५०-मुख का पकजाना ॥ ५१-कौआ ॥ ५२-हँसी, ठट्ठा ॥ ५३-बन्दर ॥ ५४-जलाने पर ॥ ५५-लङ्का ॥ ५६-पास आती है ॥ ५७-सत्य को ॥ ५८-झूंठ ॥ ५९-पिघलता है ॥ ६०-परन्तु ॥ ६१-कभी ॥ ६२-पिघलता है ॥ ६३-एक ॥ ६४-खींचे ॥ ६५-टूटे ॥ ६६-कच्चा ॥ ६७-खींचते खींचते ॥ ६८-टूट जाता है ॥ ६९-मजबूत ॥ ७०-समय के अनुकूल ॥ ७१-सदा ॥ ७२- ७३- ७४-अपना ॥ ७५-और ॥ ७६-घर ॥ ७७-दुष्ट ॥ ७८-साहूकार ॥ ७९-अत्यन्त ॥ ८०-निष्ठुर, दयाहीन ॥ ८१-स्त्री ॥

मर्कट[1] शिशु[2] भूप[3] को, मन नहिँ अचल[4] सुमित्र[5] ॥ सावधान[6] रह कर सदा, करो प्रतीति[7] पवित्र ॥ २८६ ॥ प्रेम[8] सत्य[9] प्रकट्यो[10] तिहां[11], रहे न पड़दो[12] लेश[13] ॥ योग्यायोग्य[14] विचारणा[15], निभे[16] न नेटे[17] निमेष[18] ॥ २८७ ॥ शक्ति छतां[19] पण अवरनां[20], दुःख न टाले[21] जेह[22] ॥ शरद ऋतू ना मेघसम[23], फोकट[24] गाजे[25] तेह[26] ॥ २८८ ॥ काम पड़े परखाय[27] छे, वस्तु मात्र[28] को नीर ॥ विण परखे सहुं एकसा, देखाये प्रिय वीर ॥ २८९ ॥ जिभ्यां[29] में अमिरत[30] वसै, विष भी तिण के पास ॥ इक वोलै तो लाख लै, एके लाख विनास ॥ २९० ॥ बात बात सब एक है, बतलावन में फेर[31] ॥ एक पवन[32] बादल मिलै, एक देत बीखेर ॥ २९१ ॥ भाग्य धवल[33] यदि[34] पुरुष को, (तो) दुख[35] फीटी सुख थाय[36] ॥ पिण[37] जो निर्बल[38] भाग्य तो, सुखज[39] समूलो[40] जाय[41] ॥ २९२ ॥ जो न जरे निश्चय करी, करजो[42] कार्य हमेश ॥ सदा लहो[43] सुख यश वली[44], कदी[45] न पावो क्लेश ॥ २९३ ॥ बुद्धि विना नर बापड़ो[46], बुद्धि थकी[47] बलवान ॥ बुद्धि थकी सुख सम्प[48] जे[49], बुद्धि गुणांरो[50] थान[51] ॥ २९४ ॥ साहस[52] प्राक्रम[53] बुद्धि[54] वले[55], उद्यम[56] धैर्य[57] जु होय ॥ तो डरता रहे देवपिण[58], जीति सके नहिं कोय ॥ २९५ ॥ माखी[59] वैठी गुड़ परें; रही पंख लिपटाय ॥ हाथ मले अरु सिर धुणे, लालच[60] बुरी बलाय[61] ॥ ॥ २९६ ॥ अमरवेलि[62] विनमूल[63] [64]छे, प्रतिपालेछे[65] ताहि[66] ॥ एम[67] नाथ ने वीसरी[68], ढूंढे छे तूँ काहि ॥ २९७ ॥ हीरा पड्यो चुहाट[69] में, छार[70] रह्यो लिपटाय ॥ कितनेहुँ मूरख नीसर्या[71], पारखि[72] लियो उठाय ॥ २९८ ॥ आपे छे जो मान विण, अमिरत[73] भलो न जाण ॥ प्रेमस-हित[74] विष पण[75] दिवे, भलो त्याग[76] छे प्राण ॥ २९९ ॥ मुक्ता[77] वणे कपूर पण, चातक[78] जी-वण जोय ॥ एतो[79] मोटो[80] तोय[81] पण, व्याल[82] मुक्ख[83] विष[84] होय[85] ॥ ३०० ॥

यह द्वितीय अध्याय का सुभाषित रत्नावलि नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१-बन्दर ॥ २-बालक ॥ ३-राजा ॥ ४-स्थिर ॥ ५-हे अच्छे मित्र ॥ ६-होशियार ॥ ७-विश्वास ॥ ८-मुहब्बत ॥ ९-सचाई ॥ १०-पैदा हुआ ॥ ११-वहां ॥ १२-पर्दा ॥ १३-ज़रा भी ॥ १४-उचित और अनुचित ॥ १५-विचार ॥ १६-निभता है ॥ १७-आखिर में ॥ १८-पल भर भी । १९-होने पर ॥ २०-दूसरे के ॥ २१-मिटाता है ॥ २२-जो ॥ २३-बादल के समान ॥ २४-व्यर्थ में ॥ २५-गरजता है ॥ २६-वह ॥ २७-परखा जाता ॥ २८-सब ॥ २९-जीम ॥ ३०-अमृत ॥ ३१-फर्क ॥ ३२-हवा ॥ ३३-साफ, उज्वल ॥ ३४-अगर ॥ ३५-मिटकर ॥ ३६-होता है ॥ ३७-परन्तु ॥ ३८-कमजोर ॥ ३९-सुख ही ॥ ४०-मूलसहित ॥ ४१-चला जाता है ॥ ४२-करो ॥ ४३-पाओ ॥ ४४-और ॥ ४५-कभी ॥ ४६-विचारा, दीन ॥ ४७-होने पर ॥ ४८-सम्पत्ति, एकता ॥ ४९-उत्पन्न होता है ॥ ५०-गुणों का ॥ ५१-स्थान ॥ ५२-हिम्मत ॥ ५३-बहादुरी ॥ ५४-अक्ल ॥ ५५-ताकत ॥ ५६-पुरुषार्थ, मेहनत ॥ ५७-धीरज ॥ ५८-देव भी ॥ ५९-मक्खी ॥ ६०-लोभ ॥ ६१-दुःख देनेवाला ॥ ६२-आकाशवेल ॥ ६३-विनाजड़ की ॥ ६४-है ॥ ६५-पालता है ॥ ६६-उस को ॥ ६७-ऐसे ॥ ६८-भूलकर ॥ ६९-बाजार ॥ ७०-धूल ॥ ७१-निकल गये ॥ ७२-परखनेवाला ॥ ७३-अमृत ॥ ७४-प्रेम के साथ ॥ ७५-भी ॥ ७६-छोड़ना ॥ ७७-मोती ॥ ७८-पपीहा ॥ ७९-इतना ॥ ८०-बड़ा ॥ ८१-पानी ॥ ८२-सांप ॥ ८३-मुँह में ॥ ८४-ज़हर ॥ ८५-होता है ॥

तीसरा प्रकरण—चेला[1] गुरु प्रश्नोत्तर ॥

गोहूं[2] सूखा खेत में, घोड़ा हींसकराय[3] ॥
पलंग थकी[4] धरै[5] पोढियां[6], कहु[7] चेला किण दाय ॥ १ ॥
गुरुजी पायो[8] नहीं ॥

पवन[9] पचारै[10] पत्तली[11], कामिणि[12] मुख कमलाय[13] ॥
मांडी[14] चौपड़ मेलग्यो*, कहु चेला किण दाय ॥ २ ॥
गुरुजी सारी[15] नहीं ॥

रजनी[16] अन्धारो[17] भयो, मिली रात वीहाय[18] ॥
बोयो[19] खेत न नीपंजो[20], कहु चेला किण दाय ॥ ३ ॥
गुरुजी ऊगो[21] नहीं ॥

बेटा कुम्वांरा[22] फिरै, कन्त[23] जु लूखो[24] खाय ॥
दीवै[25] उत्तर[26] आंपियो[27], कहु चेला किण दाय ॥ ४ ॥
गुरुजी सम्पत[28] नहीं ॥

रूप्यो[29] सूं[30] लाई दियो, वलद[31] पुराणी[32] खाय ॥
करहो[33] सहे जु कांवड़ी[34], कहु चेला किण दाय ॥ ५ ॥
गुरुजी चालै[35] नहीं ॥

हाली[36] खेड़े[37] इकांतरै[38], पंग[39] अलवांणे[40] जाय ॥
डूंबज[41] गावै[42] एकलो[43], कहु चेला किण दाय ॥ ६ ॥
गुरुजी जोड़ी[44] नहीं ॥

१–इस चेला गुरु प्रश्नोत्तर के अन्त में दिये हुए नोट को देखिये ॥ २–गेहूं ॥ ३–हिनहिनाता है ॥ ४–होते हुए भी ॥ ५–पृथिवी ॥ ६–शयन किया ॥ ७–बतलाओ चेले क्या कारण है (इस चौथे पाद का सर्वत्र यही अर्थ समझना चाहिये) ॥ ८–सींचा हुआ, पानी पिलाया हुआ, खाट का पागा (इसी प्रकार से तीन प्रश्नों के उत्तर संबंधी पद के सर्वत्र ३ अर्थ किये जांयगे, वे सर्वत्र क्रम से जान लेना चाहिये, क्योंकि मारवाड़ी भाषा में वह एक पद तीनों अर्थों का वाचक है) ॥ ९–हवा ॥ १०–उड़ाती है ॥ ११–पतंग ॥ १२–स्त्री ॥ १३–मुर्झा रहा है ॥ १४–शुरू की हुई ॥ *–रखगया १५–खैंची, अच्छी स्त्री, सारी ॥ १६–रात्रि ॥ १७–अंधेरा ॥ १८–डरावनी ॥ १९–बोया हुआ ॥ २०–पैदा हुआ ॥ २१–चन्द्रोदय, सूर्योदय, और उगा हुआ ॥ २२–कुँवारा ॥ २३–स्वामी ॥ २४–रूखा ॥ २५–दीपक ॥ २६–जवाब ॥ २७–दिया ॥ २८–दौलत, एकता और तेल ॥ २९–रुपया ॥ ३०–क्यों ॥ ३१–बैल ॥ ३२–लकड़ी खाता है ॥ ३३–ऊंट ॥ ३४–लकड़ी ॥ ३५–चलता है (सब में समान ही जानना चाहिये) ॥ ३६–किसान ॥ ३७–हल चलाता है ॥ ३८–एक दिन छोड़ कर ॥ ३९–पैर ॥ ४०–उघाड़े ॥ ४१–डोम ही ॥ ४२–गाता है ॥ ४३–अकेला ॥ ४४–दूसरा बैल, जूते और सहायक ॥

घोड़ा घोड़ी ना छिवै[1], चोर ठयेली[2] जाय ॥
कामण[3] कन्त जु परिहरै[4], कहु चेला किण दाय ॥ ७ ॥
गुरुजी जागै[5] नहीं ॥

घोड़ै मारग छांड़ियो[6], हिरण फड़ांके[7] जाय ॥
माली तो विलखो[8] फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ ८ ॥
गुरुजी वाग[9] नहीं ॥

पड़ी कवाण[10] न पाकलै[11], कामणि[12] ही छिटकाय[13] ॥
कवि[14] बूझंतां[15] खीजियो[16], कहु चेला किण दाय ॥ ९ ॥
गुरुजी गुण[17] नहीं ॥

अरट[18] न बाजै पाटड़ी[19], बालद प्यासो हि जाय ॥
धवल[20] न खंचै[21] गाडलो[22], कहु चेला किण दाय ॥ १० ॥
गुरुजी वुहवो[23] नहीं ॥

नारी[24] पुरुष न आदरै, तसकर[25] बांध्यो जाय ॥
तेजी[26] ताजणणो[27] खमैं[28], कहु चेला किण दाय ॥ ११ ॥
गुरुजी तेज[29] नहीं ॥

भोजन स्वाद[30] न ऊपजो[31], सगो[32] रिसायां[33] जाय ॥
कन्ते[34] कामण[35] परिहरी[36], कहु चेला किण दाय ॥ १२ ॥
गुरुजी रस[37] नहीं ॥

वैद[38] मान[39] पायो नहीं, सींगण[40] नांहि[41] सुलजाय[42] ॥
कन्ते कामण परिहरी, कहु चेला किण दाय ॥ १३ ॥
गुरुजी गुण[43] नहीं ॥

१-छूता है ॥ २-घीसता हुआ ॥ ३-स्त्री ॥ ४-छोड़ती है ॥ ५-कामोद्दीपन, जागता हुआ और कामोद्दीपन ॥ ६-छोड़ दिया ॥ ७-फलांग मारकर ॥ ८-व्याकुल ॥ ९-लगाम, वाग (सिंघ) और वाग अर्थात् वगीचा ॥ १०-कमान ॥ ११-चढ़ती है ॥ १२-स्त्री ॥ १३-दूर करती है ॥ १४-शायर ॥ १५-पूंछने पर ॥ १६-रुष्ट हुआ ॥ १७-डोरी और गुण (गुण पिछले दो में जानना) ॥ १८-अरहट यंत्र ॥ १९-पटड़ी ॥ २०-वैल ॥ २१-खींचता है ॥ २२-गाड़ी ॥ २३-चला (तीनों में समान) ॥ २४-स्त्री ॥ २५-चोर ॥ २६-घोड़ा ॥ २७-चावुक ॥ २८-सहता है ॥ २९-तेज (तीनों में समान ही जानो) ॥ ३०-जायका ॥ ३१-पैदा हुआ ॥ ३२-संबंधी ॥ ३३-गुस्से में होकर ॥ ३४-स्वामी ॥ ३५-स्त्री ॥ ३६-छोड़ दी ॥ ३७-नमक, प्रीति और रति का सुख ॥ ३८-हकीम ॥ ३९-इज्जत ॥ ४०-तिल ॥ ४१-नहीं ॥ ४२-सुलता है ॥ ४३-पहिले और तीसरे में गुण दूसरें में घुन (जन्तु) ॥

हीरो[1] झांखो[2] पड़ गयो, वाग गयो वीलाय[3] ॥
दरपण[4] में दीसै[5] नहीं, कहु चेला किण दाय ॥ १४ ॥
गुरुजी पांणी[6] नहीं ॥

छींपा[7] घर सोभा[8] नहीं, कामण[9] पीहर[10] जाय ॥
छयल[11] पाघ[12] नहिं मोलवै[13], कहु चेला किण दाय ॥ १५ ॥
गुरुजी रंग[14] नहीं ॥

गहुं[15] सूखै हल हू थकै, वाटै[16] रथ नहिं जाय ॥
चालन्तो[17] ढीलो[18] चलै, कहु चेला किण दाय ॥ १६ ॥
गुरुजी जूतो[19] नहीं ॥

चौपड़[20] रमै[21] न चौहटै[22], तीतर जालां[23] जाय ॥
राज द्वार आदर नहीं, कहु चेला किण दाय ॥ १७ ॥
गुरुजी पांसो[24] नहीं ॥

धान[25] पड्यो[26] आटो नहीं, धोरै[27] नीरै[28] न जाय ॥
कातण[29] जोगी[30] भूखां मरै, कहु चेला किण दाय ॥ १८ ॥
गुरुजी फेरी[31] नहीं ॥

भांभी[32] साल[33] न वांजवै[34], नांणों[35] लै फिरि जाय ॥
पांगा[36] ढीला साल[37] में, कहु चेला किण दाय ॥ १९ ॥
गुरुजी वणियो[38] नहीं ॥

वैण[39] वुलन्तां[40] लड़थड़ै[41], नायण[42] गीत न गाय[43] ॥
भोजन धारै[44] जु जीमणो, कहु चेला किण दाय ॥ २० ॥
गुरुजी दांत[45] नहीं ॥

१–हीरा ॥ २–मैला ॥ ३–बिगड़ गया ॥ ४–शीशा ॥ ५–दीखता ॥ ६–सान, जल और आव ॥ ७–वस्त्र छापनेवाला ॥ ८–रौनक ॥ ९–स्त्री ॥ १०–मायका ॥ ११–शौकीन ॥ १२–पगड़ी ॥ १३–मोल लेता है ॥ १४–रंगनेका रंग, प्रीति और क्रीड़ा ॥ १५–गेहूं ॥ १६–मार्ग में ॥ १७–चलता हुआ ॥ १८–सुस्त ॥ १९–जुता हुआ खेत, जोता हुआ बैल और जूता ॥ २०–एक खेल ॥ २१–खेलता है ॥ २२–बाज़ार में ॥ २३–जालवृक्ष ॥ २४–खेलने का पासा, जाल और मुलाकात ॥ २५–अनाज ॥ २६–पड़ा हुआ ॥ २७–रेत का टीला ॥ २८–पानी ॥ २९–नामविशेष ॥ ३०–योगी ॥ ३१–चक्की, नाली और फिरकर मांगना ॥ ३२–ढेढ ॥ ३३–ताणा ॥ ३४–तानता है ॥ ३५–द्रव्य ॥ ३६–पावा ॥ ३७–छेद में ॥ ३८–बना हुआ, बनियां और बना हुआ ॥ ३९–वचन ॥ ४०–बोलता हुआ ॥ ४१–गिड़गिड़ाता है ॥ ४२–नाई की स्त्री ॥ ४३–गाती है ॥ ४४–कठिन ॥ ४५–दाँत (तीनों में समान जानो) ॥

खेत [1]नठो [2]किण [3]कारणें, [4]चोपद घर घर जाय ॥
[5]गुल [6]मुंहगो [7]किणविध [8]हुवो, कहु चेला किण दाय ॥ २१ ॥
गुरुजी [9]वांड़ नहीं ॥

[10]अमल [11]अटकाँ [12]गल गयो, [13]दाढ़ी बधती जाय ॥
[14]चांभा [15]अनन न [16]वाचियो, कहु चेला किण दाय ॥ २२ ॥
गुरुजी [17]नांई नहीं ॥

[18]पन्थ [19]वटाऊ ना [20]वहै, [21]सयण पुहूँचो [22]जाय ॥
[23]ईस [24]गोरज्याँ [25]हालणाँ, कहु चेला किण दाय ॥ २३ ॥
गुरुजी [26]वोलवो नहीं ॥

[27]वनराजा [28]री नाम [29]सुण, [30]पटो छोड़ घर जाय ॥
[31]लिखतां [32]लेखण क्यों [33]तजी, कहु चेला किण दाय ॥ २४ ॥
गुरुजी [34]सेही नहीं ॥

मोती [35]मोटो [36]मोल कम, [37]सरवर [38]पीड़ न [39]थाय ॥
[40]रावत भागो [41]राड़ में, कहु चेला किण दाय ॥ २५ ॥
गुरुजी [42]पाणी नहीं ॥

पान सड़ै घोड़ो [43]अड़ै, विद्या [44]वीसर जाय ॥
[45]रोटो जलै [46]अंगार में, कहु चेला किण दाय ॥ २६ ॥
गुरुजी [47]फेर्‌यो नहीं ॥

दूध [48]उफाण्यो [49]ऊफण्यो, [50]वच्छै [51]चूंगी गाय ॥
[52]मिनकी [53]माखण ले गई, कहु चेला किण दाय ॥ २७ ॥
गुरुजी [54]देख्यो नहीं ॥

१-नष्ट हुआ ॥ २-किस ॥ ३-कारण से ॥ ४-चतुष्पद ॥ ५-गुड़ ॥ ६-तेज, मँहगा ॥ ७-किस तरह से ॥ ८-हुआ ॥ ९-चाड़, वाड़ और आमद ॥ १०-अफीम ॥ ११-गला ॥ १२-डाढ़ी ॥ १३-चढ़ती जाती है ॥ १४-हल की लीक ॥ १५-अन्न ॥ १६-वचा हुआ ॥ १७-पहिले दो में नाई, तीसरे में हलकी भूंगली ॥ १८-रास्ता ॥ १९-यात्री ॥ २०-चलता है ॥ २१-सम्बन्धी ॥ २२-लौट गया ॥ २३-महादेव ॥ २४-पार्वती ॥ २५-चलना ॥ २६-बोलनेवाला, सत्कार और बुलावा ॥ २७-सिंह ॥ २८-का ॥ २९- सुनाई देता है ॥ ३०-जागीर ॥ ३१-लिखते हुए ॥ ३२-कलम ॥ ३३-छोड़ दी ॥ ३४-सेही (जंतुविशेष); मोहर और स्याही ॥ ३५-बड़ा ॥ ३६-कीमत ॥ ३७-तालाव ॥ ३८-भीड़ ॥ ३९-होती है ॥ ४०-नामविशेष ॥ ४१-लड़ाई ॥ ४२-आब, जल और तेज ॥ ४३-अड़ता है ॥ ४४-भूल ॥ ४५-रोटी ॥ ४६-अग्नि ॥ ४७-फेरना यानी संभालना (तीनों में समान) ॥ ४८-उफान ॥ ४९-आया ॥ ५०-बछड़ा ॥ ५१-पी ली ॥ ५२-बिल्ली ॥ ५३-मक्खन ॥ ५४-देखा नहीं (तीनों में समान) ॥

[1]धुंई [2]धुंवो ना [3]सञ्चरै, [4]मँहिले [5]पवन न जाय ॥
[6]झीवँर [7]विलँखो क्यूँ फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ २८ ॥
गुरुजी [8]जाली नहीं ॥

घड़ो [9]झरन्तो ना रहै, [10]पींढे रोवै [11]बाल ॥
सासु बैठि [12]बहु [13]पौरुसै, कहु चेला किण दाय ॥ २९ ॥
गुरुजी [14]सारो नहीं ॥

कपड़ो [15]पोतं न [16]पकड़ै, [17]मूंज मेल नहिं खाय ॥
चोधरि [18]रूठ्यो क्यूं फिरै, कहु चेला किण दाय ॥ ३० ॥
गुरुजी [19]कूंट्यो नहीं ॥

[20]सूंको पीपल [21]खरंहरो, कलियां [22]हुइं विणासं ॥
[23]होको [24]सूंधो क्यूं पड्यो, कहु चेला किण दाय ॥ ३१ ॥
गुरुजी [25]पान नहीं ॥

[26]बाड़ज [27]डोलै [28]बहु [29]बुलै, लावं [30]सरं कै [31]जाय ॥
आग [32]भभूकां क्यूं करै, कहु चेला किण दाय ॥ ३२ ॥
गुरुजी [33]दाबी नहीं ॥

गाड़ी पड़ी [34]उजाड़ में, [35]पणगट [36]ठाली जाय ॥
कांटो लागो पांव में, कहु चेला किण दाय ॥ ३३ ॥
गुरुजी [37]जोड़ी नहीं ॥

घोड़ो [38]तिणो न [39]चाखवै, [40]चाकर [41]रूठो जाय ॥
[42]पिलँग [43]थँकी [44]धँर [45]पोढ़जे, कहु चेला किण दाय ॥ ३४ ॥
गुरुजी [46]पायो नहीं ॥

१-आग जलाने का गड्ढा ॥ २-धुआं ॥ ३-निकलता ॥ ४-महल ॥ ५-हवा ॥ ६-मछली पकड़नेवाला ॥ ७-व्याकुल ॥ ८-जलाई हुई, खिड़की (जाली) और जाल ॥ ९ झरना हुआ ॥ १०-छोटी मांची ॥ ११-बालक ॥ १२-बहू ॥ १३-परोसती है ॥ १४-पारा, नीरोग और अधिकार ॥ १५-गाढ़ापन ॥ १६-पकड़ता है ॥ १७-एक घास ॥ १८-रूठा हुआ ॥ १९-कूटा हुआ (दो में) और मारा हुआ ॥ २०-सूखा हुआ ॥ २१-खड़खड़ाता है ॥ २२-नष्ट, नाश ॥ २३-हुक्का ॥ २४-उलटा ॥ २५-पत्ते (दो में) और तमाखू ॥ २६-बाड़ ॥ २७-हिलती है ॥ २८-बहुत ॥ २९-बोलती है ॥ ३०-रस्सा ॥ ३१-बहुत तेज़ी के साथ ॥ ३२-भभकना ॥ ३३-दबाई हुई (तीनों में समान जानना चाहिये) ॥ ३४-जंगल ॥ ३५-पनिहारी ॥ ३६-खाली ॥ ३७-जोड़ी का बैल (दो में) और जूते ॥ ३८-घास ॥ ३९-खाता है ॥ ४०-नौकर ॥ ४१-क्रुद्ध ॥ ४२-पलंग ॥ ४३-होने पर भी ॥ ४४-ज़मीन ॥ ४५-सोता है ॥ ४६-पिलाया हुआ, पाया हुआ और चार पाई का पागा ॥

वंडलो[1] रूंख[2] बंधे[3] नहीं, दुनिया मालवें[4] जाय ॥
लिखिया[5] खत कूंड़ा[6] पड़े, कहु चेला किण दाय ॥ ३५ ॥
गुरुजी साख[7] नहीं ॥
गाड़ी पड़ी[8] गवाड़[9] में, कुए खड़ी पणिहार[10] ॥
गोरी[11] ऊभी[12] गोखड़े[13], कहु चेला किण दाय ॥ ३६ ॥
गुरुजी जोड़ी[14] नहीं ॥
कोस पिछोकड़[15] क्यूं पड्यो, सोच बटाऊ[16] खाय ॥
अणवीलोयो[17] क्यूं पड्यो, कहु चेला किण दाय ॥ ३७ ॥
गुरुजी फाट[18] गयो ॥
गाड़ी लीक[19] न दीसवै[20], घाणी[21] तेल न थाय[22] ॥
कांटो लागो पांव में, कहु चेला किण दाय ॥ ३८ ॥
गुरुजी जोड़ी[23] नहीं ॥
गुंटमण[24] गुटमण फिरतो दीठो[25], कोइ जोगी होयगो[26] ॥
नां[27] गुरु जी सूत लपेट्यो[28], कोइ तांणो[29] तणतो[30] होयगो ॥
ना गुरु जी मुख लोहा जड़ियो[31], कोइ सोनूं[32] तायो[33] होयगो ॥
ना गुरु जी पकड़ पछाड्यो[34], वे[35]लो वधग्यो[36] ऐ गाहै[37] रो ॥
अरथ[38] कहो तो तुम गुरु हम चेलो ॥ ३९ ॥
लट्टू ॥

इति चेलो[39] गुरु प्रश्नोत्तरं समाप्तम् ॥

यह द्वितीय अध्याय का चेलागुरु प्रश्नोत्तरनामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१-वट (वड़) ॥ २-वृक्ष ॥ ३-बढ़ता है ॥ ४-मालवा देश ॥ ५-लिखा हुआ ॥ ६-झूंठा ॥ ७-शाखा, सुभिक्ष और गवाही ॥ ८-पड़ी हुई ॥ ९-मुहल्ला ॥ १०-पानी भरनेवाली ॥ ११-स्त्री ॥ १२-खड़ी हुई है ॥ १३-झरोखे में ॥ १४-जोड़ी का बैल (दो में) और किवाड़ों की जोड़ी ॥ १५-पीछे का स्थान ॥ १६-यात्री, मुसाफिर ॥ १७-विना मथा हुआ ॥ १८-फटा हुआ चर्मवस्त्र, फँटा हुआ मार्ग और फटा हुआ दूध ॥ १९-लकीर, पंक्ति ॥ २०-दीखती है ॥ २१-तेली की घाणी ॥ २२-होता है ॥ २३-जोती हुई, (दो में) और जूतों की जोड़ी ॥ २४-भनभनाता हुआ ॥ २५-देखा ॥ २६-होगा ॥ २७-नहीं ॥ २८-लपेटा हुआ ॥ २९-वुनना ॥ ३०-वुनता हुआ ॥ ३१-जड़ा हुआ ॥ ३२-सोना ॥ ३३-तपाया ॥ ३४-गिरा दिया ॥ ३५-जल्दी ॥ ३६-बढ़ गया ॥ ३७-गाथा, छन्द ॥ ३८-मतलव ॥ ३९-इन दोहों का मारवाड़ देश में अधिक प्रचार देखा जाता है और बहुत से भोले लोगों का ऐसा ख्याल है कि किसी गुरु तथा चेले के आपस में यह प्रश्नोत्तर हुआ है और इस में चेला गुरु से जीत गया है, परन्तु यह बात सत्य नहीं है— किन्तु यथार्थ बात यह है कि— ये चेलागुरुप्रश्नोत्तररूप दोहे-किसी मारवाड़ी

इति श्री जैन श्वेताम्बर-धर्मोपदेशक-यतिप्राणाचार्य विवेकलब्धिशिष्य शीलसौभाग्यनिर्मितः, जैनसम्प्रदायशिक्षायाः ।

द्वितीयोऽध्यायः ॥
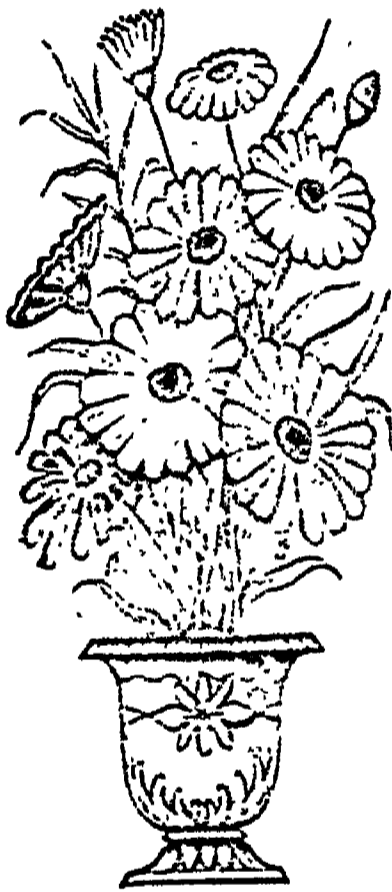
कवि ने अपनी बुद्धि के अनुसार डिंगल कविता में बनाये हैं, यद्यपि इन दोहों की कविता ठीक नहीं है- तथापि इन में यह चातुर्य है कि तीन प्रश्नों का उत्तर एक ही वाक्य में दिया है और इन का प्रचार मरुस्थल में अधिक है अर्थात् किसी पुरुष को एक दोहा याद है, किसी को पांच दोहे याद हैं, किन्तु ये दोहे इकट्ठे कहीं नहीं मिलते थे, इसलिये अनेक सज्जनों के अनुरोध से इन दोहों का अन्वेषण कर उल्लेख किया है अर्थात् बीकानेर के जैनहितवल्लभ ज्ञानभंडार में ये ३९ दोहे प्राप्त हुए थे सो यहां पे लिखे गये हैं— तथा यथाशक्य इन का संशोधन भी कर दिया है और अर्थज्ञान के लिये अंक देकर शब्दों का भावार्थ भी लिख दिया है ॥

तृतीय अध्याय ॥

मङ्गलाचरण[1] ॥

देवि शारदहिँ ध्यायि के, सद गृहस्थ को काम ॥
वरणत हौं मैं जो जगत, सब जीवन को धाम ॥ १ ॥

प्रथम प्रकरण—स्त्री पुरुष का धर्म ॥

स्त्री का अपने पति के साथ कर्तव्य ॥

इस संसार में स्त्री और पुरुष इन दोनों से गृहस्थाश्रम बनता और चलता है किन्तु विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि— इन दोनों की स्थिति, शरीर की रचना, स्वाभाविक मन का वल, शक्ति और नीति आदि एक दूसरे से भिन्न २ हैं, इस का कारण केवल स्वभाव ही है, परन्तु हां यह अवश्य मानना पड़ेगा कि— पुरुष की वुद्धि उक्त वातों में स्त्री की अपेक्षा श्रेष्ठ है– इस लिये उस (पुरुष) ही पर गृहसम्बंधी महत्त्व तथा स्त्री के भरण, पोषण और रक्षण आदि का सब भार निर्भर है और इसी लिये भरण पोषण करने के कारण उसे भर्त्ता, पालन करने के कारण पति, कामना पूरी करने के कारण कान्त, प्रीति दर्शाने के कारण प्रिय, शरीर का प्रभु होने के कारण स्वामी, प्राणों का आधार होने के कारण प्राणनाथ और ऐश्वर्य का देनेवाला होने से ईश कहते हैं, उक्त गुणों से युक्त जो ईश अर्थात् पति है और जो कि संसार में अन्न, वस्त्र और आभूषण आदि पदार्थों से स्त्री का रक्षण करता है– ऐसे परम मान्य भर्ता के साथ उस से उऋण होने के लिये जो स्त्री का कर्त्तव्य है— उसे संक्षेप से यहां दिखलाते हैं, देखो! स्त्री को माता पिता ने देव, अग्नि और सहस्रों मनुष्यों के समक्ष जिस पुरुष को अर्पण किया है– इस लिये स्त्री को चाहिये कि उस पुरुष को अपना प्रिय पति जानकर सदैव उस की सेवा करे– यही स्त्री का परम धर्म और कर्त्तव्य है, पति पर निर्मल प्रीति रखना, उस की इच्छा को पूर्ण करना और सदैव उस की आज्ञा का पालन करना, इसी को सेवा कहते हैं, इस प्रकार जो स्त्री अपनी सब इन्द्रियों को वश में रख कर तन मन और कर्म से अपने पति की सेवा के सिवाय दूसरी कुछ भी इच्छा नहीं रखती है– वही पतिव्रता,

---

१–मंगलाचरण का अर्थ– मैं (ग्रन्थकर्ता) श्री शारदा (सरस्वती) देवी का ध्यान करके अव श्रेष्ठ गृहस्थ के कार्य का वर्णन करता हूं जो कि सद्गृहस्थ सव के जीवन का स्थान (आधार) है ॥

साध्वी और सती कहलाती है और जो स्त्री पतिव्रता तथा पतिप्राणा होकर सर्वदा खुशी से अपने स्वामी की सेवा करती है वही धर्मभागिनी होती है तथा उसी स्त्री को स्वामी की सेवा करने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है— क्योंकि-स्त्री का जो कुछ सर्वस्व है वह केवल पति ही है, पति के ही प्रताप से स्त्री अनेक प्रकार का वैभव (ऐश्वर्य) भोग सकती है, पति ही से स्त्री का शृंगार शोभा देता है, सौभाग्य रहता है और पति ही से पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है, इस प्रकार अमूल्य और अकथनीय लाभ पहुँचानेवाले पति की निरन्तर प्रीति से सेवा करना, मर्यादा रखकर उस को मान देना और पूज्य मानना तथा उस का अपमान या तिरस्कार नहीं करना, यही स्त्री का प्रधान (मुख्य) कर्त्तव्य है।

स्त्री को चाहिये कि-जब पति बाहर से घर में आवे उस समय खड़ी होकर आसन और जल आदि देकर उस का सत्कार करे, पति अपने वस्त्र उतार कर सौंपे उन को लेकर अच्छे स्थान में रख देवे और मांगने पर उन (वस्त्रों) को हाज़िर करे, नियमपूर्वक, रुचि के अनुसार तथा ऋतु के अनुकूल रसोई बना कर खिलावे, व्यर्थ बातें करके उस के मन को कष्ट न पहुँचावे किन्तु प्रिय मधुर और लाभकारी बातों से उस के मन को प्रसन्न करे, यदि पति किसी कारण से क्रुद्ध (खफा) हो जावे तो धीरज रख कर वचनामृत (वचनरूपी अमृत) से उस के क्रोध को शान्त करे, उस से वाद विवाद कदापि न करे, यदि कभी पति की भूल भी मालूम पड़े तो उस की उस भूल को क्रोध के साथ न कह कर शान्तिपूर्वक युक्ति से समझा कर कहे, व्यर्थ क्रोध कर मनमानी बात मुख से कभी न निकाले, कभी विश्वासघात न करे क्योंकि विश्वासघात करने से स्त्री की निकृष्ट (खोटी) गति होती है, जिस से पति का मन दुःखित हो ऐसा काम कभी न करे, पति के साथ ऊंचे स्वर से न बोले, विपत्ति पड़ने पर पति को धीरज देवे तथा दुःख में शामिल होवे, अपनी कोई भूल हो गई हो तो उस को न छिपाकर पति से क्षमा मांगे, सर्वदा पति की आज्ञा से ही सब व्यवहार ... ईश्वरभक्ति तथा व्यवहारसम्बन्धी सब कार्यों में पति की सहायता करे, अपनी कोई भूल होने पर यदि पति क्रुद्ध हो जावे तो स्त्री को चाहिये कि अपना धर्म समझ के मधुर और विनय के वचनों से इस प्रकार उस के क्रोध को दूर करे "हे प्राणनाथ ! आप मुझ दासी पर ऐसा क्रोध मत करो, क्योंकि इस दासी से विना जाने यह भूल हो गई है, मैं आप से कर (हाथ) जोड़ कर इस भूल की क्षमा मांगती हूं और आगामी को (भविष्यत् में) ऐसी भूल कदापि न हो सकेगी, मैं तो आप की आज्ञा उठानेवाली आप की दासी हूं, जो कुछ आप कहोगे वही मैं सच्चे भाव से (शुद्ध हृदय से) करूंगी, क्योंकि हे जीवनाधार! यह स्वाभाविक (कुदरती) नियम है कि–लड़की अपने मा बाप के घर में पाल पोष कर बड़ी होती है परन्तु उस को अपना सम्पूर्ण जन्म तो पति ही के साथ व्यतीत करना होता है इस

लिये मेरे सच्चे सम्बन्ध में तो केवल आप ही हो, आप यदि मुझे दुःख भी दो तो भी कुछ अनुचित नहीं है, क्योंकि आप मेरे स्वामी हो और मैं आप की दासी हूं, हे नाथ! आप को जो क्रोधजन्य (क्रोध से उत्पन्न होने वाला) दुःख हुआ उस का हेतु मैं ही मन्दभागिनी हूं परन्तु मैं अब प्रतिज्ञापूर्वक (वादे के साथ) आप से कहती हूं कि-आगामी को ऐसा अपराध इस दासी से कदापि न होगा किन्तु सर्वदा आप के चित्त के अनुकूल ही सब व्यवहार होगा, क्योंकि जहां तक मैं आप से मान नहीं पाऊं वहां तक मेरा वस्त्रालंकार, व्यवहार, चतुराई, गुण और सुन्दरता आदि सब बातें एक कौड़ी की कीमत की नहीं हैं" इत्यादि।

स्त्रियों को सोचना चाहिये कि-जो स्त्री पति के गौरव को समझनेवाली, प्रेम रखनेवाली और पति को प्रसन्न करनेवाली होगी-भला वह पति को प्यारी क्यों न लगेगी अर्थात् अवश्य प्यारी लगेगी, क्योंकि शरीर प्रेम का हेतु नहीं है किन्तु गुण ही प्रेम के हेतु होते हैं, इस लिये पतिप्राणा (पति को प्राणों के समान समझनेवाली) स्त्री को उचित है कि-पति की आज्ञा के विना कोई काम न करे और न पति की आज्ञा के विना कहीं जावे आवे, सुज्ञ स्त्री को उचित है कि अपना विवाह होने से प्रथम ही पति की जितनी तहकीकात और चौकसी करनी हो उतनी कर ले किन्तु विवाह होने के पश्चात् तो यदि दैवेच्छा से रोगी, बहिरा, अन्धा, लँगड़ा, लूला, मूर्ख, कुरूप, दुर्गुण तथा अनेक दोषों से युक्त भी पति हो तो भी उस पर सच्चा भाव (शुद्ध प्रेम) रख कर उस की सेवा तन मन से करनी चाहिये, यही स्त्रियों का सनातन धर्म है और यही स्त्रियों को उत्तम सुख की प्राप्ति कराने वाला है, किन्तु जो स्त्रियां विवाह के पश्चात् अपने पति के अनेक दोषों को प्रकट कर उस का अपमान करती हैं तथा उस को कुदृष्टि से देखती हैं-यह उन (स्त्रियों) की महाभूल है और वे ऐसा करने से नरक की अधिकारिणी होती हैं, इस लिये समझदार स्त्री को ऐसा कदापि नहीं करना चाहिये।

देखो! इस गृहस्थाश्रम में स्त्री और पुरुष इन दोनों में से पुरुष तो घर का राजा है और स्त्री घर की कार्यवाहिका (कारबार करनेवाली अर्थात् मन्त्रीरूप) है और यह सब ही जानते हैं कि मन्त्री का अपने राजा के आधीन रह कर उस की सेवा करना और उस के हित का सदैव विचार करना ही परम धर्म है, बस यही बात स्त्री को अपने विषय में भी सोचना चाहिये, जैसे मन्त्री का यह धर्म है कि अपने प्राणों को तज कर भी राजा के प्राणों की रक्षा करे उसी प्रकार इस संसार में स्त्री का भी यह परम धर्म है कि-यदि अपना प्राण भी तजना पड़े तो अपने प्राणों को तज कर भी स्वामी के हित में सदा तत्पर रहे, देखो! इसी वचनामृत का स्मरण कर सती तारामती ने अपने प्राणप्रिय पति हरिश्चन्द्र का शरीर की छाया के समान संग न छोड़कर अपने धर्म का निर्वाह किया था, वह पति के हित के लिये दूसरे के घर बिकी, पति का वियोग हुआ बहुत से

दुःख भोगे और ऐसी अवस्था में भी सन्तोष के एकमात्र आधार इकलौते पुत्र का मरण हुआ, उस को जलाने के लिये मसान का भाड़ा देने योग्य भी कुछ पास नहीं रहा, ऐसी महादुःखदायिनी दशा के आ पड़ने पर भी उस वीरांगना ने अपने पति पर से ज़रा भी प्रेम कम नहीं किया और अपना शील भंग नहीं किया, अन्त में पति के हाथ से ही मरने का समय आया तब भी ज़रा भी न घबड़ा के पूर्ण प्रेम प्रकट कर बोली कि "हे प्राणनाथ ! आप के हाथ से मेरे गले में डाली हुई यह तलवार मुझ को मोती की माला के समान लगेगी, इस लिये आप कुछ भी चिन्तातुर न हो कर शीघ्र ही यह काम करो" वाह धन्य है ! यह कैसा अद्भुत प्रेम है!! धन्य है इस पतिप्राणा स्त्री को जिस ने स्वामिभक्ति में ही अपने जीवन को भी प्रदान कर सुकीर्ति प्राप्त की, इसी प्रकार से अन्य भी बहुत सी साध्वी स्त्रियों ने अपने पति की प्राणरक्षा के लिये अपने जीवन को तुच्छ जान कर अपने प्राण दिये हैं अर्थात् अपने पति की प्राणरक्षा के लिये अनेक वीरांगनायें युद्धाग्नि में अपने जीवन को आहुत कर चुकी हैं और प्राण जाने के समय तक पति पर अखण्ड प्रेम रख कर अपने शील का परिपालन दिखा गई हैं. जब यह बात है तो पति के वचनों का पालन करने में अनेक दुःखों का सहन करना तो सती स्त्रियों के लिये एक साधारण बात है, इस के सहस्रों उदाहरण प्राचीन स्त्रियों के चरित्र पढ़ने से अवगत (ज्ञात) हो सकते हैं ।

सत्य तो यह है कि–जिस स्त्री में विश्वासपात्रता और पतिसम्बन्धी निर्मल प्रेम न हो उस को स्त्री का नाम देना ही समुचित नहीं है, क्योंकि–स्त्री वही है जो पति को देवरूप समझ के अन्तःकरण से उस को चाहती हो तथा उसी को अपना स्वामी, नाथ, वल्लभ और प्राणाधार समझती हो तथा जीवनपर्यन्त भी उस की सेवा से उऋण न हो सकने का विचार जिस के अन्तःकरण में हो, क्योंकि जो स्त्री अपने पति के उपकारों का स्मरण न कर पति के साथ निमकहरामी करके उस के वचनों को तोड़ती है वह इस लोक और पर लोक में महादुःखिनी होती है, क्योंकि अनादि काल के कुदरती नियम को तोड़ने से उस को दुःखरूप फल भोगना ही पड़ता है ।

स्त्रियों के लिये पति ईश्वर के तुल्य है–चाहे वह किसी दशा में तथा किसी भी स्थिति में क्यों न हो, क्योंकि स्त्री ने अपनी राज़ी खुशी से और अक्ल तथा होशियारी से बहुत से मनुष्यों के समक्ष में प्रण (वचन) दिया है और मा बाप ने भी जिस के हाथ में उस का हाथ सौंपा है उस पति की सदा आज्ञा का पालन करना स्त्री का प्रथम कर्तव्य है, इस लिये जो स्त्री अच्छे प्रकार से विश्वासपात्रता के साथ अपने वचन के पालन करने का प्रयत्न करती है उसको कुदरती नियम के अनुसार निरन्तर सुख प्राप्त होता है, देखो किसी का वाक्य है:—

जे नारी निज नाथ साथ रहिने आनन्द लेवा चहे।
ते नारी पति नी रुड़ी रति वड़े सौभाग्यवन्ती रहे ॥
सांचो स्नेह स्वनाथ नो समजवो बीजो जुठो जाणजो।
सेवा नीज पती तणी भलि करी मोज्यूं रुड़ी माणंजो ॥ १ ॥

इस वाक्य का अर्थ यह है कि जो स्त्री अपने पति के साथ रह कर आनन्द भोगना चाहे वह अपने पति में अपना सच्चा प्रेम रक्खे और पति से ही अपने को सौभाग्यवती समझे तथा अपने स्वामी का ही स्नेह सच्चा समझे और सब के स्नेह को झूंठा समझे और उस को चाहियें कि पति की अच्छे प्रकार से सेवा करने में ही उत्तम मौज समझे ॥ १ ॥

'स्त्री को स्वामी की सेवा करनी चाहिये, यह कुछ अर्वाचीन (नवीन) काल का धर्म नहीं है किन्तु यह धर्म तो प्राचीन काल से ही चला आता है और इस का कथन केवल जैन आर्य शास्त्र के ज्ञाता आर्य महात्मा लोग ही करते हों यह बात भी नहीं समझनी चाहिये किन्तु पृथ्वी के सर्व धर्मशास्त्र और सर्व धर्मों के अग्रगन्ताओं ने भी यही सिद्धान्त निश्चित किया है, देखो! ख्रिष्टीय धर्मग्रन्थ में एक स्थान में ईशू की माता मरियम ने कहा है कि-"हे स्त्रियो! जैसे तुम प्रभु के आधीन होती हो उसी प्रकार अपने पति के आधीन रहो, क्योंकि-पति स्त्री का शिर रूप है" जर्थोस्ती ने पारसी लोगों के धर्मग्रन्थ जन्दावस्था में कहा है कि-"वही औरत बहुत नेक, पढ़ी हुई और चतुर है जो कि-अपने पति को सर्दार तथा बादशाह गिनती है" इसी प्रकार से जर्मन देश के विद्वान् मि. टेलर ने भी कहा है कि-"स्त्री को अपने पति के तावे में रहना, उस की सेवा करना, उस को राज़ी रखना, मान देना और जिस काम से उस का मन प्रसन्न हो वही काम करना चाहिये"।

जो चतुर स्त्री ऐसा वर्ताव करेगी उस को उस का पति आप ही मान सत्कार देगा, जो स्त्री समझदार होगी वह तो अपने पति को नेक सलाह और मदद देने का काम आप ही करेगी।

स्त्री को चाहिये कि-उस का पति जो उस को अन्न वस्त्र और आभूषण आदि पदार्थ देवे उन्हीं पर सन्तोष रक्खे, पति के सिवाय दूसरा पुरुष चाहे जैसा पृथ्वीपति (राजा) भी क्यों न हो तथा रूपवान्, बुद्धिमान्, युवा और बलवान् भी क्यों न हो तथा चाहे सब पृथ्वी का धन भी क्यों न मिलता हो तथापि उस को काकविष्ठा (कौए की विष्ठा) के समान तुच्छ गिने और उस के सामने दृष्टि भी न करे, क्योंकि धर्मशास्त्रों का कथन है कि "पर पुरुष का सेवन करने से स्त्री को घोर नरक की प्राप्ति होती है" देखो! इस

१ यह छन्द गुजराती भाषा का है ॥

संसार में सब ही दृश्य (दीखने वाले) धन आदि पदार्थ नाशवान् हैं, इस लिये वे सब तुच्छ समझे जाते हैं, केवल एक धर्म ही अचल तथा सुख देनेवाला है, यही बात नीतिशास्त्र में भी कही है कि–चला लक्ष्मीः चलाः प्राणाः चले जीवितमन्दिरे ॥ चलाचले च संसारे, धर्म एको हि निश्चलः ॥ १ ॥ अर्थात् लक्ष्मी चलायमान है, प्राण चलायमान हैं तथा जीवन और मन्दिर (घर) भी चलायमान हैं किन्तु इस चलाचल संसार में एक धर्म ही अचल पदार्थ है ॥ १ ॥ इस लिये धर्म ही महान् है, इस महान् धर्म का पालन करना ही पतिव्रता स्त्री का मुख्य कार्य है, क्योंकि मरने के समय जगत् के नाना प्रकार के धन और आभूषणादि पदार्थ यहां ही पड़े रह जाते हैं इन पदार्थों में से कोई भी साथ नहीं चलता है किन्तु मनुष्य का किया हुआ एक धर्म और अधर्म ही उस के साथ चलता है, इन दोनों में से अधर्म तो मनुष्य को नरक में डाल कर नाना प्रकार के दुःखों का देनेवाला है और धर्म स्वर्ग तथा मोक्ष में ले जा कर परमोत्तम अक्षय और अनन्त सुखों का देने वाला है, देखिये–धर्मशास्त्रों में लिखा भी है कि—"एक एव सुहृद्धर्मो, निधनेऽप्यनुयाति यः ॥ शरीरेण समं नाशं, सर्वमन्यत्तु गच्छति" ॥ १ ॥ अर्थात् मनुष्य का एक धर्म ही सच्चा मित्र है जो कि मरने पर भी उस के पीछे २ जाता है, बाकी तो संसार के सब (द्रव्य और आभूषण आदि) पदार्थ शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं अर्थात् एक भी शरीर के साथ नहीं चलता है ॥ १ ॥ इस लिये हे प्यारी बहिनो ! अधर्म का त्याग कर धर्म का ही ग्रहण करो कि जिस से इस भव में तुम्हारी कीर्ति फैले और पर भव में भी तुम को सुख प्राप्त हो और तुम्हारे करने योग्य धर्म केवल यही है कि–तुम अपने पति को अपने सद्गुणों से प्रसन्न रक्खो ।

वर्तमान काल में बहुत सी स्त्रियां इस बात को बिलकुल नहीं जानती हैं कि पति के साथ हमारा क्या धर्म और कर्तव्य है और यह बात उन के व्यवहार से ही मालूम होती है, क्योंकि–बहुत सी स्त्रियां अपने पति से मनमाना वचन बोलती हैं, पति को धमकाती हैं, मर्यादा छोड़ कर पति को गाली देती हैं, पति का सामना करती हैं, पति का अपमान करती हैं, जब पति बाहर से परिश्रम करके थका और हारा हुआ घर आता है तब मनोरञ्जन करके विश्रांति (आराम) देने के बदले सासु सुसरा (श्वशुर) आदि कुटुम्ब की तथा पड़ोसी आदि की बातें करके उस के मन को और भी दुःखी करती हैं, समय पर भोजन तैयार कर जिमाने के बदले आप बैठी रह कर पति से घर का काम काज कराती हैं, पति के पास कुछ न होने पर भी दूसरों के अच्छे वस्त्र (घाघरा, ओढ़ना, कांचली आदि) तथा गहने (आभूषण) देखकर पति को क्लेश देकर तथा आप भूखी रह कर भूषण आदि करवाती हैं, जिस से निर्धन पति को ऋण के गढ़े में गिर कर अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं, पति को किसी काम में सहायता नहीं देती हैं, घर के सब व्यवहारों का

बोझ अकेले घर के स्वामी पर ही डाल देती हैं, पति के सुख दुःख के समय को नहीं जानती हैं, पति को नाम का ही समझ के अपना पातिव्रत धर्म नहीं पालती हैं, पति के द्वारा जब लोभ की पूरी तृप्ति नहीं होती तब वे कुभार्या पापिनी स्त्रियां लोभ की तृप्ति होने की आशा से अनेक कुकर्म करती हैं, परन्तु जब इच्छा के अनुसार सुख मिलने के बदले आबरू और प्रतिष्ठा जाती है तथा लोगों में निन्दा होती है तब पश्चात्ताप (पछतावा) कर के अपने सम्पूर्ण जन्म को दुःख में बिताती हैं ।

बहुत सी स्त्रियां ऐसी भी देखी जाती हैं कि—जो ऊपर से पतिव्रता का धर्म दिखाती हैं और मन में कपट रख के गुप्त रीति से कुकर्म करती हैं परन्तु यह निश्चय है कि ऐसी स्त्रियों का वह झूंठा धर्म कभी छिपा नहीं रहता है; किसी बुद्धिमान् ने कहा भी है कि "चार दिनकी चोरी और छः दिन का छिनाला हुआ करता है" तात्पर्य यह है कि—कितना ही छिपा कर कोई चोरी और छिनाला करे किन्तु वह चार दिन छिप कर आखिर को प्रकट हो ही जाता है, ऐसी स्त्री का कपट जब प्रकट हो जाता है तब उस स्त्री पर से पति का विश्वास अवश्य उठ जाता है और प्रीति दूर हो जाती है, मेरी सम्मति में ऐसी स्त्रियों को स्त्री नहीं किन्तु राक्षसी कहना चाहिये, ऐसी अधर्मिणी स्त्रियों को धिक्कार है और धिक्कार है उन के माता पिताओं को कि जिन्हों ने कुल को दाग लगानेवाली ऐसी कुपात्र (अयोग्य) पुत्री को जन्म दिया ।

इस लिये सुपात्र पुत्री का यही धर्म है कि माता पिता ने पंचों की साक्षी से उस का हाथ जिसे पकड़ा दिया है उसी को परम वल्लभ (अत्यन्त प्रिय) समझे तथा उस की तरफ से जो कुछ खाना पीना और वस्त्रालंकार आदि मिले उसी पर सन्तोष रक्खे, क्योंकि इसी में उस की प्रतिष्ठा, शोभा और सुख है ।

जो स्त्री कुदरती नियम का भय रख कर अपने पति की इच्छानुसार मन वचन और शरीर को वश में रख कर अपने पातिव्रत धर्म को समझ कर उसी के अनुसार चलती है उस को धन्य है और उस के माता पिता को भी धन्य है कि जिन्हों ने ऐसा पुत्रीरत्न उत्पन्न किया ।

देखो ! जो कुलवती स्त्री होती है वह कभी अपनी इच्छा के अनुसार स्वतन्त्र वर्त्ताव नहीं करती है, जैसा कि कहा भी है कि:—

बालपने पितु मातु वश, तरुणी पति आधार ॥
वृद्धपने सुत वश रहे, नहिँ स्वतन्त्र कुलनार ॥ १ ॥

अर्थात् स्त्री बालक हो तब अपने मा बाप की आज्ञा में रह कर उन की शिक्षा के अनुसार वर्त्ताव करे, युवावस्था में पति को ही अपना आधार मान कर उस की आज्ञा के अनु-

सार वर्त्ते तथा वृद्धावस्था में जो पुत्र हो उस का पालन पोषण करे और सुपुत्र का कथन माने, इस प्रकार कुलीन स्त्री को स्वतन्त्र होकर कभी नहीं रहना चाहिये ॥ १ ॥

स्त्री का यह भी मुख्य कर्तव्य है कि—जैसे पुरुष अपने पिता के नाम से प्रसिद्ध होकर अपने सद्गुणों से पिता की कीर्ति को बढ़ाता है उसी प्रकार स्त्री भी अपने पति के नाम से प्रसिद्ध होकर अपने सद्गुणों के द्वारा अपने पति की कीर्ति को बढ़ावे, किन्तु जिन कामों से लोक में निन्दा हो ऐसे काम कदापि न करे तथा पति के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका न करे, यदि कोई दुष्ट मनुष्य पति पत्नी में दृढ़ प्रेम देखकर उस को तोड़ने के लिये उपाय करे अर्थात् इस प्रकार की बातें कहे कि—"तुम्हारा पति अनुचित मार्ग पर चलता है, तुम्हारे ऊपर वह पूर्ण प्रेम नहीं रखता है किन्तु दूसरी स्त्री पर स्नेह रखता है" इत्यादि, तो अपने कान कच्चे न करके उस की ऐसी बातें सुनी अनसुनी कर जाना चाहिये (उस की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये) किन्तु उस के कथन की जांच करनी चाहिये अर्थात् विचारना चाहिये कि—यह मनुष्य ऐसी बातें किस लिये कहता है, किन्तु उस पुरुष से तो विना विचार किये ही (एकदम) यह कहना चाहिये कि हमारा पति ऐसा काम कभी नहीं कर सकता है, किन्तु उस के भड़काने से भड़कना नहीं चाहिये क्योंकि यदि किसी का कहना सुन कर विना जांच किये ही मन में शंका कर लेगी तो पति के साथ अवश्य स्नेह टूट जायगा और स्नेह के टूट जाने से गृहस्थाश्रम बिगड़ कर यह संसार दुःखरूप हो जायगा, इस लिये समझदार स्त्री को किसी के भी कहने पर विश्वास नहीं करना चाहिये किन्तु केवल एक पति पर ही पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, यदि कदाचित् कर्मसंयोग से पति बुरा भी मिल जाय तथापि उस पर ही सन्तोष रखना चाहिये, क्योंकि देखो! जिस कुल में भर्ता भार्या से और भार्या भर्ता से सदा सन्तुष्ट रहते हैं उस कुल में सदा कल्याण का वास होता है।[1]

ऊपर कही हुई शिक्षा के अनुसार जो स्त्री चलेगी वही साध्वी और सती का पद प्राप्त कर दोनों लोकों में उत्तम सुख का भोग करेगी[2] ॥

पति का स्त्री के साथ कर्तव्य ॥

गृहस्थाश्रम में स्त्री देवी और घर की लक्ष्मीरूप कहलाती है, क्योंकि—सर्व बुद्धिमानों का यह मत है कि—घर जो है वह वास्तव में घर नहीं है किन्तु गृहिणी अर्थात् घर की जो स्त्री है वही घर है, देखिये नीतिशास्त्र में लिखा भी है कि—"न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी

१—जैसा कि धर्मशास्त्रों में लिखा है कि—सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च ॥ यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ १ ॥ इस का अर्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है ॥

२—क्योंकि धर्मशास्त्रों में सती स्त्री को दोनों लोकों के उत्तम सुख की प्राप्ति कही गई है ॥

गृहमुच्यते ॥ तया विरहितं यत्तु यथारण्यं तथा गृहम्" ॥ १ ॥ अर्थात् घर वास्तव में घर नहीं है किन्तु गृहिणी ही घर है, क्योंकि गृहिणी से रहित जो घर है वह जंगल के समान है ॥ १ ॥

धर्मशास्त्र में यह भी कहा गया है कि—जिस कुल में स्त्रियां दुःखी होती हैं उस कुल का शीघ्र ही नाश हो जाता है तथा उस घर की समृद्धि चली जाती है, इस लिये पुरुष का यह धर्म है कि–समृद्धि, सुख, वंश और कल्याण की वृद्धि करनेवाली जो अपनी स्त्री है उस को अपनी शक्ति के अनुसार अन्न वस्त्र और आभूषण आदि से दुःखित न रख कर उस का सब प्रकार से सन्तोष कर सत्कार करे, उस का संरक्षण करे, उस पर पूर्ण स्नेह रक्खे, उस का हित करे तथा उस का अनादर (तिरस्कार) कदापि न करे ।

पहिले कह चुके हैं कि–स्त्री घर की कार्यवाहिका अर्थात् मन्त्री है वही घर की लक्ष्मी तथा संसारसागर से पार होने में साथी कहलाती है, इसीलिये शास्त्रकारों ने स्त्री को अर्धांगिनी कहा है, इसलिये पुरुष को चाहिये कि–जिस प्रकार अपने शरीर को शोभित करने की और सुखी रखने की चेष्टा करता है उसी प्रकार स्त्री के लिये भी चेष्टा करे, क्योंकि देखो ! यदि आधा शरीर अच्छा नहीं होता है तो सब व्यवहार अटक जाया करते हैं, इसी प्रकार यदि स्त्री अयोग्य और दुःखी होगी तो पुरुष कभी सुखी नहीं रह सकता है, इस लिये पुरुष को उचित है कि–स्त्री को तन मन और कर्म से अपने प्राणों के समान समझे, क्योंकि शास्त्रकारों का कथन है कि 'इस संसार में पुरुष का सच्चा मित्र स्त्री ही है, और विचार कर देखा जाय तो यह बात बिलकुल सत्य है, क्योंकि–दुःख को दूर करना ही मित्र का परम धर्म है और इस बात को स्त्री बराबर करती ही है, देखो! जिस समय पुरुष पर अनेक प्रकार की आपत्ति आ पड़ती है और पुरुष को यह भी नहीं सूझता है कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये, उस समय स्त्री ही पति को धैर्य (धीरज) हिम्मत और दिलासा देती है और उस को विपत्ति से पार होने का उपाय और मार्ग बतलाती है, इतना ही नहीं किन्तु स्त्री सुख दुःख दोनों में ही पति को आनन्द देनेवाली है, इस लिये सब प्रकार आनंद देनेवाली अपनी अर्धांगिनी को सदा सुख देकर उसे आनन्द में रक्खे यही पुरुष का परम धर्म है ।

यदि स्त्री से जान बूझ कर अथवा विना जाने कोई काम विगड़ जाय तो उस पर क्षमा रक्खे और फिर वैसा न होने पावे इस बात की शिक्षा कर दे, क्योंकि जैसा प्रीति से काम अच्छा बनता है वैसा भय से कदापि नहीं बनता है, इस लिये जहां तक हो सके केवल ऊपरी भय दिखाकर भीतरी प्रीति का ही वर्त्ताव रक्खे, यद्यपि संसार में यह कहावत प्रसिद्ध है कि—"भय विन बाढ़े न प्रीति" अर्थात् भय के विना प्रीति नहीं होती है, और

यह बात किसी अंश में सत्य भी है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि—केवल भय भयंकर-रूप होकर हानिकर्ता हो जाता है, इसी प्रकार से बहुत से अज्ञ जन कहा करते हैं कि "ढोल गँवार शूद्र अरु नारी। ये चारहुँ ताड़न के अधिकारी" अर्थात् ढोल (बाजा-विशेष), गँवार (मूर्ख), शूद्र (नीच जाति का) और स्त्री, ये चारों ताड़ने के ही अधिकारी हैं, अर्थात् ताड़ना देने से ही ठीक रहते हैं, सो यह उन लोगों का अत्यन्त भ्रम है, क्योंकि प्रथम तो यह वाक्य किसी आप्त पुरुष का कहा हुआ नहीं है इस लिये माननीय नहीं हो सकता है, दूसरे तमाम धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्रों की भी ऐसी सम्मति नहीं है कि—स्त्रियों को सदा मार कूट कर दबाये रखना चाहिये, किन्तु शास्त्रों की इस से विपरीत सम्मति तो सर्वत्र देखी जाती है कि–स्त्रियों का अच्छे प्रकार से आदर सत्कार करके उन को अपने अनुकूल बनाना चाहिये, अत एव किन्हीं शास्त्रकारों ने यहां तक कथन किया है कि–"जो लोग ऐसा विचार करते हैं कि-स्त्रियां सदैव घर के कूटने पीसने आदि कार्य में लगी रहें और पुरुष उन को ताड़ना कर दबाये रहें कि जिस से वे उद्धत न हो जावें और उन का चित्त चलायमान न होने पावे, सो यह उन लोगों की परम मूर्खता है क्योंकि उक्त साधन स्त्रियों को वश में रखने के लिये ऐसे असमर्थ हैं जैसे कि–मदोन्मत्त हाथी को रोकने के लिये माला का बन्धन"[1] न केवल इतना ही किन्तु कई दूरदर्शी सुज्ञ विद्वानों का यह भी कथन है कि "ईर्ष्यैव स्त्रियं परपुरुषासक्तां करोति" अर्थात् पुरुष का स्त्री के साथ जो ईर्ष्या (द्रोह) रखना है वह (ईर्ष्या) ही स्त्री को कभी [2] परपुरुषासक्ता (दूसरे पुरुष पर आसक्त) कर देती है, और यह बात युक्ति तथा प्रत्यक्ष प्रमाण से मानी भी जा सकती है और इस के उदाहरण भी प्रायः देखे व सुने गये हैं, क्योंकि स्त्रीजाति प्रायः मूर्ख तो होती ही है उस को अपने कर्तव्य का ज्ञान भी शिक्षा के न होने से नहीं होता है, ऐसी दशा में पति की ओरसे ताड़ना के होने से वह अपने पर परम आपत्ति आई हुई जान कर निराश्रय होकर यदि कुछ अनुचित कार्य कर लेवे तो इस में आश्चर्य ही क्या है?

फिर देखिये कि–इस संसार में किसी को जीतने के या वश में करने के केवल दो उपाय ही होते हैं, एक तो बल के द्वारा, और दूसरा दया वा प्रेम के द्वारा,–इन दोनों में से बल के द्वारा वश में करना नीतिशास्त्र आदि के बिलकुल विरुद्ध है और समझदार पुरुष बल के द्वारा वश में करने को वश में करना नहीं मानते हैं, क्योंकि उन की सम्मति यह है

१–जैसा कि लिखा है कि–कर्माण्यसुकुमाराणि, रक्षणार्थेऽवदन्मनुः ॥ तासां स्रज इवोद्दाम, गजालानोपसंहिताः ॥ १ ॥ अर्थात् स्त्रियों की रक्षा के लिये मनु ने जो कठोर कर्म (पीसना कूटना आदि) कहे हैं वे उन के लिये ऐसे हैं, जैसे कि–उन्मत्त हाथी को बांधने के लिये फूलों की मालायें ॥ १ ॥

२–पाठकगणों ने भी इस के अनेक उदाहरण देखे वा सुने ही होंगे ॥

कि–बल के द्वारा वश में करना ऐसा है जैसा कि–बहते हुए पानी की धारा में बांध बांधना, यह थोड़े काल तक ही पानी के बहाव को रोक सकता है परन्तु जब वह (बांध) टूटता है तब पानी की धारा पहिले की अपेक्षा और भी अधिक वेग से बहने लगती है, परन्तु दया वा प्रेम के द्वारा जो वश में करना है वही वास्तव में वश में करना कहाता है, क्योंकि दया वा प्रेम से वश में करना ऐसा है जैसा कि स्रोत (सोत) को जहां से पानी आता है बन्द कर देना, फिर देखिये कि–बल से वश में करना सिंह को जंजीरों से बांधने के तुल्य है, किन्तु दया वा प्रेम के द्वारा वश में होने पर सिंह भी हानि नहीं पहुंचाता है, उस की प्रकृति बदल जाती है और वह (सिंह) भेड़ के बच्चे के समान सीधा हो जाता है ।

इन सब बातों को विचार कर सुज्ञ पुरुष को उचित है कि गृहस्थाश्रम के कर्तव्य का उपदेश करनेवाले शास्त्रों के कथन के अनुसार सब व्यवहार करे और शास्त्रों का कथन यही है कि–जिस स्त्री के साथ विवाह हो उसी पर सन्तोष रक्खे और उस को अपने प्राणों के समान प्यारी समझे, यदि स्त्री में ज्ञान अथवा बुद्धि न्यून भी हो तो उस को विद्या, धर्म, नीति, पाकशास्त्र तथा व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा देकर श्रेष्ठ बनावे, क्योंकि स्त्री को शिक्षा देना तथा उस को श्रेष्ठ बनाना पति ही का कार्य है, देखो ! शास्त्रों में तथा इतिहासों में जिन २ उत्तम सती स्त्रियों की प्रशंसा सुनते हो वह सब उन के माता पिता और पति की शिक्षा का ही प्रताप है ।

इतिहासों के द्वारा यह भी सिद्ध है कि–जिस कुटुम्ब में तथा जिस देश में स्त्रियों की स्थिति ठीक होती है वह कुटुम्ब और वह देश सब प्रकार से श्रेष्ठ और सुख सम्पत्तिवाला होता है और जहां स्त्रियों की स्थिति खराब होती है वह कुटुम्ब तथा वह देश सदा निकृष्ट दशा में ही रहता है, देखो ! साईबीरिया, कामरकाटका, लाप्लांड, ग्रीनलांड, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया आदि देशों की स्त्रियों की स्थिति बहुत हलकी है अर्थात् उक्त देशों में अनेक प्रकार के दुःख स्त्रियों को दिये जाते हैं, स्त्रियों को गुलाम के समान गिनकर उन से सब तरह के कठिन काम कराये जाते हैं, गर्भवती जैसी कठिन स्थिति में उत्तम प्रकार से सम्भाल रखने के बदले उन्हें अपवित्र समझ कर घर तथा झोंपड़ी से बाहर निकाल देते हैं जिस से वे बेचारी उसी कठिन दशा में शीत उष्ण आदि अनेक प्रकार के दुःखों का सहन करती हैं तथा उन को पशु के समान गिनते हैं, इस लिये उन देशों की स्थिति प्रायः शोचनीय है, क्योंकि देखो वर्तमान के सुधरे हुए भी समय में वहां के निवासी पशुवत् स्थिति में पड़े हुए अपना समय व्यतीत कर रहे हैं, इस के विरुद्ध इंग्लैंड, जर्मनी और फ्रांस आदि देशों में स्त्रियों की स्थिति बहुत ही उत्तम है अतः उन देशों की स्थिति

भी श्रेष्ठ तथा ऊंचे दर्जे पर है, क्योंकि वहां की स्त्रियों को सब प्रकार का आदर सत्कार और मान मिलता है, वहां स्त्रियों का दर्जा बहुत ही उत्तम गिना जाता है तथा वहां की स्त्रियों को इस देश की स्त्रियों के समान अन्धकाररूप गुप्त पड़दे में नहीं रहना पड़ता है, इस प्रकार वहां का वर्ताव होने से वे देश सब प्रकार की सम्पत्ति से भरपूर और सुखी हैं, इस लिये यह सिद्ध है कि-स्त्रियों की स्थिति अच्छी रखने से सब का कल्याण होता है, किसी विद्वान् ने कहा भी है कि-"वह पुरुष पशु है जो कि यह समझता है कि मैं स्त्री को अपनी इन्द्रियसेवा के लिये लाया हूं, किन्तु मनुष्य वह है जो कि यह समझता है कि मैं अपने सुख और दुःख में सहारे के वास्ते स्त्री को लाया हूं"।

विचार कर देखने से मालूम होता है कि-स्त्री अन्न में लवण के समान है अर्थात् जैसे अन्न में लवण न डालने से वह स्वाद न देकर फीका लगता है, इसी प्रकार से गृहस्थाश्रम में स्त्री के विना कुछ भी स्वाद (आनन्द) नहीं है।

प्राचीन काल में इस देश के सब आर्य जन ऊंचे कुल, ऊंचे स्वभाव, ऊंची वृत्ति और ऊंचे विचारों में निमग्न थे, जिन की श्रेष्ठता की बराबरी तो वर्तमान में सुधरे हुए ज़माने में भी यूरुप आदि देश नहीं कर सकते हैं।

उस प्राचीन काल में इस देश में यहां की आर्य महिलाओं को किसी प्रकार का भी बन्धन नहीं था अर्थात् वे अपने पति के साथ सभा आदि सब स्थानों में जा सकती थीं, देशाटन में अपने पति के साथ रह सकती थीं, तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय के अनुसार पड़दे में पड़ी रहने की रीति उस समय नहीं थी, यह कुत्सित रीति तो मुसलमानों का यहां अधिकार होने के पीछे से शुरू हुई है, प्राचीन काल में स्त्रियों का मान रक्खा जाता था, उन का गृह में मन्त्री का पद ठीक रीति से गिना जाता था, उस समय में विवाह की भी प्रतिज्ञा तथा प्रण नहीं तोड़ा जा सकता था, क्योंकि विवाह की प्रतिज्ञा और उस का प्रण दूसरी वस्तुओं के कवाड़े के समान कवाड़ा नहीं है, यह तो प्राचीन पवित्र समय का वर्णन किया-अब वर्तमान समय का भी कुछ रहस्य सुनिये-वर्तमान में देखा जाता है कि बहुत से विवेकहीन पुरुष अपनी स्त्री के साथ कुछ बोल चाल (कलह आदि) हो जाने पर उस को तुच्छ करने के लिये दूसरी स्त्री के साथ सम्बन्ध बांधते हैं, परन्तु ऐसा करना उन के लिये बहुत ही लज्जा की बात है, क्यों कि-यह काम तो केवल पशु के काम के

१-क्योंकि मुसलमान लोग अपने अधिकार के समय में यह अत्याचार करने लगे थे कि जिस की बहू बेटी वा स्त्री को रूपवती देखते थे उस को पकड़ ले जा कर उस के साथ अनुचित वर्ताव करते थे, परन्तु अब वह अन्धकार का समय नहीं है, अब तो श्रीमती ब्रिटिश गवर्नमेंट न्यायपरायणा का धर्मराज्य है जिस में सिंह और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं अतः ऐसे समय में अब तो स्त्रियों को पड़देरूप अन्धकार से बाहर निकालना चाहिये ॥

समान है कि—अनेकों के साथ व्यवहार बांध कर पीछे छोड़ देना, किन्तु यह कार्य मनुष्य-जाति के करने योग्य नहीं है, यदि मनुष्य भी पशु के समान ही वर्त्ताव करे तो मनुष्य और पशु में भेद ही क्या रहा? इसलिये सुज्ञ पुरुषों को केवल अपनी धर्मपत्नी के साथ ही सब व्यवहार रखना चाहिये और उसी को सब प्रकार का सुख देना चाहिये क्योंकि ऐसा ही व्यवहार उत्तम है और यही व्यवहार उन को प्राचीन सुखदायिनी स्थिति में लानेवाला है ॥

पतिव्रता स्त्री के लक्षण ॥

पतिव्रता साध्वी और सती स्त्री वही है जो कि सदा अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर अपने पति पर निर्मल प्रीति रखती है तथा उस की इच्छा के अनुसार चलकर उस की आज्ञा का पालन करती है अर्थात् तन मन और कर्म से अपने पति की सेवा के सिवाय दूसरी कुछ भी इच्छा नहीं रखती है, घर बाहर सब स्वच्छ रमणीक रखती है, अपने पति ही को अपने सुख दुःख का साथी समझ कर उस की आज्ञा के विना घरद्वार कभी नहीं छोड़ती, विना काम कभी बाहर नहीं जाती, सासु को अपनी माता के समान और श्वशुर को अपने पिता के समान जान कर दोनों की तन मन और कर्म से सदा सेवा करती है, ननँद को अपनी बहन के समान समझती है, पति के सोने के पीछे आप सोती है और उस के उठने के पहिले आप उठकर स्वच्छता से घर का सब कार्य करती है, पति को नियमपूर्वक प्रथम भोजन कराके फिर आप खाती है, घर के काम से बचे हुए समय में ज्ञान के ग्रहण करने में मन लगाती है, पति का वियोग उस को कभी सहन नहीं होता है अर्थात् जिस प्रकार पानी के विना मीन (मछली) नहीं रह सकती है उसी प्रकार पति के वियोग में वह नहीं रह सकती है, पति के प्रिय जनों को सम्मान देती है, सासु ननँद तथा सखी के साथ के विना अकेली कहीं भी नहीं जाती है, नीची दृष्टि रखकर घर में काम काज करती है, दूसरे पुरुष के साथ व्यर्थ बात चीत नहीं करती है, लज्जा रखकर किसी के साथ क्रोध से अथवा सहज स्वभाव से भी ऊंचे स्वर से नहीं बोलती है, पति का श्रम हरण[1] करती है, पति से छिपा कर कुछ भी नहीं करती है, सच्छास्त्र और सद्गुरु का उपदेश श्रवण कर उसी के अनुसार वर्ताव करती है, पति को धर्मसम्बंधी तथा व्यवहारसम्बंधी कार्यों में उत्साह और हिम्मत देकर तन मन और कर्म से उस की सहायता करती है, सन्तान का प्रेम से पालन पोषण कर उस को धीर, वीर, धार्मिक, सर्व-गुणसम्पन्न और विद्वान् बनाने का सदा प्रयत्न करती है, अशुभ आचरण में उस को प्रवृत्त नहीं होने देती है, पति जो कुछ लाकर देता है उस को घर में सम्भाल कर रखती

१–अर्थात् हाथ पैर आदि को दाब कर वा मसल कर पति की थकावट को दूर करती है ॥

है, यदि कोई दुष्ट पुरुष कामना की इच्छा से उस के सामने देखे, अथवा प्रिय वचन से रिझावे, अथवा बहुत से मनुष्यों की भीड़ में बहुत आवश्यक (जरूरी) काम पड़ जाने से जाना पड़े और उस समय किसी पुरुष का स्पर्श हो जाय तथापि मन में ज़रा भी विकार नहीं लाती है, पर पुरुष के सामने दृष्टि स्थिर करके एक दृष्टि से नहीं देखती है, किन्तु यदि पर पुरुष के सामने देखने की आवश्यकता होती है तो उस को भाई और बाप के समान समझ के देखती है, देवदर्शन आदि के बहाने पुरुषों की भीड़ में धक्के न खाकर घर में बैठकर ईश्वरभक्ति भाव पूजा (सामायिक आदि) को प्रीति से करती है, यदि दैवइच्छा से पति रोगी खोटा तथा दुर्गुणी भी मिलता है तो भी उसी को अपने देव के तुल्य प्रिय जान कर सदा प्रसन्न रहती है, पति के सिवाय दूसरे किसी की भी गरज़ नहीं रखती है, यदि कोई द्रव्य आदि का लोभ भी दिखलावे तो भी अपने मन को चलायमान नहीं होने देती है, यदि कोई कामी पुरुष दुष्ट वांछा (इच्छा) से नम्रता के साथ अथवा बल कर के धारण करे, अथवा वस्त्र और आभूषण आदि का लोभ देवे तो चाहे वह देव और गन्धर्व के समान रूपवान् युवा तथा द्रव्यवान् भी क्यों न हो तथापि लालच न करके उस को धिक्कार के दूर कर देती है, पति के सिवाय दूसरे को ज़रा भी नहीं भजती है, पर पुरुष के साथ अपने शरीर का संघट्ट हो जावे ऐसा नहीं वर्तती है, जिस से मर्यादा का भंग हो ऐसा एक वस्त्र पहर कर नहीं फिरती है किन्तु जिस से पैरों की पींडी और पेट आदि शरीर के सब भाग अच्छे प्रकार से ढके रहें ऐसा वस्त्र पहरती है, वस्त्र उतार कर अर्थात् नग्न (नंगी) होकर कभी स्नान नहीं करती है, धीमी चलती है, अपने मुख को सदा हर्ष में रखती है, ऊंचे स्वर से हास्य[1] नहीं करती है, अन्य स्त्री अथवा अन्य पुरुष की चेष्टा को नहीं देखती है, सौभाग्यदर्शक साधारण शृंगार रखती है, उत्तम वस्त्र और अलंकार आदि से शरीर को शोभित करने के बदले सद्गुणों से शोभित करने की इच्छा सदा रखती है, देह को क्षणभंगुर (क्षण भर में नाश होने वाला) जान कर तथा परलोक के सुख का विचार कर सुकृत (उत्तम काम-दान पुण्य आदि) कर के सत्कीर्ति का सम्पादन करती है, सदा शील का रक्षण करती है, सत्य बोलती है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य और तृष्णा आदि विकारों को शत्रु के समान समझ कर उन का त्याग करती है, सन्तोष, समता, एकता और क्षमा आदि सद्गुणों को मित्र के समान समझ कर उन का स्नेह से संग्रह करती है, पति के द्वारा जो कुछ मिले उसी में निरन्तर सन्तोष रखती है, विद्या विनय और विवेक आदि सद्गुणों का सदा सम्पादन करती है, उदार, चतुर और परोपकारी बनने में प्रीति रखती है, धर्म, नीति, सद्व्यवहार और कला कौशल्य का शिक्षण स्वयं (खुद) प्राप्त कर अपने सम्बंधी आदि जनों को सिखाने में

१-क्योंकि ऊंचे स्वर से हंसना दुष्ट स्त्रियों का लक्षण है ॥

तथा श्रेष्ठ उपदेश देकर उन को सन्मार्ग में लाने का यत्न करती है, किसी को दुःख प्राप्त हो ऐसा कोई भी कार्य नहीं करती है, अपने कुटुम्ब अथवा दूसरों के साथ विरोध डाल कर क्लेश नहीं करती है, हर्ष शोक और सुख दुःख में समान रहती है, पति की आज्ञा लेकर सौभाग्यवर्धक व्रत नियम आदि धर्मकार्य करती है, अपने धर्म पर स्नेह रखती है, जेठ को श्वशुर के समान, जिठानी को माता के समान, देवर को पुत्र के समान, देवरानी को पुत्री के समान तथा इन के पुत्रों और पुत्रियों को अपनी सन्तान के समान समझती है, सच्छास्त्रों को सदा पढ़ती और सुनती है, किसी की निंदा नहीं करती है, नीच और कलंकित स्त्रियों की संगति कभी नहीं करती है किन्तु उन के पास खड़ी रहना व बैठना भी नहीं चाहती है, किन्तु केवल कुलीन और सुपात्र स्त्रियों की संगति करती है, सब दुर्गुणों से आप दूर रह कर तथा सद्गुणों को धारण कर दूसरी स्त्रियों को अपने समान बनाने की चेष्टा करती है, किसी से कटु वचन कभी नहीं कहती है, व्यर्थ बकवाद न करके आवश्यकता के अनुसार अल्पभाषण करती है (थोड़ा बोलती है), पति का स्वयं अपमान नहीं करती तथा दूसरों के किये हुए भी उस के अपमान का सहन नहीं कर सकती है, वैद्य वृद्ध और सद्गुरु आदि के साथ भी आवश्यकता के अनुसार मर्यादा से बोलती है, पीहर में अधिक समय तक नहीं रहती है, इस संसार में यह मनुष्य-जन्म सार्थक किस प्रकार हो सकता है इस बात का अहर्निश (दिन रात) विचार करती है, और विचार के द्वारा निश्चित किये हुए ही सत्य मार्ग पर चल कर सब वर्ताव करती है, विघ्नों को और अनेक संकटों को सह कर भी अपनी नेक टेक को नहीं छोड़ती है, इत्यादि शुभ लक्षण सती अर्थात् पतिव्रता स्त्री में होते हैं।

देखो ! उक्त लक्षणों को धारण करनेवाली ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला, राजेमती, द्रौपदी, कौशल्या, मृगावती, सुलसा, सीता, सुभद्रा, शिवा, कुन्ती, शीलवती, दमयन्ती, पुष्पचूला और पद्मावती आदि अनेक सती स्त्रियां प्राचीन काल में हो चुकी हैं, जिन्हों ने अपने सत्य व्रत को अखंडित रखने के लिये अनेक प्रकार की आपत्तियों का भी सामना कर उसे नहीं छोड़ा अर्थात् सब कष्टों का सहन करके भी अपने सत्यव्रत को अखंडित ही रक्खा, इसी लिये वे सती इस महत् पूज्य पद को प्राप्त हुई, क्योंकि सती इस दो अक्षरों की पूज्य पदवी को प्राप्त कर लेना कुछ सहज बात नहीं है किन्तु यह तो तलवार की धार पर चलने के समान अति कठिन काम है, परन्तु हां जिस के पूर्वकृत पुण्यों का सञ्चय होता है उस को तो यह पद और उस से उत्पन्न होनेवाला सुख स्वाभाविक रीति से ही सहज में ही प्राप्त हो जाते हैं।

इस अर्वाचीन काल में तो बहुत से भोले लोगों को यह भी ज्ञात (मालूम) नहीं है कि सती किस को कहते हैं और वह किस प्रकार से पहिचानी जाती है, इसी का फल यह

हो रहा है कि-उत्तम और अधम स्त्री का विवेक न करके साधारण एक वा दो गुणों को धारण करनेवाली स्त्री को भी सती कहने लगते हैं, यह अत्यन्त निकृष्ट (खराब) प्रणाली है, वे इस बात को नहीं समझते हैं कि इस पद को प्राप्त करने में सब गुणों का धारण करना रूप कितना परिश्रम उठाना पड़ता है और कितनी बड़ी २ तकलीफें सहनी पड़ती हैं, अनेक प्रकार के दुःख सहने पड़ते हैं तब यह पद प्राप्त होकर जीवन की सफलता प्राप्त होती है और जीवन का सफल करना ही परम धर्म है, इसी तत्त्व को विचार कर प्राचीन काल की स्त्रियां तन मन और कर्म से उस में तत्पर रहती थीं किन्तु आज कल की स्त्रियों के समान केवल इन्द्रियों के तृप्त करने में ही वे अपने जीवन को व्यर्थ नहीं खोती थीं।

देखो ! जन्म मरण के बंधन से छूट जाना यही पुरुष तथा स्त्री का मुख्य कर्तव्य है, उस (कर्तव्य) को पूर्ण न करके इन्द्रियों के सुख में ही अपने जन्म को गँवा देना, यह बड़े अफसोस की बात है, इस लिये हे प्यारी बहनो ! तुम अपने स्त्रीधर्म को समझो, समझ कर उस का पालन करो और सतीत्व प्राप्त करके अपने जीवन को सार्थक (सफल) करो, यही तुम्हारा कर्तव्य तथा परम धर्म है और इसी से तुम्हें इस लोक तथा पर लोक का सुख प्राप्त होगा ॥

पतिव्रता का प्रताप ॥

पतिव्रता स्त्री अमुक देश, अमुक ज्ञाति अथवा अमुक कुटुम्ब में ही होती है, यह कोई नियम नहीं है, किन्तु यह (पतिव्रता स्त्री) तो प्रत्येक देश, प्रत्येक ज्ञाति और प्रत्येक कुटुम्ब में भी उत्पन्न हो सकती है, पतिव्रता स्त्रियों के उत्पन्न होने से वह देश, वह ज्ञाति और वह कुटुम्ब (चाहें वह छोटा तथा कैसी ही दुर्दशा में भी क्यों न हो तथापि) वन्द्य होकर उत्तमता को प्राप्त होता है, क्योंकि यह सृष्टि का नियम है कि पतिव्रता स्त्रियों से देश ज्ञाति और कुल शोभा को प्राप्त होकर इस संसार में सब सद्गुणों का आधाररूप हो जाता है, पतिव्रता स्त्री से घर का सब व्यवहार प्रदीप्त होता है, उस की सन्तान धार्मिक, नीतिमान्, शुद्ध अन्तःकरण वाली, शौर्ययुक्त, पराक्रमी, धीर, वीर, तेजस्वी, विद्वान् तथा सद्गुणों से युक्त होती है, क्योंकि सद्गुणों से युक्त माता के उन सद्गुणों की छाप बालकों के कोमल अन्तःकरण में ऐसी दृढ़ हो जाती है कि वह जीवनपर्यन्त भी कभी नहीं जाती है, परिश्रम से थका हुआ पुरुष अपनी पतिव्रता स्त्री के सुन्दर स्वभाव से ही आनन्द पाकर विश्रान्ति पाता है, यदि पुत्र और द्रव्य आदि अनेक प्रकार की समृद्धि भी हो परन्तु घर में सद्गुणों से युक्त और सुन्दर स्वभाववाली पतिव्रता स्त्री न हो तो वह सब समृद्धि व्यर्थरूप है, क्योंकि ऐसी दशा में पुरुष को संसार का सुख पूर्ण रीति से कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है-किन्तु उस पुरुष को अपना धन्य भाग्य समझना चाहिये जिस को सुन्दर गुणों से युक्त सुशीला स्त्री प्राप्त होती है।

स्त्री का पातिव्रत धर्म ही परम दैवत, रूप, तेज और अलौकिक शक्ति होती है, इसी अलौकिक शक्ति से उस को अखण्ड और अनन्त सुख प्राप्त हो सकता है तथा इसी शक्ति के प्रभावसे सती स्त्री के सामने कुदृष्टि करने वाले पुरुष का सर्व नाश होजाता है।

इस सतीत्व धर्म से केवल सती स्त्री की ही महिमा होती हो यह बात नहीं है किन्तु सती स्त्रीके माता पिता भी पवित्र गिने जाकर धन्यवाद और महिमा के योग्य होते हैं, न केवल इतना ही किन्तु सती स्त्री दोनों कुलों को तार देती है, जैसे तारागणों में चन्द्रमा शोभा देता है इसी प्रकार से सब स्त्रियों में सती स्त्री शोभा देती है, सती स्त्री ही पति के कठोर हृदय को भी कोमल कर देती है तथा उस के तीक्ष्ण क्रोध और शोक को शान्त कर देती है।

पतिव्रता की प्रेम सहित रीति, मधुरता, नम्रता, स्नेह और उस के धैर्य के वचनामृत रोग समय में ओषधिका काम निकालते हैं, पतिव्रता स्त्री अपनी अच्छी समझ, तत्परता, दयालुता, उद्योग और सावधानता से आते हुए विघ्नोंको रोक कर अपना कार्य सिद्ध कर लेती है, पतिव्रता स्त्री ही पति और कुटुम्बकी शोभा में विशेषता करती है, पतिव्रता स्त्री के द्वारा ही उत्तम शिक्षा पाकर बालक इस संसार में मानवरत्न हो जाते हैं, इसी लिये ऐसी साध्वी स्त्रियों को रत्नगर्भा कहते हैं, वास्तव में ऐसी रत्नगर्भा स्त्रियां ही देश के उदय होने में साधनरूप हैं, देखो। ऐसी माताओं से ही सर्वज्ञ महावीर, गौतम आदि ग्यारह गणधर, भद्रबाहु, जम्बू, हेमचन्द्र, जिन दत्त सूरि, युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डव, रामचन्द्र, कृष्ण, श्रेणिक, अभयकुमार, भोज, विक्रम और शालिवाहन आदि महापुरुष तथा सीता, द्रौपदी और राजेमती आदि जगत्प्रसिद्ध साध्वी स्त्रियां उत्पन्न हुई हैं, अहो पतिव्रता साध्वी स्त्रियों का प्रताप ही अलौकिक है, साध्वी स्त्रियों के प्रताप से क्या नहीं हो सकता है अर्थात् सब कुछ हो सकता है, जिन के सतीत्व के प्रताप के आगे देवता भी उनके आधीन हो जाते हैं तो मनुष्यकी क्या गिनती है।

प्राचीन समय में इस देश में बल बुद्धि और मति आदि अनेक बातों में आर्य महिलाओं ने अनेक समयों में पुरुषों के साथ समानता कर दिखाई है, जिस के अनेक उदाहरण इतिहासों में दर्ज हैं और उन को इस समय में बहुत से लोग जानते हैं, परन्तु हतभाग्य है इस आर्यावर्त्त देश की आर्य तरुणियों का जो कि इस समय सतीत्व का वह अपूर्व माहात्म्य और गौरव कम होगया है, इसका कारण केवल यही है कि–वैसी सती साध्वी स्त्रियां अब नहीं देखी जाती हैं और यह केवल इसी लिये ऐसा है कि–वर्तमान में स्त्रियों को उत्तम शिक्षा, सत्संगति, सदुपदेश, धर्म और नीतिआदि सद् गुणों की शिक्षा नहीं दी जाती है, उनको सच्छास्त्रों का ज्ञान नहीं मिलता है, उन को श्रेष्ठ साध्वी स्त्रियोंकी संगति

प्राप्त नहीं होती है, स्त्रीधर्म और नीति का उपदेश नहीं मिलता है तथा उन के कोमल हृदय में सती चरित्रों के महत्त्व की मोहर नहीं लगाई जाती है, जब ऐसा अन्धेर चल रहा है तो भला साध्वी स्त्रियों के होने की आशा ही कैसे की जा सकती है तथा स्त्रियां अपने धर्म को समझ कर यथार्थ मार्ग पर कैसे चल सकती हैं ! इस लिये हे गृहस्थो ! यदि तुम अपनी पुत्रियों को श्रेष्ठ और साध्वी बनाने की इच्छा रखते हो तो बाल्यावस्था से ही प्राचीन पद्धति के अनुसार सत्य शिक्षा, सुसंगति, सदुपदेश और सतीचरित्रादि के महत्त्व से उनके अन्तःकरण को रंगित करो (रँग दो), पीछे देखो उस का क्या प्रभाव होता है, जब इस प्रकार से सद्व्यवहार किया जायगा तो शीघ्र ही तुम्हारी पुत्रियों के हृदयों में असती स्त्रियों के कुत्सित आचरण पर ग्लानि उत्पन्न हो जायगी और वे इस प्रकार से दुराचारों से दूर भागेंगी जैसे मयूर (मोर) को देखकर सर्प (सांप) दूर भाग जाता है और इस प्रकार का भाव उन के हृदय में उत्पन्न होते ही वे वालार्थ पवित्र पातिव्रत धर्म का पालन करना सीखकर आपत्तियों का उल्लंघन कर अपने सत्य व्रत में अचल रहेंगी, तब ही वे लोभ लालच में न फँस कर उस को तृण समान तुच्छ जान कर अपने हृदयसे दूर कर उसकी तरफ दृष्टि भी न डालेंगी, इस लिये अपनी प्यारी पुत्रियों बहिनों और धर्मपत्नियों को पूर्वोक्त रीति से सुशिक्षित करो, जिस से वे भविष्यत् में सद् वर्त्ताव कर पतिव्रतारूप उत्कृष्ट पद को प्राप्त कर अपने धर्म को यथार्थ रीतिसे पालने में तत्पर होवें कि जिस से इस पवित्र देशकी निवासिनी आर्य महिलाओं का सदा विजय हो कर इस देश का सर्वदा कल्याण हो ॥

॥ पति के परदेश होनेपर पतिव्रता के नियम ॥

जो स्त्री पतिपर पूर्ण प्रेम रखनेवाली तथा पतिव्रता है उस के लिये यद्यपि पति के परदेश में जाने से वियोगजन्य दुःख असह्य है परन्तु कारण वश इस संसार में मनुष्यों को परदेश में जाना ही पड़ता है, इसलिये उस दशा में समझदार स्त्रियों को उचित है कि-जब अपना पति किसी कारण से पर देश जावे तब यदि उसकी आज्ञा हो तो साथ जावे और उस की इच्छा के अनुसार विदेश में भी गृह के समान अहर्निश वर्त्ताव करे, परन्तु यदि साथ जाने के लिये पति की आज्ञा न हो अथवा अन्य किसी कारण से उस के साथ जानेका अवसर न मिले तो अपने पति को किसी प्रकार जाने से नहीं रोकना चाहिये तथा जिस समय पति जाने को उद्यत (तैयार) हो उस समय अशुभ सूचक वचन भी नहीं बोलने चाहियें और न रुदन करना चाहिये. किन्तु उस की आज्ञा के अनुसार अपनी सासु श्वशुर आदि गुरु जनों के आधीन रह कर उन्हीं के पास रहना चाहिये, सासु ननँद आदि प्रिया सगी स्त्री के पास सोना चाहिये, जब तक पति वापिस न आवे तब तक

अपने व्रत और नियमों को पालते रहना चाहिये तथा पति के शुभ का चिन्तवन करना चाहिये, पति की उपस्थिति में उस की प्रसन्नता के लिये जैसे पूर्व वस्त्र और अलंकार आदि का उपभोग करती थी उस प्रकार पति की अनुपस्थिति में उनका उपभोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि उत्तम वस्त्र और अलंकार आदि तो केवल पति के चित्त को रंजन करने के लिये ही पहिने जाते हैं जब पति तो पर देश में है तो फिर किस का रञ्जन करने के लिये वस्त्र और अलंकार आदि का शृंगार करे! अर्थात् उस दशा में शृंगार आदि नहीं करना चाहिये, क्योंकि पति के पर देश में होने पर भी शृंगार आदि करना साध्वी स्त्रियों का धर्म नहीं है, इस शिक्षा का हेतु यह है कि-यह स्वाभाविक नियम है कि सांसारिक उपभोगों से इन्द्रियां तथा मन की वृत्ति चलायमान होती है इस लिये इन्द्रियों को तथा मन की वृत्ति को वश में रखने के लिये उक्त नियमों का पालन अति लाभ दायक है, इसलिये पति के परदेश में होने पर सांसारिक वैभव (ऐश्वर्य) के पदार्थों से विरक्त रहना चाहिये, सादी पोशाक पहरना और सौभाग्यदर्शक चिह्न अर्थात् हाथ में कंकण और कपालमें कुंकुम का टीका आदि ही रखना चाहिये।

पति को चाहिये कि-पर देश जाते समय अपनी स्त्री के भरण पोषण आदि सब बातों का ठीक प्रबंध करके जावे, परन्तु यदि किसी कारण से पति सब बातों का प्रबंध न कर गया होतो स्त्री को उचित है कि-पति के वापिस आने तक कोई निर्दोष (दोष-रहित) जीविका करके अपना निर्वाह करे, जिनपदार्थोंको पति ने घर में रखने और संभालनेको सौंपा हो उन को सम्भालकर रक्खे, आमदनी से अधिक खर्च न करे, लोगों की देखा देखी ऋण कर के कोई भी कार्य न करे, सासु श्वशुर तथा सगे स्नेही आदि के साथ का व्यवहार तथा सब संसार का कार्य उसी प्रकार करती रहे जैसा कि-पतिकी विद्यमानता में करती थी, पति की आयु की रक्षाके लिये कोई भी निन्दित कार्य न करे, स्नान करे वह भी शरीर में तेल लगा कर अथवा और कोई सुगन्धित पदार्थ लगा के न करे किन्तु केवल जल से ही करे, चन्दन और पुष्प आदि धारण न करे, नाटक, खेल और स्वांग आदि में न जावे और न स्वयं करे, ऊंचे स्वर से हास्य न करे, अन्य स्त्री अथवा पुरुष की चेष्टा को न देखे, जिस से इन्द्रियों में अथवा मनमें विकार उत्पन्न हो ऐसा भाषण न करे और न ऐसे भाषण का श्रवण करे, इधर उधर व्यर्थ में न भटके, सासु और ननँद आदि प्रिय जनों के साथ के विना पराये घर न जावे, केवल एक वस्त्र (धोती अर्थात् साड़ी) पहिन के न फिरे, अन्य पुरुष के साथ अपने शरीर का संघट्ट हो जावे ऐसा वर्त्ताव न करे, लज्जा को न छोड़े, मेला आदि में (जहां वहुत से मनुष्य इकठे हो वहां) न जावे, देवदर्शन के वहाने इधर उधर भ्रमण न करे किन्तु घर में वैठके परमेश्वर का स्मरण और भक्ति करने में प्रीतिरक्खे, अपने शील तथा सद्व्यवहार को

विचार कर परमार्थ का कार्य सदा करती रहे, पतिके कुशल समाचार मंगाती रहे, इत्यादि सब व्यवहार पतिके परदेश में जाने पर साध्वी स्त्रियों को वर्तना चाहिये, यही पतिव्रता स्त्रियों का धर्म है और इसी प्रकार से वर्त्ताव करने वाली स्त्री पति, सासु और श्वशुर आदि सब को प्रिय लगती है तथा लोक में भी उस की कीर्ति होती है।

वर्तमान समय में बहुत सी स्त्रियां यह नहीं जानती हैं कि-पति के विदेश में जाने पर उन को किस प्रकार से वर्त्तना चाहिये और इस के न जाननेसे वे अपने सत्य व्रत को भंग करने वाले स्वतन्त्रता के व्यवहार को करने लगती हैं, यह बड़े ही अफ़सोस की बात है, क्योंकि केवल शरीर के अल्प सुख के लिये अपना अकल्याण करना, कुदरती नियम को तोड़ कर पतिकी अप्रिय बनकर अपराधका भार अपने शिरपर रखना तथा लोगोंमें निंदापात्र बनना बहुत ही खराब है, देखो। मोती का पानी और मनुष्य का पानी नष्ट हो जाने पर फिर पीछे नहीं आसकता है, इस लिये समझदार स्त्रियों को उचित है कि-अपने जीवन के सुखके मुख्य पाये रूप प्रेम को पति के संयोग और वियोगमें भी एक सरीखा और अखण्ड रक्खे, पतिके विदेश से वापिस आने तक पतिव्रता के नियमों का पालन कर सदाचरण में वर्त्ताव करे, क्योंकि-इस प्रकार चलनेसे ही पतिपत्नी में अखण्ड प्रेम रह सकता है और अखंड प्रेम का रहना ही उन के लिये सर्वथा और सर्वदा सुखदायक है ॥

यह तृतीय अध्याय का-स्त्री पुरुषधर्म नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दूसरा-प्रकरण—रजो दर्शन ॥

अर्थात् स्त्रीका ऋतुमती होना ॥

रजो दर्शन-स्त्री का कन्या भाव से निकल कर स्त्री-अवस्था (तरुणावस्था) में आने का चिह्न है, यह रजोदर्शन स्त्री के गर्भाशयसे प्रतिमास नियमित समय पर होता है और यह एक प्रकार का रक्तस्राव है, इसीलिये इसको रक्तस्राव, ऋतुस्राव, अधोवेशन, मासिकधर्म, पुष्पभाव और ऋतुसमय आदि भी कहते हैं ॥

रजोदर्शनसे होनेवाला शरीर में फेरफार ॥

ऋतुस्राव होने के समय स्त्री का शरीर गोल और भरा हुआ मालूम होता है, शरीर के भिन्न २ भागों में चरबी की वृद्धि हो जाती है, उस के मनकी शक्ति बढ़ती है, शरीर के भाग स्थूल हो जाते हैं, स्तन मोटे तथा पुष्ट हो जाते हैं, कमर स्थूल हो जाती है, मुख और चेहरा जासूस रंगका दिखलाई देने लगता है, आंखें विशेष चपल हो जाती हैं, व्यव-

हार आदि में लज्जा (शर्म) हो जाती है, सन्तति (पुत्र पुत्री) के उत्पन्न करने की योग्यता जान पड़ती है और स्वाभाविक नियम के अनुसार जिस काम के करने के लिये वह मानी गई है उस कार्यका उसको ज्ञान होगया है. यह बात उस के चेहरे से मालूम होती है, इत्यादि फेरफार ऋतुस्राव के समय स्त्री के शरीरमें होता है ॥

रजोदर्शन होनेका समय ॥

रजोदर्शन के शीघ्र अथवा विलम्ब से आने का मुख्य आधार हवा और संगति है, देखो ! इंग्लेंड, जर्मनी, फ्रांस, रशिया, यूरप और एशिया खण्ड के शीत देशोंकी बाला-ओंके यह ऋतु धर्म प्रायः १९ वें अथवा २० वें वर्षमें होता है. क्योंकि वहां की ठंढी हवा उन की मनोवृत्ति और वैषयिक विकार की वृत्तिको उसी ढंग पर रक्खे हुए है, परन्तु अपने इस गर्म देशमें गर्म खासियत के कारण तथा दूसरे भी कई कारणों से प्रायः १२ वा १४ वर्ष की ही अवस्था में देखा जाता है और ४५ वा ५० वर्ष की अव-स्था में इस का होना बन्द हो जाता है, यद्यपि यह दूसरी बात है कि– किन्हीं स्त्रियों को एक वा दो वर्ष आगे पीछे भी आवे तथा एक वा दो वर्ष आगे पीछे वह बन्द होवे परन्तु इस का साधारण नियमित समय वही है जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं. इसके आगे पीछे होने के कुछ साधारण हेतु भी देखे वा अनुमान किये जा सकते हैं. जैसे देखो ! परि-श्रम करने वाली और उद्योगिनी स्त्रियों की अपेक्षा आलस्य में पड़ी रहने वाली, नाटक आदि तथा नवीन २ रसीली कथाओं की वांचने वाली, प्रेम की वातें करने वाली, इश्क-बाज़ स्त्रियों का संग करने वाली, विलम्ब से तथा विना नियम के असमय पर सोने का अभ्यास रखने वाली और मसालेदार तथा उत्तम सरस खुराक खानेवाली आदि कई एक स्त्रियों का गर्भाशय शीघ्र ही सतेज होकर उन के रजोदर्शन शीघ्र आया करता है, इसके विरुद्ध ग्रामीण, मेहनत मजूरी करने वाली और सादा (साधारण) खुराक खाने वाली आदि साधारण वर्ग की स्त्रियों को पूर्व कही हुई स्त्रियोंकी अपेक्षा ऋतु विलम्बसे आता है यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस कदर ऋतु धर्म विलम्बसे होगा उसी कदर स्त्रियों के शरीर का बन्धेज विशेष दृढ़ रहेगा और उसको बुढ़ापा भी विलम्बसे आवेगा केवल यही कारण है कि ग्रामों की स्त्रियां शहरों की स्त्रियों की अपेक्षा विशेष मज़बूत और क़दा-वर (ऊंचे क़द की) होती हैं ॥

रक्तस्राव का साधारण समय ॥

स्त्रियों के यह रक्तस्राव साधारण रीतिसे प्रतिमास ३० वें दिन अथवा किन्हीं के २८ वें दिन भी होता है, परन्तु किन्हीं स्त्रियों के नियमित रीतिसे तीन अष्टाह (अठवाड़े)

अर्थात् २४ दिनमें भी होता है, यह रजो दर्शन प्रारम्भ दिवस से लेकर ३ से ५ दिवस तक देखा जाता है परन्तु कई समयों में कई स्त्रियों के एक वा दो दिवस न्यूनाधिक भी देखा जाता है ॥

नियमित रजोदर्शन ॥

स्त्रियों के जब प्रथम रजोदर्शनका प्रारंभ होता है तब वह नियमित नहीं होता है अर्थात् कभी २ कई महीने चढ़ जाते हैं अर्थात् पीछे आता है, इस प्रकार कुछ कालतक अनियमित ही रहता है. पीछे नियमित हो जाता है, जिन स्त्रियों के अनियमित समय पर रजोदर्शन आता है उन स्त्रियों के गर्भ रहने का सम्भव नहीं होता है, केवल यही कारण है कि— बंध्या स्त्रियों के यह रजोदर्शन प्रायः अनियमित समय पर होता है, जिन के अनियमित समय पर रजोदर्शन होता है. उन स्त्रियों को उचित है कि— अनियमित समय पर रजोदर्शन होने के कारणोंसे[1] अपने को पृथक् रक्खें (बचाये रहें) क्योंकि गर्भाधान के लिये रजो दर्शनका नियमित समय पर होना ही आवश्यक है, जिन स्त्रियों के नियमित समय पर बराबर रजोदर्शन होता है तथा नियमित रीति पर उसके चिह्न दीख पड़ते हैं. एवं उसकी अन्दर की स्थिति उसका दिखाव और बन्द होना आदि भी नियमित हुआ करते हैं. उन्हीं के गर्भस्थिति का संभव होता है, नवल (नवीन) वधू के रजोदर्शन के प्राप्त होने के पीछे तीन या चार वर्ष के अन्दर गर्भ रहता है और किन्हीं स्त्रियों के कुछ विलम्ब से भी रहा करता है ॥

रजोदर्शन आने के पहिले होनेवाले चिन्ह ॥

जब स्त्री के रजोदर्शन आनेवाला होता है तब पहिले से कमर में पीड़ा होती है, पेंडू भारी रहता है, किसी २ समय पेंडू फटने सा लगता है, शरीर में कोई भीतरी पीड़ा हो ऐसा मालूम होता है, शरीर बेचैन रहता है, सुस्ती मालूम होती है, अल्प परिश्रम से ही थकावट आ जाती है, काम काज में मन नहीं लगता है, पड़ी रहने को मन चाहता है, शरीर भारी सा रहता है दस्त की कब्जी रहती है, किसी २ के वमन और माथे में दर्द भी हो जाता है तथा जब रजोदर्शन का समय अति समीप आ जाता है तब मन बहुत तीव्र हो जाता है, इन चिह्नों में से किसी को कोई चिह्न मालूम होता है तथा किसी को कोई चिह्न मालूम होता है. परन्तु ये सब चिह्न रजोदर्शन होने के पीछे किन्हीं के धीमे पड़ जाते हैं तथा किन्हीं के बिलकुल मिट जाते हैं, कभी २ यह भी देखा जाता है कि– कई कारणोंसे किन्हीं स्त्रियों को रजोदर्शन होने के पीछे एक वा दो दिनतक नियमके विरुद्ध दिन में कई वार शौच जाना पड़ता है ॥

१–अनियमित समय पर रजोदर्शन आने के कारण आगे लिखेंगे ॥

योग्य अवस्था होने पर भी रजोदर्शन न आने से हानि ॥

स्त्री के जिस अवस्था में रजोदर्शन होना चाहिये उस अवस्थामें प्रतिमास रजोदर्शन होने के पहिले जो चिह्न होते हैं वे सव चिह्न तो किन्हीं २ स्त्रियों को मालूम पड़ते हैं परन्तु वे सव चिह्न दो या तीन दिन में अपने आप ही शान्त हो जाते हैं– इसी प्रकार से वे सव चिह्न प्रतिमास मालूम होकर शान्त हो जाया करते हैं. परन्तु रजोदर्शन नहीं होता है इस प्रकार से कुछ समय वीतने पर इस की हानियां झलक ने लगती हैं अर्थात् थोड़े समय के वाद माथे में दर्द होने लगता है, कोठे में विगाड़ मालूम पड़ता है, दस्त वरावर नहीं आता है और धीरे २ शरीरमें अन्य विकार भी होने लगते हैं, अन्त में इस का परिणाम यह होता है कि हिष्टीरिया (उन्माद) और क्षय आदि भयंकर रोग शरीर में अपना घर वना लेते हैं ॥

रजोदर्शन न आने के कारण ॥

वहुत सुख में जीवन का काटना, तमाम दिन वैठे रहना, उत्तम सरस स्वादिष्ठ तथा अधिक भोजन का करना, खुली हवा में चलने फिरने का अभ्यास न रखना, वहुत नींद लेना, मन में भय और चिन्ता का रखना, क्रोध करना, तेज हवा में तथा भीगे हुए स्थान में रहना, शरदी का लग जाना और किसी कारण से निर्वलता का उत्पन्न होना आदि कई कारणों से यह रोग उत्पन्न हो जाता है, इस लिये इस रोगवाली स्त्री को चाहिये कि किसी वुद्धिमान् और चतुर वैद्य अथवा डाक्टर की सम्मति से इस भयंकर रोग को शीघ्रही दूर करे ॥

रजोदर्शन के वन्द करने से हानि ॥

वहुत सी स्त्रियां विवाह आदि उत्सवों में शामिल होने की इच्छा से अथवा अन्य किन्हीं कारणों से कुछ ओपधि खाकर अथवा ओषधि लगा कर ऋतुस्राव को वन्द कर देती हैं अथवा ऐसी दवा खा लेती हैं कि जिस से ऋतु धर्म विलकुल ही वंद हो जाता है, इस प्रकार रजोदर्शन के वन्द कर देने से गर्भस्थान में अथवा दूसरे गुप्त भागोंमें शोथ (सूजन) हो जाता है, अथवा अन्य कोई दुःखदायक रोग उत्पन्न हो जाता है, इस प्रकार कुदरतके नियम को तोड़ने से इस का दण्ड जीवनपर्यन्त भोगना पड़ता है, इस लिये रजोदर्शन को वन्द करने की कोई ओषधि आदि भूल कर के भी कभी नहीं करनी चाहिये, यह तो अपना समय पूर्ण होने पर कुदरती नियम से आप ही वन्द हो यही उत्तम है, क्योंकि–इसको रोक देने से यह भीतर ही रह कर शरीर में अनेक प्रकार की खरावियां पैदा कर वहुत हानि पहुँचाता है ॥

रजोदर्शन के समय स्त्री का कर्तव्य॥

स्त्री को जब ऋतु धर्म प्राप्त हो तब उसे अपनी इस प्रकार से सम्भाल करनी चाहिये कि–जिस प्रकार से ज़ख़मी अथवा दर्दवाले की संभाल की जाती है।

रजस्वला स्त्री को खुराक बहुत ही सादी और हलकी खानी चाहिये क्योंकि खुराक़ की फेरफार का प्रभाव ऋतु धर्म पर बहुत ही हुआ करता है, शीतल भोजन और वायु का सेवन रजस्वला स्त्री को नहीं करना चाहिये क्योंकि शीतल भोजन और वायु के सेवन से उदर की वृद्धि और अजीर्ण रोग हो जाता है जो कि सब रोगों का मूल है, एवं गर्म और मसालेदार खुराक भी नहीं खानी चाहिये क्योंकि इस से शरीर में दाह उत्पन्न हो जाता है, बहुत सी अज्ञान स्त्रियां ऋतु धर्म के समय अपनी अज्ञानता से उद्धत (उन्मत्त) होकर छाछ, दही, नींबू, इमली और कोकम आदि खट्टी वस्तुओं को तथा खांड़ आदि हानिकारक वस्तुओं को खा लेती हैं कि जिस से रजोदर्शन बन्द होकर उन को ज्वर चढ़ जाता है, मस्तक और पीठ के सब हाड़ों में दर्द होने लगता है तथा किसी २ समय पेट में ऐंठन (खैंचतान) आदि होने लगती है, खांसी हो जाती है, इस प्रकार ऋतु धर्म के समय नियम पूर्वक न चलनेसे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये ऋतु-धर्म के समय खूब सँभल कर आहार विहार आदि का सेवन करना चाहिये, यदि कभी भूल चूक से ऐसा (मिथ्या आहार विहार) हो भी जावे तो शीघ्रही उसका उपाय करना चाहिये और आगामी को उस का पूरा ख़याल रखना चाहिये।

रजोदर्शन के समय स्त्रियों को केवल रोटी, दाल, भात, पूड़ी, शाक और दूध आदि सादी और हलकी खुराक खानी चाहिये जिस से अजीर्ण उत्पन्न हो ऐसी और इतनी (मात्रा से अधिक) खुराक़ नहीं खानी चाहिये, अशक्ति (कमज़ोरी) न मालूम पड़े इस लिये कुछ पुष्ट खुराक़ भी खानी चाहिये, यथाशक्य गर्म कपड़ा पहरना चाहिये परन्तु तंग पोशाक नहीं पहरनी चाहिये, शीत काल में अत्यन्त शीत पड़ने के समय कपड़े धोने के आलस्य से अथवा उनके बिगड़ जाने के भय से काफ़ी कपड़े न रखने से बहुत खराबी होती है, कभी २ ऐसा भी होता है कि–स्त्री ऋतुधर्म के समय बिलकुल खुले और दुर्गन्धवाले स्थान में बैठी रहती है इससे भी बहुत हानि होती है, एवं ऋतु धर्म के समय छत पर बैठने, शरीर पर ठंढी पवन लगने, नंगे पैद ठंढी ज़मीन पर चलने, भीगी हुई ज़मीन पर बैठने और भीगा कपड़ा पहरने आदि कई कारणों से भी शरीर में सर्दी लगकर ऋतु धर्म अटक (रुक) जाता है और उसके अटक जाने से गर्भाशय में शोथ (सूजन) हो जानेका सम्भव होता है. क्योंकि सर्दी लगने से ऋतु धर्म का रक्त (खून) गर्भ में जमकर शोथ को उत्पन्न कर देता है तथा पेंड़ू में दर्द को भी उत्पन्न कर देता

है, इस प्रकार गर्भाशय के बिगड़ जानेसे गर्भस्थिति (गर्भ रहने) में बड़ी अड़चल (दिक्कत) आ जाती है, इसलिये स्त्री को चाहिये कि–उक्त समय में इन हानिकारक वर्तावों से बिलकुल अलग रहे ।

इसी प्रकार बहुत देर तक खड़े रहने से, बहुत भय चिन्ता और क्रोध करने से तथा अति तीक्ष्ण (बहुत तेज़) जुलाब लेने से भी ऋतुधर्म में बाधा पड़ती है, इसलिये स्त्री को चाहिये कि–जहां ठंढी पवन का झकोरा (झपाटा) लगता हो वहां अथवा बारी (खिड़की या झरोखा) के पास न बैठे और न वहां शयन करे, इसी प्रकार भीगी हुई ज़मीन में भी सोना और बैठना नहीं चाहिये ।

इस के सिवाय–स्नान, शौच, गाना, रोना, हंसना, तेलका मर्दन, दिन में निद्रा, जुवा, आंख में किसी अंजन आदि का लगाना, लेपकरना, गाड़ी आदि वाहन (सवारी) पर बैठना, बहुत बोलना तथा बहुत सुनना, पति संग करना, देव का पूजन तथा दर्शन, ज़मीन खोदना (करोदना), बहिन आदि किसी रजस्वला स्त्री का स्पर्श, दांत घिसना, पृथिवी पर लकीरें करना, पृथिवी पर सोना, लोहे तथा तांबे के पात्र से पानी पीना, ग्राम के बाहर जाना, चन्दन लगाना, पुष्पों की माला पहरना, ताम्बूल (पान, बीड़ा) खाना, पाटे (चौकी) पर बैठना, दर्पण (कांच, शीसा) देखना, इन सब बातों का भी स्त्री ऋतुधर्म के समय त्याग करे तथा प्रसूता स्त्री का स्पर्श, विटला हुआ, ढेढ (चांडाल), मुर्गा, कुत्ता, सुअर, कौआ और मुर्दा आदि का स्पर्श भी नहीं करना चाहिये, इस प्रकार से वर्त्ताव न करने से बहुत हानि होती है, इसलिये समझदार स्त्री को चाहिये कि ऋतु धर्म के समय ऊपर लिखी हुई बातों का अवश्य स्मरण रक्खे और उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करे ॥

रजोदर्शन के समय उचित वर्ताव न करने से हानि ॥

रजोदर्शन के समय उचित वर्ताव न करने से गर्भाशय में दर्द तथा विकार उत्पन्न हो जाता है जिस से गर्भ रहने का सम्भव नहीं रहता है, कदाचित् गर्भ रहभी जाता है तो प्रसूत समय में (बच्चा उत्पन्न होने के समय) अति भय रहता है, इस के सिवाय प्रायः यह भी देखा जाता है कि–बहुत सी स्त्रियां पीले शरीर वाली तथा मुर्दार सी दीख-पड़ती हैं, उस का मुख्य कारण ऋतुधर्म में दोष होना ही है, ऐसी स्त्रियां यदि कुछ भी परिश्रम का काम करती हैं तथा सीढ़ी पर चढ़ती हैं तो शीघ्रही हांफने लगती हैं तथा कभी २ उनकी आंखों के आगे अँधेरा छा जाता है–इसका हेतु यही है कि–ऋतुधर्मके समय उचित वर्त्ताव न करने से उन के आन्तरिक निर्बलता उत्पन्न हो जाती है, इस लिये ऋतुधर्मके समय बहुत ही सँभलकर वर्ताव करना चाहिये ।

ऋतुधर्म के समय बहुत से समझदार हिन्दू, पारसी, मुसलमान तथा अंग्रेज़ आदि वर्गोंमें स्त्रियों को अलग रखने की रीति जो प्रचलित है–वह बहुतही उत्तम है क्योंकि उक्त दशा में स्त्रियों को अलग न रखने से गृहसम्बंधी कामकाज में सम्बंध होने से बहुत खराबी होती है, वर्तमानमें उक्त व्यवहारके ठीक रीति से न होने का कारण केवल मनुष्य जाति की लुब्धता तथा मनकी निर्बलता ही है, किन्तु उचित तो यही है कि–रजखला स्त्रियोंको अतिस्वच्छ, प्रकाशयुक्त, सूखे तथा निर्मल स्थान में गृह से पृथक् रखने का प्रबंध करना चाहिये किन्तु दुर्गन्धयुक्त तथा प्रकाशरहित स्थान में नहीं रखना चाहिये ।

ऋतुधर्म के समय स्त्रियों को चाहिये कि–मलीन कपड़े न पहरें, हाथ पैर सूखे और गर्म रक्खें, हवा में तथा भीगी हुई ज़मीन पर न चलें, खुराक अच्छी और ताजी खावें, मन को निर्मल रक्खें, ऋतुधर्म के तीन दिनों में पुरुष का मुख भी न देखें, स्नान करने की बहुत ही आवश्यकता पड़े तो स्नान करें परन्तु जलमें बैठकर स्नान न करें किन्तु एक जुदे पात्रमें गर्म जल भर के स्नान करें और ठंढी पवन न लगने पावे इसलिये शीघ्र ही कोई स्वच्छ वस्त्र अथवा ऊनी वस्त्र पहरलें परन्तु विशेष आवश्यकता के विना स्नान न करें॥

रजोदर्शन के समय योग्य सम्भाल न रखने से बालक पर पड़ने वाला असर ॥

रजखला स्त्री के दिन में सोने से उस के जो गर्भ रह कर बालक उत्पन्न होता है वह अति निद्रालु (अत्यन्त सोनेवाला) होता है, नेत्रों में अञ्जन (काजल, सुर्मा) के आंजने (लगाने) से अन्धा, रोने से नेत्र विकारवाला और दुःखी स्वभाव का, तेलमर्दन करने से कोढ़ी, हँसने से काले ओठ दाँत जीभ और तालुवाला, बहुत बोलनेसे प्रलापी (बकवाद करनेवाला) बहुत सुनने से बहिरा, ज़मीन कुचरने (करोदने) से आलसी, पवन के अति सेवन से गैला (पागल), बहुत मेहनत करनेसे न्यूनांग (किसी अंग से रहित), नख काटने से खराब नखवाला, पात्रों (तांबे आदिके वर्त्तनों) के द्वारा जल पीने से उन्मत्त और छोटे पात्र से जल पीनेसे ठिंगना होता है, इसलिये स्त्री को उचित है कि–ऋतुधर्म के समय उक्त दोषों से बचे कि जिस से उन दोषों का बुरा प्रभाव उस के सन्तान पर न पड़े ।

इसके सिवाय रजखला स्त्री को यह भी उचित है कि–मिट्टी काष्ठ तथा पत्थर आदि के पात्र में भोजन करे, अपने ऋतुधर्म के रक्त (रुधिर) को देवस्थान गौओंके बाड़े और जलाशयमें न डाले, ऋतुधर्म के समय में तीन दिन के पहिरे हुए जो वस्त्र हों उन को चौथे दिन धो डाले तथा सूर्य उदय होने के दो या तीन घण्टे पीछे गुनगुने (कुछ गर्म) पानी से स्नान करे तथा स्नान करने के पश्चात् सब से प्रथम अपने पति का मुख देखे,

जो स्त्री ऊपर लिखे हुए नियमों के अनुसार वर्ताव करेगी वह सदा नीरोग और सौभाग्यवती रहेगी तथा उस का सन्तान भी सुशील, रूपवान्, बुद्धिमान् तथा सर्व शुभ लक्षणों से युक्त उत्पन्न होगा ॥

यह तृतीय अध्यायका—रजोदर्शन नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तीसरा प्रकरण—गर्भाधान।

गर्भाधान का समय ॥

गर्भाधान उस क्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा गर्भाशयमें वीर्य स्थापित किया जाता है, इस का समय शास्त्रकारोंने यह बतलाया है कि–१६ वर्ष की स्त्री तथा २५ वर्षका पुरुष इस (गर्भाधान) की क्रिया को करे अर्थात् उक्त अवस्थाको प्राप्त हो कर पुरुष और स्त्री सन्तान को उत्पन्न करें, यदि इस से प्रथम इस कार्य को किया जायगा तो गर्भ गिर जायगा अथवा (गर्भ न गिरा तो) सन्तति उत्पन्न होते ही मर जायगी अथवा (यदि सन्तति उत्पन्न होते ही न भी मरी तो) दुर्वलेन्द्रिय होगी इसलिये अल्पावस्था में गर्भाधान कभी न करना चाहिये।

प्यारे सज्जनो देखो ! स्त्री की योनि सन्तान के उत्पन्न करने का क्षेत्र (खेत) है इस लिये जिस प्रकार किसान अन्न आदि के उत्पन्न करने में विचार रखता है उसी भांति वरन उस से भी अधिक सन्तानोत्पत्ति में विचार करना मनुष्य को अति आवश्यक है जिससे किसी प्रकार की हानि न हो।

गर्भाधान के विषय में शास्त्रकारों की यह सम्मति है कि–जब तक स्त्री १६ वार रजो धर्म से शुद्ध न हो जावे तब तक उसमें बीज बोने (वीर्यस्थापन करने) अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये, परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि–आज कल इस विचार को लोगों ने विलकुल ही त्याग दिया है और इस के त्यागने ही के कारण वर्तमानमें यह दशा हो रही है कि–मनुष्यगण न्यूनवल, निर्बुद्धि, अल्पायु,

---

१–क्योंकि उत्पन्न करने की शक्ति स्त्री पुरुष में उक्तअवस्थानमें ही प्रकट होती है. तथा स्त्रीमें ४५ अथवा ५० वा ५५ वर्षतक वह शक्ति स्थित रहती है, परन्तु पुरुष में ७५ वर्षतक उक्त शक्ति प्रायः रहती है, यद्यपि यूरोप आदि देशोंमें सौ २ वर्ष की अवस्था वालेभी पुरुष के बच्चेका उत्पन्न होना अखबारों में पढ़ते हैं तथापि इस देशके लिये तो शास्त्रकारोंका ऊपर कहा हुआ ही कथन है, ८ वर्षसे लेकर १४ वर्षकी अवस्थातक उत्पन्नकरने की शक्ति की उत्पत्ति का प्रारंभ होता है १५ से २१ वर्ष तककी वह अवस्था है कि जिसमें अंडकोश में वीर्य बनने लगता है तथा पुरुषचिह्नको प्रयोग में लाने की इच्छा उत्पन्न होती है, २१ से ३० वर्षतक पूर्णता की अवस्था है, इसविषय का विशेष वर्णन सुश्रुतआदि ग्रन्थों में देखलेना चाहिये ॥

रोगी तथा नाटे (छोटे कद के) होने लगे हैं, इस लिये जब स्त्री १६ वार रजो धर्म से निवृत्त हो कर शुद्ध हो जावे तब उस के साथ प्रसंग करना चाहिये तथा उस (स्त्री प्रसंग) की भी अवधि स्त्री के मासिक धर्म (जो कि स्वाभाविक रीति के अनुसार प्रतिमास होता है) के दिन से लेकर १६ दिन तक है, इन ऊपर कही हुई १६ रात्रियों में से भी प्रथम चार रात्रियों में स्त्री प्रसंग कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि-इन चार रात्रियों में स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकारयुक्त तथा मलीन रुधिर निकलता है, इस लिये जो कोई इन रात्रियों में स्त्री प्रसंग करता है उस की बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु आदि हीन होजाते हैं तथा उस को अनेक प्रकार के रोग भी आ घेरते हैं, इस के सिवाय उक्त चार रात्रियों में स्त्री प्रसंग का निषेध इस लिये भी किया गया है कि-उक्त रात्रियों में स्त्री प्रसंग करने से पुरुष का अमूल्य वीर्य व्यर्थ जाता है अर्थात् उक्त रात्रियों में गर्भाधान नहीं हो सकता है क्योंकि-यह नियम की बात है कि जैसे बहते हुए जल में कोई वस्तु नहीं ठहर सकती है इसी प्रकार बहते हुए रक्त में वीर्यकी स्थिति होना भी असम्भव है, अतः रजखला स्त्री के साथ कदापि प्रसंग नहीं करना चाहिये, रजखला स्त्री के साथ प्रसंग करना तो दूर रहा किन्तु रजखला स्त्री को देखना भी नहीं चाहिये और न स्त्री को अपने पति का दर्शन करना चाहिये किन्तु स्त्री को तो यह उचित है कि उक्त समय में गृहसम्बंधी भी कोई कार्य न करे, केवल एकान्त में बैठी रहे, शरीरका शृंगार आदि न करे किन्तु जब रज निकलना बंद हो जावे तब स्नान करे इसी को ऋतु स्नान कहते हैं ।

यह भी स्मरण रहना चाहिये कि-ऋतुस्नानके पीछे स्त्री जिस पुरुष का दर्शन करेगी उसी पुरुष के समान पुत्र की आकृति होगी, इस लिये स्त्री को योग्य है कि-ऋतुस्नान के अनन्तर अपने पति पुत्र अथवा उत्तम आकृतिवाले अन्य किसी सम्बंधी पुरुष को देखे, यदि किसी कारण से इन का देखना संभव न हो तो अपनी ही आकृति (सूरत) को (यदि उत्तम हो तो) दर्पण में देख ले, अथवा किसी उत्तम आकृतिमान् तथा गुणवान् पुरुष की तस्वीर को मंगा कर देख ले तथा उन की सूरत का चित्त में ध्यान भी करती रहे क्योंकि जिस का चित्त में वारंवार ध्यान रहेगा उसी का बहुत प्रभाव सन्तान पर होगा इस लिये पुरुष का दर्शन कर उसका ध्यान भी करती रहे कि जिस से उत्तम मनोहर पुत्र और पुत्री उत्पन्न हों ।

१-देखो लिखा है कि-प्रवहत्सलिले क्षिप्तं द्रव्यं गच्छत्यधो यथा ॥ तथा वहति रक्ते तु क्षिप्तं वीर्यमधो व्रजेत् ॥ १ ॥ अर्थात् जैसे बहते हुए जल में डाली हुई वस्तु नीचे चली जाती है, उसी प्रकार बहते हुए रुधिर में डाला हुआ वीर्य नीचे चला जाता है अर्थात् गर्भस्थिति नहीं होती है ॥

जिस प्रकार से स्त्री प्रसंग में पहिली चार रात्रियों का त्याग है उसी प्रकार ग्यारहवीं तेरहवीं रात्रि तथा अष्टमी पूर्णमासी और अमावास्या का भी निषेध किया गया है, इन से शेष रात्रियों में स्त्री प्रसंग की आज्ञा है तथा उन शेष रात्रियों में भी यह शास्त्रीय (शास्त्रका) सिद्धान्त है कि-समरात्रियों में अर्थात् ६, ८, १०, १२, १४ और १६ में स्त्रीप्रसंगद्वारा गर्भ रहने से पुत्र तथा विषम रात्रियों में अर्थात् ७, ९, ११, १३ और १५ में गर्भ रहने से पुत्री उत्पन्न होती है क्योंकि-सम रात्रियों में पुरुष के वीर्य की तथा विषम रात्रियों में स्त्री के रज की अधिकता होती है, मुख्य तात्पर्य यह है कि मनुष्य का वीर्य अधिक होने से लड़का कम होने से लड़की और दोनों का वीर्य और रज बराबर होने से नपुंसक होता है तथा दोनों का वीर्य और रज कम होने से गर्भ ही नहीं रहता है।

पुत्र और पुत्री की इच्छावाला पुरुष ऊपर कही हुई रात्रियों में नियमानुसार केवल एकवार स्त्रीप्रसंग करे परन्तु दिन में इस क्रिया को कदापि न करे क्योंकि दिन में प्रकाश तेज और गर्मी अधिक होती हे तथा मैथुन करते समय और भी गर्मी शरीर से निकलती है इस लिये इस दो प्रकार की उष्णता से शरीर को वहुत हानि पहुंचती है और कभी २ यहां तक हानि की सम्भावना हो जाती है कि-अति उष्णता के कारण प्राणों का निकलना भी सम्भव हो जाता है, इस लिये-रात्रिमें ही स्त्रीप्रसंग करना चाहिये किन्तु रात्रि में भी दीपक तथा लेम्प आदि जलाकर तथा उन को निकट रख कर स्त्री प्रसंग नहीं करना चाहिये-क्योंकि-इस से भी पूर्वोक्त हानि की ही सम्भावना रहती है।

रात्रि में दश वा ग्यारह वजे पर स्त्रीप्रसंग करना उचित है क्योंकि-इस क्रिया का ठीक समय यही है, जव वीर्य पात का समय निकट आवे उस समय दोनों (स्त्रीपुरुष) सम हो जावें अर्थात् ठीक नाक के सामने नाक, मुंहके सामने मुंह, इसी प्रकार शरीर के सव अंग समान रहें।

स्त्रीप्रसंग के समय स्त्री तथा पुरुष के चित्त में किसी वात की चिन्ता नहीं रहनी चाहिये तथा इस क्रिया के पीछे शीघ्र नहीं उठना चाहिये किन्तु थोड़ी देरतक लेटे रहना चाहिये और इस कार्य के थोड़े समय के पीछे गर्मकर शीतल किये हुए गायके दूधमें मिश्री डालकर दोनों को पीना चाहिये क्योंकि दूधके पीने से थकावट जाती रहती है और जितना रज तथा वीर्य निकलता है उतना ही और वन जाता है तथा ऐसा करनेसे किसी प्रकार का शारीरिक विकार भी नहीं होने पाता है।

१-इस सर्व विषय का यदि विशेष वर्णन देखना हो तो भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थों को देखो॥

इस कार्य के कर्त्ता यदि प्रातःकाल शरीर पर उबटन लगा कर स्नान करें तथा खीर, मिश्री, सहित, दूध और भात खावें तो अति लाभदायक होता है।

इस प्रकार से सर्वदा ऋतु के समय नियमित रात्रियों में विधिवत् स्त्रीप्रसंग करना चाहिये किन्तु निषिद्ध रात्रियों में तथा ऋतुधर्म से लेकर सोलह रात्रियों के पश्चात् की रात्रियों स्त्रीप्रसंग कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि धर्मग्रन्थों में लिखा है कि जो मनुष्य अपनी स्त्री से ऋतु के समय में नियमानुसार प्रसंग करता है वह गृहस्थ हो कर भी ब्रह्मचारी के समान है।

गर्भिणी स्त्री के वर्तावका वर्णन ॥

स्त्री के जिस दिन गर्भ रहता है उस दिन शरीर में निम्नलिखित चिन्ह प्रतीत होते हैं:—

जैसे बहुत श्रम करने से शरीर में थकावट आ जाती है उसी प्रकार की थकावट मालूम होने लगती है, शरीर में ग्लानि होती है, तृषा अधिक लगती है, पैरों की पींडियों में दर्द होता है, प्रसवस्थान फड़कता है, रोमांच होता है (रोंगटे खड़े होते हैं), सुगन्धित वस्तु में भी दुर्गन्धि मालूम होती है और नेत्रोंके पलक चिमटने लगते हैं।

गर्भाधान के एक मास के अनुमान समय होने पर शरीर में कई एक फेर फार होते हैं—स्त्री का रजोदर्शन वंद हो जाता है, परन्तु नवीन गर्भवती (गर्भ धारण की हुई) स्त्री को इस एक ही चिन्ह के द्वारा गर्भ रहने का निश्चय नहीं कर लेना चाहिये किन्तु जिस स्त्री के एक वा दो वार सन्तति हो चुकी हो वह स्त्री नियमित समय पर होने वाले रजोदर्शन के न होने पर गर्भस्थिति का निश्चय कर सकती है।

१—स्मरण रखना चाहिये कि—सन्तान का उत्तम और वलिष्ठ होना पति पत्नी के भोजन पर ही निर्भर है इस लिये स्त्री पुरुषको चाहिये कि अपने आत्मा तथा शरीर की पुष्टि के लिये बल और बुद्धिके बढ़ानेवाले उत्तम औषध और नियमानुसार उत्तम २ भोजनों का सेवन करें, भोजन आदि के विषय में इसी ग्रन्थ के चौथे अध्याय में वर्णन किया गया है वहां देखें ॥

२—सर्व शास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि—स्त्री गर्भसमय में अपना जैसा आचरण रखती है—उन्हीं लक्षणों से युक्त सन्तान भी उस के उत्पन्न होता है—इसलिये यहां पर संक्षेप से गर्भिणी स्त्री के वर्ताव का कुछ वर्णन किया जाता है—आशा है कि—स्त्रीगण इस से यथोचित लाभ प्राप्त कर सकेंगी ॥

३—जैसा कि लिखा है कि—स्तनयोर्मुखकार्ष्ण्यं स्याद्रोमराज्युद्गमस्तथा ॥ अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः सम्मील्यन्ते विशेषतः ॥ १ ॥ छर्दयेत् पथ्यं भुक्त्वापि गन्धादुद्विजते शुभात् ॥ प्रसेकः सदनं चैव गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥ २ ॥ अर्थात् दोनों स्तनोंका अग्रभाग काला हो जाता है, रोमाञ्च होता है, आंखों के पलक अत्यन्त चिमटने लगते हैं ॥ १ ॥ पथ्य भोजन करने पर भी छर्दि (वमन) हो जाता है शुभ गन्ध से भी भय लगता है मुख से पानी गिरता है तथा अंगों में थकावट मालूम होती है ॥ २ ॥ ये लक्षण जो लिखे हैं ये गर्भरहने के पश्चात् के हैं किन्तु गर्भरहने के तत्काल तो वही चिन्ह होते हैं जो कि ऊपर लिखे हैं ॥

एक मास के पीछे गर्भिणी स्त्री के जी मचलाना और वमन (उलटियां) प्रातःकाल में होने लगते हैं, यद्यपि रजोदर्शन के वंद होने की खबर तो एक मास में पड़ती है, परन्तु जी मचलाना और वमन तो बहुतसी स्त्रियों के एक मास से भी पहिले होने लगते हैं तथा बहुत सी स्त्रियों के मास वा डेढ़ मास के पीछे होते हैं और ये (मोल और वमन) एक वा दो मासतक जारी रह कर आप ही वंद हो जाते हैं परन्तु कभी २ किसी २ स्त्री के पांच सात मासतक भी बने रहते हैं तथा पीछे शान्त हो जाते हैं।

गर्भिणी स्त्री को जो वमन होता है वह दूसरे वमन के समान कष्ट नहीं देता है इस लिये उस की निवृत्ति के लिये कुछ ओषधि लेने की आवश्यकता नहीं है, हां यदि उस वमन से किसी स्त्री को कुछ विशेष कष्ट मालूम हो तो उसका कोई साधारण उपाय कर लेना चाहिये।

जिस गर्भिणी स्त्री को ये मोल (जीमचलाना) और वमन होते हैं उसको प्रसूत के समय में कम संकट होता है, इस के अतिरिक्त गर्भिणी स्त्री के मुख में थूक का आना गर्भस्थिति से थोड़े समय में ही होने लगता है तथा थोड़े समयतक रह कर आप ही वन्द हो जाता है, धीरे २ स्तनों के मुख के आस पास का सब भाग पहिले फीका और पीछे श्याम हो जाता है, स्तनों पर पसीना आता है, प्रथम स्तन दावने से कुछ पानी के समान पदार्थ निकलता है परन्तु थोड़े दिन के वाद दूध निकलने लगता है।

गर्भिणी स्त्री का दोहद ॥

तीसरे अथवा चौथे मास[1] में गर्भिणी स्त्री के दोहद उत्पन्न होता है अर्थात् भिन्न २ विषयों की तरफ उस की अभिलाषा होती है, इस का कारण यह है कि, दिमाग (मगज़) और गर्भाशय के ज्ञानतन्तुओं का अति निकट सम्बन्ध है इस लिये गर्भाशय का प्रभाव दिमाग पर होता है, उसी प्रभाव के द्वारा गर्भिणी स्त्री की भिन्न २ वस्तुओं पर रुचि चलती है, कभी २ तो ऐसा भी देखा गया है कि उस का मन किसी अपूर्व ही वस्तु के खाने को चलता है कि जिस के लिये पहिले कभी इच्छा भी नहीं हुई थी, कभी २ ऐसा भी होता है कि-जिस वस्तु में कुछ भी सुगन्धि न हो उस में भी उस को सुगन्धि मालूम होती है अर्थात् वेर, इमली, राख, धूल, कंकड़, कोयला और मिट्टी आदि में भी कभी २ उसको सुगन्धि मालूम होती है तथा इन के खाने के लिये उस का मन ललचाया करता है, किसी २ स्त्री का मन अच्छे २ वस्त्रों के पहरने के लिये चलता है, किसी २ का मन अच्छी २ वातों के करने तथा सुनने के लिये चलता है तथा किसी २ का मन उत्तम २ पदार्थों के देखने के लिये चला करता है ॥

१-परन्तु इस का नियम नहीं है कि तीसरे अथवा चौथे मास में ही दोहद उत्पन्न हो, क्योंकि-कई स्त्रियों के उक्त समय से एक आध मास पहिले वा पीछे भी दोहद का उत्पन्न होना देखा जाता है ॥

पेट में बालक का फिरना ॥

पेट में बालक का फिरना चौथे वा पांचवें महीने में होता है, किन्तु इस से पूर्व नहीं होता है क्योंकि गर्भस्थ सन्तान के बड़े होने से उस की गति (इधर उधर हिलना आदि चेष्टा) मालूम होती है किन्तु जहांतक गर्भस्थ सन्तान छोटा रहता है वहांतक गति नहीं मालूम होती है।

यद्यपि ऊपर कहे हुए सब चिन्ह तो स्त्री से पूंछने से तथा जांच करने से मालूम हो सकते हैं परन्तु गर्भ स्थिति के कारण पेट का बढ़ना तो प्रत्यक्ष ही मालूम हो जाता है, किन्तु प्रथम दो वा तीन महीनेतक तो पेट का बढ़ना भी स्पष्ट रीति से मालूम नहीं होता है परन्तु तीन महीने के पीछे तो पेट का बढ़ना साफ तौर से मालूम होने लगता है अर्थात् ज्यों २ गर्भस्थ बालक बड़ा होता जाता है त्यों २ पेट भी बढ़ता जाता है, परन्तु यह भी स्मरण रहना चाहिये कि केवल पेट के बढ़ने से ही गर्भस्थिति का निश्चय नहीं कर लेना चाहिये किन्तु इस के साथ में ऊपर कहे हुए चिन्ह भी देखने चाहियें क्योंकि उदर की वृद्धि तो तापतिल्ली और जलोदर आदि कई एक रोगों से भी हो जाती है ॥

गर्भिणी स्त्री के दिन पूरे होने के समय में होनेवाले चिन्ह ॥

इस समय में बहुमूत्रता होती है अर्थात् वारंवार पेशाव करने के लिये जाना पड़ता है परन्तु उस में दर्द नहीं होता है, किसी २ स्त्री के गर्भ स्थिति की प्रारंभिक दशा में भी बहुमूत्रता हो जाती है परन्तु इस दशा में उस के कुछ पीड़ा हुआ करती है, वारंवार पेशाव लगने का कारण यह है कि—गर्भाशय और मूत्राशय ये दोनों बहुत समीप है इसलिये गर्भाशय के बढ़ने से मूत्राशय पर दवाव पड़ता है उस दवाव के पड़ने से वारंवार पेशाव लगता है, परन्तु यह (वारंवार पेशाव का लगाना) भी कुछ समय के पश्चात् आप ही बन्द हो जाता है, इस के सिवाय गर्भिणी स्त्री का चेहरा प्रफुल्लित होता है परन्तु बहुत सी स्त्रियां प्रायः दुर्बल भी हो जाया करती हैं, इत्यादि ॥

प्रत्येक मास में गर्भस्थिति की दशा तथा उसकी संभाल ॥

स्थानांग सूत्रके पांचवें स्थान में कामसेवन का पांच प्रकार से होना कहा है. जिस का संक्षेप से वर्णन यह हैं:—

१–पुरुष वा स्त्री अपने मन में काम भोग की इच्छा करे, इस का नाम मनःपरिचारण है॥

२–जिन शब्दों से कामविकार जागृत हो ऐसे शब्दों के द्वारा परस्पर वार्तालाप (सम्भाषण) करना, इस का नाम शब्दपरिचारण है ॥

३–परस्पर में राग जागृत हो ऐसी दृष्टि से एक दूसरे को देखना, इस का नाम रूपपरिचारण है ॥

४–आलिङ्गन आदि के द्वारा केवल स्पर्श मात्रसे काम सेवन करना, इस का नाम स्पर्शपरिचारण है ॥

५–एक शय्या (चार पाई वा विस्तर) में सम्पूर्ण अङ्गों से अङ्गों को मिला कर काम भोग करना, इस का नाम कायपरिचारणा है ॥

इन पांचों काम सेवन की विधियों मेंसे पांचवी विधि के अनुसार जव काम सेवन किया जाता है तव स्त्री के गर्भ की स्थिति होती है, गर्भ की स्थिति का स्थान एक कमलाकार नाड़ी विशेष है अर्थात् स्त्री की नाभि के नीचे दो नाड़ी एक दूसरी से सम्बद्ध हो कर कमल पुष्पके समान वनी हुई अधोमुख कमलाकार है, इसी में गर्भ की स्थिति होती है, इस नाड़ी के नीचे आमकी मांजर (मञ्जरी) के समान एक मांस का मांजर है तथा उस मांजर के नीचे योनि है, प्रतिमास जो स्त्री को ऋतुधर्म होता है वह इसी मांजर से लोहू गिर कर योनि के मार्ग से वाहर आता है ।

पहिले कह चुके हैं कि—ऋतुस्नान के पीछे चौथे दिन से लेकर वारह दिन तक गर्भ स्थिति का काल है, इस विषय में यह भी जान लेंना आवश्यक है कि—कायपरिचारणा (कामसेवन की पांचवीं विधि) के द्वारा काम भोग करने के पीछे स्खलित हुए वीर्य और शोणित में कच्ची चौवीस घड़ी (९ घंटे तथा ३६ मिनट) तक गर्भस्थिति की शक्ति रहती है, इस के पीछे वह शक्ति नहीं रहती है किन्तु फिर तो वह शक्ति तव ही उत्पन्न होगी कि जव पुनः दूसरी वार सम्भोग किया जायगा !

सम्भोग करने के पीछे गर्भ में लड़के वा लड़की (जो उत्पन्न होने को हो) का जीव शीघ्र ही आ जाता है, परन्तु इस विषय में जो लोग ऐसा मानते हैं कि गर्भस्थिति के एक महीने वा दो महीने के पीछे जीव आता है वह उन का भ्रममात्र है किन्तु जीव तो चौवीस घड़ी के भीतर २ ही आ जाता है तथा जीव गर्भमें आते ही पिता के वीर्य और माता के रुधिर का आहार लेकर अपने सूक्ष्म शरीर को (जिसे पूर्व भव से साथ लाया है तथा जिस के साथ में अनेक प्रकार की कर्म प्रकृति भी हैं) गर्भाशय में डाल कर उसी के द्वारा स्थूल शरीर की रचना का प्रारंभ करता है, क्योंकि जव जीव एक गति को छोड़कर दूसरी गति में आता है तव तैजस तथा कार्मणरूप सूक्ष्म शरीर उस के साथही में रहता है तथा पुण्य और पाप आदि कर्म भी उसी सूक्ष्म शरीर के साथ में लगे रहते हैं,

---

१–जैसा कि वैद्यक आदि ग्रन्थोंमें लिखा है कि–शुक्रार्तवसमाश्लेषो यदैव खलु जायते ॥ जीवस्तदैव विशति युक्तशुक्रार्तवान्तरम् ॥ १ ॥ सूर्यांशोः सूर्यमणित उभयस्माद्युताद्यथा ॥ वह्निस्सञ्जायते जीवस्तथा शुक्रार्तवाद्युतात् ॥ २ ॥ अर्थात् जव वीर्य और आर्तव का संयोग होता है–उसी समय जीव उन के साथ उस में प्रवेश करता है ॥ १ ॥ जैसे-सूर्य की किरण और सूर्यमणि के संयोग से अग्नि प्रकट होती है उसी प्रकार से शुक्र शोणित के सम्वंध से जीव शीघ्रही उदर में प्रकट हो जाता है ॥ २ ॥

बस इसी प्रकार जबतक वह जीव संसार में भ्रमण करता है तबतक उस के उक्त सूक्ष्म शरीर का अभाव नहीं होता है किन्तु जब वह मुक्त होकर शरीर रहित होता है तथा उस को जन्ममरण और शरीर आदि नहीं करने पड़ते हैं तथा जिस के राग द्वेष और मोह आदि उपाधियां कम होती जाती हैं उस के पूर्व सञ्चित कर्म शीघ्रही छूट जाते हैं, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि–संसारके सब पदार्थों का और आत्मतत्त्व का यथार्थ ज्ञान होनेसेही राग द्वेष और मोह आदि उपाधियां कम होती हैं तथा यदि किसी वस्तुमें ममता न रख कर सद्भाव से तप किया जावे तो भी सब प्रकार के कर्मों की उपाधियां छूट जाती हैं तथा जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाता है, जबतक यह जीव कर्मकी उपाधियों से लिप्त है तबतक संसारी अर्थात् दुनियां दार हैं किन्तु कर्मकी उपाधियों से रहित होने पर तो वह जीव मुक्त कहलाता है, यह जीव शरीर के संयोग और वियोग की अपेक्षा अनित्य है तथा आत्मधर्म की अपेक्षा नित्य है, जैसे दीपकका प्रकाश छोटे मकान में संकोच के साथ तथा बड़े मकान में विस्तार के साथ फैलता है उसी प्रकारसे यह आत्मा पूर्वकृत कर्मों के अनुसार छोटे बड़े शरीर में प्रकाशमान होता है, जब यह एक जन्म के आयुःकर्म की पूर्णता होनेपर दूसरे जन्म के आयुका उपार्जन कर पूर्व शरीर को छोड़ता है तब लोग कहते हैं कि–अमुक पुरुष मर गया, परन्तु जीव तो वास्तव में मरता नहीं है अर्थात् उस का नाश नहीं होता है हां उस के साथ में जो स्थूल शरीर का संयोग है उस का नाश अवश्य होता है[1] ॥

१–गर्भ स्थिति के पीछे सात दिन में वह वीर्य और शोणित गर्भाशय में कुछ गाढ़ा हो जाता है तथा सात दिन के पीछे वह पहिले की अपेक्षा अधिकतर कठिन और पिण्डाकार होकर आमकी गुठली के समान हो जाता है और इसके पीछे वह पिण्ड कठिन मांसग्रन्थि बनकर महीने भर में वजन (तौल) में सोलह तोले हो जाता है, इस लिये प्रथम महीने में स्त्रीको मधुर शीत वीर्य और नरम आहार का विशेष उपयोग करना चाहिये कि जिससे गर्भ की वृद्धि में कुछ विकार न हो।

२–दूसरे महीने में पूर्व महीने की अपेक्षा भी कुछ अधिक कठिन हो जाता है, इस लिये इस महीने में भी गर्भ की वृद्धि में किसी प्रकार की रुकावट न हो इस लिये ऊपर कहे हुए ही आहार का सेवन करना चाहिये।

३–तीसरे महीने में अन्य लोगोंको भी वह पिण्ड बड़ा हो जाने से गर्भाकृतिरूप मालूम

१–जैसा कि भगवद्गीता में भी लिखा है कि–नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ॥ न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥ १ ॥ अर्थात् इस जीवात्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकता है, न जल भिगो सकता है और न वायु इस का शोषण कर सकता है–तात्पर्य यह है कि–जीवात्मा नित्य और अविनाशी है ॥

पड़ने लगता है, इस मासमें ऊपर कहे हुए आहार के सिवाय दूधके साथ साठी चांवल खाना चाहिये ।

४–चौथे महीने में गर्भिणी का शरीर भारी पड़ जाता है, गर्भ स्थिर हो जाता है तथा उस के सब अंग क्रम २ से बढ़ने लगते हैं, जब गर्भ के हृदय उत्पन्न होता है तब गर्भिणी स्त्री के ये चिह्न होते हैं—अरुचि, शरीर का भारीपन, अन्न की इच्छा का न होना, कभी अच्छे वा बुरे पदार्थों की इच्छा का होना, स्तनों में दूध की उत्पत्ति, नेत्रों का शिथिल होना, ओठ और स्तनों के मुख का काला होना, पैरों में शोथ, मुख में पानी का आना आदि, तथा प्रायः इसी महीने में गर्भवती के पूर्व कहा हुआ दोहद उत्पन्न होने लगता है अर्थात् उस के कई प्रकार के इरादे पैदा होते हैं, मन को अच्छे लगनेवाले पदार्थों की इच्छा होती है, इस लिये उस समय में उस के अभीष्ट पदार्थ पूरे तौर से उसे देने चाहियें, क्योंकि ऐसा करने से बालक वीर्यवान् और बड़ी आयुवाला होता है, इस दोहद के विषय में यह स्वाभाविक नियम है कि-यदि पुण्यात्मा जीव गर्भ में आया हो तो गर्भिणी के अच्छे इरादे पैदा होते हैं तथा यदि पापी जीव गर्भ में आया हो तो उस के बुरे इरादे होते हैं, तात्पर्य यह है कि-गर्भिणी को जिन पदार्थों की इच्छा हो उन्हीं पदार्थों के गुणों से युक्त बालक होता है, यदि गर्भिणी की इच्छा के अनुसार उस को मन चाहे पदार्थ न दिये जावें तो बालक अनेक त्रुटियों से युक्त होता है, खराब और भयंकर वस्तु के देखने से बालक भी खराब लक्षणों से युक्त होता है, इस लिये यथा शक्य ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि गर्भिणी स्त्री के देखने में अच्छी २ वस्तु यें ही आवें तथा अच्छी २ वस्तुओं पर ही उस की इच्छा चले क्योंकि विकारवाले पदार्थ गर्भ को बहुत बाधा पहुंचाते हैं, इस लिये उन का त्याग करना चाहिये ।

५–पांचवें महीने में हाथ पांव और मुख आदि पांचों इन्द्रियां तैयार हो जाती हैं, मांस और रुधिर की भी विशेषता होती है, इस लिये गर्भवती का शरीर उस दशा में बहुत दुर्बल हो जाता है, अतः उस समय में स्त्री को घी और दूध के साथ अन्न देते रहना चाहिये ।

६–छठे महीने में पित्त और रक्त (लोहू) बनने का आरम्भ होता है तथा बालक के शरीर में बल और वर्ण का सञ्चार होता है, इस लिये गर्भवती के शरीर का बल और वर्ण कम हो जाता है, अतः उस समय में भी उस को घी और दूध का आहार ऊपर लिखे अनुसार देते रहना चाहिये ।

७–सातवें महीने में छोटी बड़ी नसें तथा साढ़े तीन कोटि (करोड़) रोम भी बनते हैं और बालक के सब अंग अच्छे प्रकार से मालूम पड़ने लगते हैं तथा उस का

शरीर पुष्ट हो जाता है परन्तु ऐसा होने से गर्भिणी दुर्बल होती जाती है, इस लिये इस समय में भी गर्भिणी को ऊपर लिखे अनुसार ही आहार देते रहना चाहिये ।

८-आठवें महीने में बालक का सम्पूर्ण शरीर तैयार हो जाता है, ओज धातु स्थिर होता है, माता जो कुछ खाती पीती है उस आहार का रस गर्भ के साथ सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ी के द्वारा पहुंच कर गर्भ को ताक़त मिलती रहती है, अंधेरी कोठरी में पड़े हुए मनुष्य के समान प्रायः उस को तकलीफ ही उठानी पड़ती है, इस महीने में गर्भ के साथ सम्बन्ध रखनेवाली उक्त नाड़ी के द्वारा माता तो गर्भ का और गर्भ माता का ओज वारंवार ग्रहण करता है अर्थात् परस्पर में ओज का सञ्चार होता है इसलिये गर्भिणी किसी समय तो हर्षयुक्त तथा किसी समय खेदयुक्त रहा करती है तथा ओज की स्थिरता न रहने के कारण इस मास में गर्भ स्त्री को बहुत ही पीड़ायुक्त करता है, इस लिये इस समय में गर्भवती को भात के साथ में घी तथा दूध मिला कर खाना चाहिये, किन्तु इस में (खुराक़ में) कभी चूकना नहीं चाहिये ।

९ वा १०-नवें तथा दशवें महीने में गर्भाशय में स्थित बालक उदर (पेट) में ही ओज के सहित स्थिर होकर ठहरता है, इस लिये पुष्टि के लिये घी और दूध आदि उत्तम पदार्थ इन मासों में भी अवश्य खाने चाहियें, क्योंकि इस प्रकार के पौष्टिक आहारसे गर्भ की उत्तम रीति से वृद्धि होती है, इस प्रकार से वृद्धि पाकर तथा सब अंगोंसे युक्त होकर गर्भस्थ सन्तान पूर्व कृत कर्मानुकूल उदर में रहकर गर्भसे बाहर आता है अर्थात् उत्पन्न होता है ॥

गर्भ समय में त्याग करने योग्य विपरीत पदार्थ ॥

जो पदार्थ त्याग करने के योग्य तथा विपरीत हैं उनका सेवन करने से गर्भ उदर में ही नष्ट हो जाता है अथवा बहुत दिनों में उत्पन्न होता है, ऐसा होने से कभी २ गर्भिणी स्त्री के जीव की भी हानि हो जाती है, इसलिये गर्भिणी को हानि करनेवाले पदार्थ नहीं खाने चाहियें किन्तु जिन पदार्थों का ऊपर वर्णन कर चुके हैं उन्हीं पदार्थों को खाना चाहिये तथा गर्भवती स्त्री के विषय में जो बातें पहिले लिख चुके हैं उन का उस

१-क्योंकि गर्भिणी के ही रस आदि धातुओं से गर्भस्थ बालक पुष्टि को पाता है ॥

२-यह वही नाड़ी है जो कि माता की नाभि के नीचे बालक की नाड़ी से लगी रहती है, जिस को नाल भी कहते हैं तथा जो बालक के पैदा होने के पीछे उस की नाभि पर लगी रहती है ॥

३-इसी लिये आठवें महीने में उत्पन्न हुआ बालक प्रायः नहीं जीता है, क्योंकि ओज धातु के बिना जीवन कदापि नहीं हो सकता है, क्योंकि जीवन का आधार ओज ही है-इस विषय का विशेष वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में देखो ॥

४-अर्थात् पूर्व किये हुए कर्मों का फल जबतक उदर में भोग्य है तबतक उस फल को उदर में भोग कर पीछे बाहर आता है (उदर में रहना भी तो कर्म के फलों का ही भोग है) ॥

को पूरा ध्यान रखना चाहियें, क्यों कि उन का पूरा २ ध्यान न रखने से न केवल गर्भ को किन्तु गर्भिणी को भी वहुत हानि पहुँचती है, यद्यपि संक्षेप से इस विषय में कुछ ऊपर लिखा जा चुका है तथापि ऊपर लिखी वातों के सिवाय गर्भवती को और भी वहुत सी आवश्यक वातों की सम्भाल पहिले ही से (गर्भ की प्रारंभिक दशा से ही) रखनी चाहिये, इस लिये यहां पर गर्भवती के लिये कुछ आवश्यक वातों की शिक्षा लिखते हैं:—

गर्भवती स्त्री के लिये आवश्यक शिक्षायें ॥

दर्द पैदा करने वाले कारण विना गर्भ दशा में जितना असर करते हैं उस की अपेक्षा गर्भ रहने के पीछे वे कारण गर्भवती स्त्री पर दश गुणा असर करते हैं, न केवल इतना ही किन्तु वे कारण गर्भवती स्त्री पर शीघ्र भी असर करते हैं, इस लिये गर्भवती स्त्री को अपनी तनदुरुस्ती कायम रखने में विशेष ध्यान रखना चाहिये, गर्भिणी को सुन्दर स्वच्छ हवा की वहुत ही आवश्यकता है इस लिये जिस प्रकार स्वच्छ हवा मिल सके ऐसा प्रवन्ध करना चाहिये, अति संकीर्ण स्थान में न रह कर उस को स्वच्छ हवादार स्थान में रहना चाहिये; नित्य खुली हवा में थोड़ा २ फिरने का अभ्यास रखना चाहिये क्यों कि ऐसा करने से अंगों में भारीपन नहीं आता है किन्तु शरीर हलका रहता है और प्रसव समय में वालक भी सुख से पैदा हो जाता है, उस को घर में थोड़ा २ काम काज भी करना चाहिये किन्तु दिन भर आलस्य में ही नहीं विताना चाहिये क्योंकि आलस्य में पड़े रहने से प्रसव समय में वहुत वेदना होती है, परन्तु शक्ति से अधिक परिश्रम भी नहीं करना चाहिये क्योंकि इस से भी हानि होती है, वहुत देर तक शरीर को वांका (टेढ़ा वा तिरछा) कर हो सकने वाले काम को नहीं करना चाहिये, शरीर को वांका कर भारी वस्तु नहीं उठानी चाहिये, जिस से पेट पर दवाव पड़े ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये, वोझ को नहीं उठाना चाहिये, घर में पड़े रहने से, कुछ कसरत (परिश्रम) न करने से और स्वच्छ हवा का सेवन न करने से गर्भवती स्त्री के अनेक प्रकार का दर्द हो जाने का सम्भव होता है तथा कभी २ इन कारणों से रोगी तथा मरा हुआ भी वालक उत्पन्न होता है, इस लिये इन वातों से गर्भवती को वचना चाहिये तथा उस को खाने पीने की वहुत सम्भाल रखनी चाहिये, भारी और अजीर्ण करने वाली खुराक कभी नहीं खानी चाहिये, वहुत पेट भर कर मिष्टान्न (मिठाई) नहीं खाना चाहिये, वहुत से भोले लोग यह समझते हैं कि गर्भवती स्त्री के आहार का रस सन्तति को पुष्ट करता है इस लिये गर्भवती स्त्री को अपनी मात्रा से अधिक आहार करना चाहिये, सो यह उन लोगों का विचार अत्यन्त भ्रमयुक्त है, क्योंकि सन्तान की भी पुष्टि नियमित आहार के ही रस से हो सकती है किन्तु मात्रा से अधिक आहार से

नहीं हो सकती है, हां यह वेशक ठीक है कि आहार में कुछ घृत तथा दुग्ध आदि का उपयोग अवश्य करना चाहिये कि जिस से गर्भ और गर्भिणी के दुर्बलता न होने पावे, परन्तु मात्रा से अधिक आहार तो भूल कर भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि मात्रा से अधिक किया हुआ आहार न केवल गर्भिणी को ही हानि पहुंचाता है किन्तु गर्भस्थ सन्तान को भी अनेक प्रकार की हानियां पहुंचाता है, इस के सिवाय अधिक आहार से गर्भस्थिति की प्रारम्भिक अवस्था में ही कभी २ स्त्री को ज्वर आने लगता है तथा वमन भी होने लगते हैं, यदि गर्भवती स्त्री गर्भावस्था में शरीर की अच्छी तरह से सम्भाल रक्खे तो उस को प्रसव समय में अधिक वेदना नहीं होती है, भारी पदार्थों का भोजन करने से अजीर्ण हो कर दस्त होने लगते हैं जिस से गर्भ को हानि पहुंचने की सम्भावना होती है, केवल इतना ही नहीं किन्तु असमय में प्रसूत होने का भी भय रहता है, गर्भवती को ठंढी खुराक भी नहीं खानी चाहिये क्योंकि ठंढी खुराक से पेट में वायु उत्पन्न हो कर पीड़ा उठती है, तेलवाला तथा लाल मिर्चों से बघारा (छौंका) हुआ शाक भी नहीं खाना चाहिये क्योंकि इस से खांसी हो जाती है और खांसी हो जाने से वहुत हानि पहुंचती है, अगर्भवती (विना गर्भवाली) स्त्री की अपेक्षा गर्भवती स्त्री को वीमार होने में देरी नहीं लगती है इस लिये जितने आहारका पाचन ठीक रीति से हो सके उतना ही आहार करना चाहिये, यद्यपि गर्भवती स्त्री को पौष्टिक (पुष्टि करनेवाली) खुराक की वहुत आवश्यकता है इस लिये उस को पौष्टिक खुराक लेनी चाहिये, परन्तु जिस से पेट अधिक तन जावे और वह ठीक रीति से न पच सके इतनी अधिक खुराक नहीं लेनी चाहिये, गर्भवती स्त्री के उपवास करने से स्त्री और वालक दोनों को हानि पहुंचती है अर्थात् गर्भ को पोषण न मिलने से उसका फिरना वंद हो जाता है तथा वह सुस्त पड़ जाता है तथा गर्भवती स्त्री जव आवश्यकता के अनुसार आहार किये हुए रहती है उस समय गर्भ जितना फिरता है उतना उपवास के दिन नहीं फिरता है क्यों कि वह पोषण के लिये वल मारता है (जोर लगाता है) तथा थोड़ी देरतक वल मारकर स्थिर हो जाता है, इस लिये गर्भवती स्त्री को उपवास नहीं करना चाहिये, खुराकमें अनियमितपन भी नहीं करना चाहिये, दोहद होने पर भी मन को कावू में रखना चाहिये जो पदार्थ हानिकारक न हो वही खाना चाहिये किन्तु जो अपने मनमें आवे वही खा लेने से हानि होती है, गर्भिणी को सदा हलकी खुराक लेनी चाहिये किन्तु जिस स्त्री का शरीर जोरावर और पुष्कल (पूरा, काफी) रुधिर से युक्त हो उस को तो यथाशक्य कांजी, दूध, घी और वनस्पति आदि के हलके आहार पर ही रहना चाहिये, गर्म खुराक, खट्टा पदार्थ, कच्चा मेवा, अति खारा, अति तीखा, रूखा, ठंढा, अति कडुआ, विगड़ा हुआ अर्थात् अधकच्चा अथवा जला हुआ, दुर्गन्धयुक्त, वातल (वादी करनेवाला) पदार्थ,

फफूंदीवाला, सड़ा हुआ, सुपारी, मिट्टी, धूल, राख और कोयला आदि पदार्थ बहुत विकार करते हैं इस लिये यदि इन के खाने को मन चले तथापि मन को समझा कर (रोक कर) इन को नहीं खाना चाहिये, गर्भवती को तीक्ष्ण (तेज) जुलाब भी नहीं लेना चाहिये, यदि कभी कुछ दर्द हो जावे तो किसी अज्ञ (अजान, मूर्ख) वैद्य की दवा नहीं लेनी चाहिये किन्तु किसी चतुर वैद्य वा डाक्टर की सलाह लेकर दर्द मिटने का उपाय करना चाहिये किन्तु दर्द को वढ़ने नहीं देना चाहिये।

गर्भवती को चाहिये कि–सर्दी और गीलेपन से शरीर को बचावे, जागरण न करे, जल्दी सोवे और सूर्योदयसे पहिले उठे, मनको दुःखित करनेवाले चिन्ता और उदासी आदि कारणों को दूर रक्खे, भयंकर स्वांग तथा चित्र आदि न देखे, अन्य गर्भिणी स्त्री के प्रसवसमय में उस के पास न जावे, अपनी प्रकृति को शान्त रक्खे, जो वातें नापसन्द हों उन को न करे, अच्छी २ वातों से मन को खुश रक्खे, धर्म और नीति की वातें सुन के मन को दृढ़ करे, यदि मन में साहस और उत्साह न हो तो उसमें साहस और उत्साह लावे (उत्पन्न करे), जिन वातों के सुनने से कलह अथवा भय उत्पन्न हो ऐसी वातें न सुने, नियमानुसार रहे, अलंकार का धारण करे, सावधानता से पति के प्रिय कार्यों में प्रेम रक्खे, अपने धर्म में प्रीति रक्खे, पवित्रता से रहे, मधुरता के साथ धीमे स्वर से वोले, परमेश्वर की भक्ति में चित्त रक्खे, मनोवृत्ति को धर्म तथा नीतिकी ओर लाने के लिये अच्छे २ पुस्तक वांचे, पुष्पों की माला पहरे, सुगन्धित तथा चन्दन आदि पदार्थोंका लेप करे, स्वच्छ घर में रहे, परोपकार और दान करे, सव जीवों पर दया रक्खे, सासु श्वशुर तथा गुरुजन आदि की मर्यादा को स्थिर रक्खे तथा उन की सेवा करे, कपाल (मस्तक) में कुंकुम (रोरी या सेंदुर) का टीका (विन्दु) तथा आंखों में काजल आदि सौभाग्यदर्शक चिह्नों को धारण करे, कोमल और स्वच्छ वस्त्रसे आच्छादित विस्तरपर सोवे तथा वैठे, अच्छी तथा गुणवाली वस्तुओं पर अपना भाव रक्खे, धार्मिक, नीतिमान्; पराक्रमी और वलिष्ठ आदि उत्तम गुणवान् स्त्री पुरुषों के चरित्र का मनन करे तथा ऐसा ही उत्तम गुणों से सम्पन्न और रूपवान् मेरे भी सन्तान हो ऐसी मन में भावना रक्खे, उत्तम चरित्रों से प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों के, मनोहर पशु और पक्षियों के तथा उत्तम २ वृक्षों के सुन्दर और सुशोभित चित्रों आदि से अपने सोने तथा वैठने के कमरे को मन की प्रसन्नता के लिये सुशोभित रक्खे, सुन्दर और मनोरञ्जन (मन को खुश करनेवाले) गीत गाकर और सुन कर मन को सदा आनन्द में रक्खे, जिस से अनायास (अचानक) ही मन में उद्वेग अथवा अधिक हर्ष और शोक उत्पन्न हो जावे ऐसा कोई पदार्थ न देखे, न ऐसी वात सुने और न ऐसे किसी कार्य को करे, किसी वात पर पश्चात्ताप (पछतावा) न करे तथा पश्चात्ताप को पैदा करने वाले आचरण (वर्त्ताव, व्यवहार) को यथाशक्य

(जहांतक होसके) न करे, मलीन न रहे, विवाद (झगड़े) का त्याग करे, दुर्गन्धि से दूर रहे, लूले, लंगड़े, काने; कुवड़े; वहिरे और गूंगे आदि न्यूनांग का तथा रोगी आदि का स्पर्श न करे और उन को अच्छी तरह से चित लगाकर देखे, घर में निर्द्वन्द्व (कलह आदि से रहित वा एकान्त) स्थान में रहे, विशेष द्वंद्ववाले स्थान में न रहे, श्मशान का आश्रय; क्रोध; ऊंचा चढ़ना; गाड़ी घोड़ा आदि वाहन (सवारी) पर बैठना; ऊंचे स्वर से बोलना; वेगसे चलना; दौड़ना; कूदना; दिन में सोना; मैथुन; जल में डुबकी मारना (गोता लगाना); शून्य घर में तथा वृक्ष के नीचे बैठना; क्लेश करना; अंग मरोड़ना; लोहू निकालना; नख से पृथिवी को करोदना अथवा लकीरें करना; अमंगल और अपशब्द (बुरे वचन) बोलना; बहुत हँसना; खुले केश रहना; वैर, विरोध, द्वेष, छल, कपट, चोरी, जुआ, मिथ्यावाद, हिंसा और वैमनस्य, इन सब वातों का त्याग करे–क्योंकि–ये सब बातें गर्भिणी स्त्रीको और गर्भ को हानि पहुंचाती हैं ।

स्मरण रहना चाहिये कि अच्छे या बुरे सन्तान का होना केवल गर्भिणी स्त्री के व्यवहार पर ही निर्भर है इस लिये गर्भवती स्त्री को निरन्तर नियमानुसार ही वर्ताव करना चाहिये जो कि उस के लिये तथा उस के सन्तान के लिये श्रेयस्कर (कल्याणकारी) है ॥

यह तृतीय अध्यायका–गर्भाधान नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण–बालरक्षण ॥

इस में कोई सन्देह नहीं है कि–सन्तान का उत्पन्न होना पूर्वकृत परम पुण्यकाही प्रताप है, जब पति और पत्नी अत्यन्त प्रीति के वशीभूत होते हैं तब उन के अन्तःकरण के तत्व की एक आनन्दमयी गांठ वँधती है, बस वही सन्तान है, वास्तव में सन्तान माता पिता के आनन्द और सुख का सागर है, उस में भी माता के प्रेम का तो एक दृढ़ वन्धन है. सन्तान ही सन्तोष और शान्ति का देनेवाला है, उसी के होने से यह

१–क्योंकि बहुत से चेपी रोग होते हैं (जिनका वर्णन आगे करेंगे) अतः गर्भवती को किसी रोगी का भी स्पर्श नहीं करना चाहिये तथा रोगी और काने लूले आदि न्यूनांग को ध्यान पूर्वक देखना भी नहीं चाहिये क्यों कि इस का प्रभाव वालक पर बुरा पड़ता है ॥

२–मैथुन करने से गर्भस्थ वालक के निकल पड़ने का सम्भव होता है–इस के सिवाय मैथुन गर्भाधान के लिये किया जाता है जब कि गर्भ स्थित ही है तब मैथुन करने की क्या आवश्यकता है ॥

३–इन में से वहुत सी वातों की हानि तो पूर्व कह चुके हैं, शेष वातों के करने से उत्पन्न होनेवाली हानियों को बुद्धिमान् स्वयं विचार लें अथवा ग्रन्थान्तरों में देख लें ॥

४–इसी लिये कहा गया है कि–"आत्मा वै जायते पुत्रः" इत्यादि ॥

संसार आनन्दमय लगता है, घर और कुटुम्ब शोभा को प्राप्त होता हैं, उसी से माता पिता के मुखपर सुख और आनन्द की आभा (रोशनी) झलकती है उसी की कोमल प्रभा से स्त्री पुरुष का जोड़ा रमणीक लगता है, तात्पर्य यह है कि-आरोग्यावस्था में तथा हर्ष के समय में बालक को दो घड़ी खिलाने तथा उस के साथ चित्त विनोद के आनन्द के समान इस संसार में दूसरा आनन्द नहीं है, परन्तु स्मरण रहना चाहिये कि-आरोग्य, सुशील, सुघड़ और उत्तम सन्तान का होना केवल माता पिता के आरोग्य और सदाचरण पर ही निर्भर[2] है अर्थात् यदि माता पिता अच्छे; सुशील; सुघड़ और नीरोग होंगे तो उन के सन्तान भी प्रायः वैसे[3] ही होंगे, किन्तु यदि माता पिता अच्छे, सुशील, सुघड़ और नीरोग नहीं होंगे तो उन के सन्तान भी उक्त गुणों से युक्त नहीं होंगे।

यह भी बात स्मरण रखने के योग्य है कि-बालक के जीवन तथा उस की अरोगता के स्थिर होने का मूल (जड़) केवल बाल्यावस्था है अर्थात् यदि सन्तान की बाल्यावस्था नियमानुसार व्यतीत होगी तो वह सदा नीरोग रहेगा तथा उस का जीवन भी सुख से कटेगा, परन्तु यह सब ही जानते हैं कि-सन्तान की बाल्यावस्था का मुख्य मूल और आधार केवल माता ही है, क्योंकि जो माता अपने बालक को अच्छी तरह संभाल के सन्मार्ग पर चलाती है उस का बालक नीरोग और सुखी रहता है तथा जो माता अपने सन्तान की बाल्यावस्था पर ठीक ध्यान न देकर उस की संभाल नहीं करती है और न उस को सन्मार्ग पर चलाती है उस का सन्तान सदा रोगी रहता है और उसको सुख की प्राप्ति नहीं होती है, सत्य तो यह है कि-बालक के जीवन और मरण का सब आधार तथा उस को अच्छे मार्ग पर चला कर बड़ा करना आदि सब कुछ माता पर ही निर्भर है, इसलिये माता को चाहिये कि-बालक को शारीरिक मानसिक और नीति के नियमों के अनुसार चला कर बड़ा करे अर्थात् उसका पालन करे।

परन्तु अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है कि-इस समय इस आर्यावर्त्त देश में उक्त नियमोंको भी मातायें बिलकुल नहीं जानती हैं और उक्त नियमों के न जानने से वे

१-क्योंकि नीतिशास्त्रों में लिखा है कि-"अपुत्रस्य गृहं शून्यम्" अर्थात् पुत्ररहित पुरुष का घर शून्य है॥

२-माता पिता और पुत्र का सम्बन्ध वास्तव में सरस बीज और वृक्ष के समान है, जैसे जो घुन आदि जन्तुओं से न खाया हुआ तथा सरस बीज होता है तो उससे सुन्दर; सरस और फूला फला हुआ वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, इसी प्रकार से रोग आदि दूषणों से रहित तथा सदाचार आदि गुणों से युक्त माता पिता भी सुन्दर; बलिष्ठ; नीरोग और सदाचारवाले सन्तान को उत्पन्न कर सकते हैं॥

३-क्योंकि लिखा है कि-आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ॥ स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ १ ॥ अर्थात् जिस प्रकार के आहार आचार और चेष्टाओं से युक्त माता पिता परस्पर सङ्गम करते हैं उन का पुत्र भी वैसा ही होता है ॥ १ ॥

४-इसी लिये पिता की अपेक्षा माता का दर्जा बड़ा माना गया है ॥

नियम विरुद्ध मनमानी रीति पर चला कर बालक का पालन पोषण करती हैं, इसी का फल वर्त्तमान में यह देखा जाता है कि–सहस्रों बालक असमय में ही मृत्युके आधीन हो जाते हैं और जो वेचारे अपने पुण्य के योग से मृत्युके ग्रास से वचभी जाते हैं तो उन के शरीर के सब बन्धन निर्बल रहते हैं, उन की आकृति फीकी सुस्त और निस्तेज रहती है, उन में शारीरिक मानसिक और आत्मिक बल बिलकुल नहीं होता है।

देखो! यह स्वाभाविक (कुदरती) नियम है कि–संसार में अपना और दूसरों का जीवन सफल करने के लिये अच्छे प्राणी की आवश्यकता होती है, इसलिये यदि सम्पूर्ण प्रजा की उन्नति करना हो तो सन्तान को अच्छा प्राणी बनाना चाहिये, परन्तु बड़े ही अफ़सोस की बात है कि–इस विषय में वर्त्तमान में अत्यन्त ही असावधानता (लापरवाही) देखी जाती है।

हम देखते हैं कि–घोड़ा और बैल आदि पशुओं के सन्तान को बलिष्ठ; चालाक; तेज़ और अच्छे लक्षणों से युक्त बनाने के लिये तो अनेक उपाय तन मन धन से किये जाते हैं; परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि इस संसार में जो मनुष्य जाति मुख्यतया सुख और सन्तोष की देनेवाली है तथा जिसके सुधरने से सम्पूर्ण देश के कल्याण की सम्भावना और आशा है उस के सुधार पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है!

पाठकगण इस विषय को अच्छे प्रकार से जान सकते हैं और इतिहासोंके द्वारा जानते भी होंगे कि–जिन देशों और जिन जातियों में सन्तान की बाल्यावस्था पर ठीक ध्यान दिया जाता है तथा नियमानुसार उसका पालन पोषण कर उसको सन्मार्ग पर चलाया जाता है उन देशों और उन जातियों में प्रायः सन्तान अधम दशा में न रह कर उच्च दशाको प्राप्त हो जाता है अर्थात् शारीरिक मानसिक और आत्मिक आदि बलों से परिपूर्ण होता है, उदाहरण के लिये इंग्लैंड आदि देशों को और अंग्रेज तथा पारसी आदि जातियों में देख सकते हैं कि उन की सन्तति प्रायः दुर्व्यसनों से रहित तथा सुशिक्षित होती है और बल बुद्धि आदि सब गुणों से युक्त होती है, क्योंकि–इन लोगों में प्रायः बहुत ही कम मूर्ख निर्गुणी और शारीरिक आदि बलों से हीन देखे जाते हैं, इसका कारण केवल यही है कि–उन की बाल्यावस्था पर पूरा ध्यान दिया जाता है अर्थात् नियमानुसार बाल्यावस्था में सन्तति का पालन पोषण होता है और उस को श्रेष्ठ शिक्षा आदि दी जाती है।

यद्यपि पूर्व समय में इस आर्यावर्त्त देशमें भी माता पिता का ध्यान सन्तान को बलिष्ठ और सुयोग्य बनाने का पूरे तौर से था इसलिये यहां की आर्यसन्तति सब देशों की अपेक्षा सब बलों और सब गुणों में उन्नत थी और इसी लिये पूर्वसमयमें इस पवित्र भूमि में अनेक भारतरत्न हो चुके हैं, जिन के नाम और गुणों का स्मरण कर ही हम सब अपने

को कृतार्थ मान रहे हैं तथा उन्हीं के गोत्र में उत्पन्न होने का हम सब अभिमान कर रहे हैं, परन्तु जबसे इस पवित्र आर्यभूमि में अविद्याने अपना घर बनाया तथा माता पिता का ध्यान अपनी सन्तति के पालन पोषण के नियमों से हीन हुआ अर्थात् माता पिता सन्तति के पालन पोषण आदि के नियमों से अनभिज्ञ हुए तब ही से आर्य जाति अत्यन्त अधोगति को पहुंचगई तथा इस पवित्र देश की वह दशा हो गई और हो रही है कि–जिसका वर्णन करने में अश्रुधारा बहने लगती है और लेखनी आगे बढ़ना नहीं चाहती है, यद्यपि अब कुछ लोगों का ध्यान इस ओर हुआ है और होता जाता है–जिससे इस देश में भी कहीं २ कुछ सुधार हुआ है और होता जाता है, इस से कुछ सन्तोष होता है क्योंकि–इस आर्यावर्त्तान्तर्गत कई देशों और नगरों में इस का कुछ आन्दोलन हुआ है तथा सुधार के लिये भी यथाशक्य प्रयत्न किया जा रहा है, परन्तु हम को इस बात का बड़ा भारी शोक है कि–इस मारवाड़ देश में हमारे भाइयों का ध्यान अपनी सन्तति के सुधारका अभीतक तनिक भी नहीं उत्पन्न हुआ है और मारवाड़ी भाई अभीतक गहरीं नींद में पड़े सो रहे हैं, यद्यपि यह हम मुक्तकण्ठसे कह सकते हैं कि पूर्व समय में अन्य

१–हमनें अपने परम पूज्य स्वर्गवासी गुरु जी महाराज श्री बिशनचन्दजी मुनि के श्रीमुख से कई बार इस बात को सुना था कि–पूर्व समय में मारवाड़ देश में भी लोगों का ध्यान सन्तान के सुधार की ओर पूरा था, गुरुजी महाराज कहा करते थे कि 'हम ने देखा है कि–मारवाड़ के अन्दर कुछ वर्ष पहिले धनाढ्य पुरुषों में सन्तानों के पालन और उनकी शिक्षा का क्रम इस समय की अपेक्षा लाख दर्जे अच्छा था अर्थात् उन के यहां सन्तानों के अंगरक्षक प्रायः कुलीन और वृद्ध राजपुत्र रहते थे तथा सुशील गृहस्थों की स्त्रियां उन के घर के काम काज के लीये नौकर रहती थीं, उन धनाढ्य पुरुषों की स्त्रियां नित्य धर्मोपदेश सुना करती थीं, उन के यहां जब सन्तति होती थी तब उस का पालन अच्छे प्रकार से नियमानुसार स्त्रियां करती थीं तथा उन बालकों को उक्त कुलीन राजपुत्र ही खिलाते थे, क्योंकि 'विनयो राजपुत्रेभ्यः', यह नीति का वाक्य है–अर्थात् राजपुत्रों से विनय का ग्रहण करना चाहिये, इस कथन के अनुकूल व्यवहार करने से ही उन की कुलीनता सिद्ध होती है अर्थात् बालकों को विनय और नमस्कारादि वे राजपुत्र ही सिखलाया करते थे; तथा जब बालक पांच वर्षका होता था तब उस को यति वा अन्य किसी पण्डित के पास विद्याभ्यास करने के लिये भेजना शुरू करते थे, क्योंकि यति वा पण्डितों ने बालकों को पढ़ाने की तथा सदाचार सिखलाने की रीति संक्षेप से अच्छी नियमित कर (बांध) रक्खी थी अर्थात् पहाड़ों से लेकर सब हिसाब किताब सामायिक प्रतिक्रमण आदि धर्मकृत्य और व्याकरण विषयक प्रथमसन्धि (जो कि इसी ग्रन्थ में हमने शुद्ध लिखी है) और चाणक्य नीति आदि आवश्यक ग्रन्थ वे बालकों को अर्थ सहित अच्छे प्रकार से सिखला दिया करते थे, तथा उक्त ग्रन्थों का ठीक बोध हो जाने से वे गृहस्थों के सन्तान हिसाब में; धर्मकृत्य में और नीति ज्ञान आदि विषयों में पक्के हो जाते थे, यह तो सर्वसाधारण के लिये उन विद्वानों ने क्रम बांध रक्खाथा किन्तु जिस बालक की बुद्धि को वे (विद्वान्) अच्छी देखते थे तथा बालक के माता पिता की इच्छा विशेष पढ़ाने के लिये होती थी तो वे (विद्वान्) उस बालक को तो सर्व विषयों में पूरी शिक्षा देकर पूर्ण विद्वान् कर देते थे, इत्यादि, पाठक गण! विचार की जिये कि–इस मारवाड़ देश में पूर्व काल में साधारण शिक्षा का कैसा अच्छा क्रम बँधा हुआ था, और केवल यही कारण है कि उक्त शिक्षाक्रम के प्रभाव से पूर्वकाल में इस मारवाड़ देश में भी अच्छे २ नामी और धर्मात्मा

पुरुष हो गये हैं, जिन में से कुछ सज्जनों के नाम यहां पर लिखे विना लेखनी आगे नहीं बढ़ती है-इस लिये कुछ नामों का निदर्शन करना ही पड़ता है, देखिये-पूर्वकाल में लखनऊनिवासी लाला गिरधारीलालजी, तथा मकसूदावादनिवासी ईश्वरदासजी और राय बहादुर मेघराजजी कोठारी बड़े नामी पुरुष हुए हैं और इन तीनों महोदयों का तो अभी थोड़े दिन पहले स्वर्गवास हुआ है, इन सज्जनों में एक बड़ी भारी विशेषता यह थी कि इन को जैन सिद्धान्त गुरुगम शैली से पूर्णतया अभ्यस्त था जो कि इस समय जैन गृहस्थों में तो क्या किन्तु उपदेशकों में भी दो ही चार में देखा जाता है, इसी प्रकार मारवाड़ देशस्थ देशनोक के निवासी-सेठ श्री मगन मलजी श्रावक भी परमकीर्तिमान् तथा धर्मात्मा हो गये हैं। किन्तु यह तो हम बड़े हर्ष के साथ लिख सकते हैं कि-हमारे जैन मतानुयायी अनेक स्थानों के रहनेवाले अनेक सुजन तो उत्तम शिक्षाको प्राप्तकर सदाचार में स्थित रहकर अपने नाम और कीर्ति को अचल कर गये हैं जैसे कि-रायपुर में गम्भीर मल जी डागा, नागपुर में हीरालाल जी जौहरी, राजनांद ग्राम में आसकरणजी राज्यदीवान आदि अनेक श्रावक कुछ दिन पहिले विद्यमान थे तथा कुछ सुजन अब भी अनेक स्थानों में विद्यमान हैं परन्तु ग्रंथ के बढ़ जाने के भय से उन महोदयों के नाम अधिक नहीं लिख सकते हैं, इन महोदयों ने जो कुछ नाम; कीर्ति और यश पाया वह सब इन के सुयोग्य माता पिता की श्रेष्ठ शिक्षा का ही प्रताप समझना चाहिये, देखिये वर्त्तमान में जैनसंघ के अन्दर-जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस के जन्मदाता श्रीयुत गुलावचन्दजी ढड्ढा एम. ए. आदि तथा अन्य मत में भी इस समय पारसी दादाभाई नौरोजी, वाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, वावु सुरेंद्रनाथ, गोखले और मदनमोहन जी मालवी आदि कई सुजन कैसे २ विद्वान् परोपकारी और देशहितैषी पुरुष हैं-जिन को तमाम आर्यावर्त्तनिवासी जन भी मिल कर यदि करोड़ों धन्यवाद दें तो भी थोड़ा है, ये सब महोदय ऐसे परम सुयोग्य कैसे हो गये; इस प्रश्न का उत्तर केवल यही है कि-इन के सुयोग्य माता पिता की श्रेष्ठ शिक्षा का ही यह प्रताप है कि-जिस से ये सुयोग्य और परम कीर्त्तिमान् हो गये हैं, इन महोदयों ने कई वार अपने भाषणों में भी उक्त विषय का कथन किया है कि-सन्तान की वाल्यावस्था पर माता पिता को पूरा २ ध्यान देना चाहिये अर्थात् नियमानुसार वालक का पालन पोषण करना चाहिये तथा उस को उत्तम शिक्षा देनी चाहिये इत्यादि, जो लोग अखवारों को पढ़ते हैं उन को यह वात अच्छे प्रकार से विदित है, परन्तु बड़े शोक का विषय तो यह है कि वहुत से लोग ऐसे शिक्षाहीन और प्रमादयुक्त हैं कि-वे अखवारों को भी नहीं पढ़ते हैं जब यह दशा है तो भला उन को सत्पुरुषों के भाषणों का विषय कैसे ज्ञात होसकता है? वास्तव में ऐसे लोगों को मनुष्य नहीं किन्तु पशुवत् समझना चाहिये कि जो ऐसे २ देशहितैषी महोदयों के सदाचार और योग्यता को तो क्या किन्तु उन के नाम से भी अनभिज्ञ हैं! कहिये इस से बढ़कर और अन्धेर क्या हो गा? इस समय जब हम दृष्टि उठा कर अन्य देशों की तरफ देखते हैं तो ज्ञात होता है कि-अन्य देशों में कुछ न कुछ वालकों की रक्षा और शिक्षा के लिये आन्दोलन हो कर यथाशक्ति उपाय किया जारहा है परन्तु मारवाड़ देश में तो इस का नाम तक नहीं सुनाई देता है, ऊपर जो प्रणाली (पूर्वकाल की मारवाड़ देश की) लिख चुके हैं कि-पूर्व काल मे इस प्रकार से वालकों की रक्षा और शिक्षा की जाती थी-वह अब मारवाड़ देश में विलकुल ही वदल गई, वालकों की रक्षा और शिक्षा तो दूर रही, मारवाड़ देश में तो यह दशा हो रही है कि-जब वालक चार पांच वर्ष का होता है, तब माता अति लाड़ और प्रेम से अपने पुत्र से कहती है कि, "अरे वनिया! थारे वींदणी गोरी लावां के काली" (अरे वनिये! तेरे वास्ते गोरी दुलहिन लावें या काली लावें) इत्यादि, इसी प्रकार से वाप आदि बड़े लोगों को गाली देना मारना और वाल नोचना आदि अनेक कुत्सित शिक्षा ये वालकों को दी जाती है तथा कुछ बड़े होने पर कुसंग दोष के कारण उन्हें ऐसी पुस्तकों के पढ़ने का अवसर दिया जाता है कि, जिन

देशों के समान इस देश में भी अपनी सन्तति की ओर पूरा २ ध्यान दिया जाता था, इसी लिये यहां भी पूर्वसमय में बहुत से नामी पुरुष हो गये हैं, परन्तु वर्त्तमान में तो इस देश की दशा उक्त विषय में अत्यन्त शोचनीय है क्योंकि-अन्य देशों में तो कुछ न कुछ

के पढ़ने से उन की मनोवृत्ति अत्यन्त चञ्चल; रसिक और विषयविकारों से युक्त हो जाती है, फिर देखिये! कि, द्रव्य पात्रों के घरों में नौकर चाकर आदि प्रायः शूद्र जाति के तथा कुव्यसनी (बुरी आदतवाले) रहा करते हैं-वे लोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये बालकों को उसी रास्ते पर डालते हैं कि, जिस से उनकी स्वार्थसिद्धि होती है, बालकों को विनय आदि की शिक्षा तो दूर रही किन्तु इस के बदले वे लोग भी मामा चाचा और हरेक पुरुष को गाली देना सिखलाते हैं और उन बालकों के माता पिता ऐसे भोले होते हैं कि, वे इन्हीं बातों से बडे प्रसन्न होते हैं और उन्हें प्रसन्न होना ही चाहिये, जब कि वे स्वयं शिक्षा और सदाचार से हीन हैं, इस प्रकार से कुसंगति के कारण वे बालक बिलकुल बिगड़ जाते हैं उन (बालकों) को विद्वान्; सदाचारी; धर्मात्मा और सुयोग्य पुरुषों के पास बैठना भी नहीं सुहाता है, किन्तु उन्हें तो नाचरंग; उत्तम शरीर शृंगार; वेश्या आदि का नृत्य; उस की तीखी चितवन; भांग आदि नशोंका पीना; नाटक व स्वांग आदि का देखना; उपहास; ठट्ठा और गाली आदि कुत्सित शब्दों का मुख से निकालना और सुनना आदि ही अच्छा लगता है, दुष्ट नौकरों के सहवास से उन बालकों में ऐसी २ बुरी आदतें पड़ जाती हैं कि-जिन के लिखने में लेखनी को भी लज्जा आती है, यह तो विनय और सदाचार की दशा है, अब उन की शिक्षा के प्रबंध को सुनिये-इन का पढ़ना केवल सौं पहाड़े और हिसाब किताब मात्र है, सो भी अन्य लोग पढ़ाते हैं, माता पिता वह भी नहीं पढ़ा सकते हैं, अब पढ़ानेवालों की दशा सुनिये कि-पढ़ानेवाले भी उक्त हिसाब किताब और पहाड़ों के सिवाय कुछ भी नहीं जानते हैं, उन को यह भी नहीं मालुम है कि-व्याकरण, नीति और धर्मशास्त्र आदि किस चिड़िया का नाम है, अब जो व्याकरणाचार्य कहलाते हैं ज़रा उन की भी दशा सुन लीजिये-उन्हों ने तो व्याकरण की जो रेढ़ मारी है-उसके विषय में तो लिखते हुए लज्जा आती है-प्रथम तो वे पाणिनीय आदि व्याकरणों का नाम तक नहीं जानते हैं, केवल 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः,' की प्रथम सन्धिमात्र पढ़ते हैं, परन्तु वह भी महाशुद्ध जानते और सिखाते हैं (वे जो प्रथम सन्धिको अशुद्ध जानते और सिखाते हैं वह इसी ग्रन्थके प्रथमाध्याय में लिखी गई है वहां देखकर बुद्धिमान् और विद्वान् पुरुष समझ सकते हैं कि-प्रथम सन्धि को उन्हों ने कैसा बिगाड़ रक्खा है) उन पढ़ानेवालों ने अपने स्वार्थ के लिये (कि हमारी पोल न खुल जावे) भोले प्राणियों को इस प्रकार बहका (भरमा) दिया है कि बालकों को चाणक्य नीति आदि ग्रन्थ नहीं पढ़ाने चाहियें क्योंकि-इनके पढ़ते से बालक पागल हो जाता है, बस यही बात सब के दिलों में घुस गई, कहिये पाठकगण! जहां विद्या के पढ़ने से बालकों का पागल हो जाना समझते हैं उस देश के लिये हम क्या कहें? किसी कविने सत्य कहा है कि-"अविद्या सर्व प्रकार की घट घट मांहि अड़ी। को काको समुझावही कूपहिं भांग पड़ी" ॥ १ ॥ अर्थात् सब प्रकार की अविद्या जब प्रत्येक पुरुष के दिल में घुस रही है तो कौन किस को समझा सकता है क्योंकि घट २ में अविद्या का घुस जाना तो कुए में पड़ी हुई भांग के समान है, (जिसे पीकर मानो सब ही बावले बन रहे हैं), अन्त में अब हमें यही कहना है कि-यदि मारवाड़ी भाई ऐसे प्रकाश के समय में भी शीघ्र नहीं जागेंगे तो कालान्तर में इस का परिणाम बहुत ही भयानक हो गा, इस लिये मारवाड़ी भाइयों को अब भी सोते नहीं रहना चाहिये किन्तु शीघ्र ही उठ कर अपने को और अपने हृदय के टुकड़े प्यारे बालकों को सँभालना चाहिये-क्योंकि यही उन के लिये श्रेयस्कर है॥

सुधार के उपाय सोचे और किये भी जा रहे हैं, परन्तु मारवाड़ तो इस समय में ऐसा हो रहा है कि मानों नशा पीकर गाफिल होकर घोर निद्रा के वशीभूत हो रहा हो, इस लिये वर्त्तमान में तो इस मारवाड़ देशकी सन्तति का सुधार होना अति कठिन प्रतीत होता है, भविष्यत् के लिये तो सर्वज्ञ जान सकता है कि क्या होगा, अस्तु ।

प्रिय पाठकगण ! वर्तमान में स्त्रियों में शिक्षा न होने से अत्यन्त हानि हो रही है अर्थात् गृहस्थसुख का नाश हो रहा है विद्या और धर्म आदि सद्गुणों का प्रचार रुक जाने से देशकी दशा विगड़ रही है तथा नियमानुसार वालकों का पालन पोषण और शिक्षा न होने से भविष्यत् में और भी विगाड़ तथा हानि की पूरी सम्भावना हो रही है, इस लिये आप लोगों का यह परम कर्तव्य है कि इस भयंकर हानि से वचने का पूरा प्रयत्न करें, जो अवतक हानि हो चुकी है उस के लिये तो कुछ भी प्रयत्न नहीं हो सकता है—इस लिये उस के लिये तो शोक करना भी व्यर्थ है, हां भविष्यत् में जो हानि की संभावना है उस हानि के लिये हम सव को प्रयत्न करना अति आवश्यक है और उस के लिये यदि आप सव चाहें तो प्रयत्न भी हो सकता है और वह प्रयत्न केवल यही है कि—हम सव अपनी स्त्रियों वहिनों और पुत्रियों को वह शिक्षा देवें कि जिस से वे सन्तान रक्षाके नियमों को ठीक रीति से समझ जावें, क्योंकि जव स्त्रियों को सन्तानरक्षा के नियमों का ज्ञान ठीक रीति से हो जावेगा और वे वालकों की उन्हीं नियमों के अनुसार रक्षा और शिक्षा करेंगी तव अवश्य वालक नीरोग; सुखी; चतुर; वलिष्ठ; कदावर (वड़े कद के;) तेजस्वी; पराक्रमी; शूर वीर और दीर्घायु होंगे और ऐसे सन्तानों के होने से शीघ्रही कुटुम्ब; कुल; ग्राम और देशका उद्धार होकर कल्याण हो सकेगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

सन्तानरक्षा के नियम यद्यपि अनेक वैद्यक आदि ग्रन्थों में वतलाये गये हैं—जिन्हें वहुत से सज्जन जानते भी होंगे तथापि प्रसंगवश हम यहां पर सन्तानरक्षा के कुछ सामान्य नियमों का वर्णन करना आवश्यक समझते हैं—उनमें से गर्भदशासम्वन्धी कुछ नियमों का तो संक्षेप से वर्णन पूर्व कर चुके हैं-अव सन्तान के उत्पत्ति समय से लेकर कुछ आवश्यक नियमों का वर्णन स्त्रियों के ज्ञान के लिये किया जाता है:—

१—**नाल**—गर्भस्थान में वालक का पोषण नाल से ही होता है, जव वालक उत्पन्न होता है तव उस नालका एक सिरा (छोर वा किनारा) भीतर ओरतक लगा हुआ होता है इस लिये नाल को नाभिसे ढाई वा तीन इञ्च के अनन्तर (फासले) पर चारों तरफ से मुलायम कपड़े या रुई से लपेट कर एक मजवूत डोरीसे कसकर वांध लेना चाहिये फिर ओर तरफ का नाल का सिरा काट देना चाहिये, अव जो ढाई वा तीन इञ्चका

नालका टुकड़ा शेष रहा उस को पेट पर रखकर उस पर मुलायम कपड़े की एक पट्टी बांध लेना चाहिये-क्योंकि मुलायम कपड़े की पट्टी बांध लेने से नाल की ठीक रक्षा (हिफाज़त) रहती है और वह पट्टी पेटपर रहती है इस लिये पेट में वायु भी नहीं बढ़ने पाता है तथा पेट को उस पट्टी से सहारा भी मिलता है, नाल के चारों तरफ कपड़ा लपेट कर जो डोरी बांधी जाती है उस का प्रयोजन यह है कि–बालक के शरीर में जो रुधिर घूमता है वह नालके द्वारा बाहर नहीं निकलने पाता है, क्योंकि डोरी बांधदेनेसे उस का बाहर निकलने से अवरोध (रुकावट) हो जाता है–क्योंकि रुधिर जो है वही बालक का प्राणरूप है, यदि वह (रुधिर) बाहर निकल जावे तो बालक शीघ्र ही मर जावे, यदि कभी धोखे से नाल ढीला बंधा रह जावे और रुधिर कुछ बाहर निकलता हुआ मालूम होवे तो शीघ्र ही युक्ति से मुलायम हाथ से उस डोरी को कसकर बांध देना चाहिये, यदि नाल पर चोट लगने से कदाचित् रुधिर निकलता होवे तो उस के ऊपर कत्थे का बारीक चूर्ण अथवा चने का आटा बुरका देना चाहिये अथवा रुधिर निकलने के स्थान पर मकड़ी का जाला दाब देने से भी रुधिर का निकलना बंद हो जाता है।

बहुत से लोग नाल को बांध कर उस की डोरी को बालक के गले में रक्खा करते हैं परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है– क्योंकि–ऐसा करने से कभी २ उस में बालक का हाथ इधर उधर होने में फँस जाता है तो उस को बहुत ही पीड़ा हो जाती है, उस का हाथ पक जाता है वा गिर पड़ता है और उस से कभी २ बालक मर भी जाता है, इस लिये गले में डोरी नहीं रखनी चाहिये किन्तु पेट पर नाल को पट्टी से ही बांधना उत्तम होता है।

नाल अपने आप ही पांच सात दिन में अथवा पांच सात दिन के बाद दो तीन दिन में ही गिर पड़ता है इसलिये उस को खींच कर नहीं निकालना चाहिये, जबतक वह नाल अपने आप ही न गिर पड़े तबतक उस को वैसा ही रहने देना चाहिये, यदि नाल कदाचित् पक जावे तो उस पर कलई (सफेदा) लगा देना चाहिये, यदि नालपर शोथ (सूजन) होवे तो अफीम को तेल में घिसकर उसपर लगा देना चाहिये तथा उसपर अफीम के डोड़े का सेक भी करना चाहिये॥

२–**स्नान**–ऊपर कही हुई रीति के अनुसार नाल का छेदन करने के पश्चात् यदि ठंढ हो तो बालक को फलालेन बनात अथवा कम्बल आदि गर्म कपड़ेपर सुलाना चाहिये और यदि ठंढ न हो तो चारपाई पर कोई हलका मुलायम वस्त्र बिछाकर उसपर बालक को सुलाना चाहिये, इस कार्य के करने के पीछे प्रथम बालक की माता की उचित

हिफ़ाज़त करनी चाहिये, इस के पीछे वालक के शरीरपर यदि श्वेत चरवी के समान चिकना पदार्थ लगा हुआ होवे अथवा अन्य कुछ लगा हुआ होवे तो उस को साफ करने के लिये प्रथम वालक के शरीरपर तेल मसलना चाहिये तत्पश्चात् सावुन लगाकर गुनगुने (कुछ गर्म) पानी से मुलायम हाथ से वालक को स्नान कराके साफ करना चाहिये, परन्तु स्नान कराते समय इस वात का पूरा ख़याल रखना चाहिये कि उस की आंख में तेल सावुन वा पानी न चला जावे, प्रसूति के समय में पास रहने वाली कोई चतुर स्त्री वालक को स्नान करावे और इस के पीछे प्रतिदिन वालक की माता उस को स्नान करावे ।

स्नान कराने के लिये प्रातःकालका समय उत्तम है– इस लिये यथाशक्य प्रातःकाल में ही स्नान करना चाहिये, स्नान कराने से पहिले वालक के थोड़ासा तेल लगाना चाहिये, पीछे मस्तकपर थोड़ासा पानी डाल कर मस्तक को भिगोकर उस को धोना चाहिये तत्पश्चात् शरीरपर सावुन लगा कर कमरतक पानी में उस को खड़ा करना वा विठलाना चाहिये अथवा लोटे से पानी डालकर मुलायम हाथ से उस के तमाम शरीर को धीरे २ मसलकर धोना चाहिये, स्नान के लिये पानी उतना ही गर्म लेना चाहिये कि जितनी वालक के शरीर में गर्मी हो ताकि वह उस का सहन कर सके, स्नान के लिये पानी को अधिक गर्म नहीं करना चाहिये और न अधिक गर्म कर के उस में ठंढा पानी मिलाना चाहिये किन्तु जितने गर्म पानी की आवश्यकता हो उतना ही गर्म कर के पहिले से ही रख लेना चाहिये और इसी प्रकार से स्नान कराने के लिये सदा करना चाहिये, स्नान कराने में इन वातों का भी ख़याल रहना चाहिये कि– शरीर की सन्धिओं आदि में कहीं भी मैल न रहने पावे ।

माथे पर पानी की धारा डालने से मस्तक ठंढा रहता है तथा वुद्धि की वृद्धि होकर प्रकृति अच्छी रहती है, प्रायः मस्तक पर गर्म पानी नहीं डालना चाहिये क्योंकि मस्तक पर गर्म पानी डालने से नेत्रों को हानि पहुँचती है, इस लिये मस्तक पर तो ठंढा पानी ही डालना उत्तम है, हां यदि ठंढा पानी न सुहावे तो थोड़ा गर्म पानी डालना चाहिये, छोटे वालक को स्नान कराने में पांच मिनट का और वड़े वालक को स्नान कराने में दश मिनट का समय लगाना चाहिये, स्नान कराने के पीछे वालक का शरीर वहुत समय तक भीगा हुआ नहीं रखना चाहिये किन्तु स्नान कराने के वाद शीघ्र ही मुलायम हाथ से किसी स्वच्छ वस्त्र से शरीर को शुष्क (सूखा) कर देना चाहिये, शुष्क करते समय वालक की त्वचा (चमड़ी) न घिस (रगड़) जावे इस का ख्याल रखना चाहिये, शुष्क करने के पीछे भी शरीर को खुला (उघाड़ा) नहीं रखना चाहिये किन्तु शीघ्र ही वालक

को कोई स्वच्छ वस्त्र पहना देना चाहिये क्योंकि शरीर को खुला रखने से तथा वस्त्र पहनाने में देर करने से कभी २ सर्दी लग कर खांसी आदि व्याधिके हो जाने का सम्भव होता है, वालक का शरीर नाजुक और कोमल होता है इस लिये दूसरे मास में पानी में दो मुट्ठी नमक डाल कर उस को स्नान कराना चाहिये ऐसा करने से वालक का वल वढेगा, वालक को पवन वाले स्थान में स्नान नहीं कराना चाहिये किन्तु घर में जहां पवन न हो वहां स्नान कराना चाहिये. पुत्र[1] के मस्तक के वाल प्रतिदिन और पुत्री के मस्तक के वाल सात आठ दिन में एक वार धोना चाहिये, वालक को स्नान कराते समय उलटा सुलटा नहीं रखना चाहिये, जव वालक की अवस्था तीन चार वर्ष की हो जावे तव तो ठंढे पानी से ही स्नान कराना लाभदायक है, जाड़े में, शरीर में व्याधि होने पर तथा ठंढा पानी अनुकूल न आने पर तो कुछ गर्म पानी से ही स्नान कराना ठीक है, यद्यपि शरीर गर्म पानी से अधिक स्वच्छ हो जाता है परन्तु गर्म पानी से स्नान कराने से शरीर में स्फुरणा और गर्मी शीघ्र नहीं आती है तथा गर्म पानी से शरीर भी ढीला हो जाता है, किन्तु ठंढे पानी से तो स्नान कराने से शरीर में शीघ्र ही स्फुरणा और गर्मी आ जाती है; शक्ति वढ़ती है और शरीर दृढ़ (मजवूत) भी होता है, वालक को वालपन में स्नान कराने का अभ्यास रखने से वड़े होने पर भी उस की वही आदत पड़ जाती है और उस से शरीरस्थ अनेक प्रकार के रोग निवृत्त हो जाते हैं तथा शरीर अरोग होकर मज़वूत हो जाता है ॥

३—**वस्त्र**—वालक को तीनों ऋतुओं के अनुसार यथोचित वस्त्र पहनाना चाहिये, शीत और वर्षा ऋतु में फलालेन और ऊन आदि के कपड़ों का पहनाना लाभ कारक है तथा गर्मी में सूतके कपड़े पहनाने चाहियें, यदि वालक को ऋतुके अनुसार कपड़े न पहनाये जावें तो उस की तन दुरुस्ती विगड़ जाती है, वालकको तंग कपड़े पहनाने से शरीर में रुधिर की गति रुक जाती है और रुधिर की गति रुकने से शरीर में रोग होजाता है तथा तंग कपड़े पहनाने से शरीर के अवयवों का वढ़नाभी रुक जाता है इसलिये वालक को ढीले कपड़े पहनाने चाहियें, कपड़े पहनाने में इस वातकाभी खयाल रखना चाहिये कि वालकके सव अंग ढके रहें और किसी अङ्ग में सर्दी वा गर्मी का प्रवेश न हो सके, यदि कपड़े अच्छे और पूरे (काफी) न हों अथवा फटे

१–पुत्र के मस्तक के वाल प्रतिदिन और पुत्री के मस्तक के वाल सात आठ दिन में धोने का तात्पर्य है कि–वाल्यावस्था से जैसी वालक की आदत डाली जाती है वही वड़े होते पर भी रहती है, अतः यदि पुत्री के वाल प्रतिदिन धोये जावें तो वड़े होने पर भी उस की वही आदत रहे सो यह (प्रतिदिन वालों का धोना) स्त्रियों की निभ नहीं सकती है क्योंकि धोने के पश्चात् वालों का गूंथना आदि भी अनेक झगड़े स्त्रियों को करने पड़ते हैं और प्रतिदिन यह काम करें तो आधा दिन इसी में वीत जाय–किन्तु पुत्र का तो वड़े होनेपर भी यह कार्य प्रतिदिन निभ सकता है ॥

हुए हों तो कुछ वस्त्रों को जोड़ कर ही तथा धोकर और स्वच्छ करके पहनाने चाहियें परन्तु मलीन वस्त्र कभी नहीं पहनाने चाहियें क्योंकि वालक के शरीर तथा उस के कपड़े की स्वच्छताद्वारा प्रत्येक पुरुष अनुमान कर सकेगा कि इस (वालक) की माता चतुर और सुघड़ है–किन्तु इस से विपरीत होने से तो सब ही यह अनुमान करेंगे कि–बालककी माता फूहड़ होगी, अन्य देशोंकी स्त्रियों की अपेक्षा दक्षिण की स्त्रियां सुघड़ और चतुर होती हैं और यह वात उन के वालकोंकी स्वच्छता के द्वारा ही जानी तथा देखी जा सकती है।

वालक को प्रायः वाहर हवा में भी घुमाने के लिये ले जाना चाहिये परन्तु उस समय फलालेन आदि के गर्म कपड़े पहनाये रखने चाहियें क्योंकि फलालेन आदि का वस्त्र पहनाये रखने से वाहर की ठंढी हवा लगने से सर्दी नहीं व्यापती है तथा उस समय में उक्त वस्त्र पहनाये रखने से भीतरी गर्मी वाहर नहीं निकलने पाती है और न वाहर की सर्दी भीतर जा सकती है, वालक को सर्दी के दिनों में कानटोपी और पैरों में मोज़े पहनाये रखने चाहियें, यदि मोज़े न हों तो पैरों पर कपड़ा ही लपेट देना चाहिये, कानटोपी भी यदि ऊनकी हो तो बहुत ही लाभदायक होती है, मल मूत्र और लार से भीगे हुए कपड़े को शीघ्रही बदल कर दूसरा स्वच्छ वस्त्र पहना देना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से सर्दी होकर कफ होजाता है, शीत तथा वर्षा ऋतु में हवा में वाहर घुमाने के लिये ले जावें तो आंख और मुंहके सिवाय सब शरीर को शाल या किसी गर्म कपड़े से ढक कर ले जाना चाहिये, लार गिरती हो तो उस जगह पर रूमाल वा कोई कपड़ा रखना चाहिये, वालक के पैर; सीना (छाती) और पेट को सदा गर्म रखना चाहिये किन्तु इन अंगोंको ठंढे नहीं होने देना चाहिये, बस ऊपर लिखी रीति के अनुसार वालक को खूब हिफ़ाजत के साथ कपड़े पहनाने चाहियें क्योंकि ऐसा न करने से बहुत हानि होती है, वालक को इतने अधिक वस्त्र भी नहीं पहनाने चाहियें कि जिन से वह पसीना युक्त होकर घवड़ा जावे, इसी प्रकार गर्मी में भी बहुत कपड़े नहीं पहनाने चाहियें कि जिस से वारंवार पसीना निकलता रहे क्योंकि बहुत पसीना निकलने से शरीर वलहीन हो जाता है, इस लिये गर्मी में वारीक वस्त्र पहनाने चाहिये, वालक की त्वचा बहुत ही नाजुक और मुलायम होती है इस लिये उस को कपड़ेभी बहुत मुलायम और ढीले पहनाने चाहियें, हरे रंग में सोमल का विष होता है इस लिये हरे वस्त्र नहीं पहनानें चाहियें क्योंकि वालक उस को मुंह में डाल ले तो हानि हो जाती है, इसी प्रकार वह रँग त्वचासे लगने से भी हानि पहुँचती है, यथाशक्य (जहां तक हो सके) भभका और टाप टीप पर मोहित न हो कर वालक को सुखकारी कपड़े पहनाने चाहियें, वालकों को शीत ऋतु में खुला (उघाड़ा) नहीं रखना चाहिये और न वारीक वस्त्र पहना कर अथवा आधे खुले शरीर से खुले

मैदान में वाहर जाने देना चाहिये क्योंकि ऐसा होने से शीत लग जाने से वालक कद में छोटे और जुस्सा रहित हो जाते हैं इसी प्रकार गर्मी में खुले शरीर से मैदान में घूमने से काले हो जाते हैं, उन को लू लग जाती है और वीमार हो जाते हैं, एवं वर्षा ऋतु में भी खुले फिरने से श्याम हो जाते हैं और सर्दी आदि भी लग जाती है तथा ऐसे वर्ताव से अनेक प्रकार के रोगों का उन्हें शरण लेना पड़ता है, शीत गर्मी और वर्षा ऋतु में वालकों को खुले (उघाड़े) घूमने देने से शरीर से मज़वूत होने की आशा नष्ट हो जाती है क्योंकि ऐसा होने से उनके अवयवों में अनेक प्रकारकी त्रुटि हो जाती है और वे प्रायः रोगी हो जाते हैं, वालकों के शरीर पर सूर्य का कुछ तेज पड़ता रहे ऐसा उपाय करते रहना चाहिये, घर में उन को प्रायः गोद ही में नहीं रखना चाहिये, शरीर में उष्णता रखने के लिये पूरे कपड़ों का पहनाना मानो उतनी खुराक उन के पेट में डालना है, शरीर पर पूरे कपड़े पहनाने से उष्णता कम जाती है और उष्णता के क़ायम रहने से अरोगता रहती है, वालकों को ऋतुके अनुकूल वस्त्र पहनाने में जो मा वाप द्रव्य का लोभ करते हैं तथा वालकों को उघाड़े फिरने देते हैं यह उनकी वड़ी भूल है क्योंकि ऐसा होने से शरीर की गर्मी कम हो जाती है तथा गर्मी कम हो जाने से उस (गर्मी) को पूर्ण करने के लिये अधिक खुराक खानी पड़ती है जव ऐसा करना पड़ा तो समझ लीजिये कि जितना कपड़े का खर्च वचा उतना ही खुराकका खर्च वढ़ गया फिर लोभकरने से क्या लाभ हुआ ? किन्तु ऐसे विपरीत लोभसे तो केवल शरीर को हानि ही पहुँचती है-इसलिये वालक को ऋतु के अनुकूल वस्त्र पहनाना ही लाभदायक है ॥

४-**दूधपिलाना**—वालक के उत्पन्न होने पर शीघ्र ही उस को दूध नहीं पिलाना चाहिये अर्थात् वालक को माता का दूध तीन दिन तक नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि

१-परन्तु इस विषय में किन्हीं लोगोंका यह मत है कि-वालक के उत्पन्न होने के पीछे जव माता की थकावट दूर होजावे तव तीन या चार घण्टे के वाद से वालकको माता का ही दूध पिलाना चाहिये, वे यह भी कहते हैं कि-"कोई लोग वालक को एक दो दिन तक माताका दूध नहीं पिलाते हैं. किन्तु उस को गलथुली चटाते हैं सो यह रीति ठीक नहीं है-क्योंकि वालक के लिये तो माता का दूध पिलाना ही उत्तम है, वालक के उत्पन्न होने पर उस को तीन या चार घण्टे के वाद माता का दूध पिलाने से वहुत ही लाभ होताहै. क्योंकि-माता के दूध का प्रथम भाग रेचक होता है इस लिये उस के पीने से गर्भस्थान में रहने के कारण वालक के पेट की हड्डियों में लगा हुआ काला मल दूर होजाता है और माता को पीछे से आने वाले वेग के कम होजाने से रक्त प्रवाह के होने का सम्भव कम रहता है, यदि वालक को एक दो दिन तक माताका दूध न पिलाया जावे तो फिर वह (वालक) माता का दूध पीने नहीं लगता है और ऐसा होने से स्तन दूधसे भर जाने के कारण पक जाते हैं, इसलिये प्रथम से ही वालक को माता का ही दूध पिलाना चाहिये, वालक को प्रथम से ही माता का दूध पिलाने से यह भी लाभ होता है कि यदि माता के स्तनों में दूध न भी हो तो भी आने लगता है" इत्यादि, परन्तु तमाम ग्रन्थों और अनेक विद्वज्जनों की सम्मति इस कथन से विपरीत है अर्थात् उनकी सम्मति वही है जो कि हमने ऊपर लिखा है, अर्थात् जन्म के पीछे तीन या चार दिन के वादसे वालक को माता का दूध पिलाना चाहिये ॥

प्रसूतिके पश्चात् तीन दिन तक माता के दूध में कई प्रकार के उष्णता आदि के विकार रहते हैं. किन्तु तीन दिन के पश्चात् भी दूध की परीक्षा कर के पिलाना चाहिये, माता के दूध की परीक्षा यह है कि–यदि दूध पानी में डालने से मिल जावे, फेन न दीखे, तन्तु सरीखे न पड़ जावें, ऊपर तर न लगे, फटे नहीं, शीतल; निर्मल; स्वच्छ और शंख के समान सफेद होवे, उस दूध को स्वच्छ समझना चाहिये, इस प्रकार से तीन दिन के पीछे दूधकी परीक्षा करके बालक को माता का दूध पिलाना चाहिये, यदि कदाचित् माता के स्तनों में दूध न आवे तो गाय का दूध और दूध से आधा कुछ गर्म सा पानी (जैसा मा का दूध गर्म होता है वैसा ही गर्म पानी लेना चाहिये) और कुछ मीठा हो जावे इतनी शक्कर, इन तीनों को मिला कर बालक को पिलाना चाहिये परन्तु इन तीनों वस्तुओं के मिलाने में ऐसा करना चाहिये कि–पहिले शक्कर और पानी मिलाना चाहिये तथा पीछे उस में दूध मिलाना चाहिये, यह मिश्रण माता के दूध के समान ही गुण करता है, यह (मिश्रण) बालक को दो दो घण्टे के पीछे थोड़ा २ पिलाना चाहिये-परन्तु जब माता के स्तनों से दूध आने लगे तब इस (मिश्रण) का पिलाना बन्द कर माता का ही दूध पिलाना चाहिये तथा दोनों स्तनों से क्रमानुसार दूध पिलाना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से दूध से भर जाने के कारण स्तन फूल कर सूज जाता है ॥

५–**दूध पिलाने का समय**—बालक को वार वार दूध नहीं पिलाना चाहिये किन्तु नियम के अनुसार पिलाना चाहिये क्योंकि नियम के विरुद्ध पिलाने से पहिले पिये हुए दूध का ठीक रीति से परिपाक न होने पर फिर पिलाने के द्वारा बालक को अजीर्ण हो जाता है और ऐसा होनेसे बालक रोगाधीन हो जाता है, इसी प्रकार एक वार में मात्रा से अधिक पिला देनेसे वह पिया हुआ दूध कुदरती नियम के अनुसार पेट में ठहरता नहीं है किन्तु वमन के द्वारा निकल जाता है, यदि कदाचित् वमन के द्वारा न भी निकले तो बालक के पेट को भारी कर तान देता है, पेट में पीड़ा को उत्पन्न कर देता है और जब बालक उक्त पीड़ा के होने से रोता है तब मूर्खा स्त्रियां उस के रोने के कारण का विचार न कर फिर शीघ्र ही स्तन को बालक के मुँह में दे देती हैं तथा बालक नहीं पीता है तो भी बलात्कार से उसे पिलाती हैं, इस प्रकार वार वार पिलाने से बालक को तो हानि पहुँचती ही है किन्तु माताको भी बहुत हानि पहुँचती है अर्थात् वार वार पिलाने से माता के स्तन से दूध नहीं उतरता है (आता है) इस से बालक रोता है तथा उस के अधिक रोनेसे माता बहुत घबड़ाती है और ऐसा होने से दोनों (माता और बालक) निर्बल हो जाते हैं, बालक के मुँह में स्तन देकर उस को नींद नहीं लेने देना चाहिये और न माता को नींद लेना चाहिये क्योंकि उस से स्तन में तथा बालक के मुंह में छाले पड़ जाते हैं।

बालक को पहिले महीने में डेढ़ २ घण्टे, दूसरे महीने में दो २ घण्टे, तीसरे महीने में ढाई २ घण्टे और चौथे महीने में तीन २ घण्टे के पीछे दूध पिलाना चाहिये, इसी प्रकार से प्रत्येक महीने में आधे २ घण्टे का अन्तर बढ़ाते जाना चाहिये किन्तु जब बालक सात आठ महीने का हो जावे तब तीन चार घण्टे के पीछे दूध पिलाने का समय नियत कर लेना चाहिये।

बहुत सी स्त्रियां बारह वा चौदह महीने तक बालक को दूध पिलाती रहती हैं परन्तु ऐसा करना बालक को बहुत हानि पहुँचाता है क्योंकि जब बालक जन्मता है तब से लेकर सात आठ महीने तक स्त्री को ऋतुधर्म नहीं होता है इस लिये तब तक का ही दूध बहुत पुष्टिकारक होता है किन्तु जब स्त्री के ऋतुधर्म होने लगता है तब उस के दूध में विकार उत्पन्न हो जाता है इस लिये स्त्रियों को केवल आठ नौ महीने तक ही बालकों को दूध पिलाना चाहिये किन्तु आठ नौ महीने के पीछे दूध का पिलाना धीरे २ कम करके उसके साथ में अन्य खुराक देते रहना चाहिये, दूध पिलाने के बाद स्तन को पोंछ कर स्वच्छ कर लेने का नियम रखना चाहिये कि जिस से चांदे (छाले) न पड़ जावें ॥

६-**दूध पिलाने के समय हिफ़ाज़त**—बालक को दूध पिलाने के समय माता प्रथम अपने मन में धीरज; उत्साह; शान्ति और आनन्द रख के बालक को देखे,[1] फिर उस को हँसा कर खिलावे और अपने स्तन में से थोड़ा सा दूध निकाल देवे,[2] तत्पश्चात् बालक के मस्तक पर हाथ रखके उस को दूध पिलावे, बालक को दूध पिलानेकी यही उत्तम रीति है, किन्तु बालक को मार कर, पटक कर, क्रोध में होकर, डरा कर अथवा तर्जना (डांट) देकर दूध नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि जिस समय मन में शोक, भय, क्रोध और निराशा आदि दोष होते हैं उस समय माता का दूध बिगड़ा हुआ होता है और वह दूध जब बालक के पीने में आता है तो वह दूध बालक को विष के समान हानि पहुँचाता है-इस लिये जब कभी उक्त बातों का प्रसंग होवे उस समय बालक को दूध कभी नहीं पिलाना चाहिये किन्तु जब ऊपर लिखे अनुसार मन अत्यन्त आनन्दित हो उस समय पिलाना चाहिये, इसी तरह माता को अपनी रोगावस्थामें भी बालक को अपना दूध नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि वह दूध भी बालक को हानि पहुँचाता है ॥

७-**पूरा दूध न होने पर कर्तव्य उपाय**—जहां तक हो सके वहां तक तो बालक को माता के दूध से ही रखना उत्तम है क्योंकि माता का स्नेह बालक पर अपूर्व होता

१-क्योंकि माता की उत्साह शान्ति, और आनन्द से भरी हुई दृष्टिको देखकर बालक भी हर्षित होगा ॥

२-क्योंकि दूध के अग्रभाग में दूध का विकार जमा रहता है इसलिये पिलाने से प्रथम स्तनमेंसे कुछ दूध निकालकर तब बालक को पिलाना चाहिये ॥

है इस लिये माता की स्थिति में धात्री (धाय) के द्वारा बालक का पोषण कराना ठीक नहीं है, हां यदि माता का शरीर दुर्बल हो अथवा दूध न आता हो अथवा पूरा (काफी) दूध न आता हो तो वेशक अन्य कुछ उपाय न होने से बालकको सात आठ महीने तक तो धाय के पास ही रख कर उसी के दूध से बालक का पालन पोषण करना चाहिये क्योंकि सात आठ महीने तक तो दूध के सिवाय बालक की और कोई खुराक हो ही नहीं सकती है ॥

८-**धात्री के लक्षण**—जहां तक हो सके धात्री अपने ग्रामकी और अपनी जाति की ही रखना चाहिये तथा उस में ये लक्षण देखने चाहियें कि-वह अपने ही बालक के समान जीवित और नीरोग बालक वाली, मध्यम कद की, शान्त, सुशील, दृढ़ शरीर वाली, रोगरहित, सदाचारयुक्त तथा सद्गुणोंवाली होवे, यदि कदाचित् ऐसी धात्री न मिल सके तो सदा एक ही तनदुरुस्त गाय का ताजा दूध लेकर तथा दूध से आधा कुछ गर्म पानी और शक्कर को पूर्व कही हुई रीति के अनुसार मिलाकर बालक को पिलाना चाहिये तथा इस को भी दूध पिलाने के समयके अनुकूल ही नियमानुसार पिलाना चाहिये, दूध पिलाने में इस बात का भी खयाल रखना चाहिये कि बालक को तांबे और पीतल आदि धातु के वर्तन में दूध नहीं पिलाना चाहिये किन्तु मिट्टी अथवा काच के वर्तन में लेकर पिलाना चाहिये, किन्तु बालक के पीने के दूध को तो पहिले से ही उक्त वर्तन में ही रखना चाहिये, दूधको बहुत गर्म करके नहीं पिलाना चाहिये, बहुत सी स्त्रियां गाय भैंस वा बकरी का दूध औंट कर तथा उस में शक्कर इलायची और जायफल आदि डाल कर पिलाया करती हैं—परन्तु ऐसा दूध छोटे बालक को भारी होने के कारण पचता नहीं है. इस लिये ऐसा दूध नहीं पिलाना चाहिये, वास्तव में तो बालक के लिये माता के दूध के समान और कोई खुराक नहीं है. इस लिये जब कोई उपाय न चले तब ही धाय रखनी चाहिये अथवा ऊपर लिखे अनुसार मिश्रण दूध का सहारा रखना चाहिये ॥

९-**खुराक़**—बालक को ताजी; हलकी; कुछ गर्म; रुचिके अनुकूल तथा पौष्टिक खुराक देनी चाहिये तथा खुराक के साथ में हमेशा गाय का ताजा और स्वच्छ दूध भी देते रहना चाहिये, यदि अनाज की खुराक दी जावे तो उस में जरासा नमक डाल कर देनी चाहिये क्योंकि-ऐसा करने से खुराक स्वादिष्ठ हो जाती है और हज़म भी जल्दी हो जाती है तथा इस से पेट में कीड़े भी कम पड़ते हैं, यदि बालक की रुचि हो तो दूध में थोड़ी सी मिठास आजावे इतनी शक्कर वा बतासे डाल देना चाहिये परन्तु दूध को बहुत मीठा कर नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि-बहुत मीठा कर पिलने से वह पाचन शक्ति को मन्द करता है ।

जब बालक एक वर्ष का हो जावे और दाँत निकल आवें तब उसे क्रम २ से चांवल; दाल; खिचड़ी; स्वच्छ दही और मलाई आदि देना चाहिये परन्तु अन्न के साथ गाय का दूध देने में कभी नहीं चूकना चाहिये क्योंकि दूध में पोषण के सब आवश्यक पदार्थ स्थित हैं. इस लिये दूध के देने से बालक तनदुरुस्त और दृढ़ बन्धनोंवाला होता है, यदि दूध के देने से शौच ठीक न आवे तो उसमें थोड़ा सा पानी मिला कर देना चाहिये इस से शौच ठीक होता रहेगा।

ज्यों २ बालक की अवस्था बढ़ती जावे त्यों २ दूध की खुराक भी बढ़ाते जाना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से बालक का तेज; बन्धान और बल बढ़ता रहता है, जब बालक करीब दो वर्ष का हो जावे तब दूध में पानी का मिलाना बन्द कर देना चाहिये, बालक को जो दूध दिया जावे वह ताजा और स्वच्छ देख के लेना चाहिये, दूध में पानी वा अन्य कुछ पदार्थ मिला हुआ नहीं होना चाहिये इस का पूरा खयाल रखना चाहिये क्योंकि खराब दूध बहुत हानि करता है, ज्यों २ बालक बड़ा होता जावे त्यों २ वह शाक तरकारी आदि ताज़े पदार्थोंको खावे इसका प्रयत्न करना चाहिये, धीरे २ शाक आदि पदार्थों में नमक और मसाला डालकर बालक को खिलाने चाहियें, कभी २ रुचि के अनुकूल कुछ मेवा भी देनी चाहिये, बालक को कच्चे फल, कोयले और मिट्टी आदि हानिकारक पदार्थ नहीं खाने देना चाहिये, बालक को दिन भर में तीन वार खुराक देनी चाहिये परन्तु उसमें भी यह नियम रखना चाहिये कि प्रातःकाल में दूध और रोटी देना चाहिये, इस के बाद दूसरी वार चार घंटे के पीछे और तीसरी वार शामको आठ बजे के अन्दर २ कोई हलकी खुराक देनी चाहिये किन्तु इन तीन समयों के सिवाय यदि बालक बीच २ में खाना चाहे तो उस को नहीं खाने देना चाहिये, एक वार की खाई हुई खुराक जब पच जावे और मेदेको कुछ विश्रान्ति (आराम) मिल जावे तब दूसरी वार खुराक देनी चाहिये, भूख से अधिक खूब डँट कर भी नहीं खाने देना चाहिये क्योंकि जो बालक भूख से अधिक खूब डँट कर तथा वार वार खाता है तो वह खुराक ठीक रीति से हजम नहीं होती है और बालक रोगी हो जाता है, उसके हाथ पैर रस्सीके समान पतले और पेट मटकी के समान बड़ा हो जाता है, बालक को कभी २ अनार, द्राक्षा (दाख), सेब, बादाम, पिस्ते और केले आदि फलभी देते रहना चाहिये, उसको पानी स्वच्छ पीने को देना चाहिये, पीने के लिये प्रायः कुओं का पानी बहुत उत्तम होता है इसलिये वही पिलाना चाहिये, जिस पानी पर रजःकण (धूलके कण) तैरते हों अथवा जो अन्य बुरे पदार्थों से मिला हुआ हो वह पानी बालक को कभी नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि इस प्रकार का पानी बड़ी अवस्था वालों की अपेक्षा बालक को अधिक हानि पहुँचाता है, स्वच्छ जल हो तो भी उसे दो तीन वार छान कर पीने के लिये देना चाहिये, शीत

ऋतु में शरीर में गर्मी उत्पन्न करनेवाले पौष्टिक पदार्थ खाने को देना चाहिये क्योंकि उस समय शरीर में गर्मी पैदा करने की बहुत आवश्यकता है, उक्त ऋतु में यदि शरीर में गर्मी कम होवे तो तनदुरुस्ती बिगड़ जाती है इसलिये उक्त ऋतु में शरीर में उष्णता कायम रहने के लिये उपाय करना चाहिये, बालक की भूख को कभी मारना नहीं चाहिये क्योंकि भूख का समय बिता देने से मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं, इसलिये यही उचित है कि नियम के अनुसार नियत किये हुए समय पर जितनी और जो हजम हो सके उतनी और वही खूब परिपक्व (पकी हुई) खुराक खाने को देना चाहिये।

इस जीवनयात्रा के निर्वाह के लिये शरीर को जिन २ तत्वों की आवश्यकता है वे सब तत्त्व एक ही प्रकार की खुराक में से नहीं मिल सकते हैं. इसलिये सर्वदा एक ही प्रकार की खुराक न देकर भिन्न २ प्रकार की खुराक देते रहना चाहिये, एक ही प्रकार की खुराक देने से शरीर को आवश्यक तत्वभी नहीं मिलते हैं तथा पाचनशक्ति में भी खराबी पड़ जाती है, जिस खुराक पर बालक की रुचि न हो उसके खाने के लिये आग्रह नहीं करना चाहिये, बालक को खुराक देनेमें आधा घंटा लगाना चाहिये अर्थात् धीरे २ चबा २ के उसे खिलाना चाहिये और धीरे २ चाब २ के खाने की उस की आदत भी डालना चाहिये किन्तु शीघ्रता से उसे नहीं खिलाना चाहिये और न खाने देना चाहिये, गर्मी वा धूप आदि में से आने के बाद अथवा थकने के बाद कुछ विश्राम ले लेवे तब उसे खाने को देना चाहिये, खाते समय उसे न तो हँसने और न बातें करने देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से कभी २ ग्रास गले में अटक कर बहुत हानि पहुँचाता है, सो उठने के पीछे तीन घण्टे के बाद और ऊँघने के पीछे एक घण्टे के बाद खुराक देनी चाहिये, इसी प्रकार खानेके पीछे यदि आवश्यकता होतो एक घण्टे के पश्चात् सोने देना चाहिये, ठंढी बिगड़ी हुई और दुर्गन्धयुक्त खुराक नहीं खाने देनी चाहिये, बहुत खाना अथवा कमखाना, ये दोनों ही नुक्सान करते हैं इस लिये इन से बालक को बचाना चाहिये, भूख लगे विना आग्रह करके बालक को नहीं खिलाना चाहिये, बालक से कम वा अधिक खाने के लिये नहीं कहना चाहिये किन्तु उस को अपनी रुचि के अनुसार खाने देना चाहिये, खुराक के विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो खुराक जिस कदर पुष्टिकारक हो वह उसी कदर तौलमें कम खाने को देना चाहिये तथा जिस कदर खुराक कम पुष्टि कारक हो उसी कदर वह तौल में अधिक खाने को देना चाहिये, तात्पर्य यह है कि जहांतक हो सके बालकों को खुराक तौल में कम किन्तु पुष्टिकारक देना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से बालक का बल घटता है तथा शरीर भी नहीं बढ़ता है, यह संक्षेप से खुराक के विषय में

१-क्योंकि पुष्टिकारक खुराक तौलमें अधिक देने से अजीर्ण होकर विकार उत्पन्न होता है और अपुष्टि कारक अथवा कम पुष्टिकारक खुराक तौलमें कम देने से बालक को दुर्बलता सताने लगती है ॥

लिखा गया है, बाकी इस विषय को देश और काल के अनुसार चतुर माताओं को विचार लेना चाहिये ॥

१०-हवा—जिस उपाय से बालक को खुली और स्वच्छ हवा मिलसके वही उपाय करना चाहिये, स्वच्छ हवा के मिलने के लिये हमेशा सुबह और शाम को समुद्र के तट पर मैदान में, पहाड़ी पर अथवा बाग में बालक को हवा खिलाने के लिये ले जाना चाहिये, क्योंकि स्वच्छ हवा के मिलने से बालक के शरीर में चेतनता आती है, रुधिर सुधरता है। और शरीर नीरोग रहता है, प्रत्येक प्राणी को श्वास लेने में आक्सिजन[1] वायु की अधिक आवश्यकता होती है इस लिये जिसकमरे में ताजी और स्वच्छ हवा आती हो उस प्रकार के ही खिड़की और किवाड़वाले कमरे में बालक को रखना चाहिये, किन्तु उस को अँधेरे स्थान में, चूल्हे की गर्मी से युक्त स्थानमें, नाली वा मोहरी की दुर्गन्धि से युक्त स्थान में, संकीर्ण, अँधेरी और दुर्गन्धवाली कोठरी में, बहुत से मनुष्यों के श्वास लेने से जहां कार्बोलिक[2] हवा निकलती हो उस स्थान में और जहां अखण्ड दीपक रहता हो उस स्थान में कभी नहीं रखना चाहिये, क्योंकि-जहां गर्मी दुर्गन्धि और पतली हवा होती है वहां आक्सिजन हवा बहुत थोड़ी होती है इसलिये ऐसी जगह पर रखने से बालक की तनदुरुस्ती बिगड़ जाती है, अतः इन सब बातों का खयाल कर स्वच्छ और सुखदायक पवन से युक्त स्थान में बालक को रखने का प्रबन्ध करना ही सर्वदा लाभदायक है ॥

११-निद्रा—बालक को बड़े आदमी की अपेक्षा अधिक निद्रा लेने की आवश्यकता है क्योंकि-निद्रा लेने से बालक का शरीर पुष्ट और तनदुरुस्त होता है, बालक को कुछ समय तक माता के पसवाड़े में भी सोनेकी आवश्यकता है क्योंकि-उस को दूसरे के शरीर की गर्मी की भी आवश्यकता है, इस लिये माता को चाहिये कि-कुछ समय तक बालक को अपने पसवाड़े में भी सुलाया करे, परन्तु पसवाड़े में सुलाते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि-पसवाड़ा फेरते समय बालक कुचल न जावे अर्थात् वह रोकर पसवाड़े के नीचे न दब जावे, इस लिये माता को चाहिये कि-उस समयमें अपने और बालक के बीच में किसी कपड़े की तह बना कर रखले, सोते हुए बालक को कभी दूध नहीं पिलाना चाहिये क्योंकि-सोते हुए बालक को दूध पिलाने से कभी २ माता ऊंघ जाती है और बालक उलटा गिरके गुंगला के मर जाता है बालक को सोने का ऐसा अभ्यास कराना चाहिये कि-वह रात को आठ नौ बजे सो जावे और प्रातःकाल पांच बजे उठ बैठे, दिन में दो पहर के समय एक दो घण्टे और रात को अधिक से अधिक आठ घण्टे

१-आक्सिजन अर्थात् प्राणप्रद वायु ॥ २-कार्बोलिक हवा अर्थात् प्राणनाशक वायु ॥

तक बालक को नींद लेने देना चाहिये, तथा जागने के पीछे उसे बिस्तर पर पड़ा नहीं रहने देना चाहिये क्योंकि-ऐसा करने से बालक सुस्त हो जाता है, इस लिये जागने के पीछे शीघ्रही उठने की आदत डालनी चाहिये, नींद में सोते हुए बालक को जगाना नहीं चाहिये क्योंकि-नींद में सोते हुए बालक को जगाने से बहुत हानि होती है, बालक को स्वच्छ हवा और प्रकाशवाले कमरे में सुलाना चाहिये किन्तु खिड़की और किवाड़ बन्द किये हुए कमरे में नहीं सुलाना चाहिये, तथा दुर्गन्धवाले और छोटे कमरे में भी नहीं सुलाना चाहिये, बालकको निद्रा के समय में कुछ तकलीफ होवे ऐसा कुछ भी वर्ताव नहीं होना चाहिये किन्तु निद्रा के समयमें उस का मन अत्यन्त शान्त रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये, बालक को खुराक की अपेक्षामें भी निद्रा की अधिक आवश्यकता है क्योंकि कम निद्रा से बालक दुर्बल हो जाता है, बालक को गोद में सुलाने की आदत नहीं डालनी चाहिये तथा झूले वा पालने में भी बलात्कार झुला कर पीट कर डरा कर अथवा व्याकुल कर नहीं सुलाना चाहिये और न बाल-गुटिका वा अफीम आदि हानिकारक तथा विषैली वस्तु खिलाकर सुलाना चाहिये क्योंकि उस के खिलाने से बालक का शरीर बिगड़कर निर्बल हो जाता है, उस के शरीर का बन्धान दृढ़ नहीं होता है, किन्तु जब उस को प्रकृति के नियमके अनुसार स्वाभाविक नींद आने लगे तबही सुलाना चाहिये, रात्रि को खुराक देने के पश्चात् दो घण्टे के बाद हँसाने खिलाने दौड़ाने और कुदाने आदि के द्वारा कुछ शारीरिक व्यायाम (कस-रत) कराके तथा मधुर गीतों के गाने आदि के द्वारा उस के मन का रञ्जन करके सुलाना चाहिये कि जिस से सुखपूर्वक उसे गहरी नींद आजावे, इसी प्रकार से बालक को पालने में भी हर्षित कर लिटा कर मधुर गीत गाकर धीरे २ झुला कर सुलानेसे उस को उत्तम नींद आती है तथा काफी नींद के आजाने से उसका शरीर हलका (फुर्तीला) और अच्छा हो जाता है, यदि किसी कारण से बालक को नींद न आती हो तो समझ लेना चाहिये कि इस के पेट में या तो कीड़े हो गये हैं या कोई दूसरा दर्द उत्पन्न हुआ है, इस की जांच कर के जो मालूम हो उस का उचित उपाय करना चाहिये, किन्तु जहां तक हो सके नींद के लिये औषध नहीं खिलाना चाहिये, सोते समय क्रमानुसार पसवाड़ा बदलने की बालक की आदत डालना चाहिये[1], उस के सोने का बिछौना न तो अत्यन्त मुलायम और न अत्यन्त सख्त होना चाहिये किन्तु साधारण होना चाहिये, झूले में सुलाने की अपेक्षा पालने में सुलाना उत्तम है क्योंकि झुले में सुलाने से बालक के कुबड़े हो जाने का सम्भव है और कुबड़ा हो जाने से वह ठीक रीति से चल नहीं सकता है किन्तु पालने में सुलाने से ऐसा नहीं होता

१-क्योंकि एक ही पसवाड़े से पड़े रहने से आहार का परिपाक ठीक नहीं होता है ॥

है, बालक की नींद में भंग न हो जावे इस लिये झूले या पालने के आंकड़े (कड़े) नहीं बोलने देना चाहिये, बालक के सोते समय जोर से झोंका नहीं देना चाहिये, सोने के झूले वा बिछौने के पास यदि शीत भी हो तो भी आग की सिगड़ी वा दीपक समीप में नहीं रखना चाहिये, जब बालक सो कर उठ बैठे तब शीघ्रही बिछौने को लपेट कर नहीं रख देना चाहिये किन्तु जब उस में कुछ हवा लग जावे तथा उस के भीतर की गन्दगी (दुर्गन्धि) उड़ जावे तब उस को उठा कर रखना चाहिये, सोते समय बालक को चांचड़, खटमल और जुएँ आदि न काटें, इस का प्रबंध रखना चाहिये, उस के सोने का बिछौना धोया हुआ तथा साफ रखना चाहिये किन्तु उस को मलीन नहीं होने देना चाहिये, यदि बिछौना वा झोला मलमूत्र से भीगा होवे तो शीघ्र उस को बदल कर उस के स्थान में दूसरे किसी स्वच्छ वस्त्र को बिछा कर उस पर बालक को सुलाना चाहिये कि जिस से उसे सर्दी न लग जावे ॥

१२–**कसरत**—बालक को खुली हवा में कुछ शारीरिक कसरत मिल सके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि शारीरिक कसरत से उस के शरीर का भीतरी रुधिर नियमानुसार सब नसों में घूम जाता है, खाये हुए अन्न का रस होकर तमाम शरीर को पोषण (पुष्टि) मिलता है, पाचनशक्ति बढ़ती है, स्नायु का सञ्चलन होने से लोहू भीतरी मलीन पदार्थों को पसीने के द्वारा बाहर निकाल देता है जिस से शरीरका बन्धान दृढ़ और नीरोग होता है, नींद अच्छी आती है तथा हिम्मत, चेतनता, चञ्चलता और शूरवीरता बढ़ती है, क्योंकि बालक की स्वाभाविक चंचलता ही इस बात को बतलाती है कि–बालक की अरोगता रहने और बड़ा होने के लिये प्रकृति से ही उस को शारीरिक कसरत की आवश्यकता है, उत्पन्न होने के पीछे जब बालक कुछ मासों का हो जावे तब उस को सुबह शाम कपड़े पहना के अच्छी हवा में ले जाना चाहिये, कभी २ जमीन पर रजाई बिछा के उसे सुलाना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से वह इधर उधर पछाड़ें मारेगा और उस को शारीरिक कसरत प्राप्त होगी, इसी प्रकार कभी २ हँसाना, खिलाना, कुदाना और कोई वस्तु फेंक कर उसे मंगवाना आदि व्यवहार भी बालक के साथ करना चाहिये, क्योंकि इस व्यवहार में अति हँस कर वह हाथ पैर पछाड़ने, दौड़ने और इधर उधर फिरने के लिये चेष्टा करेगा और उस से उसे सहजमें ही शारीरिक कसरत मिल सकेगी ।

जब बालक कुछ चलना फिरना सीख जावे तब उसे घर में तथा घर के बाहर समीप में ही खेलने देना चाहिये किन्तु उसे घर में न बिठला रखना चाहिये, परन्तु जिस खेल से शरीर के किसी भाग को हानि पहुँचे तथा जिस खेलसे नीति में बिगाड़ हो ऐसा खेल

नहीं खेलने देना चाहिये इसी प्रकार दुष्ट लड़कों की संगति में भी बालक न खेलने पावे इस की पूरी खबरदारी रखनी चाहिये, ज्यों २ बालक उम्रमें बड़ा होता जावे त्यों २ उस को नित्य सुवह और शाम को खुली हवामें नियमपूर्वक गेंद फेंकना, दौड़ना, चकरी, तीर फेंकना, खोदना, जोतना और काटना आदि मनपसन्द खेल खेलने देना चाहिये परन्तु जिस और जितने खेल से वह अत्यन्त थक जावे तथा शरीर भारी पड़ जावे वह और उतना खेल नहीं खेलने देना चाहिये, जब कभी कोलेरा (हैज़ा) और ज्वर आदि रोग चल रहा हो तो उस समय में कसरत नहीं कराना चाहिये, कसरत करने के पीछे जब उस की थकावट कम हो जावे तब उसे खाने और पीने देना चाहिये, इस नियम के अनुसार पुत्र और पुत्री से कसरत कराते रहें ॥

१३-दाँतोंकी रक्षा—जब बालक सात आठ महीने का होता है तब उस के दाँत निकलना प्रारम्भ होता है, कभी २ ऐसा भी होता है कि दाँत दो तीन मास विलम्ब से भी निकलते हैं परन्तु ऐसी दशा में बालक को ज्वर, वमन, खांसी, चूंक झाड़ा और आंचकी आदि होने लगते हैं, जब बालकके दाँत निकलने लगते हैं उस समय उस का स्वभाव चिड़चिड़ा (चिढ़नेवाला) हो जाता है, उस को कहीं भी अच्छा नहीं लगता है, दाँतों की जड़ों में खाज (खुजली) चलती है, वार वार दूध पीने की इच्छा होती है, अंगुली वा अंगूठे को मुख में डालता है क्योंकि उस से दाँतों की जड़ों के घिसने से अच्छा लगता है, इस समय पर बालक अन्य किसी वस्तु को मुख में न डालने पावे इस का ख्याल रखना चाहिये, क्योंकि अन्य किसी वस्तु के मुख में डालने की अपेक्षा तो अंगूठे को ही मुख में डालना ठीक है, परन्तु उस को हमेशा मुख में अंगूठा डालने की आदत न पड़ जावे इस का खयाल रखना चाहिये।

यदि दांत निकलने के समय नित्य की अपेक्षा दो चार वार शौच अधिक लगे तो कोई चिन्ता की बात नहीं है परन्तु यदि दो चार वार से भी अधिक शौच लगने लगे तो उसका उचित उपाय करना चाहिये, यदि बालक को ज्वर वा वमन आदि हो जावे तो चतुर वैद्य वा डाक्टर की सलाह लेकर उस का शीघ्रही उपाय करना चाहिये क्योंकि इस समय में उस की अच्छी तरह से हिफाज़त करनी चाहिये, यदि पहना हुआ कपड़ा लार से भीग जावे तो शीघ्र उस कपड़े को उतार कर दूसरा स्वच्छ कपड़ा पहना देना चाहिये क्योंकि ऐसा न करने से सर्दी लगजाती है, जब बालक बड़ा हो जावे तब दाँतों को ब्रुश अथवा दाँतन के कूंचेसे घिसने की उस की आदत डालनी चाहिये, उसके दांतो में मैल नहीं रहने देना चाहिये किन्तु पानी के कुल्ले करा के उस के मुँह और दांतो को साफ कराते रहना चाहिये ॥

१-जैसे ढींगला ढींगली (गुड्डा और गुड़िया) का व्याह करना तथा उस से बालक जन्माना इत्यादि ॥

१४-**चरणरक्षा**—(पैरों की हिफ़ाज़त) पैर ही तमाम शरीर की जड़ हैं इसलिये उन की रक्षा करना अति आवश्यक है, अतः ऐसा प्रबंध करते रहना चाहिये कि जिस से वालक के पैर गर्म रहें, जब पैर ठंढे पड़ जावें तो उन को गर्म पानी में रख के गर्म कर देना चाहिये तथा पैरों में मोज़े पहना देना चाहिये, सोते समय भी पैर गर्म ही रहें ऐसा उपाय करना चाहिये क्योंकि पैर ढंढे रहने से सर्दी लगकर व्याधि होने का सम्भव है, शीत ऋतु में पैरों में मोज़े तथा मुलायम देशी जूते पहनाना चाहिये क्योंकि पैरों में जूते पहनाये रखने से ठंढ गर्मी और कांटों से पैरों की रक्षा होती है परन्तु सँकड़े (कठिन) जूते नहीं पहनाना चाहिये क्योंकि सँकड़े जूते पहनाने से वालक के पैर का तलवा वढ़ता नहीं है, अंगुलियां सँकुच जाती हैं तथा पैर में छाले आदि पड़ जाते हैं, वालक को चलाने और खड़ा करने के लिये माता को त्वरा (शीघ्रता) नहीं करनी चाहिये किन्तु जब वालक अपने आप ही चलने और खड़ा होने की इच्छा और चेष्टा करे तब उस को सहारा देकर चलाना और खड़ा करना चाहिये क्योंकि वलात्कार चलाने और खड़ा करने से उस के कोमल पैरों में शक्ति न होने से वे (पैर) शरीर का वोझ नहीं उठा सकते हैं, इस से वालक गिर जाता है तथा गिर जाने से उस के पैर टेढ़े और मुड़े हुए हो जाते हैं, घुटने एक दूसरे से भिड़ जाते हैं और तलवे चपटे हो जाते हैं इत्यादि अनेक दूषण पैरों में हो जाते हैं, वालक को घर में खुले (नंगे) पैर चलने फिरने देना चाहिये क्योंकि नंगे पैर चलने फिरने देने से उस के पैरों के तलवे मज़वूत और सख्त हो जाते हैं तथा पैरों के पञ्जे भी चौड़े हो जाते हैं ॥

१५-**मस्तक**—वालक का मस्तक[1] सदा ठंढा रखना चाहिये, यदि मस्तक गर्म होजावे तो ठंढा करने के लिये उस पर शीतल पानी की धारा डालनी चाहिये, पीछे उसे पोछ कर और साफ कर किसी वासित तेल का उस पर मर्दन करना चाहिये, क्योकि मस्तक को धोने के पीछे यदि उस पर किसी वासित तेल का मर्दन न किया जावे तो मस्तक में पीड़ा होने लगती है, वालक के मस्तक से वाल नहीं उतारना चाहिये और न वड़ी शिखा तथा चोटला रखना चाहिये किन्तु केवल वाल कटाते जाना चाहिये, हां वालिकाओं का तो जब वे चार पांच वर्ष की हो जावें तब चोटला रखना चाहिये, वालक को स्नान कराते समय प्रथम मस्तक भिगोना चाहिये पीछे सब शरीर पर पानी डाल कर स्नान कराना चाहिये, मस्तक पर ठंढे पानी की धारा डालने से

१-न केवल वालकका ही मस्तक ठंढा रखना चाहिये किन्तु सब लोगों को अपना मस्तक सदा ठंढा रखना चाहिये क्योंकि मस्तक वा मगज़ को तरावटकी आवश्यकता रहती है ॥

मगज़ तर रहता है, मस्तक पर गर्म किया हुआ पानी नहीं डालना चाहिये, वालों को सदा मैल काटने वाली चीजों से धोना चाहिये, पुत्र के वाल प्रतिदिन और पुत्री के वाल सात आठ दिन में एक वार धोकर साफ करना चाहिये, यदि मस्तक में जुयें और लीखें हो जावें तो उन को निकाल के वासित तेल में थोड़ा सा कपूर मिला कर मस्तक पर मालिश करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करने से जुयें कम पड़ती हैं तथा कपूर न मिला कर केवल वासित तेल का मर्दन करने से मगज़ तर रहता है, मस्तक पर नारियल के तेल का मर्दन करना भी अच्छा होता है क्योंकि–उस के लगाने से वाल साफ होकर बढ़ते और काले रहते हैं, वालों के ओइँछने में इस वात का खयाल रखना चाहिये कि–ओइँछते समय उस के वाल न तो खिँचे और न टूटें, क्योंकि वालों के खिँचने और टूटने से मगज़ में व्याधि हो जाती है तथा वाल भी गिर जाते हैं, इस लिये वारीक दाँत वाली कंघी से धीरे २ वालों को ओइँछना चाहिये, मस्तक में तेल सिर्फ इतना डालना चाहिये कि वालक के कपड़े न विगड़ने पावें, वालक के मस्तक पर मनमाना सावुन तथा अर्क खींचा हुआ तेल नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि–ऐसा करने से वाल सफेद हो जाते हैं तथा मगज़ में व्याधि भी हो जाती है ॥

१६–लग्न वा विवाह—वालकपन में लग्न अर्थात् विवाह कर देने से वालक शीघ्रही स्वपती के सम्बन्ध होने की चिन्ता से यथोचित विद्याभ्यास नहीं कर सकता है, इस से वड़े होने पर संसारयात्रा के निर्वाह में मुसीवत पड़कर उस को संसार में अपना जीवन दुःख के साथ विताना पड़ता है, केवल यही नहीं किन्तु कच्ची अवस्था में अपक्व (न पक्का हुआ अर्थात् कच्चा) वीर्य निकलजाने से शरीर का बन्धान टूट जाता है, शरीर दुर्बल, पतला, पीला, अशक्त और रोगी हो जाता है, आयु का क्षय होजाता है तथा उसकी जो प्रजा (सन्तति) होती है वह भी वैसी ही होती है, वह किसी कार्य को भी हिम्मत के साथ नहीं कर सकता है, इत्यादि अनेक हानियां वालविवाह से होती हैं, इसलिये पुत्र की अवस्था वीस वर्ष की होने के पीछे और पुत्री की अवस्था तेरह वा चौदह वर्ष की होने के पीछे विवाह करना ठीक है, क्योंकि जीवन में वीर्य का संरक्षण सव से श्रेष्ठ कार्य और परम फलदायक है, जिस के शरीर में वीर्य का विशेष संरक्षण होता है वह दृढ़, स्थूल, पुष्ट, शूर वीर, पराक्रमी और नीरोग होता है तथा उस की प्रजा (सन्तति) भी सव प्रकार से उत्कृष्ट होती है, इस लिये पुत्र और पुत्री का उक्त अवस्था में ही विवाह करना परम श्रेष्ठ है ॥

१–मस्तक पर गर्म पानी के डालने से जो हानि है वह नम्वर दो (स्नान विषय) में पूर्व लिख आये हैं॥
२–उस के अर्थात् वालक के ॥

१७-**कर्णरक्षा**—(कान की हिफ़ाज़त), बालक के कान ठंढे नहीं होने देना चाहिये, यदि ठंढे होजावें तो कानटोपी पहना देना चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से सर्दी लग कर कान पक जाते हैं और उन में पीड़ा होने लगती है, यदि कभी कान में दर्द होने लगे तो तेल को गर्म कर के कान के भीतर उस तेल की बूंदें डालनी चाहियें, यदि कान वहता हो तो समुद्रफेन को तेल में उबाल कर उस की बूँदें कान में डालनी चाहियें, कान में छिद्र (छेद) कराने की रीति नुकसान करती है, क्योंकि कान में छिद्र करके अलंकार (आभूषण, जेवर) पहनने से अनेक प्रकार के नुकसान[1] हो जाते हैं, इस लिये यह रीति ठीक नहीं है, कान को सलाई आदि से भी करोदना नहीं चाहिये किन्तु उस (कान) के मैल को अपने आप ही गिरने देना चाहिये क्योंकि कान के करोदने से वह कभी २ पक जाता है और उस में पीड़ा होने लगती है ॥

१८-**शीतला रोग से संरक्षा**—शीतला निकलने से कभी २ बालक अन्धे, लूले, काने और वहिरे हो जाते हैं तथा उन के तमाम शरीर पर दाग पड़ जाते हैं तथा दागों के पड़ने से चेहरा भी बिगड़ जाता है, इत्यादि अनेक खराबियां उत्पन्न हो जाती हैं, केवल इतना ही नहीं किन्तु कभी २ इस से बालक का मरण भी हो जाता है, सत्य तो यह है कि बालक के लिये इस के समान और कोई बड़ा भय नहीं है, यह रोग चेपी[2] भी है इसलिये जिस समय यह रोग प्रचलित हो उस समय बालक को रोगवाली जगह पर नहीं ले जाना चाहिये, यदि बालक के टीका न लगवाया हो तो इस समय शीघ्र ही लगवा देना चाहिये, क्योंकि टीका लगवा देने से ऊपर कहीं हुई खराबियों के उत्पन्न होने का भय नहीं रहता है, यदि बालक के दो वार टीका लगवा दिया जावे तो शीतला निकलती भी नहीं है और यदि कदाचित् निकलती भी है तो उस की प्रबलता (जोर) बिलकुल घट जाती है, इस लिये प्रथम छोटी अवस्था[3] में एक वार टीका लगवा देना चाहिये पीछे सात वा आठ वर्ष की अवस्था में एक वार फिर दुवारा लगवा देना चाहिये, किन्तु प्रथम छोटी अवस्था में एक वार टीका लगवा देने के वाद यदि सात सात वर्ष के पीछे दो तीन वार फिर लगवा दिया जावे तो और भी अधिक लाभ होता है।

१-पाठकों ने देखा वा सुना होगा कि अनेक दुष्ट गहने के लोभ से छोटे बच्चों को बहका कर ले जाते हैं तथा उन का ज़ेवर हरण कर बच्चों को मार तक डालते हैं ॥

२-चेपी अर्थात् वायु के द्वारा उड़कर लगनेवाला ॥

३-छोटी अवस्था में जितनी जल्द हो सके टीका लगवा देना चाहिये-अर्थात् जिस बालक को कोई रोग न हो तथा हृष्ट पुष्ट हो तो जन्म के १५ दिन के पीछे और तीन महीने के भीतर टीका लगवा देना उचित है, परन्तु दुर्बल और रोगी बालक के जब तक दाँत न निकल आवें तब तक टीका नहीं लगवाना चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-टीका लगवाने का सब से अच्छा समय जाड़े की ऋतु है ॥

टीका लगवाने के समय इस बात का पूरा खयाल रखना चाहिये कि–टीका लगाने के लिये जिस बालक का चेप लिया जावे वह बालक गुमड़े तथा ज्वर आदि रोगवाला नहीं होना चाहिये, किन्तु वह बालक नीरोग और दृढ़ बन्धान युक्त होना चाहिये, क्योंकि नीरोग बालक का चेप लेने से उस बालक को फायदा पहुँचता है और रोगी बालक का चेपलेने से बालक को शीघ्रही उसी प्रकार का रोग होजाता है।

जब बालक का शरीर बिलकुल तनदुरुस्त हो तब उस के टीका लगवाना चाहिये, टीका लगवाने के बाद नौ दस दिन में दाने भरजाते हैं और सूजन आ जाती है और पीड़ा भी होने लगती है, उस के बाद एक दो दिन में आराम होना शुरू हो जाता है, इससमयमें उस के आराम होने के लिये बालक को औषध देने का कुछ काम नहीं है; हां यदि टीका लगाने का स्थान खिँचता हो और खिँचने से अधिक दुःख मालूम होता हो तो उस पर केवल घी लगा देना चाहिये, क्योंकि घी के लगाने से चेप निकल कर गिर जाते हैं, दाने फूटने के बाद बारीक राख से उसे पोंछना भी ठीक है[1], परन्तु दानों को नोच कर नहीं उखाड़ना चाहिये क्योंकि नोच कर उखाड़ देने से लाभ नहीं होता है और फिर पक जाने का भी भय रहता है, यदि बालक दानों को नोचने लगे तो उस के हाथ पर कपड़ा लपेट देना चाहिये[2] अर्थात् उस चेप (पपड़ी) को नोच कर नहीं उखाड़ना चाहिये किन्तु उसे अपने आप ही गिरने देना चाहिये ॥

१९–बालगुटिका—बालक को बालगुटिका[3] देनी की रीति बहुत हानिकारक है, चाहें प्रत्यक्ष में इस से कुछ लाभ भी मालूम पड़े परन्तु परिणाम में तो हानि ही पहुँचती है, यह हमेशा देने से तो एक प्रकार से खुराक के समान हो जाती है तथा व्यसनी के व्यसन के समान यह भी एक प्रकार से व्यसनवत् ही हो जाती है, क्योंकि जब तक उस का नशा रहता है तब तक तो बालक को निद्रा आती है और वह ठीक रहता है परन्तु नशा उतरने के बाद फिर ज्यों का त्यों रहता है, नशा करने से स्वाभाविक नींद के समान अच्छी नींद भी नहीं आती है, इस के सिवाय इस बात की ठीक जांच करली गई है कि–बालगुटिका में नाना प्रकार की वस्तुयें पड़ती हैं किन्तु उन में भी अफीम तो मुख्य होती है, उस गुटिका को पानी वा माता के दूधमें मिला के बलात्कार बालक के हाथ पैर पकड़ के उसे पिला देते हैं, यद्यपि उस गुटिका

१–क्योंकि राख से पोंछने से दाने जल्दी खुश्क हो जाते हैं ॥

२–कपड़ा बांध देने से बालक दानों को नोच नहीं सकेगा ॥

३–यह बालगुटिका बच्चोंको खिलाने के लिये एक प्रकार की गोली है जिस में अफीम आदि कई प्रकार के हानिकारक पदार्थ डालकर वह बनाई जाती है–मूर्ख स्त्रियां बालकोंको सुलाने के लिये इस गोली को बालको को खिला देती हैं कि बालक सो जाय और वे सुख से अपना सब कार्य करती रहें ॥

के पीने के समय वालक अत्यन्त रोता है तथापि उस के रोने पर निर्दय माता को कुछ भी दया नहीं आती है, इस गुटिका के देनेकी रीति प्रायः एक दूसरी को देख कर स्त्रियों में चल जाती है, यह गुटिका भी एक प्रकार के व्यसन के समान वालक को दुर्वल, निर्वल और पीला कर देती है तथा इस से वालक के हाथ पैर रस्सीके समान पतले और पेट मटकी के समान वड़ा हो जाता है तथा इस गुटिका को देकर वालक को वलात्कार सुलाना तो न सुलाने के ही समान है, इसलिये माता का यह कार्य तो वालक के साथ शत्रुता रखने के तुल्य होता है, वालक को सुलाने का सच्चा उपाय तो यही है कि–सोने से प्रथम वालक से पूरी शारीरिक कसरत कराना चाहिये, ऐसा करने से वालक को स्वयमेव उत्तम निद्रा आ जावेगी, इसलिये निद्रा के लिये वालगुटिका के देने की रीति को विलकुल ही वन्द कर देना चाहिये ॥

२०–**आँख**–जव वालक सो कर उठे तव कुछ देर के पीछे उस की आंखों को ठंढे जल से धो देना चाहिये, आंखों के मैल आदि को खूव धोकर आंखों को साफ कर देना चाहिये, ठंढे पानी से हमेशा धोने से आंखों का तेज वढ़ता है, ठंढक रहती है तथा आंख की गर्मी कम हो जाती है, इत्यादि वहुत से लाभ आंखों को ठंढे पानी से धोने से होते हैं, परन्तु आंखों को धोये विना वैसी ही रहने देने से नुकसान होता है, आंखों में हमेशा काजल अथवा ज्योति को वढ़ाने वाला अन्य कोई अञ्जन आंजते (लगाते) रहना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से आंखें दुखनी नहीं आती हैं और तेज भी वढ़ता है। आंखें दुखनी आना एक प्रकार का चेपी रोग है, इस लिये यदि किसी की आंखें

१–क्योंकि स्त्रियों में मूर्खता तो होती ही है एक दूसरी को देख कर व्यवहार करने लगती हैं ॥

२–क्योंकि इस में अफीम आदि कई विषैले पदार्थ डाले जाते हैं ॥

३–क्योंकि नशे के जोर से जो निद्रा आती है वह स्वाभाविक निद्रा का फल नहीं देसकती है ॥

४–क्योंकि शारीरिक थकावट के वाद निद्रा खूव आया करती है ॥

५–सोकर उठने के वाद शीघ्र ही आंखों को धो देने से सर्दी गर्मी होकर आंखें दुखनी आजाती हैं ॥

६–चेपी रोग उसे कहते हैं जोकि रोगी के स्पर्श करनेवाले तथा रोगी के पास में रहनेवाले पुरुष के भी वायु के द्वारा उड़ कर लगजाता है, यह (चेपी) रोग वड़ा भयंकर होता है, इस लिये माता पिता को चाहिये कि–चेपी रोग से अपनी तथा अपने वालकों की सदा रक्षा करते रहें, यह भी जान लेना चाहिये कि–केवल आंखों का दुखनी आना ही चेपी रोग नहीं है किन्तु चेपीरोग वहुत से हैं, जैसे ओरी (शीतला का भेद), अछवड़ा (आकड़ा काकड़ा), शीतला (चेचक), गालपचोरिया (गालमें होने वाला रोगविशेष), खुलखुलिया, गलसुआ (गले में होने वाला एक रोग,) दाद, आंखों का दुखना, टाइफस ज्वर (ज्वर विशेष), कोलेरा (विपूचिका वा हैजा), मोतीझरा, पानी झरा (ये दोनों राजपूताने में प्रायः होते हैं) इत्यादि, इन रोगों में से जव कोई रोग कहीं प्रचलित हो तो वहां वालक को लेकर नहीं रहना चाहिये किन्तु जव वह रोग मिट जावे तव वहां वालक को ले जाना चाहिये तथा यदि कोई पुरुष इन रोगों में से किसी रोग से ग्रस्त हो तो उसके विलकुल आराम हो जाने के पीछे वालक को उस के पास जाने देना चाहिये, तात्पर्य यही है कि–चेपी रोगों से अपनी और अपने वालकों की वडी सावधानी के साथ रक्षा करनी चाहिये ॥

दुखती हों तो उस के पास बालक को नहीं जाने देना चाहिये, यदि बालक की आंख दुखनी आवे तो उस का शीघ्र ही यथायोग्य उपाय करना चाहिये, क्योंकि उस में प्रमाद (गफलत) करने से आंख को बहुत हानि पहुँचती है।

इस प्रकार से ये कुछ संक्षिप्त नियम बालरक्षा के विषय में दिखलाये गये हैं कि इन नियमों को जान-कर स्त्रियां अपने बालकों की नियमानुसार रक्षा करें, क्योंकि जबतक उक्त नियमों के अनुसार बालकों की रक्षा नहीं की जायगी तबतक वे नीरोग, बलिष्ठ, दृढ़ बन्धान वाले, पराक्रमी और शूर वीर कदापि नहीं हो सकेंगे और वे उक्त गुणों से युक्त न होने से न तो अपना कल्याण कर सकेंगे और न दूसरोंका कुछ उपकार कर सकेंगे, इस लिये माता पिता का सब से मुख्य यही कर्तव्य है कि-वे अपने बालकों की रक्षा सदा नियम पूर्वक ही करें, क्योंकि ऐसा करने से ही उन बालकों का, बालकों के माता पिताओं का, कुटुम्ब का और तमाम संसार का भी उपकार और कल्याण हो सकता है ॥

यह तृतीय अध्याय का बालरक्षण नामक-चौथा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

इति श्री जैनश्वेताम्बर-धर्मोपदेशक-यति प्राणाचार्य-विवेकलब्धि शिष्यशील-सौभाग्य निर्मितः, जैनसम्प्रदाय शिक्षायाः

तृतीयोऽध्यायः ॥

१-बालरक्षा के विस्तृत नियम वैद्यक आदि ग्रन्थों में देखने चाहियें ॥

२-'स्वयमसिद्धः कथं परार्थान् साधयितुं शक्नोति,। अर्थात् जो स्वयं (खुद) असिद्ध (सर्व साधनों से रहित अथवा असमर्थ) है, वह दूसरों के अर्थों को कैसे सिद्ध कर सकता है ॥

चतुर्थ अध्याय ॥

मङ्गलाचरण ॥

दोहा—श्री गुरु चरण[1] सरोज रज, निज मन मुकुर[2] सुधारि ॥
वपु[3] रक्षणके नियम अब, कहत सुनो चितधारि॥ १ ॥

प्रथम प्रकरण—वैद्यक शास्त्र की उपयोगिता ॥

शरीर की रचना और उस की क्रिया को ठीक २ नियम में रखने के लिये शरीर संरक्षण के नियमों और उपयोग में आने वाले पदार्थों के गुण और अवगुण को जान लेना अति आवश्यक है, इसीलिये वैद्यक विद्या में इस विभाग को प्रथम श्रेणीमें गिना गया है, क्योंकि-शरीर संरक्षण के नियमों के न जानने से तथा पदार्थों के गुण और अवगुण को विना जाने उन को उपयोग में लाने से अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होजाती है, इस के सिवाय उक्त विषय का जानना इसलिये भी आवश्यक है कि-अपने २ कारण से उत्पन्न हुए रोगों की दशा में उन की निवृत्ति के लिये यह अद्भुत साधन रूप है, क्योंकि-रोगदशा में पदार्थों का यथायोग्य उपयोग करना ओषधि के समान वरन उस से भी अधिक लाभकारक होता है, इस लिये प्रतिदिन व्यवहार में आनेवाले वायु, जल और भोजन आदि पदार्थों के गुण और अवगुणों का तथा व्यायाम और निद्रा आदि शरीर संरक्षण के नियमों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रत्येक मनुष्यको अवश्य ही उद्यम करना चाहिये ।

शरीरसंरक्षण के नियम-बहुधा दो भागोंमें विभक्त (बँटे हुए) हैं अर्थात् रोग को न आने देना तथा आये हुए रोग को हटा देना, इस प्रत्येक भागमें स्याद्वादमत के अनुसार उद्यम और कर्मगति का भी सञ्चार रहा हुआ है, जैसे देखो-सर्वदा नीरोगता ही रहे, रोग न आने पावे, इस विषय के साधन को जान कर उस की प्राप्तिके लिये उद्यम करना तथा उस को प्राप्त कर उसी के अनुसार वर्ताव करना, इस में उद्यम की प्रबलता है, इस प्रकार का वर्त्ताव करते हुए भी यदि रोग उपस्थित हो जावे तो उस में कर्म गतिकी प्रबलता समझनी चाहिये, इसी प्रकार से कारणवश रोग की उत्पत्ति होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये अनेक उपायों का करना उद्यमरूप है परन्तु उन उपायोंका सफल होना वा न होना कर्मगति पर निर्भर है ।

१-चरण कमलोंकी धूलि ॥ २-दर्पण ॥ ३-शरीर- ॥

इस विषय में यद्यपि अन्य आचार्यों में से बहुतों का मत यह है कि-उद्यम की अपेक्षा कर्मगति अर्थात् दैव प्रधान है-परन्तु इस के विरुद्ध चिकित्साशास्त्र और उस (चिकित्साशास्त्र) के निर्माता आचार्यों की तो यही सम्मति है कि-मनुष्यका उद्यम ही प्रधान है, यदि उद्यम को प्रधान न मानकर कर्मगति को प्रधान माना जावे तो चिकित्साशास्त्र अनावश्यक हो जायगा, अतएव शरीर संरक्षण विषयमें चिकित्साशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार उद्यम को प्रधान मान कर शरीर संरक्षण के नियमों पर ध्यान देना मनुष्यमात्र का परम कर्त्तव्य और प्रधान पुरुषार्थ है, अब समझने की केवल यह बात है कि-यह उद्यम भी पूर्व लिखे अनुसार दो ही भागों में विभक्त है-अर्थात् रोग को समीप में आने न देना और आये हुए को हटा देना, इन दोनोंमें से पूर्व भाग का वर्णन इस अध्याय में कुछ विस्तारपूर्वक तथा उत्तर भाग का वर्णन संक्षेप से किया जायगा ॥

स्वास्थ्य वा आरोग्यता[1] ॥

यद्यपि शरीर का नीरोग होना वा रहना पूर्व कृत कर्मों पर भी निर्भर है-अर्थात् जिस ने पूर्व जन्म में जीवदया का परिपालन किया है तथा भूखे प्यासे और दीन हीन प्राणीका जिसने सब प्रकार से पोषण किया है-वह प्राणी नीरोग शरीर वाला, दीर्घायु तथा उद्यम बल और बुद्धि आदि सर्व साधनोंसे युक्त होता है-तथापि चिकित्सा शास्त्र की सम्मति के अनुसार मनुष्य को केवल कर्मगति पर ही नहीं रहना चाहिये-किन्तु पूर्ण उद्योग कर शरीर की नीरोगता प्राप्त करनी चाहिये, क्योंकि-जो पूर्ण उद्योग कर नीरोगता को प्राप्त नहीं करता है संसार में उसका जीवन व्यर्थ ही है, देखो। जगत्में जो सात[2] सुख माने गये हैं उन में से मुख्य और सब से पहिला सुख नीरोगता ही है, क्योंकि यही (नीरोगता का सुख) अन्य शेष ६ सुखों का मूल कारण है, न केवल इतना ही किन्तु आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का भी मूल कारण है, जैसा कि-शास्त्रकारोंने कहा भी है कि—**"धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्"** इसी प्रकार लोकोक्ति भी है कि **"काया राखे धर्म"** अर्थात् धर्म तब ही रह सकता वा किया जा सकता है जब कि शरीर नीरोग हो, क्योंकि-शरीर की आरोग्यता के विना मनुष्य को सांसारिक सुखों के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते हैं, फिर भला उस को पारमार्थिक सुख क्योंकर प्राप्त हो

१-"आरोग्यता" यह शब्द यद्यपि संस्कृत भाषा के नियम से अशुद्ध है अर्थात् 'अरोगता, वा 'आरोग्य, शब्द ठीक है, परन्तु वर्त्तमान में इस 'आरोग्यता, शब्द का अधिक प्रचार हो रहा है, इसी लिये हमने भी इसी का प्रयोग किया है ॥

२-पहिलो सुक्ख निरोगी काया। दूजो सुख घर में हो माया ॥ तीजो सुख सुथान वासा। चौथो सुख 'ख'॥ पाँचवों सुख कुलवन्ती नारी । छट्ठो सुख सुत आज्ञाकारी ॥ सातमो सुख धर्म में मती। रहित अथवा पण्डित यती ॥ १ ॥

सकता है ! देखो ! आरोग्यता ही से मनुष्य का चित्त प्रसन्न रहता, बुद्धि तीव्र होती तथा मस्तक बलयुक्त बना रहता है कि-जिस से वह शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कार्यों को अच्छे प्रकार से कर सुखों को भोग अपने आत्मा का कल्याण कर सकता है, इस लिये ऐसे उत्तम पदार्थ को खो देना मानो मनुष्य जीवन के उद्देश्य का ही सत्यानाश करना है, क्योंकि-आरोग्यता से रहित पुरुष कदापि अपने जीवन की सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता है, जीवन की सफलता का प्राप्त करना तो दूर रहा किन्तु जब आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है तो मनुष्य को अपने जीवन के दिन काटना भी अत्यन्त कठिन हो जाता है, सत्य तो यह है कि-एक मनुष्य सर्व गुणों से युक्त तथा अनुकूल पुत्र, कलत्र और समृद्धि आदि से युक्त होने पर भी स्वास्थ्यरहित होनेसे जैसा दुःखित होता है दूसरा मनुष्य उक्त सर्व साधनों से रहित होने पर भी नीरोगता युक्त होने पर वैसा दुःखित नहीं होता है, यद्यपि यह बात सत्य है कि-आरोग्यता की कदर नीरोग मनुष्य नहीं कर सकता है किन्तु आरोग्यता की कदर को तो ठीक रीति से रोगी ही जानसकता है, परन्तु तथापि नीरोग मनुष्य को भी अपने कुटुम्ब में माता, पिता, भाई, बेटा, बेटी तथा बहिन आदिके बीमार पड़नेपर नीरोगता का सुख और अनारोग्यता का दुःख विदित हो सकता है, देखो ! कुटुम्ब में किसी के बीमार पड़ने पर नीरोग मनुष्य के भी हृदय में कैसी घोर चिन्ता उत्पन्न होती है, उसको इधर उधर वैद्य वा डाक्टरों के पास जाना पड़ता है, जीविका में हर्ज पड़ता है तथा दवा दारू में उपार्जित धन का नाश होता है, यदि विद्याहीन यमदूत के सदृश मूर्ख वैद्य मिल जावे तो कुटुम्बी के नाश के द्वारा तद्वियोग जन्य (उसके वियोग से उत्पन्न) असह्य दुःखमी आकर उपस्थित होता है, फिर देखिये । यदि घर के काम काज की सँभालने वाली माता अथवा स्त्री आदि बीमार पड़ जावे तो बाल बच्चों की सँभाल और रसोई आदि कामों में जो २ हानियां पहुँचती हैं वे किसी गृहस्थ से छिपी नहीं है, फिर देखो ! यदि दैवयोग से घर का कमाने वाला ही बीमार हो जावे तो कहिये उस घर की क्या दशा होती है, एवं यदि प्रतिदिन कमा कर घर का खर्च चलाने वाला पुरुष बीमार पड़ जावे तो उस घर की क्या दशा होती है, इसपर भी यदि दुर्दैव वश उस पुरुष को ऋण भी उधार न मिल सके तो कहिये बीमारी के समय उस घर की विपत्ति का क्या ठिकाना है, इस लिये प्रिय मित्रो ! अनुभवी जनों का यह कथन बिलकुल ही सत्य है कि—"राज महल के अन्दर रहने वाला राजा भी यदि रोगी हो तो उसको दुःखी और झोपड़ी में रहनेवाला एक गरीब किसान भी यदि नीरोग हो तो उसको सुखी समझना चाहिये" तात्पर्य यही है कि-आरोग्यता सब सुखों का और अनारोग्यता सब दुःखों का परम आश्रय है, सत्य तो यह है कि-रोगावस्था में मनुष्य को जितनी तकलीफ उठानी पड़तीहै उसे उस का हृदय ही जानता है, इस पर भी इस रोगावस्था में एक अतिदारुण

विपत्ति का और भी सामना करना पड़ताहै–जिस का वर्णन करने में हृदय अत्यंत कम्पायमान होता है तथा वह विपत्ति इस जमाने में और भी बढ़ रही है, वह यह है कि–इस वर्तमान समय में बहुत से अपठित मूर्ख वैद्य भी चिकित्सा का कार्य कर अपनी आजीविका चला रहे हैं अर्थात् वैद्यक विद्या भी एक दूकानदारी का रुजगार बन गई है, अब कहिये जब रोग के निवर्तक वैद्यों की यह दशा है तो रोगी को विश्राम कैसे प्राप्त होसकता है ! शास्त्रों में लिखा है कि-वैद्य को परम दयालु तथा दीनोपकारक होना चाहिये, परन्तु वर्तमान में देखिये कि-क्या वैद्य, क्या डाक्टर प्रायः दीन, हीन, महा दुःखी और परम गरीबों से भी रुपये के विना बात नहीं करते हैं अर्थात् जो हाथ से हाथ मिलाताहै उसी की दाद फर्याद सुनते और उसी से बात करते हैं, वैद्य वा डाक्टरों का तो दीनों के साथ यह वर्त्ताव होताहै, अब तनिक द्रव्य पात्रों की तरफ दृष्टि डालिये कि-वे इस विषय में दीनों के हित के लिये क्या कर रहे हैं, द्रव्य पात्र लोग तो अपनी २ धुन में मस्त हैं, काफी द्रव्य होने के कारण उन लोगों को तो वीमारी के समय में वैद्य वा डाक्टरों की उपलब्धि सहज में हो सकने के कारण विशेष दुःख नहीं होता है, अपने को दुःख न होने के कारण प्रमाद में पड़े हुए उन लोगों की दृष्टि भला गरीबों की तरफ कैसे जा सकती है ? वे कब अपने द्रव्य का व्यय करके यह प्रबंध कर सकते हैं कि-दीन जनों के लिये उत्तमोत्तम औषधालय आदि बनवा कर उन का उद्धार करें, यद्यपि गरीब जनों के इस महा दुःख को विचार कर ही श्रीमती न्यायपरायणा गवर्नमेंट ने सर्वत्र औषधालय (शिफाखाने) बनवाये हैं, परन्तु तथापि उन में गरीबों की यथोचित खबर नहीं ली जाती है, इसलिये डाक्टर महोदयों का यह परम धर्म है कि–वे अपने हृदय में दया रख कर गरीबों का इलाज द्रव्यपात्रों के समान ही करें, एवं हवा पानी और वनस्पति, ये तीनों कुदरती दवायें पृथ्वी पर स्वभाव से ही उपस्थित हैं तथा परम कृपालु परमेश्वर श्री ऋषभदेवने इन के शुभ योग और अशुभ योग के ज्ञान का भी अपने श्रीमुख से आत्रेय पुत्र आदि प्रजा को उपदेश देकर आरोग्यता सिखलाई है, इस विषय को विचार कर उक्त तीनों वस्तुओं का सुखदायी योग जानना और दूसरों को बतलाना वैद्यों का परम धर्म है, क्योंकि ऐसा करने में कुछ भी खर्च नहीं लगता हैं, किन्तु जिस दवा के बनाने में खर्च भी लगता हो वह भी अपनी शक्ति के अनुसार बनाकर दीनोंको विना मूल्य देना चाहिये तथा जो स्वयं बाजार से औषधि को मोल लाकर बना सकते हैं उनको नुसखा लिखकर देना चाहिये परन्तु नुसखा लिखने में गलती नहीं करनी चाहिये, इसीप्रकार द्रव्यपात्रों को भी चाहिये कि-योग्य और विद्वान् वैद्यों को द्रव्य की सहायता देकर उन से गरीबों को औषधि दिलावें–देखो ! श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट ने भी केवल दो ही दानों को पसन्द किया हैं, जिन को हम सब लोग नेत्रों के द्वारा प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं अर्थात् पहिला दान विद्या दान हैं जो कि–पाठ-

शालाओं के द्वारा हो रहा हैं तथा दूसरा ओषधिदान हैं जो कि-अस्पताल और शिफाखानोंके द्वारा किया जा रहा हैं ।

पहिले कह चुके हैं कि-शरीर संरक्षण के नियम बहुधा दो भागोंमें विभक्त हैं अर्थात् रोग को अपने समीप में न आने देना तथा आये हुए रोगको हटा देना, इन दोनो में से वर्त्तमान समय में यदि चारों तरफ दृष्टि फैला कर देखा जावे तो लोगों का विशेष समुदाय ऐसा देखा जाता है कि-जिस का ध्यान पिछले भागमें ही हैं, किन्तु पूर्व भाग की तरफ विलकुल ध्यान नहीं हैं अर्थात् रोग के आने के पीछे उस की निवृत्ति के लिये इधर उधर दौड़धूप करना आदि उपाय करते हैं, परन्तु किस प्रकार का वर्ताव करने से रोग समीप में नहीं आ सकता है अर्थात् आरोग्यता वनी रह सकती है, इस वात को जनसमूह नहीं सोचताहै और इस तरफ यदि लोगों की दृष्टि है भी तो बहुत ही थोड़े लोगों की है और वे प्रायः आरोग्यता वनी रहने के नियमों को भी नहीं समझते हैं, वस यही अज्ञानता अनेक व्याधिजन्य दुःखों की जड़है, इसी अज्ञानता के कारण मनुष्य प्रायः अपने और दूसरे सवों के शरीर की खरावी किया करते हैं, ऐसे मनुष्यों को पशुओं से भी गया वीता समझना चाहिये, इसलिये प्रत्येक मनुष्य का यह सव से प्रथम कर्तव्य है कि-वह अपनी आरोग्यता के समस्त साधनों (जितने कि मनुष्य के आधीन हैं) के पालन का यत्न अवश्य करे अर्थात् आनेवाले रोग के मार्ग को प्रथम से ही वन्द कर दे, देखो ! यह निश्चय की हुई वात है कि-आरोग्यता के नियमों का जानने वाला मनुष्य

१-आरोग्यता के सव नियम मनुष्य के आधीन नहीं हैं, क्योंकि-वहुत से नियम तो दैवाधीन अर्थात् कर्मस्वभाव वश हैं; वहुत से राज्याधीन हैं, वहुत से लोकसमुदायाधीन हैं और वहुत से नियम प्रत्येक मनुष्य के आधीन हैं, जैसे-देखो । एकदम ऋतुओं के परिवर्तन का होना, हैजा, मरी, विस्फोटक, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अति शीत और अति उष्णता का होना आदि दैवाधीन (समुदायी कर्म के आधीन) कार्यों में मनुष्यका कुछ भी उपाय नहीं चल सकता है, नगर की यथायोग्य स्वच्छता आदि के न होने से दुर्गन्धि आदि के द्वारा रोगोत्पत्ति का होना आदि कई एक कार्य राज्याधीन हैं, लोकप्रथा के अनुसार वालविवाह (कम अवस्था में विवाह) और जीमणवार आदि कुचालों से रोगोत्पत्ति होना आदि कार्य जाति वा समाज के आधीन हैं, क्योंकि इन कार्यों में भी एक मनुष्य का कुछ भी उपाय नहीं चल सकता है और प्रत्येक मनुष्य खान पान आदि की अज्ञानता से स्वयं अपने शरीर में रोग उत्पन्न कर लेवे अथवा योग्य वर्ताव कर रोगोंसे वचा रहे यह वात प्रत्येक मनुष्यके आधीन है, हां यह वात अवश्य है कि-यदि प्रत्येक मनुष्य को आरोग्यता के नियमों का यथोचित ज्ञान हो तव तो सामाजिक तथाजातीय सुधार भी हो सकता है तथा सामाजिक सुधार होने से नगर की स्वच्छता होना आदि कार्यों में भी सुधार हो सकता है, इस प्रकार से प्रत्येक मनुष्य के आधीन जो कार्य नहीं हैं अर्थात् राज्याधीन वा जात्याधीन हैं उनकाभी अधिकांशमें सुधार हो सकता है, हां केवल दैवाधीन अंशमें मनुष्य कुछ भी उपाय नहीं कर सकता है, क्योंकि-निकाचित कर्म वन्धन अति प्रवल है, इस का उदाहरण प्रत्यक्ष ही देख लो कि-प्लेग राक्षसी कितना कष्ट पहुँचा रही है और उसकी निवृत्ति के लिये किये हुए सव प्रयत्न व्यर्थ जा रहे हैं ॥

आरोग्यता के नियमों के अनुसार वर्ताव कर न केवल स्वयं उसका फल पाता है किन्तु अपने कुटुम्ब और समझदार पड़ोसियों को भी आरोग्यता रूप फल दे सकता है।

शरीर संरक्षण का ज्ञान और उसके नियमों का पालन करना आदि वातों की शिक्षा किसी बड़े स्कूल वा कॉलेज में ही प्राप्त हो सकती है यह बात नहीं है, किन्तु मनुष्यके लिये घर और कुटुम्ब भी सामान्य ज्ञान की शिक्षा और आनुभविकी (अनुभव से उत्पन्न होने वाली) विद्या सिखलाने के लिये एक पाठशाला ही है, क्योंकि-अन्य पाठशाला और कॉलेजों में आवश्यक शिक्षा के प्राप्त करने के पश्चात् भी घर की पाठ शाला का आवश्यक अभ्यास करना, समुचित नियमों का सीखना और उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करना आदि आवश्यक होता है, कुटुम्ब के माता पिता आदि वृद्ध जन घर की पाठशाला के अध्यापक (माष्टर) हैं, क्योंकि-कुलपरम्परा से आया हुआ दया धर्म से युक्त खान पान और विचार पूर्वक बांधा हुआ सदाचार आदि कई आवश्यक बातें मनुष्यों को उक्त अध्यापकों से ही प्राप्त होती हैं अर्थात् माता पिता आदि वृद्ध जन जैसा वर्ताव करते हैं उनके बालकभी प्रायः वैसा ही वर्त्ताव सीखते और उसी के अनुसार वर्ताव करते हैं, हां इस में भी प्रायः ऐसा होता है कि-माता पिता के सदाचार आदि उत्तम गुणोंको पुण्यवान् सुपुत्र ही सीखता है, क्योंकि-सात व्यसनों में से कई व्यसन और दुराचार आदि अवगुणोंको तो दूसरों की देखा देखी विना कहे ही बहुतसे बुद्धिहीन सीख लेतेहैं, इस का कारण केवल यही है कि-मिथ्या मोहनी कर्म के संग इस जीवात्मा का अनादि कालका परिचय है और उसी के कारण भविष्यत् में भी (आगामी को भी) उस को अनेक कष्ट और आपत्तियां भोगनी हैं और फिर भी दुर्गति में तथा संसार में उस को भ्रमण करना है, इस लिये वह कर्मोंकी आनुपूर्वी उस प्राणी को उस प्रकार की बुद्धि के द्वारा उसी तरफ को खींचती है, इसी लिये माता पिता और गुरु आदि की उत्तम सदाचार की शिक्षा को वह सिखलाने पर भी नहीं सीखता है किन्तु बुरे आचरण में शीघ्र ही चित्त लगाता है।

यद्यपि ऊपर लिखे अनुसार कर्मवश ऐसा होताहै तथापि माता पिताकी चतुराई और उन के सदाचार का कुछ न कुछ प्रभाव तो सन्तान पर पड़ता ही है, हां यह अवश्य होता है कि-उस प्रभाव में कर्माधीन तारतम्य (न्यूनाधिकता) रहताहै, इस के विरुद्ध जिस घर में माता पिता आदि कुटुम्ब के वृद्ध जन स्नान और दन्त धावन नहीं करते, कपड़े मैले पहनते, पानी विना छाने पीते और नशा पीते हैं, इत्यादि अनेक कुत्सित

१-क्योंकि-मूर्ख पड़ोसी तो गंगाजल में रहने वाली मछलीके समान समीपवर्ती योग्य पुरुष के गुण को ही नहीं समझ सकता है ॥

२-सात व्यसनोंका वर्णन आगे किया जायगा ॥

रीतियों में प्रवृत्त रहते हैं तो उन के बालक भी वैसा ही व्यवहार सीख लेते और वैसा ही वर्त्ताव करने लगते हैं, हां यह दूसरी बात है कि–माता पिता आदि का ऐसा अनुपयुक्त व्यवहार होने पर भी कोई २ पुण्यवान् सन्तान सब कुटुम्ब वालों से छँट कर सत्सङ्गति के द्वारा उत्तम क्रिया और सब उपयोगी नियमों को सीख लेते हैं और सद्व्यवहार में ही प्रवृत्त रहते हैं तथा द्रव्यवान् विनयवान् और दानी निकल आते हैं, यह केवल स्याद्वाद है, किन्तु लोकव्यवहार के अनुसार तो मनुष्य को सर्वदा श्रेष्ठ कार्य और सद्गुणों के लिये उद्यम करना और उन को सीख कर उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करना ही परम उचित है।

बहुत से लोग ऐसे भी देखे जाते हैं कि–वे पथ्यापथ्य को न जानने के कारण बीमार हो जाते हैं, क्योंकि–यह तो निश्चय ही है कि–जान बूझ कर बीमार शायद कोई ही होता है किन्तु अज्ञान से ही लोग रोगी बनते हैं, इस में कारण यही है कि-ज्ञान से चलने में जीव बलवान् है और अज्ञान से चलने में कर्म बलवान् है, इस लिये मनुष्यों को ज्ञान से ही सिद्धि प्राप्त होती है, देखो। सदाचरणरूप सुखदायी योग को पथ्य और असदाचरणरूप दुःखदायी योग को कुपथ्य कहते हैं, इन दोनों योगों को अच्छे प्रकार से समझ लेना यह तो ज्ञान है और उसी के अनुकूल चलना यह क्रिया है, बस इन्हीं दोनों के योग से अर्थात् ज्ञान और क्रिया के योग से मोक्ष (दुःखकी निवृत्ति) होता है, यह विषय संसारपक्ष और मुक्तिपक्ष दोनों में समान ही समझना चाहिये, देखो। जिस पुरुष ने अपने आत्मा का भला चाहा है उस ने मानो सब जगत् का भला चाहा, इसी प्रकार जिस ने अपने शरीर के संरक्षण का नियम पाला मानो उस ने दूसरे को भी उसी नियम का पालन कराया, क्योंकि पहिले लिख चुके हैं कि–माता पिता आदि वृद्धजनों के मार्ग पर ही उन की सन्तति प्रायः चलती है, इस लिये प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है कि–अपनी और अपनी सन्तति की शरीरसंरक्षा के नियमों को वैद्यक शास्त्र आदि के द्वारा भली भाँति जान कर उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव कर आरोग्य लाभके द्वारा मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों फलों को प्राप्त करे॥

यह चतुर्थ अध्याय का-वैद्यक शास्त्र की उपयोगिता नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ॥

द्वितीय प्रकरण—वायुवर्णन॥

इस संसार में हवा, पानी और खुराक, येही तीन पदार्थ जीवन के मुख्य आधार रूप हैं, परन्तु इन में से भी पिछले २ की अपेक्षा पूर्व २ को बलवान् समझना चाहिये, क्योंकि देखो। खुराक के खाये विना मनुष्य कई दिन तक जीवित रह सकता है; एवं पानी के पिये विना भी कई घण्टे तक जीवित रह सकता है, परन्तु हवा के विना थोड़ी देर तक

भी जीवित रहना अति कठिन है, अति कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है, इस से सिद्ध है कि–उक्त तीनों पदार्थों में से हवा सब से अधिक उपयोगी पदार्थ है, उस से दूसरे दर्जे पर पानी है और तीसरे दर्जे पर खुराक है, परन्तु इस विषय में यह भी स्मरण रहना चाहिये कि–इन तीनों में से यदि एक पदार्थ उपस्थित न हो तो शेष दो पदार्थों में से कोई भी उस पदार्थ का काम नहीं दे सकता है अर्थात् केवल हवा से वा केवल पानी से अथवा केवल खुराक से अथवा इन तीनों में से किन्हीं भी दो पदार्थों से जीवन कायम नहीं रह सकता है, तात्पर्य यह है कि–इन तीनों संयुक्तों से ही जीवन स्थिर रह सकता है तथा यह भी स्मरण रहना चाहिये कि–समय आने पर मृत्यु के साधन भी इन्हीं तीनों से प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि देखो ! जो पदार्थ अपने स्वाभाविक रूप में रह कर शरीर के लिये उपयोगी (लाभदायक) होता है वही पदार्थ विकृत होने पर अथवा आवश्यकता के परिमाण से न्यूनाधिक होने पर अथवा प्रकृति के अनुकूल न होने पर शरीर के लिये अनुपयोगी और हानिकारक हो जाता है, इत्यादि अनेक बातों का ज्ञान शरीर संरक्षण में ही अन्तर्गत है, इस लिये अब क्रम से इन का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

उक्त तीनों पदार्थों में से सब से प्रथम तथा परम आवश्यक पदार्थ हवा है, यह पहिले ही लिख चुके हैं, अब इस के विषय में आवश्यक बातों का वर्णन करते हैं:—

जगत् में सब जीव आस पास की हवा लेते हैं, वह (हवा) जब बाहर निकलकर पुनः प्रवेश नहीं करती है–बस उसी को मृत्यु, मौत, देहान्त, प्राणान्त, अन्तकाल और अन्त क्रिया आदि अनेक नामों से पुकारते हैं ।

पहिले लिख चुके हैं कि–जीवन के आधार रूप तीनों पदार्थों में से जीवन के रक्षण का मुख्य आधार हवा है, वह हवा यद्यपि अपनी दृष्टि से नहीं दीख पड़ती है तथा जब वह स्थिर हो जाती है तो उस का मुख्य गुण स्पर्श भी नहीं मालूम होता है परन्तु जब वह वेग से चलती है और वृक्षकम्पन आदि जो २ कार्य करती है वह सब कार्य नेत्रों के द्वारा भी स्पष्ट देखा जाता है–किन्तु उस का ज्ञान मुख्यतया स्पर्श के द्वारा ही होता है ।

देखो ! यह समस्त जगत् पवन महासागर से आच्छादित (ढँका हुआ) है और उस पवन महासागर को डाक्टर तथा अर्वाचीन विद्वान् कम से कम सौ मील गम्भीर (गहिरा) मानते हैं, परन्तु प्राचीन आचार्य तो उस को चौदह राजलोक के आस पास घनोदधि, घनवात और तनुवात रूपमें मानते हैं अर्थात् उन का सिद्धान्त यह है कि–हवा और पानी के ही आधार पर ये चौदह राजलोक स्थित हैं और इस सिद्धान्त का यह स्पष्ट अनुभव भी होता है कि–ज्यों २ ऊपर को चढ़ते जावें त्यों २ हवा अधिक सूक्ष्म मालूम देती है, इस के सिवाय पदार्थविज्ञान के द्वारा यह तो सिद्ध हो ही चुका है कि–हवा के स्थूल थर में आदमी टिक सकता है परन्तु सूक्ष्म (पतले) थर में नहीं टिक सकता है,

इसी लिये बहुत ऊपर को चढ़ने में श्वास आने लगता है, नाक तथा मुख से रुधिर निकलना शुरू हो जाता है और मरण भी हो जाता है, यद्यपि पक्षी पतली हवा में उड़ते हैं परन्तु वे भी अधिक ऊँचाई पर नहीं जा सकते हैं, फ्रेंचदेश के गेल्युसाक और बीयोट नामक प्रसिद्ध विद्वान् सन् १८०४ ईस्वी में करीब चार मील ऊँचे चढ़े थे, उस स्थान में इतना शीत था कि-शीसी के भीतर की स्याही उसी में ठँस कर जम गई तथा वहां की हवा भी इतनी पतली थी कि-उन्हों ने वहां पर एक पक्षी को उड़ाया तो वह उड़ नहीं सका, किन्तु पत्थर की तरह नीचे गिर पड़ा, इसी प्रकार काफी हवा न होने के कारण मनुष्यों को भी पतली हवावाले ऊँचे प्रदेश में रहने से श्वास चलने लगता है और शरीर की नसें फूल कर फटने लगती हैं तथा नाक और मुँह से रक्त बहने लगता है, हिमालय और आल्प्स पर्वतों पर चढ़नेवाले लोगों को यह अनुभव प्रायः हो चुका है और होता जाता है ॥

स्वच्छ हवा के तत्व ॥

सामान्य लोग मन में कदाचित् यह समझते होंगे कि-हवा एक ही पदार्थ की बनी हुई है परन्तु विद्वानों ने इस बात का अच्छे प्रकार से निश्चय कर लिया है कि-हवा में मुख्य चार पदार्थ हैं और वे बहुत ही चतुराई और आश्चर्य के साथ एकत्रित होकर मिले हुए हैं, वे चारों पदार्थ ये हैं—प्राणवायु (ऑक्सिजन), शुद्धवायु (नाइट्रोजन), मिश्रित वायु (कार्बोनिक एसिड ग्यास) और पानी के सूक्ष्म परमाणु, देखो ! अपने आस पास में तीन प्रकार के पदार्थ सर्वदा स्थित होते हैं-अर्थात् कई तो पत्थर और काष्ठ के समान कठिन हैं, कई पानी और दूधके समान पतले अर्थात् प्रवाही हैं, बाकी कई एक हवा के समान ही वायुरूप में दीखते हैं जो कि (वायु) जल के सूक्ष्म परमाणुओं से बना हुआ है, हवा में मिश्रित जो एक प्राणवायु (ऑक्सिजन) है वही मुख्यतया प्राणों का आधार रूप है, यदि यह प्राणवायु हवा में मिश्रित न होता तो दीपक भी कदापि जलता हुआ नहीं रह सकता, फिर यदि सब हवा प्राणवायु रूप ही होती तो भी जगत् में जीव किसी प्रकार से भी न तो जीते रह सकते और न चल फिर ही सकते किन्तु शीघ्र ही मर जाते, क्योंकि-जीवों को जितनी कठिन हवा की आवश्यकता है उस से अधिक वह हवा कठिन हो जाती, इसी लिये प्राणवायु के साथ दूसरी हवा कुदरती मिली हुई है और वह हवा प्राण की आधारभूत नहीं है तथा उस हवामें जलता हुआ दीपक रखने से बुझ जाता है, इस लिये मिश्रित वायु ही से सब कार्य चलता है अर्थात् श्वास लेने में

१-यह चावलों के कोयलों के साथ प्राणवायु के मिलने से बनता है ॥

२-इस को भिन्न करने से इस का माप भी हो सकता है ॥

तथा दीपक आदि के जलाने के समय अपने २ परिमाण के अनुकूल ये दोनों हवायें मिली हुई काम देती हैं, जैसे मनुष्य के हाथ में एक अंगूठा और चार अंगुलियां हैं इसी प्रकार से यह समझना चाहिये कि-हवा में एक भाग प्राण वायु का है और चार भाग शुद्ध वायु (नाइट्रोज़न) है तथा हवा इन दोनों से मिली हुई है, हवा के दूसरे दो भाग भी इन्हीं में मिले हुए हैं और वे दोनों भाग यद्यपि बहुत ही थोड़े हैं तथापि दोनों अत्यन्त उपयोगी हैं, कोयला क्या चीज है यह तो सब ही जानते हैं कि–जंगल जल कर पृथ्वी में प्रविष्ट (धँस) हो जाता है बस उसी के काले पत्थर के समान पृथ्वी में से जो पदार्थ निकलते हैं उन्हीं को कोयला कहते हैं और वे रेल के एञ्जिन आदि कलों में जलाये जाते हैं, चांवलों में से भी एक प्रकार के कोयले हो सकते हैं और ये (चांवलोंके कोयले) कार्बन कहलाते हैं, प्राणवायु और कोयलों के मिलने से एक प्रकार की हवा बनती है-उस को अंग्रेजी में कार्बोनिक एसिड ग्यॅस कहते हैं, यही हवा में तीसरी वस्तु है तथा यह बहुत भारी (वज़नदार) होती है और यह कभी २ गहरे तथा खाली कुए के तले इकट्ठी होकर रहा करती है, खत्ते में और बहुत दिनों के बन्द मकान में भी रहा करती है, इस हवा में जलती हुई बत्ती रखने से बुझजाती है तथा जो मनुष्य उस हवा में श्वास लेता है वह एकदम मर जाता है, परन्तु यह हवा भी वनस्पतिका पोषण करती है अर्थात् इस हवा के बिना वनस्पति न तो उग सकती है और न कायम रह सकती है, दिन को उस का भाग वृक्ष की जड़ और वनस्पति चूस लेती है, यह भी जान लेना आवश्यक है कि-इस हवा के ढाई हजार भागों में केवल एक भाग इस जहरीली हवा का रहता है, इसी लिये (इतना थोड़ा सा भाग होने हीसे) वह हवा प्राणी को कुछ बाधा नहीं पहुँचा सकती है, परन्तु हवा में पूर्व कहे हुए परिमाण की अपेक्षा यदि उस (ज़हरीली) हवा का थोड़ा सा भी भाग अधिक होजावे तो मनुष्य बीमार हो जाते हैं।

पहिले कह चुके हैं कि–हवा में चौथा भाग पानी के परमाणुओं का है, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि-यदि थाली में थोड़ा सा पानी रख दिया जावे तो वह धीरे २ उड़ जाता है, इस विषयमें अर्वाचीन विद्वानों तथा डाक्टरों का यह कथन है कि-सूर्य की गर्मी सदा पानी को परमाणुरूपसे खींचा करती है, परन्तु सर्वज्ञ के कहे हुए सूत्रों में यह लिखा है कि-जल वायुके योगसे सूक्ष्म होकर परमाणुरूप से आकाश में मिल जाता है तथा वह पीछे सदैव ओस हो हो कर झरता है, यद्यपि ओस आठों ही पहर झरा करती है परन्तु दो घड़ी पिछला दिन बाकी रहने से लेकर दो घड़ी दिन चढ़नेतक अधिक मालूम देती

१–बहुत दिनों के बंद मकान में घुसने से बहुत से मनुष्य आदि प्राणी मर चुके हैं, इस का कारण केवल ज़हरीली हवा ही है, परन्तु बहुत से भोले लोग पदार्थ विद्या के न जानने से बंद मकान में भूत प्रेत आदि का निवास तथा उसी के द्वारा बाधा पहुँचना मान लेते हैं, यह केवल उनकी अज्ञानता है ॥

है, क्योंकि दो घड़ी दिन चढ़ने के वाद वह सूर्य की किरणों की उष्मा के द्वारा सूख जाती है, वे ही कण सूक्ष्म परमाणुओंके स्थूल पुद्गल बँधकर अर्थात् वादल वन कर अथवा धुँअर होकर वरसते हैं, यदि हवा में पानी के परमाणु न होते तो सूर्य के तापकी गर्मी से प्राणियों के शरीर और वृक्ष वनस्पति आदि सब पदार्थ जल जाते और मनुष्य मर जाते, केवल यही कारण है कि-जहां जलकी नदी दरियाव और वनस्पति वहुत हैं वहां वृष्टि भी प्रायः अधिक होती है तथा रेतीके देश में कम होती है।

यद्यपि यह दूसरी वात है कि-प्राणियों के पुण्य वा पाप की न्यूनाधिकता से कर्म आदि पांच समवायों के संयोगसे कभी २ रेतीली ज़मीन में भी बहुत वृष्टि होती है और जल तथा वृक्ष वनस्पति आदि से परिपूर्ण स्थान में कम होती वा नहीं भी होती है, परन्तु यह केवल स्याद्वाद मात्र है, किन्तु इस का नियम तो वही है जैसा कि-ऊपर लिख चुके हैं, यद्यपि हवा का वर्णन वहुत कुछ विस्तृत है-परन्तु ग्रन्थविस्तार भयसे उस सब का लिखना अनावश्यक समझते हैं, इस के विषय में केवल इतना जान लेना चाहिये कि-योग्य परिमाण में ये चारों ही पदार्थ हवामें मिले हों तो उस हवा को स्वच्छ समझना चाहिये और उसी स्वच्छ हवासे आरोग्यता रह सकती है ॥

हवाको विगाड़नेवाले कारण ॥

स्वच्छ हवा किस रीति से बिगड़ जाती है-इस वात का जानना बहुत ही आवश्यक है, यह सब ही जानते हैं कि-प्राणों की स्थिति के लिये हवा की अत्यन्त आवश्यकता है परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि-प्राणों की स्थिति के लिये केवल हवा की ही आवश्यकता नहीं है किन्तु स्वच्छ हवाकी आवश्यकता है, क्योंकि-बिगड़ी हुई हवा विष से भी अधिक हानिकारक होती है, देखो ! संसार में जितने विष हैं उन सब से भी अधिक हानिकारक विगड़ी हुई हवा है, क्योंकि इस (बिगड़ी हुई) हवा से सहस्रों लक्षों मनुष्य एकदम मर जाते हैं, देखो ! कुछ वर्ष हुए तव कलकत्ते के कारागृह की एक छोटी कोठरी में एक रात के लिये १४६ आदमियों को वंद किया गया था उस कोठरी में सिर्फ दो छोटी २ खिड़की थीं, जब सवेरा हुआ और कोठरी का दर्वाज़ा खोला गया तो सिर्फ २३ मनुष्य[1] जीते निकले, वाकी के सब मरे हुए थे, उन को किसने मारा? केवल खराव हवाने ही उन को मारा, क्योंकि हवा के कम आवागमन वाली वह छोटी सी कोठरी थी, उस में वहुत से मनुष्यों को भरदिया गया था, इस लिये उन के श्वास लेने के द्वारा उस कोठरी की

१-इस पर यदि कोई मनुष्य यह शंका करे कि-सिर्फ २३ मनुष्य भी क्यों जीते निकले; तो इस का उत्तर यह है कि-१४६ आदमियों के होने से श्वास लेनेके द्वारा उस कोठरीकी हवा विगड़ गई थी, जब उन में से १२३ मर गये, सिर्फ २३ आदमी वाकी रह गये, तव २३ के वास्ते वह स्थान श्वास लेने के लिये काफी रह गया, इसलिये वे २३ आदमी वच गये ॥

हवा के विगड़ जाने से उन का प्राणान्त होगया, इसी प्रकार से अस्वच्छ हवा के द्वारा अनेक स्थानों में अनेक दुर्घटनायें हो चुकी है, इस के अतिरिक्त हवा के विकृत होने से अर्थात् स्वच्छ और ताजी हवा के न मिलने से वहुत से मनुष्य यावज्जीवन निर्वल और वीमार रहते हैं, इस लिये मनुष्यमात्र को उचित है कि-हवा के विगाड़नेवाले कारणों को जान कर उन से वचाव रख कर सदा स्वच्छ हवा का ही सेवन करे जिस से आरोग्यता में अन्तर न पड़ने पावे. हवा को विगाड़ने वाले मुख्य कारण ये हैं:—

१-श्वास के मार्ग से निकलने वाली अशुद्ध हवा स्वच्छ हवा को विगाड़ती है, देखो ! हम सव लोग सदा श्वास लेते हैं अर्थात् नासिका के द्वारा स्वच्छ वायु को खींच कर भीतर ले जाते और भीतर की विकृत वायु को वाहर निकालते हैं, उसी निकली हुई विकृत वायु के संयोग से वाहर की स्वच्छ हवा विगड़ जाती है और वही विगड़ी हुई हवा जब श्वास के द्वारा भीतर जाती है तव हानिकारक होती है अर्थात् आरोग्यता को नष्ट करती है, यद्यपि मनुष्य अपनी आरोग्यता को स्थिर रखने के लिये प्रतिदिन शरीर की सफाई आदि करते हैं-अर्थात् रोज़ नहाते हैं और मुख तथा हाथ पैर आदि अंगों को खूव मल मल कर धोते हैं, परन्तु शरीर के भीतर की मलीनता का कुछ भी विचार नहीं करते हैं, यह अत्यन्त शोक का विपय है, देखो ! श्वासोच्छ्वास[1] के द्वारा जो हवा हम लोग अपने भीतर ले जाते हैं वह हवा शरीर के भीतरी भाग को साफ करके मलीनता को वाहर ले जाती है अर्थात् श्वास के मार्ग से वाहर निकली हुई हवा अपने साथ तीन वस्तुओं को वाहर ले जाती है, वे तीनों वस्तुयें ये हैं—१-कार्वोनिक एसिड ग्यॅस, २-हवामें मिला हुआ पानी और तीसरा दुर्गन्धयुक्त मैल, इन में से जो पहिली वस्तु (कार्वोनिक एसिड ग्यॅस) है वह स्वच्छ हवा में वहुत ही थोड़े परिमाण में होती है, परन्तु जिस हवा को हम अपने श्वास के मार्ग से मुँह में से वाहर निकालते हैं उस में वह ज़हरीली हवा सौगुणा विशेष परिमाण में होती है परन्तु वह सूक्ष्म होने से दीखती नहीं है, किन्तु जैसे-अग्नि में से धुँआ निकलता जाता है उसी प्रकार से हम सव भी उस को अपने में से वाहर निकालते जाते हैं तथा जैसे-एक सँकड़ी कोठरी में जलता हुआ चूल्हा रख दिया जावे तो वह कोठरी शीघ्र ही धुँए से व्याप्त हो जायगी और उस में स्वच्छ हवा का प्रवेश न हो सकेगा, इसी प्रकार यदि कोई किसी सँकड़ी कोठरी के भीतर सोवे तो उस के मुँह में से निकली हुई अस्वच्छ

१-इसी लिये योगविद्या के तथा स्वरोदय ज्ञान के वेत्ता पुरुप इसी श्वास के द्वारा कोई २ नेती, धोती और वस्ति आदि क्रियाओं को करते हैं, किन्तु जिन को पूरा ज्ञान नहीं हुआ है-वे कभी २ इस क्रिया से हानि भी उठाते हैं, परन्तु जिन को पूरा ज्ञान होगया है वे तो श्वासके द्वारा ही सव प्रकार के रोगों को भी मिटा देते हैं ॥

हवा के संयोग से उस के आसपास की सब हवा भी अस्वच्छ हो जायगी और उस कोठरी में यदि स्वच्छ और ताज़ी हवाके आने जाने का खुलासा मार्ग न होगा तो उस के मुँह में से निकली हुई वही ज़हरीली हवा फिर भी उसी के श्वास के मार्ग से शरीर में प्रविष्ट होगी और ऐसा होने से शीघ्रही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा, अथवा उसके शरीर को अन्य किसी प्रकार की बहुत बड़ी हानि पहुँचेगी, परन्तु यदि मकान बड़ा हो तथा उस में खिड़कियां और बड़ा द्वार आदि हवा के आने जाने का मार्ग ठीक हो तो उस में सोने से मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुँचती है, क्योंकि उन खिड़कियों और बड़े दर्वाज़े आदि से अस्वच्छ हवा वाहर निकल जाती और स्वच्छ हवा भीतर आ जाती है, इसीलिये वास्तु शास्त्रज्ञ (गृह विद्या के जानने वाले) जन सोने के मकानों में हवा के ठीक रीति से आने जाने के लिये खिड़की आदि रखते हैं।

श्वास के मार्ग से वाहर निकलती हुई हवा का दूसरा पदार्थ आर्द्रता (गीलापन वा पानी) है, इस हवा में पानी का भाग है या नहीं, इस का निश्चय करने के लिये स्लेट आदि पर अथवा राजस चाकू पर यदि श्वास छोड़ा जावे तो वह (स्लेट आदि) आर्द्रता से युक्त हो जावेगी, इस से सिद्ध है कि–श्वास की हवा में पानी अवश्य है।

तीसरा पदार्थ उस हवा में दुर्गन्ध युक्त मैल है अर्थात्–श्वास का जो पानी स्वच्छ नहीं होता है वह वर्चनों के धोवन के समान मैला और गन्दा होताहै उसी में सड़े हुए कई पदार्थ मिले रहते हैं, यदि उस को शरीर पर रहने दिया जावे तो वह रोगको उत्पन्न करता है अर्थात् श्वास की हवा में स्थित वह मलीन पदार्थ हवा के समान ही खरावी करता है, देखो! जो कई एक पेशे वाले लोग हरदम वस्त्र से अपने मुखको वांधे रहते हैं, वह (मुख का वांधना) रसायनिक योग से वहुत हानि करता है अर्थात्-मुँह पर दाग हो जाते हैं, मुँहके वाल उड़ जाते हैं, श्वास व कास रोग हो जाता है, इत्यादि अनेक खरावियां हो जाती हैं, इस का कारण केवल यही है कि–मुँह के बँधे रहने से विषैली हवा अच्छे प्रकार से वाहर नहीं निकलने पाती है।

प्रायः देखा जाता है कि-दूसरे मनुष्य के मुँह से पिये हुए पानी के पीने में बहुत से मनुष्य गन्दगी और अपवित्रता समझते हैं और इसी से वे दूसरे के जूठे पानी को पिया भी नहीं करते हैं, सो यह वेशक वहुत अच्छी वात है, परन्तु वे लोग यह नहीं जानते हैं कि–दूसरे के पिये हुए जल के पीने में अपवित्रता क्यों रहती है और किस लिये उसे नहीं पीना चाहिये, इस में अपवित्रता केवल वही है कि–एक मनुष्य के पीते समय उस के श्वास की हवा में स्थित दुर्गन्ध युक्त मैल श्वास के मार्ग से निकल कर उस पानी में समा गया है, इसी प्रकार से सँकड़े कोठे आदि मकान में वहुत से मनुष्यों के इकट्ठे होने से एक दूसरे के फेफसे से निकली हुई अशुद्ध हवा और गन्दे पदार्थों को वारंवार सव मनुष्य

अपने मुँह में श्वास के मार्ग से लेते हैं कि–जिस से जूठे पानी की अपेक्षा भी इससे अधिक खराबी उत्पन्न हो जाती है, एवं गाय, बैल, बकरे और कुत्ते आदि जानवर भी अपने ही समान श्वास के संग ज़हरीली हवा को बाहर निकालते हैं और शुद्ध हवा को विगाड़ते हैं ॥

२–त्वचा में से छिद्रों के मार्ग से पसीने के रूप में भी परमाणु निकलते हैं वे भी हवा को विगाड़ते हैं ॥

३–वस्तुओं के जलाने की क्रिया से भी हवा विगड़ती है, बहुत से लोग इस बात को सुन के आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि जहां जलता हुआ दीपक रक्खा जाता है अथवा जलाने की क्रिया होती है वहां की हवा तो उलटी शुद्ध हो जाती है वहां की हवा बिगड़ कैसे जाती है क्योंकि–प्राण वायु के विना तो अंगार सुलगेगा ही नहीं इत्यादि, परन्तु यह उन का भ्रम है–क्योंकि–देखो दीपक को यदि एक सँकड़े वासन में रक्खा जाता है तो वह दीपक शीघ्र ही बुझ जाता है, क्योंकि–उस वासन का सब प्राणवायु नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार सँकड़े घर में भी बहुत से दीपक जलाये जावें अथवा अधिक रोशनी की जावे तो वहां का प्राणवायु पूरा होकर कार्बोनिक एसिड ग्यस (ज़हरीली वायु) की विशेषता हो जाती है तथा उस घर में रहने वाले मनुष्यों की तवीयत को विगाड़ती है, परन्तु ऐसी बातें कुछ कठिन होने के कारण सामान्य मनुष्योंकी समझ में नहीं आती हैं और समझ में न आने से वे सामान्य बुद्धि के पुरुष हवा के बिगड़ने के कारण को ठीक रीति से नहीं जाँच सकते हैं और संकीर्ण स्थान में सिगड़ी और कोयले आदि जला कर प्राणवायु को नष्ट कर अनेक रोगों में फँस कर अनेक प्रकार के दुःखों को भोगा करते हैं ॥

सम्पूर्ण प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि–सड़ी हुई वस्तु से उड़ती हुई ज़हरीली तथा दुर्गन्ध युक्त हवा भी स्वच्छ हवा को विगाड़कर बहुत खरावी करती है, देखो ! जब वृक्ष अथवा कोई प्राणी नष्ट हो जाता है तब वह शीघ्र ही सड़ने लगता है तथा उस के सड़ने से बहुत ही हानिकारक हवा उड़ती है और उस के रजःकण पवन के द्वारा दूरतक फैल जाते हैं, इस पर यदि कोई यह कहे कि–सड़ी हुई वस्तु से निकल कर हवा के द्वारा कोसों तक फैलते हुए वे परमाणु दीखते क्यों नहीं हैं ? तो इस का उत्तर यह है कि–यदि अपनी आँखें अपनी सूँघने की इन्द्रिय के समान ही तीक्ष्ण होतीं तो सड़ते हुए प्राणी में

१–प्रत्येक मनुष्य के शरीर में से २४ घण्टे में अनुमान से ३० औंस पसीने के परमाणु बाहर निकलते हैं ॥

२–इसी लिये जैन सूत्र कारों ने जिस घर में मुर्दा पड़ा हो उस के संलग्न में सौ हाथ तक सूतक माना है, परन्तु यदि बीच में रास्ता पड़ा हो तो सूतक नहीं मानाहै, क्योंकि–बीच में रास्ता होने से दुर्गन्ध के परमाणु हवा से उड़ कर कोसों दूर चले जाते हैं ॥

से उड़ कर ऊँचे चढ़ते हुए और हवामें फैलते हुए संख्यावन्ध नाना जन्तु अपने को अवश्य दीख पड़ते, परन्तु अपने नेत्र वैसे तीक्ष्ण नहीं हैं, इस लिये वे अपने को नहीं दीखते हैं, हां ऐसी हवा में होकर जाते समय अपनी नाक के पास जो वास आती हुई मालूम पड़ती है वह और कुछ नहीं है किन्तु सड़े हुए प्राणी आदि में से उड़ते हुए वे सूक्ष्म जन्तु अर्थात् छोटे २ जीव ही हैं, यह वात आधुनिक (वर्त्तमान) डाक्टर लोग कहते हैं तथा जैन पन्नवणा सूत्र में भी यही लिखा है कि-दश स्थान ऐसे हैं जिन से दुर्गन्ध युक्त हवा निकलती है, जैसे-मुर्दे, वीर्य, खून, पित्त, खँखार, थूक, मोहरी तथा मल मूत्र आदि स्थानों में सम्मूर्छिम अंगुल के असंख्यातवें भाग के समान छोटे २ जीव होते हैं, जिन को चर्म नेत्रवाले नहीं देख सकते हैं किन्तु सर्वज्ञ ने केवल ज्ञान के द्वारा जिन को देखा था, ऐसे असंख्य जीव अन्तर्मुहूर्त के पीछे उत्पन्न होते हैं, ये ही जन्तु श्वास के मार्ग से अपने शरीर में प्रवेश करते हैं, इसी प्रकार घर में शाक तरकारी का छिलका तथा कूड़ा कर्कट आदि आंगन में अथवा घर के पास फेंक २ कर जमा कर दिया जाता है तो वह भी हवा को विगाड़ता है, चमार, कसाई, रंगरेज़ तथा इसी प्रकार के दूसरे धन्धेवाले अन्य लोग भी अपने २ धन्धे से हवा को विगाड़ते हैं, ऐसे स्थानों में हो कर निकलते समय नाक और मुँह आदि को बन्द कर के निकलना चाहिये ॥

४-मुर्दों के दावने और जलाने से भी हवा विगड़ती है, इस लिये मुर्दों के दावने और जलाने का स्थान वस्ती से दूर रहना चाहिये, इस के सिवाय पृथ्वी स्वयं भी वाफ अथवा सूक्ष्म परमाणुओं को वाहर निकालती है तथा उसमें थोड़ी वहुत हवा भी प्रविष्ट होती है और यह हवा ऊपर की हवा के साथ मिल कर उसको विगाड़ देती है, जव पृथ्वी दरार वाली होती है तव उस में से सड़े हुए पदार्थों के परमाणु विशेष निकलकर अत्यन्त हानि पहुँचातेहैं।

सड़ता हुआ या भीगा हुआ भाजी पाला वहुधा ज्वर के उपद्रव का मुख्य कारण होता[3] है ॥

५-घर की मलीनता से भी खराव हवा उत्पन्न होती है और मलीनता के स्थान कुँए के

१-इस वात को प्राचीन जनों ने तो शास्त्र सम्मत होने से माना ही है-किन्तु अर्वाचीन विद्वान् डाक्टरोंने भी इस को प्रत्यक्ष प्रमाण रूपमें स्वीकार किया है ॥

२-देखो! विपाक सूत्र में-गौतम गणधर ने मृगा लोढ़े की दुर्गन्धि के विषय में नाक और मुँह को मुखवस्त्रिका (जो हाथ में थी) से मृगारानी के कहने से ढँका था, यह लिखा है ॥

३-इस वात का हम ने मारवाड़ देश में प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि-जव वहुत वृष्टि होकर ककड़ी मतीरे और टींडसे आदि की वेलें आदि सडती हैं तव जाट आदि ग्रामीणों को शीतज्वर हो जाता है तथा जव ये चीजें शहर में आकर पड़ी २ सड़ती हैं तव हवा में ज़हर फैल कर शहरवालों को शीतज्वर आदि रोग हवा के विगड़ने से हो जाते हैं ॥

पनघट, मोहरी, नाली, पनाले और पाखाना आदि हैं, इस लिये इन को नित्य साफ और सुथरे रखना चाहिये ॥

६–कोयले की खानें, लोह के कारखाने, रुई ऊन और रेशम वनने की मिलें तथा धातु और रंग वनाने के कारखाने आदि अनेक कार्यालयों से भी हवा विगड़ती है, यह तो प्रत्यक्ष ही देखा गया है कि–इस प्रकार के कारखानों में कोयलों, रुई और धातुओं के सूक्ष्म रजःकण उड़ २ कर काम करनेवालों के शरीर में जाकर वहुधा उन के श्वास की नली के, फेफड़े के और छाती के रोगों को उत्पन्न कर देते हैं ॥

७–चिलम, हुक्का और चुरटों के पीने से भी हवा विगड़ती है अर्थात्–यह जैसे पीनेवालों की छाती को हानि पहुँचाता है, उसी प्रकार से वाहर की हवा को भी विगाड़ता है, यद्यपि वर्त्तमान समय में इस का व्यसन इस आर्यावर्त्त देशमें प्रायः सर्वत्र फैल रहा है, किन्तु–दक्षिण, गुजरात और मारवाड़में तो यह अत्यन्त फैला हुआ है कि–जिस से वहां अनेक प्रकार की वीमारियां उत्पन्न हो रही हैं ॥

इन कारणों के सिवाय हवा के विगड़ने के और भी वहुत से कारण हैं जिन को विस्तार के भय से नहीं लिख सकते, इन सव वातों को समझ कर इन से वचना मनुष्य को अत्यावश्यक है और इन से वचना मनुष्य के स्वाधीन भी है, क्योंकि–देखो । अपने २ कर्मोंकी विचित्रता से जो वुद्धि मनुष्यों ने पाई है उस का ठीक रीति से उपयोग न कर पशुओं के समान जन्म को विताना तथा दैव[1] का भरोसा रखना आदि अनेक वातें मनुष्यों को परिणाम में अत्यन्त हानि पहुँचाती हैं, इस लिये सुज्ञों (समझदारों) का यह धर्म है कि–हानिकारक वातों से पहिले ही से वच कर चलें और अपनी आरोग्यता को कायम रख कर मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त करें, क्योंकि–हानिकारक वातों से वचकर जो मनुष्य नहीं चलते हैं उन को अपने किये हुए कुकर्मों का फल ऐसा मिलता है कि–उन को जन्मभर रोते ही वीतता है, इस प्रकार से अनेक कष्टरूप फल को भोगते २ वे अपने अमूल्य मनुष्यजन्म को कास श्वास और क्षय आदि रोगों में ही विता कर आधी उम्र में ही इस संसार से चले जाकर अपनी स्त्री और वाल वच्चों आदि को अनाथ छोड़ जाते हैं, देखो । इस वात को अनेक अनुभवी वैद्यों और डाक्टरों ने सिद्ध कर दिया है कि–गांजा सुलफे के पीने वाले सैकड़ों हजारों[2] आदमी आधी उम्र में ही मरते हैं ।

देखो ! जिस पुरुष ने इस संसार में आकर विद्या नहीं पढ़ी, धन नहीं कमाया, देश जाति और कुटुम्ब का सुधार नहीं किया और न परभव के साधन रूप ज्ञानसे युक्त व्रत

---

१ दैव का भरोसा रखने वाले जन यह नहीं विचारते हैं कि–हमारे कर्मोंने आगे को विगाड़ होने के लिये ही हमारी समझमेंसे सदुद्यम की वुद्धि को हर लिया है ॥

२–दश वारह युवा पुरुषों को तो हम ने अपने नेत्रों से प्रत्यक्ष ही महा दुर्दशा में मरते देखा है ॥

नियम आदि का पालन ही किया; उस मनुष्य ने जन्म लेकर पशुओं के समान ही पृथिवी को भार युक्त किया और अपनी माता के यौवनरूपी वन को काटने के लिये कुठार (कुल्हाड़ा) कहलाने के सिवाय और कुछ भी नहीं किया ॥

स्वभावजन्य अर्थात् कुदरती नियम से होने वाली हवा की शुद्धि ॥

प्रिय पाठक गण! पांचों समवायों के योग से प्रथम तो विगड़ती हुई हवा को वन्द करने में (रोकने में) मनुष्यों का उद्यम है, उसी प्रकार से काल आदि चारों समवायों के मिलने से भी हवा को साफ करने का पूरा साधन उपस्थित है, यदि वह न होता तो सृष्टि में उत्पत्ति और स्थिति भी कदापि नहीं हो सकती।

जिस प्रकार से ये साधन इन ही समवायों से विगड़ कर प्राणियों का प्रलय करते हैं– उसी प्रकार से ये ही पांचों समवाय परस्पर मिलने से विगड़ी हुई हवा को साफ भी करते हैं, किन्हीं लोगों ने इन्हीं समवायों के सम्बंध को ईश्वर मान लिया है, अस्तु, हवा में चलनस्वभाव रूप धर्म है उसी से वह विगड़ी हुई हवा को अपने झपटे से खींच कर ले जाती है अर्थात् उस के झपटे से दुष्ट परमाणु छिन्न भिन्न हो जाते हैं और ताज़ी हवा के न मिलने से जितनी हानि पहुँचने को थी उतनी हानि नहीं पहुँचती है, क्योंकि–ऊपर लिखी हुई वह हवा एक दूसरे के संग इस प्रकार से मिल जाती है जैसे थोड़ा सा दूध पानी में मिलानेसे विलकुल एकमेक (तत्स्वरूप) हो जाता है तथा जिस प्रकार से पवन का वेग होने पर चूल्हे का धुँआ छिन्न भिन्न होकर थोड़ी देर पीछे नहीं दीखता है उसी प्रकार श्वास आदि के लेने से विगड़ी हुई सव हवा भी उसी झपटे से छिन्न भिन्न होकर अधिक परिमाणवाली स्वच्छ हवा में मिलकर पतली हो जाती है इसी लिये वह कम हानि पहुँचाती है।

हवा किसी समय अधिक और किसी समय कम चलती है, क्योंकि–हवा में वैक्रिय शरीर के रचने का स्वभाव है, जिस समय मन को प्रसन्न करने वाली ताज़ी हवा चलती

१–शास्त्रों में लिखा है कि "प्रसूतान्ते यौवनं गतम्" अर्थात् स्त्री के सन्तान होने के पीछे उसका यौवन चला जाता है ॥

२–इस का उदाहरण यह है कि–जैसे देखो! कृष्णमहाराज एक थे परन्तु सव रानियों के महलों में नारदजीने उनको देखाथा, इस का कारण यही था कि–वे वैक्रिय शरीर की रचना कर लेते थे, यदि किसी को इस विषय में शंका हो तो वैक्रिय रचना के इस दृष्टान्त से शंका निवृत्त हो सकती है कि–जैसे पुरुषचिन्ह पड़ी दशा में केवल दो अंगुल का होता है परन्तु देखो! वही तेज़ी की दशा में कितना वढ़ जाता है, इसी प्रकार से वायु भी वैक्रिय शरीर की रचना करता है, अथवा दूसरा दृष्टान्त यह भी है कि–जैसे किरड़ा जानवर अनेक प्रकार के रंग वदलता है उसी प्रकार की वैक्रिय शरीर की भी शक्ति जाननी चाहिये ॥

है तब उस के चलने से विगड़ी हुई हवा भी छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जाती है अर्थात् सब वायु स्वच्छ रहती है, उस समय प्राणी मात्र श्वास लेते हैं तो प्राणवायु को ही भीतर लेते हैं और कार्वोनिक एसिड ग्यॅस को वाहर निकालते हैं, परन्तु वृक्ष और वनस्पति आदि इस से विपरीत क्रिया करते हैं अर्थात् वृक्ष और वनस्पति आदि दिन को कार्वन को अपने भीतर चूस लेते हैं तथा प्राणवायु को वाहर निकालते हैं, इस से भी वायु के आवरण की हवा शुद्ध रहती है अर्थात् दिन को वृक्षों की हवा साफ होती है और रात को उक्त वनस्पति आदि प्राणवायु को अपने भीतर खींचते हैं और कार्वोनिक एसिड ग्यॅस को वाहर निकालते हैं, परन्तु इस में भी इतना फर्क है कि-रात को जितनी प्राणवायु को वनस्पति आदि अपने भीतर खींचते हैं उस की अपेक्षा दिन में प्राणवायु को अधिक निकालते हैं, इस लिये रात को वृक्षों के नीचे कदापि नहीं सोना चाहिये, क्योंकि रात को वृक्षों के नीचे सोने से आरोग्यता का नाश होता है।

इस प्रकार से ऊपर कही हुई हवा एक दूसरे के साथ मिलने से अर्थात् पवन और वृक्षों से संग होने से साफ होती है, इस के सिवाय वरसात भी हवा को साफ करने में सहायता देती है।

इस प्रकार से हवा की शुद्धि के सब कारणों को जानकर सर्वदा शुद्ध हवा का ही सेवन करना चाहिये, क्योंकि-शुद्ध हवा बहुत ही अमूल्य वस्तु है, इसी लिये सद् वैद्यों का यह कथन है कि-"सौ दवा और एक हवा" इस लिये स्वच्छ हवा के मिलने का यत्न सदैव करना चाहिये।

वस्ती की हवा दवी हुई होती है, इस लिये-सदा थोड़े समय तक वाहर की खुली हुई स्वच्छ हवा को खाने के लिये जाना चाहिये, क्योंकि इस से शरीर को बहुत ही लाभ पहुँचता है तथा फिरने से शरीर के सब अवयवों को कसरत भी मिलती है, इसलिये ताजी हवा का खाना कसरत से भी अधिक फायदेमन्द है।

यद्यपि दिन में तो चलने फिरने आदि से मनुष्यों को ताज़ी हवा मिल सकती है परन्तु रात को घर में सोने के समय साफ हवा का मिलना इमारत बनाने वाले चतुर कारीगर और वास्तुशास्त्र को पढ़े हुए इञ्जीनियरों के हाथ में है, इसलिये अच्छे २ चतुर इञ्जीनियरों की सम्मति से सोने वैठने आदि के सब मकान हवादार वनवाने चाहियें, यदि

१-देखो। जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरिकृत विवेकविलासादि ग्रन्थों में रात को वृक्षों के नीचे सोने का अत्यन्त ही निषेध लिखा है तथा इस वात को हमारे देश के निवासी ग्रामीण पुरुष तक जानते हैं और कहते हैं कि-रात को वृक्ष के नीचे नहीं सोना चाहिये, परन्तु रात को वृक्षों के नीचे क्यों नहीं सोना चाहिये, इस का कारण क्या है, इस वात को विरले ही जानते हैं॥

२-अर्थात् शुद्ध हवा सौ दवाओं के तुल्य है॥

पूर्व समय के अनभिज्ञ कारीगरों के बनाये हुए मकान हों तो उन को सुधरा कर हवादार कर लेना चाहिये।

यद्यपि उत्तम मकानों का बनवाना आदि कार्य द्रव्य पात्रों से निभ सकता है, क्योंकि उत्तम मकानों के बनवाने में काफी द्रव्य की आवश्यकता होती है तथापि अपनी हैसियत और योग्यता के अनुसार तो यथाशक्य इस के लिये मनुष्यमात्र को प्रयत्न करना ही चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–मलीन कचरे और सड़ती हुई चीजों से उड़ती हुई मलीन हवा से प्राणी एकदम नहीं मरता है परन्तु उसी दशा में यदि बहुत समय तक रहा जावे तो अवश्य मरण[1] होगा।

देखो। यह तो निश्चित ही बात है कि–बहुत से आदमी प्रायः रोग से ही मरते हैं, वह रोग क्यों होता है, इस बात का यदि पूरा २ निदान किया जावे तो अवश्य यही ज्ञात होगा कि–बहुत से रोगों का मुख्य कारण खराब हवा ही है, जिस प्रकार से अति कठिन विष पेट में जाता है तो प्राणी शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है और अफीम आदि विष धीरे २ सेवन किये हुए भी कालान्तर में हानि[2] पहुँचाते हैं, इसी प्रकार से सदा सेवन की हुई थोड़ी २ खराब हवा का भी विष शरीर में प्रविष्ट होकर बड़ी हानि का कारण बन जाता है।

यह भी जान लेना चाहिये कि–बीमार आदमी के आस पास की हवा जल्दी बिगड़ती है, इस लिये बीमार आदमी के पास अच्छे प्रकार से साफ हवा आने देना चाहिये, जिस प्रकार से शरीर के बाहर ताज़ी हवा की आवश्यकता है उसी प्रकार शरीर के भीतर भी ताज़ी हवा लेने की सदा आवश्यकता रहती है, जैसे बादली का अथवा कपड़े का टुकड़ा मुलायम हाथ से पकड़ा हुआ हो तो वह बहुत पानी को चूसता है तथा दबा कर पकड़ा हुआ हो तो वह टुकड़ा कम पानी को चूसता है, बस यही हाल भीतरी फेफड़े का है अर्थात् यदि फेफड़ा थोड़ा दबा हुआ हो तो उस में अधिक हवा प्रवेश करती है और उस से खून अच्छी तरह से साफ होता है, इस लिये लिखने पढ़ने और बैठने आदि सब कामों के करते समय फेफड़ा बहुत दब जावे इस प्रकार से टेढ़ा बांका हो कर नहीं बैठना चाहिये, इस बात को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये, क्योंकि–फेफड़े पर दबाव पड़ने से उस के भीतर अधिक हवा नहीं जा सकती है और अधिक हवा के न जाने से अनेक बीमारियां हो जाती हैं ॥

१–देखो। जैनसूत्रों में यह कहा है कि–उपक्रम लग कर प्राणी की आयु टूटती है और उस (उपक्रम) के मुख्यतया सौ भेद हैं, किन्तु निश्चय मृत्यु एक ही है, उस उपक्रम के भी ऐसे २ कारण हैं कि जिन को अपने लोग प्रत्यक्ष नहीं देख सकते और न जान सकते हैं ॥

२–यह नहीं समझना चाहिये कि–अफीम आदि विष धीरे २ तथा थोड़ा २ सेवन करने से हानि नहीं करते हैं किन्तु वे भी समय पाकर कठिन विष के समान ही असर करते हैं ॥

प्रति मनुष्य हवा की आवश्यकता ॥

प्रत्येक मनुष्य २४ घण्टे में सामान्यतया ४०० घन फीट हवा श्वासोच्छ्वास में लेता है तथा शरीर के भीतर का हिसाब यह है कि-सात फीट लम्बी, सात फीट चौड़ी और सात फीट ऊंची एक कोठरी में जितनी हवा समा सके उतनी हवा एक आदमी हमेशा फेफड़े में लेता है, श्वासोच्छ्वास के द्वारा ग्रहण की जाती हुई हवा में कार्वोनिक एसिड ग्यॅस के (हानिकारक पदार्थ के) हज़ार भाग साफ हवा में चार से दश तक भाग रहते हैं, परन्तु जो हवा शरीर से बाहर निकलती है उस के हजार भागों में कार्वोनिक एसिड ग्यॅस के ४० भाग हैं अर्थात् ढाई हज़ार भागों में सौगुणा भाग है, इस से सिद्ध हुआ कि-अपने चारों तरफ की हवा अपने ही श्वास से विगड़ती है, अब देखो। एक तरफ तो जहरीली हवा को वनस्पति चूस लेती है और दूसरी तरफ वातावरण की ताज़ी हवा उस हवा को खींच कर ले जाती है, परन्तु मकान में हवा के आने जाने का यदि मार्ग न हो तो स्वभाव से ही अनुकूल भी समवाय प्रतिकूल (उलटे) हो जाते हैं, इस लिये प्रत्येक आदमी को ७ से १० फीट चौरस स्थान की अथवा खन की आवश्यकता है, यदि उतने ही स्थान में एक से अधिक आदमी बैठें या सोवें तो उस स्थान की हवा अवश्य विगड़ जावेगी।

अब यह भी जान लेना आवश्यक (ज़रूरी) है कि-हवा के गमनागमन पर स्थान के विस्तार का कितना आधार है, देखो। यदि हवा का अच्छे प्रकार से गमनागमन (आना जाना) हो तो संकीर्ण (सँकड़े) स्थान में भी अधिक मनुष्य भी सुख से रह सकते हैं, परन्तु यदि हवा के आने जाने का पूरा खुलासा मार्ग न हो तो बड़े मकान तथा खासे खण्ड में भी रहनेवाले मनुष्यों को आवश्यकता के अनुसार सुखकारक हवा नहीं मिल सकती है।

ताज़ी हवा के आवागमन का विशेष आधार घर की रचना और आस पास की हवाके ऊपर निर्भर है, घर में खिड़की और दर्वाजे आदि काफी तौर पर भी रक्खे हुए हों परन्तु यदि अपने घर के आस पास चारों तरफ दूसरे घर आगये हों तो घर में ताज़ी हवा और प्रकाश की रुकावट (अटकाव) होती है, इस लिये घर के आस पास से यदि हवा मिलने की पूरी अनुकूलता न हो तो घर के छप्परों में से ताज़ी हवा आ जा सके ऐसी युक्ति करनी चाहिये।

अपना मुख स्वच्छ होने पर भी दूसरों को उस (अपने मुख) से कुछ खराब बास निकलती हुई मालूम पड़ती है, वह श्वासोच्छ्वास के द्वारा भीतर से बाहर को आती हुई खराब हवा की बास होती है, इसी खराब हवा से घर की हवा विगड़ती है तथा बहुत से मनुष्यों के इकठे होने से जो घबड़ाहट होती है वह भी इसी हवा के कारण से हुआ

करती है, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि–उस जनसमूह के द्वारा विगड़ी हुई उस खराव हवा में से निकल कर जब वाहर खुली हवा में जाते हैं तव वह घवड़ाहट दूर हो कर मन प्रफुल्लित होता है, इस वात का अनुभव प्रत्येक मनुष्य ने किया होगा तथा कर भी सकता है।

घर की हवा शुद्ध है अथवा विगड़ी हुई है, इस का निश्चय करने के लिये सहज उपाय यही है कि–वाहर की शुद्ध खुली हुई हवा में से घर में जाने पर यदि कुछ मन को वह हवा अच्छी न लगे अर्थात् मन को अच्छी न लगने वाली कुछ दुर्गन्धिसी मालूम पड़े तो समझ लेना चाहिये कि–घर के भीतर की हवा चाहिये जैसी शुद्ध नहीं है; शुद्ध वातावरण की हवा के १००० भागों में $\frac{४}{१०}$ भाग कार्वोनिक एसिड ग्यॅस का है; यदि घर की हवा में यह परिमाण कुछ अधिक भी हो अर्थात् $\frac{६}{१०}$ तक हो तव तक आरोग्यता को हानि नहीं पहुँचती है परन्तु यदि इस परिमाण से एक अथवा इस से भी विशेष भाग वढ़ जावे तो उस हवावाले मकान में रहनेवाले मनुष्यों को हानि पहुँचती है, इस हानि-कारक हवा का अनुमान वाहर से घर में आने पर मन को अच्छी न लगनेवाली दुर्गन्धि आदि के द्वारा ही हो सकता है ॥

यह चतुर्थ अध्याय का वायुवर्णन नामक द्वितीय प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तृतीय प्रकरण—जल वर्णन ॥

पानी की आवश्यकता ॥

जीवन को कायम रखने के लिये आवश्यक वस्तुओं में से दूसरी वस्तु पानी है, वह पानी जीवन के लिये अपने उसी प्रवाही रूप में आवश्यक है यह नहीं समझना चाहिये किन्तु–खाने पीने आदि के दूसरे पदार्थों में भी पानी के तत्व रहा करते हैं जो कि पानी की आवश्यकता को पूरा करते हैं, इस से यह वात और भी प्रमाणित होती है कि जीवन के लिये पानी वहुत ही आवश्यक वस्तु है, देखो। छोटे वालकों का केवल दूध से ही पोषण होता है वह केवल इसी लिये होता है कि–दूध में भी पानी का अधिक भाग है, केवल यही कारण है कि–दूधसे पोषण पानेवाले उन छोटे वालकों को पानी की आव-श्यकता नहीं रहती है, इस के सिवाय अपने शरीर में स्थित रस रक्त और मांस आदि धातुओं में भी मुख्य भाग पानी का है, देखो। मनुष्य के शरीर का सरासरी वज़न यदि ७५ सेर गिना जावे तो उस में ५६ सेर के क़रीव पानी अर्थात् प्रवाही तत्त्व माना जायगा, इसी प्रकार जिस धान्य और वनस्पति से अपने शरीर का पोषण होता है वह भी

पानी से ही पका करती है, देखो। मलीनता बहुत से रोगों का कारण है और उस मलीनता को दूर करने के लिये भी सर्वोत्तम साधन पानी है।

पानी की अमूल्यता तथा उस की पूरी कदर तब ही मालूम होती है कि-जब आवश्यकता होने पर उस की प्राप्ति न होवे, देखो। जब मनुष्य को प्यास लगती है तथा थोड़ी देर तक पानी नहीं मिलता है तो पानी के बिना उस के प्राण तड़फने लगते हैं और फिर भी कुछसमय तक यदि पानी न मिले तो प्राण चले जाते हैं, पानी के बिना प्राण किस तरह से चले जाते हैं? इसके विषय में यह समझना चाहिये कि-शरीर के सब अवयवों का पोषण प्रवाही रस से ही होता है, जैसे-एक वृक्ष की जड़ में पानी डाला जाता है तो वह पानी रसरूप में होकर पहिले बड़ी २ डालियों में, बड़ी डालियों में से छोटी २ डालियों में और वहां से पत्तों के अन्दर पहुँच कर सब वृक्ष को हरा भरा और फूला फला रखता है, उसी प्रकार पिया हुआ पानी भी खुराक को रस के रूप में बना कर शरीर के सब भागों में पहुँचा कर उन का पोषण करता है, परन्तु जब प्यासे प्राणी को पानी कम मिलता है अथवा नहीं मिलता है तब शरीर का रस और लोहू गाढ़ा होने लगता है तथा गाढ़ा होते २ आखिर को इतना गाढ़ा हो जाता है कि-उस (रस और रक्त) की गति बन्द हो जाती है और उस से प्राणी की मृत्यु हो जाती है, क्योंकि लोहू के फिरने की बहुत सी नलियां बाल के समान पतली हैं, उन में काफी पानी के न पहुँचने से लोहू अपने स्वाभाविक गाढ़ेपन की अपेक्षा विशेष गाढ़ा हो जाता है और लोहू के गाढ़े होजाने से वह (लोहू) सूक्ष्म नलियों में गति नहीं कर सकता है।

यद्यपि पानी बहुत ही आवश्यक पदार्थ है तथा काफी तौर से उस के मिलने की आवश्यकता है परन्तु इस के साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि-जिस कदर पानी की आवश्यकता है उसी कदर निर्मल पानी का मिलना आवश्यक है, क्योंकि-यदि काफी तौर से भी पानी मिल जावे परन्तु वह निर्मल न हो अर्थात् मलीन हो अथवा बिगड़ा हुआ हो तो वही पानी प्राणरक्षा के बदले उलटा प्राणहर हो जाता है इस लिये पानी के विषय में बहुत सी आवश्यक बातें समझने की हैं-जिन के समझने की अत्यन्त ही आवश्यकता है कि-जिस से खराब पानी से बचाव हो कर निर्मल पानी की प्राप्ति के द्वारा आरोग्यता में अन्तर न आने पावे, क्योंकि खराब पानी से कितनी बड़ी खराबी होती है और अच्छे पानी से कितना बड़ा लाभ होता है-इस बात को बहुत से लोग अच्छे प्रकार से नहीं जानते हैं किन्तु सामान्यतया जानते हैं, क्योंकि-मुसाफरी में जब कोई बीमार पड़ जाता है तब उस के साथवाले शीघ्र ही यह कहने लगते हैं कि-पानी के बदलने से ऐसा हुआ है, परन्तु बहुत से लोग अपने घर में बैठे हुए भी खराब पानी से बीमार पड़ जाते हैं और इस बात को उन में से थोड़े ही समझते हैं कि-खराब पानी से यह बीमारी

हुई है, किन्तु विशेष जनसमूह इस बात को बिलकुल नहीं समझता है कि–खराब पानी से यह रोगोत्पत्ति हुई है, इसलिये वे उस रोग की निवृत्ति के लिये मूर्ख वैद्यों से उपाय कराते २ लाचार होकर बैठ रहते हैं, इसी लिये वे असली कारण को न विचार कर दूसरे उपाय करते २ थक कर जन्म भर तक अनेक दुःखों को भोगते हैं ॥

पानी के भेद ॥

पानी का खारा, मीठा, नमकीन, हलका, भारी, मैला, साफ, गन्धयुक्त और गन्धरहित होना आदि पृथिवी की तासीर पर निर्भर है तथा आसपास के पदार्थों पर भी इस का कुछ आधार है, इस से यह बात सिद्ध होती है कि–आकाश के बादलों में से जो पानी बरसता है वह सर्वोत्तम और पीने के लायक है किन्तु पृथिवी पर गिरने के पीछे उस में अनेक प्रकार के पदार्थों का मिश्रण (मिलाव) होनेसे वह विगड़जाता है, यद्यपि पृथिवीपर का और आकाश का पानी एक ही है तथापि उस में भिन्न २ पदार्थों के मिल जाने से उस के गुण में अन्तर पड़ जाता है, देखो ! प्रतिवर्ष वृष्टि का बहुतसा पानी पृथ्वीपर गिरता है तथा पृथिवी पर गिरा हुआ वह पानी बहुत सी नदियों के द्वारा समुद्रोंमें जाताहै और ऐसा होनेपर भी वे समुद्र न तो भरते हैं और न छलकते ही हैं, इस का कारण सिर्फ यही है कि–जैसे पृथिवीपर का पानी समुद्रों में जाता है उसी प्रकार समुद्रों का पानी भी सूक्ष्म परमाणु रूप अर्थात् भाफ रूप में हो कर फिर आकाश में जाता है और वही भाफ बदल बन कर पुनः जल वर्फ अथवा ओले और धुँअर के रूप में हो जाती है, तालाब कुओं और नदियों का पानी भी भाफ रूपमें होकर ऊँचा चढ़ता है किन्तु खास कर उष्ण ऋतु में पानी में से वह भाफ अधिक बन कर बहुत ही ऊँची चढ़ती है, इसलिये उक्त ऋतु में जलाशयों में पानी बहुत ही कम हो जाता है अथवा बिलकुल ही सूख जाता है ।

जब वृष्टि होती है तब उस (वृष्टि) का बहुत सा पानी नदियों तथा तालावों में जाता है और बहुत सा पानी पृथिवी पर ही ठहर कर आस पास की पृथिवी को गीली कर देता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु उस पृथिवी के समीपमें स्थित कुएँ और झरने आदि भी उस पानी से पोषण पाते हैं ।

जहां ठंढ अधिक पड़ती है वहां वर्सात का पहिला पानी वर्फ रूप में जम जाता है तथा

१–क्योंकि-उन मूर्ख वैद्यों को भी यह बात नहीं मालूम होती है कि—पानी की खराबी से यह रोगोत्पत्ति हुई है ॥

२–वृष्टि किस २ प्रकार से होती है इस का वर्णन श्रीभगवती सूत्रमें किया है, वहां यह भी निरूपण है कि–जल की उत्पत्ति, स्थिति और नाश का जो प्रकार है वही प्रकार सब जड़ और चेतन पदार्थों का जान लेना चाहिये, क्योंकि द्रव्य नित्य है तथा गुण भी नित्य है परन्तु पर्याय अनित्य है ॥

गर्मी की ऋतु में वह वर्फ पिघल कर नदियों के प्रवाह में बहने लगती है, इसी लिये गङ्गा आदि नदियों में चौमासे में खूब पूर (बाढ़) आती है तथा उस समय में तालाव और कुँओं का भी पानी ऊँचा चढ़ता है तथा ग्रीष्म में कम हो जाता है, इस प्रकार से पानी के कई रूपान्तर होते हैं।

वरसात का पानी नदियों के मार्ग से समुद्र में जाता है और वहां से भाफ रूप में होकर ऊँचा चढ़ता है तथा फिर वही पानी वरसात रूप में हो कर पृथिवी पर वरसता है, वस यही क्रम संसार में अनादि और अनन्त रूप से सदा होता रहता है।

पानी के यद्यपि सामान्यतया अनेक[1] भेद माने गये हैं तथापि मुख्य भेद तो दो ही हैं अर्थात् अन्तरिक्षजल और भूमिजल, इन दोनों भेदों का अत्र संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

अन्तरिक्षजल—अन्तरिक्षजल उस को कहते हैं कि–जो आकाश में स्थित वरसात का पानी अधर में ही छान कर लिया जावे॥

भूमिजल—वही वरसात का पानी पृथिवी पर गिरने के पीछे नदी कुआ और तालाव में ठहरता है, उसे भूमिजल कहते हैं॥

इन दोनों जलों में अन्तरिक्षजल उत्तम होता है, किन्तु अन्तरिक्षजल में भी जो जल आश्विन मास में वरसता है उस को विशेष उत्तम समझना चाहिये, यद्यपि आकाश में भी वहुत से मलीन पदार्थ वायु के द्वारा घूमा करते हैं तथा उन के संयोग से आकाश के पानी में भी कुछ न कुछ विकार हो जाता है तथापि पृथिवी पर पड़े हुए पानी की अपेक्षा तो आकाश का पानी कई दर्जे अच्छा ही होता है, तथा आश्विन (आसोज) मास में वरसा हुआ अन्तरिक्षजल पहिली वरसात के द्वारा वरसे हुए अन्तरिक्षजल से विशेष उत्तम गिना जाता[2] है, परन्तु इस विषय में भी यह जान लेना आवश्यक है कि–ऋतु के विना वरसा हुआ महावट आदि का पानी यद्यपि अन्तरिक्ष जल है तथापि वह अनेक विकारों से युक्त होने से काम का नहीं होता[3] है।

आकाश से जो ओले गिरते हैं उनका पानी अमृत के समान मीठा तथा वहुत ही

१–देखो। "जीवविचार प्रकरण" में हवा तथा पानी के अनेक भेद लिखे हैं॥

२–इसी लिये उपासकदशा सूत्र में यह लिखा है कि–आनन्द श्रावक नें आसोज का अन्तरिक्ष जल ही जन्मभर पीने के लिये रक्खा॥

३–आश्लेषा नक्षत्र का जल वहुत हानिकारक होता है, देखो। नालक का वचन है कि "वैदाँ घर वधावणा आश्लेषा छुटाँ" इत्यादि, अर्थात् आश्लेषा नक्षत्र में वरसे हुए जल का पीना मानों वैद्य के घर की वृद्धि करना है (वैद्य को घर में वुलाना है)॥

अच्छा होता है, इस के सिवाय यदि बरसात की धारा में गिरता हुआ पानी मोटे कपड़े की झोली बांधकर छान लिया जावे अथवा स्वच्छ की हुई पृथिवी पर गिर जाने के बाद उस को स्वच्छ वर्त्तन में भर लिया जावे तो वह भी अन्तरिक्षजल कहलाता है तथा वह भी उपयोग में लाने के योग्य होता है[1]।

पहिले कह चुके हैं कि–बरसात होकर आकाश से पृथिवी पर गिरने के बाद पृथिवी सम्बन्धी पानी को भूमि जल कहते हैं, इस भूमि जलके दो भेद हैं–जाङ्गल और आनूप, इन दोनों का विवरण इस प्रकार है:—

जाङ्गल जल—जो देश थोड़े जलवाला, थोड़े वृक्षोंवाला तथा पीत्त और रक्त के विकार के उपद्रवों से युक्त हो, वह जांगल देश कहलाता है तथा उस देश की भूमि के सम्बन्ध में स्थित जल को जांगल जल कहते हैं ॥

आनूप जल—जो देश बहुत जलवाला, बहुत वृक्षोंवाला तथा वायु और कफ के उपद्रवों से युक्त है, वह अनूप देश कहलाता है तथा उस देश में स्थित जल को आनूप जल कहते हैं॥

इन दोनों प्रकार के जलों के गुण ये हैं कि–जांगल जल स्वाद में खारा अथवा भल-भला, पाचन में हलका, पथ्य तथा अनेक विकारों का नाशक है, आनूपजल–मीठा और भारी होता है, इस लिये वह शर्दी और कफ के विकारों को उत्पन्न करता है।

इन के सिवाय साधारण देश का भी जल होता है, साधारण देश उसे कहते हैं कि–जिस में सदा अधिक जल न पड़ा रहता हो और न अधिक वृक्षों का ही झुण्ड हो अर्थात् जल और वृक्ष साधारण (न अति न्यून और न अति अधिक) हों, इस प्रकार के देश में स्थित जल को साधारण देश जल कहते हैं, साधारण[2] देशजल के गुण और दोष नीचे लिखे अनुसार जानने चाहियें:–

नदीका जल—भूमि जल के भिन्न २ जलाशयों में बहता हुआ नदी का पानी विशेष अच्छा गिना जाता है, उस में भी बड़ी २ नदियों का पानी अत्यन्त ही उत्तम होत है, यह भी जान लेना चाहिये कि–पानी का स्वाद पृथिवी के तलभाग के अनुसार प्रायः हुआ करता है अर्थात् पृथिवी के तल भाग के गुण के अनुसार उस में स्थित पानी का स्वाद भी बदल जाता है अर्थात् यदि पृथिवी का तला खारी होता है तो चाहे बड़ी

१–परन्तु उस को बँधा हुआ (ओलेरूप में) खाना तथा बँधी हुई (जमी हुई) वर्फ को खाना जैन सूत्रों में निषिद्ध (माना) लिखा है, अर्थात् अभक्ष्य ठहराया है तथा जिन २ वस्तुओं को सूत्रकारोंने अभक्ष्य लिखा है वे सब रोगकारी हैं, इस में सन्देह नहीं है, हां बेशक इन का गला हुआ जल कई रोगों में हितकारी है ॥

२–हैदरावाद, नागपुर, अमरावती तथा खानदेश आदि साधारण देश हैं ॥

नदी भी हो तो भी उस का पानी खारी हो जाता है, वर्षा ऋतु में नदी के पानी में धूल कूड़ा तथा अन्य भी बहुत से मैले पदार्थ दूर से आकर इकट्ठे हो जाते हैं, इस लिये उस समय वह बरसात का पानी बिलकुल पीने के योग्य नहीं होता है, किन्तु जब वह पानी दो तीन दिन तक स्थिर रहता है और निर्मल हो जाता है तब वह पीने के योग्य होता है ।

झाड़ी में बहने वाली नदियों तथा नालों का पानी यद्यपि देखने में बहुत ही निर्मल मालूम होता है तथा पीने में भी मीठा लगता है तथापि वृक्षों के मूल में होकर बहने के कारण उस पानी को बहुत खराब समझना चाहिये, क्योंकि-ऐसा पानी पीने से ज्वर की उत्पत्ति होती है, केवल यही नहीं किन्तु उस जल का स्पर्श कर चलने वाली हवा में रहने से भी हानि होती है, इसलिये ऐसे प्रदेश में जाकर रहने वाले लोगों को वहां के पानी को गर्म कर पीना चाहिये अर्थात् सेर भर का तीन पाव रहने पर (तीन उबाल देकर) ठंढा कर मोटे वस्त्र से छान कर पीना चाहिये ।

बहुत सी नदियां छोटी २ होती हैं और उन का जल धीमे २ चलता है तथा उस पर मनुष्यों की और जानवरों की गन्दगी और मैल भी चला आता है, इस लिये ऐसी नदियों का जल पीने के लायक नहीं होता है, नल लगने से पहिले कलकत्ते की गंगा नदी का जल भी बहुत हानि करता था और इसका कारण वही था जो कि अभी ऊपर कह चुके हैं अर्थात् उस में स्नान मैल आदिकी गन्दगी रहती थी तथा दूसरा कारण यह भी था कि-बंगाल देश में जल में दाग देने की (दाहक्रिया करने की) प्रथा के होने से मुर्दे को गंगा में डाल देते थे, इस से भी पानी बहुत बिगड़ता था, परन्तु जब से उस में नल लगा है तब से उस जल का उक्त विकार कुछ कम प्रतीत होता है, परन्तु नल के पानी में प्रायः अजीर्णता का दोष देखने में आता है और वह उस में इसी लिये है कि-उस में मलीन पदार्थ और निकृष्ट हवा का संसर्ग रहता है ।

बहुत से नगरों तथा ग्रामों में कुँए आदि जलाशय न होने के कारण पानी की तंगी होने से महा मलीन जलवाली नदियों के जल से निर्वाह करना पड़ता है, इस कारण वहां के निवासी तमाम बस्ती वाले लोगों की आरोग्यता में फर्क आ जाता है, अर्थात् देखो । पानी का प्रभाव इतना होता है कि-खुली हुई साफ हवा में रहकर महनत मजूरी कर

१-जैसे-शिखर गिरि "पार्श्वनाथहिल और गिरनार आदि पर्वतों के नदी नालों के जल को पीनेवाले लोग ज्वर और तापतिल्ली आदि रोगोंसे प्रायः दुःखी रहते हैं तथा यही हाल बंगाल के पास अढंग देश का है, वहां जानेवाले लोगों को भी एकवार तो पानी अवश्य ही अपना प्रभाव दिखाता है, यही हाल रायपुर आदि की झाड़ियों के जल का भी है ॥

२-जैसे दक्षिण हैदराबाद की मूसा नदी इत्यादि ॥

शरीर को अच्छे प्रकार से कसरत देने वाले इन ग्राम के निवासियों को भी ज्वर सताने लगता है, उन की वीमारी का मूल कारण केवल मलीन पानी ही समझना चाहिये ।

इस के सिवाय–जिस स्थान में केवल एक ही तालाव आदि जलाशय होता है तो सव लोग उसी में स्नान करते हैं, मैले कपड़े धोते हैं, गाय; ऊँट; घोड़े; वकरी और भेंड़ आदि पशु भी उसी में पानी पीते हैं, पेशाव करते हैं तथा जानवरों को भी उसी में स्नान कराते हैं और वही जल वस्ती वाले लोगों के पीने में आता है, इस से भी वहुत हानि होती है, इस लिये श्रीमती सर्कार, राजे महाराजे तथा सेठ साहूकारों को उचित है कि–जल की तंगी को मिटाने का तथा जल के सुधारने का पूरा प्रयत्न करें तथा सामान्य प्रजा के लोगों को भी मिलकर इस विषयमें ध्यान देना चाहिये ।

यदि ऊपर लिखे अनुसार किसी वस्ती में एक ही नदी वा जलाशय हो तो उस का ऐसा प्रवंध करना चाहिये कि–उस नदी के ऊपर की तरफ का जल पीने को लेना चाहिये तथा वस्ती के निकास की तरफ अर्थात् नीचे की तरफ स्नान करना, कपड़े धोना और जानवरों को पानी पिलाना आदि कार्य करने चाहियें, वहुत तड़के (गजरदम) प्रायः जल

१–परन्तु शतशः धन्यवाद है उन परोपकारी विमल मन्त्री वस्तुपाल तेजपाल आदि जैनश्रावकों को जिन्हों ने प्रजाके इस महत् कष्ट को दूर करने के लिये हजारों कुँए, वावड़ी, पुष्करिणी और तालाव वनवा दिये (यह विषय उन्हीं के इतिहास में लिखा है), देखो। जैसलमेर के पास लोद्रवकुण्ड, रामदेहरे के पास उदयकुंड और अजमेर के पास पुष्करकुँड, ये तीनों अगाध जलवाले कुंड सिंधु देश के निवासी राजा उदाई की फौज में पानी की तंगी होने से पद्मावती देवी ने (यह पद्मावती राजा उदाई की रानी थी, जव इस को वैराग्य उत्पन्न हुआ तव इस ने अपने पति से दीक्षा लेनेकी आज्ञा मांगी, परन्तु राजा ने इस से यह कहा कि–दीक्षा लेने की आज्ञा मैं तुम को तव दूंगा जव तुम इस वात को स्वीकार करो कि "तप के प्रभाव से मर कर जव तुम को देवलोक प्राप्त हो जावे तव किसी समय संकट पड़ने पर यदि मैं तुम को याद करूं तव तुम मुझ को सहायता देओ" रानी ने इस वात को स्वीकार कर लिया और समय आने पर अपने कहे हुए वचन का पालन किया) वनवाये, एवं राजा अशोकचन्द्र आदिने भी अपने चम्पापुरी आदि जल की तंगी के स्थानों में वृक्ष, सड़कें और जल की नहरें वनवाना शुरू कियाथा, इसी प्रकार मुर्शिदावाद में अभी जो गंगा है उस को पद्मा नाम की वड़ी नदी से नाले के रूपमें निकलवा कर जागत् सेठ लाये थे, ये सव वातें इतिहासों से विदित हो सकती हैं ॥

२–हम ऐसे अवसर पर श्रीमान् राजराजेश्वर, नरेन्द्रशिरोमणि, महाराजाधिराज श्रीमान् श्री गङ्गासिंह जी वहादुर वीकानेर नरेश को अनेकानेक धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते हैं कि–जिन्हों ने इस समय प्रजा के हित और देश की आवादी के लिये अपने राज्य में नहर के लाने का पूरा प्रयत्नकर कार्यारम्भ किया है, उक्त नरेशमें वड़ा प्रशंसनीय गुण यह है कि–आप एक मिनट भी अपना समय व्यर्थ में न गमा-कर सदैव प्रजा के हित के लिये सुविचारों को करके उन में उद्यत रहा करते हैं, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि–कुछ वर्षों पहिले वीकानेर किस दशा में था और आज कल उक्त नरेश के सुप्रताप और श्रेष्ठ प्रवन्ध से किस उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा है, सिर्फ यही हेतु है कि–उक्त महाराज की निर्मल कीर्त्ति संसार भर में फैल रही है, यह सव उनकी उत्तम शिक्षा और उद्यम का ही फल है, इसी प्रकार से प्रजा का हित करना सव नरेशों का परम कर्त्तव्य है ॥

साफ रहता है इसलिये उस समय पीने के लिये जल भर लेना चाहिये, लोगों के सुख के लिये सर्कार को यह भी उचित है कि–ऐसे जलस्थानों पर पहरा बिठला देवे कि–जिस से पहरेवाला पुरुष जलाशय में नहाना, धोना, पशुओं को धोना और मरे आदमी की जलाई हुई राख आदि का डालना आदि बातों को न होनेदेवे ।

बहुत पानी वाली जो नदी होती है तथा जिस का पानी जोर से बहता है उस का तो मैल और कचरा तले बैठ जाता है अथवा किनारे पर आकर इकट्ठा हो जाता है परन्तु जो नदी छोटी अर्थात् कम जलवाली होती है तथा धीरे २ बहती है उस का सब मैल और कचरा आदि जल में ही मिला रहता है, एवं तालाव और कुँए आदि के पानी में भी प्रायः मैल और कचरा मिला ही रहता है, इस लिये छोटी नदी तालाव और कुँए आदि के पानी की अपेक्षा बहुत जलवाली और जोर से बहती हुई नदी का पानी अच्छा होता है, इस पानी के सुधरे रहने का उपाय जैनसूत्रों में यह लिखा है कि उस जल में घुस के स्नान करना, दाँतोन करना, वस्त्र धोना, मुर्दे की राख डालना तथा हाड़ (फूल) डालना आदि कार्य नहीं करने चाहियें, क्योंकि–उक्त कार्यों के करने से वहां का जल खराब होकर प्राणियों को रोगी कर देता है और यह बात (प्राणियों को रोगी करने के कार्यों का करना) धर्म के कायदे से अत्यन्त विरुद्ध है, अस्थि या मुर्दे की राख से हवा और जल खराब न होने पावे इस लिये उन (अस्थि और राख) को नीचे दबा कर ऊपर से स्तूप (थम्भ या छतरी) करा देनी चाहिये, यही जैनियों की परम्परा है, यह परम्परा बीका-नेर नगर में प्रायः सब ही हिन्दुओं में भी देखी जाती है और विचार कर देखा जावे तो यह प्रथा बहुत ही उत्तम है, क्योंकि–वे अस्थि और राख आदि पदार्थ ऐसा करने से प्राणि-यों को कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते हैं, ज्ञात होता है कि–जब से भरत चक्री ने कैलास पर्वत पर अपने सौ भाइयों की राख और हड्डियों पर स्तूप करवाये थे तब ही से यह उत्तम प्रथा चली है ॥

कुँएका पानी—पहिले कह चुके हैं कि–पानी का खारा और मीठा होना आदि पृथिवी की तासीर पर ही निर्भर है इसलिये पृथिवी की तासीर का निश्चय कर के उत्तम तासीर वाली पृथिवी पर स्थित जल को उपयोग में लाना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि–गहरे कुँए का पानी छीलर (कम गहरे) कुँए के जल की अपेक्षा अच्छा होता है[1]। जब कुँए के आस पास की पृथिवी पोली होती है और उस में कपड़े धोने से उन (कपड़ों) से छूटे हुए मैल का पानी स्नान का पानी और बरसात का गन्दा पानी कुँए में भरता है (प्रविष्ट होता है) तो उस कुँए का जल बिगड़ जाता है, परन्तु यदि कुँआ

१–जैसे बीकानेर में साठ पुरस के गहरे कुँए हैं, इसलिये उन का जल निहायत उमदा और साफ है ॥

गहरा होता है अर्थात् साठ पुरस का होता है तो उस कुँए के जल तक उस मैले पानी का पहुँचना सम्भव नहीं होता है।

इसी प्रकार से जिन कुँओं पर वृक्षों के झुण्ड लगे रहते हैं वा झूमा करते हैं तो उन (कुँओं) के जल में उन वृक्षों के पत्ते गिरते रहते हैं तथा वृक्षों की आड़ रहने से सूर्य की गर्मी भी जलतक नहीं पहुँच सकती है, ऐसे कुँओं का जल प्रायः विगड़ जाता है।

इस के सिवाय–जिन कुँओं में से हमेशा पानी नहीं निकाला जाता है उन का पानी भी वन्द (बँधा) रहनें से खराव हो जाता है अर्थात् पीने के लायक नहीं रहता है, इसलिये जो कुँआ मज़बूत बँधा हुआ हो, नहाने धोने के पानी का निकास जिस से दूर जाता हो, जिस के आस पास वृक्ष या मैलापन न हो और जिस की गार (कीचड़) वार २ निकाली जाती हो उस कुँए का, आस पास की पृथिवी का मैला कचरा जिस के जल में न जाता हो उस का, बहुत गहरे कुँए का तथा खारी पनसे रहित पृथिवी के कुँए का पानी साफ़ और गुणकारी होता है॥

कुण्ड का पानी—कुण्ड का पानी वरसात के पानी के समान गुणवाला होता है, परन्तु जिस छत से नल के द्वारा आकाशी पानी उस कुण्ड में लाया जाता है उस छत पर धूल, कचरा, कुत्ते विल्ली आदि जानवरों की वींट तथा पक्षियों की विष्ठा आदि मलीन पदार्थ नहीं रहने चाहियें, क्योंकि–इन मलीन पदार्थों से मिश्रित होकर जो पानी कुण्ड में जायगा वह विकारयुक्त और खराव होगा, तथा उस का पीना अति हानिकारक होगा, इस लिये मैल और कचरे आदि से रहित स्वच्छता के साथ कुण्ड में पानी लाना चाहिये, क्योंकि–स्वच्छता के साथ कुण्ड में लाया हुआ पानी अन्तरिक्ष जल के समान वहुत गुणकारक होता है, परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–यह जल भी सदा वन्द रहने से विगड़ जाता है, इस लिये हमेशा यह पीने के लायक नहीं रहता है।

कुण्ड का पानी स्वाद में मीठा और ठंढा होता है तथा पचने में भारी है।

पानी के गुणावगुण को न समझने वाले वहुत से लोग कई वर्षों तक कुण्ड को धोकर साफ़ नहीं करते हैं तथा उस के पानी को बड़ी तंगी के साथ खरचते हैं तथा पिछले चौमासे के वचे हुए जल में दूसरा नया वरसा हुआ पानी फिर उस में ले लेते हैं, वह पानी वड़ा भारी नुकसान पहुँचाता है इस लिये कुण्डके पानी के सेवन में ऊपर कही हुई वातों का अवश्य खयाल रखना चाहिये तथा एक वरसात के हो चुकने के वाद जब छत छप्पर और मोहरी आदि धुल कर साफ़ हो जावें तव दूसरी बरसात का पानी कुण्ड में लेना चाहिये तथा जल को छान कर उस के जीवों को कुँए के वाहर कुण्डी आदि में

डलवा देना चाहिये कि–जिस से वे (जीव) मर न जावें, क्योंकि–जीवदया ही धर्म्म का मूल है ॥

नल का पानी—जो पानी नदियों या तालावों में से छनने के वास्ते गहरे कुँए में लिया जाता है तथा वहां से छन कर नल में आता है वह पानी नदी के जल से अच्छा होता है, इस की प्रथा वादशाही तथा राजों की अमलदारी में भी थी अर्थात् उस समय में भी नदी के इधर झरने वनाये जाते थे, उन में से जा आ कर जो जल जमा होता था वह जल उपयोग में लाया जाता था, क्योंकि–वह जल अच्छा होता था।

आज कल के वहुत से पढ़े लिखे नई रोशनी वाले यह कहते हैं कि–"शहरों के वाहर तो दूर २ से पानी की नहरें राजाओं ने वनवाई थीं, इस का तो इतिहास है परन्तु नल किसी राजा ने भी नहीं लगवाया था, क्योंकि–इस का कोई सवूत नहीं मिलता है इत्यादि" परन्तु यह उन लोगों का वड़ा भ्रम है क्योंकि–देखो ! संसार में हर एक विद्या अनादि काल से चली आती है, यह दूसरी वात है कि–कोई विद्या किसी जमाने में लुप्त हो जाती है और कोई प्रकट हो जाती है, इस समयमें सर्कार ने प्रजा के सुख के लिये तथा अपने स्वार्थके लिये नल वनवाने का प्रयत्न अच्छा किया है तथा और भी अनेक अतिलाभदायक पदार्थ वनाये हैं जिन को देख कर उन के उद्यम और उन की वुद्धि की जितनी प्रशंसा की जावे वह थोड़ी है, परन्तु इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि–इन्होंने जैसा किया है वैसा संसार में पहिले कभी किसी ने नहीं किया था, क्योंकि–हर एक विद्या अनादि है, हां समय

१–विचार कर देखा जावे तो आखिरकार तो इस दया का पूर्णतया पालन होना अति कठिन है, क्योंकि–विचारणीय विषय यह है कि–वे जीव यदि कुण्डी में डलवा दिये जावें और कुण्डी में पानी थोड़ा हो तो वे गर्मी से सूख कर मरते हैं, यदि अधिक जल हो तो उन को पानी के साथ में जानवर पी जाते हैं, यदि वहुत दिनों तक पड़े रहें तो गन्दगी के डर से कुँए का मालिक धोकर उन्हें जमीन पर फेंक देता है, इस के सिवाय जीवों के ले जाने वाले भी जलाशय में न पहुँचाकर मार्ग में ही गिरा देते हैं, तथा एक जल के जीव को दूसरे कुँए के जल में डाला जावे तो दोनों ही मर जाते हैं, वस विचार कर देखो तो आखिर को हिंसा का वदला देना ही होगा, संसार वास में इस का कोई उपाय नहीं है, देखो ! गौतम ने वीर भगवान् से प्रश्न किया है कि "जीवे जीव आहार, विना जीव जीवे नहीं। भगवत कहो विचार, दयाधर्म किस विध पले" ॥ १ ॥ इसका अर्थ सरलही है। इस पर भगवान् ने यह उत्तर दिया है कि–"जीवे जीव आहार, जतना से वरतो सदा ॥ गौतम सुनो विचार, टले जितनो ही टालिये" ॥ १ ॥ इस का भी अर्थ सरल ही है ! वस इस से सिद्ध हुआ कि–हृदयमें जो करुणा का रखना है–वही दया धर्म है, यही जैनागमों में भी कहागया है, देखो ।"जयं चरे जयं चिट्ठे जयं आसे जयं सये ॥ जयं भुजंते जयं भासन्तो पाव कम्म न वंधई" ॥ १ ॥ अर्थात् चलना, खड़ा होना, वैठना, सोना, खाना और वोलना आदि सव क्रियाओं को यतना (सावधानता) के साथ करना चाहिये कि जिस से पापकर्म न वँधे ॥ १ ॥ अव इस ऊपर लिखी हुई सम्मति को विचार कर समयानुसार प्रत्येक क्रिया में जीवदया का ध्यान रखना अपना काम है ॥

पाकर उस का रूपान्तर हो जाता है अथवा लुप्तप्राय हो जाती है, नल के विषय में जो उन लोगों का यह कथन है कि–इस का कोई सबूत वा इतिहास नहीं मिला है, सो बेशक उन लोगों को इस का सबूत वा इतिहास नहीं मिला होगा परन्तु देशाटन करनेवाले और प्राचीन इतिहासों के वेत्ता लोग तो इस का प्रमाण प्रत्यक्ष ही बतला सकते हैं, देखिये। श्रेणिक राजा के समय में मगध देश में राजगृह नामक एक नगर था जो कि बहुत ही रौनकपर था, उस नगर में श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार मन्त्री ने सम्पूर्ण नगर की प्रजा के हित के लिये ऐसी बुद्धिमानी से नल बनवाया था कि जिस को देखकर अच्छे २ बुद्धिमान् लोगों की भी बुद्धि काम नहीं देती थी (आश्चर्य में पड़ जाती थी) अब भी उस राजगृह नगर के स्थान में एक छोटा सा ग्राम है तथा उक्त मन्त्री की बुद्धिमानी का चिह्न अभीतक वहां मौजूद है अर्थात् वहां बहुत से कुण्ड बने हुए हैं और उन में पहाड़ के भीतर से गर्म पानी सदा आता है, एक सातधारा का भी कुण्ड है और वे सातों धारायें सदा उस कुण्ड में गिरती रहती हैं, इस पर भी आश्चर्य यह है कि–उन कुण्डों में पानी उतने का उतना ही रहता है, इस स्थान का विशेष वर्णन क्या करें, क्योंकि–वहां की असली कैफियत तो वहां जाकर नेत्रों से देखने ही से ठीक रीति से मालूम हो सकती है, वहां की कैफियत को देख कर अंग्रेजों की भी अक्ल हैरान हो गई है अर्थात् आजतक अंग्रेजों को यह भी पता नहीं लगा है कि–यह पानी कहां से आता है।

इसी प्रकार आगरे में भी ताज़ बीबी के रौज़े में एक फ़ुहारा ऐसा लगा हुआथा कि वह अष्ट प्रहर (रात दिन) चला करता था और हौद में पानी उतने का उतना ही रहता था उस की जांच करने के लिये अंग्रेजों ने उसे तोड़ा परन्तु उस का कुछ भी पता न लगा और फिर वैसा ही बनवाना चाहा लेकिन् वैसा फिर बन भी न सका, इसलिये प्यारे मित्रो! अपने मुख से ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये कि–पहिले ऐसा कार्य कभी नहीं हुआ था, क्योंकि–अपने लोग अभी कूपमण्डूक की गिनती में गिने जाते हैं इसलिये हम लोग सागर के विस्तार को कैसे जान सकते हैं, अस्तु।

जो लोग परिश्रम नहीं करते हैं किन्तु रातदिन गद्दी तकियों के नौकर बने रहते हैं उन को नल का पानी वृथा पुष्ट और सत्त्वहीन कर देता है, किन्तु जो लोग परिश्रमी हैं उन के लिये यह (नल का पानी) लाभदायक है, इस के सिवाय नल के जल से जो २ लाभ पहुँचे हैं तथा पहुँच रहे हैं उनके वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उस के लाभ प्रत्यक्ष ही दीख रहे हैं॥

सरोवर (तालाब) का पानी—पृथिवी के निम्न (नीचे) भागों में जो बरसात के पानी का संग्रह हो जाता है उसको तालाब या सरोवर कहते हैं, बहुत से तालाब ऐसे भी होते हैं कि–जिन के भीतर पहाड़ की तलहटियों का झरना निरन्तर बहा करता है,

इस लिये उन में अटूट पानी रहता है, परन्तु बहुत से तो प्रायः ऐसे ही होते हैं कि जो तालाव केवल वरसात के ही पानी से भरा करते हैं और वरसात के न होने से सूख जाते हैं, वरसात का जो पानी आस पास के प्रदेशों से बह कर तालावों में आता है वह थोड़े दिनोंतक स्थिर रह कर पीछे निर्मल हो जाता है, यदि तालाव के पानी में किसी प्रकार की मलीनता न होने पावे तो वह पानी अच्छा रहता है अर्थात् उस को पीने के उपयोग में ला सकते हैं, परन्तु जिस तालाव में लोग नहाते धोते हों तथा अन्य किसी प्रकार की मलीनता करते हों तो उस तालाव का पानी पीने के उपयोग में कभी नहीं लाना चाहिये।

अपने देश के लोग शरीरसंरक्षण के विषय में बहुत ही अज्ञ हैं इसलिये नहाने धोने आदि की मलीनता से युक्त पानी के पीने से होनेवाली हानियों को वे न जान कर मलीन पानी को भी अपने पीनेके उपयोग में ले आते हैं यह बहुत ही शोक का विषय है।

तालाव का पानी मीठा, भारी, रुचिकर, त्रिदोषहर[1] और शर्दी करनेवाला है, परन्तु वही जल मैला होने से अनेक रोगों को उत्पन्न करता है।

नदी के पानी के विगड़ने के जितने हेतु कह चुके हैं वे ही सब हेतु तालाव के पानी के विगड़ने के भी जानने चाहियें, हां इतनी विशेषता और भी है कि—नदी का पानी बहता रहता है और तालाव का पानी बँधा हुआ रहता है इसलिये नदी के विगड़े हुए पानी की अपेक्षा तालाव के विगड़े हुए पानीसे अधिक हानि का संभव होता है॥

ऋतु के अनुसार पानी का उपयोग ॥

हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में सरोवर और तालाव का पानी हितकारी है, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में कुँए बावड़ी तथा पर्वत के झरने का पानी उत्तम है, वर्षा ऋतु में अन्तरिक्षजल अर्थात् वरसात की धारा से छान कर लिया हुआ अथवा कुँए का पानी पीने के लायक होता है तथा शरद् ऋतु में नदी का पानी और जिस जलाशय पर सब दिन सूर्य की उष्ण किरणें पड़ती हों तथा रात्रि में चन्द्रमा की शीतल किरणें पड़ती हों उस जलाशय का पानी हितकारक है, क्योंकि—शरद् ऋतु का ऐसा पानी अन्तरिक्षजल के समान गुणकारी, रसायनरूप, बलदाता, पवित्र, ठंढा, हलका और अमृत के समान है।

वैद्यकशास्त्र के एक प्राचीन माननीय आचार्य का ऋतुओं में जल के उपयोग के विषय में यह कथन है कि—पौष मास में सरोवर का, माघमास में तालाव का फागुन में कुँए का, चैत्र में पहाड़ी कुण्डों का, वैशाख में झरनों का, जेठ में पृथिवी को भी अपने

१—त्रिदोषहर—अर्थात् वात, पित्त और कफ को तथा इन से उत्पन्न हुए रोगों को मिटानेवाला॥

प्रवल प्रवाह से फाड़ कर वहनेवाले नालों का, आषाढ़ में कुँए का श्रावण में अन्तरिक्ष का, भाद्रपद में कुँएका, आश्विन में पहाड़ के कुण्डों का और कार्त्तिक तथा मार्गशीर्ष (मिग्सिर) में सव जलाशयों का पानी पीने के योग्य होता है ॥

खराब पानी से होनेवाले उपद्रव ॥

खराव पानी से अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं जिन का परिगणन करना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है, इस लिये उन में से कुछ मुख्य २ उपद्रवों का विवेचन करते हैं- इस वात को वहुत से लोग जानते हैं कि-कई एक रोग ऐसे हैं जो कि जन्तुओं से उत्पन्न होते हैं और जन्तुओं को उत्पन्न करनेवाला केवल खराव पानी ही है ।

पृथिवी के योगसे पानी में खार मिलने से वह (पानी) मीठा और पाचनशक्तिका वर्धक (वढ़ानेवाला) होता है, परन्तु यदि पानी में क्षार का परिमाण मात्रा से अधिक वढ़ जाता है तो वही पानी कई एक रोगों का उत्पादक हो जाता है, जव पानी में सड़ी हुई वनस्पति और मरे हुए जानवरों के दुर्गन्धवाले परमाणु मिल जाते हैं तो स्वच्छ जल भी विगड़ कर अनेक खरावियों को करता है, उस विगड़े हुए पानी से होनेवाले मुख्य २ ये उपद्रव हैं:—

१–**ज्वर**—ठंढ देकर आनेवाले ज्वर का, विषमज्वर का तथा मलेरिया नाम की हवा से उत्पन्न होनेवाले ज्वर का मुख्य कारण खराव पानी ही है, क्योंकि-देखो! विकृत पानी की आर्द्रता से पहिले हवा विगड़ती है और हवा के विगड़ने से मनुष्य की पाचनशक्ति मन्द पड़ कर ज्वर आने लगता है, ठंढ देकर आनेवाला ज्वर[1] प्रायः आश्विन तथा कार्त्तिक मास में हुआ करता है, उस का कारण ठीक तौर से मलेरिया हवा ही मानी गई है, क्योंकि-उस समय में खेतों के अन्दर काकड़ी और मतीरे आदि की वेलों के पत्ते अध जले हो जाते हैं और जव उन पर पानी गिरता है तव वे (पत्ते) सड़ने लगते हैं, उन के सड़ने से मलेरिया हवा उत्पन्न होकर उस देश में सर्वत्र ज्वर को फैला देती है, तथा यह ज्वर किसी २ को तो ऐसा दवाता है कि दो तीन महीनों तक पीछा नहीं छोड़ता है, परन्तु इस वात को पूरे तौर पर हमारे देश-वासी विरले ही जानते हैं ॥

२–**दस्त वा मरोड़ा**—इस वात का ठीक निश्चय हो चुका है कि-दस्तों तथा मरोड़े का रोग भी खरावपानी से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि-देखो। यह रोग चौमासे में विशेष होता है और चौमासे में नदी आदि के पानी में वरसात से वहकर आये हुए

१–यह मलेरिया से उत्पन्न होनेवाला ज्वर उक्त मासों में मारवाड़ देशमें तो प्रायः अवश्य ही होता है ॥

मैले पानी का मेल होता है, इसलिये उस पानी के पीने से मरोड़ा और अतीसार का रोग उत्पन्न हो जाता है ॥

३-**अजीर्ण**—भारी अन्न और खराब पानी से पाचनशक्ति मन्द पड़ कर अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है ॥

४-**कृमि वा जन्तु**—खराब अर्थात् विगड़े हुए पानी से शरीर के भीतर अथवा शरीर के बाहर कृमि के उत्पन्न होने का उपद्रव हो जाता है, यह भी जान लेना चाहिये कि-स्वच्छ पानी कृमि से उत्पन्न होनेवाले त्वचा के दर्दों को मिटाता है और मैला पानी इसी कृमि को फिर उत्पन्न कर देता है ॥

५-**नहरू (वाला)**-नहरू[३] का दर्द बड़ा भयंकर होता है, क्योंकि-इस के दर्द से बहुत से लोगों के प्राणों की भी हानि हो जाने का समाचार सुना गया है, यह रोग खासकर खराब पानी के स्पर्श से तथा विना छने हुए पानी के पीने से होता[४] है ॥

६-**त्वचा (चमड़ी) के रोग**—दाद खाज और गुमड़े आदि रोग होने के कारणों-मेंसे एक कारण खराब पानी भी है तथा इस में प्रमाण यही है कि-जन्तुनाशक औष-धोंसे ये रोग मिट जाते हैं और जन्तुओं की उत्पत्ति विशेष कर खराब पानी ही से होती है ॥

७-**विषूचिका (हैज़ा)**-बहुत से आचार्य यह लिखते हैं कि-विषूचिका की उत्पत्ति अजीर्ण से होती है तथा कई आचार्यों का यह मत है कि-इस की उत्पत्ति पानी तथा हवा में रहनेवाले ज़हरीले जन्तुओं से होती है, परन्तु विचार कर देखा जावे तो इन दोनों मतों में कुछ भी भेद नहीं है, क्योंकि-अजीर्ण से कृमि और कृमि से अजीर्ण का होना सिद्ध ही है ॥

८-**अश्मरी (पथरी)**-पथरी का रोग भी पानी के विकार से ही उत्पन्न होता है, लोग यह समझते हैं कि-भोजन में धूल अथवा कंकड़ों के आ जाने से पेट में जाकर पथरी बँध जाती है, परन्तु यह उन की भूल है, क्योंकि-पथरी का मुख्य हेतु खार-वाला जल ही है अर्थात् खारवाले जल के पीनेसे पथरी हो जाती[६] है ॥

१-इस बात का अनुभव तो बहुत से लोगों को प्रायः हुआ ही होगा ॥

२-जांगल देश का पानी लगने से जो रोग होता है उस को "पानीलगा" कहते हैं ॥

३-मारवाड़ देश के ग्रामों में यह रोग प्रायः देखा जाता है, जिस का कारण ऊपर लिखा हुआ ही है ॥

४-इस बात को गुजरात देशवाले बहुत से लोग समझते हैं ॥

५-असल में यह बात माधवाचार्य के भी देखने में नहीं आई, ऐसा प्रतीत होता है, किन्तु प्राचीन जैन सोमाचार्य ने जो बात लिखी है उसी को आधुनिक डाक्टर लोग भी मानते हैं ॥

६-पानी के विकार से होनेवाले ये कुछ मुख्य २ रोग लिखे गये हैं तथा ये अनुभवसिद्ध हैं, यदि इन में किसी को शंका हो तो परीक्षा कर निश्चय कर सकता है ॥

पानी की परीक्षा तथा स्वच्छ करने की युक्ति ॥

अच्छा पानी रंग वास तथा स्वाद से रहित, निर्मल और पारदर्शक होता है, यदि पानी में सेवाल अथवा वनस्पति का मेल होता है तो पानी नीले रंग का होजाता है तथा यदि उस में प्राणियों के शरीर का कोई द्रव्य मिला होता है तो वह पीले रंग का हो जाता है।

यद्यपि पानी की परीक्षा कई प्रकार से हो सकती है तथापि उस की परीक्षा का सामान्य और सुगम उपाय यह है कि–पानी को पारदर्शक साफ काच के प्याले में भर दिया जावे तथा उस प्याले को प्रकाश (उजाले) में रक्खा जावे तो पानी का असली रंग तथा मैलापन मालूम हो सकता है।

किसी २ पानी में वास होने पर भी अनेक वार पीने से अथवा सूंघने से वह एक-दम नहीं मालूम होती है परन्तु ऐसे पानी को उवाल कर उस की वास लेने से (यदि उस में कुछ वास हो तो) शीघ्र ही मालूम हो जाती है।

यह जो पानी की परीक्षा ऊपर लिखी गई है वह जैन लोगों में प्रचलित प्राचीन परीक्षा है, परन्तु पानी की डाक्टरी (डाक्टरों के मत के अनुसार) परीक्षा इस प्रकार है कि–पानी को एक शीशी में भर कर उस को खूब हिलाना चाहिये, पीछे उस पानी को सूंघना चाहिये, इस के सिवाय दूसरी परीक्षा यह भी है कि–पानी में पोटास डालने से यदि वह वास देवे तो समझ लेना चाहिये कि–पानी अच्छा नहीं है।

यह भी जान लेना चाहिये कि–पानी में दो प्रकार के पदार्थों की मिलावट होती है–उन में से एक प्रकार के पदार्थ तो वे हैं जो कि पानी के साथ पिघल कर उस में मिले रहते हैं और दूसरे प्रकार के वे पदार्थ हैं जो कि–पानी से अलग होकर जानेवाले हैं परन्तु किसी कारण से उस में मिल जाते हैं।

काच के प्याले में पानी भर कर थोड़ी देर तक स्थिर रखने से यदि तलभाग में कुछ पदार्थ वैठ जावे तो समझ लेना चाहिये कि-इस में दूसरे प्रकार के पदार्थों की मिलावट है।

पानी में क्षार आदि पदार्थों का कितना परिमाण है इस बात को जाननेके लिये यह उपाय करना चाहिये कि–थोड़े से पानी को तौल कर एक पतीली में डालकर आग पर चढ़ा कर उस को जलाना चाहिये, पानी के जल जाने पर पतीली के पेंदे में जो क्षार आदि पदार्थ रह जावें उन को कांटे से तौल लेना चाहिये, वस ऐसा करने से मालूम हो जायगा कि इतने पानी में क्षार का भाग इतना है, यदि एक ग्यालन (One gallon) पानी में क्षार आदि पदार्थों का परिमाण ३० ग्रीन (30 Grain) तक हो तब तक तो वह पानी पीने के लायक गिना जाता है तथा ज्यों २ क्षार का परिमाण कम हो त्यों २

पानी को विशेष अच्छा समझना चाहिये, परन्तु जिस पानी में क्षार का भाग बिलकुल न हो वह पानी निर्मल होने पर भी पीने में स्वाद नहीं देता है ॥

क्षार से मिला हुआ पानी केवल पीने में ही मीठा लगता हो यह बात नहीं है किन्तु क्षार से मिला हुआ पानी पाचनशक्ति को भी उत्तेजित करता है, परन्तु यदि पानी में ऊपर लिखे परिमाण से भी अधिक क्षार का परिमाण हो तो वह पानी पीने में खारी लगता है और खारी पानी हानि करता है।

यद्यपि पानी को स्वच्छ अर्थात् निर्मल करने के बहुत से उपाय हैं तथापि उन सबों में से सहज उपाय वही है कि–जो जैन लोगों में प्रसिद्ध है अर्थात् पानी को उबाल कर पीना, इस की क्रिया इस प्रकार से है कि–सेर भर पानी को किसी स्वच्छ कलई के वर्त्तन में अथवा पतीली में भर कर अग्नि पर चढ़ा देना चाहिये तथा धीमी आंच से उसे औंटाना चाहिये, जब पानी का चतुर्थांश जल जावे अर्थात् सेर भर का तीन पाव रह जावे तब उस को किसी मिट्टी के वर्त्तन में शीतल कर तथा छान कर पीना चाहिये, इस प्रकार से यह जल अति स्वच्छ गुणकारी और हलका हो जाता है तथा इस युक्ति से (उबालकर) शुद्ध किया हुआ पानी चाहे किसी भी देश का क्यों न पिया जावे कभी हानि नहीं कर सकता है।

पानी में थोड़ीसी फिटकड़ी अथवा निर्मली के डालने से भी वह शुद्ध हो जाता है अर्थात् उसके (फिटकड़ी वा निर्मली के) डालने से पानी में मिले हुए सूक्ष्म रजःकण नीचे बैठ जाते हैं।

पानी को विना छाने कभी नहीं पीना चाहिये क्योंकि–विना छना हुआ पानी पीने से उस में मिले हुए अनेक सूक्ष्म पदार्थ पेट में जाकर बहुत हानि करते हैं तथा पानी के छानने के लिये भी मोटा और मज़बूत बुना हुआ कपड़ा लेना चाहिये क्योंकि बारीक कपड़े से छानने से पानी में मिले हुए सूक्ष्म पदार्थ वस्त्र में न रह कर पानी में ही मिले रह जाते हैं और पेट में जाकर हानि करते हैं।

डाक्टरी क्रिया से भी पानी की शुद्धि हो सकती है और वह (क्रिया) यहहै कि–एक मटकी की पेंदी में बारीक छिद्र (छेद वा सूराख़) कर उस में आधे भाग तक रेत तथा कोयलों का भुरका (चूरा) भर देना चाहिये और उस मटकी के ऊपर एक दूसरी मटकी पानी से भर कर रखना चाहिये तथा उस पानीवाली मटकी की पेंदी में भी एक छिद्र करके उसमें डोरा पोकर (पिरो कर) लटकता हुआ रखना चाहिये, इस डोरे के द्वारा पानी टपक २ कर रेत तथा कोयलेवाली नीचे की मटकी में गिरेगा, इस (रेत-

१–इस जल को कल्पसूत्र में भी शुद्ध लिखा है ॥

२–इस क्रिया को फिल्टरक्रिया कहते हैं ॥

तथा कोयलेवाली) मटकी के नीचे एक तीसरी मटकी और भी रखना चाहिये, क्योंकि-बीच की मटकी की पेंदी में स्थित वारीक छिद्रों के द्वारा छन कर स्वच्छ पानी उसी (सब से नीचेकी तीसरी) मटकी में जमा होगा, वस वही पानी पीने के उपयोग में लाना चाहिये ॥

पानी का औषध रूप में उपयोग ॥

जैसे खराव पानी वहुत से रोगों को उत्पन्न करता है उसी प्रकार पानी वहुत से रोगों को मिटाने में औषध का भी काम देता है, अशुद्ध पानी से उत्पन्न होनेवाले कुछ रोगों को पहिले वतला चुके हैं, वे रोग पीने के पानी को शुद्ध कर उपयोग में लानेसे रुक सकते हैं, इसविषय में इस वात का जानना वहुत आवश्यक है कि-पानी का औषधरूप में उपयोग उस के शीत[2] और उष्ण गुण के द्वारा होता है, इसका अब संक्षेप से वर्णन करते हैं:-

ठंढे पानी के गुण ये हैं कि-ठंढा पानी रक्तस्तम्भक है, दाहशामक है और संकोच कारक होनेसे गिरते हुए खून को वंद कर देता है, गर्मी को शान्त करता है तथा नसों का संकोच कर उन में शक्ति पहुँचाता है, इस लिये यह नीचे लिखे दर्दों में वहुत उपयोगी है:—

१-रक्तस्राव (खून का गिरना)—जव नकसीर गिरती हो तव तालु पर ठंढे पानी की धारा के डालने से रक्त का गिरना वंद हो जाता है, यदि ऐसा करने से रुधिर का गिरना वंद न हो तो नाक में ठंढे पानी के छींटे अथवा पिचकारी के मारने से उसी वख़्त वन्द हो जाता है ।

घाव से गिरते हुए रुधिर पर ठंढे पानी से भिगो कर वस्त्र की पट्टी वांध देने से रुधिर का गिरना एकदम वन्द हो जाता[3] है, इस लिये तलवार आदि के घाव में भीगी हुई पट्टी वांध देने से वहुत लाभ होता है, अतः जव घाव वा ज़ख़्म से लोहू गिरता[4] हो तो उसको वंद करने के लिये उस (घाव वा ज़ख़्म) पर भीगी हुई पट्टी हर दम रखनी चाहिये[5] ।

१-रेल में यात्रा करते समय वहुत से लोगों ने स्टेशनों पर एक तिपाईपर रक्खे हुए तीन घड़ों को प्रायः देखा होगा वह यही क्रिया है ॥

२-शीत गुण के द्वारा जो पानी का औषधरूप में उपयोग होता है-उसे शीतोपचार कहते हैं तथा उष्ण गुण के द्वारा जो उस का औषधरूप में उपयोग होता है उसे उष्णोपचार कहते हैं ॥

३-देखो । जव हाथ में चाकू आदि कोई हथियार लगजाता है तव प्रायः पानी से भिगोकर वस्त्र की पट्टी वांध देते हैं, सो यह रीति वहुत उत्तम है ॥

४-कभी २ ऐसा भी होता है कि-चोट आदि के लगने पर खून नहीं निकलता है किन्तु खून के जमजाने से वह स्थान नीला पड़ जाता है, ऐसी दशा में भी उस पर जलका भीगा हुआ वस्त्र वांधे रखने से जमा हुआ खून विखर जाता है तथा दर्द मिट जाता है ॥

५-यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-घाव के लगने पर ठंढे पानी का उपयोग तव ही फायदे मन्द होता है जव कि वह शीघ्र ही किया जावे, क्योंकि वहुत देर के वाद उसका उपयोग करने से फायदा होने का संभव कम रहता है ॥

प्रसूति आदि के समय में जब लोहू का स्राव हो तब गर्भाशय में ठंढा पानी डालने से अथवा उस पर वर्फका टुकड़ा रखने से लोहू का स्राव बन्द हो जाता है, ऐसे समय में पेडू सांथल तथा उत्पत्त्यवयव (योनि) पर भी ठंढे पानी से भीगी हुई पट्टी के रखने से लाभ होता है ।

जब गर्भिणी स्त्री के लोहू का स्राव होने लगे और गर्भपात होने के चिह्न मालूम पड़ें तो शीघ्रही पेट पेडू तथा जननेन्द्रिय (योनि) पर ठंढे पानीसे भीगी हुई पट्टी रखना चाहिये, ऐसा करने से उस समय गर्भपात का होना रुक जाता है ।

स्त्रियों के मासिक धर्म के समय में यदि परिमाण से (जितना होना चाहिये उस से) अधिक रक्तस्राव हो तब भी ठंढे पानी का उपयोग करना चाहिये ।

इसी प्रकार मूर्च्छा मृगी और उन्माद (हिस्टीरिया) आदि रोगों में तथा मेस्मेरिजम से वेहोशी आदि की दशा में आंख तथा शिरआदि अंगों पर ठंढे पानी के छींटे देने से शीघ्र ही जाग्रदवस्था हो जाती है ॥

२ संकोचन-ठंढ पानी स्नायु का संकोच न करता है इस लिये जब वृषणों (अण्ड-कोशों) में अन्तड़िया उतर कर बहुत पीड़ा करें तब वृषणों पर ठंढे पानीसे भीगी हुई पट्टी अथवा वर्फ रखना चाहिये, क्यों कि ऐसा करने से अन्तड़ियां संकुचित हो कर उपर को चढ़ जावेंगी ।

स्त्रियों के प्रदर नामक एक रोग हो जाता है जिस के होने से जननेन्द्रिय से सफेद लाल तथा मिश्रित रंगके पानी का तथा रक्त का स्राव होता है, यह ठंढे पानी की पिच-कारी के लगाने से अथवा ठंढे पानी के छींटे देने से बन्द हो जाता है ।

एवं कभी २ स्त्रियों के डील (फूँदा) और निर्बल बाल कों के काँच निकल आती है वह भी ठंढे पानी के प्रक्षालन (धोने) से संकोच पाकर बैठ जाती है ।

किन्हीं २ स्त्रियों के मूत्र मार्ग में बैठ ते उठ ते समय शब्द हुआ करता है तथा कुछ दर्द भी होता है उस में भी ठंढे पानी के छींटे देनेसे लाभ होता है ।

एवं पुरुष के वीर्य स्राव में अथवा रात्रि में स्वप्न के द्वारा वीर्यका स्राव होने पर सोते समय पेडू तथा कमर पर पानी के छींटे देने चाहियें ऐसा करने से वीर्य की गर्मी कम पड़ जाती है तथा वीर्यवाहिनी नाड़ियां (वीर्य को ले जानेवाली नसें) दृढ़ हो कर संकुचित हो जाती हैं तथा ऐसा होने से वीर्यस्राव की अधिकांश में रुकावट हो सकती है ॥

१-यह नियम की बात है कि-शर्दी वस्तुओं का संकोच और उष्णता वस्तुओं का फैलाव करती है ॥

३-दाहशमन-ठंढा पानी शरीर के भीतर के और ऊपर के दाह को शान्त करता है तथा तृषा (प्यास) को भी शान्त करता है।

ठंढे पानी से आंखों की गर्मी शीघ्र ही शान्त हो जाती है अर्थात् यदि खून से आंख लाल हो जावे तो मुँह में ठंढा पानी भर लेना चाहिये और प्रतिदिन दो तीन वार ठंढे पानी के छींटे आंख पर देने चाहियें, ऐसा करने से शीघ्र ही लाभ होगा।

सख्त ज्वर में भी माथे पर ठंढे पानी से भीगा हुआ कपड़ा रखने से फायदा होता है अर्थात् ऐसा करने से ज्वर की गर्मी मगज़ में नहीं चढ़ने पाती है॥

उष्ण पानी के गुण ये हैं कि-गर्म पानी वादी और कफ के बहुत से रोगोंमें फायदा करता है, यह प्रायः देखा गया है कि-वादी और कफजन्य रोग ही प्रायः प्राणियों को होते हैं इस लिये उष्ण पानी का उपयोग ओषधिरूप में अनेक रीति से हो सकता है, जैसे-सेक, वफारा अथवा नस्य देना, पिचकारी लगाना, कुरला करना, पानी में बैठना और प्रक्षालन आदि, इन सब का संक्षेप से वर्णन करते हैं:-

१-सेक-शरीर पर होनेवाली गांठें गुमड़े और शोथ (सूजन) आदि रोगों में प्रायः पुलटिस (आटे आदि की लूपरी) बांधने की चाल है परन्तु गर्म पानी का सेक पुलटिस से भी अधिक फायदेमन्द है, क्यों कि-होते हुए दर्द में पानी का सेक दर्द को दवा देता है अर्थात् उस की प्रवलता को घटा कर उस की पीड़ा को कम कर देता है और ख़ास कर गुमड़ोंपर तो गर्म पानी का सेक करना बहुत ही लाभदायक है, क्यों कि यह गुमड़ों को जल्दी पका कर फोड़ देता है जिस से पीड़ा शान्त हो जाती है।

पेट का दर्द, गुर्दे का वरम, शोथ, पसुली और छाती आदि का शूल तथा लोहू का जमाव आदि दर्दों में भी उष्ण पानी का सेक बहुत फायदा करता है।

गर्म पानी का सेक करने की यह रीति है कि-गर्म पानी में फलालेन अथवा ऊन आदि का कोई गर्म कपड़ा भिगो कर तथा निचोड़ कर दर्दपर वारंवार रखना चाहिये क्यों कि उस भीगे हुए कपड़े रखने से उस की भाफ का सेक अच्छे प्रकार असर करता है, अथवा इस की दूसरी रीति यह भी है कि-सिगड़ी (वरोसी) पर पानी की पतीली रख कर उस के ऊपर चालनी को रखना चाहिये और उस (चालनी) में गर्म कपड़ा रख कर ऊपर से थाली ढांक देनी चाहिये, ऐसा करने से पानी की भाफ कपड़े में आ जाती है, उसी कपड़े से सेक करना चाहिये, क्यों कि-उस कपड़े से किया हुआ सेक बहुत लाभदायक होता है।

१-शीतल पानी के द्वारा तृषा के मिटने का अनुभव तो सवही को है॥

२-ज्वर की गर्मी जब मगज़ पर चढ़ जाती है तो प्राणों की शीघ्र ही हानि हो जाती है॥

योनिपाक, इन्द्रियपाक तथा वृषणशोथ (अण्डकोश की सूजन) पर गर्म पानी का सेक करने से वह स्थान नरम पड़ जाता है तथा पीड़ा शान्त हो जाती है, एवं पेडूपर गर्म पानी का सेक करने से मूत्र खुलासा उतरता है ॥

२–नस्य देना–जब शरीर भारी हो अथवा कई रोगों में पसीना लाकर शरीर हलका करने की आवश्यकता हो तो गर्म पानी की नस्य अथवा भाफ के लेने से शरी में पसीना आकर शरीर हलका हो जाता है, कई वार ऐसा भी होता है कि–पीने की दवाओं से पसीना नहीं आता है उस समय यही भाफ पसीना लाती है अर्थात् इस भाफ के लेने से शीघ्र ही पसीना आ जाता है और ज्वर आदि रोग शान्त पड़जाते हैं, इसी प्रकार शर्दी लगने के कारण मस्तक तथा छाती आदि में दर्द होने पर भी यह नस्य लेना लाभदायक है ॥

३–पिचकारी लगाना–कठिन बद्ध कोष्ठ में तथा जीर्ण दर्द आदि में जब किसी दवा से भी दस्त न आता हो तब गर्म पानी की पिचकारी लगाना चाहिये, क्यों कि ऐसा करने से दस्त आकर मलशुद्धि हो कर कोठा साफ हो जाता है, पिचकारी लगाने में यदि विशेष आवश्यकता हो तो गर्म पानी में एरंड का तेल आदि कोई दूसरा रेचक पदार्थ भी डाल कर पिचकारी लगाना चाहिये ॥

४–कुरला करना–मुख के छाले तथा दाँत की पीड़ा आदि मुख के रोगों में और दाँतों के निकलवाने के पीछे होनेवाले दर्द के समय में गर्म पानी के कुरले करने से बहुत फ़ायदा होता है ॥

५–पानी में बैठना–हिचकी, धनुर्वात (मनुष्य को कमान के समान टेढ़ा करनेवाला वातजन्य एक रोग) और मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में गर्म पानी में बैठने से बहुत ही फायदा होता है. गर्म पानी में बैठने की रीति यह है कि–एक बड़े बासन में सख (जितना सहन हो सके उतना) गर्म पानी भर कर उस में कमर तक बैठना चाहिये परन्तु यह क्रिया मकान के भीतर होनी चाहिये, क्योंकि बाहर खुली हवा में इस क्रिया के करने से बहुत हानि [1]होती है।

स्त्रियों के आर्त्तव सम्बंधी रोगों में अर्थात् ऋतुधर्म का बन्द हो जाना अथवा पीड़ा होकर ऋतुधर्म का आना आदि रोगोंमें घुटनों तक पैरों को गर्म पानी में रखने से बहुत फ़ायदा होता है ॥

यह चतुर्थ अध्याय का जलवर्णन नामक तृतीय प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१–जो लोग खुले स्थान में गर्म पानी से स्नान करते हैं अथवा गर्म पानी में ठंढा पानी मिला कर उस पानी से स्नान करते हैं इस से बहुत हानि होती है ॥

चतुर्थ प्रकरण—आहार वर्णन ॥

खुराक की आवश्यकता ॥

मनुष्य का शरीर एक चलते हुए यन्त्र के सदृश है तथा एञ्जिन का दृष्टान्त इस पर ठीक रीति से घटता है, देखो। जिस प्रकार एञ्जिन के चलने के लिये लकड़ी हवा और पानी की आवश्यकता होती है उसी प्रकार से शरीररूपी एञ्जिन के चलने के लिये खुराक पानी और हवा की आवश्यकता है, जैसे एञ्जिन को हांकनेवाला वैतनिक (वेतन पानेवाला) ड्राइवर होता है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में कर्म बद्ध और स्वभाव शक्ति सिद्ध जीव उस (शरीर) का चलानेवाला है, जैसे—एञ्जिन की विगड़ी हुई कलों को कारीगर सुधारते हैं उसी प्रकार वैद्य और डाक्टर शरीर की विगड़ी हुई कलों के सुधारनेवाले हैं, जैसे एञ्जिन अपनी क्रिया में प्रवृत्त रहता है अर्थात् लकड़ी हवा और पानी को पाकर उन के सार भाग का ग्रहण कर लेता है और सार भाग का ग्रहण कर धुआँ तथा राख आदि निकम्मे पदार्थों को वाहर फेंक देता है उसी प्रकार यह शरीर भी अपनी क्रिया में प्रवृत्त रहकर चमड़ी, फेफड़ा, मलाशय और मूत्राशय आदि के द्वारा पसीना मल तथा पेशाव आदि निरर्थक पदार्थों को वाहर फेंक देता है, हां एञ्जिन से इतनी विशेषता शरीर में अवश्य है कि—एञ्जिन तो जिन लकड़ी हवा और पानी का ग्रहण कर तथा उन के सार भाग का ग्रहण कर चलता है वे लकड़ी आदि पदार्थ एञ्जिन से पृथक्रूप में ही रहते हैं अर्थात् वे एञ्जिनरूप नहीं वन जाते हैं परन्तु यह शरीर जिन खुराक आदि पदार्थों (खुराक हवा और पानी) को ग्रहण करता है उन को वह अपने स्वरूप में कर लेता है अर्थात् वे खुराक आदि पदार्थ क्षय को प्राप्त होने से पहिले ही शरीर के संग मिल जाते हैं अर्थात् उन वस्तुओं का पोषणकारक भाग शरीर में मिल जाता है और निरर्थक भाग ऊपर लिखे मार्गों से वाहर निकल जाता है, यह भी समझ लेना आवश्यक है कि—मल मूत्र तथा पसीने के रूप में जो पदार्थ शरीर में से जाता है वह शरीर का क्षय कहलाता है और यह हमेशा होता रहता है, इस लिये इस क्षय का वदला खुराक हवा और पानी है अर्थात् खुराक आदि से उस क्षय की पूर्त्ति होती है, देखो। प्राणी ज्यों २ महनत का काम अधिक करता है त्यों २ पसीने आदि के द्वारा शरीर का अधिक क्षय होता है और ज्यों २ अधिक क्षय होगा त्यों २ उस को पोषणकारक पदार्थों की अधिक आवश्यकता होगी, देखो! चलने, वोलने और वांचने आदि कार्यों में तथा आंख

२—खुराक में खाने और पीने के पदार्थों का समावेश होता है ॥

१—इसलिये वाहर की गति की उस को आवश्यकता नहीं है ॥

मटकाने आदि छोटी से छोटी क्रियाओंतक में भी शरीर के परमाणु प्रतिसमय झरते हैं (खर्च होते हैं) तथा उन के स्थान में नये परमाणु आते जाते हैं, इस विषय में विद्वानों ने गणना कर यह भी निश्चय किया है कि–प्रति सप्ताब्दी में (सात २ वर्षों में) शरीर का पूरा ढांचा नया ही तैयार होता है अर्थात् पूर्व समय में (सात वर्ष पहिले) शरीर में जों हाड़ मांस और खून आदि पदार्थ थे वे सब झरते २ झर जाते हैं और उन के स्थान मे क्रम २ से आनेवाले नये २ परमाणुओं से शरीर का वह भाग नया ही वन जाता है, सांप को अपनी कैंचुली गिराते हुए तो सब मनुष्यों ने प्रायः देखा ही होगा परन्तु वह तो बहुत समय के पश्चात् अपनी कैंचुली छोड़ता है परन्तु मनुष्य आदि सर्व जीवगण तो प्रतिसमय अपनी २ कैंचुली गिराते हैं और नई धारण करते हैं (प्रतिसमय पुराने परमाणुओं छोड़ते जाते हैं और नये परमाणुओं का ग्रहण करते जाते हैं), इस से सिद्ध हुआ कि–शरीर में से प्रतिसमय एक वड़ा परमाणुसमूह नाश को प्राप्त होता जाता है तथा उसके स्थान में नया भरती होता जाता है अर्थात् प्रतिसमय शरीर के छिद्र मलाशय मूत्राशय और श्वास आदि के द्वारा शरीर का प्राचीन भाग नष्ट होकर नवीन भाग वनता जाता है, देखो! हम लोग इस वात को प्रत्यक्ष भी देखते और अनुभव करतेहैं कि–प्राचीन नख तथा वाल गिरते जाते हैं और उन के स्थान में दूसरे आते जाते हैं, इस पर यदि कोई यह शंका करे कि–नख और वालों के समान शरीर के दूसरे परमाणु गिरते हुए तथा उन के स्थानमें दूसरे आते हुए क्यों नहीं दीखते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि–शरीर में से जो लाखों रजःकण उड़ते हैं और उन के स्थान में दूसरे आते हैं वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं इसलिये वे दृष्टिगत नहीं हो सकते हैं, हां अनुमान के द्वारा वे अवश्य जाने जा सकते हैं और वह अनुमान यही है कि–प्रतिसमय में नष्ट होनेवाले प्राचीन परमाणुओं के स्थान में यदि नवीन परमाणु भरती न होते तो प्राणी सूख कर शीघ्र ही मर जाता, देखो! जब क्षय आदि रोगों में शरीर का विशेष भाग नष्ट होता है तथा उस के स्थान में वहुत ही थोड़ा भाग वनता है तव थोड़े समय के पश्चात् मनुष्य मर ही जाते हैं।

देखो! उत्पत्ति स्थिति और नाश का होना सृष्टि का स्वाभाविक नियम ही है उसी नियम का क्रम अपने शरीर में भी सदा होता रहता है, इस (नियम) को ध्यान में लाने से प्रवाहद्वारा सृष्टि की नित्यानित्यता भी समझ में आ जाती है; अस्तु।

उक्त नियम के अनुसार शरीर के प्राचीन हुए हुए भाग जव वृद्ध मनुष्य के समान अपना काम नहीं कर सकते हैं तब वे नष्ट हो जाते हैं और उन के स्थान में नये पर्याय लगजाते हैं यही कुदरती नियम है और इसी नियम को अमल में लाने के लिये स्वाभाविक

१–इसी लिये जैनसूत्रकार शरीर को पुद्गल कहते हैं॥

नियम से ही क्षुधावेदनी कर्म अर्थात् भूख नामक दूत है जो कि समयानुसार शरीर के भागों की अपूर्णता को पूरी करने के लिये अन्न और पानी की याचना करता है, यदि उस की वात पर ध्यान न देकर उसकी इस यांचना का अनादर कर दिया जावे अथवा याचनाकी पूर्ति में विलम्ब किया जावे तो उस का सहायक अशात नामक वेदनी कर्म अपना वल दिखा कर उस प्राणी के नाश को अथवा अधिक परमाणुओं के विखेरने को कर देता है, जिसको कोई नहीं रोक सकता है, वीमारी का हो जाना उस वेदनी कर्म का प्रत्यक्ष प्रमाण है, क्योंकि शरीर के जितने रजःकण नाश को प्राप्त होते हैं उतने ही रजःकणों की पूर्ति न होने से व्याधि हो जाती है, जैसे–दीपक के पोषण के लिये जितने तेल की आवश्यकता है यदि उतना तेल न डाला जावे तो दीपक वुझ जाता है, इसी प्रकार शरीर के परमाणु भागों के नाश के द्वारा कमी को पूरा करने के लिये कुछ वाहरी तत्वों की आवश्यकता होती है, इन्हीं तत्त्वों का नाम पोषण भोजन अथवा खुराक है।

शरीर के पोषण के लिये खुराक की वहुत ही आवश्यकता है परन्तु यदि वही खुराक मात्रा से अधिक अथवा प्रकृति के विरुद्ध ली जावे तो रोगों को उत्पन्न करनेवाली हो जाती है, किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–खुराक की मात्रा आदि का नियम सव के लिये एक नहीं हो सकता है, क्योंकि–खुराक की मात्रा आदि शरीर के कद, वन्धान, प्रकृति और व्यायाम अथवा श्रम आदि पर निर्भर है, इस लिये यद्यपि प्रत्येक मनुष्य अपनी खुराक की मात्रा आदि का निश्चय और नियम जैसा खुद कर सकता है वैसा निश्चय और नियम उस के लिये दूसरा कदापि नहीं कर सकता है तथापि अज्ञान और साधारण मनुष्यों को वारंवार दूसरे चतुर[1] मनुष्यों की इस विषय में भी सलाह लेने की आवश्यकता पड़ती है, हां वेशक उचित तो यही है कि–प्रत्येक मनुष्य अपनी खुराक आदि का खुद ही निश्चय और नियम करे, क्योंकि–सर्व साधारण के लिये यही नियम लाभदायक है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी नियमित खुराक का कोई परिमाण अर्थात् मात्रा आदि का हिसाव स्वयमेव निर्धारितकर उसीके अनुसार खुराक लेने का अभ्यास रक्खे।

शरीर के पोषणके लिये प्रतिदिन कम से कम ४० रुपयें भर खुराक की आवश्यकता है और अधिक से अधिक ८० से १०० रुपये भर तक समझना चाहिये[2]।

यह भी स्मरण रहे कि–यह कुछ नियम नहीं है कि–कम खुराक खानेवाले लोग शरीर से रोगी और दुर्वल रहते हों और अधिक खुराक खानेवाले नीरोग रहते हों, क्योंकि–यह तो हम सव लोग प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि–वहुत से गृहस्थ लोग थोड़ा खाने-

१–इसविषय में वैद्य तथा डाक्टर चतुर मनुष्य कहे जा सकते हैं॥

२–परन्तु मथुरा के चौवे, पहलवान् तथा कई एक दूसरे भी परिमाणरहित खुराक को खानेवाले लोगों के लिये यह नियम नहीं हो सकता है, क्योंकि–उन की खुराक अनियमित होती है॥

वाले हैं और वे नीरोग देखे जाते हैं तथा बहुत से अधिक खुराक खानेवाले हैं और वे रोगी देखे जाते हैं, इसलिये इस का सामान्य नियम यही है कि-शरीर के क़द और श्रम के परिमाण में खुराक का भी परिमाण होना चाहिये, देखो। बड़े एञ्जिन में बड़ा बायलर (Bailer) होता है और वह विशेष कोयला खाता है तथा छोटे एञ्जिन में छोटा बायलर होता है और वह कम कोयला लेता है, परन्तु चलते दोनों ही हैं और दोनों ही अपना २ काम कर सकते हैं, सिर्फ शक्ति (Powor) न्यूनाधिक होती है, बस यही नियम मनुष्यों में भी घट सकता है।

खुराक की मात्रा प्रकृतिपर भी निर्भर होती है, देखो। समान अवस्था, समान बांधे (शरीर का ढांचा) तथा समान क़द के भी दो मनुष्यों में से एक की प्रकृति जन्म से कफ की होने से वह अधिक खुराक नहीं खा सकता है और दूसरे की प्रकृति पित्त की होने से वह अधिक खासकता है।

प्रायः देखा जाता है कि-अल्पाहारी लोग अधिकाहारी की निन्दा करते हैं और अधिकाहारी भी अल्पाहारी की हँसी किया करते हैं परन्तु यह (ऐसा करना) दोनों की भूल है, क्योंकि-दृढ़ और कदावर (बड़े कदवाला) शरीर, प्रबल जठराग्नि तथा पुष्कल आहार, ये सब पूर्व किये हुए सुकृत तथा पुण्य के चिह्न हैं और छोटा शरीर, मन्द अग्नि तथा नाजुक (अल्प) आहार, ये सब पूर्व किये हुए अपकृत्य तथा पाप के चिह्न हैं, अल्पाहारी नाजुक लोग अधिकाहारी की निन्दा तो चाहे भले ही करें परन्तु थोड़ा खाना और नाजुक बनना यह कुछ मरदुमी (पुरुषत्व) का काम नहीं है, अब दूसरी तरफ देखो! यदि अधिकाहारी लोग अपना शरीर बढ़ा कर श्रमरहित होकर हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहें तो बेशक वे लोग निन्दा के ही पात्र हो सकते हैं।

शरीर तथा मनोभाग के प्राचीन परमाणुओं की हानि होने पर जो खुराक लेने की इच्छा होती है उसे क्षुधा (भूख) कहते हैं, इस लिये भूख के लगने पर उसी के परिमाण से प्रत्येक मनुष्य को खुराक लेनी चाहिये, क्योंकि-भूख से कम खुराक लेने से यथायोग्य पोषण नहीं मिलता है और भूख से अधिक खुराक लेने से उस का यथायोग्य पाचन नहीं होता है और ऐसा होने से उक्त दोनों कारणों से शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं॥

१-देखो। समान कदवाले भी दो पुरुषों में से श्रम करनेवाला अधिक खुराक खा सकता है॥

२-इस वर्ग में आलसी तथा भिक्षुकों का भी समावेश हो सकता है, क्योंकि-मांग कर खाना उन्हीं को शोभा देता है, जो संसार की ममता का त्याग कर परमेश्वर की भक्ति में ही लीन हैं (इस लिये साधु तथा परमहंस आदि आत्मार्थियों को भीख मांगनेवाला नहीं समझना चाहिये) किन्तु जो संसार के मोहजाल में फँसे हुए है तथा शरीर से हृष्ट पुष्ट हैं और परिश्रम न हो सकने के कारण भीख मांग कर खाते हैं उन को भीख मांगकर खाना शोभा नहीं देता है॥

खुराक का वर्ग ॥

जैनसूत्रों में लिखा है कि–सृष्टि के प्रवाह के चलते समय प्रजापति ऋषभ जगदीश्वर ने शरीर के लिये हितकारी वनस्पति की खुराक चलाई, इस लिये सब से प्रथम वनस्पति की खुराक हुई, इस के पश्चात् समय पर (आवश्यकता के समय) अन्नादि की खुराक न मिलने से मनुष्यों ने दूसरी खुराक मांस की शुरू की, अब साढ़े अठारह हजार वर्ष वीतने के बाद भारतवर्ष की समस्त प्रजा केवल मांसाहार से ही निर्वाह करेगी, असि मसी और कृषि, इन तीनों कर्मों का प्रलय हो जायगा और उस समय वनस्पति नहीं मिलेगी, ऐसा अनन्तों वार हो चुका और होता रहेगा, परन्तु मनुष्य को सद्विचार और बुद्धि प्राप्त हुई है इसलिये उसको चाहिये कि हितकारी खुराक को खावे और अहितकारी खुराक का त्याग करे, क्योंकि "बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं च" अर्थात् बुद्धि के पाने का फल यही है कि तत्व का विचार करे अर्थात् सदा सुखदायक सद्व्यवहार करे।

विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि–ऊपर कही हुई दोनों खुराकों में से प्रजालोगों में मांसकी खुराक का अधिक प्रचार है अर्थात् मांसाहारियों का समूह अधिक है, परन्तु यदि इन दोनों प्रकारों के समूहों का सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर मांसाहारी जंगली लोगों को निकाल दिया जावे तो शेष सुधरी हुई प्रजा के समुदाय में वनस्पति की खुराक से निर्वाह करनेवाले लोगों की संख्या अधिक मालूम पड़ती है, क्योंकि–जो वेजेटेरियन हैं (मांस न खानेवाले हैं) वे तो सिर्फ वनस्पति से ही जीते हैं और जो मांसाहारी हैं उनकी खुराक में भी अधिक भाग वनस्पति का ही है, इस से यह वात सिद्ध है कि–वनस्पति के आहार से बहुत लोग जी रहे हैं, यद्यपि ऊपर लिखे अनुसार मनुष्यों का निर्वाह तो उक्त दोनों खुराकों से हो सकता है तथापि विचार कर देखने से तथा मनुष्य शरीर की रचना की ओर ध्यान देने से यह वात विदित होती है कि–मनुष्य के खाने योग्य पौष्टिक तथा हितकारी खुराक तो वनस्पति की ही है, क्योंकि जो उपयोगी तत्व वनस्पति में रहे हुए हैं उन में से बहुत ही थोड़े तत्व मांस में हैं, यद्यपि मांसाहारी पशु अनेक प्रकार के मांस के खाने से ही जीवित रहते हैं तथापि यह नहीं समझ लेना चाहिये कि–उन २ (उन अनेक प्रकार के) मांसों में भी उन्हीं के उपयोगी तत्व स्थित हैं, किन्तु उन २ मांसों में भी मुख्यतया वनस्पति के ही उपयोगी तत्व स्थित हैं, इसीलिये मांसाहार से भी उन का निर्वाह होता है, क्योंकि–वनस्पति के ही तत्व जीवन के लिये उपयोगी हैं, देखो। मुख्यतया वनस्पति के खानेवाले बकरी, भेड़, गाय, सुअर, हरिण और भैंसे आदि जो पशु हैं वे केवल मांस खानेवाले सिंह चीता और शृगाल आदि का मांस खाकर कभी जीवित नहीं रह सकते हैं, इस से सिद्ध है कि–सर्व प्रजा के लिये केवल

वनस्पति के ही आहार की आवश्यकता है, इस के सिवाय नीचे लिखे हेतुओं से भी मनुष्यों को वनस्पति का ही आहार उपयोग में लाना चाहिये:—

१–इस भारतवर्ष में अनेक प्रकार के अन्न फल फूल और वनस्पति की अत्यन्त ही बहुतायत है, अत एव उपज के लिये इस भूमि के समान कोई भी दूसरी भूमि नहीं है, इस लिये यहां के निवासियों को हिंसा से सिद्ध होनेवाले मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ नहीं खाने चाहियें, जब कि उन के लिये स्वतः सिद्ध, शुद्ध, पुष्टिकारक, सुस्वादु और परम उपयोगी वनस्पति की खुराक मिल सकती है ॥

२–मनुष्य जाति का शरीर स्वभाव से ही मांसाहार के योग्य नहीं है, इसविषय का निर्णय जैन, वैद्यक और आयुर्ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थों में अच्छे प्रकार से कर दिया गया है, यद्यपि डाक्टर लोगों में परस्पर इस विषय में बहुत ही विवाद है अर्थात् कोई लोग मांसाहार को और कोई लोग वनस्पति के आहार को उत्तम बतलाते हैं तथापि दीर्घ दृष्टि से देखने पर और एतद्देश के मनुष्यों के अभ्यास, प्रकृति और जल वायु आदि का विचार करने पर यही निश्चय होता है कि–इस आर्यावर्त्त के लोगों की होजरी (अग्न्याशय) मांस को बिलकुल नहीं पचा सकती है और इस बात का अनुभव आदि के द्वारा भी खूब निश्चय हो चुका है ॥

३–जन्म से अभ्यास पड़ जाने के कारण इस देश के निवासी भी मांसाहारी लोग मांसाहार करते हैं और काबुल से आगे शीतकटिबंध के बहुत से लोग मांसाहार यथारुचि करते हैं यह उन के हमेशा के अभ्यास और शरीर के भीतर की गर्मी के कारण ऐसी दयारहित खुराक को चाहे भले ही उन की होजरी धारण करती होगी परन्तु हमारे देश का थोड़ा सा भाग उष्ण कटिबंध में है बाकी का सब भाग समशीतोष्ण कटिबंध में है, इस लिये उक्त भाग के निवासियों की होजरी बिलकुल ही मांस के पचाने को योग्य नहीं है, हां अभ्यास डाल कर उस का हज़म कर जाना दूसरी बात है, यों तो अभ्यास से लोग सोमल (संखिया) और अफीम की भी मात्रा को धीरे २ बढ़ा लेते हैं परन्तु आखिर को उन की दशा भी बिगड़ती है और इस का अनुभव सब को प्रत्यक्ष ही है ॥

४–मांसाहारी लोगों का भी वनस्पति के आहार के बिना निर्वाह नहीं हो सकता है और वनस्पति का आहार करनेवालों के लिये मांसाहार के बिना कोई भी अड़चल नहीं आ सकती है, यह प्रमाण भी वनस्पति के आहार की ही पुष्टि करता है ॥

१–जैसा कि नीतिशास्त्र में लिखा है कि "स्वच्छन्दवनजातेन, शाकेनापि प्रपूर्यते ॥ अस्य दग्धोदरस्यार्थे, कः कुर्यात् पातकं महत् ॥ १ ॥" अर्थात् खुद बखुद वन में पैदा हुए शाकादि से भी यह (पेट) भरा जा सकता है, फिर इस पापी पेट के लिये कौन मनुष्य बड़ा पाप (हिंसारूप) करे ॥ १ ॥

५-वनस्पति के आहार से शरीर को जितनी हानि पहुँचने का सम्भव है उस की अपेक्षा मांसाहार से विशेष हानि पहुँचने का सम्भव है, क्योंकि-वनस्पति की अपेक्षा मांस जल्दी विगड़ जाता है, इस के सिवाय यह बात भी है कि वनस्पति की अच्छाई और खराबी की परीक्षा आँखों से देखने से ही शीघ्र हो जाती है परन्तु मांस रोगी जानवर का है अथवा नीरोग का है इस की परीक्षा जाँच करने से भी नहीं होसकती है, फिर देखो। वनस्पति के अजीर्ण से जितनी हानि होती है उस की अपेक्षा मांस के अजीर्ण से वहुत बड़ी हानि और खराबी होती है, इस के सिवाय सृष्टि के इस अनादि नियम को भी ध्यान में रखना चाहिये कि जिस में थोड़ा भय हो वही वस्तु विशेष पसन्द के योग्य होती है ॥

६-नित्य मांसका आहार करनेवाले मांसाहारी लोगों को भी वहुत से रोगों में मांस की खुराक का त्याग करने और वनस्पति की खुराक का आश्रय लेने की आवश्यकता होती है, क्योंकि वनस्पति की खुराक विशेष पथ्य अर्थात् मानव प्रकृति के अनुकूल है, इसीलिये वहुत से डाक्टर लोग भी वनस्पति के आहार की ही प्रशंसा करते और उसी का खाना पसन्द करते हैं ॥

७-जो लोग वनस्पति की अपेक्षा मांस में अधिक शक्ति का होना वतलाते हैं यह उन की वड़ी भारी भूल है और इस में प्रमाण तथा दृष्टान्त यही है कि-देखो। मांसाहारी सिंह, चीता, शृगाल, कौआ और चील आदि जानवर महाआलसी, वेकाम, क्रूरप्रकृति, प्रजाघाती और महाशठ आदि होते हैं, इसके विरुद्ध वनस्पतिके खानेवाले-पृथिवी के जीतने में समर्थ और महा शूर वीर घोड़े, प्रजा के जीवन के मुख्य आधार वैल, महाशक्तिमान् हाथी (कि जिस जाति की स्त्री जाति होकर भी सिखलाई हुई हथिनी नाहर को लोहे के लट्टू से मार डालती है) और शीघ्रगतिवाले हरिण आदि कैसे २ जन्तु हैं, इसी से विचार लेना चाहिये कि वनस्पति में घास जैसी हलकी से हलकी खुराक खानेवाले कैसे २ उद्यमी, साहसी, वलधारी और सरल वुद्धिवाले जीव होते हैं, इस से वुद्धिमान् समझ लेंगे कि मांस में कितनी ताकत है ॥

८-मनुष्य के रुधिर में एक हजार भागों में केवल तीन भाग फीब्रिन नामक तत्व के होने की आवश्यकता है, उस तत्व का ठीक परिमाण वनस्पति की खुराक से वरावर वना रहता है परन्तु मांस मे फीब्रिन का तत्व विशेष है इस लिये मांसाहारियों के रुधिर में फीब्रिन का परिमाण ऊपर लिखी मात्रा से अधिक वढ़ कर अनेक समयों में कई रोगों का कारण हो जाता है ॥

१-देखो। वैद्यकग्रन्थों में ही लिखा है कि-"मांसादष्टगुणं घृतम्" अर्थात् मांस की अपेक्षा घृत आठ गुना वलदायक है ॥

९-डाक्टर पार्क नामक एक यूरोपियन विद्वान् प्राणिजन्य और वनस्पतिजन्य आहार के विषय में लिख कर यह सूचित करता है कि-उत्तम मांस में उष्णता और उत्साह को उत्पन्न करनेवाला तत्त्व १०० भागों में ३ भाग है और गेहूँ चाँवल तथा फलियों के अन्न में यह तत्व १०० भागों में ४५ से लेकर ८० भागतक होता है, इसी प्रकार एडमस्मिथ नामक एक यूरोपियन विद्वान् वेल्थ आफ नेशन्स (Wealth of nations.) अर्थात् "प्रजाओं की दौलत" नामक ग्रन्थ में लिखता है कि-मांस के विना खाये भी केवल अन्न, घी, दूध और दूसरी वनस्पतियों से शारीरिक और मानसिक शक्ति, पुष्टि और बहुत ही अच्छी तनदुरुस्ती रह सकती है; इसी प्रकार अन्य भी बहुत से विद्वान् डाक्टर लोगों ने भी वनस्पति की ही खुराक को विशेष पसंद किया है ॥

१०-वैद्यक शास्त्र के विचार धर्म शास्त्रों से बहुत ही सम्बंध रखते हैं और धर्म शास्त्रों का सारांश विचार कर देखने से यही विदित होता है कि-मनुष्य को मांस कदापि नहीं खाना चाहिये अर्थात् धर्मशास्त्रों में मांस के खाने की सख्त मनाई की गई है, क्योंकि "अहिंसा परमो धर्मः" यह सब ही धर्मशास्त्रों का सम्मत है अर्थात् आर्य वेद, स्मृति, पुराण आदि शास्त्रों का तो क्या कहना है किन्तु बाइबिल कुरान और अवस्ता आदि ग्रन्थों का भी यही सिद्धान्त है कि-मांस कभी नहीं खाना चाहिये ॥

जीवन के लिये आवश्यक खुराक ॥

जीवन को कायम रखने के लिये जिस की निरन्तर आवश्यकता होती है उस खुराक के मुख्य पांच तत्व हैं—पौष्टिक[3] (पुष्टिकारक), चरबीवाला,. आटे के सत्ववाले[4], क्षार और पानी, देखो । अपने शरीरमें जितने प्रकार के तत्व हैं उन सब का पोषण खुराक में स्थित इन्हीं पांचों तत्वों से होता है, इस लिये वही खुराक नित्य लेनी चाहिये कि-जिस में ये पांचों प्रकार के तत्व स्थित हों, अब इन का संक्षेप से क्रम से कुछ वर्णन किया जाता है:—

१-देखो । जैन सूत्रों में जगह २ मांस भक्षण का अत्यन्त निषेध किया है ॥

२-यद्यपि किन्हीं २ ग्रन्थों में प्रवृत्ति भी मानी है तथापि निवृत्ति में अधिक फल लिखा है परन्तु जैन ग्रन्थों में तो हिंसा का अत्यन्त निषेध ही किया है तथा दया को धर्म का मूल कहा है, इसीलिये संसार में दया की बारीकी जैनधर्म की विख्यात है, देखो । किसी ने कहा है कि-दोहा-शिवभक्ती अरु जिन दया, मुसलमीन इकतार ॥ तीन बात इकठी करो, उतरे बेड़ा पार ॥ १ ॥ अर्थ इसका सरलही है ॥

३-इस को अंग्रेजी में नाइट्रोजन वाला कहते हैं ॥

४-इस को अंग्रेजी में स्टार्ची कहते हैं ॥

५-शेष छोटे २ तत्वों का समावेश इन्हीं पांच प्रकार के तत्वों में हो जाता है ॥

पौष्टिक तत्त्व—शरीर के पोषण तथा वृद्धि के लिये पौष्टिक खुराक का लेना आवश्यक है, बहुत से अन्नों में पौष्टिक तत्त्व न्यूनाधिक परिमाण में रहता है अर्थात् किन्हीं में कम और किन्हीं में विशेष रहता है, इस विषयमें विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि-खुराक सम्बंधी नित्य के उपयोगी पदार्थों में से घी, मक्खन, शक्कर और सावूदाना, इन चार पदार्थों में पौष्टिक तत्व बिलकुल नहीं है, क्योंकि इनमें से पहिले दो पदार्थों में मुख्य भाग चरवीका है और दूसरे दोनों में मुख्य भाग आटे के सत्व का है, तथा ये चारों पदार्थ शरीर की गर्मी को कायम रखने का काम करते हैं ॥

चरवीवाले तत्त्व—चरवीवाले तत्वों से युक्त पदार्थों में मुख्य पदार्थ-घी, मक्खन और तेल आदि हैं तथा इन के सिवाय अन्नों में भी यह तत्व न्यूनाधिक रहता है, परन्तु सब अन्नों में से गेहूँ में इस तत्व का भाग सब से कम है अर्थात् १०० भागों में केवल एक भाग इस तत्व का है तथा मकई (मका वा मक्का) में इस तत्व का भाग सब अन्नों की अपेक्षा अधिक है अर्थात् १०० भागों में ६ भाग इस तत्व के हैं, शीत ऋतुमें चरवीवाले पदार्थों का खाना बहुत लाभदायक होता है ॥

आटे के सत्ववाले तत्त्व—आटे के सत्ववाले तत्वों से युक्त पदार्थों में मुख्य पदार्थ शक्कर[1], खांड, गुड़, चाँवल और दूसरे धान्य भी हैं, शरीर में श्वासोच्छ्वास की जो क्रिया होती है वह कार्वन नामक एक पदार्थ से होती है और वह (कार्वन) इस तत्ववाले तथा चरवीवाले तत्वों से युक्त खुराक से उत्पन्न होता है, गर्म देशों में तथा गर्मी की ऋतु में इस तत्ववाले पदार्थ विशेष अनुकूल आते हैं ॥

क्षार—शरीर का प्रत्येक भाग क्षार के मेल से बना हुआ है, दूधमें तथा लोहू में भी क्षार का भाग है, यह क्षार भी खुराक सम्बन्धी सब पदार्थों में न्यूनाधिक परिमाण में स्थित है तथा खुराक के द्वारा उदर (पेट) में जाकर शरीर के सब भागों को बनाता और पुष्ट रखता है, यद्यपि शरीर के सब भागों की रचना में क्षार उपयोगी है तथापि हड्डियों का बन्धान तो मुख्यतया क्षार का ही है, इसीलिये हाड़ों के पोषण के लिये क्षार की अत्यन्त आवश्यकता है अर्थात् काफी क्षार के न मिलने से सब हाड़ निर्बल और सुखे से होकर टूटजानेवाले जैसे हो जाते हैं, देखो! छोटे बालकों का पोषण अकेले दूध से होता है उस का हेतु यही है कि-दूधमें स्वाभाविक नियमानुसार स्वभावसिद्ध क्षार मौजूद है, शरीर के सब भागों की रचना और उन की पुष्टि क्षार से ही होती है इसलिये शरीर के लिये जितने क्षार की आवश्यकता है उतना क्षार खुराक के साथ अवश्य लेना चाहिये, क्या पाठकगण नहीं जानते हैं कि-शाक में घृत, मिर्च, धनिया, जीरा और हींग आदि सब

1-शक्कर शब्द से यहां मिश्री का ग्रहण करना चाहिये ॥

मसाले अच्छी तरह से डाले जावें परन्तु क्षार (नमक) न डाला जावे तो वह शाक खाने के लायक नहीं बनता है ॥

पानी—शरीर के पोषण के लिये पानी के समान प्रवाही पदार्थ की भी बहुत ही आवश्यकता है, क्योंकि जिस लोहू के नियमित फिरने पर जीवन का आधार है वह लोहू प्रवाही पानी से ही फिर सकता है, यदि शरीर में प्रवाही भाग कम हो जावे तो लोहू गाढ़ा हो जावे और उस का फिरना बन्द होजावे, शरीर को यह प्रवाही तत्व जैसे पानी में से मिलता है उसी प्रकार दूसरे खाने के प्रत्येक पदार्थ में से भी मिल सकता है, देखो! हम सब लोग गेहूँ बाजरी और चाँवल आदि खाते हैं उन में भी पानी का भाग है, एवं शाक तरकारी और फलादि से भी पानी का अधिक भाग शरीर को प्राप्त होता है।

इस बात का जान लेना भी बहुत आवश्यक है कि—इन पांच प्रकार के तत्वों में से प्रत्येक का कितना २ परिमाण शरीर के पोषण के लिये नित्य आवश्यक है, यद्यपि शरीर की रचना, अभ्यास, प्रकृति, देश के जल वायु और अवस्था के अनुसार आवश्यक तत्वों से युक्त न्यूनाधिक खुराक ली जाती है तथापि सामान्यतया प्रतिदिन कौन २ से तत्वों से युक्त कितनी खुराक लेनी चाहिये उसका परिमाण नीचे लिखा जाता है:—

संख्या	प्रत्येक तत्ववाला पदार्थ ॥	परिमाण ॥
१	पौष्टिक तत्ववाला खुराक ॥	१० रुपयेभर ॥
२	चरबीवाले तत्वसे युक्त खुराक ॥	८ " "
३	आटेके सत्ववाले तत्व से युक्त खुराक ॥	३० " "
४	क्षार ॥	४ " "
५	पानी ॥	१५० " "

ऊपर कह चुके हैं कि—पानी अर्थात् प्रवाही तत्व चरबीवाले तत्वों से युक्त पदार्थों के सिवाय प्रत्येक जाति के पदार्थ में मौजूद है, इस कोष्ठ में प्रथम चार प्रकार की खुराक का जो परिमाण लिखा है उस में प्रवाही तत्व शामिल नहीं है अर्थात् प्रवाही तत्व को छोड़ कर उक्त परिमाण लिखा गया है, यदि इन चार प्रकार की खुराकों में उनके प्रवाही तत्व को भी शामिल कर लिया जावे तो लगभग द्विगुण (दुगुणा) परिमाण हो जावेगा, तात्पर्य यह है कि ऊपर ५२ रुपये भर का जो खुराक का मध्यम परिमाण लिखा है उस के साथ पानी के तत्व को शामिल करने से प्रत्येक मनुष्य के लिये १०० रुपये भर का खुराक का परिमाण आवश्यक होता है, इस परिमाण में १५० रुपये भर पानी का परिमाण पृथक् समझना चाहिये ॥

खुराक के मुख्य २ पदार्थों में उक्त पांचों तत्वों के परिमाण का बोधक कोष्ठक ॥

संख्या	खुराका का पदार्थ॥	पौष्टिक तत्त्व॥	चरवीवाला तत्त्व॥	आटेके सत्त्व वाला तत्त्व॥	क्षारका तत्त्व॥	पानी वा प्रवाही तत्त्व॥
१	चाँवल	५	।।।	८३।	।।	१०
२	सावूदाना	०	०	८२	०	१८
३	गेहुँ	१४।।	१	६९	१।।	१४
४	जुआर	१२।।	४	७०	१।।	१२
५	वाजरा	१०	४।।	७१।	२।।	११।।।
६	चना	२२	३	६२	२	११
७	उड़द	२४।।।	१।	५८।।	३	१२।।
८	अरहर	२२	१	६२	३	१०
९	मटर	२२	२	५३	२	१५
१०	मसूर	२५	१।	६०	२	११।।।
११	यव (जौं)	१३	२	६८	२	१५
१२	मका (मकई)	१०	६।।।	६४।।	१।।	१३।।
१३	कुलथी	२३।	२।।	५९।	३।	१२
१४	आलू	१।।	।।१०	२३।।	१	७४
१५	कोदों	।	।।	५।।	।।।	९१
१६	गाजर	।।	।	८।।	।।।	८५
१७	मिश्री	०	०	९६।।	।।	३
१८	दूध	४	३।।।	५	।।	८६।।।
१९	मक्खन	।	९१	०	२।।।	६
२०	घी	०	१००	०	०	०

इस कोष्ठ से विदित होता है कि–खुराक के मुख्य २ पदार्थों में पौष्टिक तत्व तथा चरवीवाला तत्व अधिक है, एवं आटे के सत्ववाला तत्व चरवी वाले तत्वसे युक्त और आटे के सत्ववाले तत्व से युक्त पदार्थों में कारवन अधिक है तथा क्षार और पानी इन दोनों का परिमाण प्रत्येक खुराक के पदार्थ में प्रति सैकड़े अलग २ दिखाया ही गया है।

रसायन शास्त्र के ज्ञाता विद्वान् लोगोंने रसायनिक प्रयोग के द्वारा खुराक के बहुत से पदार्थों के सब अवयवों को पृथक् २ कर के उक्त पांचों तत्वों की जाँच कर प्रत्येक तत्व का परिमाण अलग २ दिखला दिया है उन्हीं के उक्त परिश्रम से वर्त्तमान में हम सब लोग इस बात को अच्छे प्रकार से जान सकते हैं कि–खुराक के अमुक पदार्थ में उक्त पांचों तत्वों में से प्रत्येक तत्व का इतना २ भाग मौजूद है तथा इस के जानने से बड़ा

भारी लाभ यह है कि-प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक पदार्थ के गुण और उस में स्थित तत्वों को जान कर उस पदार्थ की सुखकारिणी योजना को दूसरे पदार्थों के साथ कर सकता है।

गुण के अनुसार खुराक के दो भेद हैं-अर्थात् पुष्टिकारक और गर्मी लानेवाली, इन में से जो खुराक शरीर के नष्ट हुए परमाणुओं की कमी को पूरा करती है उस को पुष्टिकारक कहते हैं। तथा जो खुराक शरीर की गर्मी को ठीक रीति से कायम रखती है उस को गर्मी लानेवाली कहते हैं, यद्यपि पुष्टिकारक खुराक के पदार्थ बहुत से हैं तथापि उन का प्रत्येक का भीतरी पौष्टिक तत्वों का गुण एक दूसरे से मिलता हुआ ही होता है, रसायनिक प्रयोगके वेत्ता विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि-पौष्टिक खुराक में नाइट्रोजन नामक एक विशेष तत्व है और गर्मी लानेवाली खुराक में कार्बन नामक एक विशेष तत्व है, गर्मी लानेवाली खुराक से शरीर की गर्मी कायम रहती है अर्थात् वायु तथा ऋतु आदि का परिवर्त्तन होने पर भी उक्त खुराक से शरीर की गर्मी का परिवर्त्तन नहीं होताहै अर्थात् गर्मी प्रायः समान ही रहती है और शरीर में गर्मी के ठीक रीति से कायम रहने से ही जीवन के सब कार्यों का निर्वाह होता है, यदि शरीर में ठीक रीति से गर्मी कायम न रहे तो जीवन का एक कार्य भी सिद्ध न हो सके, देखो। बाहरी हवा में चाहे जैसा परिवर्त्तन होजावे तथापि गर्मी लानेवाली खुराक के लेने से शरीर की गर्मी बराबर बनी रहती है, ठंढे देशों में (जहां अधिक शीत के कारण पानी का बर्फ जम जाता है और पारेकी घड़ी में पारा ३२ डिग्री से भी नीचे चला जाता है वहां) और गर्म देशों में (जहां अधिक गर्मी के कारण उक्त घड़ी का पारा १२५ डिग्री से भी ऊँचा चढ़ जाता है वहां) भी अंग की गर्मी ९० से १०० डिग्री तक सदा रहा करती है।

शरीर में गर्मी को कायम रखनेवाली खुराक में मुख्यतया कार्बन और हाइड्रोजन नामक दो तत्व हैं और वे दोनों तत्व प्राणवायु (आक्सिजन) के साथ रसायनिक संयोग के द्वारा मिलते हैं अर्थात् गर्मी उत्पन्न होती है तथा यह संयोग प्रत्येक पलमें जारी रहता है, परन्तु जब किसी व्याधि के होने पर इस संयोग में फर्क आ जाता है तब शरीर की गर्मी भी न्यूनाधिक हो जाती है।

पौष्टिक खुराक के अधिक खाने से लोहू में स्वाभाविक शक्ति न रहकर विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है और ऐसा होने से उस (लोहू) का जमाव कलेजे और मगज़ आदि अवयवों में बहुत हो जाता है इस लिये वे सब अवयव मोटे हो जाते हैं इसलिये पुष्टिकारक खुराक को अधिक खानेवाले लोगों को चाहिये कि उस पुष्टिकारक खुराक के

१-लोहू का अधिक जमाव होने से कभी २ कलेजे का रोग हो जाता है और कभी २ मगज़ पर भी लोहू का जोश चढ़ जाता है, इस से अधिक पुष्टिकारक खुराक के खानेवाले लोगों को बहुत भय में गिरना पड़ता है॥

अनुकूल ही शरीर को श्रम देवें क्योंकि ऐसा करने से अधिक हानि का संभव नहीं रहता है, परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–सदा एक ही प्रकार की खुराक को खाते रहना भी अति हानिकारक होता है।

खुराक ऐसी खानी चाहिये कि–जिस में शरीर के पोषण के सब तत्व यथायोग्य मौजूद हों, अपने लोगों की खुराक सामान्य रीति से इन सब तत्वों से युक्त होती है क्योंकि शुद्ध अन्न और दाल आदि पदार्थों में शरीर के पोषण के आवश्यक तत्व मौजूद रहते हैं, परन्तु प्राणिजन्य खुराक अर्थात् घी मक्खन और मांस आदि पदार्थों में आटे के सत्ववाला तत्व अर्थात् गर्मी को कायम रखनेवाला तत्व बिलकुल नहीं होता है, हां इस प्रकार की (प्राणिजन्य) खुराक में केवल दूध ही सब तत्वों से युक्त है, इसी लिये अकेले दूध से भी बहुत दिनों तक मनुष्य का निर्वाह होसकता है।

घी में केवल चरबीवाला तत्व है, परन्तु उस में पौष्टिक आटे के सत्ववाला तथा क्षार का तत्व बिलकुल नहीं है, चाँवलों में बहुत सा भाग आटे के सत्वका है और पौष्टिक तत्व प्रति सैकड़े पांच रुपये भर ही है, इसी लिये अपने लोगों में भात के साथ दाल तथा घी खाने का आम (सामान्यतया) प्रचार[1] है।

बालकों के लिये चरबीवाले तत्व से युक्त तथा अति पौष्टिक तत्व से युक्त खुराक उपयोगी नहीं है, किन्तु उन के लिये तो चाँवल दूध और मिश्री आदि की खुराक बहुत अनुकूल हो सकती है, क्योंकि–इन सब पदार्थों में पौष्टिक तत्व बहुत कम है और गर्मी लानेवाला तत्व विशेष है और बालकों को ऐसी ही खुराक की आवश्यकता है, गेहूँ में चरबी का भाग बहुत कम हैं इस लिये गेहूँ की रोटी में अच्छी तरह घी डाल कर खाना चाहिये, बाजरी तथा ज्वार में यद्यपि चरबी का भाग आवश्यकता के अनुसार मौजूद है तथा पौष्टिक तत्व गेहूँ की अपेक्षा कम है तथापि इन दोनों पदार्थों से पोषण का काम चल सकता है, अन्नों में उड़द सब से अधिक पौष्टिक है इसलिये शीत ऋतु में पौष्टिक तत्ववाले उड़द के आटे के साथ गर्मी देनेवाला घी तथा मिश्री का योग कर खाना बहुत गुणकारक है, गर्म देश में ताज़ी शाक तरकारी फायदा करती है, अपना देश गर्म है इस लिये यहां के निवासियों को ताज़ी वनस्पति फायदा करती है, इसी कारण से शीत ऋतु की अपेक्षा उष्ण ऋतु में उस (ताज़ी वनस्पति) के विशेष सेवन करने की आवश्यकता होती है, चरबीवाले और चिकनासवाले भोजन में नींबू की खटाई और थोड़ा बहुत मसाला अवश्य डालना चाहिये।

१–यह बहुत ही उत्तम प्रचार है क्योंकि–दाल से पौष्टिक तत्व पूरा हो जाता है और दाल में नमक के होने से चाँवलों में क्षार की जो न्यूनता है वह भी पूरी हो जाती है और घी से चरबीवाला तत्व भी मिल सकता है॥

यद्यपि देश, काल, स्वभाव, श्रम, शरीर की रचना और अवस्था आदि के अनेक भेदों से खुराक के भी अनेक भेद हो सकते हैं तथापि इन सब का वर्णन करने में ग्रन्थविस्तार का भय विचार कर उनका वर्णन नहीं करते हैं किन्तु मुख्यतया यही समझना चाहिये कि खुराक का भेद केवल एक ही है अर्थात् जिस से भूख और प्यास की निवृत्ति हो उसे खुराक कहते हैं, उस खुराक की उत्पत्ति के मुख्य दो हेतु हैं-स्थावर और जङ्गम, स्थावरों में तमाम वनस्पति और जङ्गम में प्राणिजन्य दूध, दही, मक्खन और छाछ (मट्ठा) आदि खुराक जान लेनी चाहिये ।

जैनसूत्रों में उस आहार वा खुराक के चार भेद लिखे हैं-अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इनमें से खाने के पदार्थ अशन, पीने के पदार्थ पान, चाब कर खाने के पदार्थ खादिम और चाट कर खाने के पदार्थ स्वादिम कहलाते हैं ।

यद्यपि आहार के बहुत से प्रकार अर्थात् भेद हैं तथापि गुणों के अनुसार उक्त आहार के मुख्य आठ भेद हैं—भारी, चिकना, ठंढा, कोमल, हलका, रूक्ष (रूखा), गर्म और तीक्ष्ण (तेज़), इन में से पहिले चार गुणोंवाला आहार शीतवीर्य है और पिछले चार गुणोंवाला आहार उष्णवीर्य है ॥

आहार में स्थित जो रस है उसके छः भेद हैं—मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण (खारा), कटु (तीखा), तिक्त (कडुआ) और कषाय (कषैला), इन छः रसों के प्रभावसे आहार के ३ भेद हैं—पथ्य, अपथ्य और पथ्यापथ्य, इन में से हितकारक आहार को पथ्य, अहितकारक (हानिकारक) को अपथ्य और हित तथा अहित (दोनों) के करने वाले आहार को पथ्यापथ्य कहते हैं, इन तीनों प्रकारों के आहार का वर्णन विस्तार पूर्वक आगे किया जावेगा ।

इस प्रकार आहार के पदार्थों के अनेक सूक्ष्म भेद हैं परन्तु सर्व साधारण के लिये वे विशेष उपयोगी नहीं हैं, इस लिये सूक्ष्म भेदों का विवेचन कर उनका वर्णन करना अनावश्यक है, हां बेशक छः रस और पथ्यापथ्य पदार्थ सम्बंधी आवश्यक विषयका ज्ञान लेना सर्व साधारण के लिये हितकारक है, क्योंकि जिस खुराक को हम सब खाते पीते हैं उसके जुदे २ पदार्थों में जुदा २ रस होने से कौन २ सा रस क्या २ गुण रखता है, क्या २ क्रिया करता है और मात्रा से अधिक खाने से किस २ विकार को उत्पन्न करता है और हमारी खुराक के पदार्थों में कौन २ से पदार्थ पथ्य हैं तथा कौन २ से अपथ्य हैं, इन सब बातों का जानना सर्व साधारण को आवश्यक है, इसलिये इनके विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है:—

१-देखो । पथ्यापथ्य वर्णननामक छठा प्रकरण ॥

छः रस ॥

पहिले कह चुके हैं कि–आहार में स्थित जो रस है उस के छः भेद हैं–अर्थात् मीठा, खट्टा, खारा, तीखा, कडुआ और कषैला, इनकी उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है कि–पृथ्वी तथा पानी के गुण की अधिकता से मीठा रस उत्पन्न होता है, पृथ्वी तथा अग्नि के गुण की अधिकता से खट्टा रस उत्पन्न होता है, पानी तथा अग्नि के गुण की अधिकता से खारा रस उत्पन्न होता है, वायु तथा अग्नि के गुण की अधिकता से तीखा रस उत्पन्न होता है, वायु तथा आकाश के गुण की अधिकता से कडुआ रस उत्पन्न होता है और पृथ्वी तथा वायु के गुण की अधिकता से कषैला रस उत्पन्न होता है ॥

छओं रसों के मिश्रित गुण ॥

मीठा खट्टा और खारा, ये तीनों रस वातनाशक हैं ॥
मीठा कडुआ और कषैला, ये तीनों रस पित्तनाशक हैं ॥
तीखा कडुआ और कषैला, ये तीनों रस कफनाशक हैं ॥
कषैला रस वायु के समान गुण और लक्षणवाला है ॥
तीखा रस पित्त के समान गुण और लक्षणवाला है ॥
मीठा रस कफ के समान गुण और लक्षणवाला है ॥

छओं रसों के पृथक् २ गुण ॥

मीठा रस—लोहू, मांस, मेद, अस्थि (हाड़) मज्जा, ओज, वीर्य तथा स्तनों के दूध को बढ़ाताहै, आँख के लिये हितकारी है, बालों तथा वर्ण को स्वच्छ करता है, बलवर्धक है, टूटे हुए हाड़ों को जोड़ता है, बालक वृद्ध तथा जखम से क्षीण हुओं के लिये हितकारी है, तृषा मूर्च्छा तथा दाह को शान्त करता है सब इन्द्रियों को प्रसन्न करता है और कृमि तथा कफ को बढाता है।

इस के अति सेवन से यह–खांसी, श्वास, आलस्य, वमन, मुखमाधुर्य (मुख की मिठास), कण्ठविकार, कृमिरोग, कण्ठमाला, अर्बुद, श्लीपद, बस्तिरोग (मधुप्रमेह आदि मूत्र के रोग) तथा अभिष्यन्द आदि रोगों को उत्पन्न करता है ॥

खट्टा रस—आहार, वातादि दोष, शोथ तथा आम को पचाता है, वादी का नाश करता है, वायु मल तथा मूत्र को छुड़ाता है, पेटमें अग्निको करता है, लेप करने से ठंढक करता है तथा हृदयको हितकारी है।

१–दोहा–मधुर अम्ल अरु लवण पुनि, कटुक कषैला जोय ॥
और तिक्त जग कहत है, षट् रस जानो सोय ॥ १ ॥

इस के अति सेवन से यह–दन्तहर्ष (दाँतों का जकड़ जाना), नेत्रबन्ध (आँखोंका मिचना), रोमहर्ष (रोंगटों का खड़ा होना), कफ का नाश तथा शरीरशैथिल्य (शरीर का ढीला होना) को करता है, एवं कण्ठ छाती तथा हृदय में दाह को करता है ॥

खारा रस—मलशुद्धि को करता है, खराब व्रण (गुमड़े) को साफ करता है, खुराक को पचाता है, शरीर में शिथिलता करता है, गर्मी करता तथा अवयवों को कोमल (मुलायम) रखता है।

इस के अति सेवन से यह खुजली, कोढ़, शोथ तथा थेथरको करता है, चमड़ी के रंग को विगाड़ता है, पुरुषार्थ का नाश करता है, आंख आदि इन्द्रियों के व्यवहार को मन्द करता है, मुखपाक (मुँह का पकजाना) को करता है, नेत्रव्यथा, रक्तपित्त, वातरक्त तथा खट्टी डकार आदि दुष्ट रोगों को उत्पन्न करता है ॥

तीखा रस—अग्नि दीपन, पाचन तथा मूत्र और मल का शोधक (शुद्ध करनेवाला) है, शरीर की स्थूलता (मोटापन),आलस्य, कफ, कृमि, विषजन्य (जहर से पैदा होनेवाले) रोग, कोढ़ तथा खुजली आदि रोगों को नष्ट करता है, सांधों को ढीला करता है, उत्साह को कम करता है तथा स्तन का दूध,वीर्य और मेद इन का नाशक है।

इस के अति सेवन से यह–भ्रम, मद, कण्ठशोष (गले का सूखना), तालुशोष (तालु का सूखना), ओष्ठशोष (ओठों का सूखना), शरीर में गर्मी, बलक्षय, कम्प और पीड़ा आदि रोगों को उत्पन्न करता है तथा हाथ पैर और पीठ में वादी को करके शूल को उत्पन्न करता है ॥

कड़ुआ रस—खुजली, खाज, पित्त, तृषा, मूर्च्छा तथा ज्वर आदि रोगों को शान्त करता है, स्तन के दूधको ठीक रखता है तथा मल, मूत्र, मेद, चरबी और व्रणविकार (पीप) आदि को सुखाता है।

इस के अति सेवन से यह–गर्दन की नसों का जकड़ना, नाड़ियों का खिंचना, शरीर में व्यथा का होना, श्रम का होना, शरीर का टूटना, कम्पन का होना तथा भूख में रुचि का कम होना आदि विकारों को करता है ॥

कषैला रस—दस्त को रोकता है, शरीर के गात्रों को दृढ़ करता है, व्रण तथा प्रमेह आदि का शोधन (शुद्धि) करता है, व्रण आदि में प्रवेश कर उस के दोष को निकालता है तथा क्लेद अर्थात् गाढ़े पदार्थ पके हुए पीपका शोषण करता है।

इस के अति सेवन से यह–हृदय पीड़ा, मुखशोष (मुखका सूखना), आध्मान (अफरा), नसों का जकड़ना, शरीर स्फुरण (शरीर का फड़कना), कम्पन तथा शरीरका संकोच आदि विकारोंको करता है ॥

यद्यपि खाने के पदार्थों में प्रायः छओं रसोंका प्रतिदिन उपयोग होता है तथापि कडुआ और कषैला रस खानेके पदार्थों में स्पष्टतया (साफ तौर से) देखने में नहीं आता है, क्योंकि-ये दोनों रस बहुत से पदार्थों में अव्यक्त (छिपे हुए) रहते हैं, शेष चार रस (मीठा, खट्टा, खारा और तीखा) प्रतिदिन विशेष उपयोग में आते हैं॥[1]

यह चतुर्थ अध्यायका आहारवर्णन नामक चतुर्थ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पाँचवां प्रकरण—वैद्यक भाग निघण्टु ॥

धान्यवर्ग ॥

चावल—मधुर, अग्निदीपक, बलवर्धक, कान्तिकर, धातुवर्धक, त्रिदोषहर और पेशाब लानेवाला है ॥

उपयोग—यद्यपि चावलों की बहुत सी जातियां हैं तथापि सामान्य रीति से कमोद के चावल स्वाद में उत्तम होते हैं और उस में भी दाऊदखानी चावल बहुत ही तारीफ के लायक हैं, गुण में सब चावलों में सोंठी चावल[2] उत्तम होते हैं, परन्तु वे बहुत लाल तथा मोटे होने से काम में बहुत नहीं लाये जाते हैं, प्रायः देखा गया है कि-शौकीन लोग खाने में भी गुणको न देख कर शौक को ही पसन्द करते हैं, बस चावलों के विषय में भी यही हाल है।

चावलों में पौष्टिक और चरबीवाला अर्थात् चिकना तत्व बहुत ही कम है, इस लिये चावल पचने में बहुत ही हलका है, इसी लिये बालकों और रोगियों के लिये चावलों की खुराक विशेष अनुकूल होती है।

साबूदाना यद्यपि चावलों की जाति में नहीं है परन्तु गुण में चावलों से भी हलका है, इसलिये छोटे बालकों और रोगियों को साबूदाने की ही खुराक प्रायः दी जाती है।

यद्यपि डाक्टर लोग कई समयों में चावलों की खुराक का निषेध (मनाई) करते हैं परन्तु उसका कारण यही मालूम होता है कि-हमारे यहां के लोग चावलों को ठीक रीति से पकाना नहीं जानते हैं, क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि बहुतसे लोग चावलों को अधिक आंच देकर जल्दी ही उतार लेते हैं, ऐसा करने से चावल ठीक तौर से नहीं पक

१-स्मरण रहना चाहिये कि-यद्यपि ये सब रस प्रतिदिन भोजन में उपयोग में आते हैं परन्तु इनके अत्यन्त सेवन से तो हानि ही होती है, जिस को पाठक गण ऊपर के लेखसे जान सकते हैं, देखो! इन सब रसों में मीठा रस यद्यपि विशेष उपयोगी है तथापि अत्यन्त सेवन से वह भी बहुत हानि करता है, इसलिये इन के अत्यन्त सेवन से सदैव बचना चाहिये ॥

२-इन को गुजरात में वरीना चोखा भी कहते हैं ॥

सकते हैं और इस प्रकार पके हुए चावल हानि ही करते हैं, चावलों के पकाने की सर्वोत्तम रीति यह है कि–पतीली में पहिले अधिक पानी चढ़ाया जावे, जब पानी गर्म होजावे तब उस में चावलों को धोकर डाल दिया जावे तथा धीमी २ आंच जलाई जावे, जब चावलों के दो कण सीज जावें तब पतीली के मुँह पर कपड़ा बाँध कर पतीलीको औंधा कर (उलट कर) सब मांड़ निकाल दिया जावे, पीछे उस में थोड़ा सा घी डाल कर पतीली को अंगारों पर रख कर ढक दिया जावे, थोड़ी देर में ही भाफ के द्वारा तीसरा कण भी सीज जायगा तथा चावल फूल कर भात तैयार हो जावेगा, इस के ठीक २ पक जाने की परीक्षा यह है कि–थाली में डालते समय ठनाठन आवाज़ करने के बदले फूल के समान हलके होकर गिरें और हाथ से मसलने पर मक्खन के समान मुलायम मालूम हों तो जान लेना चाहिये कि चावल ठीक पक गये हैं, इस के सिवाय यह भी परीक्षा है कि–यदि चावल खाते समय जितने दबा २ कर खाने पड़ें उतना ही उनको कच्चा समझना चाहिये ।

बहुत से लोग चावलों को बहुत बादी करनेवाला समझ कर उन के खाने से डरते हैं परन्तु जितना वे लोग चावलों को बादी करनेवाले समझते हैं चावल उतने बादी करनेवाले नहीं हैं, हां बेशक यह बात ठीक है कि–घटिया चावल कुछ बादी करनेवाले होते हैं किन्तु दूसरे चावल तो पकने की कमी के कारण विशेष बादी करते हैं, सो यह दोष सब ही अन्नों में है अर्थात् ठीक रीति से न पके हुए सब ही अन्न बादी करते हैं ।

नये चावलों की अपेक्षा दो एक वर्ष के पुराने चावल विशेष गुणकारी होते हैं तथा दाल के साथ चावलों के खानेसे उन का वायु गुण कम हो जाता है और पौष्टिक गुण बढ़ जाता है, चावल और दाल को अलग २ पका कर पीछे साथ मिला कर खाने से उन का जल्दी पाचन हो जाता है किन्तु दोनों को मिलाकर पकाने से खिचड़ी होती है वह कुछ भारी हो जाती है, खिचड़ी प्रायः चावलों के साथ मूंग और अरहर (तुर) की दाल मिलाकर बनाई जाती है ॥

गेहूँ—पुष्टिकारक, धातुवर्धक, बलवर्धक, मधुर, ठंढा, भारी, रुचिकर, टूटे हुए हाड़ों को जोड़नेवाला, व्रण को मिटानेवाला तथा दस्त को साफ लानेवाला है ॥

उपयोग—गेहूँ की मुख्य दो जाति हैं–काठा और बाजिया, इन में पुनः दो भेद हैं—श्वेत और लाल, श्वेत गेहूँ से लाल अधिक पुष्ट होता है, गेहूँ में पौष्टिक तथा गर्मी लानेवाला तत्त्व मौजूद है, इस लिये दूसरे अन्नों की अपेक्षा यह विशेष उपयोगी और उत्तम पोषण की एक अपूर्व वस्तु है ।

गेहूँ में खार तथा चरबी का भाग बहुत कम है इसी कारण गेहूँ के आटे में नमक डाल कर रोटी बनाई जाती है, द्रव्यानुसार घी मक्खन और मलाई आदि पदार्थों के साथ

गेहूँ का यथायोग्य खाना अधिक लाभदायक है, गेहूँ की मैदा पचने में भारी होती है इसलिये मन्दाग्निवाले लोगों को मैदे की रोटी तथा पूड़ी नहीं खानी चाहिये, गेहूँ के आटे से बहुत से पदार्थ बनते हैं, गेहूँ की राब तथा पतली घाट पचने में हलकी होती है अर्थात् घाट की अपेक्षा रोटी भारी होती है, एवं पूड़ी, हलुआ (शीरा), लड्डू, मगध और गुलपपड़ी, इन पदार्थों में पूर्व २ की अपेक्षा उत्तरोत्तर पचने में भारी होते हैं, घी के साथ खाने से गेहूँ वादी नहीं करता है ॥

बाजरी—गर्म, रूक्ष, पुष्ट, हृदय को हितकारी, स्त्रियों के काम को बढ़ानेवाली, पचने में भारी और वीर्य को हानि पहुँचानेवाली है ॥

उपयोग—बाजरी गर्म होने से पित्त को खराब करती है, इसलिये पित्त प्रकृतिवाले लोगों को इससे बचना चाहिये, रूक्ष होने से यह कुछ वायु को भी करती है, जिन २ देशों में बाजरी की उत्पत्ति अधिक होती है तथा दूसरे अन्न कम पैदा होते हैं वहां के लोगों को नित्य के अभ्यास से बाजरी हीं पथ्य हो जाती है[2]।

यद्यपि पोषण का तत्त्व बाजरी में भी गेहूँ के ही लगभग है तथापि गेहूँ की अपेक्षा चरबी का तत्व इस में विशेष है इस लिये घी के विना इस का खाना हानि करता है ॥

ज्वार—ठंढी, मीठी, हलकी, रूक्ष और पुष्ट है ॥

उपयोग—ज्वार में बाजरी के समान ही पोषण का तत्व है तथा चरबी का भाग भी बाजरी के ही समान है, ज्वार करड़ी और रूक्ष है इस लिये वह वायु करती है परन्तु नित्य का अभ्यास होने से मरहठे, कुणबी तथा गुजरात और काठियावाड़ आदि देशों के निवासी गरीब लोग प्रायः ज्वार और अरहर (तूर) की दाल से ही अपना निर्वाह करते हैं ॥

मूंग—ठंढा, ग्राही, हलका, स्वादिष्ट, कफ पित्त को मिटानेवाला और आंखों को हितकारी है परन्तु कुछ वायु करता है ॥

उपयोग—दाल की सब जातियों में मूंग की दाल उत्तम होती है, क्योंकि मूंग की दाल तथा उस का जल प्रायः सब ही रोगों में पथ्य है और दूध की गर्ज (आवश्यकता) को पूर्ण करता है किन्तु विचार कर देखा जावे तो यह दूध की अपेक्षा भी अधिक गुण-

---

१—मुर्शिदाबादी ओसवाल लोगों के यहां प्रतिदिन खुराक में मैदा का उपयोग होता है और दाल तथा शाकादि में वहां वाले अमचुर बहुत डालते हैं जिस से पित्त बढ़ता है—सत्य तो यह है कि—ये दोनों खुराकें निर्बलता की हेतु हैं परन्तु उन लोगों में प्रातःकाल प्रायः दूध और बादाम की कतली के खाने की चाल है इस लिये उन के जीवन का आवश्यक तत्व कायम रहता है तथापि ऊपर कही हुई दोनों वस्तुयें अपना प्रभाव दिखलाती रहती हैं ॥

२—जैसे बीकानेर के राज्य में बाजरी की ही विशेष खपत है, मौठ, बाजरी और मतीरे जैसे इस जमीन में होते हैं वैसे और कहीं भी नहीं होते हैं ॥

कारक है, क्योंकि नये सन्निपात ज्वर में दूध की मनाई है परन्तु उस में भी मूंग की दाल का पानी हितकारी है, एवं बहुत दिनों के उपवास के पारने में भी यही पानी हितकारी है. साबत मूंग वायु करता है, यदि मूंग की दाल को कोरे तवे पर कुछ सेक कर फिर विधिपूर्वक सिजा कर बनाया जावे तो वह बिलकुल निर्दोष होजाती है यहां तक कि पूर्व और दक्षिण के देशों में तथा किसी भी वीमारी में वह वायु नहीं करती है, यद्यपि मूंग की बहुत सी जातियां हैं परन्तु उन सब में हरे रंग का मूंग गुणकारी है ॥

अरहर—मीठी, भारी, रुचिकर, ग्राही, ठंढी और त्रिदोषहर है, परन्तु कुछ वायु करती है ॥

उपयोग—रक्तविकार, अर्श (मस्सा), ज्वर और गोले के रोग में फायदेमन्द है। दक्षिण और पूर्व के देशों में इस की दाल का बहुत उपयोग होता है और उन्हीं देशों में इस की उत्पत्ति भी होती है, अरहर की दाल और घी मिलाकर चावलों के खाने से वे वायु नहीं करते हैं, गुजरातवाले इस की दाल में कोकम और इमली आदि की खटाई डाल कर बनाते हैं तथा कोई लोग दही और गर्म मसाला भी डालते हैं इस से वह वायु को नहीं करती है, दाल से बनी हुई वस्तु में कच्चा दही और छाछ मिला कर खाने से थूक के स्पर्शसे दो इन्द्रियवाले जीव उत्पन्न होते हैं इसलिये वह अभक्ष्य है और अभक्ष्य वस्तु रोग कर्त्ता होती है, इस लिये द्विदल[1] पदार्थों की कढ़ी और राइता आदि बनाना हो तो पहिले गोरस (दही वा छाछ आदि) को वाफ निकलने तक गर्म कर के फिर उस में बेसन आदि द्विदल अन्न मिलाना चाहिये तथा दही खिचड़ी भी इसी प्रकार से बना कर खानी चाहिये जिस से कि वह रोगकर्त्ता न हो।

पाकविद्या का ज्ञान न होने से बहुत से लोग गर्म किये विना ही दही और छाछ के साथ खिचड़ी तथा खीचड़ा खा लेते हैं वह उन के शरीर को बहुत हानि पहुँचाता है, इस लिये जैनाचार्योंने रोग कर्ता होने के कारण २२ बहुत बड़े अभक्ष्य बतला कर उन का निषेध किया है तथा उन का नाम अतीचार सूत्र में लिख बतलाया है उसका हेतु केवल यही प्रतीत होता है कि उन का स्मरण सदा सब को बना रहे, परन्तु बड़े शोक का विषय है कि—इस समय में हमारे बहुत से प्रिय जैन बन्धु इस बातको बिलकुल नहीं समझते हैं ॥

उड़द—अत्यन्त पुष्ट, वीर्यवर्धक, मधुर, तृप्तिकारक, मूत्रल (पेशाब लानेवाला), मलभेदक (मल को तोड़नेवाला), स्तनों में दूध को बढ़ानेवाला, मांस और मेदे की

१–जिस अन्न की दो फांकें हों उस अन्न को द्विदल कहते हैं, ऐसे अन्न को गोरस अर्थात् दही और छाछ आदि के साथ गर्म किये विना खाना जैनागम में निषिद्ध है अर्थात् इस को अभक्ष्य लिखा है ॥

वृद्धि करनेवाला, शक्तिप्रद (ताकत देनेवाला), वायुनाशक और पित्त कफ को बढ़ानेवाला है ॥

उपयोग—श्वास, श्रान्ति, अर्दित वायु (जिस में मुँह टेढ़ा हो जाता है) तथा अन्य भी कई वायु के रोगों में यह पथ्य है, शीत ऋतु में तथा वादी की तासीरवाले पुरुषों के लिये यह फायदेमन्द है, पचने के बाद उड़द गर्म और खट्टे रस को उत्पन्न करता है इस लिये पित्त और कफ की प्रकृतिवालों को तथा इन दोनों दोषों से उत्पन्न हुए रोगवालों को हानि पहुँचाता है ॥

चना—हलका, ठंढा, रूक्ष, रुचिकर, वर्णशोधक (रंग को सुधारनेवाला) और शक्तिदायक (ताकत देनेवाला) है ॥

उपयोग—कफ तथा पित्त के रोगों में फायदेमन्द है, कुछ ज्वर को भी मिटाता है परन्तु वादी कर्त्ता, कब्ज़ी करनेवाला अथवा अधिक दस्त लगानेवाला है, खुराक में काम देनेवाली चने की बहुत सी चीजें बनती है क्यों-कि यह साबत, आटा (बेसन) और दाल, इन तीनों तरह से काम में लाया जाता है, मोतीचूर का ताजा लड्डू पित्ती के रोग को शीघ्र ही मिटाता है, चने में चरबी का भाग कम है इस लिये इस में घी और तेल आदि स्निग्ध पदार्थ अधिक डालना चाहिये, यह तासीर के अनुसार परिमित खाने से हानि नहीं करता है, घी के कम डालने से चने के सब पदार्थ हानि करते हैं ॥

मौठ—रुचिकर, पुष्टिकारक, मीठा, रूक्ष, ग्राही, बलवर्धक, हलका, कफ तथा पित्त को मिटानेवाला और वायुकारक है ॥

उपयोग—यह रक्तपित्त के रोग, ज्वर, दाह, कृमि और उन्माद रोग में पथ्य है ॥

चँवला—मीठा, भारी, दस्त लानेवाला, रूक्ष, वायुकर्त्ता, रुचिकर, स्तन में दूध को बढ़ानेवाला, वीर्य को बिगाड़नेवाला और गर्म है ॥

उपयोग—यह अत्यन्त वायुकर्त्ता है इस लिये इस को अधिक कभी नहीं खाना चाहिये, यह खाने में मीठा तथा पचने के बाद खट्टे रस को उत्पन्न करता है, शक्तिदायक है परन्तु रूक्ष और भारी होने से पेट में गुरुता को उत्पन्न कर वायु को करता है, गर्म, दाहकारी और शरीरशोषक (शरीर को सुखानेवाला) है, शरीर के विष का तथा आंखों के तेज का नाशक है ॥

१-दिल्ली के चारों तरफ पंजाब तक इस की दाल को हमेशा खाते हैं तथा काठियावाड़वाले इस के लड्डू शीत काल में पुष्टि के लिये बहुत खाते हैं ॥

२-गुजरातवाले तेल के साथ चने का उपयोग करते हैं ॥

मटर—रुचिकर, मीठा, पुष्टिकर, रूक्ष, ग्राही, शक्तिवर्धक (ताकत को बढ़ानेवाला), हलका, पित्त कफ को मिटानेवाला और वायुकर्त्ता है।

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य ने निघण्टुराजमें पदार्थों के गुण और अवगुण लिखे हैं वे सब मुख्यतया बनाने की क्रिया में तो रहते ही हैं यह तो एक सामान्य बात है परन्तु संस्कार के अदल बदल (फेरफार) से भी गुणों में अदल बदल हो जाता है, उदाहरण के लिये पाठक गण समझ सकते हैं कि–पुराने चावलों का पकाया हुआ भात हलका होता है परन्तु उन्हीं के चुरमुरे आदि बहुत भारी हो जाते हैं, इसी प्रकार उन्हीं की बनी हुई खिचड़ी भारी, कफ पित्त को उत्पन्न करनेवाली, कठिनता से पचनेवाली, बुद्धि में बाधा डालनेवाली तथा दस्त और पेशाब को बढानेवाली है, एवं थोड़े जल में उन्हीं चावलों का पकाया हुआ भात शीघ्र नहीं पचता है किन्तु उन्हीं चावलों का अच्छी तरह धोकर पँचगुने पानीमें खूब सिजा कर तथा मांड निकाल कर भात बनाने से वह बहुत ही गुणकारी होता है, इसी प्रकार खिचड़ी भी धीमी २ आंच से बहुत देरतक पका कर बनाई जाने से ऊपर लिखे दोषों से रहित हो जाती है।

चने चँवले और मौठ आदि जो २ अन्न वातकर्त्ता हैं तथा जो २ दूसरे अन्न दुष्पाक (कठिनता से पचनेवाले) हैं वे भी घी के साथ खाये जाने से उक्त दोषों से रहित हो जाते हैं अर्थात् वायु को कम उत्पन्न करते और जल्दी पच जाते हैं।

मारवाड़ देश के बीकानेर और फलोधी आदि नगरों में सब लोग आखातीज (अक्षय तृतीया अर्थात् वैशाखसुदि तीज) के दिन ज्वार का खीचड़ा और उस के साथ बहुत घी खाकर ऊपर से इमली का शर्बत पीते हैं क्योंकि आखातीज को नया दिन समझ कर उस दिन वे लोग इसी खुराक का खाना शुभ और लाभदायक समझते हैं, सो यद्यपि यह खुराक प्रत्यक्ष में हानिकारक ही प्रतीत होती है तथापि वह प्रकृति और देश की तासीर के अनुकूल होने से ग्रीष्म ऋतु में भी उन को पचजाती है परन्तु इस में यह एक बड़ी खराबी की बात है कि बहुत से अज्ञ लोग इस दिन को नया दिन समझ कर रोगी मनुष्य को भी वही खुराक खाने को दे देते हैं जिस से उस बेचारे रोगी को बहुत हानि पहुँचती है इस लिये उन लोगों को उचित है कि–रोगी मनुष्य को वह (उक्त) खुराक भूल कर भी न देवें[3] ॥

१–इस धान्यवर्ग में बहुत थोड़े आवश्यक धान्यों का वर्णन किया गया है, शेष धान्यों का तथा उन से बने हुए पदार्थों का वर्णन बृहन्निघण्टु रत्नाकर आदि ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

२–इस को बीकानेरनिवासी अमलवाणी कहते हैं ॥

३–श्री ऋषभदेवजी ने तो इस दिन सांठे अर्थात् ऊख का रस पिया था जिस रस को श्रेयांस नामक पड़पोते ने वर्ष भर के भूखे को सुपात्र दान देकर अक्षय सुख का उपार्जन किया था, उसी दिन से इस का नाम अक्षयतृतीया हुआ ॥

शाक वर्ग ॥

नित्य की खुराक के लिये शाक (तरकारी) बहुत कम उपयोगी है, क्यौंकि-सब शाक दस्त को रोकनेवाले, पचने में भारी, रूक्ष, अधिक मल को पैदा करनेवाले, पवन को बढ़ानेवाले, शरीर के हाड़ों के भेदक, आंख के तेज को घटानेवाले, शरीर के रंग खून तथा कान्ति को घटानेवाले, बुद्धि का क्षय करनेवाले, बालों को श्वेत करनेवाले तथा स्मरणशक्ति और गति को कम करनेवाले हैं, इसी लिये वैद्यकशास्त्रों का सिद्धान्त है कि-सब शाकों में रोग का निवास है[1] और रोग ही शरीर का नाश करता है, इस लिये विवेकी लोगों को उचित है कि-प्रतिदिन खुराक में शाक का भक्षण न करें, जो २ दोष खट्टे पदार्थों में कह चुके हैं प्रायः उन्हीं के समान सब दोष शाकों में भी हैं, यह तो सामान्यतया शास्त्र का अभिप्राय कहा गया है परन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने तो यह निश्चय किया है कि-ताज़े फल और शाक तरकारी बिलकुल न खाने से स्कर्वी अर्थात् रक्तपित्त का रोग हो जाता है।

यह रोग पहिले फौज़ में, जेलों में, जहाजों में तथा दूसरे लोगों में भी बहुत बढ़ गया था, सुना जाता है कि-आतसन नामक एक अंग्रेज ने ९०० आदमियों को साथ लेकर जहाज़ पर सवार होकर सब पृथिवी की प्रदक्षिणा का प्रारम्भ किया था, उस यात्रा में ९०० आदमियों में से ६०० आदमी इसी स्कर्वी के रोग से इस संसार से विदा होगये तथा शेष बचे हुए ३०० में से भी आधे (१५०) उसी रोग से ग्रस्त होगये थे, इस का कारण यही था कि वनस्पति की खुराक का उपयोग उन में नहीं था, इस के पश्चात् केप्टिन कुक ने पृथ्वी की प्रदक्षिणा का प्रारम्भ कर उसी में तीन वर्ष व्यतीत किये, उन के साथ ११८ आदमी थे परन्तु उन में से एक भी स्कर्वी के रोग से नहीं मरा, क्योंकि केप्टिन को मालूम था कि खुराक में वनस्पति का उपयोग करने से तथा नींबू का रस खाने से यह रोग नहीं होता है, आखिरकार धीरे २ यह बात कई विद्वानों को मालूम होगई और इसके मालूम हो जाने से यह नियम कर दिया गया कि-जितने जहाज़ यात्रा के लिये निकलें उन में मनुष्यों की संख्या के परिमाण से नींबू का रस साथ रखना चाहिये और उस का सेवन प्रतिदिन करना चाहिये, तब से लेकर यही नियम सर्कारी फौज़ तथा जेलखानों के लिये भी सर्कार के द्वारा कर दिया गया अर्थात् उन लोगों को भी महीने में एक दो बार वनस्पति की खुराक दी जाती है, ऐसा होने से इस स्कर्वी (रक्तपित्त) रोग से जो हानि होती थी वह बहुत कम हो गई है।

१-जैसा कि लिखा है कि-"सर्वेषु शाकेषु वसन्ति रोगाः" इत्यादि ॥

२-परन्तु मेरी सम्मति में उत्तम फलादि का बिलकुल त्याग भी नहीं कर देना चाहिये ॥

ऊपर के लेख को पढ़ कर पाठकों को यह नहीं समझ लेना चाहिये कि–इस (रक्त-पित्त) रोग के कारण को डाक्टरों ने ही खोज कर बतलाया है क्योंकि–पूर्व समय के जैन श्रावक लोग भी इस बात को अच्छी तरह से जानते थे, देखो । उपासकदशासूत्र में आनन्दश्रावक के बारह व्रतों के ग्रहण करने के अधिकार में यह वर्णन है कि–आनन्द-श्रावक ने एक क्षीरामल फल (खीरा ककड़ी) को रखकर और सब वनस्पतियों का त्याग किया, इस वर्णन से यह सिद्ध होता है कि–आनन्दश्रावक को इस विद्या की विज्ञता थी, क्योंकि उस ने क्षीरामल फल को यही विचार कर खुला रक्खा था कि यदि एक भी उत्तम फल को मैं खुला न रक्खूंगा तो स्कर्वी (रक्तपित्त) का रोग हो जावेगा और शरीर में रोग के होजाने से धर्मध्यानादि कुछ भी न बन सकेगा।

परन्तु बड़े ही शोक का विषय है कि–वर्त्तमान समय में हमारे बहुत से भोले जैन बन्धु एकदम मुक्ति में जाने के लिये बिलकुल ही वनस्पति की खुराक का त्याग कर देते हैं, जिस का फल उन को इसी भव में मिलजाता है कि वे वनस्पति की खुराक का बिल-कुल त्याग करने से अनेक रोगों में फँस जाते हैं तथापि वे ज़रा भी उन (रोगों) के कारणोंकीओर ध्यान नहीं देते हैं।

इस विद्या का यथार्थ ज्ञान होने से मनुष्य अपना कल्याण अच्छी तरह से कर सकता है, इस लिये सब जैन बन्धुओं को इस विद्या का ज्ञान कराने के लिये यहां पर संक्षेप से हम ने इस विषयको लिखा है, इस बात का निश्चय करने के लिये यदि प्रयत्न किया जावे तो सैकड़ों ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरण मिल सकते हैं जिन से यही सिद्ध होता है कि–वनस्पति की खुराक का बिलकुल त्याग कर देने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, देखो! जिन लोगों ने एकदम वनस्पति की खुराक को बन्द कर दिया है उनकी गुदा और मुख से प्रायः खून गिरने लगता है अर्थात् किसी २ के महीने में दो चार वार गिरता है और किसी २ के दो चार वार से भी अधिक गिरता है तथा मुख में छाले आदि भी हो जाते हैं इत्यादि बातें जब आंखों से दीखती हैं तो उन के लिये दूसरे प्रमाण की क्या आव-श्यकता[2] है।

डाक्टरों का कथन है कि–उपयोग के लिये शाक और फल आदि उत्तम होने चाहियें चाहें वे थोड़े भी मिलें, और विचार कर देखने से यह बात बिलकुल ठीक भी मालूम होती है, क्योंकि–थोड़े भी शाक और फल आदि हों परन्तु उत्तम हों तो उन से विशेष लाभ होता है और बाज़ार में कई दिन तक पड़े रहने के कारण सूखे और सड़े हुए शाक

१–इस ग्रन्थ का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भी छप चुका है ॥

२–जैसा कि न्याय का सिद्धान्त है कि–"प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्" अर्थात् प्रत्यक्ष में दूसरे प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है ॥

और फल आदि चाहें अधिक भी हों तो भी उन से कुछ लाभ नहीं होता है किन्तु उनसे अनेक प्रकार की हानियां ही होती हैं, तात्पर्य यह है कि हरी चीजों का बहुत ही सावधानी के साथ यथाशक्य थोड़ा ही उपयोग करना परन्तु उत्तमों का उपयोग करना बुद्धिमानों का काम है और यही अभिप्राय सब वैद्यक ग्रन्थों का भी है, परन्तु वर्त्तमान समय में हमारे देश के जिह्वालोलुप लोगों में शाकादि का उपयोग बहुत ही देखा जाता है और उस में भी गुजराती, भाटिये, वैष्णव और शैव सम्प्रदायी आदि बहुत से लोगों में तो इस का वेपरिमाण उपयोग देखा जाता है तथा वस्तु की उत्तमता और अधमता पर एवं उस के गुण और दोष पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है, इस से बड़ी हानियां हो रही है, इसलिये बुद्धिमानों का यह कर्त्तव्य है कि–इस हानिकारक वर्त्ताव से स्वयं बचने का उद्योग कर अपने देशके अन्य सब भ्राताओं को भी इस से अवश्य बचावें।

वनस्पति की खुराक के विषय में शास्त्रीय सिद्धान्त यह है कि–जिस वनस्पति में शक्तिदायक तथा उष्णताप्रद (गर्मी लानेवाला) भाग थोड़ा हो और पानी का भाग विशेष हो इस प्रकार की ताज़ी वनस्पति थोड़ी ही खानी चाहिये।

पत्ते, फूल, फल और कन्द आदि कई प्रकार के शाक होते हैं–इन में अनुक्रम से पूर्व २ की अपेक्षा उत्तर २ का भारी होता है अर्थात् पत्तों का शाक सब से हलका है और कन्द का शाक सब से भारी है।

हमारे देश के बहुत से लोग वैद्यकविद्या और पाकशास्त्र के न जानने से शाकादि पदार्थों के गुण दोष तथा उन की गुरुता लघुता आदि को भी बिलकुल नहीं जानते हैं, इसलिये वे अपने शरीर के लिये उपयोगी और अनुपयोगी शाकादि को नहीं जानते हैं अतः कुछ शाकों के गुण आदि का वर्णन करते हैं:—

चँदलिया (चौलाई)—हलका, ठंढा, रूक्ष, मल मूत्र को उतारनेवाला, रुचिकर्त्ता, अग्निदीपक, विषनाशक और पित्त कफ तथा रक्त के विकारको मिटानेवाला है, इस का शाक प्रायः सब रोगों में पथ्य और सबों की प्रकृति के अनुकूल है, यह जैसे सब शाकों में पथ्य है उसी प्रकार स्त्रीके प्रदर में इस की जड़, बालकों के दस्त और अजीर्णता में इस के उबाले हुए पत्ते और जड़ पथ्य है, कोढ़, वातरक्त, रक्तविकार, रक्तपित्त और खाज दाद तथा फुनसी आदि चर्म रोगों में भी विना लाल मिर्चका इस का शाक खाने से बहुत लाभ होता है, यद्यपि यह ठंढा है तथापि वात पित्त और कफ इन तीनों दोषों को शान्त करता है; दस्त और पेशाब को साफ़ लाता है, पेशाब की गर्मी को शान्त करता है, खून को शुद्ध करता है, पित्त के विकार को मिटाता है, यदि किसी विकृत दवा की गर्मी

१–जिस शाक को जैन सूत्रों में जगह २ पर 'अनन्तकाय' के नाम से लिखा है वह शाक महागरिष्ठ, रोगकर्त्ता और कष्ट से पचनेवाला समझना चाहिये ॥

अथवा किसी विष का प्रभाव हो रहा हो तो इस के पत्तों को उबाल कर तथा उन का रस निकाल कर उस रस को शहद वा मिश्री डाल कर पीने से तथा इस का शाक खाने से दवा की गर्मी और विष का असर दस्त और पेशाव के मार्गसे निकल जाता है, इस को जिस कदर अधिक सिजाया जावे उसी कदर यह अधिक स्वादिष्ठ और गुणकारी हो जाता है, मद, रक्तपित्त, पीनस, त्रिदोषज्वर, कफ, खांसी और दस्त की बीमारी में भी यह बहुत फायदेमन्द है ॥

पालक—अग्निदीपक, पाचक, मलशुद्धिकारक, रुचिकर तथा शीतल है, शोथ, विष-दोष, हरस तथा मन्दाग्नि में हितकारक है ॥

बथुआ—बथुए का शाक पाचक, रुचिकर, हलका और दस्त को साफ लानेवाला है, तापतिल्ली, रक्तविकार, पित्त, हरस, कृमि और त्रिदोष में फायदेमन्द है ॥

पानगोभी—फूल गोभी की चार किस्मों से यह (पानगोभी) अलग होती है, यह भारी, ग्राही, मधुर और रुचिकर है, वातादि तीनों दोषोंमें पथ्य, स्तन के दूध और वीर्य को बढ़ानेवाली है ॥

पानमेथी—यह पित्तकारक तथा ग्राही है, परन्तु कफ, वायु और कृमि का नाश करती है, रुचिकर और पाचक होती है ॥

अरुई के पत्ते—अरुई[1] के पत्तों का शाक रक्तपित्त में अच्छा है, परन्तु दस्त की कब्ज़ी कर वायु को कुपित करता है, इस से मरोड़े के दस्त होने लगते हैं ॥

मोगरी—तीक्ष्ण तथा उष्ण हैं और कफ वायु की प्रकृतिवाले के लिये अच्छी हैं ॥

मूली[2] के पत्ते—मूली के ताज़े पत्तों का शाक-पाचक, हलका, रुचिकर और गर्म है, मूली के पत्तों को बीकानेर गुजरात और काठियावाड़ के लोग तेल में पकाते हैं तथा उन के शाक को तीनों दोषों में लाभदायक समझते हैं, इस के कच्चे पत्ते पित्त और कफ को विगाड़ते हैं ॥

परवल—हृदय को हितकर, बलवर्धक, पाचक, उष्ण, रुचिकर, कामवर्धक, हलका और चिकना है, खांसी, रक्तपित्त, ज्वर, त्रिदोषज सन्निपात और कृमि आदि रोगों में बहुत फायदेमन्द है, फलों के सब शाकों में सर्वोत्तम शाक परवल का ही है ॥

मीठा तूंबा—मीठा, धातुवर्धक, बलवर्धक, पौष्टिक, शीतल और रुचिकर है, परन्तु पचने में भारी, कफकारक, दस्त को बन्द करनेवाला और गर्भ को सुखानेवाला है, इस को कद्दू, लवा और दूधी भी कहते हैं तथा इस का शीरा भी बनाया जाता है ॥

१-पूर्व के देशों में अरुई को घुइया कहते हैं ॥

२-यद्यपि जैसलमेर के रावल जीने ऐसा कहा है कि-"मूलीमूल न खाय, जो सुख चाहे जीव रो" परन्तु यह कथन एकदेशी है, क्योंकि कच्ची मूली भी बहुत से रोगों में पथ्य मानी गई है ॥

कोला, पेठा—इस की दो किस्में हैं—एक तो पीला और लाल होता है उस को कोला कहते हैं, उस का शाक बनाया जाता है और दूसरा सफेद होता है उस को पेठा, कहते हैं, उस का मुरब्बा बनता है, यह बहुत मीठा, ठंढा, रुचिकर, तृप्तिकर, पुष्टिकारक और वीर्यवर्धक है, श्रान्ति और थकावट को दूर करता है, पित्त, रक्तविकार, दाह और वायु को मिटाता है, छोटा कोला ठंढा होता है इस लिये वह पित्त को शान्त करता है, मध्यम कद का कोला कफ करता है और बड़े कद का कोला बहुत ठंढा नहीं है, मीठा है, खारवाला, अग्निदीपक, हलका, मूत्राशय का शोधक और पित्त के रोगों को मिटानेवाला है ॥

बैंगन—बैंगन की दो किस्में हैं—काला और सफेद, इन में से काला बैंगन नींद लानेवाला, रुचिकारक, भारी तथा पौष्टिक है, और सफेद बैंगन दाह तथा चमड़ी के रोग को उत्पन्न करता है, सामान्यतया दोनों प्रकार के बैंगन गर्म, वायुहर तथा पाचक होते हैं, एक दूसरी तरह का भी नींबू जैसा बैंगन होता है तथा उसे गोल काचर कहते हैं, वह कफ तथा वायु की प्रकृतिवाले के लिये अच्छा है तथा खुजली, वातरक्त, ज्वर, कामला और अरुचि रोगवाले के लिये भी हितकारी है, परंतु जैनसूत्रों में बैंगन को बहुत सूक्ष्म बीज होने से अभक्ष्य लिखा है ॥

घिया तोरई—स्वादिष्ट, मीठी, वात पित्त को मिटानेवाली और ज्वर के रोगी के लिये भी अच्छी है ॥

तोरी—वातल, ठंढी और मीठी है, कफ करती है, परन्तु पित्त, दमा, श्वास, कास, ज्वर और कृमिरोगों में हितकारक है ॥

करेला—कड़ुआ, गर्म, रुचिकारक, हलका और अग्निदीपक है, यदि यह परिमित (परिमाण से) खाया जावे तो सब प्रकृतिवालों के लिये अनुकूल है, अरुचि, कृमि और ज्वर आदि रोगों में भी पथ्य है ॥

ककड़ी—इस की बहुत सी किस्में हैं—उन में से खीरा नाम की जो ककड़ी है वह कच्ची ठंढी, रूक्ष, दस्त को रोकनेवाली, मीठी, भारी, रुचिकर और पित्तनाशक है, तथा

१–इसे पूर्व में काशीफल, सीताफल, गंगाफल और लौका भी कहते हैं ॥

२–इस को कुम्हेड़ा भी कहते हैं ॥

३–इसका आगरे में पेठाभी बहुत उमदा बनता है जिसको मुर्शिदाबादवाले हेसमी कहते हैं और व्यवाह आदि में बहुत उमदा बनायी जाती है ॥

४–किसी अनुभवी वैद्य ने कहा है कि–"बैंगन कोमल पथ्य है, कोला कच्चा ज़हर है, हरड़ें कच्ची और पक्की सदा पथ्य हैं, बोर (बेर) कच्चा पक्का सदा कुपथ्य है" ॥

५–इस को आनन्द श्रावक ने खुला रक्खाथा, यह पहिले कह चुके हैं, यह धर्मात्मा श्रावक महावीर स्वामी के समय में हुआ है, (देखो–उपासक दशा सूत्र) ॥

वही पक्की ककड़ी अग्नि और पित्त को बढाती है, मारवाड़ की ककड़ी तीनों दोषों को कुपित करती है इसलिये वह खाने और शाक के लायक विलकुल नहीं है, हां यदि खूब पकी हुई हो और उस की एक या दो फांकें काली मिर्च और सेंधानमक लगा कर खाई जावें तो वह अधिक नुकसान नहीं करती है परन्तु इस का अधिक उपयोग करने से हानि ही होती है।

कलिन्द (मतीरा)—कफकारक और वायुकारक है, लोग कहते हैं कि-यह पित्त की प्रकृति वाले के लिये अच्छा है परन्तु इस का अधिक सेवन करने से क्षय की वीमारी हो जाती है, वास्तव में तो ककड़ी और मतीरा तीनों दोषों में अवश्य विकार को पैदा करते हैं इस लिये ये उपयोग के योग्य नहीं हैं।

बीकानेर के निवासी लोग कच्चे मतीरे का शाक करते हैं तथा पके हुए मतीरे को हेमंत ऋतु में खाते हैं सो यह अत्यन्त हानिकारक है, मारवाड़ के जाट लोग और किसान आदि कच्ची बाजरी के मोरड़ को खाकर ऊपर से मतीरे को खा लेते हैं इस से उन को अभ्यास होने से यद्यपि किसी अंश में कम नुकसान होता है तथापि महिनों तक उस का सेवन करने से शीत दाह ज्वर का स्वाद उन्हें भी चखना ही पड़ता है ॥

सेम की फली—मीठी है, ठंढी और भारी होने से वातल है, पित्त को मिटाती है तथा ताकत देती है ॥

गुवार फली—रूक्ष, भारी, कफकारक, अग्निदीपक, सारक (दस्तावर) और पित्तहर है, परन्तु वायु को बहुत करती है ॥

सहजने की फली—मीठी, कफहर, पित्तहर और अत्यन्त अग्निदीपक है, शूल, कोढ़, क्षय, श्वास तथा गोले के रोग में बहुत पथ्य है, सहजने की फली के सिवाय वाकी सब फलियां वातल हैं ॥

सूरण कन्द[3]—अग्निदीपक, रूक्ष, हलका, पाचक, पित्तकर्त्ता, तीक्ष्ण, मलस्तम्भक और रुचिकर है, हरस, शूल, गोला, कृमि, कफ, मेद, वायु, अरुचि, श्वास, तिल्ली और खांसी, इन सब रोगों में फायदेमन्द है, परन्तु दाद, कोढ़ और रक्तपित्त के रोगी के लिये अपथ्य है, हरस की वीमारी में इस का शाक तथा इसी की रोटी पूड़ी और शीरा आदि बनाकर खाने से दवा का काम करता है, कन्दशाकों में सूरण का शाक सब से श्रेष्ठ है परन्तु इस को अच्छीतरह पका कर तथा घृत डालकर खाना चाहिये ॥

१-इस को गुजरात में चीभड़ा कहते हैं तथा इसी का नाम संस्कृत में चिर्भटी है ॥

२-इस को पूर्व देश में तरबूज कहते हैं और वहां वह गर्मी की ऋतु में उत्पन्न होता है ॥

३-इस में अरुई की तरह कांटे होते हैं ॥

आलू—ठंढा, मीठा, रूक्ष, मूत्र तथा मल को रोकनेवाला, पोषणकारक, बलवर्धक, स्तन के दूध तथा वीर्य को बढ़ानेवाला, रक्तपित्त का नाशक और कुछ वायुकर्त्ता है परन्तु अधिक घी के साथ खाने से वायु नहीं करता हैं, अंगार में भून कर अथवा घी में तलकर छोटे बालकों को खिलाने से उन का अच्छी तरह पोषण करता है तथा हाड़ों को बढ़ाता है ॥

रतालू तथा सकरकन्द—पुष्टिकारक, मीठा, मलको रोकने वाला और कफकारी है ॥

मूली—भारी मल को रोकने वाली, तीखी, उष्णताकारक, अग्निदीपक और रुचिकर है, हरस, गुल्म, श्वास, कफ, ज्वर, वायु और नाक के रोगों में हितकारी है, कच्ची मूली तीनो प्रकृति वाले लोगों के लिये हितकारक है, पकी हुई तथा बड़ी मूलियों को मूले कहते हैं-वे (मूले) रूक्ष, अति गर्म और कुपथ्य हैं, मूले के ऊपर के छिलके भारी और तीखे होते हैं इसलिये वे अच्छे नहीं हैं, मूले को गर्म जल में अच्छी तरह से सिजा कर पीछे अधिक घी या तेल में तल कर खाने से वह तीनों प्रकृति वालों के लिये अनुकूल हो जाता है ॥

गाजर—मीठी, रुचिकर तथा ग्राही है, खुजली और रक्तविकार के रोगों में हानि करती है, परन्तु अन्य बहुत से रोगों में हितकारी है, यह वीर्य को विगाड़ती है इसलिये इस को समझदार लोग नहीं खाते हैं ॥

काँदा—बलवर्धक, तीखा, भारी, मीठा, रुचिकर, वीर्यवर्धक तथा कफ और नींद को पैदा करने वाला है, क्षय, क्षीणता, रक्तपित्त, वमन, विषूचिका (हैज़ा), कृमि, अरुचि, पसीना, शोथ और खून के सब रोगों में हितकारी है, इस का शाक मुरब्बा और पाक आदि भी बनता है ॥

रांधने की युक्ति और दूसरे पदार्थों के संयोग से शाक तरकारी के गुणों में भी अन्तर हो जाता है अर्थात् जो शाक वायुकर्त्ता होता है वह भी बहुत घी तथा तेल के संयोग से बनाने पर वायुकर्त्ता नहीं रहता है, इसी प्रकार सूरण और आलू आदि जो शाक पचने में भारी है उस को पहिले खूब जल में सिजाकर फिर घी या तेल में छौंका जावे तो वह हानि नहीं करता है क्योंकि ऐसा करने से उस का भारीपन नष्ट हो जाता है।

१-इसीलिये-जैन शास्त्रों में जगह २ कन्द के खाने का निषेध किया है तथा अन्यत्र भी इस का सर्वत्र निषेध ही किया है, इस लिये कन्द का कोई भी शाक दवा के सिवाय जैनी तथा वैष्णवों को भी नहीं खाना चाहिये, क्योंकि-जैन सूत्रों में कन्द को 'अनन्तकाय, के नाम से बतलाकर इस के खाने का निषेध किया है तथा वैष्णव और शैव सम्प्रदाय वालों के धर्मग्रन्थों में भी कन्दमूल का खाना निषिद्ध है, इस का प्रमाण सात व्यसन तथा रात्रिभोजन के वर्णन में आगे लिखेंगे ॥

शाकों के विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—शाकों में बहुत लाल मिर्च तथा दूसरे मसाले डाल कर नहीं खाने चाहियें, क्योंकि अधिक लाल मिर्च और मसाले डाल कर शाकों के खाने से पाचनशक्ति कम होकर दस्त, संग्रहणी, अम्लपित्त, रक्तपित्त और कुष्ठ आदि रक्तविकारजन्य रोग हो जाते हैं ॥

दुग्ध वर्ग ॥

दूध का सामान्य गुण यह है कि—दूध मीठा, ठंढा, पित्तहर, पोषण कर्त्ता, दस्त साफ लाने वाला, वीर्य को जल्दी उत्पन्न करने वाला, बलबुद्धि वर्धक, मैथुन शक्ति वर्धक, अवस्था को स्थिर करने वाला, वयोवर्धक (आयु को बढ़ाने वाला), रसायन रूप, टूटे हुए हाड़ों को जोड़ने वाला, भूखे को बालक को और वृद्ध को तृप्ति देनेवाला, स्त्रीभोगादि से क्षीण को तथा ज़खम वाले को हित है, एवं जीर्णज्वर, श्रम, मूर्छा, मनःसम्बन्धी रोग, शोष, हरस, गुल्म, उदररोग, पाण्डु, मूत्ररोग, रक्तपित्त, श्रान्ति, तृषा, दाह, उरोरोग (छाती के रोग,) शूल, आध्मान (अफरा), अतीसार और गर्भस्राव में दूध अत्यन्त पथ्य है, न केवल इन्हीं में किन्तु प्रायः सब ही रोगों में दूध पथ्य है; परन्तु सन्निपात, नवीन ज्वर, वातरक्त और कुष्ठ आदि कई एक रोगों में दूध का निषेध है, यद्यपि नवीन ज्वर में तो कोनैन पर डाक्टर लोग दूध पिला भी देते हैं परन्तु सन्निपातकी अवस्था में तो दूध विष के तुल्य है यह निश्चित सिद्धान्त है, एवं सुज़ाक (फिरंग) रोग की तरुणावस्था में भी दूध हानिकारक है, जो लोग दूध की लस्सी बना कर पीते हैं वह गँठिया हो जाने का मूल कारण है, दूध में यह एक बड़ा ही अपूर्व गुण है कि—यह अति शीघ्र धातु की वृद्धि करता है अर्थात् जितनी जल्दी दूध से धातु की वृद्धि होती है उतनी जल्दी अन्य किसी भी वस्तु से नहीं हो सकती है, देखो । किसी ने कहा भी है कि— "वीर्य बढ़ावन बलकरण, जो मोंहि पूछो कोय ॥ पय समान तिहुँ लोक में, अपर न औषध होय" ॥ १ ॥

गाय के दूध मे ऊपर लिखे अनुसार सब गुण हैं परन्तु गाय के वर्णभेद से दूध के गुणों में भी कुछ अन्तर होता है जिस का संक्षेप से वर्णन यह है कि:—

काली गाय का दूध—वायुहर्त्ता और अधिक गुणकारी है ॥

लाल गाय का दूध—वातहर और पित्तहर होता है ॥

सफेद गाय का दूध—कुछ कफकारी होता है ॥

तुरत की ब्याई हुई गाय का दूध—तीनों दोषों को उत्पन्न करता है ॥

१-यह संक्षेप से कुछ शाकों का वर्णन किया गया है, शेष शाकों का वर्णन वृहन्निघण्टु रत्नाकर आदि ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

विना वछड़े की गाय का दूध—यह भी तीनों दोषों को उत्पन्न करता है ॥

भैंस का दूध—यद्यपि भैंस का दूध गुण में कई दर्जे गाय के दूध से मिलता हुआ ही है तथापि गाय के दूध की अपेक्षा इस का दूध अधिक मीठा, अधिक गाढ़ा, भारी, अधिक वीर्यवर्धक, कफकारी और नींद को वढ़ानेवाला है, वीमार के लिये गाय का दूध जितना पथ्य है उतना भैंस का दूध पथ्य नहीं है ॥

वकरी का दूध—मीठा, ठंढा और हलका है, रक्तपित्त, अतीसार, क्षय, कास और ज्वर की जीर्णावस्था आदि रोगों में पथ्य है ॥

भेड़ का दूध—खारा, मीठा, गर्म, पथरी को मिटानेवाला, वीर्य, पित्त और कफ को पैदा करनेवाला, वायु को मिटानेवाला, खट्टा और हलका है ॥

ऊँटनी का दूध—हलका, मीठा, खारा, अग्निदीपक और दस्त लानेवाला है, कृमि, कोढ़, कफ, पेटका अफरा, शोथ और जलोदर आदि पेट के रोगों को मिटाता है ॥

स्त्री का दूध—हलका, ठंढा और अग्निदीपक है, वायु, पित्त, नेत्ररोग, शूल और वमन को मिटाता है ॥

धारोष्ण दूध—शक्तिप्रद, हलका, ठंढा, अग्निदीपक और त्रिदोषहर है। इस की वैद्यक शास्त्र में वहुत ही प्रशंसा लिखी है तथा वहुत से अनुभवी पुरुष भी इस की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं-इस लिये यदि इस की प्राप्ति हो सके तो इस के सेवन का अभ्यास अवश्य रखना चाहिये क्योंकि यह दूध वालक से लेकर वृद्धतक के लिये हितकारी है तथा सव अवस्थाओं में पथ्य है।

दुहने के पीछे जव दूध ठंढा पड़ जावे तो उस को गर्म करके उपयोग में लाना चाहिये, क्योंकि कच्चा दूध वादी करता है इस लिये कच्चा नहीं पीना चाहिये, गाय तथा भैंस के दूध के सिवाय और सव पशुओं का कच्चा दूध शर्दी तथा आम को उत्पन्न करता है, इस लिये कुपथ्य है, गर्म किया हुआ दूध वायु कफ की प्रकृतिवाले को सुहाता हुआ गर्म पीने से फायदा करता है, अधिक गर्म दूध का पीना पित्तप्रकृतिवाले को हानि पहुँचाता है तथा गर्म दूध के पीने से मुख में छाले भी पड़ जाते हैं इस लिये गर्म दूध को ठंढा कर के पीना चाहिये, दूध के वज़न से आधा वज़न पानी डाल कर उस को औंटाना चाहिये जव पानी जल जावे केवल दूध मात्र शेष रह जावे तव उस को उतार कर ठंढा करके कुछ मिश्री आदि मीठा डाल कर पीना चाहिये। यह दूध वहुत हलका तीनों प्रकृतिवालों के लिये अनुकूल तथा वीमार के लिये भी पथ्य है, औंटाने के द्वारा वहुत गाढ़ा

१-सामान्यतया वाखड़ी गाय का (जिस को व्याये हुए दो चार महीने वीत गये हैं उस गाय का) दूध उत्तम होता है, इस के सिवाय जैसी खुराक गाय को खाने को दी जावे उसी के अनुसार उस के दूध में भी गुण और दोष रहा करता है ॥

हुआ दूध भारी हो जाता है इसलिये यह दूध नहीं पीना चाहिये किन्तु बीमारों को तथा मन्दपाचन शक्तिवालों को दूध में डाले हुए पानी के तीन हिस्से जल जावें तथा एक हिस्सा रह जावे उस दूध का पीना फायदेमन्द होता है, औटाने के द्वारा अधिक गाढ़ा किया हुआ दूध बहुत ही भारी तथा शक्तिप्रद है परन्तु वह केवल पूरी पाचनशक्तिवालों को तथा कसरती जवानों को ही पच सकता है ॥

खराब दूध—जिस दूध का रंग और स्वाद बदल गया हो, खट्टा पड़ गया हो, दुर्गन्धि आने लगी हो और उस के ऊपर फेन सा बँध गया हो उस दूध को खराब हो गया समझ लेना चाहिये, ऐसा दूध कभी नहीं पीना चाहिये क्योंकि ऐसा दूध हानि करता है, दुहने के तीन घड़ी के पीछे भी यदि दूध को गर्म न किया जावे तो वह हानिकारक हो जाता है इस दूध को बासा दूध भी माना गया है, यदि दुहा हुआ दूध दुहने के पीछे पांच घड़ी तक कच्चा ही पड़ा रहे और पीछे खाया जावे तो वह अवश्य विकार करता है अर्थात् वह अनेक प्रकार के रोगों का हेतु हो जाता है, दूध के विषय में एक आचार्य का यह भी कथन है कि–'गर्म किया हुआ भी दूध दश घड़ी के बाद बिगड़ जाता है, इसी प्रकार जैन भक्ष्याभक्ष्य निर्णयकार ने भी कहा है कि–'दुहने के सात घण्टे के बाद दूध (चाहे वह गर्म भी कर लिया गया हो तथापि) अभक्ष्य हो जाता है, और विचार कर देखने से यह बात ठीक भी प्रतीत होती है क्योंकि सात घण्टे के बाद दूध अवश्य खट्टा हो जाता है, इस लिये दुहने के पीछे या गर्म करने के पीछे बहुत देर तक दूध को नहीं पड़ा रखना चाहिये ।

प्रातःकाल का दूध सायंकाल के दूध से कुछ भारी होता है, इस का कारण यह है कि रात को पशु चलते फिरते नहीं हैं इस लिये उन को परिश्रम नहीं मिलता है और रात ठंढी होती है इसलिये प्रातःकाल का दूध भारी होता है तथा सायंकाल का दूध प्रातःकाल के दूध से हलका होने का कारण यह है कि दिन को सूर्य की गर्मी के होने से और पशुओं को चलने फिरने के द्वारा परिश्रम प्राप्त होने से सायंकाल का दूध हलका होता है, इस से यह भी सिद्ध होता है कि–सदा बँधे रहनेवाले पशुओं का दूध भारी और चलने फिरनेवाले पशुओं का दूध हलका तथा फायदेमन्द होता है, इस के सिवाय जिन की वायु तथा कफ की प्रकृति है उन लोगों को तो सायंकाल का दूध ही अधिक अनुकूल आता है ।

१–सर्वज्ञ के वचनामृत सिद्धान्त में दुहने से दो घड़ी के बाद कच्चे दूध को अभक्ष्य लिखा है तथा जिन का रंग, खुशबू, स्वाद और रूप बदल गया हो ऐसी खाने पीने की सब ही चीजों को अभक्ष्य कहा है, इसलिये ऊपर कही हुई बात का खयाल सब वस्तुओं में रखना चाहिये, क्योंकि ऐसी अभक्ष्य वस्तुयें अवश्य ही रोग का कारण होती हैं ॥

पोषण के सब पदार्थों में दूध बहुत उत्तम पदार्थ है क्योंकि–उस में पोषण के सब तत्त्व मौजूद हैं, केवल यही हेतु है कि–बीमार सिद्ध और योगी लोग बरसों तक दूध के द्वारा ही अपना निर्वाह कर आरोग्यता के साथ अपना जीवन विताते हैं, बहुत से लोगों को दूध पीने से दस्त लग जाते हैं और बहुतों को कब्जी हो जाती है, इस का हेतु केवल यही है कि–उन को दूध पीने का अभ्यास नहीं होता है परन्तु ऐसा होने पर भी उन के लिये दूध हानिकारक कभी नहीं समझना चाहिये, क्योंकि केवल पांच सात दिनतक उक्त अड़चल रह कर पीछे वह आप ही शान्त हो जाती है और उन का दूध पीने का अभ्यास पड़ जाता है जिस से आगे को उन की आरोग्यता कायम रह सकती है, यह बिलकुल परीक्षा की हुई बात है इस लिये जहांतक हो सके दूध का सेवन सदा करते रहना चाहिये; देखो! पारसी और अंग्रेज़ आदि श्रीमान् लोग दूध और उस में से निकाले हुए मक्खन मलाई और पनीर आदि पदार्थों का प्रतिदिन उपयोग करते हैं परन्तु आर्य जाति के श्रीमान् और भाग्यवान् लोग तो शाक राइता और लाल मिर्च आदि के मसालों आदि के शौक में पड़े हुए हैं, अब साधारण गरीब लोगों की तो बात ही क्या कहें! इस का असली कारण सिर्फ यही है कि–आर्य जातिके लोग इस विद्या को बिलकुल नहीं समझते हैं इसी प्रकार से दूध की खुराक के विषय में मारवाड़ी प्रजा भी बिलकुल भूली हुई है, जब यह दशा है तो कहिये शरीर की स्थिति कैसे सुधर सकती है? इस लिये इस देश के भाग्यवानों को उचित है कि–क़िस्से कहानी की पुस्तकों के पढ़ने तथा इधर उधर की निकम्मी गप्पों के द्वारा अपने समय को व्यर्थ में न गँवा कर उत्तमोत्तम वैद्यक शास्त्र और पाकविद्या के ग्रन्थों को घण्टे दो घण्टे सदा पढ़ा करें तथा घर में रसोइया भी उसी को रक्खें जो इस विद्या का जाननेवाला हो तथा जिस प्रकार गाड़ी घोड़े आदि सब सामान रखते हैं उसी प्रकार गाय और भैंस आदि उपयोगी पशुओं को रखना उचित है, बल्कि गाड़ी घोड़े आदि के खर्च को कम करके इन उपयोगी पशुओं के रखने में अधिक खर्च करना चाहिये, क्योंकि गाड़ी घोड़ों से उतनी भाग्यवानी नहीं ठहर सकती है जितनी कि गायों और भैंसो से ठहर सकती है, क्योंकि इन पशुओं की पालना कर इन के दूध घी और मक्खन आदि बुद्धिवर्धक उत्तमोत्तम पदार्थों के खाने से उन की और उन के लड़कों की बुद्धि स्थिर होकर बढ़ेगी तथा बुद्धि के बढ़ने से श्रीमत्त्व (श्रीमन्ताई वा भाग्यवानी) अवश्य बनी रहेगी, इस के सिवाय यह भी बात है कि–जितनी गायें और भैंसें पृथिवी पर अधिक होंगी उतना ही दूध और घी अधिक सस्ता होगा।

१–देखो उपासक दशा सूत्र में दश बड़े श्रीमान् श्रावकों का अधिकार है, उस में यह लिखा है कि–कामदेव जी के ८० हज़ार गायें थीं तथा आनन्द जी के ४० हज़ार गायें थीं, इस प्रकार से दशों के गोकुल था॥

विचार कर देखने से प्रतीत होता है कि-इन पशुओं से देश को बहुत ही लाभ पहुँचता है अर्थात् क्या गरीब और क्या अमीर सब का निर्वाह इन्हीं पशुओं से होता है; इस लिये इन पशुओं की पूरी सार सम्भाल और रक्षा कर अपनी आरोग्यता को कायम रखना और देश का हित करना सर्व साधारण का मुख्य कर्त्तव्य है, देखो! जब यह आर्यावर्त्त देश पूर्णतया उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था तब इस देश में इन पशुओंकी असंख्य कोटियां थीं परन्तु जब से दुर्भाग्य वश इस पवित्र देश की वह दशा न रही और मांसाहारी यवनों का इस पर अधिकार हुआ तब से मांसाहारियों ने इन पशुओं को मार २ कर इस देश को सब तरह से लाचार और निःसत्व कर दिया परन्तु सब जानते हैं कि वर्त्तमान समय श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट के अधिकार में है और इस समय कोई किसी के साथ अत्याचार और अनुचित वर्त्ताव नहीं कर सकता है और न कोई किसी पर किसी तरह का दवाव ही डाल सकता है इस लिये इस सुधरे हुए समय में तो आर्य श्रीमन्तों को अपने हिताहित का विचार कर प्राचीन सन्मार्ग पर ध्यान देना ही चाहिये।

दूध में खार तथा खटाई का जितना तत्व मौजूद है उस से अधिक जब खार और खटाई का योग हो जाता है तब वह हानि करता है अर्थात् उस का गुणकारी धर्म नष्ट होजाता है इसलिये विवेक के साथ दूध का उपयोग करना चाहिये।

दूध के विषय में और भी कई बातें समझने की हैं जिन का समझ लेना सर्व साधारण को उचित है, वे ये हैं कि—जैसे दूध में खार तथा खटाई के मिलने से वह फट जाता है (इस बात को प्रायः सब ही जानते हैं) उसी प्रकार यदि खार तथा खटाई के साथ दूध खाया जावे तो वह अवश्य हानि करता है, वैद्यक ग्रन्थों का कथन है कि-यदि दूध को भोजन के समय खाना हो तो भोजन के सब पदार्थों को खा कर पीछे से दूध पीना चाहिये अथवा भोजन के पीछे भात के साथ दूध को खाना चाहिये, हां यदि भोजन में दूध के विरोधी खटाई, मिर्च, तेल, पापड़ और गुड़ आदि पदार्थ न हों तो भोजन के साथ ही में दूध को भी खा लेना चाहिये।

दूध के साथ खाने में बहुत से पदार्थ मित्र का काम करते हैं और बहुत से पदार्थ शत्रु का काम करते हैं, इस का कुछ संक्षिप्त वर्णन किया जाता है:—

दूध के मित्र—दूध में छः रस हैं-इसलिये इन छःओं रसों के समान स्वभाववाले (छःओं रसों के स्वभाव के तुल्य स्वभाववाले) पदार्थ दूध के अनुकूल अर्थात् मित्रवत् होते हैं, देखो। दूध में खट्टा रस है उस खटाई का मित्र आँवला है, दूध में मीठा रस है उस मीठे रस का मित्र बूरा या मिश्री है, दूध में कड़ुआ रस है उस कड़ुए रस का मित्र परवल है, दूध में तीखा रस है उस तीखे रस का मित्र सोंठ तथा अदरख है, दूध में

कषैला रस है उस कषैले रस का मित्र हरड़ है तथा दूध में खारा रस है उस खारे रस का मित्र सेंधानमक है, इन के सिवाय गेहूँ के पदार्थ अर्थात् पूरी और रोटी आदि, चावल, घी, मक्खन, दाख, शहद, मीठे आम के फल, पीपल, काली मिर्चे, तथा पाकों में जिन का उपयोग होता है वे पुष्टि और दीपन के सब पदार्थ भी दूध के मित्र वर्ग में हैं ॥

दूध के अमित्र (शत्रु)—सेंधे नमक को छोड़ कर बाकी के सब प्रकार के खार दूध के गुण को विगाड़ डालते हैं, इसी प्रकार आँवले के सिवाय सब तरह की खटाई, गुड़, मूँग, मूली, शाक, मद्य, मछली, और मांस दूध के सङ्ग मिल कर शत्रु का काम करते हैं, देखो! दूध के सङ्ग नमक वा खार, गुड़, मूंग, मौठ, मछली और मांस के खाने से कोढ़ आदि चर्मरोग हो जाते हैं, दूध के साथ शाक, मद्य और आसव के खाने से पित्त के रोग होकर मरण हो जाता है ॥

ऊपर लिखी हुई वस्तुओं को दूध के साथ खाने पीने से जो अवगुण होता है यद्यपि उस की खबर खानेवाले को शीघ्र ही नहीं मालूम पड़ती है तथापि कालान्तर में तो वह अवगुण प्रबलरूप से प्रकट होता ही है, क्योंकि सर्वज्ञ परमात्मा ने भक्ष्याभक्ष्य निर्णय में जो कुछ कथन किया है तथा उन्हीं के कथन के अनुसार जैनाचार्य उमास्वाति वाचक आदि के बनाये हुए ग्रन्थों में तथा जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज के बनाये हुए 'विवेकविलास, चर्चरी, आदि ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता है, क्योंकि उक्त महात्माओं का कथन तीन काल में भी अबाधित तथा युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध है, इस लिये ऐसे महानुभाव और परम परोपकारी विद्वानों के वचनों पर सदा प्रतीति रख कर सर्व जीवहितकारक परम पुरुष की आज्ञा के अनुसार चलना ही मनुष्य के लिये कल्याणकारी है, क्योंकि उन का सत्य वचन सदा पथ्य और सब के लिये हितकारी है।

देखो! सैकड़ों मनुष्य ऊपर लिखे खान पान को ठीक तौर से न समझ कर जब अनेक रोगों के झपाटे में आ जाते हैं तब उन को आश्चर्य होता है कि अरे यह क्या हो गया! हम ने तो कोई कुपथ्य नहीं किया था फिर यह रोग कैसे उत्पन्न हो गया! इस प्रकार से आश्चर्य में पड़ कर वे रोग के कारण की खोज करते हैं तो भी उन को रोग का कारण नहीं मालूम पड़ता है, क्योंकि रोग के दूरवर्त्ती कारण का पता लगाना बहुत कठिन बात है, तात्पर्य यह है कि—बहुत दिनों पहिले जो इस प्रकार के विरुद्ध खान पान किये हुए होते हैं वे ही अनेक रोगों के दूरवर्त्ती कारण होते हैं अर्थात् उन का असर शरीर में विष के तुल्य होता है और उन का पता लगना भी कठिन होता है, इस लिये मनुष्यों को जन्मभर दुःख में ही निर्वाह करना पड़ता है, इस लिये सर्व साधारण को उचित है कि—संयोगविरुद्ध भोजनों को जान कर उन का विष के तुल्य त्याग कर देवें,

क्योंकि देखो ! सदा पथ्य और परिमित (परिमाण के अनुकूल) आहार करनेवालों को भी जो अकस्मात् रोग हो जाता है उस का कारण भी वही अज्ञानता के कारण पूर्व समय में किया हुआ संयोग विरुद्ध आहार ही होता है, क्योंकि वही (पूर्व समयमें किया हुआ संयोगविरुद्ध आहार ही) समय पाकर अपने समवायों के साथ मिलकर झट मनुष्यको रोगी कर देता है, संयोगविरुद्ध आहार के बहुत से भेद हैं—उन में से कुछ भेदों का वर्णन समयानुसार क्रम से आगे किया जायगा ॥

घृत वर्ग ॥

घी के सामान्य गुण—घी रसायन, मधुर, नेत्रों को हितकर, अग्निदीपक, शीतवीर्यवाला, बुद्धिवर्धक, जीवनदाता, शरीर को कोमल करनेवाला, बल कान्ति और वीर्य को बढानेवाला, मलनिःसारक (मल को निकालनेवाला), भोजन में मिठास देनेवाला, वायुवाले पदार्थों के साथ खाने से उन (पदार्थों) के वायु को मिटानेवाला, गुमड़ों को मिटानेवाला, ज़खमी को बल देनेवाला, कण्ठ तथा स्वर का शोधक (शुद्ध करनेवाला), मेद और कफ को बढ़ानेवाला तथा अग्निदग्ध (आग से जले हुए) को लाभदायक है, वातरक्त, अजीर्ण, नसा, शूल, गोला, दाह, शोथ (सूजन), क्षय और कर्ण (कान) तथा मस्तक के रक्तविकार आदि रोगों में फायदेमन्द है, परन्तु साम ज्वर (आम के सहित बुखार) में और सन्निपात के ज्वर में कुपथ्य (हानिकारक) है, सादे ज्वर में बारह दिन बीतने के बाद कुपथ्य नहीं है, बालक और वृद्ध के लिये प्रतिकूल है, बढ़ा हुआ क्षय रोग, कफ का रोग, आमवात का रोग, ज्वर, हैज़ा, मलबन्ध, बहुत मदिरा के पीने से उत्पन्न हुआ मदात्यय रोग और मन्दाग्नि, इन रोगों में घृत हानि करता है, साधारण मनुष्यों के प्रतिदिन के भोजन में, थकावट में, क्षीणता में, पाण्डुरोग में और आंख के रोग में ताज़ा घी फायदेमन्द है, मूर्छा, कोढ़, विष, उन्माद, बादी तथा तिमिर रोग में एक वर्ष का पुराना घी फायदेमन्द है।

श्वास रोग वाले को बकरी का पुराना घी अधिक फायदेमन्द है।

गाय और भैंस आदि के दूध के गुणों में जो २ अन्तर कह चुके हैं वही अन्तर उन के घी में भी समझ लेना चाहिये।

१–यह दूध का तथा संयोगविरुद्ध आहार का (प्रसंगवश) कुछ वर्णन किया है तथा कुछ वर्णन संयोगविरुद्ध आहार का (ऊपर लिखी प्रतिज्ञा के अनुसार) आगे किया जायगा, इन दोनों का शेष वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

२–घी को तपा कर तथा छान कर खाने के उपयोग में लाना चाहिये ॥

३–इस के सिवाय जिस २ पशुके दूधमें जो २ गुण कहे हैं वेही गुण उस पशु के घी में भी जानने चाहियें ॥

सब तरह के मल्हमों में पुराना घी गुण करता है किन्तु केवल पुराने घी में भी मल्हम के सब गुण हैं ।

घी को शास्त्रकारों ने रत्न कहा है किन्तु विचार कर देखा जावे तो यह रत्न से भी अधिक गुणकारी है परन्तु वर्त्तमान समय में शुद्ध और उत्तम घी भाग्यवानों के सिवाय साधारण पुरुषों को मिलना कठिन सा होगया है, इस का कारण केवल उपकारी गाय भैंस आदि पशुओं की न्यूनता ही है ॥

गाय का मक्खन—नवीन निकाला हुआ गाय का मक्खन हितकारी है, बलवर्धक है, रंग को सुधारता है, अग्नि का दीपन करता है तथा दस्त को रोकता है, वायु, पित्त, रक्तविकार, क्षय, हरस, अर्दित वायु तथा खांसी के रोग में फायदा करता है, प्रातःकाल मिश्री के साथ खाने से यह विशेष कर शिर और नेत्रों को लाभ देता है तथा बालकों के लिये तो यह अमृतरूप है ॥

भैंस का मक्खन—भैंस का मक्खन वायु तथा कफ को करता है, भारी है, दाह पित्त और श्रम को मिटाता है, मेद तथा वीर्य को बढाता है[1] ॥

वासा मक्खन खारा तीखा और खट्टा होजानेसे वमन, हरस, कोढ़, कफ तथा मेद को उत्पन्न करता है[2] ॥

दधिवर्ग ॥

दही के सामान्य गुण—दही-गर्म, अग्निदीपक, भारी, पचनेपर खट्टा तथा दस्त को रोकनेवाला है, पित्त, रक्तविकार, शोथ, मेद और कफ को उत्पन्न करता है, पीनस, जुखाम, विषम ज्वर (ठंढ का तप), अतीसार, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशता (दुर्बलता) को दूर करता है, इस को सदा युक्ति के साथ खाना चाहिये ।

दही मुख्यतया पांच प्रकार[3] का होता है—मन्द, स्वादु, स्वाद्वम्ल, अम्ल और अत्यम्ल, इन के स्वरूप और गुणों का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

मन्द—जो दही कुछ गाढ़ा हो तथा मिश्रित (कुछ दूध की तरह तथा कुछ दही की तरह) स्वादवाला हो उस को मन्द दही कहते हैं, यह-मल मूत्र की प्रवृत्ति को, तीनों दोषों को और दाह को उत्पन्न करता है ॥

स्वादु—जो दही खूब जम गया हो, जिस का स्वाद अच्छी तरह मालूम होता हो, मीठे रसवाला हो तथा अव्यक्त अम्ल रसवाला (जिस का अम्ल रस प्रकट में न मालूम

१-शेष पशुओं के मक्खन के गुणों का वर्णन अनावश्यक समझ कर नहीं किया ॥

२-यह घृत का संक्षेप से वर्णन किया गया है, इस का विशेष वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

३-वैसे देखा जावे तो मीठा और खट्टा, ये दो ही भेद प्रतीत होते हैं ॥

पड़ता हो) हो वह स्वादु दही कहलाता है, यह–शर्दी मेद तथा कफ को पैदा करता है परन्तु वायु को हरता है, रक्तपित्त में भी फायदा करता है ॥

स्वाद्वम्ल—जो दही खट्टा और मीठा हो, खूब जमा हुआ हो, खाने में थोड़ी सी तुर्सी देता हो उस को स्वाद्वम्ल दही कहते हैं, यह–मध्यम गुणवाला है ॥

अम्ल—जिस दही में मिठास बिलकुल न हो तथा खट्टा स्वाद प्रकट मालूम देता हो उस को अम्ल दही कहते हैं, यह–यद्यपि अग्नि को तो प्रदीप्त करता है परन्तु पित्त कफ और खून को बढ़ाता है और बिगाड़ता है ॥

अत्यम्ल—जिस दही के खाने से दाँत बँध से जावें (खट्टे पड़ जाने के कारण जिन से रोटी आदि भी ठीक रीति से न खाई जा सके ऐसे हो जावें), रोमाञ्च होने लगे (रोंगटे खड़े हो जावें,) अत्यन्त ही खट्टा हो, कण्ठ में जलन हो जावे उस को अत्यम्ल दही कहते हैं, यह दही भी यद्यपि अग्नि को प्रदीप्त करता है परन्तु पित्त और रक्त को बहुत ही बिगाड़ता है ।

इन पांचों प्रकार के दहियों में से स्वाद्वम्ल दही सब से अच्छा होता है ॥

उपयोग—गर्म किये हुए दूध में जाँवन देकर जो दही बनता है वह कच्चे दूध के जमाये हुए दही की अपेक्षा अधिक गुणकारी है, क्योंकि वह दही रुचिकर्त्ता पित्त और वायु को मिटानेवाला तथा धातुओं को ताकत देनेवाला है ।

मलाई निकाला हुआ दही दस्त को रोकता है, ठंढा है, वायु को उत्पन्न करता है, हलका है, ग्राही है और अग्नि को प्रदीप्त करता है, इसलिये ऐसा दही पुराने मरोड़े, ग्रहणी और दस्त के रोग में हितकारी है ।

कपड़े से छाना हुआ दही बहुत स्निग्ध, वायुहर्त्ता, कफ का उत्पन्न करनेवाला, भारी, शक्तिदायक पुष्टिकारक और रुचिकारक है तथा मीठा होने से यह पित्त को भी अधिक नहीं बढ़ाता है, यह गुण उस दही का है जिसे कपड़े में बांध कर उस का पानी टपका दिया गया हो, ऐसे (पानी टपकाये हुए) दही को मिश्री मिला कर खाने से वह प्यास, पित्त, रक्तविकार तथा दाह को मिटाता है ।

गुड़ डालकर खाया हुआ दही वायु को मिटाता है, पुष्टिकर्त्ता तथा भारी है ।

वैद्यक शास्त्र और धर्मशास्त्र रात्रि को यद्यपि सब ही भोजनों की मनाई करते हैं परन्तु उस में भी दही खाने की तो बिलकुल ही मनाई की है क्योंकि उपयोगी पदार्थों को साथ में मिला कर भी रात्रि को दही के खाने से अनेक प्रकार के महा भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिये रात्रि को दही का भोजन कभी नहीं करना चाहिये तथा जिन २ ऋतुओं में दही का खाना निषिद्ध है उन २ ऋतुओं में भी दही नहीं खाना चाहिये ।

हेमन्त शिशिर और वर्षा ऋतु में दही का खाना उत्तम है तथा शरद् (आश्विन और कार्तिक) ग्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाढ़) और वसन्त (चैत्र और वैशाख) ऋतु में दही का खाना मना है।

बहुत से लोग ऋतु आदि का भी कुछ विचार न करके प्रतिदिन दही का सेवन करते हैं यह महा हानिकारक बात है, क्योंकि ऐसा करने से रक्तविकार, पित्त, वातरक्त, कोढ़, पाण्डु, भ्रम, भयंकर कामला (पीलिये का रोग), आलस्य, शोथ, बुढ़ापे में खांसी, निद्रा का नाश, पुरुषार्थ का नाश और अल्पायु का होना आदि बहुत सी हानियां हो जाती हैं।

क्षय, वादी, पीनस और कफ के रोगियों को खाली दही भूल कर भी कभी नहीं खाना चाहिये, हां यदि उपयोगी पदार्थों को मिलाकर खाया जावे तो कोई हानि की बात नहीं है किन्तु उपयोगी पदार्थों को मिलाकर खाने से लाभ होता है, जैसे—गुड़ और काली मिर्च को दही में मिला कर खाने से प्रायः पीनस रोग मिट जाता है इत्यादि ॥

दही के मित्र—नमक, खार, घी, शक्कर, बूरा, मिश्री, शहद, जीरा, काली मिर्च, आँवले, ये सब दही के मित्र हैं इस लिये इन में से किसी चीज के साथ दही को खाना उचित है, हां इस विषय में यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि दोष तथा प्रकृति को विचार कर इन वस्तुओं का योग करना चाहिये, इन वस्तुओं के योग का कुछ वर्णन भी करते हैं—घी के साथ दही वायु को हरता है, आंवले के साथ कफ को हरता है, शहद के साथ पाचनशक्ति को बढ़ाता है परन्तु ऐसा करने से कुछ विगाड़ भी करता है, मिश्री बूरा और कंद के साथ दाह, खून, पित्त तथा प्यास को मिटाता है, गुड़ के साथ ताकत को देता है, वायु को दूर करता है, तृप्ति करता है, नमक जीरा और जल डाल कर खाने से विशेष हानि नहीं करता है परन्तु जिन रोगों में दही का खाना मना है उन रोगों में तो नमक जीरा और जल मिला कर भी खाने से हानि ही करता है ॥

तक्रवर्ग ॥

छाँछ की जाति और गुण निम्न लिखित हैं:—

१-घोल—विना पानी डाले तथा दही की थर (मलाई) विना निकाले जो विलोया

१—बीकानेर के ओसवाल लोग अपनी इच्छानुसार प्रतिदिन मनमाना दही का सेवन करते हैं ओसवाल लोग ही क्या किन्तु उक्त नगर के प्रायः सब ही लोग प्रातःकाल दही मोल लेकर उस के साथ ठंढी रोटी से सिरावणी हमेशा किया करते हैं, यह उन के लिये अति हानिकारक बात है ॥

२—परन्तु स्मरण रहे कि—बहुत गर्म करके दही को खाना विष के समान असर करता है ॥

३—यह दही का संक्षेप से वर्णन किया गया, इस का विशेष वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

४—इसे छाछ, मठा, मट्ठा तथा तक्र भी कहते हैं ॥

५—अधिक पानी डाली हुई, कम पानी डाली हुई तथा विना पानी की छाछ के गुणों में अन्तर होता है ॥

जावे उसे घोल कहते हैं, इस में मीठा डाल कर खाने से यह कच्चे आम के रस के समान गुण करता है ॥

२-**मथित**—थर निकालकर जो विलोया जावे उसे मथित कहते हैं, यह वायु पित्त और कफ का हरनेवाला तथा हृद्य (हृदय को प्यारा लगनेवाला) है ॥

३-**उदश्वित्**—आधा दही तथा आधा जल डाल कर जो विलोया जावे उसे उदश्वित् कहते हैं, यह कफ करता है, ताकत को बढ़ाता है और आम को मिटाता है ॥

४-**छछिका (छाछ)**—जिस में पानी अधिक डाला जावे तथा विलो कर जिस का मक्खन विलकुल निकाल लिया जावे उसे छछिका या छाछ कहते हैं, यह हलकी है, पित्त, थकावट और प्यास को मिटाती है, वातनाशक तथा कफ को करनेवाली है, नमक डाल कर इस का उपयोग करने से यह अग्नि को प्रदीप्त करती है तथा कफ को कम करती है ॥

५-**तक्र**—दही के सेर भर परिमाण में पाव भर पानी डाल कर जो विलोया जावे उसे तक्र कहते हैं, यह दस्त को रोकता है, पचने के समय मीठा है इसलिये पित्त को नहीं करता है, कुछ खट्टा होने से यह उष्णवीर्य है तथा रूक्ष होने से कफ को नष्ट करता है, योगचिन्तामणि तथा श्रीआयुर्ज्ञानार्णव महासंहिता में श्री हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है कि-तक्र का यथायोग्य सेवन करनेवाला पुरुष कभी व्यवहार नय से रोगी नहीं होता है और तक्र से दग्ध हुए (जले हुए वा नष्ट हुए) रोग फिर कभी नहीं होते हैं, जैसे स्वर्ग के देवताओं को अमृत सुख देता है उसी प्रकार मृत्युलोक में मनुष्यों के लिये तक्र अमृत के समान सुखदायक[1] है।

तक्र में जितने गुण होते हैं वे सब उस के आधार रूप दही में से ही आते हैं अर्थात् जिस २ प्रकार के दही में जो २ गुण कहे हैं उस २ प्रकार के दही से उत्पन्न हुए तक्र में भी वे ही गुण समझने चाहियें[2] ॥

तक्रसेवनविधि—वायु की प्रकृतिवाले को तथा वायु के रोगी को खट्टी छाछ में सेंधा नमक डाल कर पीने से लाभ होता है, पित्त की प्रकृतिवाले को तथा पित्त के रोगी को मिश्री डाल कर मीठी छाछ के पीने से लाभ होता है तथा कफ की प्रकृतिवाले को और कफ के रोगी को सञ्चल नमक, सोंठ, मिर्च और पीपल का चूर्ण मिला कर छाछ के पीने से बहुत लाभ होता है।

१-यथा च श्लोकः-'न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्, न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः ॥ यथा सुराणाममृतं सुखाय, तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ १ ॥' इस का अर्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है ॥

२-यदि दही खराव हो तो उस का तक्र भी औगुणकारी होता है ॥

शीतकाल, अग्निमान्द्य (अग्नि की मन्दता), कफसम्बन्धी रोग, मलमूत्र का साफ न उतरना, जठराग्नि के विकार, उदररोग, गुल्म और हरस, इन रोगों में छाछ बहुत ही लाभदायक है।

अकेली छाछ का ही ऐसा प्रयोग है कि-उस से असाध्य संग्रहणी तथा हरस जैसे भयंकर रोग भी अच्छे हो जाते हैं, परन्तु पूर्ण विद्वान् वैद्य की सम्मति से इन रोगों में छाछ लेने की युक्ति को समझ कर उस का उपयोग करना चाहिये, क्योंकि अम्लपित्त और संग्रहणी ये दोनों रोग प्रायः समान ही मालूम पड़ते हैं तथा इन दोनों को अलग २ पहिचान लेना मूर्ख वैद्य को तो क्या किन्तु साधारण शास्त्रज्ञानवाले वैद्य को भी कठिन पड़ता है, तात्पर्य यह है कि इन दोनों की ठीक तौर से परीक्षा तो पूर्ण वैद्य ही कर सकता है, इस लिये पूर्ण वैद्य के द्वारा रोग की परीक्षा होकर यदि संग्रहणी का रोग सिद्ध हो जावे तो छाछ को पीना चाहिये, परन्तु यदि अम्लपित्त रोग का निश्चय हो तो छाछ को कदापि नहीं पीना चाहिये, क्योंकि संग्रहणी रोग में छाछ अमृत के तुल्य और अम्लपित्त रोग में विष के तुल्य असर करती है॥

तक्रसेवननिषेध—जिस के चोट लगी हो उसे, घाववाले को, मल से उत्पन्न हुए शोथ रोगवाले को, श्वास के रोगी को, जिस का शरीर सूख कर दुर्बल हो गया हो उस को, मूर्छा भ्रम उन्माद और प्यास के रोगी को, रक्तपित्तवाले को, राजयक्ष्मा तथा उरःक्षत के रोगी को, तरुण ज्वर और सन्निपात ज्वरवाले को तथा वैशाख जेठ आश्विन और कार्त्तिक मास में छाछ नहीं पीनी चाहिये, क्योंकि उक्त रोगों में छाछ के पीने से दूसरे अनेक रोगों के उत्पन्न होने का संभव होता है तथा उक्त मासों में भी छाछ के पीने से रोगोत्पत्ति की सम्भावना रहती है॥

१-प्रिय पाठकगण! वैद्य की पूरी बुद्धिमत्ता रोग की पूरी परीक्षा कर लेने में ही जानी जाती है, परन्तु वर्त्तमान समय में उदरार्थी अपठित तथा अर्धदग्ध मूर्ख वैद्य बहुत से देखे जाते हैं, ऐसे लोग रोग की परीक्षा कभी नहीं कर सकते हैं, ऐसे लोग तो प्रतिदिन के अभ्यास से केवल दो चार ही रोगों को तथा उन की ओषधि को जाना करते हैं, इसलिये समान लक्षणवाले अथवा कठिन रोगों का अवसर आ पड़ने पर इन लोगों से अनर्थ के सिवाय और कुछ भी नहीं बन पड़ता है, देखो! ऊपर लिखे अनुसार अम्लपित्त और संग्रहणी प्रायः समान लक्षणवाले रोग हैं, अब विचारिये कि-संग्रहणी के लिये तो छाछ अद्वितीय ओषधि है और अम्लपित्त पर वह घोर विष के तुल्य है, यदि लक्षणों का ठीक निश्चय न कर अम्लपित्त पर छाछ दे दी जावे तो रोगी की क्या दशा होगी, इसी प्रकार से समान लक्षणवाले बहुत से रोग हैं जिनका वर्णन ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं करना चाहते हैं और न उन के वर्णन का यहां प्रसंग ही है, केवल छाछ के प्रसंग से यह एक उदाहरण पाठकों को बतलाया है, इस लिये प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि-प्रथम योग्य उपायों से वैद्य की पूरी परीक्षा करके फिर उससे रोग की परीक्षा करावे॥

२-यह तक्र का संक्षेप से वर्णन किया गया, इस का विशेष वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये॥

फलवर्ग ॥

इस देश के निवासी लोग जिन २ फलों का उपयोग करते हैं उन सब में मुख्य आम्र (आम) का फल है तथा यह फल अन्य फलों की अपेक्षा प्रायः हितकारी भी है, इस के सिवाय और भी बहुत से फल हैं जो कि अनेक देशों में ऋतु के अनुसार उत्पन्न होते तथा लोगों के उपयोग में आते हैं परन्तु फलों के उपयोग के विषय में भी हमारे बहुत से प्रिय बन्धु उन के (फलों के) गुण और अवगुण से बिलकुल अनभिज्ञ हैं, इस लिये कुछ आवश्यक उपयोग में आनेवाले फलों के गुणों को लिखते हैं:—

कच्चे आम—गर्म, खट्टे, रुचिकर तथा ग्राही हैं, पित्त, वायु, कफ तथा खून में विकार उत्पन्न करते हैं, परन्तु कण्ठ के रोग, वायु के प्रमेह, योनिदोष, व्रण (घाव) और अतीसार में लाभदायक (फायदेमन्द) हैं ॥

पक्के आम—वीर्यवर्धक, कान्तिकारक, तृप्तिकारक तथा मांस और बल को बढ़ानेवाले हैं, कुछ कफकारी हैं इस लिये इन के रस में थोड़ी सी सोंठ डालकर उपयोग में लाना चाहिये।

आमों की बहुत सी जातियां हैं तथा जाति भेद से इनके स्वाद और गुणों में भी थोड़ा बहुत अन्तर होता है किन्तु सामान्य गुण तो (जो कि ऊपर लिखे हैं) प्रायः सब में समान ही हैं ॥

जामुन—ग्राही (मल को रोकनेवाले), मीठे, कफनाशक, रुचिकर्त्ता, वायुनाशक और प्रमेह को मिटानेवाले हैं, उदर विकार में इन का रस अथवा सिरका लाभदायक है अर्थात् अजीर्ण और मन्दाग्नि को मिटाता है ॥

बेर—बेर यद्यपि अनेक जाति के होते हैं परन्तु मुख्यतया उन के दो ही भेद हैं अर्थात् मीठे और खट्टे, बेर कफकारी तथा बुखार और खांसी को उत्पन्न करते हैं, वैद्यक शास्त्रमें कहा है कि—"हरीतकी सदा पथ्यं, कुपथ्यं बदरीफलम्" अर्थात् हरड़ सदा पथ्य है और बेर सदा कुपथ्य है,।

---

१ इस के संस्कृत में आम्र, रसाल, सहकार, अतिसौरभ और कामांग आदि अनेक नाम हैं, इसे भाषा में आम कहते हैं तथा मारवाड़ में आंबा कहते हैं ॥

२—इन को मारवाड़ में केरी अथवा कच्ची केरी कहते हैं ॥

३—मुर्शिदाबाद में एक प्रकार के कच्चे मीठे आम होते हैं तथा इन को वहांवाले कचमीठे आम कहते हैं। बनारस में एक प्रकर का लँगड़ा आम बहुत उत्तम होता है तथा फर्रुखाबाद में आम अनेक प्रकार के होते हैं जैसे—बम्बई, मालदह, टिकारी, तौधा, बादशाहपसन्द, बेलबम्बई, अनन्नासी और गोपालभोग आदि, यद्यपि ये खाने में सब ही उत्तम होते हैं परन्तु टिकारी और गोपालभोग ये दो प्रकार के आम तो अति प्रशंसनीय होते हैं, उक्त नगर में आम बहुतायत से उत्पन्न होता है अतः सस्ता भी बहुत मिलता है ॥

वेरों में प्रायः जन्तु भी पड़ जाते हैं इसलिये इस प्रकार के तुच्छ फलों को जैनसूत्र कारने अभक्ष्य लिखा है, अतः इन का खाना उचित नहीं है॥

अनार—यह सर्वोत्तम फल है, इस की मुख्य दो जातियां हैं-मीठी और खट्टी, इन में से मीठी जाति का अनार त्रिदोषनाशक है तथा अतीसार के रोग में फायदेमन्द है, खट्टी जाति का अनार वादी तथा कफ को दूर करता है, कावुल का अनार सब से उत्तम होता है तथा कन्धार पेशावर जोधपुर और पूना आदि के भी अनार खाने में अच्छे होते हैं, इस के शर्वत का उष्णकाल में सेवन करने से बहुत लाभ होता है॥

केला—स्वादु, कषैला, कुछ ठंढा, वलदायक, रुचिकर, वीर्यवर्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्धक, पित्तनाशक तथा कफकर्त्ता है, परन्तु दुर्जर अर्थात् पचने में भारी होता है, प्यास, ग्लानि, पित्त, रक्तविकार, प्रमेह, भूख, रक्तपित्त और नेत्ररोग को मिटाता है, भस्मकरोग[1] में इस का फल वहुत ही फायदेमन्द है॥

आँवला—ईषन्मधुर (कुछ मीठा), खट्टा, चरपरा, कषैला, कड़ुआ, दस्तावर, नेत्रों को हितकारी, वलवुद्धिदायक, वीर्यशोधक, स्मृतिदाता, पुष्टिकारक तथा त्रिदोषनाशक है, सब फलों में आँवले का फल सर्वोत्तम तथा रसायन है—अर्थात् खट्टा होने के कारण वादी को दूर करता है, मीठा तथा ठंढा होने से पित्तनाशक है, रूक्ष तथा कषैला होने से कफ को दूर करता है।

ये जो गुण हैं वे गीले (हरे) आँवले के हैं, क्योंकि—सूखे आँवले में इतने गुण नहीं होते हैं, इसलिये जहांतक हरा आँवला मिल सके वहांतक वाज़ार में विकता हुआ सूखा आँवला नहीं लेना चाहिये।

दिल्ली तथा वनारस आदि नगरों में इस का मुरव्वा और अचार भी वनता है परन्तु मुरव्वा जैसा अच्छा वनारस में वनता है वैसा और जगह का नहीं होता है, वहां के आँवले वहुत वड़े होते हैं जो कि सेर भर में आठ तुलते हैं।

सूखे आँवले में काली मिर्च मिलाकर चैत्र तथा आश्विन मास में भोजन के पीछे उस की फँकी वीकानेर आदि के निवासी मारवाड़ी लोग प्रायः हरेक रोग में लेते हैं परन्तु उन लोगों को वह अधिक गुण नहीं करता है इस का कारण यह है कि उन लोगों में तेल और लाल मिर्चका[2] उपयोग वहुत ही है किन्तु कभी २ उलटी हानि हो जाती है, यदि हरे अथवा सूखे आँवलों का सेवन युक्ति से किया जावे तो इस के समान दूसरी कोई

१—जिस में मनुष्य कितना ही खावे परन्तु उसकी भोजन से तृप्ति नहीं होती है उस को भस्मक रोग कहते हैं॥

२—वहां के लोग मिर्च इतनी डालते हैं कि शाक और दालमें केवल मिर्चे ही दृष्टिगत होती है तथा कभी २ मिर्चकाही शाक वना लेते हैं॥

ओषधि नहीं है, आँवले के सेवन की यद्यपि अनेक युक्तियां हैं परन्तु उन में से केवल एक युक्ति को लिखते हैं, वह युक्ति यह है कि–सूखे आँवले को हरे आँवले के रस की अथवा सूखे आँवले के काथकी एक सौ वार भावना देकर सुखाते रहना चाहिये, इसके वाद उस का सेवन कर ऊपर से दूध पीना चाहिये, ऐसा करने से वह अकथनीय लाभ करता है अर्थात् इस के गुणों की संख्या का वर्णन करने में लेखनी भी समर्थ नहीं है, इस के सेवन से सव रोग नष्ट हो जाते हैं तथा बुढ़ापा बिलकुल नहीं सताता है, इस का सेवन करने के समय में गेहूँ, घी, बूरा, चावल और मूंग की दाल को खाना चाहिये।

इस के कच्चे फल भी हानि नहीं करते हैं तथा इस का मुरब्बा आदि सदा खाया जावे तो भी अति लाभकारी ही है ॥

नारङ्गी (सन्तरा)—मधुर, रुचिकर, शीतल, पुष्टिकारक, वृष्य, जठराग्निप्रदीपक, हृदय को हितकारी, त्रिदोषनाशक और शूल तथा कृमि का नाशक है, मन्दाग्नि, श्वास, वायु, पित्त, कफ, क्षय, शोष, अरुचि और वमन आदि रोगों में पथ्य है, इस का शर्वत गर्मी में प्रातःकाल पीने से तरावट वनी रहती है तथा अधिक प्यास नहीं लगती है।

नारंगी की मुख्य दो जातियां हैं—खट्टी और मीठी, उन में से खट्टी नारंगी को नहीं खाना चाहिये, इस के सिवाय इस की जँभीरी आदि भी कई जातियां हैं, नागपुर (दक्षिण) का सन्तरा अत्युत्तम होता है ॥

दाख वा अंगूर—गीली दाख खट्टी और मीठी होती है तथा इस की काली और सफेद दो जातियां हैं, बम्बई नगर के क्राफर्ड मार्केट में यह हमेशा मनों मिलती है तथा और भी स्थानों में अंगूर की पेटियां विकती हैं, खट्टी दाख खाने से अवगुण करती है, इस लिये उसे नहीं खाना चाहिये, हरी दाख कफ करती है इस लिये थोड़ा सा सेंधानमक लगा कर उसे खाना चाहिये, सब मेवाओं में दाख भी एक उत्तम मेवा है, सूखी मुनक्का अर्थात् काली दाख सब प्रकार की प्रकृतिवाले पुरुषों के अनुकूल और सब रोगों में पथ्य है, वैद्य लोग वीमार को इस के खाने का निषेध नहीं करते हैं, यह मीठी, तृप्तिकारक, नेत्रों को हितकारी, ठंढी, श्रमनाशक, सारक (दस्तावर) तथा पुष्टिकारक है, रक्तविकार, दाह, शोष, मूर्छा, ज्वर, श्वास, खांसी, मद्य पीने से उत्पन्न हुए रोग, वमन, शोथ और वातरक्त आदि रोगों में फायदेमन्द है ॥

नींबू—नींबू खट्टे और मीठे दो प्रकार के होते हैं–इन में से मीठा नींबू पूर्व में वहुत होता है, जिस में बड़े को चकोतरा कहते हैं, एफ्रीका देशके जंगवहार सहर में भी मीठे नींबू होते हैं उन को वहांवाले मचूंगा कहते हैं, वहां के वे मीठे नींबू वहुत ही मीठे होते

१–जहांतक होसके हरे आँवले के रस की ही भावना देनी चाहिये, क्योंकि सूखे आँवले के क्राथ की भावना की अपेक्षा यह (हरे आँवले के रस की भावना) अधिक लाभदायक है ॥

हैं जिनके सामने नागपुर के सन्तरे भी कुछ नहीं हैं, इन के अधिक मीठे गुण के कारण ही डाक्टर लोग पित्तज्वर में वहां वहुत देते हैं, फलों में मीठे नींवू की ही गिनती है किन्तु खट्टे नींवू की नहीं है क्योंकि खट्टे नींवू को वैसे (केवल) कोई नहीं खाता है किन्तु शाक और दाल आदि में इस का रस डाल कर खाया जाता है तथा डाक्टर लोग सूजन में मसूड़े के दर्द में तथा मुख से खून गिरने में इसे चुसाया करते हैं तथा इस की सिकञ्जिवी को भी जल में डालकर पिलाते हैं, इस के सिवाय यह अचार और चटनी आदि के भी काम में आता है ॥

नींवू में वहुत से गुण हैं परन्तु इस के गुणों को लोग वहुत ही कम जानते हैं अन्य पदार्थों के साथ संयोग कर खाने से यह (खट्टा नींवू) वहुत फायदा करता है ॥

मीठा नींवू—स्वादु, मीठा, तृप्तिकर्त्ता, अतिरुचिकारक और हलका है, कफ, वायु, वमन, खांसी, कण्ठरोग, क्षय, पित्त, शूल, त्रिदोष, मलस्तम्भ (मलका रुकना), हैज़ा, आमवात, गुल्म (गोला), कृमि और उदरस्थ कीड़ों का नाशक है, पेट के जकड़ जानेपर, दस्त वंद होकर वद्ध गुदोदर होने पर, खाने पीनेकी अरुचि होनेपर, पेट में वायु तथा शूल का रोग होने पर, शरीर में किसी प्रकार के विष के चढ़ जाने पर तथा मूर्च्छा होने पर नींवू वहुत फायदा करता है।

वहुत से लोग नींवू के खट्टेपन से डर कर उस को काम में नहीं लाते हैं परन्तु यह अज्ञानता की वात है, क्योंकि नींवू वहुत गुणकारक पदार्थ है, उस का सेवन खट्टेपन से डर कर न करना वहुत भूल की वात है, देखो ! ज्वर जैसे तीव्ररोग में भी युक्ति से सेवन करने से यह कुछ भी हानि नहीं करता है किन्तु फायदा ही करता है।

नींवू की चार फांकें कर के एक फांक में सोंठ और सेंधानमक, दूसरी में काली मिर्च, तीसरी में मिश्री और चौथी फांक में डीका माली भर कर चुसाने से जी मचलाना, वमन, वदहज़मी और ज्वर आदि रोग मिट जाते हैं, यदि प्रातःकाल में सदा गर्म पानी में एक नींवू का रस डालकर पीने का अभ्यास किया जावे तो आरोग्यता वनी रहती है तथा उस में वूरा या मिश्री मिला कर पीने से यकृत् अर्थात् लीवर भी अच्छा वना रहता है।

वहुत से लोग प्रातःकाल चाह (चाय) आदि पीते हैं उस के स्थान में यदि इस के पीने का अभ्यास किया जावे तो वहुत लाभ हो सकता है, क्योंकि चाह आदि की अपेक्षा यह सौ गुणा फायदा पहुँचाता है ॥

नींवू का वाहिरी उपयोग—नहाने के पानी में दो तीन नींवुओं का रस निचोड़ कर उस पानी से नहाने से शरीर अच्छा रहता है अर्थात् चमड़ी के छिद्र मैल से वंद

नहीं होते हैं, यदि वन्द भी हों तो मैल दूर होकर छिद्र खुल जाते हैं तथा ऐसा करने से दाद खाज और फुन्सी आदि चमड़ी के रोग भी नहीं होते हैं।

प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि–दाल और शाक आदि नित्य की खुराक में तथा उस के अतिरिक्त भी नींबू को काम में लाया करे, क्योंकि यह अधिक गुणकारी पदार्थ है और सेवन करने से आरोग्यता को रखता है ॥

खजुर—पुष्टिकारक, स्वादिष्ठ, मीठी, ठंढी, ग्राही, रक्तशोधक, हृदय को हितकारी और त्रिदोषहर है, श्वास, थकावट, क्षय, विष, प्यास, शोष (शरीर का सूखना) और अम्लपित्त जैसे महाभयंकर रोगों में पथ्य और हितकारक है, इस में अवगुण केवल इतना है कि–यह पचने में भारी है और कृमि को पैदा करती है इस लिये छोटे बालकों को किसी प्रकार की भी खजूर को नहीं खाने देना चाहिये।

खजूर को घी में तलकर खाने से उक्त दोनों दोष कुछ कम हो जाते हैं।

गर्मी की ऋतु में खजूर का पानी कर तथा उस में थोड़ा सा अमिली (इमली) का खट्टा पानी डाल कर शर्वत की तरह बनाकर यदि पिया जावे तो फायदा करता है।

पिण्ड खजूर और सूखी खारक (छुहारा) भी एक प्रकार की खजूर ही है परन्तु उस के गुण में थोड़ासा फर्क है ॥

फालसा, पीलू और करोंदे के फल—ये तीनों पित्त तथा आमवात के नाशक हैं, सब प्रकार के प्रमेह रोग में फायदेमन्द है, उष्ण काल में फालसे का शर्वत सेवन करने से बहुत लाभ होता है, कच्चे फालसे को नहीं खाना चाहिये क्योंकि वह पित्त को उत्पन्न करता है ॥

सीताफल—मधुर, ठंढा और पुष्टिकारक है परन्तु कफ और वायु को उत्पन्न करता है ॥

जामफल[1]—स्वादिष्ठ, ठंढा, वृष्य, रुचिकर, वीर्यवर्धक और त्रिदोषहर है परन्तु तीक्ष्ण और भारी है, कफ और वायु को उत्पन्न करता है किन्तु उन्माद रोगी (पागल) के लिये अच्छा है ॥

सकरकन्द—मधुर, रुचिकर, हृदय को हितकारी, शीतल, ग्राही और पित्तहर है, अतीसार रोगी को फायदेमन्द है, इस का मुरब्बा भी उत्तम होता है ॥

अञ्जीर—ठंढी और भारी है, रक्तविकार, दाह, वायु तथा पित्त को नष्ट करती है,

---

१–इस को पूर्व में सफड़ी तथा अमरूद भी कहते हैं, सब से अच्छा अमरूद प्रयाग (इलाहाबाद) का होता है, क्योंकि वहां का अमरूद मीठा, स्वादिष्ट, अल्प बीजोंवाला और बहुत बड़ा होता है ॥

देशी अञ्जीर को गूलर कहते हैं, यह प्रमेह को मिटाता है परन्तु इस में छोटे २ जीव होते हैं इस लिये इस को नहीं खाना चाहिये ॥

असली अञ्जीर कावुल में होती है तथा उस को मुसलमान हकीम वीमारों को वहुत खिलाया करते हैं ॥

इमली[2]—कच्ची इमली के फल अभक्ष्य हैं इसलिये उन को कभी उपयोग में नहीं लाना चाहिये क्योंकि उपयोग में लाने से वे पेट में दाह रक्तपित्त और आम आदि अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं।

पकी इमली—वायु रोग में और शूल रोग में फायदेमन्द है, यह वहुत ठंढी होने के कारण शरीर के सांधों (सन्धियों) को जकड़ देती है, नसों को ढीला कर देती है इस लिये इस को सदा नहीं खाना चाहिये।

चीनापट्टन, द्रविड़, कर्णाटक तथा तैलंग देशवासी लोग इस के रस में मिर्च, मसाला, अरहर (तूर) की दाल का पानी और चांवलों का मांड डाल कर उस को गर्म कर (उवाल कर) भात के साथ नित्य दोनों वक्त खाते हैं, इसी प्रकार अभ्यास पड़ जाने से गर्म देशों में और गर्म ऋतु में भी वहुत से लोग तथा गुजराती लोग भी दाल और शाकादि में इस को डाल कर खाते हैं तथा गुजराती लोग गुड़ डाल कर हमेशा इस की कढ़ी वना कर भी खाते हैं, हैदरावाद आदि नगरों में वीमार लोग भी इमली का कट्ट खाते हैं, इसी प्रकार पूर्व देशवाले लोग अमचुर की खटाई डाल कर मांडिया वना कर सलोनी दाल और भात के साथ खाते हैं परन्तु निर्भय होकर अधिक इमली और अमचुर आदि खटाई खाना अच्छा नहीं है किन्तु ऋतु तासीर रोग और अनुपान का विचार कर इस का उपयोग करना उचित है क्योंकि अधिक खटाई हानि करती[3] है।

नई इमली की अपेक्षा एक वर्ष की पुरानी इमली अच्छी होती है उस के नमक लगा कर रखना चाहिये जिस से वह खराव न हो।

इमली के शर्वत को मारवाड़ आदि देशों में अक्षयतृतीया के दिन वहुत से लोग वनाकर काम में लाते हैं यह ऋतु के अनुकूल है।

इमली को भिगोकर उस के गूदे में नमक डाल कर पैरों के तलवों और हथेलियों में मसलने से लगी हुई लू शीघ्र ही मिट जाती है।

१–इसी प्रकार वड़ और पीपल आदि वृक्षों के फल भी जैनसिद्धान्त में अभक्ष्य लिखे हैं, क्योंकि इन के फलों में भी जन्तु होते हैं, यदि इस प्रकार के फलों का सेवन किया जावे तो वे पेट में जाकर अनेक रोगों के कारण हो जाते हैं ॥

२–इस को अमली, आँवली तथा पूर्व में चिया और ककोना भी कहते हैं ॥

३–देखो किसी का वचन है कि–"गया मर्द जो खाय खटाई। गई नारि जो खाय मिठाई ॥ गई हाट जँह मँडी हथाई, गया वृक्ष जँह वगुला वैठा, गया गेह जँह मोड़ा (धूर्त्त साधु) पैठा ॥ १ ॥

नारियल—बहुत मीठा, चिकना, हृदय को हितकारी, पुष्ट, बस्तिशोधक और रक्तपित्तनाशक है, पारेआदि की गर्मी में तथा अम्लपित्त में इस का पानी तथा नालिकेरखण्डपाक बहुत फायदेमन्द है और वीर्यवर्धक है।

कई देशों में बहुत से लोग नारियल के पानी को उष्ण ऋतु में पीते हैं यह बेशक फायदेमन्द होता है परन्तु इतना अवश्य खयाल रखना चाहिये कि निरन्न (निन्ने, खाली अर्थात् अन्न खाये विना) कलेजे तथा दिन को निद्रा लेकर उठने के पीछे एक घण्टेतक इस को नहीं पीना चाहिये जो इस बात का खयाल नहीं रक्खेगा उस को जन्म भर पछताना पड़ेगा ॥

खरबूजा तथा मीठे खट्टे काचर—ये भी ककड़ी ही की एक जाति हैं, जो नदी की बालू में पकता है उस को खरबूजा कहते हैं, यह स्वाद में मीठा होता है, लखनऊ के खरबूजे बहुत मीठे होते हैं लोग इस का पनां बना कर भी खाते हैं, यह गर्म होता है जिन दिनों में हैज़ा चलता हो उन दिनों में खरबूजा बिलकुल नहीं खाना चाहिये।

जो ज़मीन तथा खेतों में पके उसे ककड़ी और काचर कहते हैं, ककड़ी और काचर मारवाड़ आदि देशों में बहुत उत्पन्न होते हैं, ककड़ी को सुखा कर उस का सूखा शाक भी बनाते हैं उस को खेलरा कहते हैं तथा काचर को सुखाकर उस का जो सूखा शाक बनाते हैं उस को काचरी कहते हैं, इस को दाल या शाक में डालते हैं, यह खाने में स्वादिष्ठ तो होता है तथा लोग इसे प्रायः खाते भी हैं परन्तु गुणों में तो सब फलों की अपेक्षा हलके दर्जे के (अल्प गुणवाले) तथा हानिकारक फल ये ही (ककड़ी और काचर) हैं, क्योंकि ये तीनों दोषों को बिगाड़ते हैं, ये कच्चे—वायु और कफ को करते हैं किन्तु पकने के बाद तो विशेष (पहिले की अपेक्षा अधिक) कफ तथा वायु को बिगाड़ते हैं ॥

कलिन्द (मतीरा वा तरबूज़)—इस के गुण शाकवर्ग में पूर्व लिखचुके हैं विशेष कर यह भी गुणों में ककड़ी और काचर के समान ही है ॥

अभ्रक, पारदभस्म (पारे की भस्म) और स्वर्णभस्म, इन तीनों की मात्रा लेते समय ककाराष्टक (ककारादि नामवाले आठ पदार्थ) वर्जित हैं, क्योंकि उक्त मात्राओं के लेते समय ककाराष्टक का सेवन करने से वे उक्त मात्राओं के गुणों को खराब कर देते हैं, ककाराष्टक ये हैं—कोला, केले का कन्द, करोंदा, कांजी, कैर, करेला, ककड़ी और कलिन्द (मतीरा), इस लिये इन आठों वस्तुओं का उपयोग उक्त धातुओं की मात्रा को खानेवाले को नहीं करना चाहिये ॥

१-सुना है कि खरबूजे का पना और चांवल खाते समय यदि गुनलका आ जावे तो प्राणी अवश्य मर ही जाता है, क्योंकि इस का कुछ भी इलाज नहीं है ॥

बादाम, चिरोंजी और पिस्ता—ये तीनों मेवे बहुत हितकारी हैं, इन को सब प्रकार के पाकों और लड्डू आदि में डाल कर भाग्यवान् लोग खाते हैं।

बादाम—मगज़ को तरावट देता और उसे पुष्ट करता है, इस का तेल सूंघने से भी मगज़ में तरावट पहुँचती है और पीनसरोग मिट जाता है।

ये गुण मीठे बादाम के हैं किन्तु कड़ुआ बादाम तो विष के समान असर करता है, यदि किसी प्रकार बालक तीन चार कड़ुए बादामों को खालेवे तो उस के शरीर में विषके तुल्य पूरा असर होकर प्राणों की हानि हो जा सकती है, इस लिये चाख २ कर बादामों का स्वयं उपयोग करना और बालकों को कराना चाहिये, बादाम पचने में भारी है तथा कोरा (केवल) बादाम खाने से वह बहुत गर्मी करता है॥

इक्षुवर्ग॥

इक्षु (ईख[2])—रक्तपित्तनाशक, बलकारक, वृष्य, कफजनक, स्वादुपाकी, स्निग्ध, भारी, मूत्रकारक और शीतल है।

ईख मुख्यतया बारह जाति की होती है—पौंड्रक, भीरुक, वंशक, शतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचीपत्र, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर और कोशक, अब इन के गुणों को क्रम से कहते हैं:—

पौंड्रक तथा भीरुक—सफेद पौंडा और भीरुक पौंडा वातपित्तनाशक, रस और पाक में मधुर, शीतल, बृंहण और बलकर्त्ता है॥

कोशक—कोशक संज्ञक पौंडा—भारी, शीतल, रक्तपित्तनाशक तथा क्षयनाशक है॥

कान्तार—कान्तार (काले रंग का पौंडा) भारी, वृष्य, कफकारी, बृंहण और दस्तावर है॥

दीर्घ पौर तथा वंशक—दीर्घ[3] पौर संज्ञक ईख कठिन और वंश[4]क ईख क्षारयुक्त होती है॥

१—फल और वनस्पति की यद्यपि अनेक जातियां हैं परन्तु यहां पर प्रसिद्ध और विशेष खान पान में आनेवाले आवश्यक पदार्थों के ही गुणदोष संक्षेप से बतलाये हैं, क्योंकि इतने पदार्थों के भी गुणदोष को जो पुरुष अच्छे प्रकार से जान लेगा उस की बुद्धि अन्य भी अनेक पदार्थों के गुण दोषों को जान सकेगी, सब फल और वनस्पतियों के विषय में यह एक बात भी अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये कि-अज्ञात, कीड़ों से खाया हुआ, जिस के पकने का समय बीत गया हो, विना काल में उत्पन्न हुआ हो, जिस का रस नष्ट हो (सूख) गया हो, जिस में किंचित् भी दुर्गन्धि आती हो और अपक्व (विना पका हुआ), इन सब फलों को कभी नहीं खाना चाहिये॥

२—इस को गन्ना सांठा तथा ऊख भी कहते हैं॥

३—दीर्घ पौरसंज्ञक अर्थात् बड़ी २ गांठोंवाला पौंडा॥

४—इस को बम्बई ईख कहते हैं॥

शतपोरक[1]—इस के गुण कोशक ईख के समान हैं, विशेषता इस में केवल इतनी है कि–यह किञ्चित् उष्ण क्षारयुक्त और वातनाशक है ॥

तापसेक्षु[2]—मृदु, मधुर, कफ को कुपित करनेवाला, तृप्तिकारक, रुचिप्रद, वृष्य और बलकारक है ॥

काण्डेक्षु—इस के गुण तापसेक्षु के समान हैं, केवल इस में इतनी विशेपता है कि यह वायु को कुपित करता है ॥

सूचीपत्र, नीलपौर, नैपाल ओर दीर्घपत्रक[3]—ये चारों प्रकार के पौंडे वातकर्त्ता, कफपित्तनाशक, कषैले और दाहकारी हैं ॥

इस के सिवाय अवस्थाभेद से भी ईख के गुणों में भेद होता है अर्थात् बाल (छोटी) ईख–कफकारी, मेदवर्धक तथा प्रमेहनाशक है, युवा (जवान) ईख–वायुनाशक, स्वादु, कुछ तीक्ष्ण और पित्तनाशक है, तथा वृद्ध (पुरानी) ईख–रुधिरनाशक, व्रणनाशक, बलकर्त्ता और वीर्योत्पादक है।

ईख का मूलभाग अत्यन्त मधुर रसयुक्त, मध्यभाग मीठा तथा ऊपरी भाग नुनखरा (नमकीनरस से युक्त) होता है।

दाँतों से चबा कर चूसी हुई ईख का रक्तपित्तनाशक, खांड़ के समान वीर्यवाला, अविदाही (दाह को न करनेवाला) तथा कफकारी है।

सर्वभाग से युक्त कोल्हू में दबाई हुई ईख का रस जन्तु और मैल आदि के संसर्ग से विकृत होता है, एवं उक्त रस बहुत काल पर्यन्त रक्खा रहने से अत्यन्त विकृत हो जाता है इस लिये उस को उपयोगमें नहीं लाना चाहिये क्योंकि उपयोग में लाया हुआ वह रस दाह करता है, मल और मूत्र को रोकता है तथा पचनेमें भी भारी होता है।

ईख का बासा रस भी बिगड़ जाता है, यह रस स्वाद में खट्टा, वातनाशक, भारी, पित्तकफकारक, सुखानेवाला, दस्तावर तथा मूत्रकारक होता है।

अग्निपर पकाया हुआ ईख का रस भारी, स्निग्ध, तीक्ष्ण, वातकफनाशक, गोलानाशक और कुछ पित्तकारक होता है।

इक्षुविकार अर्थात् गुड़ आदि पदार्थ भारी, मधुर, बलकारक, स्निग्ध, वातनाशक, दस्तावर, वृष्य, मोहनाशक, शीतल, बृंहण और विषनाशक होते हैं, इक्षुविकारों का सेवन करने से तृषा, दाह, मूर्च्छा और रक्तपित्त नष्ट हो जाते हैं ॥

१–शतपोरक अर्थात् बहुत गांठोंवाला ॥

२–इस को चिनियाबम्बई कहते हैं ॥

३–सूचीपत्र उस को कहते हैं जिस के पत्ते बहुत बारीक होते हैं, नीलपौर उस को कहते हैं जिस की गांठें नीले रंग की होती हैं, नैपाल उस को कहते हैं जो नेपाल देश में उत्पन्न होता है तथा दीर्घपत्र उसे कहते हैं जिस के पत्ते बहुत लम्बे होते हैं ॥

अब इक्षुविकारों का पृथक् २ संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

फाणित—कुछ २ गाढ़ा और अधिक भाग जिस का पतला हो ऐसे ईख के पके हुए रस को फाणित अर्थात् राब कहते हैं, यह—भारी, अभिष्यन्दी, बृंहण, कफकर्त्ता तथा शुक्र को उत्पन्न करता है, इस का सेवन करने से वात, पित्त, आम, मूत्र के विकार और वस्तिदोष शान्त हो जाते हैं ॥

मत्स्यण्डी—किञ्चित् द्रवयुक्त पक तथा गाढ़े ईखके रस को मत्स्यण्डी कहते हैं, यह—भेदक, बलकारक, हलकी, वातपित्तनाशक, मधुर, बृंहण, वृष्य और रक्तदोषनाशक है ॥

गुड़[1]—नया गुड़ गर्म तथा भारी होता है, रक्तविकार तथा पित्तविकार में हानि करता है, पुराना गुड़ (एक वर्ष के पीछे से तीन[2] वर्ष तक का) बहुत अच्छा होता है, क्योंकि यह हलका अग्निदीपक और रसायनरूप है, फीकेपन, पाण्डुरोग, पित्त, त्रिदोष और प्रमेह को मिटाता है तथा बलकारक है, दवाओं में पुराना गुड़ ही काम में आता है, शहद के न होने पर उस के बदले में पुराना गुड़ ही काम दे जाता है, तीन वर्ष के पुराने गुड़ के साथ अदरख के खाने से कफ का रोग मिट जाता है, हरड़ के साथ इसे खाने से पित्त का रोग मिटता है, सोंठ के साथ खाने से वायु का नाश करता है।

तीन वर्ष का पुराना गुड़ गुल्म (गोला), बवासीर, अरुचि, क्षय, कास (खांसी), छाती का घाव, क्षीणता और पाण्डु आदि रोगों में भिन्न २ अनुपानों के साथ सेवन करने से फायदा करता है, परन्तु ऊपर लिखे रोगों पर नये गुड़ का सेवन करने से वह कफ, श्वास, खांसी, कृमि तथा दाह को पैदा करता है।

पित्त की प्रकृतिवाले को नया गुड़ कभी नहीं खाना चाहिये।

चूरमा लापसी और सीरा आदि के बनाने में ग्रामीण लोग गुड़ का बहुत उपयोग करते हैं, एवं मजूर लोग भी अपनी थकावट उतारने के लिये रोटी आदि के साथ हमेशा गुड़ खाया करते हैं, परन्तु यह गुड़ कम से कम एक वर्ष का तो पुराना अवश्य होना ही चाहिये नहीं तो आरोग्यता में बाधा पहुँचाये विना कदापि न रहेगा।

गुड़ के चुरमा और लापसी आदि पदार्थों में घी के अधिक होने से गुड़ अधिक गर्मी नहीं करता है।

१—देखो इस भारतभूमि में ईख (सांठा) भी एक अतिश्रेष्ठ पदार्थ है—जिस के रस से हृदयविकार दूर होकर तथा यकृत् का संशोधन होकर पाचनशक्ति की वृद्धि होती है, फिर देखो! इसी के रस से गुड़ बनता है जो कि अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है, क्योंकि गुड़ ही के सहारे से सब प्रकार के मधुर पदार्थ बनाये जाते हैं ॥

२—तीन वर्ष के पीछे गुड़ का गुण कम हो जाता है ॥

दुर्बल शरीरवाला, शोष रोगी, जिस के ज़खम हो वा चोट लगी हो, ववासीर श्वास और मूर्छा का रोगी, मार्ग में चलने से थका हुआ, जिस ने बहुत परिश्रम का काम किया हो, जो गिरने से व्याकुल हो, जिस को किसी ने किसी प्रकार का उपालम्भ (उलाहना वा ताना आदि) दिया हो इस से उस के मन में चिन्ता हो, जिस को किसी प्रकार का नशा या विष चढ़ा हो, जिस को मूत्रकृच्छ्र वा पथरी का रोग हो, इन मनुष्यों के लिये पुराना गुड़ अति लाभदायक है, इसी प्रकार जीर्ण ज्वर से क्षीण तथा विषम ज्वरवाले पुरुष को पीपल हरड़ सोंठ और अजमोद, इन चारों के साथ अथवा इन में से किसी एक के साथ पुराने गुड़ को देने से उक्त दोनों प्रकार के ज्वर मिट जाते हैं, रक्तपित्त और दाह के रोगी को इस का शर्वत कर पिलाना चाहिये, क्षय और रक्तविकार में गिलोय को घोट कर उस के रस के साथ पुराना गुड़ मिला कर देने से बहुत लाभ पहुँचाता है।

वास्तव में तो पुराना गुड़ ऊपर लिखे रोगों में तथा इन के सिवाय दूसरे भी बहुत से रोगों में बड़ा ही गुणकारी है और अन्य ओषधियों के साथ इस का अनुपान जल्दी ही असर करता है।

गुड़ के समान एक वर्ष के पीछे से तीन वर्ष तक का पुराना शरद भी गुणकारी समझना चाहिये ॥

खांड़—पित्तनाशक ठंढी और बल देनेवाली है, बनारसी खांड़ आंखों के लिये बहुत फायदेमन्द और वीर्यवर्धक है, खांड़ कफ को करती है इसलिये कफ के रोगों में, रसविकार से उत्पन्न हुए शोथ में, ज्वर में और आमवात आदि कई रोगों में हानि करती है, खाने के उपयोग में खांड़ को न लेकर बूरा को लेना चाहिये ॥

मिश्री और कन्द—नेत्रों को हितकारी, स्निग्ध, धातुवर्धक, मुखप्रिय, मधुर, शीतल, वीर्यवर्धक, बलकारक, सारक (दस्तावर), इन्द्रियों को तृप्त कर्त्ता, हलके और तृषानाशक हैं, एवं क्षत, क्षय, रक्तपित्त, मोह, मूर्च्छा, कफ, वात, पित्त, दाह और शोष को मिटाते हैं।

ये दोनों पदार्थ बहुत ही साफ किये जाते हैं अर्थात् इन में मैल बिलकुल नहीं रहता है इस लिये समझदार लोगों को दूध आदि पदार्थों में सदा इन्हीं का उपयोग करना चाहिये।

यद्यपि कालपी की मिश्री को लोग अच्छी बतलाया करते हैं परन्तु मरुस्थल देश के बीकानेर नगर में हलवाई लोग अति उज्ज्वल (उजली, साफ) मिश्री का कूँजा बनाते हैं इस लिये हमारी समझ में ऐसी मिश्री अन्यत्र कहीं भी नहीं बनती है ॥

विशेष वक्तव्य—प्रिय मित्रो! पूर्वकाल में शर्करा (चीनी) इस देश में इतनी बहुतायत से बनती थी कि भारतवासी लोग उस का मनमाना उपयोग करते थे तो भी

परदेशों में हज़ारों मन जाती थी, देखो! सन् १८२६ ई० तक प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपये की चीनी यहां से परदेश को गई है, ईसवी चौदहवीं शताब्दी (शदी) तक युरोप में इस का नाम निशान तक नहीं था इस के पीछे गुड़ चीनी और मिश्री यहां से वहां को जाने लगी।

पूर्व समय में यहां हज़ारों ईख के खेत बोये जाते थे, लकड़ी के चरखे से ईख का रस निकाला जाता था और पवित्रता से उस का पाक बन कर मधुर शर्करा बनती थी, ठौर २ शर्करा बनाने के कारखाने थे तथा भोले भाले किसान अत्यन्त श्रमपूर्वक शर्करा बना कर अपने २ इष्ट देव को प्रथम अर्पण कर पीछे उस का विक्रय करते थे, अहाहा! क्या ही सुन्दर वह समय था कि जिस में इस देश के निवासी उस पवित्र मधुर और रसमयी शर्करा का सुस्वाद यथेच्छ लूटते थे और क्या ही अनुकूल वह समय था कि जिस में इस देश की लक्ष्मी स्वरूप स्त्रियां उस पवित्र मधुर और रसमयी शर्करा के उत्तमोत्तम पदार्थ बना कर अपने पति और पुत्रों आदि को आदर सहित अर्पण करती थीं, परन्तु हा! अब तो न वह शुभ समय ही रहा और न वह पवित्र मधुर रसमयी आयुवर्धक और पौष्टिक शर्करा ही रही!!!

आज से हज़ार बारह सौ वर्ष पहिले इस अभागे भारत पर यद्यपि यवनादिकों का असह्य आक्रमण होता रहा तथापि अपवित्र परदेशी वस्तुओं का यहां प्रचार नहीं हुआ, यद्यपि यवन लोग यहां से करोड़ों का धन लेगये परन्तु अपने देश की वस्तुओं की यहां भरभार नहीं कर गये किन्तु यहीं से अच्छी २ चीज़ें बनवा कर अपने देश को लेगये परन्तु जब से यह देश स्वातन्त्र्य प्रिय न्यायशील बृटिश गवर्नमेंट के हाथ में गया तब से उन के देशों की तथा अन्य देशों की असंख्य मनोहर सुन्दर और सस्ती चीजें यहां आकर यह देश उन से व्याप्त होगया, बनी बनाई सुन्दर और सस्ती चीज़ों के मिलते ही हमारे देश के लोग अधिकता से उन को खरीदने लगे और धीरे २ अपने देश की चीज़ों का अनादर होने लगा, जिस को देख कर बेचारे किसान कारीगर और व्यापारी लोग हतोत्साह होकर उद्योगहीन होगये और देशभर में परदेशी वस्तुओं का प्रचार होगया।

यद्यपि हमारी न्यायशीला बृटिश गवर्नमेंट ने ऐसी दशा में इस देश के कारीगरों को उत्तेजन देने के लिये तथा देश का व्यापार बढ़ने के लिये सर्कारी दफ्तरों में और प्रत्येक सर्कारी काम में देशी वस्तु के प्रचार करने की आज्ञा देकर इस देश के सौभाग्य को पुनः बढ़ाना चाहा जिस के लिये हम सबों को उक्त न्यायशीला गवर्नमेंट को अनेकानेक धन्यवाद शुद्ध अन्तःकरण से देने चाहियें, परन्तु क्या किया जावे हमारे देश के लोग दारिद्र्य से व्याप्त होकर हतोत्साह बनने के कारण उस से कुछ भी लाभ न उठा सके।

कारीगरी और व्यापार की वस्तुयें तो दूर रहीं किन्तु हमारे खानपान की चीज़ें भी परदेश कीही पसन्द होने लगीं और बना बनाया पक्वान्न दुग्ध और शर्करा भी परदेश की लेकर सब लोग निर्वाह करने लगे, देखो! जब मोरस की खांड़ प्रथम यहां थोड़ी २ आने लगी तब उस को देशी चीनी से स्वच्छ और सस्ती देख कर लोग उस पर मोहित होने लगे, आखिरकार समस्त देश उस से व्याप्त हो गया और देशी शक्कर क्रम २ से नामशेष होती गई, नतीजा यह हुआ कि-अब केवल ओषधिमात्र के लिये ही उस का प्रचार होता है।

इस बात को प्रायः सब ही जान सकते हैं कि-विलायती खांड़ ईख के रस से नहीं बनती है, क्योंकि वहां ईख की खेती ही नहीं है किन्तु बीट नामक कन्द और ज़ुवार की जाति के टटेलों से अथवा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों में से उन का सत्व निकाल कर वहां खांड़ बनाई जाती है, उस को साफ करने की रीति "एन्साक्लोपेडिया ब्रिटानिका" के ६२७ पृष्ठ में इस प्रकार लिखी है—

एक सौ चालीस या एक सौ अड़सठ मन चीनी लोहे की एक बड़ी डेग में डालकर गलाई जाती है, चीनी गलाने के लिये डेग में एक यन्त्र लगा रहता है, साथही गर्म भाफ के कुछ पाइप भी डेग में लगे रहते हैं, जिस से निरन्तर गर्म पानी डेग में गिरता है, यह रस का शीरा नियमित दर्जे तक औटाया जाता है, जब बहुत मैली चीनी साफ की जाती है तब वह खून से साफ होती है, गर्म शीरा रुई और सन की जालीदार थैलियों से छाना जाता है, ये थैलियां बीच २ में साफ की जाती हैं, फिर वह शीरा जानवरों की हड्डियों की राख की ३० से ४० फुटतक गहरी तह से छन कर नीचे रक्खे हुए वर्त्तन में आता है, इस तरह छनने से शीरे का रंग बहुत साफ और सफेद हो जाता है, ऊपर लिखे अनुसार शीरा बनकर तथा साफ होने के अनन्तर उस की दूसरी वार सफाई इस तरह से की जाती है कि एक चतुष्कोण (चौकोनी) तांबे की डेग में कुछ चूने के पानी के साथ चीनी रक्खी जाती है (जिस में थोड़ा सा बैल का खून डाला जाता है) और प्रति सैकड़े में ५ से २० तक हड्डी के कोयलों का चूरा डाला जाता है इत्यादि, देखो! यह सब विषय अंग्रेजों ने अपनी बनाई हुई किताबों में लिखा है, बहुत से डाक्टर लोग लिखते हैं कि-इस चीनी के खाने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं इस पर यदि कोई पुरुष यह शंका करे कि-विलायत के लोग इसी चीनी को खाते हैं फिर उन को कोई बीमारी क्यों नहीं होती है? और वहां प्लेग जैसे भयंकर रोग क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं? तो इस का उत्तर यह है कि-वर्त्तमान समय में विलायत के लोग संसारभर में सब से अधिक विज्ञान वेत्ता और अधिकतर विद्वान् हैं (यह बात प्रायः सब को विदित ही है) वे लोग इस शक्कर को छूते भी नहीं है किन्तु वहां के लोगों के लिये तो इतनी

उमदा और सफाई के साथ चीनी बनाई जाती है कि उस का यहां एक दाना भी नहीं आता है क्योंकि वह एक प्रकार की मिश्री होती है और वहां पर वह इतनी महँगी विकती है कि उस के यहां आने में गुञ्जाइश ही नहीं है, इस के सिवाय यह वात भी है कि यदि वहां के लोग इस चीनी का सेवन भी करें तो भी उन को इस से कुछ भी हानि नहीं पहुँच सकती है, क्योंकि–विलायत की हवा इतनी शर्द है कि वहां मद्य आदि अत्युष्ण पदार्थों का विशेष सेवन करने पर भी उन (मद्य आदि) की गर्मी का कुछ भी असर नहीं होता है तो भला वहां चीनी की गर्मी का क्या असर हो सकता है, किन्तु भारत वर्ष के समान तो वहां चीनी का सेवन लोग करते भी नहीं है, केवल चाय आदि में ही उस का उपयोग होता है, खाली चीनी का या उस के वने हुए पदार्थों का जिसप्रकार भारतवर्षीय लोग सेवन करते हैं उस प्रकार वहां के लोग नहीं करते हैं और न उन का यह प्रतिदिन का खाद्य और पौष्टिक पदार्थ ही है, इसलिये इस का वहां कोई परिणाम नहीं होता है, यदि भारतवर्ष के समान इस का वुरा परिणाम वहां भी होता तो अवश्य अवतक वहां इस के कारखाने वंद हो गये होते, वहां प्लेग भी इसी लिये नहीं होता है कि वह देश यहां के शहर और गाँव की अपेक्षा वहुत स्वच्छ और हवादार है, वहां के लोग एकचित्त हैं, परस्पर सहायक हैं, देशहितैषी हैं तथा श्रीमान् हैं।

इस वात का अनुभव तो प्रायः सव को होही चुका है कि–हिन्दुस्तान में प्लेग से दूषित स्थान में रहने पर भी कोई भी यूरोपियन आजतक नहीं मरा, इसी प्रकार श्रीमान् लोग भी प्रायः नहीं मरते हैं, परन्तु हिन्दुस्थान के सामान्य लोग विविधचित्त, परस्पर निःसहाय और देश के अहित हैं, इसलिये आजकल जितने वुरे पदार्थ, वुरे प्रचार और वुरी वातें हैं उन सवों ने ही इस अभागे भारत पर ही आक्रमण किया है।

अव अन्त में हम को सिर्फ इतना ही कहना है कि–अपने हित का विचार प्रत्येक भारतवासी को करके अपने धर्म और शरीर का संरक्षण करना चाहिये, यह अपवित्र चीनी आर्यों के खाने योग्य नहीं है, इसलिये इस का त्याग करना चाहिये, देखो! सरल स्वभाव और मांस मद्य के त्यागी को आर्य कहते हैं तथा उन (आर्यों) के रहने के स्थान को आर्यावर्त्त कहते हैं, इस भरतक्षेत्र में साढ़े पचीस देश आर्यों के हैं, गंगा सिन्धुके वीच में–उत्तर में पिशोर, दक्षिण में समुद्र कांठा तक २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्त्ती, ९ नारायण, ९ वलदेव, ९ प्रतिनारायण, ११ रुद्र और ९ नारद आदि उत्तम पुरुष इसी आर्यावर्त्त में जन्म लेते हैं, इसलिये ऐसे पवित्र देश के निवासी महर्षियों के सन्तान आर्य

१–मुक्ति को तो सव ही मनुष्य क्षेत्रों से प्राणी जाता है, लन्दन और अमेरिका तक सूत्रकार के कथन से भरतक्षेत्र माना जा सकता है, देखो! अमेरिका जैन संस्कृत रामायण (रामचरित्र) के कथनानुसार पाताल लंका ही है, यह विद्याधरों की वस्ती थी तथा रावण ने वहीं जन्म लिया था॥

लोगों को सदा उसी मार्ग पर चलना उचित है जिसपर चलने से उनके धर्म, यश, सुख, आरोग्यता, पवित्रता और प्राचीन मर्यादा का नाश न हो, क्योंकि इन सब का संरक्षण कर मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त करना ही वास्तवमें मनुष्यत्व है ॥

तैलवर्ग ॥

तैल यद्यपि कई प्रकार का होता है–परन्तु विशेषकर मारवाड़ में तिली का और बंगाल तथा गुजरात आदि में सरसों का तेल खाने आदि के काम में आता है, तेल खाने की अपेक्षा जलाने में तथा शरीर के मर्दन आदि में विशेष उपयोग में आता है, क्योंकि उत्तम खान पान के करने वाले लोग तेल को बिलकुल नहीं खाते हैं और वास्तव में घृत जैसे उत्तम पदार्थ को छोड़कर बुद्धि को कम करनेवाले तेल को खाना भी उचित नहीं है, हां यह दूसरी बात है कि तेल सस्ता है तथा मौठ गुवारफली और चना आदि वातल (वातकारक) पदार्थ मिर्च मसाला डाल कर तेल में तलने से सुस्वाद (लज़्ज़तदार) हो जाते हैं तथा वादी भी नहीं करते हैं, इतने अंश में यदि तेल खाया जावे तो यह भिन्न बात है परन्तु घृतादि के समान इस का उपयोग करना उचित नहीं है जैसा कि गुजरात में लोग मिठाई तक तेल की बनी हुई खाते हैं और बंगालियों का तो तेल जीवन ही बन रहा है, हां अलबत्ता जोधपुर मेवाड़ नागौर और मेड़ता आदि कई एक राज्यस्थानों में लोग तेल को बहुत कम खाते हैं।

गृहस्थ के प्रतिदिन के आवश्यक पदार्थों में से तेल भी एक पदार्थ है तथा इस का उपयोग भी प्रायः प्रत्येक मनुष्य को करना पड़ता है इस लिये इस की जातियां तथा गुण दोषों का जान लेना प्रत्येक मनुष्य को अत्यावश्यक है अतः इस की जातियां तथा गुण दोषों का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

तिल का तैल—यह तैल शरीर को दृढ़ करनेवाला, बलवर्धक, त्वचा के वर्ण को अच्छा करनेवाला, वातनाशक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक, शरीर में शीघ्र ही प्रवेश करनेवाला और कृमि को दूर करनेवाला है, कान की, योनि की और शिर की शूल को मिटाता है, शरीर को हलका करता है, टूटे हुए, कुचले हुए, दबे हुए और कटे हुए हाड़ को तथा अग्नि से जले हुए को फायदेमन्द है।

तेल के मर्दन में जो २ गुण कल्पसूत्र में लिखे हैं वे किसी ओषधि के साथ पके हुए तेल के समझने चाहियें किन्तु खाली तेल में उतने गुण नहीं हैं।

१–जैसे कि मौठ के भुजिये (सेव) बीकानेर में तेल में तलकर बहुत ही अच्छे बनते हैं और वहां के लोग उन्हें बड़ी शौक से खाते हैं, चने और मौठ के सेव प्रायः सब ही देशों में तेल में ही बनते हैं और उन्हें गरीब अमीर प्रायः सब ही खाते हैं ॥

जिन औषधों के साथ तेल पकाया जावे उन औषधों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिये कि–गर्मी अर्थात् पित्त की प्रकृतिवाले के लिये ठंढी और खून को साफ करनेवाली औषधों का तथा कफ और वायु की प्रकृतिवाले के लिये उष्ण और कफ को काटनेवाली औषधों का उपयोग करना चाहिये, नारायण, लक्ष्मीविलास, षड्विन्दु, चन्दनादि, लाक्षादि, शतपक्व और सहस्रपक्व आदि अनेक प्रकार के तैल इसी तिल के तेल से बनाये जाते हैं जो प्रायः अनेक रोगों को नष्ट करते हैं, तथा बहुत ही गुणकारक होते हैं।

यह तैल पिचकारी लगाने के और पीने के काम में भी आता है तथा गरीब लोग इस को खाने तलने और बघारने आदि अनेक कार्यों में वर्त्तते हैं, यह कान तथा नाक में भी डाला जाता है।

परन्तु इस में ये अवगुण हैं कि-यह सन्धियों को ढीला कर धातुओं को नर्म कर डालता है, रक्तपित्त रोग को उत्पन्न करता है किन्तु शरीर में मर्दन करने से फायदा करता है, इस के सिवाय शरीर, बाल, चमड़ी तथा आंखों के लिये भी फायदेमन्द है, परन्तु तिली का या सरसों का खाली तेल खाने से इन चारों को (शरीर आदि को) हानि पहुँचाता है, हेमन्त और शिशिर ऋतु में वायु की प्रकृति वाले को यह सदा पथ्य है॥

सरसों का तेल—दीपन तथा पाक में कटु है, इस का रस हलका है, लेखन, स्पर्श और वीर्य में उष्ण, तीक्ष्ण, पित्त और रुधिर को दूषित करनेवाला, कफ, मेदा, वादी, बवासीर, शिरःपीड़ा, कान के रोग, खुजली, कोढ़, कृमि, श्वेत कुष्ठ और दुष्ट कृमि को नष्ट करता है॥

राई का तेल—काली और लाल राई के तेल में भी सरसों के तेल के समान ही गुण हैं किन्तु इस में केवल इतनी विशेपता है कि–यह मूत्रकृच्छ्र को उत्पन्न करता है॥

तुवरी का तेल—तुवरी अर्थात् तोरई के बीजों का तेल–तीक्ष्ण, उष्ण, हलका, ग्राही, कफ और रुधिर का नाशक तथा अग्निकर्त्ता है, एवं विष, खुजली, कोढ़, चकते और कृमि को नष्ट करता है, मेददोष और व्रण की सूजन में भी फायदेमन्द है॥

अलसी का तेल—अग्निकर्त्ता, स्निग्ध, उष्ण, कफपित्तकारक, कटुपाकी, नेत्रों को अहित, बलकर्त्ता, वायुहर्त्ता, भारी, मलकारक, रस में स्वादिष्ठ, ग्राही, त्वचा के दोषों का नाशक तथा गाढ़ा है, इसे वस्तिकर्म, तैलपान, मालिस, नस्य, कर्णपूरण और अनुपान विधि में वायु की शान्ति के लिये देना चाहिये॥

कुसुम्भ का तेल—कसूम के बीजों का तेल–खट्टा, उष्ण, भारी, दाहकारक, नेत्रों को अहित, बलकारी, रक्तपित्तकारक तथा कफकारी है॥

खसखस का तेल—बलकर्त्ता, वृष्य, भारी, वातकफहरणकर्त्ता, शीतल तथा रस और पाक में स्वादिष्ठ है ॥

अण्डी का तेल—तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, गिलगिला, भारी, वृष्य, त्वचा को सुधारने वाला, अवस्था का स्थापक, मेधाकारक, कान्तिप्रद, बलवर्द्धक, कषैले रसवाला, सूक्ष्म, योनि तथा शुक्र का शोधक, आमगन्धवाला, रस और पाक में स्वादिष्ठ, कडुआ, चरपरा तथा दस्तावर है, विषमज्वर, हृदयरोग, गुल्म, पृष्ठशूल, गुह्यशूल, बादी, उदररोग, अफरा, अष्ठीला, कमर का रह जाना, वातरक्त, मलसंग्रह, बद, सूजन, और विद्रधि को दूर करता है, शरीर रूपी वन में विचरनेवाले आमवात रूपी गजेन्द्र के लिये तो यह तेल सिंहरूप ही है ॥

राल का तेल—विस्फोटक, घाव, कोढ़, खुजली, कृमि और वातकफज रोगों को दूर करता है[1] ॥

क्षार वर्ग ॥

खानों या ज़मीन में पैदा हुए खार को लोग सदा खाते हैं, दक्षिण प्रान्त देश तक के लोग जिस नमक को खाते हैं वह समुद्र के खारी जल से जमाया जाता है, राजपूताने की सांभर झील में भी लाखों मन नमक पैदा होता है, उस झील की यह तासीर है कि-जो वस्तु उस में पड़ जाती है वही नमक बन जाती है, उक्त झील में क्यारियां जमाई जाती हैं, पँचभदरे में भी नमक उत्पन्न होता है तथा वह दूसरे सब नमकों से श्रेष्ठ होता है, बीकानेर की रियासत लूंणकरणसर में भी नमक होता है, इस के अतिरिक्त अन्य भी कई स्थान मारवाड़ में हैं जिन में नमक की उत्पत्ति होती है परन्तु सिन्ध आदि देशों में ज़मीन में नमक की खानें हैं जिन में से खोद कर नमक को निकालते हैं वह सेंधा नमक कहलाता है, स्वाद और गुण में यह नमक प्रायः सब ही नमकों से उत्तम होता है इसीलिये वैद्य लोग बीमारों को इसी का सेवन कराते हैं तथा धातु आदि रसों के व्यवहार में भी प्रायः इसी का प्रयोग किया जाता है, इस के गुणों को समझनेवाले बुद्धिमान् लोग सदा खानपान के पदार्थों में इसी नमक को खाते हैं, इंगलैंड से लीवर पुल सॉल्ट नामक जो नमक आता है उस को डाक्टर लोग बहुत अच्छा बतलाते हैं, खुराक की चीजों में नमक बड़ा ही जरूरी पदार्थ है इस के डालने से भोजन का स्वाद तो बढ़ ही जाता है तथा भोजन पचभी जल्दी जाता है किन्तु इस के अतिरिक्त यह भी निश्चय हो चुका है कि नमक के विना खाये आदमी का जीवन बहुत समय तक नहीं रह

१-यह संक्षेप से कुछ तैलों के गुणों का वर्णन किया गया है, शेष तैलों के गुण उन की योनि के समान जानने चाहियें अर्थात् जो तेल जिस पदार्थ से उत्पन्न होता है उस तैल में उसी पदार्थ के समान गुण रहते हैं, इस का विस्तार से वर्णन दूसरे वैद्यकग्रन्थों में देखना चाहिये ॥

सकता है; देखो ! जो लोग दूध से वर्षों तक निर्वाह कर लेते हैं उस का कारण यही है कि–दूध में यथावश्यक खार का भाग मौजूद है, खान पान में नमक स्वाद और रुचि को पैदा करता है तथा हाड़ों को मज़बूत करता है।

नमक में यह अवगुण भी है कि नमक तथा खार का स्वभाव वस्तु के सड़ाने अथवा गलाने का है, इसलिये परिमाण से अधिक नमक का सेवन करने से वह शरीर के धातुओंको गला कर विगाड़ देता है, वहुत से मनुष्यों को यह शौक पड़ जाता है कि वे भोजन की सव चीजों में नमक अधिक खाते हैं परन्तु अन्त में इस से हानि होती है।

गहूँ वाजरी और दूध आदि चीजों में यथावश्यक थोड़ा २ खार कुदरती होता है और दाल तथा शाक आदि पदार्थों में ऊपर से डालने से नमक का यथावश्यक भाग पूरा होता है।

हम सव लोगो में क्षार वाले पदार्थ सदा अधिक खाये जाते हैं जैसे–दाल, शाक, चटनी, राइता, पापड़, खीचिया और अचार आदि, इन सव पदार्थों में नमक होता है इस लिये सव का थोड़ा २ भाग मिल कर यथावश्यक भाग पूरा हो जाता है, खार वा नमक के अधिक खाने से शरीरमें गर्मी, शरीर का टूटना और धातु का गिरना आदि विकार मालूम होने लगते हैं[1]।

नमक वा खार को भेदक (तोड़नेवाला) जानकर वहुत से मूर्ख वैद्य तापतिल्ली आदि पेट की गांठ को मिटाने के लिये वीमारों को अधिक खार खिला देते हैं उस का नतीजा आगे वहुत वुरा होता है, प्रायः पुरुषों का पुरुषत्व जो नष्ट होता है उस में मुख्य हेतु वहुधा खार का अधिक सेवन ही सिद्ध होता है, इस लिये यह वात सदा खयाल में रखनी चाहिये कि अधिक खार का सेवन वीर्य को नष्ट कर देता है, अतः सब को परिमित ही खार का सेवन करना चाहिये ॥

अब संक्षेप से सव प्रकार के खार और नमकों के गुण दिखलाये जाते हैं:—

सेंधा नमक—मीठा, अग्निदीपक, पाचन, लघु, स्निग्ध, रोचक, शीतल, वलकारक, सूक्ष्म, नेत्रों को हितकारी और त्रिदोषनाशक है ॥

सांभर नमक[2]—हलका, वातनाशक, अतिउष्ण, भेदक, पित्तकारक, तीक्ष्णोष्ण; सूक्ष्म और अभिष्यन्दी है तथा पचने के समय चरपरा है ॥

समुद्र नमक[3]—पाक में मधुर, कुछ कटु,–मधुर, भारी, दीपन, भेदी अविदाही, कफवर्धक, वायुनाशक, तिक्त, अरूक्ष और अत्यन्त शीतोष्ण नहीं है ॥

१–अत्यन्त सेवन करने से नमक मनुष्य को अन्धा कर देता है ॥

२–यह राजपूताने की सांभर झील से पैदा होता है इसी लिये इस का यह नाम पड़ा है ॥

३–यह नमक समुद्र के जल से वनाया जाता है ॥

विड नमक—क्षारगुणयुक्त, दीपन, हलका, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, रोचक और व्यवायी है, यह कफ और वादी के अनुलोमन है अर्थात् कफ को ऊपर की तरफ से तथा वादी को नीचे की तरफ से निकालता है, एवं विबन्ध, अफरा, विष्टंभ और शरीर गौरव (देह के भारीपन) को मिटाता है ॥

सौवर्चल (काला) नमक[1]—रोचक, भेदक, अग्निदीपक, अत्यन्तपाचक, स्नेहयुक्त, वायुनाशक, विशद, हलका, सूक्ष्म, डकार की शुद्धि करनेवाला तथा पित्त को कम बढ़ानेवाला है, एवं विबंध, अफरा और शूल रोग का नाशक है ॥

रेह का नमक[2]—क्षारगुण युक्त, भारी, कटु, स्निग्ध, शीतल और वायुनाशक है ॥

कचिया नमक—रुचिकारी, कुछ खारा, पित्तकर्ता, दाहकारी, कफवातनाशक, दीपन, गुलमनाशक तथा शूलहर्त्ता है ॥

द्रोणी नमक[3]—पाक में कमगर्म, कमदाहकारी, भेदन, कुछ स्निग्ध, शूलनाशक तथा अल्प पित्तकर्त्ता है ॥

औषर नमक[4]—खारी, कडुआ, वातकफनाशक, दाहकर्त्ता, पित्तकारी, ग्राही तथा मूत्रशोषक (मूत्र का सुखानेवाला) है ॥

चनाखार—अत्यन्त उष्ण, अग्निदीपक तथा दाँतों में हर्ष करनेवाला है, इस का स्वाद खट्टा और नमकीन है तथा यह शूल अजीर्ण और विबन्ध को नष्ट करता है ॥

जवाखार—हलका, स्निग्ध, अतिसूक्ष्म तथा अग्निदीपक है, यह शूल, वादी, आम, कफ, श्वास, गुल्म, गलेका रोग, पाण्डुरोग, बवासीर, संग्रहणी, अफरा, प्लीहा और हृदयरोग को दूर करता है ॥

सज्जीखार[5]—सज्जीखार जवाखार की अपेक्षा अल्प गुणवाला है, परन्तु शूल, और गुल्मरोग में अधिक गुण करता है ॥

सोरा[6]—इस में प्रायः सज्जी के समान गुण हैं, परन्तु इस में इतनी विशेषता है कि यह मूत्रकृच्छ्र को दूर करता है तथा जल को शीतल करता है ॥

नौसादर[7]—यह भी एक प्रकार का तीव्र खार है तथा इस में खारों के समान ही प्रायः सब गुण हैं ॥

१–यह नमक हिमालय पर्वत के सक्षार (खार के सहित) जल से बनाया जाता है ॥

२–यह नमक खारी जमीन में से स्वयं ही प्रकट होता है ॥

३–यह नमक खार लगाने से मिट्टी के वर्त्तनों में प्रकट होता है ॥

४–यह नमक ऊषर भूमि में उत्पन्न होता है ॥

५–सज्जी भी एक प्रकार खार ही है, इस को संस्कृत में सर्जिका, कापोत और सुखवर्चक कहते हैं ॥

६–यह भी सजी का ही एक भेद है ॥

७–ऊंट, भैंस अथवा गांव के गोबर की भस्म को पाकविधि के साथ पचाने से नौसादर प्रकट होता है, परन्तु एक नौसादर मनुष्य और शूकर की विष्ठा के द्वारा पजावे में से निकलता है ॥

सुहागा—अग्निकर्त्ता, रूक्ष कफनाशक, वातपित्तकर्त्ता, कासनाशक, बलवर्धक, स्त्रियों के पुष्प को प्रकट करनेवाला, व्रणनाशक, रेचक तथा मूढ़ गर्भ को निकालने वाला है ॥

मिश्रवर्ग ॥

दाल और शाक के मसाले—कुसंग दोष तथा अविद्या से ज्यों २ प्राणियों की विषयवासना बढ़ती गई त्यों २ उस (विषयवासना) को शान्त करने के लिये धातुपुष्टि तथा वीर्यस्तम्भन की औषधों का अन्वेषण करते हुए मूर्ख वैद्यों आदि के पञ्जे में फँस कर अनेक हानिकारक तथा परिणाम में दुःखदायक औषधों का ग्रहण कर मन माने उलटे सीधेमार्ग पर चलने लगे, यह व्यवहार यहां तक बढ़ा और बढ़ता जाता है कि लोग मद्य, अफीम, भांग, माजूम, गाँजा और चरस आदि अनेक महाहानिकारक विषैली चीजों को खाने लगे और खाते जाते हैं परन्तु विचार कर देखा जावे तो यह सब व्यवहार जीवन की खराबी का ही चिह्न है।

ऊपर कहे हुए पदार्थों के सिवाय लोगों ने उसी आशा से प्रतिदिन की खुराक में भी कई प्रकार के उत्तेजक स्वादिष्ट मसालों का भी अत्यन्त सेवन करना प्रारम्भ कर दिया कि जिस से भी अनेक प्रकार की हानियां होचुकी हैं तथा होती जाती हैं।

प्राचीन समय के विचारवाले लोग कहते हैं कि जगत् के वार्त्तमानिक सुधार और कला कौशल्य ने लोगों को दुर्बल, निःसत्व और बिलकुल गरीब कर डाला है, देशान्तर के लोग द्रव्य लिये जा रहे हैं, प्राणियों का शारीरिक बल अत्यंत घट गया, इत्यादि, विचार कर देखने से यह बात सत्य भी मालूम होती है।

वर्त्तमान समय के खानपान की तरफ ही दृष्टि डाल कर देखो कि खानपान में स्वादिष्ठता का विचार और बेहद शौकीनपन आदि कितनी खराबियों को कर रहा है और कर चुका है, यद्यपि प्राचीन विद्वानों तथा आधुनिक वैद्य और डाक्टरों ने भी साधारण खुराक की प्रशंसा की है परन्तु उन के कथन पर बहुत ही कमलोगों का ध्यान है, देखो। मनुष्यों की प्रतिदिन की साधारण खुराक यही है कि—चावल, घी, गेहूँ, बाजरी और ज्वार आदि की रोटी, मूंग, मौठ और अरहर आदि की दाल,

---

१–जहां क्षारद्वय कहे गये हैं वहां सज्जीखार और जवाखार लेने चाहियें, इन में सुहागा के मिलने से क्षारत्रय कहाते हैं, ये मिले हुए भी अपने २ गुण को करते हैं किन्तु मिलने से गुल्म रोग को शीघ्र ही नष्ट करते हैं, पलाश, थूहर, ओंगा (चिरचिरा), इमली, आक और तिलनालका खार तथा सज्जीखार और जवाखार ये आठों मिलने से क्षाराष्टक कहलाते हैं, ये आठों खार अग्नि के तुल्य दाहक हैं तथा शूल और गुल्मरोग को समूल नष्ट करते हैं ॥

२–जब नैत्यिक तथा सामान्य खानपान में अत्यन्त शौकीनी बढ़ रही है तो भला नैमित्तिक तथा विशेष व्यवहारों में तो कहना ही क्या है ॥

सामान्य और उपयोगी शाक तथा धनियां, हल्दी, जीरा और नमक आदि मसाले, इन सब पदार्थों का परिमित उपयोग किया जावे, परन्तु व्यसन स्वाद और शौक थोड़ा सा सहारा मिलने से बेहद बढ़ कर परिणाम में अनेक हानियों को करते हैं अर्थात् व्यसनी और शौकीन को सब तरह से नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं, देखो। इन से चार बातों की हानि तो प्रत्यक्ष ही दीखती है अर्थात् धन का नाश होता है, शरीर बिगड़ता है, प्रतिष्ठा जाती रहती है और अमूल्य समय नष्ट होता है।

उक्त व्यसन स्वाद और शौक वर्त्तमान समय में मसालों के सेवन में भी अत्यन्त बढ़े हुए हैं अर्थात् लोग दाल और शाक आदि में बेपरिमाण मसाले डाल कर खाते हैं तथा उस से यह लाभ समझते हैं कि ये मसाले गर्म होने के कारण जठराग्नि को प्रदीप्त करेंगे जिस से पाचनशक्ति बढ़ेगी और खुराक अच्छी तरह से तथा अधिक खाई जावेगी तथा वीर्य में भी गर्मी पहुँचने से उत्तेजन शक्ति बढ़ेगी इत्यादि, परन्तु यह सब उन लोगों का अत्यन्त भ्रम है, क्योंकि-प्रथम तो मसालों में जितनी वस्तुयें डाली जाती हैं वे सब ही सब प्रकृतिवालों के लिये तथा सर्वदा अनुकूल होकर शरीर की आरोग्यता को बनायें रक्खें यह कभी नहीं हो सकता है, दूसरे-मसालों में बहुत से पदार्थ ऐसे हैं जो कि इन्द्रियों को बेहकानेवाले तथा इन्द्रियों के उत्तेजक होकर भी शरीर के कई अवयवों में बाधा पहुँचाते हैं, तीसरे-मसालो में बहुत से ऐसे पदार्थ हैं जो कि शरीर की बीमारी में दवा के तौर पर दिये जाते हैं, जैसे-छोटी बड़ी इलायची, लौंग, सफेद जीरा, स्याह जीरा, दालचीनी, तेजपात और काली मिर्च आदि, अब यदि प्रतिदिन उन्हीं पदार्थों का अधिक सेवन किया जावे तो वे दवा के समय अपना असर नहीं करते हैं, चौथे—खुराक में सदा गर्म मसालों का खाना अच्छा भी नहीं है, क्योंकि स्वाभाविक जठराग्नि को दूसरे मसालों की बनावटी गर्मी से बढ़ा कर अधिक खुराक का खाना अच्छा नहीं है क्योंकि यह परिणाम में हानि करता है, देखो! एक विद्वान् का कथन है कि-"इलाज और खुराक वे ही अच्छे हैं जिन का परिणाम अच्छा हो अर्थात् जिन से परिणाम में किसी प्रकार की हानि न हो" आहा! यह कैसा अच्छा उपदेशदायक वाक्य है, क्या यह वाक्य सामान्य प्रजा के सदा याद रखने का नहीं है? इसलिये गर्म मसालों तथा अत्यन्त तीक्ष्ण मसालेदार चटनी आदि सब पदार्थों को प्रतिदिन नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इन का सदा सेवन करना सब मनुष्यों के लिये कभी एक सदृश हितकारक नहीं होसकता है, यद्यपि यह ठीक है कि गर्म मसाले वा मसालेदार पदार्थ रुचि को अधिक जागृत करते हैं तथा जठराग्नि को भी अधिक तेज़ करते हैं जिस से खाना अधिक खाया जाता है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि स्वाभाविक जठराग्नि के समान मसालों की गर्मीसे उत्पन्न हुई

१-क्योंकि वे खुराक के तौर पर हो जाते हैं॥

कृत्रिम अग्नि पदार्थों को यथावस्थित (ठीक तौर से) कभी नहीं पचा सकती है, जैसे एञ्जिन में वायलर को अधिक ज़ोर मिलने से वह गाड़ियों को ज़ोर से तो चलाता है परन्तु वायलर के माप और परिमाण से गर्मी के अधिक बढ़ जाने से अधिक भार को खींचता हुआ वह कभी फट भी जाता है, जैसे अधिक भार को खींचने के लिये वायलर को अधिक गर्मी की आवश्यकता हो यह नियम नहीं है किन्तु अधिक भार को खींचने के लिये बड़े एञ्जिन और बड़े ही वायलर की आवश्यकता है इसीप्रकार जन्म से छोटे कद वाला आदमी दिल में यदि ऐसा विचार करे कि मैं गर्म मसालों या गर्म दवा से अग्नि को तीव्र कर अधिक खुराक को खाकर क़द और ताकत में बढ़ जाऊं तो यह उसकी महाभूल है, क्योंकि ऐसा विचार कर यदि वह तदनुसार वर्त्ताव करेगा तो अपनी असली ताकत को भी खो बैठेगा, क्योंकि जैसे अधिक जोर के काम करने के लिये बड़े एञ्जिन और बड़े वायलर को बनाना पड़ता है उसीप्रकार अधिक ताकत के बढ़ाने के लिये भी सर्वोत्तम दवा के उपयोग, ब्रह्मचर्य व्रत के पालन और उचित वर्त्ताव से चलने आदि की आवश्यकता है अर्थात् इस व्यवहार से स्वाभाविक शक्ति उत्पन्न होती है और स्वाभाविक शक्तिवाला पुरुष महाशक्ति सम्पन्न तथा बड़े कदवाले सन्तान को उत्पन्न कर सकता है, ऐसे मनुष्यको नकली उपचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है।

प्रिय पाठकगण! क्या आपने इतिहास में नहीं पढ़ा है कि—हमारे इस देश के राठौर आदि राजा लोग वारह २ वर्ष तक दिल्ली में वादशाह के पास रह कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे और जब वे लोग ऋतु के समय अपनी पत्नी में गमन करते थे तब उन के अमोघ (निष्फल न जानेवाले) वीर्य से केशरीसिंह, पद्मसिंह, जयसिंह कच्छावा और प्रतापसिंह सिसोदिया जैसे पुरुष सिंह उत्पन्न होतेथे, यद्यपि खुराक उन की साधारण ही थी परन्तु वर्त्ताव अत्युत्तम था।

वहुत से अज्ञ लोग इस कथनसे यह न समझ जावें कि शास्त्रकारों ने गर्म मसालों की अत्यन्त निन्दा की है इसलिये इन को कभी नहीं खाना चाहिये, इस लेख का तात्पर्य केवल यही है कि—देश काल और प्रकृति के द्वारा अपने हिताहित का विचार कर प्रत्येक वस्तु का उपयोग करना चाहिये, क्योंकि जिस को अपने हिताहित का विचार हो जाता है वह पुरुष कभी धोखे में नहीं आता है, तात्पर्य यह है कि गर्म मसालों का निषेध जिस विषय में किया है उसी विषय में उन का निषेध समझना चाहिये तथा जिस विषय में उन का अंगीकार करना लिखा है उसी विषय में उन का अंगीकार करना चाहिये, जैसे—देखो! जिस मनुष्य की अत्यन्त वायु की तासीर हो तो वायु को शरीर में वरावर रखने के लिये खुराक के साथ उस को परिमित गर्म मसाला लेना चाहिये, इसीप्रकार जब मिठाई

१—स्याद्वादपक्षन्याय के देखने से मनुष्य को किसी प्रकार की शङ्का नहीं प्राप्त होती है॥

आदि गरिष्ठ पदार्थ खाने हों तब उन के साथ भी गर्म मसाले और चटनी आदि खाने चाहियें, किन्तु साधारण खुराक में गर्म मसालों का विशेष उपयोग करना आवश्यक नहीं है, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-गरिष्ठ पदार्थों के पचाने के लिये जो गर्म मसाले मिर्च और चटनी आदि खाये जावें वे भी परिमित ही खाये जावें, किन्तु उचित तो यह है कि-यथाशक्य गरिष्ठ पदार्थों का सेवन ही न किया जावे और यदि किया भी जावे तो खुराक की मात्रा से कम किया जावे।

वर्त्तमान समय में इस देश में शाक और दाल आदि में बहुत मिर्च, इमली, अचार, चटनी और गर्म मसालों के खाने का रिवाज़ बहुत ही बढ़ता जाता है, यह बड़ी हानिकारक बात है, इस लिये इस को शीघ्र ही रोकना चाहिये, देखो! इस हानिकारक व्यवहार का उपयोग करने से शरीर का रस बिगड़ता है, खून गर्म हो जाता है और पित्त बिगड़ कर अपना मार्ग छोड़ देता है, इसी से तरह २ के रोगों का जन्म होता है जिन का वर्णन कहां तक किया जावे।

गर्म प्रकृतिवाले पुरुष को गर्म मसालों का सेवन कभी नहीं करना चाहिये क्यों-कि ऐसा करने से उस को बहुत हानि पहुँचेगी, यदि गर्म मसालों की ओर चित्त चलायमान भी हो तो धनियां जीरा और सेंधानमक, इस मसाले का उपयोग करले क्योंकि यह साधारण मसाला है तथा सब के लिये अनुकूल आ सकता है, यदि चरपरी वस्तु के खाने की इच्छा हो तो काली मिर्च का सेवन कर लेना चाहिये किन्तु लाल मिर्च को कभी नहीं खाना चाहिये।

वर्त्तमान समय में लोगों में लाल मिर्च के खाने का भी प्रचार बहुत बढ़ गया है, यह

१-बहुत से बुभुक्षित ब्राह्मणों आदि को जब मिष्टान्न खाने को मिलता है तब वे औघड़ों की भांति घर की सदा की खुराक की अपेक्षा दुगुना तथा तिगुना माल खा जाते हैं और ऊपर से चमचमाहट करते हुए शाक, दाल, अचार और चटनी आदि पदार्थों को भी उदर दरी में पधराते हैं, यह बड़ी भूल की बात है, क्योंकि-इस से बहुत हानि होती है अर्थात् ऐसा करने से पाचनशक्ति का समान रहना अतिकठिन है, यदि कोई पेटार्थी ऐसा हिसाब लगावे कि मैं आध सेर अन्न अथवा तर माल का खानेवाला हूँ किन्तु मैं एक रुपये भर गर्म मसाला खाकर सेर भर माल को हज़म कर लूंगा तथा दो रुपये भर गर्म मसाला खाकर दो सेर माल को हज़म कर लूंगा, इसी प्रकार पांचरुपये भर गर्म मसाले से पांच सेर नहीं तो तीन सेर तो अवश्य ही हजम कर लूंगा, तो उस का यह त्रैराशिक (त्रिराशिका हिसाब) खुराक के विषय में काम में नहीं आवेगा और यदि वह उक्त हिसाब को लगा कर वैसा करेगा तो अजीर्ण होकर उसे अवश्य मरना पड़ेगा॥

२-बीकानेर के ओसवाल और तैलंग देशवाले लोग जितनी लाल मिर्च खाते हैं उतनी मिर्च शायद ही कहीं कोई खाता होगा, यद्यपि द्रव्यपात्र ओसवालों के यहां मिर्च के साथ घृत (घी) भी अधिक डालकर खाते हैं जिस से मिर्च की गर्मी कुछ कम हो जाती है परन्तु वर्त्तमान में इस (बीकानेर) नगर में ओसवालों में सामान्यतया तिलोक चंद जी (तैल) ही का वर्त्ताव बहुत है, इसी प्रकार तैलंग लोग चावल और इमली मिर्च की चटनी को रूखी (विना घृत के) ही खाते हैं, मलेवारवाले लोग कच्चे नारियल और थोड़ी सी मिर्चों की चटनी बना कर भात के साथ खाते हैं, घी मिर्च की गर्मी को शान्त करने वाला है परन्तु वर्त्तमान में उस के विषय में तो यह कहावत चरितार्थ होने लगी है कि घी का और खुदा का मुँह किस ने देखा है॥

भी अत्यन्त हानिकारक है, बहुत से लोग यह कहते हैं कि–जितना चरपरापन लाल मिर्च में है उतना दूसरी किसी चीज़ में नहीं है इस लिये चरपरी चीज के खाने की इच्छा से यह (लाल मिर्च) खानी ही पड़ती है इत्यादि, यह उन लोगों का कथन बिलकुल भूल का है, क्योंकि चरपरी चीज़ के खाने की इच्छावाले लोगों के लिये लाल मिर्चके सिवाय बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं कि जिन से उन की इच्छा पूर्ण हो सकती है, देखो! अदरख काली मिर्च, सोंठ और पीपल आदि बहुत से चरपरे पदार्थ हैं तथा गुणकारक भी हैं इस लिये जब चरपरे पदार्थ के खाने की इच्छा हो तब इन (अदरख आदि) वस्तुओं का सेवन कर लेना चाहिये, यदि विशेष अभ्यास पड़ जाने के कारण किसी से लाल मिर्च के विना रहा ही न जावे अथवा लाल मिर्च का जिन को बहुत ही शौक पड़ गया हो उन लोगों को चाहिये कि जयपुर ज़िले की लाल मिर्च के बीजों को निकाल कर रात को एक वा दो मिर्चें जल में भिगो कर प्रातःकाल पीसकर तथा घी मे सेक कर थोड़ी सी खा लेवें।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–खट्टे रस का तोड़ (दाउन या उतार) नमक है और नमक का तोड़ खट्टा रस है।

बघार देने के लिये जीरा, हींग, राई और मेथी मुख्य वस्तुयें हैं तथा वायु और कफ की प्रकृतिवालों के लिये ये लाभदायक भी हैं ॥

अचार और राइता—अचार और राइता पाचनशक्ति को तेज़ करता है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि जो २ पदार्थ पाचनशक्ति को बढ़ाते हैं और तेज़ हैं यदि उन का परिमाण बढ़ जावे तो वे पाचनशक्ति को उलटा बिगाड़ देते हैं, बहुत से लोग अचार, राइता, तेल, राई, नमक और मिर्चआदि तेज पदार्थों से जीभ को तहड्डन कर देते हैं सो यह ठीक नहीं है, ये चीजें हमेशह कम खानी चाहियें, यदि ये खाई भी जावें तो मिठाई आदि तर माल के साथ खानी चाहियें अर्थात् सदा नहीं खानी चाहियें क्योंकि इन चीज़ों के सेवन से खून बिगड़ जाता है और खून के बिगड़ने से मन्दाग्नि होकर शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं, इस लिये इन चीज़ों से सदा बचकर रहना चाहिये, देखो! मारवाड़ के निवासी और गुजराती आदि लोग इन्हीं के कारण प्रायः बीमार होते

१–लाल मिर्च के बीजों को खानेसे वीर्य को बड़ा भारी नुकसान पहुँचता है, इसलिये बीजों को बिलकुल नहीं खाना चाहिये ॥

२–खट्टे रस में नींबू अमचुर और कोकम खाने के योग्य हैं, परन्तु यदि प्रकृतिके अनुकूल हों तो खाना चाहिये ॥

३–अचार और रायता कई प्रकार का बनता है–उस के गुण उस के उत्पादक पदार्थ के समान जानने चाहियें तथा इन में मसालों के होने से उन के तीक्ष्णता आदि गुण तो रहते ही हैं ॥

४–विवेकहीन लोग इस बात को नहीं समझते हैं, देखो! इन्हीं चीज़ों से तो पाचनशक्ति बिगड़ती है और इन्हीं चीज़ों का सेवन पाचनशक्ति के सुधार के लिये लोग करते हैं ॥

हैं, आगरे तथा दिल्ली से लेकर ब्रह्मा के देश तक लोग लाल मिर्च को नहीं खाते हैं यदि खाते भी हैं तो बहुत ही युक्ति के साथ खाते हैं ॥

चाय[1]—वर्त्तमान समय में चाय का बहुत ही प्रचार है अर्थात् घर २ में लोग इस को पीते हैं, हमारे देश में पहिले चीन से चाय आती थी परन्तु अब बहुत वर्षों से नीलगिरि और आसाम के ज़िले में भी चाय पैदा होकर यहां आने लगी है, इस देश में जो चाय बाज़ारों में बिकती है वह बहुत ही घटिया होती है, चीन जैसी चाय किसी मुल्क में नहीं पैदा होती है अर्थात् आठ आने से लेकर सौ रुपये तक वहां एक रतल की कीमत होती है किन्तु इस से भी अधिक होती है, वैसी अव्वल दर्जे की चाय बाज़ारों में बिकती हुई यहां कभी नहीं देखी गई और न उस चाय का यहां कोई ग्राहक ही दीख पड़ता है क्योंकि यहां तो 'सस्ता दाम और चोखा माल, का विचार प्रत्येक के हृदय में बस रहा है।

चाय वृक्ष के सुखाये हुए पत्ते हैं, सूख जाने के बाद इन पत्तों को कड़ाहों में गर्म करते हैं तब उन में सुगन्धि और स्वाद अच्छा हो जाता है, यह एक थोड़े ही नसे की चीज है इस लिये सदा पीने से अफीम, गांजा, सुलफा, तमाखू, मद्य, भांग और धतूरे आदि दूसरी नसीली चीजों की तरह अधिक हानि नहीं करती है।

चाय में प्रतिसैकड़े के हिसाब से गुण करनेवाला भाग एक से छःभाग तक होता है अर्थात् सब से हलकी (घटिया) चाय में एक और सब से बढिया चाय में प्रति सैकड़े में छः गुण कारी भाग हैं, इस में पौष्टिक तत्व प्रतिसैकड़े में १५ भाग हैं और कब्जी करनेवाला तत्व बहुत ही थोड़ा है।

काली और हरी चाय एक ही वृक्ष की होती है और पीछे बनावट के द्वारा इस के रंग में परिवर्त्तन होता है, चाय के ताज़े पत्तों को गर्म कड़ाई में चढ़ाने से अथवा पानी की भाफ से सुखाकर गर्म करने से वह रंग में काली अथवा हरी हो जाती है परन्तु हरी चाय को रंग देने के लिये नीला थोथा अथवा प्रश्यनब्लू नामक जहरीली वस्तु का जो कुछ अंश किसी समय लोग देते हैं उस का असर बहुत खराब होता है।

चाय वज़न में बहुत थोड़ी सी पीने से शरीर में सुस्ती पैदा करती है और थोड़ी नींद लाती है परन्तु वज़न में अधिक पीने से अंग में गर्मी और फुर्ती आती है तथा नींद का आना बंद हो जाता है।

बहुत से लोग नींद को रोकने के लिये रात को चाय पीते हैं उस से यद्यपि नींद तो नहीं आती है परन्तु बेचैनी पैदा होती है, जो लोग नींद को रोकने के लिये रात को बार २ चाय पीते हैं और नींद को रोकते हैं इस से उन के मगज़ को बहुत हानि पहुँचती है, जो आदमी अच्छा और पुष्टिकारक खुराक ठीक समय पर खाते हैं वे लोग यदि

१–इस को चा और चाह भी कहते हैं ॥

परिमाण के अनुसार चाय पीवें तो कुछ हानि नहीं है परन्तु हलका और थोड़ा भोजनकरने वाले तथा गरीव आदमियों को थोड़ीसी तेज़ चाय पीनी चाहिये क्योंकि हलकी खुराक खानेवाले लोगों को थोड़ी सी तेज़ चाय नुकसान नहीं करती है, वहुत चाय के पीने से मगज़ में तथा मगज़ के तन्तुओं में शिथिलता हो जाती है, निर्वलता में अधिक चाय के पीने से भ्रान्ति और भूलने का रोग हो जाता है, लोग यह भी कहते हैं कि–चाय खून को जला देती है यह वात कुछ सत्यभी मालूम होती है, क्योंकि–चाय अत्यन्त गर्म होती है इसलिये उस से खून का जलना संभव है, चाय को सदा दूध के साथ ही पीना चाहिये क्योंकि दूधके साथ पीनेसे चाय का नशा कम होताहै, पोषण मिलता है तथा वह गर्मी भी कम करती है, वहुत से लोग भोजन के साथ चाय को पीते हैं सो यह हानिकारक है, क्योंकि उससे पाचनशक्ति में अत्यन्त वाधा पहुँचती है इसलिये भोजन के पीछे तीन चार घण्टे वीत जानेपर चाय को पीना चाहिये, देखो ! चाय पित्त को वढानेवाली है इसलिये भोजन से तीन चार घण्टे के वाद जो भोजन का भाग पचना वाकी रह गया हो वह भी उस चाय के द्वारा उत्पन्न हुए पित्त से पचकर नीचे उतर जाता है, चाय में थोड़ा सा गुण यह भी है कि–वह पक्काशय (होजरी) को तेज़ करती है, पाचनशक्ति तथा रुचि को पैदा करती है, चमड़ी तथा मूत्राशय पर असर कर पसीने तथा पेशाव को खुलासा लाती है जिस से खून पर कुछ अच्छा असर होता है, शरीर के भागों की शिथिलता और थकावट को दूर कर उन में चेतनता लाती है, परन्तु चाय में नशा होता है इससे वह तनदुरुस्ती मे वाधा पहुँचाती है, ज्यों २ चाय को अधिक देर तक उवाल कर पत्तों का अधिक कस निकाल कर पिया जावे त्यों २ वह अधिक हानि करती है, इस लिये चाय को इस प्रकार वनाना चाहिये कि पतीली में जल को चूल्हे पर चढ़ादिया जावे जव वह (पानी) खूव गर्म होकर उवलने लगे तव चाय के पत्तों को डाल कर कलईदार ढक्कन से ढक देना चाहिये और सिर्फ दो तीन मिनट तक उसे चूल्हेपर चढ़ाये रखना चाहिये, पीछे उतार कर छान कर दूध तथा मीठा मिलाकर पीना चाहिये, अधिक देर तक उवालने से चाय का स्वाद और गुण दोनों जाते रहते हैं, चाय में खांड़ या मिश्री आदि मीठा भी परिमाण से ही डालना चाहिये क्योंकि अधिक मीठा डालने से पेट विगड़ता है, वहुत लोग चाय में नींवू का भी कुछ स्वाद देते हैं उस की रीति यह है कि–कलई या काचके वर्त्तन में नींवू की फांक रख कर ऊपर से चाय का गर्म पानी डाल देना चाहिये, चार पांच मिनट तक वैसा ही रख कर पीछे दूसरे वर्त्तन में छान लेना चाहिये ।

चाय में यद्यपि वहुत फायदा नहीं है परन्तु संसार में शौकीनपने की हवा घर २ में फैलगई है इसलिये चाय का तो सव को एक व्यसन सा होगया है अर्थात् एक दूसरे की देखादेखी सव ही पीने लगे हैं परन्तु इस से वड़ा नुकसान है क्योंकि लोग चाय में जो

विशेष गुण समझते हैं वे उस में बिलकुल नहीं हैं इसलिये आवश्यकता के समय में दूध और बूरा आदि के साथ इस को थोड़ा सा पीना चाहिये, प्रतिदिन चाय का पीना तो तर माल खानेवाले अंग्रेज और पारसी आदि लोगों के लिये अनुकूल हो सकता है किन्तु जो लोग प्रतिदिन घी का दर्शन तक नहीं कर सकते हैं सिर्फ त्योहार आदि को जिन को घी का दर्शन होता है उन के लिये प्रतिदिन चाय का पीना महा हानिकारक है, चाय के पीने की अपेक्षा तो यथाशक्य आरोग्यता को कायम रखने के लिये प्रतिदिन स्वयं दूध पीना चाहिये तथा बच्चों को पिलाना चाहिये ॥

काफी—चाय के समान एक दूसरी वस्तु काफी है जो कि अरब स्थान में यहां आती है, चाय और काफी दोनों का गुण प्रायः मिलता हुआ सा है, यह एक वृक्ष का बीज है इस को बूंद दाना भी कहते हैं, बहुत से लोग इस के दानों को सेक कर रख छोड़ते हैं और भोजन करने के पीछे सुपारी की तरह चाब कर मुँह को साफ करते हैं, इस के दानों को सेकने से उन में सुगन्ध हो जाती है और वे एक मसालेदार चीज के समान बन जाते हैं, इस के दानों में सिर्फ एक भाग गुणकारी है, एक भाग खट्टा है, बाकी का सबभाग कड़ुआ और कब्जी करनेवाला है, इस के कच्चे दाने बहुत दिनों तक रह सकते हैं अर्थात् बिगड़ते नहीं हैं परन्तु सेके हुए अथवा दले हुए दानों को बहुत दिनों तक रखने से उन की सुगन्धि तथा स्वाद जाता रहता है ।

चाय की अपेक्षा काफी अधिक पौष्टिक तथा शक्तिदायक है परन्तु यह भारी है इस लिये निर्बल और बीमार आदमी को नहीं पचती है, काफी से शरीर में गर्मी और चेतनता आती है शीत ऋतु में तथा शीत देशों में यात्रा करते समय यदि काफी पी जावे तो शरीर में गर्मी रहसकती है ।

काफी के चूर्ण की थैली बना कर पतीली के उबलते हुए जल में डाल कर पांच सात मिनट तक उसी में रख कर पीछे उतारने से काफी तैयार होजाती है, चाय तथा काफी में बहुत मीठा डाल कर पीने से निर्बल कोठे वाले को अवश्य हानि पहुँचती है इस लिये इन दोनों में थोड़ा सा ही मीठा डाल कर पीना चाहिये ।

काफी के पानी में चौथा भाग दूध डालना चाहिये, इन दोनों चीजों को बहुत गर्म पीने से पाचनशक्ति कम पड़ती है तथा धातु में भी हानि पहुँचती है, इस गर्म देश में काफी गर्मी पैदा कर नींद का नाश करती है इसलिये इसे रात को नहीं पीना चाहिये किन्तु आवश्यकता हो तब इसे प्रातःकाल में ही पीना चाहिये, हां यदि किसी कारण से किसी को रात्रि में निद्रा से बचना हो तो भले ही उसे रात में काफी पी लेनी चाहिये, जैसे–किसी ने विष खाया हो तो उस को रात्रि में नींद से बचाने के लिये अर्थात् जागृत (जागता हुआ) रखने के लिये वार २ काफी पिलाया करते हैं ।

बहुत स्थूल शरीर वाले तथा बहुत खाने वाले के लिये चाय और काफी का पीना अच्छा है, दुबले तथा निर्बल आदमीको यथाशक्य चाय और काफी को नहीं पीना चाहिये तथा बहुत तेज़ भी नहीं पीना चाहिये किन्तु अच्छीतरह दूध मिलाकर पीना चाहिये, हलकी रूक्ष और सूखी हुई ख़ुराक के खानेवालों को तथा उपवास, आंबिल, एकाशन और ऊनोदरी आदि तपस्या करने वालों को चाय और काफी को नहीं पीना चाहिये यदि पियें भी तो बहुत ही थोड़ी सी पीनी चाहिये, प्रातःकाल में पूड़ी आदि नाश्ते के साथ चाय और काफी का पीना अच्छा है, पेट भर भोजन करने के बाद चार पांच घंटे बीते बिना इन को नहीं पीना चाहिये, निर्बल कोठे वाले को बहुत मीठी बहुत सख्त उबाली हुई तथा बहुत गर्म नहीं पीनी चाहिये किन्तु थोड़ा सा मीठा और दूध डालकर कुए के जल के समान गर्म पीनी चाहिये, इन दोनों के पीने में अपनी प्रकृति, देश, काल और आवश्यकता आदि बातों का भी खयाल रखना चाहिये, वास्तव में तो इन दोनों का भी पीना व्यसन के ही तुल्य है इस लिये जहांतक हो सके इन से भी मनुष्य को अवश्य बचना चाहिये ॥

अन्नसाधन—समवाय हेतु में जो २ गुण हैं वे ही गुण उस समवायी कार्य में जानने चाहियें अर्थात् जो २ गुण गेहूँ, चना, मूंग, उड़द, मिश्री, गुड़, दूध और बूरा आदि पदार्थों में हैं वे ही गुण उन पदार्थों से बने हुए लड्डू, पेड़े, पूड़ी, कचौरी, मठरी, रबड़ी, जलेबी और मालपुए आदि पदार्थों में जानने चाहियें, हां यह बात अवश्य है कि—किसी २ वस्तु में संस्कार भेद से गुण भेद हो जाता है, जैसे पुराने चांवलों का भात हलका होता है परन्तु उन्हीं शालि चावलों के बने हुए चिर वे (संस्कार भेद से) भारी होते हैं, इसी प्रकार कोई २ द्रव्य योग प्रभाव से अपने गुणों को त्याग कर दूसरे गुणों को धारण करता है, जैसे—दुष्ट अन्न भारी होता है परन्तु वही घीके योग से बनने से हलका और हितकारी हो जाता है।

यद्यपि प्रथम कुछ आवश्यक अन्नों के गुण लिख चुके हैं तथा उन से बने हुए पदार्थों में भी प्रायः वे ही गुण होते हैं तथापि संस्कार भेद आदि के द्वारा बने हुए तज्जन्य पदार्थों के तथा कुछ अन्य भी आवश्यक पदार्थों का वर्णन यहां संक्षेप से करते हैं:—

भात—अग्निकर्त्ता, पथ्य, तृप्तिकर्त्ता, रोचक और हलका है, परन्तु विना धुले चावलों का भात और विना औंटे हुए जल में चांवलों को डाल कर पकाया हुआ भात शीतल, भारी, रुचिकर्त्ता और कफकारी है ॥

दाल—विष्टंभकारी, रूक्ष तथा शीतल है, परन्तु भाड़ में भुनी हुई दाल के छिलकों को दूर करके बनाई जावे तो वह अत्यन्त हलकी हो जाती है ॥

१—इस के बनाने की विधि पूर्व लिख चुके हैं ॥

खिचड़ी—वीर्यदाता, वलकर्त्ता, भारी, पित्तकफकर्त्ता, देर में पचनेवाली, वुद्धिकर्त्ता, मूत्रकारक तथा विष्टंभ और मल को उत्पन्न करने वाली है ॥

खीर—देर में पचने वाली, वृंहणी तथा वलवर्द्धक है ॥

सेमंई—धातुओं की तृप्ति करने वाली, वलकारी, भारी, पित्त और वात को नष्ट करने वाली, ग्राही, सन्धि कर्त्ता तथा रुचिकारी है ॥

पूरी—वृंहण, वृष्य, वलकारी, रुचिकर्त्ता, पाक में मधुर, ग्राही और त्रिदोष नाशक है ॥

लप्सी (सीरा)—वृंहण, वृष्य, वलकारक, वातपित्तनाशक, स्निग्ध, कफकारी, भारी, रुचिकर्त्ता और अत्यन्त तृप्ति कर्त्ता है ॥

रोटी—वलकारी, रुचिकर्त्ता, वृंहणी (पुष्टि कर्त्ता), रस और रक्त आदि धातुओं को वढ़ाने वाली, वातनाशक, कफकर्त्ता, भारी और प्रदीप्त अग्निवालों के लिये हितकर्त्ता है ॥

बाटी—वृंहणी, शुक्रकर्त्ता, हलकी, दीपनकर्त्ता, कफकारी तथा वलकर्त्ता है, एवं पीनस, श्वास और कास रोग को दूर करती है ॥

जौं की रोटी—रुचिकर्त्ता, मधुर, विशद और हलकी है, मल, शुक्र और वादी को करती है तथा कफ के रोगों को नष्ट करती है ॥

उड़द की रोटी—कफपित्त नाशक तथा कुछ वायुकारक है ॥

चने की रोटी—रुक्ष, कफ पित्त और रुधिर के विकारों को दूर करनेवाली, भारी, पेट को फुलाने वाली, नेत्रों के लिये अहित तथा शोषक है ॥

वेढ़ई[1]—वलकारी, वृष्य, रुचिकर्ता, वातनाशक, उष्णता को वढ़ाने वाली, भारी, वृंहणी और शुक्र को प्रकट करनेवाली है, मूत्र तथा मल का भेदन करती है, स्तनसंवन्धी दूध, मेद, पित्त और कफ को करती है तथा गुदा का मस्सा, लकवा, वात, श्वास और परिणाम शूल को दूर करती है ॥

पापड़—परम रुचिकारी, दीपन, पाचन, रूक्ष और कुछ २ भारी हैं, परन्तु मूंग के पापड़ हलके और पथ्य होते हैं ॥

कचोरी—तेल की कचोरी–रुचिकर, स्वादु, भारी, स्निग्ध, वलकारी, रक्तपित्त को कुपित करने वाली, नेत्रों के तेज का भेदन करनेवाली, पाक में गर्म तथा वातनाशक है, परन्तु घी की वनी हुई कचोरी नेत्रों को हितकारक तथा रक्तपित्त की नाशक होती है ॥

१–ये पूर्वीय देशों में श्रावण मास में वहुत वनाई जाती हैं ॥

वरा और मँगोरा—ये दोनों-बलकारक, बृंहण, वीर्यवर्धक, वातरोगहर्त्ता, रुचिकारी, अर्दित वायु (लकवा) के नाशक, मलभेदक, कफकारी तथा प्रदीप्ताग्निवालों के लिये हितकारक हैं, यदि गाढ़े दही में भुना हुआ जीरा, हींग, मिर्च और नमक को मिलाकर वरे और मँगोरों को भिगो दिया जावे तो वे दही वड़े और दही की पकोड़ी कहलाती हैं, ये दोनों-वीर्यकर्त्ता, बलकारी, रोचक, भारी, विबन्ध को दूर कर्त्ता, दाहकारी, कफकर्त्ता और वातनाशक होते हैं ॥

उड़द की बड़ी—इन में वरे के समान गुण हैं तथा अत्यन्त रोचक हैं ॥

पेठे की बड़ी—इन में भी पूर्वोक्त बड़ियों के समान गुण हैं परन्तु इन में इतनी विशेषता है कि ये रक्तपित्तनाशक तथा हलकी हैं ॥

मूंग की बड़ी—पथ्य, रुचिकारी, हलकी और मूंग की दाल के तुल्य गुणवाली हैं ॥

कढ़ी—पाचक, रुचिकारी, हलकी, अग्निदीपक, कफ और वादी के विबंध को तोड़नेवाली तथा कुछ २ पित्तकोपक है ॥

मीठी मठरी—बृंहण, वृष्य, बलकारी, मधुर, भारी, पित्तवातनाशक तथा रुचिकारी है, यह प्रदीप्ताग्निवालों के लिये हितकारक है, इसी प्रकार मैदा खांड़ और घी से बने हुए पदार्थों (बालूसाई, मैदा के लड्डू और मगद तथा सकर पारे आदि) के गुण मीठी मठरी के समान ही जानने चाहियें ॥

बूंदी के लड्डू—हलके, ग्राही, त्रिदोषनाशक, स्वादु, शीतल, रुचिदायक, नेत्रों के लिये हितकारक, ज्वरहर्त्ता, बलकारी तथा धातुओं की तृप्तिकारक हैं, ये मूंग की बूंदी वाले लड्डुओं के गुण जानने चाहियें ॥

मोतीचूर के लड्डू—बलकर्त्ता, हलके, शीतल, किञ्चित् वातकर्त्ता, विष्टम्भी, ज्वरनाशक, रक्तपित्तनाशक तथा कफहर्त्ता हैं ॥

जलेबी—पुष्टिकर्त्ता, कान्तिकर्त्ता, बलदायक, रस आदि धातुओं को बढ़ानेवाली, वृष्य, रुचिकारी और तत्काल धातुओं की तृप्तिकारक है ॥

शिखरन (रसाला)—शुक्रकर्त्ता, बलकारक, रुचिकारी, वातपित्त को जीतनेवाली, दीपनी, बृंहणी, स्निग्ध, मधुर, शीतल और दस्तावर है, यह रक्तपित्त, प्यास, दाह और सरेकमा को नष्ट करती है ॥

शर्बत—वीर्य प्रकटकर्त्ता, शीतल, दस्तावर, बलकारी, रुचिकर्त्ता, हलका, स्वादिष्ठ, वातपित्तनाशक तथा मूर्छा, वमन, तृषा, दाह और ज्वर का नाशक है ॥

आम का पना—तत्काल रुचिकर्त्ता, बलकारी तथा शीघ्र ही इन्द्रियों की तृप्तिकारी है ॥

इमली का पना—वातनाशक, किञ्चित् पित्तकफकर्त्ता, रुचिकारी तथा अग्निदीपक है ॥

नींबू का पना—अत्यन्त खट्टा, वातनाशक, अग्निदीपक, रुचिकारी तथा सम्पूर्ण किये हुए आहार का पाचक है ॥

धनिये का पना—यह पित्त के उपद्रवों को शान्त करता है ॥

जौं का सत्तू[1]—शीतल, दीपन, हलका, दस्तावर, कफपित्तनाशक, रूक्ष और लेखन (दुर्बलकरनेवाला) है, इस का पीना बलदायक, वृष्य, बृंहण, भेदक, तृप्तिकर्त्ता, मधुर, रुचिकारी तथा अन्त में बलनाशक है, यह कफ, पित्त, परिश्रम, भूख, प्यास, अण्डवृद्धि और नेत्ररोग को नष्ट करता है तथा दाह से व्याकुल और व्यायाम से श्रान्त (थके हुए) पुरुषों के लिये हितकारी है ॥

चना और जौं का सत्तू—यह कुछ वातकारक है इसलिये इस में बूरा और घी डाल कर इसे खाना चाहिये ॥

शालिसत्तू[2]—अग्निवर्धक, हलका, शीतल, मधुर, ग्राही, रुचिकर्त्ता, पथ्य, बलकारक, शुक्रजनक और तृप्तिकारक है ॥

बहुरी[3]—दुर्जर (कठिनता से पचनेवाला), रूक्ष, तृषा लगानेवाली तथा भारी है, परन्तु प्रमेह कफ और वमन को नष्ट करती है ॥

खील (लाजा)[4]—मधुर, शीतल, हलकी, अग्निदीपक, अल्पमूत्रकर्त्ता, रूक्ष, बलकर्त्ता तथा पित्तनाशक है, यह, कफ, वमन, अतीसार, दाह, रुधिरविकार, प्रमेह, मेद रोग और तृषा को दूर करती है ॥

चिउरा (चिरमुरा)[5]—भारी, वातनाशक तथा कफकर्त्ता हैं, यदि इन को दूध के साथ खाया जावे तो ये बृंहण, वृष्य, बलकारी और दस्त को लानेवाले होते हैं ॥

१–इस को मारवाड़ में सातू कहते हैं, इस के खाने में सात नियमों को ध्यान में रखना चाहिये कि–भोजन कर के इस को न खावे, दाँतों से रोंधकर न खावे, रात्रि में न खावे, बहुत न खावे, एक जल में दूसरे प्रकार का जल मिलाकर न खावे, मिठाई आदि के विना (केवल सत्तू) न खावे, गर्म कर के तथा दूध के साथ न खावे ॥

२–इस को पूर्व में भुजिया का सत्तू कहते हैं तथा यह शालि चावलों का बनाया जाता है ॥

३–तुपरहित भुने हुए जौंओं को बहुरी कहते हैं ॥

४–यह धानों के भूनने से बनती है ॥

५–तुषरहित हरे शालि चावलों को भून कर विना खिले हुओं को गर्म ही ओखली में डालकर कूटने से ये तैयार होते हैं ॥

तिलकुटा[1]—मलकर्त्ता, वृष्य, वातनाशक, कफपित्तकर्त्ता, बृंहण, भारी, स्निग्ध तथा अधिक मूत्र के उतरने का नाशक है ॥

होला[2]—जिस धान (अन्न) का होला हो उस में उसी धान के समान गुण होते हैं, जैसे-चने के होले चने के समान गुणवाले हैं, इसी प्रकार से अन्य धान्यों के होलों का भी गुण जान लेना चाहिये ॥

उम्बी[3]—कफकर्त्ता, वलकारी, हलकी और पित्तकफनाशक है ॥

जाली[4]—जीभ के जकड़ने को दूर करनेवाली तथा कण्ठ को शुद्ध करनेवाली है, यदि इस को धीरे २ पिया जावे तो यह रुचि को करती है तथा अग्नि को प्रदीप्त करती है ॥

दुग्ध कूपिका[5]—वलकारी, वातपित्तनाशक, वृष्य, शीतल, भारी, वीर्यकर्त्ता, बृंहणी, रुचिकारी, देहपोषक तथा नेत्रतेजोवर्धक है ॥

ताहरी[6]—वलकारी, वृष्य, कफकारी, बृंहणी, तृप्तिकर्त्ता, रुचिकारी और पित्तनाशक है ॥

नारियल की खीर[7]—स्निग्ध, शीतल, अतिपुष्टिकर्त्ता, भारी, मधुर और वृष्य है तथा रक्तपित्त और वादी को दूर करती है ॥

मण्डक[8]—बृंहण, वृष्य, वलकारी, अतिरुचिकारक, पाक में मधुर, ग्राही, हलके और त्रिदोष नाशक हैं ॥

१-तिलों में गुड़ या शक्कर डालकर कूट डालने से यह तयार होता है, पूर्व के देशों में यह संकटचतुर्थी (संकट चौथ) को प्रायः प्रतिगृह में वनाया जाता है ॥

२-फलियों के धान्य आधे भुने हुए हों तथा उन का तृण जल गया हो उन को होला कहते हैं ॥

३-गेहूँ की अधपकी वाल को जो तिनकों की अग्निमें भून लेवे, उसे उम्बी कहते हैं ॥

४-कच्चे आमों को पीस कर उन में राई संधानमक और भुनी हींग को मिला कर जल में घोर देवे इस को जाली कहते हैं ॥

५-चावलों का चूर्ण कर उस में गाढा मावा (खोहा) मिला कर कुप्पी से वना लेवे, फिर उन को घी में छोड़ कर पकावें, फिर उन को निकाल कर वीच में छेद कर मिश्री मिला हुआ गाढ़ा दूध भर देवे और शक्करसे मुख वंद करके फिर घी में पकावे, जव पीले रंग की होजावें तव धीमे से निकालकर कपूर मिली चासनी में तल लेवे, इसको दुग्धकूपिका कहते हैं ॥

६-हलदी मिले घी में प्रथम उड़द की वड़ियों को तथा इन्हीं के साथ धुले हुए स्वच्छ चावलों को लेवे, फिर जितने में ये दोनों सिद्ध हो जावें उतना जल चढ़ाकर पकावे तथा नमक अदरख और हींग को अनुमान माफिक डाले तो यह ताहरी सिद्ध होती है ॥

७-नारियल की गिरी को चाकू से वारीक कतर कर अथवा घियाकस पर वारीक रगड़ कर दूध में खांड़ और गाय का घी डाल कर मन्दाग्नि से औंटावे तो नारियल की खीर तैयार हो जाती है ॥

८-सफेद गेहुंओं को जल में धोकर ओखली में डालकर मूसल से कूट डाले, फिर इन को धूप में सुखाकर चक्की से पीसकर मैदा छानने की चालनी में छानकर मैदा कर लेवे, फिर इस मैदा को जल में कोमल उसन कर खूव मर्दन करे, फिर हाथ से लोई को वढा कर पूड़ी के समान वेल लेवे, फिर चूल्हे पर औंधे मुख के खपड़े पर इस को डाल कर मन्दाग्नि से सेके, ये सिके हुए मण्डक कहलाते हैं ॥

कांजी बरे१—रुचिकारी, वातनाशक, कफकारक, शीतल तथा शूलनाशक हैं, एवं दाह और अजीर्ण को दूर करते हैं, परन्तु नेत्ररोगी के लिये अहित हैं ॥

इमली के बरे२—रुचिकारी, अग्निदीपक तथा पूर्व कहे हुए बरों के समान गुणवाले हैं ॥

मूंग बरा—मूंग के बरे (बड़े) छाछ में परिपक्व करके तैयार किये जावें तो वे हलके और शीतल हैं तथा ये संस्कार के प्रभाव से त्रिदोषनाशक और पथ्य हो जाते हैं ॥

अलीक मत्स्य३—खाने में स्वादिष्ठ तथा रुचिकारी हैं, इन को बथुआ के शाक से अथवा रायते से खाना चाहिये ॥

मूंग अदरख की बड़ी४—रुचिकारक, हलकी, बलकारी, दीपन, धातुओं की तृप्ति करनेवाली, पथ्य और त्रिदोषनाशक हैं ॥

पकौरी५—रुचिकारी, विष्टम्भकर्त्ता, बलकारी और पुष्टिकारक हैं ॥

गुझा वा गुझियां६—बलकारक, बृंहण तथा रुचिकारी हैं ॥

१–एक मिट्टी का घड़ा लेकर उस के भीतर कड़ुआ तेल चुपड़ देवे, फिर उस में स्वच्छ जल भर कर उस में राई, जीरा, नमक, हींग, सोंठ और हलदी, इन का चूर्ण डाल कर उड़द के बड़ों को उस जल में भिगो देवे और उस घड़े के मुख को बंद कर किसी एकान्त स्थान में धर देवे, बस ३ दिन के बाद खट्टे होने पर उन्हें काम में लावे ॥

२–पकी इमली को औटा कर जल में ही उसे खूब मींजे, फिर किसी कपड़े में डालकर उसे छान लेवे तथा उसमें नमक, मिर्च, जीरा आदि यथायोग्य मिलाकर मँगोड़ियों को भिगो देवे, ये इमली के बरे कहलाते हैं ॥

३–उड़द की पिट्ठी में बड़े साबत पानों को लपेट कर युक्ति से कड़ाई में सेके, फिर उन को उतार कर चाकू से कतर लेवे पीछे उन को तेलमें तल लेवे इन को अलीक मत्स्य कहते हैं ॥

४–मूंग से बनी हुई बड़ियों को तेल में तलकर हाथ से चूर्ण कर डाले, इसमें भुनी हींग, छोटे २ अदरखके टुकड़े, मिर्च, जीरा, नींबू का रस और अजमायन, इन सब को युक्ति से मिला कर उस पिट्ठी को कड़ाई में अथवा तवे पर फैलादे, फिर इस के गोले बनाकर भीतर मसाला भर के उन गोलों को तेल में सिद्ध करे, जब सिक जावें तब उतार कर कढ़ी में डाल देवे ॥

५–चने की बिनी छनी दाल को चक्की से पीस कर बेसन बना लेवे, उस बेसन को उसन कर तथा नमक आदि डाल कर बड़ियां बनाकर घी या तेल में कड़ाई में पकावे, इन को पकोड़ी कहते हैं, इन को कढ़ी में भी डालते हैं ॥

६–मैदा और घी को मिलाकर पापड़ी बनाकर घी में सेक लेवे, जब सिक जावें तब निकाल कर कूट डाले, फिर बारीक चालनी में डालकर छान लेवे, इस में सफेद बूरा मिला कर एकजीव कर ले तथा इलायचीदाने, लौंग, काली मिर्च नारियल की गिरी और चिरौंजी आदि डाल देवे, फिर मोमन (मोवन) दी हुई मैदा की मोटी और बडी रोटी सी बेल कर उस के भीतर इस कूर को भरे और फिर इस की गुझिया बना कर किनारों को गूंथ देवे, फिर कड़ाई में घी देके इन को सेक लेवे, इन को गूझा या गुझिया कहते हैं, ये होली के त्यौहार पर प्रायः पूर्व में बनाये जाते हैं ॥

कपूरनाली—इस में गुझिया वा गूझा के समान गुण हैं ॥

फेनी—बृंहण, वृष्य, वलकारी, अत्यन्त रुचिकारी, पाक में भी मधुर, ग्राही, और त्रिदोषनाशक हैं तथा हलकी भी हैं ॥

मैदा की पूड़ी—इन में भी फेनी के समान सब गुण हैं ॥

सेव के लड्डू—इन में भी सब गुण फेनी के समान ही हैं ॥

यह संक्षेप से मिश्रवर्ग का कथन किया गया है, बुद्धिमान् तथा श्रीमानों को उचित है कि–निकम्मे तथा हानिकारक पदार्थों का सेवन न कर के इस वर्ग में कहे हुए उपयोगी पदार्थों का सदैव सेवन किया करें जिस से उन का सदैव शारीरिक और मानसिक बल बढ़ता रहे ॥

यह चतुर्थ अध्याय का वैद्यकभाग निघण्टुनामक पांचवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१–मोवन दी हुई मैदा को उसन कर लम्बा सम्पुट वनावे, उस में लौंग भीमसेनी कपूर तथा खांड को मिला कर भर देवे, फिर मुख को वंद करके घी में सेक लेवे, इस को कर्पूरनालिका कहते हैं ॥

२–प्रथम मैदा को सान कर उस में घी डालकर लम्बी २ वत्ती सी वनावे, फिर उन को लपेट कर पुनः लम्बी वत्ती करे, इस के वाद उन को वेलन से वेलकर पापड़ी वना लेवे, फिर इन को चाकू से कतर पुनः वेले, फिर इन पर सट्टक का लेपकरे (चावलों का चून घी और जल, इन सव को मिला कर हथेली से मथ डाले, इस को सट्टक कहते हैं) अर्थात् सट्टक से लोई को लपेट कर वेल लेवे अर्थात् उसे गोल चन्द्रमा के आकार कर लेवे, फिर इनको घी में सेके, घी में सेकने से उन में अनेक तार २ से हो जावेंगे, फिर उनको चासनी में पाग लेवे, अथवा सुगन्धित बूरे में लपेट लेवे इन को फेनी कहते हैं ॥

३–मोवन डाली हुई मैदा को उसन के लोई करे, फिर उन को पतली २ वेलकर घी में छोड़ देवे, जव सिक जावे तव उतार ले ॥

४–मोवन डाली हुई मैदा के सेव तैयार करके घी में सेक लेवे, फिर इन के टुकड़े कर के खांड में पाग कर लड्डू वनालेवे ॥

५–इस मिश्रवर्ग में कुछ आवश्यक थोड़े से ही पदार्थों का वर्णन किया गया है तथा उन्हीं में से कुछ पदार्थों के वनाने की विधि भी नोट में लिखी गई है, शेप पदार्थों का वर्णन तथा उन के वनाने आदि की विधि, एवं उन के गुण दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में तथा पाकशास्त्र में देखना चाहिये, यहां विस्तार के भय से उन सव का वर्णन नहीं किया गया है ॥

छठा प्रकरण—पथ्यापथ्यवर्णन

पथ्यापथ्य का विवरण ॥

१–खानपान के कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो कि नीरोग मनुष्यों के लिये सर्व ऋतुओं और सब देशों में अनुकूल आते हैं।

२–कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो कि कुछ मनुष्यों के अनुकूल और कुछ मनुष्यों के प्रतिकूल आते हैं, एवं एक ऋतु में अनुकूल और दूसरी ऋतु में प्रतिकूल आते हैं, इसी प्रकार एक देश में अनुकूल और दूसरे देश में प्रतिकूल होते हैं।

३–कुछ पदार्थ ऐसे भी हैं जो कि–सब प्रकार की प्रकृतिवालों के लिये सब ऋतुओं में और सब देशों में सदा हानि ही करते हैं।

इन तीनों प्रकार के पदार्थों में से प्रथम संख्या में कहे हुए पदार्थ पथ्य (सब के लिये हितकारी) दूसरी संख्या में कहे हुए पदार्थ पथ्यापथ्य (हितकर्त्ता तथा अहितकर्त्ता अर्थात् किसी के लिये हितकारी और किसी के लिये अहितकारी) और तीसरी संख्या में कहे हुए पदार्थ कुपथ्य अथवा अपथ्य (सब के लिये अहितकारी) कहलाते हैं।

अब इन (तीनों प्रकार के पदार्थों) का क्रम से वर्णन पूर्वाचार्यों के लेख तथा अपने अनुभव के विचारों के अनुसार संक्षेप से करते हैं:—

पथ्यपदार्थ ॥

अनाजों में—चावल, गेहूँ, जौं, मूंग, अरहर (तूर), चना, मोठ, मसूर और मटर, ये सब साधारणतया सब के हितकारी हैं अर्थात् ये सब सदा खाये जावें तो किसी प्रकार की भी हानि नहीं करते हैं, हां इस बात का स्मरण अवश्य रखना चाहिये कि–इन सब अनाजों में जुदे २ गुण हैं इस लिये इन के गुणों का और अपनी प्रकृति का विचार कर इन का यथायोग्य उपयोग करना चाहिये।

चनों को यहां पर यद्यपि पथ्य पदार्थों में गिनाया है तथापि इन के अधिक खाने से पेट में वायु भर कर पेट फूल जाता है इस लिये इन को कम खाना चाहिये, चावल एक वर्ष के पुराने अच्छे होते हैं, अरहर (तूर) की दाल को घी डाल कर खाने से बिलकुल वायु को नहीं करती है, मूंग यद्यपि वायु को करती है परन्तु उस की दाल का पानी त्रिदोषहर और भयंकर रोग में भी पथ्य है, इस के सिवाय भिन्न २ देशवाले लोगों को प्रारम्भ से ही जिन पदार्थों का अभ्यास हो जाता है उन के लिये वे ही पदार्थ पथ्य हो जाते हैं।

१–कोई पदार्थ विशेष किसी के लिये कुछ हानिकारक हो उस की गणना इस में नहीं है ॥

शाकों में—चँदलिये के पत्ते, परवल, पालक, वथुआ, पोथी की भाजी, सूरणकन्द, मेथी के पत्ते, तोरई, भिण्डी और कद्दू आदि पथ्य हैं।

दूसरे आवश्यक पदार्थों में—गाय का दूध, गाय का घी, गाय की मीठी छाछ, मिश्री, अदरख, आँवले, सेंधानमक, मीठा अनार, मुनक्का, मीठी दाख और बादाम, ये भी सब पथ्य पदार्थ हैं।

दूसरी रीति से पदार्थों की उत्तमता इस प्रकार समझनी चाहिये कि—चावलों में लाल, साठी तथा कमोद पथ्य हैं, अनाजों में गेहूँ और जौं, दालों में मूंग और अरहर की दाल, मीठे में मिश्री, पत्तों के शाक में चँदलिया, फलों के शाक में परवल, कन्दशाक में सूरण, नमकों में सेंधा नमक, खटाई में आँवले, दूधों में गाय का दूध, पानी में बरसात का अधर लिया हुआ पानी, फलों में विलायती अनार तथा मीठी दाख, मसाले में अदरख, धनिया और जीरा पथ्य हैं, अर्थात् ये सब पदार्थ साधारण प्रकृतिवालों के लिये सब ऋतुओं में और सब देशों में सदा पथ्य हैं किन्तु किसी २ ही रोग में इन में की कोई २ ही वस्तु कुपथ्य होती है, जैसे—नये ज्वर में बारह दिन तक घी, और इक्कीस दिन तक दूध कुपथ्य होता हैं इत्यादि, ये सब बातें पूर्वाचार्यों के बनाये हुए ग्रन्थों से विदित हो सकती हैं किन्तु जो लोग अज्ञानता के कारण उन (पूर्वाचार्यों) के कथन पर ध्यान न देकर निषिद्ध वस्तुओं का सेवन कर बैठते हैं उन को महाकष्ट होता है तथा प्राणान्त भी हो जाता है, देखो! केवल वातज्वर के पूर्वरूप में घृतपान करना लिखा है परन्तु पूर्णतया निदान कर सकने वाला वैद्य वर्त्तमान समय में पुण्यवानों को ही मिलता है, साधारण वैद्य रोग का ठीक निदान नहीं कर सकते हैं, प्रायः देखा गया है कि—वातज्वर का पूर्वरूप समझ कर नवीन ज्वर वालों को घृत पिलाया गया है और वे बेचारे इस व्यवहार से पानीझरा और मोतीझरा जैसे महाभयंकर रोगों में फँस चुके हैं, क्योंकि उक्त रोग ऐसे ही व्यवहार से होते हैं, इसलिये वैद्यों और प्रजा के सामान्य लोगों को चाहिये कि—कम से कम मुख्य २ रोगों में तो विहित और निषिद्ध पदार्थों का सदा ध्यान रक्खें।

साधारण लोगों के जानने के लिये उन में से कुछ मुख्य २ बातें यहां सूचित करते हैं:—

नये ज्वर में चिकने पदार्थ का खाना, आते हुए पसीने में और ज्वर में ठंढी तथा मलीन हवा का लेना, मैला पानी पीना तथा मलीन खुराक का खाना, मलज्वर के सिवाय नये ज्वर में बारह दिन से पहिले जुलाब सम्बन्धी हरड़ आदि दवा वा कुटकी चिरायता आदि कड़ुई कषैली दवा का देना निषिद्ध है, यदि उक्त समय में उक्त निषिद्ध

१-इस को पूर्व में अलता कहते हैं, यह एक प्रकार का रंग होता है॥

पदार्थों का सेवन किया जावे तो सन्निपात तथा मरणतक हानि पहुँचती है, रोग समय में निषिद्ध पदार्थों का सेवन कर के भी बच जाना तो अग्नि विष और शस्त्र से बच जाने के तुल्य दैवाधीन ही समझना चाहिये ।

वैद्यक शास्त्र में निषेध होने पर भी नये ज्वर में जो पश्चिमीय विद्वान् (डाक्टर लोग) दूध पिलाते हैं इस बात का निश्चय अद्यावधि (आजतक) ठीक तौर से नहीं हुआ है, हमारी समझ में वह (दूध का पिलाना) औषध विशेष का (जिस का वे लोग प्रयोग करते हैं) अनुपान समझना चाहिये, परन्तु यह एक विचारणीय विषय है ।

इसी प्रकार से कफ के रोगी को तथा प्रसूता स्त्री को मिश्री आदि पदार्थ हानि पहुँचाते हैं ॥

पथ्यापथ्य पदार्थ ॥

बाजरी, उड़द, चँवला, कुलथी, गुड़, खांड़, मक्खन, दही, छाछ, भैंस का दूध, घी, आलू, तोरई, काँदा, करेला, कँकोड़ा, गुवार फली, दूधी, लवा, कोला, मेथी, मोगरी, मूला, गाजर, काचर, ककड़ी, गोभी, घिया, तोरई, केला, अनन्नास, आम, जामुन, करौंदे, अञ्जीर, नारंगी, नींबू, अमरूद, सकरकन्द, पीलू, गूँदा और तरबूज आदि बहुत से पदार्थों का लोग प्रायः उपयोग करते हैं परन्तु प्रकृति और ऋतु आदि का विचार कर इन का सेवन करना चाहिये, क्योंकि ये पदार्थ किसी प्रकृति वाले के लिये अनुकूल तथा किसी प्रकृतिवाले के लिये प्रतिकूल एवं किसी ऋतु में अनुकूल और किसी ऋतु में प्रतिकूल होते हैं, इसलिये प्रकृति आदि का विचार किये विना इन का उपयोग करने से हानि होती है, जैसे दही शरद् ऋतु में शत्रु का काम करता है, वर्षा और हेमन्त ऋतु में हितकर है, गर्मी में अर्थात् जेठ वैशाख के महीने में मिश्री के साथ खाने से ही फायदा करता है, एवं ज्वर वाले को कुपथ्य है और अतीसार वाले को पथ्य है, इस प्रकार प्रत्येक वस्तु के स्वभाव को तथा ऋतु के अनुसार पथ्यापथ्य को समझ कर और समझदार पूर्ण वैद्य की या इसी ग्रन्थ की सम्मति लेकर प्रत्येक वस्तु का सेवन करने से कभी हानि नहीं हो सकती है ।

पथ्यापथ्य के विषय में इस चौपाई को सदा ध्यान में रखना चाहिये—

चैते गुड़ वैशाखे तेल । जेठे पन्थ अषाढ़े बेल ॥
सावन दूध न भादौं मही । क्वार करेला न कातिक दही ॥
अगहन जीरो पूसे धना । माहे मिश्री फागुन चना ॥
जो यह बारह देय बचाय । ता घर वैद्य कबहुँ न जायँ ॥ १ ॥

१–इस का अर्थ स्पष्ट ही है इस लिये नहीं लिखा है ॥

कुपथ्य पदार्थ ॥

दाह करनेवाले, जलानेवाले, गलानेवाले, सड़ाने के स्वभाववाले और ज़हर का गुण करनेवाले पदार्थ को कुपथ्य कहते हैं, यद्यपि इन पांचों प्रकार के पदार्थों में से कोई पदार्थ बुद्धिपूर्वक उपयोग में लाने से सम्भव है कि कुछ फायदा भी करे तथापि ये सब पदार्थ सामान्यतया शरीर को हानि पहुँचानेवाले ही हैं, क्योंकि ऐसी चीज़ें जब कभी किसी एक रोग को मिटाती भी हैं तो दूसरे रोग को पैदा कर देती हैं, जैसे देखो। खार अर्थात् नमक के अधिक खाने से वह पेट की वायु गोला और गांठ को गला देता है परन्तु शरीर के धातु को विगाड़ कर पौरुष में बाधा पहुँचाता है।

इन पांचों प्रकार के पदार्थों में से दाहकारक पदार्थ पित्त को बिगाड़ कर अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, इमली आदि अति खट्टे पदार्थ शरीर को गला कर सन्धियों को ढीला कर पौरुष को कम कर देते हैं।

इस प्रकार के पदार्थों से यद्यपि एक दम हानि नहीं देखी जाती है परन्तु बहुत दिनों- तक निरन्तर सेवन करने से ये पदार्थ प्रकृतिको इस प्रकार विकृत कर देते हैं कि यह शरीर अनेक रोगों का गृह बन जाता है इस लिये पहले पथ्य पदार्थों में जो २ पदार्थ लिख चुके हैं उन्हीं का सदा सेवन करना चाहिये तथा जो पदार्थ पथ्यापथ्य में लिखे हैं उन का ऋतु और प्रकृति के अनुसार कम वर्त्ताव रखना चाहिये और जो कुपथ्य पदार्थ कहे हैं उन का उपयोग तो बहुत ही आवश्यकता होने पर रोगविशेष में औषध के समान करना चाहिये अर्थात् प्रतिदिन की खुराक में उन (कुपथ्य) पदार्थों का कभी उपयोग नहीं करना चाहिये, इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो पथ्यापथ्य पदार्थ हैं वे भी उन पुरुषों को कभी हानि नहीं पहुँचाते हैं जिन का प्रतिदिन का अभ्यास जन्म से ही उन पदार्थों के खाने का पड़ जाता है, जैसे—बाजरी, गुड़, उड़द, छाछ और दहीं आदि पदार्थ, क्यों—कि ये चीजें ऋतु और प्रकृति के अनुसार जैसे पथ्य हैं वैसे कुपथ्य भी हैं परन्तु मारवाड़ देश में इन चारों चीज़ों का उपयोग प्रायः वहां के लोग सदा करते हैं और उन को कुछ नुकसान नहीं होता है, इसी प्रकार पञ्जाबवाले उड़द का उपयोग सदा करते हैं परन्तु उन को कुछ नुकसान नहीं करता है, इस का कारण सिर्फ अभ्यास ही है, इसी प्रकार हानिकारक पदार्थ भी अल्प परिमाण में खाये जाने से कम हानि करते हैं तथा नहीं भी करते हैं, दूध यद्यपि पथ्य है तो भी किसी २ के अनुकूल नहीं आता है अर्थात् दस्त लग जाते हैं इस से यही सिद्ध होता है कि—खान पान के पदार्थ अपनी प्रकृति, शरीर का बन्धान, नित्य का अभ्यास, ऋतु और रोग की परीक्षा

आदि सब बातों का विचार कर उपयोग में आने से हानि नहीं करते हैं, क्योंकि देखो ! एक ही पदार्थ में प्रकृति और ऋतु के भेद से पथ्य और कुपथ्य दोनों गुण रहते हैं, इस के सिवाय यह देखा जाता है कि–एक ही पदार्थ रसायनिक संयोग के द्वारा अर्थात् दूसरी चीज़ों के मिलने से (जिस को तन्त्र कहते हैं उस से) भिन्न गुणवाला हो जाता है अर्थात् उक्त संयोग से पदार्थों का धर्म बदल कर पथ्य और कुपथ्य के सिवाय एक तीसरा ही गुण प्रकट हो जाता है इसलिये जिन लोगों को पदार्थों के हानिकारक होने वा न होने का ठीक ज्ञान नहीं है उन के लिये सीधा और अच्छा मार्ग यही है कि वैद्यक विद्या की आज्ञा के अनुसार चल कर पदार्थों को उपयोग में लावें, देखो ! शहद अच्छा पदार्थ है अर्थात् त्रिदोष को हरता है परन्तु वही गर्म पानी के साथ या किसी अत्युष्ण वस्तु के साथ या गर्म तासीरवाली वस्तु के साथ अथवा सन्निपात ज्वर में देने से हानि करता है, एवं समान परिमाण में घृत के साथ मिलने से विष के समान असर करता है, दूध पथ्य पदार्थ है तो भी मूली, मूंग, क्षार, नमक तथा एरण्ड के सिवाय बाकी तेलों के साथ खाया जाने से अवश्य नुक्सान करता है।

वर्त्तनों के योग से भी वस्तुओं के गुणों में अन्तर हो जाता है, जैसे–तांबे और पीतल के वर्त्तन में खटाई तथा खीर का गुण बदल जाता है, कांसे के वर्त्तन में घी का गुण बदल जाता है अर्थात् थोड़ी देर तक ही कांसे के वर्त्तन में रहने से घी नुकसान करता है, यदि सात दिन तक घी कांसे के वर्त्तन में पड़ा रहे और वह खाया जावे तो वह प्राणी को प्राणान्ततक कष्ट पहुँचाता है।

दूध के साथ खट्टे फल, गुड़, दही और खिचड़ी आदि के खाने से भी नुक्सान होता है।

प्रिय पाठक गण ! थोड़ा सा विचार करो ! सर्वज्ञ भगवान् ने संयोगी विषों का वर्णन वैद्यक शास्त्र में किया है उस (शास्त्र) के पढ़ने और सुनने के विना मनुष्यों को इन सब बातों का ज्ञान कैसे हो सकता है ? यही वर्णन सूत्र प्रकीर्णों में भी किया गया है तथा वहां कुपथ्य पदार्थों को ही अभक्ष्य ठहराया है।

ऊपर कहे हुए कुपथ्यों का फल शीघ्र नहीं मिलता है किन्तु जब अपने २ कारणों को पाकर बहुत से दोष इकट्ठे हो जाते हैं तब वह कुपथ्य दूसरे ही रूप में दिखाई देता है अर्थात् पूर्वकृत कुपथ्य से उत्पन्न हुए फल के कारण को उस समय लोग नहीं समझ सकते हैं, इस लिये कुपथ्य तथा संयोग विरुद्ध पदार्थों से सदा बचना चाहिये, क्योंकि इन के सेवन से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं॥

सामान्य पथ्यापथ्य आहार ॥

पथ्यआहार ॥

पुराने चावल, जौं, गेहूँ, मूंग, अरहर (तूर) चना और देशी बाजरी, (गर्म बाजरी थोड़ी), घी, दूध, मक्खन, छाछ, शहद, मिश्री, बूरा, बतासा, सरसों का तेल, गोमूत्र, आकाश का पानी, कुए का पानी और हँसोदक जल, परवल, सूरण, चँदलिया, बथुआ, मेथी, मामालूणी, मूली, मोगरी, कद्दू, घियातोरई, तोरई, करेला, कँकेड़ा, भिण्डी, गोभी, (वालोल थोड़ी) और कच्चे केले का शाक ॥

दाख, अनार, अदरख, आँवला, नींबू, बिजौरा, कवीठ, हलदी, धनिये के पत्ते, पोदीना, हींग, सोंठ, काली मिर्चे, पीपर, धनिया, जीरा और सेंधा नमक ॥

हरड़, लायची, केशर, जायफल, तज, सोंफ, नागरवेल के पान, कत्थे की गोली, धनियां, गेहूँ के आटे की रोटी, पूड़ी, भात, मीठाभात, बूंदिया, मोतीचूर के लड्डू, जलेबी, चूरमा, दिलखुशाल, पूरणपूड़ी, रवड़ी, दूधपाक (खीर), श्रीखण्ड (शिखरन), मैदेका सीरा, दाल के लड्डू, घेवर, सक्करपारे, बादाम की कतली, घी में तले हुए मौठ के मुजिये (थोड़े), दूध और घी डाले हुए सेव, रसगुल्ला, गुलावजामुन, कलाकन्द,

कुपथ्यआहार ॥

उड़द, चँवला, वाल, मौठ, मटर, ज्वार, मक्का, ककड़ी, काचर, खरबूजा, गुवारफली, कोला, मूली के पत्ते, अमरूद, सीताफल, कटहल, करोंदा, गूँदा, गरमर, अञ्जीर, जामुन, वेर, इमली और तरबूज ॥

भैंस का दूध, दही, तेल, नयागुड़, वृक्षों के झुण्ड का पानी, एकदम अधिक पानी का पीना, निराहार ठंढा पानी पीना और मैथुन कर के पानी पीना ॥

वासा अन्न, छाछ और दही के साथ खिचड़ी और खीचड़ा आदि दाल मिले हुए पदार्थों का खाना, सूर्य के प्रकाश के हुए विनाखाना, अचार, समयविरुद्ध भोजन करना और सब प्रकार के विषों का सेवन ॥

ठंढी खीर चासनी और खोवे (मावे) के पदार्थों के सिवाय दूध के सब बासे पदार्थ, गुजरात के चोंटिया लड्डू, केले के लड्डू, रायण के लड्डू, गुलपपड़ी, तीन मिलावटों की तथा पांच मिलावटों की दालें, कड़े कच्चे और गरिष्ठ पदार्थ, मैदे की पूड़ी, सत्तू, पेड़ा, बरफी, चावलों का चिड़वा, रात्रि का भोजन, दस्त को वन्द करनेवाली चीज़, अत्युष्ण अन्नपान, वमन, पिचकारी दे दे कर दस्त कराना[1], चबेने का चावना, पांच घण्टेसे पूर्व ही भोजनपर भोजन करना, बहुत भूखे रहना, भूँख के समय में जलका

१–यद्यपि इस बात को आधुनिक डाक्टर लोग पसन्द करते हैं तथापि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने सलाई से पेशाव तथा वस्ती (पिचकारी) से दस्त कराना पसन्द नहीं किया है और इसका अभ्यास भी अच्छा नहीं है, हां कोई खास करणा हो तो दूसरी बात है ॥

हेसमी (को लेका पेठा), गुलकन्द, शर्बत, मुरब्बा, चिरोंजी, पिस्ता, दाखों का मीठा तथा चरपरा राइता, पापड़, मूंग और मोठ की वड़ी और सब प्रकार की दाल ॥

प्रकृति ऋतु और देश आदि को विचार कर किया हुआ भोजन तथा रुचि के अनुसार किया हुआ भोजन प्रायः पथ्य (हितकारी) होता है इसलिये प्रकृति आदि का विचार रखना चाहिये इत्यादि ॥

पीना, प्यास के समय में भोजन करना, मात्रा से अधिक भोजन करना, विषमासन से बैठ कर भोजन करना, निद्रा में उठकर तत्काल भोजन करना या जल का पीना, व्यायाम के पीछे शीघ्रही जलका पीना, बाहर से आकर शीघ्रही जल का पीना, भोजन के अन्त में अधिक जल का पीना, भोजन तथा प्यास की इच्छा का रोकना, सूर्योदय से ३ घण्टे पूर्व ही भोजन करना तथा अरुचि के पदार्थों का खाना आदि ॥

पथ्यविहार ॥

१–धोये हुए साफ वस्त्रों का पहरना और शक्ति के अनुसार अतर गुलाब जल और केवड़ा जल आदि से वस्त्रों को सुवासित रखना, उष्ण ऋतु में पनड़ी और खस आदि के अतर का तथा शीतकाल में हिना और मसाले आदि का उपयोग करना चाहिये।

२–बिछौना और पलंग आदि साधनों को साफ और सुघड़ रखना चाहिये।

३–दक्षिण[1] की हवा का सेवन करना चाहिये।

४–हाथ, पैर, कान, नाक, मुख और गुप्तस्थान आदि शरीर के अवयवों में मैल का जमाव नहीं होने देना चाहिये।

५–गर्मी की ऋतु में महीन कपड़े पहरना तथा शीतकाल में गर्म कपड़े[2] पहरना चाहिये।

६–पांच २ दिन के बाद क्षौर कर्म (हजामत) कराना[3] चाहिये।

७–प्रतिदिन शक्ति के अनुसार दण्ड बैठक और घोड़े की सँवारी[4] आदि कर कुछ न कुछ कसरत करना तथा साफ हवा को खाना चाहिये।

८–हल के वज़न के हार कुण्डल और अंगूठी आदि गहनों को पहरना[5] चाहिये।

९–मलमूत्र के वेग को नहीं रोकना चाहिये तथा बलपूर्वक उन के वेग को उत्पन्न नहीं करना चाहिये।

१–दक्षिण की हवा आरोग्यता को स्थिर रखती है इसलिये इसीका सेवन करना चाहिये ॥

२–वे गर्म कपड़े वज़न में ज्यों कम हों त्यों अच्छे होते हैं ॥

३–हजामत कराने से शरीर और दिमाग में नये खून का सञ्चार होता है तथा दरिद्र उतर कर चित्त प्रसन्न होता है ॥

४–यदि घोड़े की सवारी का आभ्यास हो तो उसे करना चाहिये ॥

५–देखो! आनन्द श्रावक ने कुण्डल और अंगूठी, इन दो ही भूषणों का पहरना रक्खाथा ॥

१०–मूत्र तथा दस्तआदि का वेग होनेपर स्त्रीगमन नहीं करना चाहिये ।
११–स्त्री संग का बहुत नियम रखना चाहिये ।
१२–चित्त की वृत्ति में सतोगुण और आनंद के रखने के लिये सतोगुणवाला भोजन करना चाहिये ।
१३–दो घड़ी प्रभात में तथा दो घड़ी सन्ध्या समय में सब जीवोंपर समता परिणाम रखना चाहिये ।
१४–यथायोग्य समय निकालकर घड़ी दो घड़ी सद्गुणियों की मण्डली में बैठकर निर्दोष बातों को तथा व्याख्यानों को सुनना चाहिये ।
१५–यह संसार अनित्य है अर्थात् इस के समस्त धनादि पदार्थ क्षणभङ्गुर हैं इत्यादि वैराग्य का विचार करना चाहिये ।
१६–जिस वर्त्ताव से रोग हो, प्रतिष्ठा और धन का नाश हो तथा आगामी में धन की आमद रुक जावे, ऐसे वर्त्तावको कुपथ्य (हानिकारक) समझ कर छोड़ देना चाहिये, क्योंकि ऐसे ही निषिद्ध वर्त्ताव के करने से यह भव और परभव भी बिगड़ता है ।
१७–परनिन्दा तथा देवगुरु द्वेष से सदैव बचना चाहिये ।
१८–उस व्यवहार को कदापि नहीं करना चाहिये जो दूसरे के लिये हानि करे ।
१९–देव, गुरु, विद्वान्, माता, पिता तथा धर्म में सदैव भक्ति रखनी चाहिये ।
२०–यथाशक्य क्रोध, मान, माया और लोभआदि दुर्गुणोंसे बचना चाहिये ।

यह पथ्यापथ्य का विचार विवेक विलास आदि ग्रन्थों से उद्धृत कर संक्षेप मात्र में दिखलाया गया है, जो मनुष्य इसपर ध्यान देकर इसी के अनुसार वर्त्ताव करेगा वह इस भव और परभव में सदा सुखी रहेगा ॥

दुर्बल मनुष्य के खाने योग्य खुराक ॥

बहुत से मनुष्य देखने में यद्यपि पतले और इकहरी हड्डी के दीखते हैं परन्तु शक्तिमान् होते हैं तथा बहुत से मनुष्य पुष्ट और स्थूल होकर भी शक्तिहीन होते हैं, शरीर की प्रशंसा प्रायः सामान्य (न अति दुर्बल और न अति स्थूल) की की गई है, क्योंकि शरीर का जो अत्यन्त स्थूलपन तथा दुर्बलपन है उसे आरोग्यता नहीं समझनी चाहिये, क्योंकि बहुत दुर्बलपन और बहुत स्थूलपन प्रायः नाताकती का चिन्ह है और इन दोनों के होने से शरीर बेडौल भी दीखता है, इस लिये सब मनुष्यों को उचित है कि–योग्य आहार विहार और यथोचित उपायों के द्वारा शरीर को मध्यम दशा में रक्खें, क्योंकि योग्य आहार विहार और यथोचित उपायों के द्वारा दुर्बल मनुष्य भी मोटे ताज़े और

पुष्ट हो सकते हैं तथा चरवी के बढ़ जाने से स्थूल हुए पुरुष भी पतले हो सकते हैं, अब इस विषय में संक्षेप से कुछ वर्णन किया जाता है:—

दुर्बल मनुष्यों की पुष्टि के वास्ते उपाय—दुर्बल मनुष्य को अपनी पुष्टि के वास्ते ये उपाय करने चाहियें कि—मिश्री मिला कर थोड़ा २ दूध दिन में कई वार पीना चाहिये, प्रातःकाल तथा सायंकाल में शक्ति के अनुसार दण्ड बैठक और मुद्गर (मोगरी) फेरना आदि कसरत कर पाचन शक्ति के अनुकूल परिमित दूध पीना चाहिये, यदि कसरत का निर्वाह न हो सके तो प्रातःकाल तथा सन्ध्या को ठंढे समय में कुछ न कुछ परिश्रम का काम करना चाहिये अथवा स्वच्छ हवा में दो चार मील तक घूमना चाहिये कि जिससे कसरत हो कर दूध हज़म हो जावे तथा हमारे विवेकलब्धि शीलसौभाग्य कार्यालय का शुद्ध वनस्पतियों का बना हुआ पुष्टिकारक चूर्ण[1] दो महीनेतक सेवन करना चाहिये क्योंकि इस के सेवन करने से शरीर में पुष्टि और बहुत शक्ति उत्पन्न होती है, इस के अतिरिक्त—गेहूँ, जौं, मका, चावल और दाल आदि पदार्थों में अधिक पुष्टिकारक तत्व मौजूद है इसलिये ये सब पदार्थ दुर्बल मनुष्य के लिये उपयोगी हैं, एवं आलू, केला, आम, सकरकन्द और पनीर, इन सब पुष्टिकारक वस्तुओं का भी सेवन समयानुसार थोड़ा २ करना योग्य है।

ऊपर लिखे हुए पुष्टिकारक पदार्थ दुर्बल मनुष्य को यद्यपि बलवान् कर देते हैं परन्तु इन के सेवन के समय इन के पचाने के लिये परिश्रम अवश्य करना चाहिये क्योंकि पुष्टिकारक पदार्थों के सेवन के समय उन के पचाने के लिये यदि परिश्रम अथवा व्यायाम न किया जावे तो चरवी बढ़ कर शरीर स्थूल पड़ जाता है और अशक्त हो जाता है।

जब ऊपर लिखे पदार्थों के सेवन से शरीर दृढ़ और पुष्ट हो जावे तब खुराक को धीरे २ बदल देना चाहिये अर्थात् शरीर की सिर्फ आरोग्यता बनी रहे ऐसी खुराक खाते रहना चाहिये, इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इतनी पुष्टिकारक खुराक भी नहीं खानी चाहिये कि जिस से पाचनशक्ति मन्द पड़ कर रोग उत्पन्न हो जावे और न इतना परिश्रम ही करना चाहिये कि जिस से शरीर शिथिल पड़ कर रोगों का आश्रय बन जावे।

यदि शरीर में कोई रोग हो तो उस समय में पुष्टिकारक खुराक नहीं खानी चाहिये किन्तु औषध आदि के द्वारा जब रोग मिट जावे तथा मन्दाग्नि भी न रहे तब पुष्टिकारक खुराक खानी चाहिये ॥

१—इस के सेवन की विधि का पत्र इस के साथ में ही भेजा जाता है तथा दो महीनों तक सेवन करने योग्य इस (पुष्टिकारक) चूर्ण का मूल्य केवल ५) रुपये मात्र है ॥

स्थूल मनुष्य के खाने योग्य खुराक ॥

सब स्थूल मनुष्य प्रायः शक्तिमान् नहीं होते हैं किन्तु अधिक रुधिर वाला पुष्ट मनुष्य दृढ़ शरीरवाला तथा बलवान् होता है और केवल मेद चरबी तथा मेद वायु से जिन का शरीर फूल जाता है वे मनुष्य अशक्त होते हैं, जो मनुष्य घी दूध मक्खन मलाई मीठा और मिश्री आदि बहुत पुष्टिकारक खुराक सदा खाते हैं और परिश्रम बिलकुल नहीं करते हैं अर्थात् गद्दी तकियों के दास बन कर एक जगह बैठे रहते हैं वे लोग ऐसे वृथा (शक्तिहीन) पुष्ट होजाते हैं।

घी और मक्खन आदि पुष्टिकारक पदार्थ जो शरीर की गर्मी कायम रखने और पुष्टि के लिये खाये जाते हैं वे परिमित ही खाने चाहियें क्योंकि अधिक खाने से वे पदार्थ पचते नहीं हैं और शरीर में चरबी इकट्ठी हो जाती है, शरीर बेडौल हो जाता है, स्नायु आदि चरबी से रुक कर शरीर अशक्त हो जाता है और चर बी के पड़त पर पड़त चढ़ जाता है।

स्थूल होकर जो शक्तिमान् हो उस की परीक्षा यह है कि-ऐसे पुरुष का शरीर (रक्त के विशेष होने के कारण) लाल, दृढ़, कठिन, गँठा हुआ और स्थितिस्थापक स्नायुओं के टुकड़ों से युक्त होता है तथा उस पर चरबी का बहुत हलका अस्तर लगा रहता है, किन्तु जो पुरुष स्थूल होकर भी शक्ति हीन होते हैं उन में ये लक्षण नहीं दीखते हैं, उन में थोथी चरबी का भाग अधिक बढ़ जाता है जिस से उन को परिश्रम करने में बड़ी कठिनता पड़ती है, वह बढ़ी हुई चरबी तब काम देती है जब कि वह खुराक की तंगी अथवा उपवास के द्वारा न्यून हो जाती है, सत्य तो यह है कि शरीर को खूब सूरत और सुडौल रखना चरबी ही का काम है, बढ़ी हुई चरबी से बहुत स्थूलता और श्वास का रोग हो जाता है तथा आखिर कार इस से प्राणान्त तक भी हो जाता है।

मीठा और आटे के सत्व वाला पदार्थ भी परिश्रम न करने वाले मनुष्य के शरीर में चरबी के भाग को बढ़ाता है, इस में बड़ी हानि की बात यह है कि अधिक मेद और चरबी वाले पुरुष को रोग के समय दवा भी बहुत ही कम फायदा करती है और करती भी है तो भाग्ययोग से ही करती है।

साधारण खुराक के उपयोग और शक्त्यनुसार कसरत के अभ्यास से शरीर की स्थूलता मिट जाती है अर्थात् चरबी का वज़न कम हो जाता है।

अति स्थूल शरीर वाले मनुष्य को खाने आदि के विषय में जिन २ बातों का खयाल रखना चाहिये उन का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

स्थूल मनुष्यों के पतले होने के उपाय—स्थूल मनुष्यों को घी मक्खन और खांड़ आदि चरवी वाले पदार्थ तथा आटे के सत्व वाले पदार्थ बहुत ही थोड़े खाने चाहियें, पुष्टिवाले पदार्थ अधिक खाने चाहियें, गेहूँ सलगम और नारंगी आदि फल खाने चाहियें, घी, मक्खन, मलाई, तेल, खांड़, चरवी वाले अन्न, सावूदाना, चावल, मक्का, पूरणपोली, कोकम, आम, दाल, केला, बादाम, पिस्ता, नेजा और चिरौंजी आदि मेवे, आलू, सूरण, सकरकन्द और अरवी आदि पदार्थ नहीं खाने चाहियें, अथवा बहुत ही कम खाने चाहियें दूध थोड़ा खाना चाहिये, यदि चाय और काफी के पीने का अभ्यास हो तो उस में दूध बहुत ही थोड़ा सा डालना चाहिये अथवा नींबू से सुवासित कर के पीना चाहिये ॥

मगज़ के मज्जा तन्तुओं को दृढ़ करने वाली खुराक ॥

जिस खुराक में आल्व्युमीन नामक तत्व अधिक होता है वह मगज़ के मज्जा तन्तुओं का पोषण करती है, पौष्टिक तत्ववाली खुराक में आल्व्युमीन का कुछ २ अंश होता है परन्तु सतावर आदि कईएक वनस्पतियों में इस का अंश बहुत ही होता है इस लिये सतावर आदि वनस्पतियों का पाक तथा मुरब्बा बना कर खाना चाहिये, मगज़ तथा वीर्य की दृढ़ता के लिये वैद्यकशास्त्र में बहुत सी उत्तम वनस्पतियों का खाना वतलाया है उन का उचित विधि से उपयोग करने पर वे पूरा गुण करती हैं, उन में से कुछ वनस्पतियां ये हैं—भूकोला, शतावर, असगँध, गोखुरू, कोंच के बीज, आँवला और शंखाहुली, इन के सिवाय और भी बहुत सी वनस्पतियां हैं जो कि अत्यन्त गुणवाली हैं, जिन का मुरब्बा अथवा लड्डू बना कर खाने से अथवा अवलेह बनाकर चाटने से मगज़ के मज्जातन्तु दृढ़ और पुष्ट होते हैं, बल बुद्धि और वीर्य बढ़ता है तथा मनसम्बंधी व्यग्रता और अस्थिरता दूर होती है, इन के सिवाय हमारे विवेकलब्धि शीलसौभाग्य कार्यालय का बना हुआ पुष्टिकारक चूर्ण दूध के साथ लेने से गर्मी आदि मगज़ के विकारों को दूर कर ताक़त देता है तथा वीर्य के बढ़ाने में यह सर्वोत्तम वस्तु है ।

मगज़ की निर्बलता के समय—गेहूँ, चना, मटर, प्याज, करेला, अरवी, सफ़रजन्द, अनार और आम आदि पदार्थ पथ्य हैं ॥

स्मरणशक्ति तथा बुद्धि को बढ़ाने वाली खुराक ॥

स्मरणशक्ति तथा बुद्धि मगज़ से सम्बंध रखती है और उस की शक्ति का मुख्य आधार मन का प्रफुल्लित होना तथा नीरोगता ही है, इसलिये सब से प्रथम तो स्मरणशक्ति तथा बुद्धि के बढ़ाने का यही उपाय है कि—सदा मन को प्रसन्न रखना चाहिये तथा यथायोग्य आहार और विहार के द्वारा नीरोगता को कायम रखना चाहिये, इन

दोनों के होते हुए स्मरणशक्ति तथा बुद्धि के बढ़ाने के लिये दूसरा उपाय करने की कोई आवश्यकता नहीं है, हां दूसरा उपाय तब अवश्य करना चाहिये जब कि रोग आदि किसी कारण से इन में त्रुटि पड़ गई हो तथा वह उपाय भी तभी होना चाहिये कि जब शरीर से रोग बिलकुल निवृत्त हो गया हो, इस के लिये कुछ सतावर आदि बुद्धिवर्धक पदार्थों का वर्णन प्रथम कर चुके हैं तथा कुछ यहां भी करतेहैं:—

दूध, घी, मक्खन, मलाई और आँवले के पाक वा मुरब्बे को दवा की रीति से थोड़ा २ खाना चाहिये, अथवा बादाम, पिस्ता, जायफल और चोपचीनी, इन चीजों में से किसी चीज़ का पाक बना कर घी बूरे के साथ थोड़ा २ खाना चाहिये, अथवा बादाम की कतली लड्डू और शीरा आदि बनाकर भी पाचनशक्ति के अनुसार प्रातः वा सन्ध्या को खाना चाहिये, इन का सेवन करने से बुद्धि तथा स्मरणशक्ति अत्यन्त बढ़ती है, अथवा हमारा बनाया हुआ पुष्टिकारक चूर्ण बुद्धिशक्ति को बहुत ही बढ़ाता है उस का सेवन करना चाहिये, अथवा ब्राह्मी १ मासा, पीपल १ मासा, मिश्री ४ मासे और आँवला १ मासा, इन को पीस तथा छान कर दोनों समय खाना चाहिये, ३१ वा ४१ दिन तक इस का सेवन करना चाहिये तथा पथ्य के लिये दूध भात और मिश्री का भोजन करना चाहिये, इन के सिवाय दो देशी साधारण दवायें वैद्यक में कही हैं जो कि मगज़ की शक्ति, स्मरणशक्ति तथा बुद्धि के बढ़ाने के लिये अत्यन्त उपयोगी प्रतीत होती हैं, वे ये हैं:—

१–एक तोला ब्राह्मी का दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिये या घी के साथ चाटना चाहिये अथवा ब्राह्मी का घी बना कर पान में या खुराक के साथ खाना चाहिये।

२–कोरी मालकांगनी को वा उस के तेल को ऊपर लिखे अनुसार लेना चाहिये, मालकांगनी के तेल के निकालने की यह रीति है कि–२॥ रुपये भर मालकांगनी को लेकर उस को ऐसा कूटना चाहिये कि एक एक बीज के दो दो वा तीन तीन फाड़ हो जावें, पीछे एक या दो मिनटतक तवेपर सेकना (भूनना) चाहिये, इस के बाद शीघ्र ही सन के कपड़े में डालकर दबाने के सांचे में देकर दबाना चाहिये, बस तेल निकल आवेगा, इस तेल की दो तीन बूंदें नागरवेल के कोरे (कत्थे और चूने के विना) पान पर रखकर खानी चाहियें, इस का सेवन दिन में तीन वार करना चाहिये, यदि तेल न निकल सके तो पांच २ बीज ही पान के साथ खाने चाहियें।

फासफर्स से मिली हुई हर एक डाक्टरी दवा भी बुद्धि तथा मगज़ के लिये फायदेमन्द होती है ॥

रोगी के खाने योग्य खुराक ॥

पश्चिमीय विद्वानों ने इस सिद्धान्त का निश्चय, किया है कि–सब प्रकार की खुराक की अपेक्षा सावूदाना, आरारूट और टापीओ का, ये तीन चीजें सब से हलकी और सहज में पचनेवाली हैं अर्थात् जिस रोगमें पाचनशक्ति बिगड़ गई हो उस में इन तीनों वस्तुओं में से किसी वस्तु का खाना बहुत ही फायदेमन्द है ।

सावूदाना को पानी वा दूध में सिजा कर तथा आवश्यकता हो तो थोड़ी सी मिश्री डाल कर रोगी को पिलाना चाहिये, इस के बनाने की उत्तम रीति यह है कि–आधे दूध और पानी को पतीली या किसी कलईदार वर्त्तन में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा देना चाहिये, जब वह अदहन के समान उबलने लगे तब उस में सावूदाना को डालकर ढक देना चाहिये, जब पानी का भाग जल जावे सिर्फ दूध मात्र शेप रह जावे तब उतार कर थोड़ी-सी मिश्री डालकर खाना चाहिये ।

सावूदाना की अपेक्षा चावल यद्यपि पचने में दूसरे दर्जे पर[1] हैं परन्तु सावूदाना की अपेक्षा पोपण का तत्त्व चावलों में अधिक है इसलिये रुचि के अनुसार बीमार को वर्ष के पीछे से तीन वर्ष के भीतर का पुराना चावल देना चाहिये अर्थात् वर्षभर के भीतर का और तीन वर्ष के बाद का (पांच छः वर्षों का) भी चावल नहीं देना चाहिये ।

आधे दूध तथा आधे पानी में सिजाया हुआ भात बहुत पुष्टिकारक होता है, यद्यपि केवल दूध में सिजायाहुआ भात पूर्व की अपेक्षा भी अधिक पुष्टिकारक तो होता है परन्तु वह बीमार और निर्बल आदमी को पचता नहीं है इस लिये बीमार को दूध में सिजाया हुआ भात नहीं देना चाहिये, बुखार, दस्त, मरोड़ा और अजीर्ण में चावल देना चाहिये, क्योंकि–इन रोगों में चावल फायदा करता है, बहुत पानी में रांधे हुए चावल तथा उन का निकाला हुआ मांड ठंढा और पोपण कारक होता है ।

इंग्लेंड आदि दूसरे देशों में हैजे की बीमारी में सूप और ब्राथ देते हैं, उस की अपेक्षा इस देश में उक्त रोगी के लिये अनुकूल होने से चावलों का मांड बहुत फायदा करता है, इस बात का निश्चय ठीक रीति से हो चुका है, इस के सिवाय अतीसार अर्थात् दस्तों की सामान्य बीमारी में चावलों का ओसामण दवा का काम देता है अर्थात् दस्तों को बंद कर देता है ।

रोगी के लिये विधिपूर्वक बनाई हुई दाल भी बहुत फायदा करती है तथा दालों[2] की

१–अर्थात् सावूदाना की अपेक्षा चावल देर में हजम होते हैं ॥

२–दाल तो आर्य लोगों की नैत्यिक तथा आवश्यक खुराक हैं, न केवल नैत्यिक ही किन्तु यह नैमित्तिक भी है, देखो ! ऐसा भी जीमणवार (ज्योंनार) शायद ही कोई होता होगा जिस में दाल न होती हो, विचार कर देखने से यह भी ज्ञात होता है कि–दाल का उपयोग लाभकारक भी बहुत ही है, क्योंकि–दाल पोषणकारक पदार्थ है अर्थात् इस में पुष्टिका तत्त्व अधिक हैं, यहांतक कि कई एक दालों में मांस से भी अधिक पौष्टिक तत्त्व है ॥

यद्यपि अनेक जातियां हैं परन्तु उन सब में मुख्य मूंग की दाल है, क्योंकि-यह रोगी तथा साधारण प्रकृतिवाले पुरुषों के लिये प्रायः अनुकूल होती है, मसूर की दाल भी हलकी होने से प्रायः पथ्य है, इसलिये इन दोनों में से किसी दाल को अच्छी तरह सिजा कर तथा उस में सेंधानमक, हींग, धनिया, जीरा और धनिये के पत्ते डाल कर पतली दाल अथवा उसका नितरा हुआ जल रोगी तथा अत्यन्त निर्वल मनुष्य को देना चाहिये, क्योंकि उक्त दाल अथवा उस का नितरा हुआ जल पुष्टि करता है तथा दवा का काम देता है ।

बीमार के लिये दूध भी अच्छी खुराक है, क्योंकि-वह पुष्टि करता है तथा पेट में बहुत भार भी नहीं करता है परन्तु दूध को बहुत उबाल कर रोगी को नहीं देना चाहिये, क्योंकि-बहुत उबालने से वह पचने में भारी हो जाता है तथा उस के भीतर का पौष्टिक तत्त्व भी कम हो जाता है, इसलिये दुहे हुए दूध में से वायु को निकालने के लिये अथवा दूध में कोई हानिकारक वस्तु हो उस को निकालने के लिये अनुमान ५ मिनट तक थोड़ासा गर्म कर रोगी को दे देना चाहिये, परन्तु मन्दाग्निवाले को दूध से आधा पानी दूध में डालकर उसे गर्म करना चाहिये, जब जल का तीसरा भाग शेष रह जावे तब ही उतार कर पिलाना चाहिये[3], बहुतसे लोग जलमिश्रित दूध के पीने में हानि होना समझते हैं परन्तु यह उन की भूल है, क्योंकि जलमिश्रित दूध किसी प्रकार की हानि नहीं करता है ।

डाक्टर लोग निर्बल आदमियों को कॉडलीवर ऑइल नामक एक दवा देते[4] हैं अर्थात् जिस रोग में उन को ताकतवर दवा वा खुराक के देने की आवश्यकता होती है उस में वे लोग प्रायः उक्त दवा को ही देते हैं, इस के सिवाय क्षय रोग, भूख के द्वारा उत्पन्न हुआ रोग, कण्ठमाला, जिस रोग में कान और नाक से पीप बहता है वह रोग, फेफसे का शोथ (न्यूमोनिया), कास, श्वास (ब्रोनकाइटीस,), फेफसे के पड़त का घाव, खुल खुलिया अर्थात् बच्चे का बड़ा खांस और निर्बलता आदि रोगों में भी वे लोग इस दवा को देते हैं, इस दवा में मूल्य के भेद से गुण में भी कुछ भेद रहता है तथा अल्पमूल्य

१-मूंग की दाल सर्वोपरि है तथा अरहर (तूर) की दाल भी दूसरे नम्बर पर है, यह पहिले लिख ही चुके हैं अतः यदि रोगी की रुचि हो तो अरहर की दाल भी थोड़ी सी देना चाहिये ॥

२-परन्तु यह किसी २ के अनुकूल नहीं आता है अतः जिसके अनुकूल न हो उस को नहीं देना चाहिये परन्तु ऐसी प्रकृतिवाले (जिन को दूध अनुकूल नहीं आता हो) रोगी प्रायः बहुत ही कम होते हैं ॥

३-मा की अनुपस्थिति में अथवा मा के दूध न होने पर बच्चे को भी ऐसा ही (जलवाला) दूध पिलाना चाहिये, यह पहिले तृतीयाध्याय में लिख भी चुके हैं ॥

४-इस दवा को पुष्ट समझकर उन (डाक्टर) लोगों ने इसे रोग की खुराक में दाखिल किया है ॥

वाली इस दवा में दुर्गन्धि भी होती है परन्तु वढ़िया में नहीं होती है, इस दवा की बनी हुई टिकियां भी मिलती हैं जो कि गर्म पानी या दूध के साथ सहज में खाई जा सकती हैं।

इस (ऊपर कही हुई) दवा के ही समान माल्टा नामक भी एक दवा है जो कि अत्यन्त पुष्टिकारक तथा गुणकारी है तथा वह इन्हीं (साधारण) जौं ओं से और जौं-ओं के सदृश ओट नामक अनाज से बनाई जाती है।

कॉडलीवर ऑइल वीमार आदमी के लिये खुराक का काम देता है तथा हज़म भी जल्दी ही हो जाता है।

उक्त दोनों पुष्टिकारक दवाओं में से कॉडलीवर ऑइल जो दवा है वह आर्य लोगों के लेने योग्य नहीं है, क्योंकि उस दवा का लेना मानो धर्म को तिलाञ्जलि देना है[1] ॥

वीमार के पीने योग्य जल—यद्यपि साफ और निर्मल पानी का पीना तो नीरोग पुरुष को भी सदा उचित है परन्तु वीमार को तो अवश्य ही स्वच्छ जल पीना चाहिये, क्योंकि रोग के समय में मलीन जल के पीने से अन्य भी दूसरे प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इस लिये जल को स्वच्छ करने की युक्तियों से खूब स्वच्छ कर अथवा अंग्रेजों की रीतिसे अर्थात् डिस्टील्ड के द्वारा स्वच्छ कर के अथवा पहिले लिखे अनुसार पानी में तीन उबाला देकर ठंढाकर के रोगी को पिलाना चाहिये[2], डाक्टर लोग भी हैज़े में तथा सख्त बुखार की प्यास में ऐसे ही (स्वच्छ किये हुए ही) जल में थोड़ा २ वर्फ मिला कर पिलाते हैं ॥

नींबू का पानक—बहुत से बुखारों में नींबू का पानक भी दिया जाता है, इस के बनाने की यह रीति है कि नींबू की फांकें कर तथा मिश्री पीसकर एक काच या पत्थर के वर्त्तन में दोनों को रख कर उसपर उबलता हुआ पानी डालना चाहिये तथा जब वह ठंढा हो जावे तब उसे उपयोग में लाना चाहिये ॥

गोंद का पानी—गोंद का पानी २॥ तोले तथा मिश्री १। तोला, इन दोनों को एक पात्र में रखकर उस पर उबलता हुआ पानी डालकर ठंढा हो जाने पर पीने से श्लेष्म अर्थात् कफ हांफनी और कण्ठ बेल का रोग मिट जाता है ॥

जौं का पानी—छरे हुए (कूटे हुए) जौं एक बड़े चमचे भर (करीब १ छटांक), बूरा दो तीन चिमची भर (करीब १॥ छटांक) तथा थोड़ी सी नींबू की छाल, इन सब

१–क्यों कि यह (कॉडलीवर ऑइल) जो दवा है सो मछली का तेल है ॥

२–देखो! ज्ञातासूत्र में लिखा है कि गन्दीखाई का जल सुबुद्धि मन्त्री ने ऐसा स्वच्छ कर राजा जितशत्रु को पिलाया था कि जिस को देख कर और पीकर राजा बड़ा आश्चर्य में हो गया था, इस से विदित होता है कि पूर्व समय में भी जल के स्वच्छ करने की अनेक उत्तमोत्तम रीतियां थीं तथा स्वच्छ करके ही जल का उपयोग किया जाता था ॥

को एक वर्त्तन में रख कर ऊपर से उबलता हुआ पानी डाल कर ठंढा हो जाने के बाद छान कर पीने से बुखार, छाती का दर्द और अमूझणी (घबराहट) दूर हो जाती है[1] ॥

यह चतुर्थ अध्याय का पथ्यापथ्यवर्णन नामक छठा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

सातवां प्रकरण—ऋतुचर्यावर्णन ॥

ऋतुचर्या अर्थात् ऋतु के अनुकूल आहार विहार ॥

जैसे रोग के होने के बहुत से कारण व्यवहार नय से मनुष्यकृत हैं उसी प्रकार निश्चय नय से दैवकृत अर्थात् स्वभावजन्य कर्मकृत भी हैं, तत्सम्बन्धी पांच समवायों में से काल प्रधान समवाय है तथा इसी में ऋतुओं के परिवर्त्तन का भी समावेश होता है, देखो ! वहुत गर्मी और वहुत ठंढ, ये दोनों कालधर्म के स्वाभाविक कृत्य हैं अर्थात् इन दोनों को मनुष्य किसी तरह नहीं रोक सकता है, यद्यपि अन्यान्य वस्तुओं के संयोग से अर्थात् रसायनिक प्रयोगों से कई एक स्वाभाविक विषयों के परि वर्त्तन में भी मनुष्य यत् किञ्चित् विजय को पा सकते[2] हैं परन्तु वह परिवर्त्तन ठीक रीति से अपना कार्य न कर सकने के कारण व्यर्थ रूपसाही होता है किन्तु जो (परिवर्त्तन) कालस्वभाव वश स्वाभाविक नियम से होता रहता है वही सब प्राणियों के हित का सम्पादन करने से यथार्थ और उत्तम है इस लिये मनुष्य का उद्यम इस विषय में व्यर्थ है ।

ऋतु के स्वाभाविक परिवर्त्तन से हवा में परिवर्त्तन होकर शरीर के भीतर की गर्मी शर्दी में भी परिवर्त्तन होता है इसलिये ऋतु के परिवर्त्तन में हवा के स्वच्छ रखने का तथा शरीर पर मलीन हवा का असर न होसके इस का उपाय करना मनुष्य का मुख्य काम है ।

वर्षभर की भिन्न २ ऋतुओं में गर्मी और ठंढ के द्वारा अपने आसपास की हवा में तथा हवा के योग से अपने शरीर में जो २ परिवर्त्तन होता है उस को समझ कर उसी के अनुसार आहारविहार के नियम के रखने को ऋतुचर्या कहते हैं ।

हवा में गर्मी और ठंढ, ये दो गुण मुख्यतया रहते हैं परन्तु इन दोनों का परिमाण सदा एकसदृश नहीं होता है, क्योंकि–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के द्वारा उन में (गर्मी और ठंढ में) परिवर्त्तन देखा जाता है, देखो । भरतक्षेत्र की पृथ्वी के उत्तर

१–यह पथ्यापथ्य का वर्णन संक्षेप से किया गया है, इस का शेष वर्णन वैद्यकसम्बंधी अन्य ग्रन्थों में देखना चाहिये, क्योंकि ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहां अनावश्यक विषय का वर्णन नहीं किया है ॥

२–जैसे विना ऋतु के वृष्टिका वरसा देना आदि ॥

और दक्षिण के किनारे पर स्थित प्रदेशों में अत्यन्त ठंढ पड़ती है, इसी पृथ्वी के गोले की मध्य रेखा के आस पास के प्रदेशों में बहुत गर्मी पड़ती है तथा दोनों गोलार्ध के बीच के प्रदेशों में गर्मी और ठंढ बराबर रहती है, इस रीति से क्षेत्र का विचार करें तो उत्तर ध्रुव के आसपास के प्रदेशों में अर्थात् सेबेरिया आदि देशों में ठंढ बहुत पड़ती है, उस के नीचे के तातार, टीबेट (तिब्बत) और इस हिन्दुस्तान के उत्तरीय भागों में गर्मी और ठंढ बराबर रहती है तथा उस से भी नीचे विषुववृत्त के आसपास के देशों में अर्थात् दक्षिण हिन्दुस्तान और सीलोन (लङ्का) में गर्मी अधिक पड़ती है, एवं ऋतु के परिवर्त्तन से वहां परिवर्त्तन भी होता है अर्थात् बारह मास तक एक सदृश ठंढ या गर्मी नहीं रहती है, क्योंकि ऋतुके अनुसार पृथिवी पर ठंढ और गर्मी का पड़ना सूर्य की गति-पर निर्भर है, देखो! भरत क्षेत्र के उत्तर तथा दक्षिण के किनारेपर स्थित देशों में सूर्य कभी सिरे पर सीधी लकीरपर नहीं आता है अर्थात् छः महीने तक वहां सूर्य दिखाई भी नहीं देता है, शेष छः महीनों में इस देश में उदय होते हुए तथा अस्त होते हुए सूर्य के प्रकाश के समान वहां भी सूर्य का कुछ प्रकाश दिखाई देता है, इस का कारण यह है कि–सूर्य के उगने (उदय होने) के १८४ मण्डल[1] हैं उन में से कुछ मण्डल तो पृथिवी के ऊपर आकाशप्रदेश में मेरु के पास से शुरू हुए हैं, कुछ मण्डल लवणसमुद्र में हैं, समभूतल मेरु के पास है, वहां से ७९० योजन ऊपर आकाश में तारामण्डल शुरू हुआ है, ११० योजन में सब नक्षत्र तारामण्डल हैं तथा पृथिवी से ९०० योजन पर इस का अन्त है, सूर्य की विमान पृथिवी से चन्द्र की विमान पृथिवी ८० योजन ऊंची है, सब तारे मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं और सप्तर्षि (सात ऋषि) के तारे मृगादि ध्रुव की प्रदक्षिणा करते हैं।

देशों की ठंढ या गर्मी सदा समान नहीं रहती है किन्तु उस में परिवर्त्तन होता रहता है, देखो! जिस हिमालय के पास वर्त्तमान में बर्फ गिर कर ठंढा देश बन रहा है वही देश किसी काल में गर्म था,[2] इस में बड़ा भारी प्रमाण यह है कि–गर्मी के कारण जब बर्फ गल जाती है तब नीचे से मरे हुए हाथी निकलते हैं, इस बात को सब ही जानते हैं कि–हाथी गर्म देश के विना नहीं रह सकते हैं, इस से सिद्ध है कि–पहिले वह स्थान गर्म था किन्तु जब ऊपर अचानक बर्फ गिर कर जम गया तब उस की ठंढ से हाथी मर कर नीचे दब गये[3] तथा बर्फ के गलकर पानी हो जाने पर वे उस में उतराने लगे, यदि

१–इन का वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्र में विस्तारपूर्वक किया गया है ॥

२–यह बात अनेक युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है ॥

३–बर्फ में दबी हुई वस्तु बहुत समय तक बिगड़ती नहीं है, इस लिये कुछ समय तक तो वे हाथी उसमें जीते रहे परन्तु पीछे खाने को न मिलने से मर गये परन्तु बर्फ में दबे रहने से उन का शरीर नहीं बिगड़ा और न सड़ा ॥

यह मान भी लिया जावे कि-वहां सदा ही से वर्फ था तथा उसी में हाथी भी रहते थे तो यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि वर्फ में हाथी क्या खाते थे ! क्योंकि वर्फ को तो खा ही नहीं सकते हैं और न वर्फ़ पर उन के खाने योग्य दूसरी कोई वस्तु ही हो सकती है ! इस का कुछ भी जवाव नहीं हो सकता है, इस से स्पष्ट है कि वह स्थान किसी समय में गर्म था तथा हाथियों के रहनेलायक वनरूप में था, अव भी मध्य हिन्दुस्तान के समशीतोष्ण देशों में भी सूर्य के समीप होने से अथवा दूर होने से न्यूनाधिक रूप से गर्मी और ठंढ पड़ती है, इसी लिये ऋतुपरिवर्त्तन से वर्ष के उत्तरायण और दक्षिणायन, ये दो अयन गिने जाते हैं, उत्तरायण उष्णकाल को तथा दक्षिणायन शीतकाल को कहते हैं ।

पृथिवी के गोले का एक नाम नियत कर उस के वीच में पूर्व पश्चिमसम्वन्धिनी एक लकीर की कल्पना कर उस का नाम पश्चिमीय विद्वानों ने विषुववृत्त रक्खा है, इसी लकीर के उत्तर की तरफ के सूर्य छः महीने तक उष्ण कटिवन्ध में फिरता है तथा छः महीने तक इस के दक्षिण की तरफ के उष्ण कटिवन्ध में फिरता है, जव सूर्य उत्तर की

१-सर्वज्ञ कथित जैनसिद्धान्त में पृथिवी का वर्णन इस प्रकार है कि-पृथिवी गोल थाल की शकल में है, उस के चारों तरफ असली दरियाव खाई के समान है तथा जांवूद्वीप वीच में है, जिस का विस्तार लाख योजन का है इत्यादि, परन्तु पश्चिमीय विद्वानोंने गेंद या नारंगी के समान पृथिवी की गोलाई मानी है, पृथिवी के विस्तार को उन्हों ने सिर्फ पचीस हज़ार मील के घेरे में माना है, उन का कथन है कि-तमाम पृथिवी की परिक्रमा ८२ दिन में रेल या वोट के द्वारा दे सकते हैं, उन्हों ने जो कुछ देख कर या दर्याफ्त कर कथन किया या माना है वह शायद कथञ्चित् सत्य हो परन्तु हमारी समझ में यह वात नहीं आती है किन्तु हमारी समझ में तो यह वात आई हुई है कि-पृथिवी वहुत लम्वी चौडी है, सगर चक्रवर्त्ती के समय में दक्षिण की तरफ से दरियाव खुली पृथिवी में आया था जिस से वहुत सी पृथिवी जल में चली गई तथा दरियाव ने उत्तर में भी इधर से ही चक्कर खाया था, ऋषभदेव के समय में जो नकशा जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र का था वह अव विगड़ गया है अर्थात् उस की और ही शकल दीखने लगी है, दरियाव के आये हुए जल में वर्फ जम गई है इस लिये अव उस से आगे नहीं जा सकते हैं, इगुलिशमैंन इसी लिये कह देते हैं कि पृथिवी इतनी ही है परन्तु धर्मशास्त्र के कथनानुसार पृथिवी वहुत है तथा देशविभाग के कारण उस के मालिक राजे भी वहुत हैं, वर्त्तमान समय में बुद्धिमान् अंग्रेज भी पृथिवी की सीमा का खोज करने के लिये फिरते हैं परन्तु वे भी वर्फ के कारण आगे नहीं जा सकते हैं, देखो । खोज करते २ जिस प्रकार अमेरिका नई दुनिया का पता लगा, उसी प्रकार कालान्तर में भी खोज करनेवाले बुद्धिमान् उद्यमी लोगों को फिर भी कई स्थानों के पते मिलेंगे, इस लिये सर्वज्ञ तीर्थंकर ने जो केवल ज्ञान के द्वारा देख कर प्रकाशित किया है वह सव यथार्थ है, क्योंकि इस के सिवाय वाकी के सव पदार्थों का निर्णय जो उन्हों ने कीया है तथा निर्णय कर उन का कथन किया है जव वे सव पदार्थ सत्यरूप में दीख रहे हैं तथा सत्य हैं तो यह विषय कैसे सत्य नहीं होगा, जो वात हमारी समझ में न आवे वह हमारी भूल है इस में आप्त वक्ताओं का कोई दोष नहीं है, भला सोचो तो सही कि-इतनी सी पृथ्वी में पृथ्वी की गोलाई का मानना प्रमाण से कैसे सिद्ध हो सकता है, हां वेशक भरतक्षेत्र की गोलाई से इस हिसाव को हम न्यायपूर्वक स्वीकार करते हैं ॥

तरफ फिरता है तब उत्तर की तरफ के उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों पर उत्तरीय सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं इससे उन प्रदेशों में सख्त ताप पड़ता है, इसी प्रकार जब सूर्य दक्षिण की तरफ फिरता है तब दक्षिण की तरफ के उष्ण कटिबन्ध के प्रदेशों पर दक्षिण में स्थित सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं इस से उन प्रदेशों में भी पूर्व लिखे अनुसार सख्त ताप पड़ता है, यह हिन्दुस्तान देश विपुववृत्त अर्थात् मध्यरेखा के उत्तर की तरफ में स्थित है अर्थात् केवल दक्षिण हिन्दुस्तान उष्ण कटिबन्ध में है शेप सब उत्तर हिन्दुस्तान समशीतोष्ण कटिबन्ध में है, उक्त रीति के अनुसार जब सूर्य छः मास तक उत्तरायण होता है तब उत्तर की तरफ ताप अधिक पड़ता है और दक्षिण की तरफ कम पड़ता है तथा जब सूर्य छः मासतक दक्षिणायन होता है तब दक्षिण की तरफ गर्मी अधिक पड़ती है और उत्तर की तरफ कम पड़ती है, उत्तरायण के छ महीने ये हैं—फागुन, चैत, वैशाख, जेठ, अपाढ़ और श्रावण, तथा दक्षिणायन के छःमहीने ये हैं—भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक, मृगशिर, पौष और माघ, उत्तरायण के छः महीने क्रम से शक्ति को घटाते हैं और दक्षिणायन के छः महीने क्रम से शक्ति को बढ़ाते हैं, वर्ष भर में सूर्य बारह राशियों पर फिरता है, दो २ राशियों से ऋतु बदलती है इसी लिये एक वर्ष की छः ऋतु स्वाभाविक होती हैं, यद्यपि भिन्न २ क्षेत्रों में उक्त ऋतु एक ही समय में नहीं लगती हैं तथापि इस आर्यावर्त्त (हिन्दुस्तान) के देशों में तो प्रायः सामान्यतया इस क्रम[2] से ऋतुयें गिनी जाती हैं:—

वसन्त ऋतु—फागुन और चैत, ग्रीष्म ऋतु–वैशाख और जेठ, प्रावृट् ऋतु—आषाढ़ और श्रावण, वर्षा ऋतु–भाद्रपद और आश्विन, शरद् ऋतु–कार्त्तिक और मृगशिर, हेमंतशिशिर ऋतु–पौष और माघ।

यहां वसन्त ऋतु का प्रारम्भ यद्यपि फागुन में गिना है परन्तु जैनाचार्यों ने चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में सङ्क्रान्ति के अनुसार ऋतुओं को माना है तथा शार्ङ्गधर आदि अन्य आचार्यों ने भी सङ्क्रान्ति के ही हिसाब से ऋतुओं को माना है और यह ठीक भी है, उन के मतानुसार ऋतुयें इस प्रकार से समझनी चाहियें:—

ऋतु ग्रीषम मेषरु वृष जानो। मिथुन कर्क प्रावृट ऋतु मानो॥
वर्षा सिंहरु कन्या जानो। शरद ऋतू तुल वृश्चिक मानो॥
धनरु मकर हेमन्त जु होय। शिशिर शीत अरु बरसै तोय॥
ऋतु वसन्त है कुम्भरु मीन। यहि विधि ऋतु निर्धारन कीन॥ १॥

१–इसी को संक्रान्ति कहते हैं॥

२–ऋतुओं का क्रम अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से माना है, वह ग्रन्थान्तरों से ज्ञात हो सकता है॥

दोहा—ऋतू लगन में आठ दिन, जब होवैं उपचार ॥
त्यागि पूर्व ऋतु को अगिल, वरतै ऋतु अनुसार ॥ २ ॥

अर्थात् मेष और वृष की सङ्क्रान्ति में ग्रीष्म ऋतु, मिथुन और कर्क की सङ्क्रान्ति में प्रावृट् ऋतु, सिंह और कन्या की संक्रान्ति में वर्षा ऋतु, तुला और वृश्चिक की सङ्क्रान्ति में शरद् ऋतु, धन और मकर की सङ्क्रान्ति में हेमन्त ऋतु, (हेमन्त ऋतु में जब मेघ वरसे और ओले गिरें तथा शीत अधिक पड़े तो वही हेमन्त ऋतु शिशिर ऋतु कहलाती है) तथा कुम्भ और मीन की सङ्क्रान्ति में वसन्त ऋतु होती है ॥ १ ॥

जब दूसरी ऋतु के लगने में आठ दिन बाकी रहें तब ही से पिछली (गत) ऋतु की चर्या (व्यवहार) को धीरे २ छोड़ना और अगली (आगामी) ऋतु की चर्या को ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥

यद्यपि ऋतु में करने योग्य कुछ आवश्यक आहार विहार को ऋतु स्वयमेव मनुष्य से करा लेती है, जैसे—देखो । जब ठंढ पड़ती है तब मनुष्य को स्वयं ही गर्म वस्त्र आदि वस्तुओं की इच्छा हो जाती है, इसी प्रकार जब गर्मी पड़ती है तब महीन वस्त्र और ठंढे जल आदि वस्तुओंकी इच्छा प्राणी स्वतः ही करता है, इस के अतिरिक्त इंग्लेंड और कावुल आदि ठंढे देशों में (जहां ठंढ सदा ही अधिक रहती है) उन्हीं देशों के अनुकूल सब साधन प्राणी को स्वयं करने पड़ते हैं, इस हिन्दुस्तान में ग्रीष्म ऋतु में भी क्षेत्र की तासीर से चार पहाड़ बहुत ठंढे रहते हैं—उत्तर में विजयार्ध[1], दक्षिण में नीलगिरि, पश्चिम में आबूराज और पूर्व में दार्जिलिंग, इन पहाड़ों पर रहने के समय गर्मी की ऋतु में भी मनुष्यों को शीत ऋतु के समान सब साधनों का सम्पादन करना पड़ता है[2], इस से सिद्ध है कि—ऋतु सम्बंधी कुछ आवश्यक वातों के उपयोग को तो ऋतु स्वयं मनुष्य से करा लेती है तथा ऋतुसम्बन्धी कुछ आवश्यक वातों को सामान्य लोग भी थोड़ा बहुत समझते ही हैं, क्योंकि यदि समझते न होते तो वैसा व्यवहार कभी नहीं कर सकते थे, जैसे देखो । हवा के गर्म से शर्द तथा शर्द से गर्म होने रूप परिवर्त्तन को प्रायः सामान्य लोग भी थोड़ा बहुत समझते हैं तथा जितना समझते हैं उसी के अनुसार यथाशक्ति उपाय भी करते हैं परन्तु ऋतुओं के शीत और उष्णरूप परिवर्तन से शरीर में क्या २ परिवर्त्तन होता है और छःओं ऋतुयें दो २ मास तक वातावरण में किस २ प्रकार का परिवर्तन करती हैं, उस का अपने शरीर पर कैसा असर होता है तथा उस के लिये क्या २ उपयोगी वर्त्ताव (आहार विहार आदि) करना चाहिये, इन वातों को बहुत ही कम लोग

१—इस पर्वत को इस समय लोग हिमालय कहते हैं ॥

२—कालान्तर में इन पर्वतों की यदि तासीर बदल जावे तो कुछ आश्चर्य नहीं है ॥

समझते हैं इस लिये छःओं ऋतुओं के आहार विहार आदि का संक्षेप[1] से यहां वर्णन करते हैं, इस के अनुसार वर्त्ताव करने से शरीर की रक्षा तथा नीरोगता अवश्य रह सकेगी:—

हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में (शीत काल में) खाये हुए पदार्थों से शरीर में रस अर्थात् कफ का सङ्ग्रह होता है, वसन्त ऋतु के लगने पर गर्मी पड़ने का प्रारम्भ होता है इस लिये उस गर्मी से शरीर के भीतर का कफ पिघलने लगता है, यदि उस का शमन (शान्ति का उपाय वा इलाज) न किया जावे तो खांसी कफज्वर और मरोड़ा आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं, वसन्त में कफकी शान्ति के होने के पीछे ग्रीष्म के सख़्त ताप से शरीर के भीतर का आवश्यकरूप में स्थित कफ जलने अर्थात् क्षीण होने लगता है, उस समय में शरीर में वायु अप्रकटरूप से इकट्ठा होने लगता है, इसलिये वर्षा ऋतु की हवा के चलते ही दस्त, वमन, बुखार, वायुज सन्निपातादि कोप, अग्निमान्द्य और रक्त-विकारादि वायुजन्य रोग उत्पन्न होते हैं उस वायु को मिटाने के लिये गर्म इलाज अथवा अज्ञानता से गर्म खान पान आदि के करने से पित्त का सञ्चय होता है, उस के बाद शरद् ऋतु के लगते ही सूर्य की किरणें तुला संक्रान्ति में सोलह सौ (एक हज़ार छः सौ) होने से सख्त ताप पड़ता[2] है, उस ताप के योग से पित्त का कोप होकर पित्त का बुखार, मोती झरा, पानीझरा, पैत्तिक सन्निपात और वमन आदि अनेक उपद्रव होते हैं, इस के बाद ठंढे इलाजों से अथवा हेमन्त ऋतु की ठंढी हवा से अथवा शिशिर ऋतु की तेज़ ठंढ से पित्त शांत होता है परन्तु उस हेमन्त की ठंढ से खान पान में आये हुए पौष्टिक तत्त्व के द्वारा कफ का संग्रह होता है वह वसन्त ऋतु में कोप करता है, तात्पर्य यह है कि–हेमन्त में कफ का सञ्चय और वसन्त में कोप होता है, ग्रीष्म में वायु का सञ्चय और प्रावृट् में कोप होता है, वर्षा में पित्त का सञ्चय और शरद् में कोप होता है, यही कारण है कि–वसन्त, वर्षा और शरद्, इन तीनों ही ऋतुओं में रोग की अधिक उत्पत्ति होती है, यद्यपि विपरीत आहार विहार से वायु पित्त और कफ विगड़ कर सब ही ऋतुओं में रोगों को उत्पन्न करते हैं परन्तु तो भी अपनी २ ऋतु में इन का अधिक कोप होता है और इस में भी उस २ प्रकार की प्रकृतिवालों पर उस २ दोष का अधिक कोप होता है, जैसे वसन्त ऋतु में कफ सबों के लिये उपद्रव करता है परन्तु कफ की प्रकृतिवाले के लिये अधिक उपद्रव करता है, इसी प्रकार से शेष दोनों दोषों का भी उपद्रव समझ लेना चाहिये ॥

१–इस का विस्तारपूर्वक वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

२–इतनी किरणें और किसी संक्रान्ति में नहीं होती हैं, यह बात कल्पसूत्र की लक्ष्मीवल्लभी टीका में लिखी है, इसके सिवाय लोकोक्ति भी है कि–"आसोजों की धूप में, जोगी हो गये जाट ॥ ब्राह्मणा हो गये सेवड़े, कर से वन गये भाट" ॥ १ ॥

वसन्त ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

पहिले कह चुके हैं कि—शीत काल में जो चिकनी और पुष्ट खुराक खाई जाती है उस से कफ का संग्रह होता है अर्थात् शीत के कारण कफ शरीर में अच्छे प्रकार से जमकर स्थित होता है, इस के बाद वसन्त की धूप पड़ने से वह कफ पिघलने लगता है, कफ प्रायः मगज़ छाती और साँधों में रहता है इस लिये शिर का कफ पिघल कर गले में उतरता है जिस से जुखाम कफ और खांसी का रोग होता है, छाती का कफ पिघलकर होजरी में जाता है जिस से अग्नि मन्द होती है और मरोड़ा होता है, इस लिये वसन्त ऋतु के लगते ही उस कफ का यत्न करना चाहिये, इस के मुख्य इलाज दो तीन हैं—इस लिये इन में से जो प्रकृति के अनुकूल हो वही इलाज कर लेना चाहियेः—

१—आहार विहार के द्वारा अथवा वमन और विरेचन की ओषधि के द्वारा कफ को निकाल कर शान्ति करनी चाहिये।

२—जिस को कफ की अत्यन्त तकलीफ हो और शरीर में शक्ति हो उस को तो यही उचित है कि—वमन और विरेचन के द्वारा कफ को निकाल डाले परन्तु बालक वृद्ध और शक्तिहीन को वमन और विरेचन नहीं लेना चाहिये, हां सोलह वर्षतक की अवस्थावाले बालक को रोग के समय हरड़ और रेवतचीनी का सत आदि सामान्य विरेचन देने में कोई हानि नहीं है परन्तु तेज विरेचन नहीं देना चाहिये ॥

वसन्त ऋतु में रखने योग्य नियम ॥

१—भारी तथा ठंढा अन्न, दिन में नींद, चिकना तथा मीठा पदार्थ, नया अन्न, इन सब का त्याग करना चाहिये।

२—एक साल का पुराना अन्न, शहद, कसरत, जंगल में फिरना, तैलमर्दन और पैर दबाना आदि उपाय कफ की शान्ति करते हैं, अर्थात् पुराना अन्न कफ को कम करता है, शहद कफ को तोड़ता है, कसरत, तेल का मर्दन और दबाना, ये तीनों कार्य शरीर के कफ की जगह को छुड़ा देते हैं, इसलिये इन सब का सेवन करना चाहिये।

३—रूखी रोटी खाकर मेहनत मजूरी करनेवाले गरीबों का यह मौसम कुछ भी बिगाड़ नहीं करता है, किन्तु माल खाकर एक जगह बैठनेवालों को हानि पहुँचाता है, इसी लिये प्राचीन समय में पूर्ण वैद्यों की सलाह से मदनमहोत्सव, रागरंग, गुलाब जल का डालना, अबीर गुलाल आदि का परस्पर लगाना और बगीचों में जाना आदि बातें इस मौसम मे नियत की गई [1]थीं कि इन के द्वारा इस ऋतु में मनुष्यों को कसरत प्राप्त हो,

---

१—संवत् १९५८ से संवत् १९६३ तक मैंने बहुत से देशों में भ्रमण (देशाटन) किया था जिस में इस ऋतु में यद्यपि अनेक नगरों में अनेक प्रकार के उत्सव आदि देखने में आये थे परन्तु मुर्शिदाबाद

जैसा इस ऋतु में हितकारी और परभव सुखकारी महोत्सव कहीं भी नहीं देखा, वहां के लोग फाल्गुन शुक्ल में प्रायः १५ दिन तक भगवान् का रथमहोत्सव प्रतिवर्ष किया करते हैं अर्थात् भगवान् के रथ को निकाला करते हैं, रास्तेमें स्तवन गाते हुवे तथा केशर आदि उत्तम पदार्थों के जल से भरी हुई चांदी की पिचकारियां चलाते हुवे बगीचों में जाते हैं, वहांपर स्नात्र पूजादि भक्ति करते हैं तथा प्रतिदिन शाम को सैर होती है इत्यादि, उक्त धर्मी पुरुषों का इस ऋतु में ऐसा महोत्सव करना अत्यन्त ही प्रशंसा के योग्य है, इस महोत्सव का उपदेश करनेवाले हमारे प्राचीन यति आचार्यही हुए हैं, उन्हीं का इस भव तथा परभव में हितकारी यह उपदेश आजतक चल रहा है, इस बात की बहुत ही हमें खुशी है तथा हम उन पुरुषों को अत्यन्त ही धन्यवाद देते हैं जो आजतक उक्त उपदेश को मान कर उसी के अनुसार वर्त्ताव कर अपने जन्म को सफल कर रहे हैं, क्योंकि इस काल के लोग परभव का ख्याल बहुत कम करते हैं, प्राचीन समय में जो आचार्य लोगों ने इस ऋतु में अनेक महोत्सव नियत किये थे उन का तात्पर्य केवल यही था कि मनुष्यों का परभव भी सुधरे तथा इस भव में भी ऋतु के अनुसार उत्सवादि में परिश्रम करने से आरोग्यता आदि बातों की प्राप्ति हो, यद्यपि वे उत्सव मारवाड़ में अब भी देखे जाते हैं परन्तु लोग उन के तत्त्व को बिलकुल नहीं सोचते हैं और मनमाना वर्त्ताव करते हैं, देखो। फागुन सुदि होली तथा गैर अर्थात् मदनमहोत्सव (होली तथा गैर की उत्पत्ति का हाल ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से यहां नहीं लिखना चाहते हैं फिर किसी समय इन का वृत्तान्त पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जावेगा) में कैसे २ वर्त्ताव करने लगे हैं, इस महोत्सव में वे लोग यद्यपि दालिये और बड़े आदि कफोत्पादक पदार्थों को खाते हैं तथा गैर तमाशा आदि करने के बहाने रात को जागना आदि परिश्रम भी करते हैं जिस से कफ घटता है परन्तु होली के महोत्सव में वे लोग कैसे २ महा असम्बद्ध वचन बोलते हैं, यह बहुत ही खराब प्रथा पड़ गई है, बुद्धिमानों को चाहिये कि इस हानिकारक तथा भांड़ों की सी चेष्टा को अवश्य छोड़ दें, क्योंकि इन महा असम्बद्ध वचनों के बकने से मज्जातन्तु कमज़ोर होकर शरीर में तथा बुद्धि में खराबी होती है, यह प्राचीन प्रथा नहीं है किन्तु अनुमान ढाई हज़ार वर्ष से यह भांड़ चेष्टा वाममार्गी (कूण्डापन्थी) लोगों के मता-ध्यक्षों ने चलाई है तथा भोले लोगों ने इस को मङ्गलकारी मान रक्खा है, क्योंकि उन को इस बात की बिलकुल खबर नहीं है कि यह महा असम्बद्ध वचनों का बकना कूंडा पन्थियों का मुख्य भजन है, यह दुश्चेष्टा मारवाड़ के लोगों में बहुत ही प्रचलित हो रही है, इस से यद्यपि यहां के लोग अनेक बार अनेक हानियों को उठा चुके हैं परन्तु अबतक नहीं सँभलते हैं, यह केवल अविद्या देवी का प्रसाद है कि-वर्त्तमान समय में ऋतु के विपरीत अनेक मनःकल्पित व्यवहार प्रचलित हो गये हैं तथा एक दूसरे की देखा देखी और भी प्रचलित होते जाते हैं, अब तो सचमुच कुए में भांग गिरने की कहावत हो गई है, यथा—

“अविद्याऽनेक प्रकार की, घट घट मांहि अड़ी। को काको समुझावही, कुए भांग पड़ी” ॥ १ ॥

जिस में भी मारवाड़ की दशा को तो कुछ भी न पूछिये, यहां तो मारवाड़ी भाषा की यह कहावत बिलकुल ही सत्य होगई है कि-“म्हानें तो रातींधो भाभे जी ने भज लेई राम” अर्थात् कोई २ मर्द लोग तो इन बातों को रोकना भी चाहते हैं परन्तु घर की धणियानियों (स्वामिनियों) के सामने बिल्ली से चूहे की तरह उन बेचारों को डरना ही पड़ता है, देखो। वसन्त ऋतु में ठंढा खाना बहुत ही हानि करता है परन्तु यहां शील सातम (शीतला सप्तमी) को सब ही लोग ठंढा खाते हैं, गुड़ भी इस ऋतु में महा हानिकारक है उस को भी शीलसातम के दिन खाने के लिये एक दिन पहिले ही से गुलराब, गुलपपड़ी और तेलपपड़ी आदि

इस लिये इस ऋतु के प्राचीन उत्सवों का प्रचार कर उन में प्रवृत्त होना परम आवश्यक है, क्योंकि इन उत्सवों से शरीर नीरोग रहता है तथा चित्त को प्रसन्नता भी प्राप्त होती है ।

पदार्थ वना कर अवश्य ही इस मौसम में खाते हैं, यह वास्तव में तो अविद्या देवी का प्रसाद है परन्तु शीतला देवी के नाम का वहाना है, हे कुलवती गृहलक्ष्मियों ! ज़रा विचार तो करो कि-दया धर्म से विरुद्ध और शरीर को हानि पहुँचानेवाले अर्थात् इस भव और परभव को विगाड़नेवाले इस प्रकार के खान पान से क्या लाभ है ? जिस शीतला देवी को पूजते २ तुम्हारी पीढ़ियां तक गुज़र गईं परन्तु आज तक शीतला देवी ने तुम पर कृपा नहीं की अर्थात् आज तक तुम्हारे बच्चे इसी शीतला देवी के प्रभाव से काने अन्धे, कुरूप, लूले और लँगड़े हो रहे हैं और हज़ारों मर रहे हैं, फिर ऐसी देवी को पूजने से तुम्हें क्या लाभ हुआ ? इस लिये इस की पूजा को छोड़कर उन प्रत्यक्ष अंग्रेज देवों को पूजो कि जिन्हों ने इस देवी को माता के दूध का विकार समझ कर उस को खोद कर (टीके की चाल को प्रचलित कर) निकाल डाला और वालकों को महा संकट से वचाया है, देखो ! वे लोग ऐसे २ उपकारों के करने से ही आज साहिव के नाम से विख्यात हैं, देखो ! अन्धपरम्परा पर न चलकर तत्त्व का विचार करना बुद्धिमानों का काम है, कितने अफसोस की वात है कि-कोई २ स्त्रियां तीन २ दिन तक का ठंढा (वासा) अन्न खाती हैं, भला कहिये इस से हानि के सिवाय और क्या मतलव निकलता है, स्मरण रक्खो कि ठंढा खाना सदा ही अनेक हानियों को करता है अर्थात् इस से बुद्धि कम हो जाती है तथा शरीर में अनेक रोग हो जाते हैं, जव हम वीकानेर की तरफ देखते हैं तो यहां भी वड़ी ही अन्धपरम्परा दृष्टिगत होती है कि-यहां के लोग तो सवेरे की सिरावणी में प्रायः वालक से लेकर वृद्धपर्यन्त दही और वाजरी की अथवा गेहूँ की वासी रोटी खाते हैं जिस का फल भी हम प्रत्यक्ष ही नेत्रों से देख रहे हैं कि यहां के लोग उत्साह बुद्धि और सद्विचार आदि गुणों से हीन दीख पड़ते हैं, अव अन्त में हमें इस पवित्र देश की कुलवतियों से यही कहना है कि-हे कुलवती स्त्रियो । शीतला रोग की तो समस्त हानियों को उपकारी डाक्टरों ने विलकुल ही कम कर दिया है अव तुम इस कुत्सित प्रथा को क्यों तिलाञ्जलि नही देती हो ? देखो । ऐसा प्रतीत होता है कि-प्राचीन समय में इस ऋतु में कफ की और दुष्कर्मों की निवृत्ति के प्रयोजन से किसी महापुरुष ने सप्तमी वा अष्टमी को शीलव्रत पालने और चूल्हे को न सुलगाने के लिये अर्थात् उपवास करने के लिये कहा होगा परन्तु पीछे से उस कथन के असली तात्पर्य को न समझ कर मिथ्यात्व वश किसी धूर्त्त ने यह शीतला का ढंग शुरू कर दिया और वह क्रम २ से पनघट के घाघरे के समान वढ़ता २ इस मारवाड़ में तथा अन्य देशों में भी सर्वत्र फैल गया (पनघट के घाघरे का वृत्तान्त इस प्रकार है कि-किसी समय दिल्ली में पनघट पर किसी स्त्री का घाघरा खुल गया, उसे देखकर लोगों ने कहा कि "घाघरा पड़ गया रे, घाघरा पड़ गया" उन लोगों का कथन दूर खड़े हुए लोगों को ऐसा सुनाई दिया कि-'आगरा जल गया रे, आगरा जल गया, इस के वाद यह वात कर्णपरम्परा के द्वारा तमाम दिल्ली में फैल गई और वादशाह तक के कानों तक पहुँच गई कि 'आगरा जल गया रे, आगरा जल गया, परन्तु जव वादशाहने इस वात की तहकीकात की तो मालूम हुआ कि आगरा नहीं जल गया किन्तु पनघट की स्त्री का घाघरा खुल गया है) हे परममित्रो । देखो । संसार का तो ऐसा ढंग है इसलिये सुज्ञ पुरुषों को उक्त हानिकारक वातों पर अवश्य ध्यान देकर उन का सुधार करना चाहिये ॥

४–वसन्तऋतु की हवा बहुत फायदेमन्द मानी गई है इसी लिये शास्त्रकारों का कथन है कि "वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्" अर्थात् वसन्तऋतु में भ्रमण करना पथ्य है, इस लिये इस ऋतु में प्रातःकाल तथा सायंकाल को वायु के सेवन के लिये दो चार मील तक अवश्य जाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से वायु का सेवन भी हो जाता है तथा जाने आने के परिश्रम के द्वारा कसरत भी हो जाती है, देखो। किसी बुद्धिमान् का कथन है कि–"सौ दवा और एक हवा" यह बात बहुत ही ठीक है इसलिये आरोग्यता रखने की इच्छावालों को उचित है कि अवश्यमेव प्रातःकाल सदैव दो चार मील तक फिरा करें ॥

ग्रीष्म ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

ग्रीष्म ऋतु में शरीर का कफ सूखने लगता है तथा उस कफ की खाली जगह में हवा भरने लगती है, इस ऋतु में सूर्य का ताप जैसा ज़मीन पर स्थित रस को खींच लेता है उसी प्रकार मनुष्यों के शरीर के भीतर के कफरूप प्रवाही (बहनेवाले) पदार्थों का शोषण करता है इस लिये सावधानता के साथ गरीब और अमीर सब ही को अपनी २ शक्ति के अनुसार इस का उपाय अवश्य करना चाहिये, इस ऋतु में जितने गर्म पदार्थ हैं वे सब अपथ्य हैं यदि उन का उपयोग किया जावे तो शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है, इस लिये इस ऋतु में जिन पदार्थों के सेवन से रस न घटने पावे अर्थात् जितना रस सूखे उतना ही फिर उत्पन्न हो जावे और वायु को जगह न मिलसके ऐसे पदार्थों का सेवन करना चाहिये, इस ऋतुमें मधुर रसवाले पदार्थों के सेवन की आवश्यकता है और वे स्वाभाविक नियम से इस ऋतु में प्रायः मिलते भी हैं जैसे–पके आम, फालसे, सन्तरे, नारंगी, इमली, नेचू जामुन और गुलाबजामुन आदि, इस लिये स्वाभाविक नियम से आवश्यकतानुसार उत्पन्न हुए इन पदार्थों का सेवन इस ऋतु में अवश्य करना चाहिये।

मीठे, ठंढे, हलके और रसवाले पदार्थ इस ऋतु में अधिक खाने चाहियें जिन से क्षीण होनेवाले रस की कमी पूरी हो जावे।

गेहूँ, चावल, मिश्री, दूध, शक्कर, जल झरा हुआ तथा मिश्री मिलाया हुआ दही और श्रीखंड[1] आदि पदार्थ खाने चाहियें, ठंढा पानी पीना चाहिये, गुलाब तथा केवड़े के जल का उपयोग करना चाहिये, गुलाब, केवड़ा, खस और मोतिये का अतर सूंघना चाहिये।

प्रातःकाल में सफेद और हलका सूती वस्त्र, दश से पांच बजे तक सूती जीन वा गजी का कोई मोटा वस्त्र तथा पांच बजे के पश्चात् महीन वस्त्र पहरना चाहिये, वर्फ

१–श्रीखण्ड के गुण इसी अध्याय के पांचवें प्रकरण में कह चुके हैं, इस के बनाने की विधि भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थों में अथवा पाकशास्त्र में देख लेनी चाहिये ॥

का जल पीना चाहिये, दिन में तहखाने में वा पटे हुए मकान में और रात को ओस में सोना उत्तम है।

आँवला, सेव और ईख का मुरव्वा भी इन दिनों में लाभकारी है, मैदा का शीरा जिस में मिश्री और घी अच्छे प्रकार से डाला गया हो प्रातःकाल में खाने से वहुत लाभ पहुँचाता है और दिन भर प्यास नहीं सताती है।

ग्रीष्म ऋतु आम की तो फसल ही है सव का दिल चाहता है कि आम खावें परन्तु अकेला आम या उस का रस वहुत गर्मी करता है इस लिये आम के रस में घी दूध और काली मिर्च डाल कर सेवन करना चाहिये ऐसा करने से वह गर्मी नहीं करता है तथा शरीर को अपने रंग जैसा वना देता है।

ग्रीष्म ऋतु में क्या गरीव और क्या अमीर सव ही लोग शर्वत को पीना चाहते हैं और पीते भी हैं तथा शर्वत का पीना इस ऋतु में लाभकारी भी वहुत है परन्तु वह (शर्वत) शुद्ध और अच्छा होना चाहिये, अत्तार लोग जो केवल मिश्री की चासनी वना कर शीशियों में भर कर वाज़ार में वेंचते हैं वह शर्वत ठीक नहीं होता है अर्थात् उस के पीने से कोई लाभ नहीं हो सकता है इस लिये असली चिकित्सा प्रणाली से वना हुआ शर्वत व्यवहार में लाना चाहिये किन्तु जिन को प्रमेह आदि या गर्मी की वीमारी कभी हुई हो उन लोगों को चन्दन गुलाव केवड़े वा खस का शर्वत इन दिनों में अवश्य पीना चाहिये, चन्दन का शर्वत वहुत ठंढा होता है और पीने से तवीयत को खुश करता है, दस्त को साफ ला कर दिल को ताकत पहुँचाता है, कफ प्यास पित्त और लोहू के विकारों को दूर करता है तथा दाह को मिटाता है, दो तोले चन्दन का शर्वत दश तोले पानी के साथ पीना चाहिये तथा गुलाव वा केवड़े का शर्वत भी इसी रीति से पीना अच्छा है इस के पीने से गर्मी शान्त होकर कलेजा तर रहता है, यदि दो तोले नींवू का शर्वत दश तोले जल में डाल कर पिया जावे तो भी गर्मी शान्त हो जाती है और भूख भी दुगुनी लगती है, चालीस तोले मिश्री की चासनी में वीस नींवुओं के रस को डाल कर वनाने से नींवू का शर्वत अच्छा वन सकता है, चार तोले भर अनार का शर्वत वीस तोले पानी में डालकर पीने से वह नज़ले को मिटा कर दिमाग को ताकत पहुँचाता है, इसी रीति से सन्तरा तथा नेचू का शर्वत भी पीने से इन दिनों में वहुत फायदा करता है।

जिस स्थान में असली शर्वत न मिल सके और गर्मी का अधिक ज़ोर दिखाई देता हो तो यह उपाय करना चाहिये कि–पचीस वादामों की गिरी निकाल कर उन्हें एक घण्टेतक पानी में भीगने दे, पीछे उन का लाल छिलका दूर कर तथा उन्हें घोट कर

१–परन्तु मन्दाग्निवाले पुरुषों को इसे नहीं खाना चाहिये ॥

एक गिलास भर जल बनावे और उस में मिश्री डाल कर पी जावे, ऐसा करने से गर्मी बिलकुल न सतावेगी और दिमाग को तरी भी पहुँचेगी।

गरीब और साधारण लोग ऊपर कहे हुए शर्वतों की एवज़ में इमली का पानी कर उस में खजूर अथवा पुराना गुड़ मिला कर पी सकते हैं, यद्यपि इमली सदा खाने के योग्य वस्तु नहीं है तो भी यदि प्रकृति के अनुकूल हो तो गर्मी की सख्त ऋतु में एक वर्ष की पुरानी इमली का शर्वत पीने में कोई हानि नहीं है किन्तु फायदा ही करता है, गेहूँ के फुलकों (पतली २ रोटियों) को इस के शर्वत में मींज कर (भिगो कर) खाने से भी फायदा होता है, दाह से पीड़ित तथा लू लगे हुए पुरुष के इमली के भीगे हुए गूदे में नमक मिला कर पैरों के तलवों और हथेलियों में मलने से तत्काल फायदा पहुँचता है अर्थात् दाह और लू की गर्मी शान्त हो जाती है।

इस ऋतु में खिले हुए सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला का धारण करना वा उन को सूंघना तथा सफेद चन्दन का लेप करना भी श्रेष्ठ है।

चन्दन, केवड़ा, गुलाब, हिना, खस, मोतिया, जुही और पनड़ी आदि के अतरों से बनाये हुए साबुन भी (लगाने से) गर्मी के दिनों में दिल को खुश तथा तर रखते हैं इस लिये इन साबुनों को भी प्रायः तमाम शरीर में स्नान करते समय लगाना चाहिये।

इस ऋतु में स्त्रीगमन १५ दिन में एक वार करना उचित है, क्योंकि इस ऋतु में स्वभाव से ही शरीर में शक्ति कम होजाती है॥

१–परन्तु ये सब ऋतु के अनुकूल पदार्थ उन्हीं पुरुषों को प्राप्त हो सकते हैं जिन्हों ने पूर्व भव में देव गुरु और धर्म की सेवा की है, इस भव में जिन पुरुषों का मन धर्म में लगा हुआ है और जो उदार स्वभाव हैं तथा वास्तव में उन्हीं का जन्म प्रशंसा के योग्य है, क्योंकि–देखो! शाल और दुशाले आदि उत्तमोत्तम वस्त्र, कड़े और कण्ठी आदि भूषण, सब प्रकार के वाहन और मोतियों के हार आदि सर्व पदार्थ धर्म की ही बदौलत लोगों को मिले हैं और मिल सकते हैं, परन्तु अफसोस है कि इस समय उस (धर्म) को मनुष्य बिलकुल भूले हुए हैं, इस समय में तो ऐसी व्यवस्था हो रही है कि–धनवान् लोग धन के नशे में पड़ कर धर्म को बिलकुल ही छोड़ बैठे हैं, वे लोग कहते हैं कि–हमें किसी की क्या परवाह है, हमारे पास धन है इसलिये हम जो चाहें सो कर सकते हैं इत्यादि, परन्तु यह उनकी महाभूल है, उन को अज्ञानता के कारण यह नहीं मालूम होता है कि–जिस से हम ने ये सब फल पाये हैं उस को हमें नमते रहना चाहिये और आगे के लिये पर लोक का मार्ग साफ करना चाहिये, देखो! जो धनवान् और धर्मवान् होता है उस की दोनों लोकों में प्रशंसा होती है, जिन्हों ने पूर्वभव में धर्म किया है उन्हीं को भोजन और वस्त्र आदि की तंगी नहीं रहती है अर्थात् पुण्यवानों को ही खान पान आदि सब बातों का सुभीता है, देखो! संसार में बहुत से लोग ऐसे भी हैं जिन को खानपान का भी सुख नहीं है, कहिये संसार में इस से अधिक और क्या तकलीफ होगी अर्थात् उन के दुःख का क्या अन्त हो सकता है कि जिन के लिये रोटी-तक का भी ठिकाना नहीं है, आदमी अन्य सब प्रकार के दुःख भुगत सकता है परन्तु रोटी का दुःख किसी से नहीं सहा जाता है, इसी लिये कहा जाता है कि हे भाइयो! धर्म पर सदा प्रेम रक्खो, वही तुम्हारा सच्चा मित्र है॥

इस ऋतु में अपथ्य—सिरका, खारी तीखे खट्टे और रूक्ष पदार्थों का सेवन, कसरत, धूप में फिरना और अग्नि के पास बैठना आदि कार्य रस को सुखाकर गर्मी को बढ़ाते हैं इस लिये इस ऋतु में इन का सेवन नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार गर्म मसाला, चटनियां, लाल मिर्च और तेल आदि पदार्थ सदा ही बहुत खाने से हानि करते हैं परन्तु इस ऋतु में तो ये (सेवन करने से) अकथनीय हानि करते हैं इस लिये इस ऋतु में इन सब का अवश्य ही त्याग करना चाहिये॥

वर्षा और प्रावृट् ऋतु का पथ्यापथ्य॥

चार महीने बरसात के होते हैं, मारवाड़ तथा पूर्व के देशों में आर्द्रा नक्षत्र से तथा दक्षिण के देशों में मृगशिर नक्षत्र से वर्षा की हवा का प्रारम्भ होता है, पूर्व बीते हुए ग्रीष्म में वायु का संचय हो चुका है, रस के सूख जाने से शक्ति घट चुकी है तथा जठराग्नि मन्द हो गई है, इस दशा में जब जलकणों के सहित बरसाती हवा चलती है तथा मेंह बरसता है तब पुराने जल में नया जल मिलता है, ठंढे पानी के बरसने से शरीर की गर्मी भाफ रूप होकर पित्त को बिगाड़ती है, ज़मीन की भाफ और खटासवाला पाक पित्त को बढ़ा कर वायु तथा कफ को दबाने का प्रयत्न करता है तथा बरसात का मैला पानी कफ को बढ़ा कर वायु और पित्त को दबाता है, इस प्रकार से इस ऋतु में तीनों दोषों का आपस में विरोध रहता है, इस लिये इस ऋतु में तीनों दोषों की शान्ति के लिये युक्तिपूर्वक आहार विहार करना चाहिये, इस का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

१–जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाले तथा सब दोषों को बराबर रखनेवाले खान पान का उपयोग करना चाहिये अर्थात् सब रस खाने चाहियें।

२–यदि हो सके तो ऋतु के लगते ही हलका सा जुलाब ले लेना चाहिये।

३–खुराक में वर्षभर का पुराना अन्न वर्त्तना चाहिये।

४–मूंग और अरहर की दाल का ओसावण बना कर उस में छाछ डाल कर पीना चाहिये, यह इस ऋतु में फायदेमन्द है।

५–दही में सञ्चल, सैंधा या सादा नमक डाल कर खाना बहुत अच्छा है, क्योंकि इस प्रकार से खाया हुआ दही इस ऋतु में वायु को शान्त करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा इस प्रकार से खाया हुआ दही हेमन्त ऋतु में भी पथ्य है।

१–बहुत से लोग मूर्खता के कारण गर्मी की ऋतु में दही खाना अच्छा समझते हैं, सो यह ठीक नहीं है, यद्यपि उक्त ऋतु में वह खाते समय तो ठंढा मालूम होता है परन्तु पचने के समय पित्त को बढ़ा कर कर उलटी अधिक गर्मी करता है, हां यदि इस ऋतु में दही खाया भी जावे तो मिश्री डाल कर युक्तिपूर्वक खाने से पित्त को शान्त करता है, किन्तु युक्ति के बिना तो खाया हुआ दही सब ही ऋतुओं में हानि करता है॥

६–छाछ, नींबू और कच्चे आम आदि खट्टे पदार्थ भी अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में अधिक पथ्य हैं ।

७–इन वस्तुओं का उपयोग भी प्रकृति के अनुसार तथा परिमाण मूजब करने से लाभ होता है अन्यथा हानि होती है ।

८–नदी तालाव और कुए के पानी में बरसात का मैला पानी मिल जाने से इन का जल पीने योग्य नहीं रहता है, इस लिये जिस कुए में वा कुण्ड में बरसाती पानी न मिलता हो उस का जल पीना चाहिये ।

९–बरसात के दिनों में पापड़, काचरी और अचार आदि क्षारवाले पदार्थ तथा भुजिये, वड़े, चीलड़े, वेढ़ई, कचोड़ी आदि स्नेहवाले पदार्थ अधिक फायदेमन्द हैं, इस लिये इन का सेवन करना चाहिये ।

१०–इस ऋतु में नमक अधिक खाना चाहिये ॥

इस ऋतु में अपथ्य—तलघर में बैठना, नदी या तालाव का गँदला जल पीना, दिन में सोना, धूप का सेवन और शरीर पर मिट्टी लगाकर कसरत करना, इन सब बातों से बचना चाहिये ।

इस ऋतु में रूक्ष पदार्थ नहीं खाने चाहियें, क्योंकि रूक्ष पदार्थ वायु को बढ़ाते हैं, ठंढी हवा नहीं लेनी चाहिये, कीचड़ और भीगी हुई पृथिवी पर नंगे पैर नहीं फिरना चाहिये, भीगे हुए कपड़े नहीं पहरने चाहियें, हवा और जल की बूंदों के सामने नहीं बैठना चाहिये, घर के सामने कीचड़ और मैलापन नहीं होने देना चाहिये, बरसात का जल नहीं पीना चाहिये और न उस में नहाना चाहिये, यदि नहाने की इच्छा हो तो शरीर में तैल की मालिस कर नहाना चाहिये, इस प्रकार से आरोग्यता की इच्छा रखने वालों को इन चार मासतक (प्रावृट् और वर्षा ऋतु में) वर्त्ताव करना उचित है ॥

शरद् ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

सब ऋतुओं में शरद् ऋतु रोगों के उपद्रव की जड़ है, देखो ! वैद्यकशास्त्रकारों का कथन है कि–"रोगाणां शारदी माता पिता तु कुसुमाकरः" अर्थात् शरद् ऋतु रोगों को पैदा करनेवाली माता है और वसन्त ऋतु रोगों को पैदा कर पालनेवाला पिता है, यह सब ही जानते हैं कि–सब रोगों में ज्वर राजा है और ज्वर ही इस ऋतु का मुख्य उपद्रव है, इसलिये इस ऋतु में बहुत ही सँभल कर चलना चाहिये, वर्षा ऋतु में सञ्चित हुआ पित्त इस ऋतु के ताप की गर्मी से शरीर में कुपित होकर बुखार को करता है तथा बरसात के कारण ज़मीन भीगी हुई होती है इसलिये उस से भी धूप के द्वारा जल की

१–यह कल्पसूत्र की टीका में लिखा है ॥

भाफ उठ कर हवा को विगाड़ती है, विशेष कर जो देश नीचे हैं अर्थात् जहां वरसात का पानी भरा रहता है वहां भाफ के अधिक उठने के कारण हवा अधिक विगड़ती है, वस यही ज़हरीली हवा ज्वर को पैदा करने वाली है, इस लिये शीतज्वर, एकान्तर, तिजारी और चौथिया आदि विषम ज्वरों की यही खास ऋतु है, ये सव ज्वर केवल पित्त के कुपित होने से होते हैं, वहुत से मनुष्यों की सेवा में तो ये ज्वर प्रतिवर्ष आकर हाजिरी देते हैं और वहुत से लोगों की सेवा को तो ये मुद्दततक उठाया करते हैं, जो ज्वर शरीर में मुद्दततक रहता है वह छोड़ता भी नहीं है किन्तु शरीर को मिट्टी में मिला कर ही पीछा छोड़ता है तथा रहने के समय में भी अनेक कष्ट देता है अर्थात् तिल्ली वढ़ जाती है, रोगी कुरूप हो जाता है तथा जव ज्वर जीर्णरूप से शरीर में निवास करता है तव वह वारंवार वापिस आता और जाता है अर्थात् पीछा नहीं छोड़ता है, इस लिये इस ऋतुमें वहुत ही सावधानता के साथ अपनी प्रकृति तथा ऋतु के अनुकूल आहार विहार करना चाहिये, इस का संक्षेप से वर्णन इस प्रकार से है कि:—

१–इस ऋतु में यथाशक्य पित्त को शान्त करने का उपाय करना चाहिये, पित्त को जीतने वा शान्त करने के मुख्य तीन उपाय हैं:—

(A)–पित्त के शमन करनेवाले खान पान से और दवा से पित्त को दवाना चाहिये।

(B) वमन और विरेचन के द्वारा पित्त को निकाल डालना चाहिये।

(C) फस्त खुलवा कर या जोंक लगवा कर खून को निकलवाना चाहिये।

२–वायु की प्रकृतिवाले को शरद् ऋतु में घी पीकर पित्त की शान्ति करनी चाहिये।

३–पित्त की प्रकृतिवाले को कडुए पदार्थ खानेपीने चाहियें, कडुए पदार्थों में नीम पर की गिलोय, नीम की भीतरी छाल, पित्तपापड़ा और चिरायता आदि उत्तम और गुण-

---

१–इस हवा को अंग्रेजी में मलेरिया कहते हैं तथा इस से उत्पन्न हुए ज्वर को मलेरिया फीवर कहते हैं॥

२–वहुत से प्रमादी लोग इस ऋतु में ज्वरादि रोगों से ग्रस्त होने पर भी अज्ञानता के कारण आहार विहार का नियम नहीं रखते हैं, वस इसी मूर्खता से वे अत्यन्त भुगत २ कर मरणान्त कष्ट पाते हैं॥

३–यदि वमन और विरेचन का सेवन किया जावे तो उसे पथ्य से करना उचित है, क्योंकि पुरुष का विरेचन (जुलाव) और स्त्री का जापा (प्रसूतिसमय) समान होता है इसलिये पूर्ण वैद्य की सम्मति से अथवा आगे इसी ग्रन्थ में लिखी हुई विरेचन की विधि के अनुसार विरेचन लेना ठीक है, हां इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि–जव विरेचन लेना हो तव शरीर में घृत की मालिस करा के तथा घी पीकर तीन पांच या सात दिनतक पहिले वमन कर फिर तीन दिन ठहर कर पीछे विरेचन लेना चाहिये, घी पीने की मात्रा नित्य की दो तोले से लेकर चार तोलेतक की काफी है, इन सव वातों का वर्णन आगे किया जायगा॥

४–यह तीसरा उपाय तो विरले लोगों से ही भाग्ययोग से वन पड़ता है, क्योंकि पहिले जो दो उपाय हैं वे तो सहज और सव से हो सकने योग्य हैं परन्तु तीसरा उपाय कठिन अर्थात् सव से हो सकने योग्य नहीं है॥

कारी पदार्थ हैं, इसलिये इन में से किसी एक चीज़ की फँकी ले लेना चाहिये, अथवा रात को भिगो कर प्रातःकाल उस का क्वाथ कर (उबाल कर) छान कर तथा ठंढा कर मिश्री डालकर पीना चाहिये, इस दवा की मात्रा एक रुपये भर है, इस से ज्वर नहीं आता है और यदि ज्वर हो तो भी चला जाता है, क्योंकि इस दवा से पित्त की शान्ति हो जाती है।

४-पित्त की प्रकृतिवाले के लिये दूसरा इलाज यह भी है कि वह दूध और मिश्री के साथ चावलों को खावे, क्योंकि इस के खानेसे भी पित्त शान्त हो जाता है।

५-पित्त की प्रकृतिवाले को पित्तशामक जुलाब भी ले लेना चाहिये, उस से भी पित्त निकल कर शान्त हो जावेगा, वह जुलाब यह है कि-अमृतसर की हरड़ें अथवा छोटी हरड़ें अथवा निसोतकी छाल, इन तीनों चीजों में से किसी एक चीज़ की फंकी बूरा मिला कर लेनी चाहिये तथा दाल भात या कोई पतला पदार्थ पथ्य में लेना चाहिये, ये सब साधारण दस्त लानेवाली चीजें हैं।

६-इस ऋतु में मिश्री, बूरा, कन्द, कमोद वा साठी चावल, दूध, ऊख, सेंधा नमक (थोड़ा), गेहू, जौं और मूंग पथ्य हैं, इस लिये इन को खाना चाहिये।

७-जिस पर दिन में सूर्य की किरणें पड़ें और रात को चन्द्रमा की किरणें पड़ें, ऐसा नदी तथा तालाब का पानी पीना पथ्य है।

८-चन्दन, चन्द्रमा की किरणें, फूलों की मालायें और सफेद वस्त्र, ये भी शरद् ऋतु में पथ्य हैं।

९-वैद्यकशास्त्र कहता है कि-ग्रीष्म ऋतु में दिन को सोना, हेमन्त ऋतु में गर्म और पुष्टिकारक खुराक का खाना और शरद् ऋतु में दूध में मिश्री मिला कर पीना चाहिये, इस प्रकार वर्त्ताव करने से प्राणी नीरोग और दीर्घायु होता है।

१०-रक्तपित्त के लिये जो २ पथ्य कहा है वह २ इस ऋतु में भी पथ्य है ॥

इस ऋतु में अपथ्य—ओस, पूर्व की हवा, क्षार, पेट भर भोजन, दही, खिचड़ी, तेल, खटाई, सोंठ और मिर्च आदि तीखे पदार्थ, हिंग, खारे पदार्थ, अधिक चरबीवाले पदार्थ, सूर्य तथा अग्नि का ताप, गरमागरम रसोई, दिन में सोना और भारी खुराक इन सब का त्याग करना चाहिये ॥

१-इस ऋतु में पेट भर खाने से बहुत हानि होती है, वैद्यकशास्त्र में कार्त्तिक वदि अष्टमी से लेकर मृगशिर के आठ दिन बाकी रहने तक दिनों को यमदाढ़ कहा गया है, जो पुरुष इन दिनों में थोड़ा और हलका भोजन करता है वही यम की दाढ़ से बचता है ॥

२-शरीर की नीरोगता के लिये उक्त बातों का जो त्याग है वह भी तप है, क्योंकि इच्छा का जो रोधन करना (रोकना) है उसी का नाम तप है ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु का पथ्यापथ्य ॥

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु मनुष्यों की ताकत को खींच लेती है उसी प्रकार हेमन्त और शिशिर ऋतु ताकत की वृद्धि कर देती है, क्योंकि सूर्य पदार्थों की ताकत को खींचने वाला और चन्द्रमा ताकत को देने वाला है, शरद् ऋतु के लगते ही सूर्य दक्षिणायन हो जाता है तथा हेमन्त में चन्द्रमा की शीतलता के वढ़ जाने से मनुष्यों में ताकत का वढ़ना प्रारंभ हो जाता है, सूर्य का उदय दरियाव में होता है इसलिये वाहर ठंढ के रहने से भीतर की जठराग्नि तेज़ होने से इस ऋतु में खुराक अधिक हज़म होने लगती है, गर्मी में जो सुस्ती और शीतकाल में तेज़ी रहती है उस का भी यही कारण है, इस ऋतु के आहार विहार का संक्षेप से वर्णन इस प्रकार है:—

१जिस की जठराग्नि तेज़ हो उस को इस ऋतु में पौष्टिक खुराक खानी चाहिये तथा मन्दाग्निवाले को हलकी और थोड़ी खुराक खानी चाहिये, यदि तेज़ अग्निवाला पुरुष पूरी और पुष्टिकारक खुराक को न खावे तो वह अग्नि उस के शरीर के रस और रुधिर आदि को सुखा डालती है, परन्तु मन्दाग्निवालों को पुष्टिकारक खुराक के खाने से हानि पहुँचती है, क्योंकि ऐसा करने से अग्नि और भी मन्द हो जाती है तथा अनेक रोग उत्पन्न हो जाते ह।

२—इस ऋतु में मीठे खट्टे और खारी पदार्थ खाने चाहियें, क्योंकि मीठे रस से जव कफ वढ़ता है तव ही वह प्रवल जठराग्नि शरीर का ठीक १ पोषण करती है, मीठे रस के साथ रुचि को पैदा करनें के लिये खट्टे और खारी रस भी अवश्य खाने चाहियें।

३—इन तीनों रसों का सेवन अनुक्रम से भी करने का विधान है, क्योंकि ऐसा लिखा है—हेमन्त ऋतु के साठ दिनों में से पहिले वीस दिन तक मीठा रस अधिक खाना चाहिये, वीच के वीस दिनों में खट्टा रस अधिक खाना चाहिये तथा अन्त के वीस दिनों में खारा रस अधिक खाना चाहिये, इसी प्रकार खाते समय मीठे रस का ग्रास पहिले लेना चाहिये, पीछे नींवू, कोकम, दाल, शाक, राइता, कढ़ी और अचार आदि का ग्रास लेना चाहिये, इस के वाद चटनी, पापड़ और खीचिया आदि पदार्थ (अन्त में) खाने चाहियें, यदि इस क्रम से न खाकर उलट पुलट कर उक्त रस खाये जावें तो हानि होती है, क्योंकि शरद् ऋतु के पित्त का कुछ अंश हेमन्त ऋतु के पहिले पक्षतक में शरीर में रहता है इस लिये पहिले खट्टे और खारे रस के खाने से पित्त कुपित होकर हानि होती है, इस लिये इस का अवश्य स्मरण रखना चाहिये।

४—अच्छे प्रकार पोषण करनेवाली (पुष्टिकारक) खुराक खानी चाहिये।

५—स्त्री सेवन, तेल की मालिश, कसरत, पुष्टिकारक दवा, पौष्टिक खुराक, पाक, धूप

का सेवन, ऊन आदि का गर्म कपड़ा, अँगीठी (सिगड़ी) से मकान को गर्म रखना आदि वातें इस ऋतु में पथ्य हैं ॥

हेमन्त और शिशिर ऋतु का प्रायः एक सा ही वर्त्ताव है, ये दोनों ऋतुयें वीर्य को सुधारने के लिये वहुत अच्छी हैं, क्योंकि इन ऋतुओं में जो वीर्य और शरीर को पोषण दिया जाता है वह वाकी के आठ महीने तक ताकत रखता है अर्थात् वीर्य पुष्ट रहता है ।

यद्यपि सवही ऋतुओं में आहार और विहार के नियमों का पालन करने से शरीर का सुधार होता है परन्तु यह सव ही जानते हैं कि वीर्य के सुधार के विना शरीर का सुधार कुछ भी नहीं हो सकता है, इस लिये वीर्य का सुधार अवश्य करना चाहिये और वीर्य के सुधारने के लिये शीत ऋतु, शीतल प्रकृति और शीतल देश विशेष अनुकूल होता है, देखो ! ठंढी तासीर, ठंढी मौसम और ठंढे देश के वसने वालों का वीर्य अधिक दृढ़ होता है ।

यद्यपि यह तीनों प्रकार की अनुकूलता इस देश के निवासियों को पूरे तौर से प्राप्त नहीं है, क्योंकि यह देश सम शीतोष्ण है तथापि प्रकृति और ऋतु की अनुकूलता तो इस देश के भी निवासियों के भी आधीन ही है, क्योंकि अपनी प्रकृति को ठंढी अर्थात् दृढ़ता और सत्त्वगुण से युक्त रखना यह वात स्वाधीन ही है, इसी प्रकार वीर्य को सुधारने के लिये तथा गर्भाधान करने के लिये शीतकाल को पसन्द करना भी इन के स्वाधीन ही है, इसलिये इस ऋतु में अच्छे वैद्य वा डाक्टर की सलाह से पौष्टिक दवा, पाक अथवा खुराक के खाने से वहुत ही फायदा होता है ।

जायफल, जावित्री, लौंग, वादाम की गिरी और केशर को मिलाकर गर्म किये हुए दूध का पीना भी वहुत फायदा करता है ।

वादाम की कतली वा वादाम की रोटी का खाना वीर्य पुष्टि के लिये वहुत ही फायदे मन्द है ।

इन ऋतुओं में अपथ्य—जुलाव का लेना, एक समय भोजन करना, वासी रसोई का खाना, तीखे और तुर्स पदार्थों का अधिक सेवन करना, खुली जगह में सोना, ठंढे पानी से नहाना और दिनमें सोना, ये सव वातें इन ऋतुओं में अपथ्य हैं, इसलिये इन का त्याग करना चाहिये ॥

यह जो ऊपर छःओं ऋतुओं का पथ्यापथ्य लिखा गया है वह नीरोग प्रकृतिवालों के लिये समझना चाहिये, किन्तु रोगी का पथ्यापथ्य तो रोग के अनुसार होता है, वह संक्षेप से आगे लिखेंगे ।

पथ्यापथ्य के विषय में यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि–देश और अपनी प्रकृति को पहचान कर पथ्य का सेवन करना चाहिये तथा अपथ्य का त्याग करना चाहिये, इस विषय में यदि किसी विशेष बात का विवेचन करना हो तो चतुर वैद्य तथा डाक्टरों की सलाह से कर लेना चाहिये, यह विषय बहुत गहन (कठिन) है, इस लिये जो इस विद्या के जानकार हों उन की संगति अवश्य करनी चाहिये कि जिस से शरीर की आरोग्यता के नियमों का ठीक २ ज्ञान होने से सदा आरोग्यता बनी रहे तथा समयानुसार दूसरों का भी कुछ उपकार हो सके, वैसे भी बुद्धिमानों की संगति करने से अनेक लाभ ही होते हैं ॥

यह चतुर्थ अध्याय का ऋतुचर्यावर्णन नामक सातवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

आठवां प्रकरण—दिनचर्या वर्णन ॥

प्रातःकाल का उठना ॥

यह बात तो स्पष्टतया प्रकट ही है कि–स्वाभाविक नियम के अनुसार सोने के लिये रात और कार्य करने के लिये दिन नियत है, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि–प्रातःकाल जब चार घड़ी रात बाकी रहे तब ही नींद को छोड़कर जागृत हो जाना अव्वल दर्जे का काम है, यदि उस समय अधिक निद्रा आती हो अथवा उठने में कुछ अड़चल मालूम होती हो तो दूसरा दर्जा यह है कि दो घड़ी रात रहने पर उठना चाहिये और तीसरा दर्जा सूर्य चढ़े बाद उठने का है, परन्तु यह दर्जा निकृष्ट और हानिकारक है, इसलिये आयु की रक्षा के लिये मनुष्यों को रात्रि के चौथे पहर में आलस्य को त्याग कर अवश्य उठना चाहिये, क्योंकि जल्दी उठने से मन उत्साह में रहता है, दिन में काम काज अच्छी तरह होता है, बुद्धि निर्मल रहती है और स्मरणशक्ति तेज़ रहती है, पढ़नेवालों के लिये भी यही (प्रातःकाल का) समय बहुत श्रेष्ठ है, अधिक क्या कहें इस विषय के लाभों के वर्णन करने में बड़े २ ज्ञानी पूर्वाचार्य तत्त्ववेत्ताओं ने अपने २ ग्रन्थों में लेखनी को खूब ही दौड़ाया है, इस लिये चार घड़ी के तड़के उठने का सब मनुष्यों को अवश्य अभ्यास डालना चाहिये परन्तु यह भी स्मरण रहे कि विना जल्दी सोये मनुष्य प्रातःकाल चार बजे कभी नहीं उठ सकता है, यदि कोई जल्दी सोये उक्त समय में उठ भी जावे तो इस से नाना प्रकार की हानियां होती हैं अर्थात् शरीर दुर्बल होजाता है, शरीर में आलस्य जान पड़ता है, आंखों में जलन सी रहती है, शिर में दर्द रहता है तथा भोजन पर भी ठीक रुचि नहीं रहती है, इस लिये रात को नौ वा दश बजे पर अवश्य

सो रहना चाहिये कि जिस से प्रातःकाल में विना दिक़त के उठ सके, क्योंकि प्राणी मात्र को कम से कम छः घण्टे अवश्य सोना चाहिये, इस से कम सोने में मस्तक का रोग आदि अनेक विकार उत्पन्न होजाते हैं, परन्तु आठ घण्टे से अधिक भी नहीं सोना चाहिये क्योंकि आठ घंटे से अधिक सोने से शरीर में आलस्य वा भारीपन जान पड़ता है और कार्यों में भी हानि होने से दरिद्रता घेर लेती है, इसलिये उचित तो यही है कि रात को नौ या अधिक से अधिक दश बजे पर अवश्य सो रहना चाहिये तथा प्रातःकाल चार घड़ी के तड़के अवश्य उठना चाहिये, यदि कारणवश चार घड़ी के तड़के का उठना कदाचित् न निभसके तो दो घड़ी के तड़के तो अवश्य उठना ही चाहिये।

प्रातःकाल उठते ही पहिले स्वरोदय का विचार करना चाहिये, यदि चन्द्र स्वर चलता हो तो बांयां पांव और सूर्य स्वर चलता हो तो दाहिना पांव ज़मीन पर रख कर थोड़ी देरतक विना ओठ हिलाये परमेष्ठी का स्मरण करना चाहिये, परन्तु यदि सुषुम्ना स्वर चलता हो तो पलँग पर ही बैठे रहकर परमेष्ठी का ध्यान करना ठीक है क्योंकि यही समय योगाभ्यास तथा ईश्वराराधन अथवा कठिन से कठिन विषयों के विचारने के लिये नियत है, देखो! जितने सुजन और ज्ञानी लोग आजतक हुए हैं वे सब ही प्रातःकाल उठते थे परन्तु कैसे पश्चात्ताप का विषय है कि इन सब अकथनीय लाभों का कुछ भी विचार न कर भारतवासी जन करवटें ही लेते २ नौ बजा देते हैं इसी का यह फल है कि वे नाना प्रकार के क्लेशों में सदा फँसे रहते हैं ॥

प्रातःकाल का वायुसेवन ॥

प्रातःकाल के वायु का सेवन करने से मनुष्य हृष्ट पुष्ट बना रहता है, दीर्घायु और चतुर होता है, उस की बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण हो जाती है कि कठिन से कठिन आशय कोभी सहज में ही जान लेता है और सदा नीरोग बना रहता है, इसी (प्रातःकाल के) समय बस्ती के बाहर बागों की शोभा के देखने में बड़ा आनंद मिलता है, क्योंकि इसी समय वृक्षों से जो नवीन और स्वच्छ प्राणप्रद वायु निकलता है वह हवा के सेवन के लिये बाहर जाने वालों की श्वास के साथ उन के शरीर के भीतर जाता है जिस के प्रभाव से मन कली की भांति खिल जाता और शरीर प्रफुल्लित हो जाता है, इसलिये हे प्यारे भ्रातृगणो। हे सुजनो! और हे घर की लक्ष्मियो! प्रातःकाल तड़के जागकर स्वच्छ वायु के सेवन का अभ्यास करो कि जिस से तुम को व्याधिजन्य क्लेश न सहने पड़ें और सदा तुम्हारा मन प्रफुल्लित और शरीर नीरोग रहे, देखो। उक्त समय में बुद्धि भी निर्मल

१-स्वरोदय के विषय में इसी ग्रन्थ के पांचवें अध्याय में वर्णन किया जावेगा, वहां इस का सम्पूर्ण विषय देख लेना चाहिये ॥

रहती है इसलिये उसके द्वारा उभय लोकसम्बंधी कार्यों का विचार कर तुम अपने समय को लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों में व्यय कर सफल कर सकते हो।

देखो ! प्रातःकाल चिड़ियां भी कैसी चुहचुहातीं, कोयलें भी कू कू करतीं मैना तोता आदि सब पक्षी भी मानु उस परमेष्ठी परमेश्वर के स्मरण में चित्त लगाते और मनुष्यों को जगाते हैं, फिर कैसे शोक की बातहै कि–हम मनुष्य लोग सब से उत्तम होकर भी पक्षी पखेरू आदि से भी निषिद्ध कार्य करें और उन के जगाने पर भी चैतन्य न हों॥

प्रातःकाल का जलपान ॥

ऊपर कहे हुए लाभों के अतिरिक्त प्रातःकाल के उठने से एक यह भी वड़ा लाभ हो सकता है कि–प्रातःकाल उठकर सूर्य के उदय से प्रथम थोड़ा सा शीतल जल पीने से ववासीर और ग्रहणी आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

वैद्यक शास्त्रों में इस (प्रातःकाल के) समय में नाक से जल पीने के लिये आज्ञा दी है क्योंकि नाक से जल पीने से बुद्धि तथा दृष्टि की वृद्धि होती है तथा पीनस आदि रोग जाते रहते हैं॥

शौच अर्थात् मलमूत्र का त्याग ॥

प्रातःकाल जागकर आधे मील की दूरी पर मैदान में मल का त्याग करने के लिये जाना चाहिये, देखो ! किसी अनुभवी ने कहा है कि–"ओढे सोवै ताजा खावै, पाव कोस मैदान में जावे। तिस घर वैद्य कभी नहिं आवै" इस लिये मैदान में जाकर निर्जीव साफ ज़मीनपर मस्तक को ढांक कर मल का त्याग करना चाहिये, दूसरे के किये हुए मलमूत्र पर मल मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दाद खाज और सुज़ाख आदि रोगों के हो जाने का सम्भव है, मलमूत्र का त्याग करते समय वोलना नहीं

१–इस की यह विधि है कि–ऊपर लिखे अनुसार जागृत होकर तथा परमेष्ठी का ध्यान कर आठ अञ्जलि, अर्थात् आध सेर पानी नाक से नित्य पीना चाहिये, यदि नाक से न पिया जासके तो मुँह से ही पीना चाहिये, फिर आध घण्टे तक वांयें कर वट से लेट जाना चाहिये परन्तु निद्रा नहीं लेनी चाहिये, फिर मल मूत्र के त्याग के लिये जाना चाहिये, इस (जलपान) का गुण वैद्यक शास्त्रों में बहुत ही अच्छा लिखा है अर्थात् इस के सेवन से आयु बढ़ता है तथा हरस, शोथ, दस्त, जीर्ण ज्वर, पेट का रोग, कोढ़, मेद, मूत्र का रोग, रक्तविकार, पित्तविकार तथा कान आंख गले और शिर का रोग मिटता है, पानी यद्यपि सामान्य पदार्थ है अर्थात् सब ही की प्रकृति के लिये अनुकूल है परन्तु जो लोग समय विताकर अर्थात् देरी कर उठते हैं उन लोगों के लिये तथा रात्रि में खानपान के त्यागी पुरुषों के लिये एवं कफ और वायु के रोगों में सन्निपात में तथा ज्वर में प्रातःकाल में जलपान नहीं करना चाहिये, रात्रि में जो खान पान के त्यागी पुरुष हैं उन को यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो लाभ रात्रि में खानपान के त्याग में है उस लाभका हज़ार वां भाग भी प्रातःकाल के जलपान में नहीं है, इसलिये जो रात के खान पान के त्यागी नहीं हैं उन को उषापान (प्रातःकाल में जलपीना) कर्त्तव्य है॥

चाहिये, क्योंकि इस समय बोलने से दुर्गन्धि मुख में प्रविष्ट होकर रोगों का कारण होती है तथा दूसरी तरफ ध्यान होने से मलादि की शुद्धि भी ठीक रीतिसे नहीं होती है, मलमूत्र का त्याग बहुत बल करके नहीं करना चाहिये।

मल का त्याग करने के पश्चात् गुदा और लिंग आदि अंगों को जल से खूब धोकर साफ करना चाहिये।

जो मनुष्य सूर्योदय के पीछे (दिन चढ़ने पर) पाखाने जाते हैं उन की बुद्धि मलीन और मस्तक न्यून बलवाला हो जाता है तथा शरीर में भी नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं।

बहुत से मूर्ख मनुष्य आलस्य आदि में फँस कर मल मूत्र आदि के वेग को रोक लेते हैं, यह बड़ी हानिकारक बात है, क्योंकि–इस से मूत्रकृच्छ्र शिरोरोग तथा पेड़ू पीठ और पेट आदि में दर्द होने लगता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु मल के रोकने से अनेक उदावर्त्त आदि रोगों की उत्पत्ति होती है, इस लिये मल और मूत्र के वेग को भूल कर भी नहीं रोकना चाहिये, इसी प्रकार छींक डकार हिचकी और अपान वायु आदि के वेग को भी नहीं रोकना चाहिये, क्योंकि इन के वेग को रोकने से भी अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है।

मलमूत्र के त्याग करने के पीछे मिट्टी और जल से हाथ और पांवों को भी खूब स्वच्छता के साथ धोकर शुद्ध कर लेना चाहिये॥

मुखशुद्धि ॥

यदि प्रत्याख्यान हो तो उस की समाप्ति होने पर मुख की शुद्धि के लिये नीम, खैर, बबूल, आक, पियाबांस, आमला, सिरोहा, करञ्ज, वट, महुआ और मौलसिरी आदि दूध वाले वृक्षों की दाँतोन करे, दाँतोन एक बालिस्त लंबी और अंगुली के बराबर मोटी होनी चाहिये, उस की छाल में कीड़ा या कोई विकार नहीं होना चाहिये तथा वह गाँठ दार भी नहीं होनी चाहिये, दाँतोन करने के पीछे सेंधानमक, सोंठ और भुना हुआ जीरा, इन तीनोंको पीस तथा कपड़ छान कर रक्खे हुए मञ्जन से दाँतों को माँजना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य दाँतोन नहीं करते हैं उन के मुँह में दुर्गन्ध आने लगती है और जो प्रतिदिन

१–सूर्य का उदय हो जाने से पेट में गर्मी समाकर मल शुष्क हो जाता है उसके शुष्क होने से मगज़ में खुश्की और गर्मी पहुँचती है, इसलिये मस्तक न्यून बलवाला होजाता है॥

२–भूंख, प्यास, छींक, डकार, मल का वेग, मूत्र का वेग, अपानवायुका वेग, जम्भा (जमुहाई) आंसू, वमन, वीर्य (कामेच्छा), श्वास और निद्रा, ये १२ वेग शरीर में स्वाभाविक उत्पन्न होते हैं, इसलिये इन के वेग को रोकना नहीं चाहियें, क्योंकि इन वेगों के रोकने से उदावर्त्त आदि अनेक रोग होते हैं, (देखो वैद्यक ग्रन्थों में उदावर्त्त रोग का प्रकरण)॥

मञ्जन नहीं लगाते हैं उन के दाँतों में नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं अर्थात् कभी २ वादी के कारण मसूड़े फूल जाते हैं, कभी २ रुधिर निकलने लगता है और कभी २ दाँतों में दर्द भी होता है, दाँतों के मलीन होने से मुख की छवि बिगड़ जाती है तथा मुख में दुर्गन्ध आने से सभ्य मण्डली में (बैठने से) निन्दा होती है, इस लिये दाँतोन तथा मञ्जन का सर्वदा सेवन करना चाहिये, तत्पश्चात् स्वच्छ जल से मुख को अच्छे प्रकार से साफ करना चाहिये परन्तु नेत्रों को गर्म जल से कभी नहीं धोना चाहिये क्योंकि गर्म जल नेत्रों को हानि पहुँचाता है ॥

दाँतोन करने का निषेध—अजीर्ण, वमन, दमा, ज्वर, लकवा, अधिक प्यास, मुखपाक, हृदयरोग, शीर्ष रोग, कर्णरोग, कंठरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, हिचकी और खांसी की बीमारीवाले को तथा नशे में दाँतोन नहीं करना चाहिये ॥

दाँतों के लिये हानिकारक कार्य—गर्म पानी से कुल्ले करना, अधिक गर्म रोटी को खाना, अधिक बर्फ का खाना या जल के साथ पीना और गर्म चीज़ खाकर शीघ्र ही ठंढी चीज़ का खाना या पीना, ये सब कार्य दाँतों को शीघ्र ही बिगाड़ देते हैं तथा कमज़ोर कर देते हैं इस लिये इन से बचना चाहिये ॥

व्यायाम अर्थात् कसरत ॥

व्यायाम भी आरोग्यता के रखने में एक आवश्यक कार्य है, परन्तु शोक वा पश्चात्ताप का विषय है कि भारत से इस की प्रथा बहुत कुछ तो उठ गई तथा उठती चली जाती है, उस में भी हमारे मारवाड़ देश में अर्थात् मारवाड़ के निवासी जनसमूह में तो इस की प्रथा बिलकुल ही जाती रही ।

आजकल देखा जाता है कि भद्र पुरुष तो इस का नामतक नहीं लेते हैं किन्तु वे ऐसे (व्यायाम करनेवाले) जनों को असभ्य (नाशाइस्तह) बतलाते और उन्हें तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, केवल यही कारण है कि–जिस से प्रतिदिन इस का प्रचार कम ही होता चला जाता है, देखो ! एक समय इस आर्यावर्त्त देश में ऐसा था कि जिस में महावीर के पिता सिद्धार्थ राजा जैसे पुरुष भी इस अमृतरूप व्यायाम का सेवन करते थे[1] अर्थात् उस समय में यह आरोग्यता के सर्व उपायों में प्रधान और शिरोमणि उपाय गिना जाता था और उस समय के लोग "एक तन दुरुस्ती हजार नियामत" इस वाक्य के तत्त्व को अच्छे प्रकार से समझते थे ।

विचार कर देखो तो मालूम होगा कि मनुष्य के शरीर की बनावट घड़ी अथवा दूसरे यन्त्रों के समान है, यदि घड़ी को असावधानी से पड़ी रहने दें, कभी न झाड़ें फूंकें और

१–इस विषय का पूरा वर्णन कल्पसूत्र की लक्ष्मीवल्लभी टीका में किया गया है, वहां देख लेना चाहिये॥

न उस के पुर्जों को साफ करावें तो थोड़े ही दिनों में वह बहुमूल्य घड़ी निकम्मी हो जावेगी, उस के सब पुर्जे विगड़ जावेंगे और जिस प्रयोजन के लिये वह बनाई गई है वह कदापि सिद्ध न होगा, बस ठीक यही दशा मनुष्य के शरीर की भी है, देखो! यदि शरीर को स्वच्छ और सुथरा बनाये रहें, उस को उमंग और साहस में नियुक्त रक्खें तथा स्वास्थ्य रक्षा पर ध्यान देते रहें तो सम्पूर्ण शरीर का बल यथावत् बना रहेगा और शरीरस्थ प्रत्येक वस्तु जिस कार्य के लिये बनी हुई है उस से वह कार्य ठीक रीति से होता रहेगा परन्तु यदि ऊपर लिखी बातों का सेवन न किया जावे तो शरीरस्थ सब वस्तुयें निकम्मी हो जावेंगी और स्वाभाविक नियमानुकूल रचना के प्रतिकूल फल दीखने लगेगा अर्थात् जिन कार्यों के लिये यह मनुष्य का शरीर बना है वे कार्य उस से कदापि सिद्ध नहीं होंगे।

घड़ी के पुर्जों में तेल के पहुँचने के समान शरीर के पुर्जों में (अवयवों में) रक्त (खून) पहुँचने की आवश्यकता है, अर्थात् मनुष्य का जीवन रक्त के चलने फिरने पर निर्भर है, जिस प्रकार कूर्चिका (कुची) आदि के द्वारा घड़ी के पुर्जों में तेल पहुँचाया जाता है उसी प्रकार व्यायाम के द्वारा शरीर के सब अवयवों में रक्त पहुँचाया जाता है अर्थात् व्यायाम ही एक ऐसी वस्तु है कि जो रक्त की चाल को तेज़ बना कर सब अवयवों में यथावत् रक्त को पहुँचा देती है।

जिस प्रकार पानी किसी ऐसे वृक्ष को भी जो शीघ्र सूख जानेवाला है फिर हरा भरा कर देता है उसी प्रकार शारीरिक व्यायाम भी शरीर को हरा भरा रखता है अर्थात् शरीर के किसी भाग को निकम्मा नहीं होने देता है, इसलिये सिद्ध है कि–शारीरिक बल और उस की दृढ़ता के रहने के लिये व्यायाम की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि रुधिर की चाल को ठीक रखनेवाला केवल व्यायाम है और मनुष्य के शरीर में रुधिर की चाल उस नहर के पानी के समान है जो कि किसी बाग में हर पटरी में होकर निकलता हुआ सम्पूर्ण वृक्षों की जड़ों में पहुँच कर तमाम बाग को सींच कर प्रफुल्लित करता है, प्रिय पाठक गण! देखो! उस बाग में जितने हरे भरे वृक्ष और रंग विरंगे पुष्प अपनी छवि को दिखलाते हैं और नाना भाँति के फल अपनी २ सुन्दरता से मन को मोहित करते हैं वह सब उसी पानी की महिमा है, यदि उस की नालियां न खोली जातीं तो सम्पूर्ण बाग के वृक्ष और बेल बूटे मुरझा जाते तथा फूल फल कुम्हलाकर शुष्क हो जाते कि जिस से उस आनंदबाग में उदासी बरसने लगती और मनुष्यों के नेत्रों को जो उन के विलोकन करने अर्थात् देखने से तरावट व सुख मिलता है उस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, ठीक यही दशा शरीररूपी बाग की रुधिररूपी पानी के साथ में समझनी चाहिये, सुजनो! सोचो तो सही कि–इसी व्यायाम के बल से प्राचीन भारतवासी पुरुष नीरोग,

सुडौल, बलवान् और योद्धा हो गये हैं कि जिन की कीर्त्ति आजतक गाई जाती है, क्या किसी ने श्रीकृष्ण, राम, हनुमान्, भीमसेन, अर्जुन और बालि आदि योद्धाओं का नाम नहीं सुना है कि–जिन की ललकार से सिंह भी कोसों दूर भागते थे, केवल इसी व्यायाम का प्रताप था कि भारतवासियों ने समस्त भूमण्डल को अपने आधीन कर लिया था परन्तु वर्त्तमान समय में इस अभागे भारत में उस वीरशक्ति का केवल नाम ही रह गया है।

बहुत से लोग यह कहते हैं कि–हमें क्या योद्धा बन कर किसी देश को जीतना है वा पहलवान बन कर किसी से मल्लयुद्ध (कुश्ती) करना है जो हम व्यायाम के परिश्रम को उठावें इत्यादि, परन्तु यह उन की बड़ी भारी भूल है क्योंकि देखो! व्यायाम केवल इसी लिये नहीं किया जाता है कि–मनुष्य योद्धा वा पहलवान बने, किन्तु अभी कह चुके हैं कि–इस से रुधिर की गति के ठीक रहने से आरोग्यता बनी रहती है और आरोग्यता की अभिलाषा मनुष्यमात्र को क्या किन्तु प्राणिमात्र को होती है, यदि इस में आरोग्यता का गुण न होता तो प्राचीन जन इस का इतना आदर कभी न करते जितना कि उन्होंने किया है, सत्य पूछो तो व्यायाम ही मनुष्य का जीवन रूप है अर्थात् व्यायाम के विना मनुष्य का जीवन कदापि सुस्थिर दशा में नहीं रह सकता है, क्योंकि देखो! इस के अभ्यास से ही अन्न शीघ्र पच जाता है, भूख अच्छे प्रकार से लगती है, मनुष्य शर्दी गर्मी का सहन कर सकता है, वीर्य सम्पूर्ण शरीर में रम जाता है जिससे शरीर शोभायमान और बलयुक्त हो जाता है, इन बातों के सिवाय इस के अभ्यास से ये भी लाभ होते हैं कि–शरीर में जो मेद की वृद्धि और स्थूलता हो जाती है वह सब जाती रहती है, दुर्बल मनुष्य किसी कदर मोटा हो जाता है, कसरती मनुष्य के शरीर में प्रतिसमय उत्साह बना रहता है और वह निर्भय हो जाता है अर्थात् उस को किसी स्थान में भी जाने में भय नहीं लगता है, देखो! व्यायामी पुरुष पहाड़, खोह, दुर्ग, जंगल और संग्रामादि भयंकर स्थानों में बेखटके चले जाते हैं और अपने मन के मनोरथों को सिद्ध कर दिखलाते और गृहकार्यों को सुगमता से कर लेते हैं और चोर आदि को घर में नहीं आने देते हैं, बल्कि सत्य तो यह है कि–चोर उस मार्ग होकर नहीं निकलते हैं जहां व्यायामी पुरुष रहता है, इस के अभ्यासी पुरुष को शीघ्र बुढ़ापा तथा रोगादि नहीं होते हैं, इस के करने से कुरूप मनुष्य भी अच्छे और सुडौल जान पड़ते हैं, परन्तु जो मनुष्य दिन में सोते, व्यायाम नहीं करते तथा दिनभर आलस्य में पड़े रहते हैं उन को अवश्य प्रमेह आदि रोग हो जाते हैं, इस लिये इन सब बातों को विचार कर सब मनुष्यों को

१–इन महात्मा का वर्णन देखना हो तो कलिकाल सर्वज्ञ जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिकृत संस्कृत रामायण को देखो॥

अवश्य स्वयं व्यायाम करना चाहिये तथा अपने सन्तानों को भी प्रतिदिन व्यायाम का अभ्यास कराना चाहिये जिस से इस भारत में पूर्ववत् वीरशक्ति पुनः आ जावे ।

व्यायाम करने में सदा देश काल और शरीर का बल भी देखना उचित है क्योंकि इस से विपरीत दशामें रोग हो जाते हैं ।

कसरत करने के पीछे तुरंत पानी नहीं पीना चाहिये, किन्तु एक दो घण्टे के पीछे कुछ बलदायक भोजन का करना आवश्यक है जैसे-मिश्रीसंयुक्त गायका दूध वा बादाम की कतली आदि, अथवा अन्य किसी प्रकार के पुष्टिकारक लड्डू आदि जो कि देश काल और प्रकृति के अनुकूल हों खाने चाहियें ॥

व्यायाम का निषेध—मिश्रित वातपित्त रोगी, बालक, वृद्ध और अजीर्णी मनुष्यों को कसरत नहीं करनी चाहिये, शीतकाल और वसन्तऋतु में अच्छे प्रकार से तथा अन्य ऋतुओं में थोड़ा व्यायाम करना योग्य है, अति व्यायाम भी नहीं करना चाहिये क्योंकि अत्यन्त व्यायाम के करने से तृषा, क्षय, तमक, श्वास, रक्तपित्त, श्रम, ग्लानि, कास, ज्वर और छर्दि आदि रोग हो जाते हैं ॥

तैलमर्दन ॥

तेल का मर्दन करना भी एक प्रकार की कसरत है तथा लाभदायक भी है इसलिये प्रतिदिन प्रातःकाल में स्नान करने से पहिले तेल की मालिश करानी चाहिये, यदि कसरत करने वाला पुरुष कसरत करने के एक घंटे पीछे शरीर में तेल का मर्दन करवाया करे तो इस के गुणों का पार नहीं है, तेल के मर्दन के समय में इस बात का भी स्मरण रहना चाहिये कि-तेल की मालिश सब से अधिक पैरों में करानी चाहिये, क्योंकि पैरों में तेल की अच्छी तरह से मालिश कराने से शरीर में अधिक बल आता है, तेल के मर्दन के गुण इस प्रकार हैं:—

१-तेल की मालिश नीरोगता और दीर्घायु की करने वाली तथा ताकत को बढ़ाने वाली है[1] ।

२-इस से चमड़ी सुहावनी हो जाती है तथा चमड़ी का रूखापन और खसरा जाता रहता है तथा अन्य भी चमड़ी के नाना प्रकार के रोग जाते रहते हैं और चमड़ी में नया रोग पैदा नहीं होने पाता है ।

३-शरीर के सांधे नरम और मज़बूत हो जाते हैं ।

४-रस और खून के बंद हुए मार्ग खुल जाते हैं ।

५-जमा हुआ खून गतिमान् होकर शरीर में फिरने लगता है ।

६-खून में मिली हुई वायु के दूर हो जाने से बहुत से आनेवाले रोग रुक जाते हैं ।

१-थोड़े दिनों तक निरन्तर तेल की मालिश कराने से उस का फायदा आप ही मालूम होने लगता है ॥

७-जीर्णज्वर तथा ताज़े खून से तपाहुआ शरीर ठंढा पड़ जाता है।

८-हवा में उड़ते हुए ज़हरीले तथा चेपी (उड़कर लगनेवाले) रोगोंके जन्तु तथा उन के परमाणु शरीर में असर नहीं कर सकते हैं।

९-नित्य कसरत और तेल का मर्दन करनेवाले पुरुष की ताकत और कान्ति बढ़ती है अर्थात् पुरुषार्थ का प्राप्त होता है।

१०-ऋतु तथा अपनी प्रकृति के अनुसार तेल में मसाले डालकर तैयार करके उस तेल की मालिश कराई जावे तो बहुत ही फायदा होता है, तेल के बनाने की मुख्य चार रीतियां हैं, उन में से प्रथम रीति यह है कि-पातालयंत्र से लौंग भिलावा और जमाल-गोटे का रसनिकाल कर तेल में डाल कर वह तेल पकाया जावे, दूसरी रीति यह है कि-तेल में डालने की यथोचित दवाइयों को उकाल कर उन का रस निकालकर तेल में डाल के वह (तेल) पकाया जावे, तीसरी रीति यह है कि-घाणी में डालकर फूलों की पुट देकर चमेली और मोगरे आदि का तेल बनाया जावे तथा चौथी रीति यह है कि-सूखे मसालों को कूट कर जल में आर्द्र (गीला) कर तेल में डाल कर मिट्टी के बर्तन का मुख बंद कर दिन में धूप में रक्खे तथा रात को अन्दर रक्खे तथा एक महीने के बाद छान कर काम में लावे।

वैद्यक शास्त्रों में दवाइयों के साथ में सब रोगों को मिटाने के लिये न्यारे २ तैल और घी के बनाने की विधियां लिखी है, वे सब विधियां आवश्यकता के अनुसार उन्हीं ग्रन्थों में देख लेनी चाहियें, ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहां उन का वर्णन नहीं करते हैं।

तेलमर्दन की प्रथा मलबारदेश तथा बंगदेश (पूर्व) में अभीतक जारी है परन्तु अन्य देशों में इस की प्रथा बहुत ही कम दीखती है यह बड़े शोक की बात है, इस लिये सुजन पुरुषों को इस विषय में अवश्य ध्यान देना चाहिये।

दवा का जो तेल बनाया जाता है उस का असर केवल चार महीने तक रहता है पीछे वह हीनसत्त्व होजाताहै अर्थात् शास्त्र में कहा हुआ उस का वह गुण नहीं रहता है।

सामान्यतया तिली का सादा तेल सब के लिये फायदेमन्द होता है तथा शीतकाल में सरसों का तेल फायदेमन्द है।

शरीर में मर्दन कराने के सिवाय तेल को शिर में डाल कर तालुए में रमाना तथा कान में और नाक में भी डालना ज़रूरी है, यदि सब शरीर की मालिश प्रतिदिन न बन

१-परन्तु भिलावे आदि वस्तुओं का तेल निकालते समय पूरी होशियारी रखनी चाहिये॥

२-सुलसा श्राविका के चरित्र में लक्षपाक तैल का वर्णन आया है तथा कल्पसूत्र की टीका में राजा सिद्धार्थ की मालिश के विषय में शतपाक सहस्रपाक और लक्षपाक तैलों का वर्णन आया है तथा उन का गुण भी वर्णन किया गया है॥

सके तो पैरों की पींडियों और हाथ पैरों के तलवों में तो अवश्य मसलाना चाहिये तथा शिर और कान में डालना तथा मसलाना चाहिये, यदि प्रतिदिन तेल का मर्दन न बन सके तो अठवाड़े में तो एकवार अवश्य मर्दन करवाना चाहिये और यदि यह भी न बन सके तो शीतकाल में तो अवश्य इस का मर्दन कर वाना ही चाहिये ।

तेल का मर्दन कराने के बाद चने के आटे से अथवा आंवले के चूर्ण से चिकनाहट को दूर कर देना चाहिये ॥

सुगन्धित तैलों के गुण ॥

चमेली का तेल—इस की तासीर ठंढी और तर है ।

हिने का तेल—यह गर्म होता है, इस लिये जिन की बादीकी प्रकृति होवे इस को लगाया करें, चौमासेमें भी इस का लगाना लाभदायक है ।

अरगजे का तेल—यह गर्म होता है तथा उग्रगन्ध होता है अर्थात् इस की खुशबू तीन दिनतक केशों में बनी रहती है ।

गुलाब का तेल—यह ठंढा होता है तथा जितनी सुगन्धि इस में होती है उतनी दूसरे में नहीं होती है, इस की खुशबू ठंढी और तर होती है ।

केवड़े का तेल—यह बहुत उत्तम हृदयप्रिय और ठंढा होता है ।

मोगरे का तेल—यह ठंढा और तर है ।

नींबू का तेल—यह ठंढा होता है तथा पित्तकी प्रकृतिवालों के लिये फायदेमन्द है ॥

स्नान ॥

तैलादि के मर्दन के पीछे स्नान करना चाहिये, स्नान करने से गर्मी का रोग, हृदय का ताप, रुधिर का कोप और शरीर की दुर्गन्ध दूर होकर कान्ति तेज बल और प्रकाश बढ़ता है, क्षुधा अच्छे प्रकार से लगती है, बुद्धि चैतन्य हो जाती है, आयु की वृद्धि होती है, सम्पूर्ण शरीर को आराम मालूम पड़ता है, निर्बलता तथा मार्ग का खेद दूर होता है और

१–इन सब तैलों को उत्तम बनाने की रीति को वे ही जानते हैं जो प्रतिसमय इन को बनाया करते हैं, क्योंकि तिलों में फूलों को बसा कर बड़े परिश्रम से फुलेला बनाया जाता है, दो रुपये सेर के भावका सुगन्धित तैल साधारण होता है, तीन चार पांच सात और दश रुपये सेर के भाव का भी लेना चाहो तो मिल सकता है, परन्तु उस की ठीक पहिचान का करना प्रत्येक पुरुष का काम नहीं है अर्थात् बहुत कठिन है, यदि सेरभर चमेली के तेल में एक तोले भर केवड़े का अतर डाल दिया जावे तो वह तेल बहुत खुशबूदार हो जावेगा तथा उस से सारा मकान महँक उठेगा, इसी प्रकार सेरभर चमेली के तेल में एक तोले भर चमेली का अतर, हिने के तेल में हिने का अतर, अरगजे के तेल में अरगजे का अतर, गुलाब के तेल में गुलाब का अतर और मोगरे के तेल में मोगरे का अतर डाल दिया जावे तो वे तेल अत्यन्त ही खुशबूदार हो जावेंगे ॥

आलस्य पास तक नहीं आने पाता है, देखो ! इस बात को तो सब ही लोग जानते हैं कि–शरीर में सहस्रों छिद्र हैं जिन में रोम जमे हुए हैं और वे निष्प्रयोजन नहीं हैं किन्तु सार्थक हैं अर्थात् इन्हीं छिद्रों में से शरीर के भीतर का पानी (पसीना) तथा दुर्गन्धित वायु निकलता है और बाहर से उत्तम वायु शरीर के भीतर जाता है, इस लिये जब मनुष्य स्नान करता रहता है तब वे सब छिद्र खुले और साफ रहते हैं परन्तु स्नान न करने से मैल आदि के द्वारा जब ये सब छिद्र बंद हो जाते हैं तब ऊपर कही हुई क्रिया भी नहीं होती है, इस क्रिया के बंद हो जाने से दाद, खाज, फोड़ा और फुंसी आदि रोग होकर अनेक प्रकार का क्लेश देते हैं, इस लिये शरीर के स्वच्छ रहने के लिये प्रतिदिन स्वयं स्नान करना योग्य है तथा अपने बालकों को भी नित्य स्नान कराना उचित है।

स्नान करने में निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखना चाहिये:—

१–शिर पर बहुत गर्म पानी कभी नहीं डालना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से नेत्रोंको हानि पहुँचती है।

२–बीमार आदमी को तथा ज्वर के जाने के बाद जबतक शरीर में ताकत न आवे तबतक स्नान नहीं करना चाहिये, उस में भी ठंढे जल से तो भूल कर भी स्नान नहीं करना चाहिये।

३–बीमार और निर्बलपुरुष को भूखे पेट नहीं नहाना चाहिये अर्थात् चाह और दूध आदि का नास्ता कर एक घंटे के पीछे नहाना चाहिये।

४–शिर पर ठंढा जल अथवा कुए के जल के समान गुनगुना जल, शिर के नीचे के धड़ पर सामान्य गर्म जल और कमर के नीचे के भाग पर सुहाता हुआ तेज़ गर्म जल डालना चाहिये।

५–पित्त की प्रकृतिवाले जवान आदमी को ठंढे पानी से नहाना हानि नहीं करता है किन्तु लाभ करता है।

६–सामान्यतया थोड़े गर्म जल से स्नान करना प्रायः सब ही के अनुकूल आता है।

७–यदि गर्म पानी से स्नान करना हो तो जहां बाहर की हवा न लगे ऐसे बंद मकानमें कन्धों से स्नान करना उत्तम है, परन्तु इस बात का ठीक २ प्रबन्ध करना सामान्य जनों के लिये प्रायः असम्भवसा है, इस लिये साधारण पुरुषों को यही उचित है कि–सदा शीतल जल से ही स्नान करने का अभ्यास डालें।

८–जहांतक हो सके स्नान के लिये ताज़ा जल लेना चाहिये क्योंकि ताज़े जल से स्नान करने से बहुत लाभ होता है परन्तु वह ताज़ा जल भी स्वच्छ होना चाहिये।

९–स्नान के विषय में यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि तरुण तथा नीरोग पुरुषों को शीतल जल से तथा बुड्ढे दुर्बल और रोगी जनों को गुनगुने जल से स्नान करना चाहिये।

१०-शरीर को पीठी उवटन वा साबुन लगा कर रगड़ २ के खूब धोना चाहिये पीछे स्नान करना चाहिये ।

११-स्नान करने के पश्चात् मोटे निर्मल कपड़े से शरीर को खूब पोंछना चाहिये कि जिस से सम्पूर्ण शरीर के किसी अंग में तरी न रहे ।

१२-गर्भिणी स्त्री को तेल लगाकर स्नान नहीं करना चाहिये ।

१३-नेत्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, अतीसार, पीनस तथा ज्वर आदि रोगवालों को स्नान नहीं करना चाहिये ।

१४-स्नान करने से प्रथम अथवा प्रातःकाल में नेत्रों में ठंढे पानी के छींटे देकर धोना वहुत लाभदायक है ।

१५-स्नान करने के बाद घंटे दो घण्टेतक द्रव्यभाव से ईश्वर की भक्ति को ध्यान लगाकर करना चाहिये, यदि अधिक न वन सके तो एक सामायिक को तो शास्त्रोक्त नियमानुसार गृहस्थों को अवश्य करना ही चाहिये, क्योंकि जो पुरुष इतना भी नहीं करता है वह गृहस्थाश्रम की पङ्क्तिमें नहीं गिना जा सकता है अर्थात् वह गृहस्थ नहीं है किन्तु उसे इस (गृहस्थ) आश्रम से भी भ्रष्ट और पतित समझना चाहिये ॥

पैर धोना ॥

पैरों के धोने से थकावट जाती रहती है, पैरों का मैल निकल जाने से स्वच्छता आ जाती है, नेत्रों को तरावट तथा मन को आनंद प्राप्त होता है, इस कारण जब कहीं से चलकर आया हो वा जब आवश्यकता हो तब पैरों को धोकर पोंछ डालना चाहिये, यदि सोते समय पैर धोकर शयन करे तो नींद अच्छे प्रकार से आजाती है ॥

भोजन ॥

प्यारे मित्रो ! यह सब ही जानते हैं कि-अन्न के ही भोजन से प्राणी बढ़ते और जीवित रहते हैं इस के विना न तो प्राणी जीवित ही रह सकते हैं और न कुछ कर ही सकते हैं, इसी लिये चतुर पुरुषों ने कहा है कि-प्राण अन्नमय हैं यद्यपि भोजन का रिवाज़ भिन्न २ देशों के भिन्न २ पुरुषों का भिन्न २ है इसलिये यहां पर उस के लिखने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है तथापि यहां पर संक्षेप से शास्त्रीय नियम के अनुसार सामान्यतया सर्व हितकारी जो भोजन है उस का वर्णन किया जाता है:—

१-आजकल बहुत से शौकीन लोग चर्वी से बने हुए खुशबूदार साबुन को लगा कर स्नान करते हैं परन्तु धर्म से भ्रष्ट होने की तरफ बिलकुल ख्याल नहीं करते हैं, यदि साबुन लगाकर नहाना हो तो उत्तम देशी साबुन लगाकर नहाना चाहिये, क्योंकि देशी साबुन में चर्वी नहीं होती है ॥

२-इस वस्त्र को अंगोछा कहते हैं, क्योंकि इस से अंग पोंछा जाता है अंगोछा प्रायः गजी का अच्छा होता है ॥

जो भोजन स्वच्छ और शास्त्रीय नियम से वना हुआ हो, वल वुद्धि आरोग्यता और आयु का वढ़ानेवाला तथा सात्त्विकी (सतो गुण से युक्त) हो, वही भोजन करना चाहिये, जो लोग ऐसा करते हैं वे इस जन्म और पर जन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप मनुष्य जन्म के चारों फलों को प्राप्त कर लेते हैं और वास्तव में जो पदार्थ उक्त-गुणों से युक्त हैं उन्हीं पदार्थों को भक्ष्य भी कहा गया है, परन्तु जिस भोजन से मन वुद्धि शरीर और धातुओं में विषमता हो उस को अभक्ष्य कहते हैं, इसी कारण अभक्ष्य भोजन की आज्ञा शास्त्रकारों ने नहीं दी है।

भोजन मुख्यतया तीन प्रकार का होता है जिस का वर्णन इस प्रकार है:—

१–जो भोजन अवस्था, चित्त की स्थिरता, वीर्य, उत्साह, वल, आरोग्यता और उप-शमात्मक (शान्तिस्वरूप) सुख का वढ़ाने वाला, रसयुक्त, कोमल और तर हो, जिस का रस चिरकालतक ठहरनेवाला हो तथा जिस के देखने से मन प्रसन्न हो, उस भोजन को सात्त्विक भोजन कहते हैं अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से सात्त्विक भाव उत्पन्न होता है।

२–जो भोजन अति चर्परा, खट्टा, खारी, गर्म, तीक्ष्ण, रूक्ष और दाहकारी है, उस को राजसी भोजन कहते हैं अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से राजसी भाव उत्पन्न होता है।

३–जो भोजन वहुत काल का वना हुआ हो, अतिठंढा, रूखा, दुर्गन्धि युक्त, वासा तथा जूठा हो, उस भोजन को तामसी भोजन कहा है अर्थात् इस प्रकार के भोजन के खाने से तमोगुणी भाव उत्पन्न होता है, इस प्रकार के भोजन को शास्त्रों में अभक्ष्य कहा है, इस प्रकार के निषिद्ध भोजन के सेवन से विषूचिका आदि रोग भी हो जाते हैं ॥

भोजन के नियम ॥

१–भोजन वनाने का स्थान (रसोईघर) हमेशा साफ रहना चाहिये तथा यह स्थान अन्य स्थानों से अलग होना चाहिये अर्थात् भोजन वनाने की जगह, भोजन करने की जगह, आटा दाल आदि सामान रखने की जगह, पानी रखने की जगह, सोने की जगह, वैठने की जगह, धर्मध्यान करने की जगह तथा स्नान करने की जगह, ये सव स्थान अलग २ होने चाहियें तथा इन स्थानों में चांदनी भी वांधना चाहिये कि जिस से मकड़ी और गिलहरी आदि जहरीले जानवरों की लार और मल मूत्र आदि के गिरने से पैदा होनेवाले अनेक रोगों से रक्षा रहे।

२–रसोई वनाने के सव वर्तन साफ रहने चाहियें, पीतल और तांवे आदि धातु के वासन में खटाई की चीज़ विलकुल नहीं वनानी चाहिये और न रखनी चाहिये, मिट्टी का वासन सव से उत्तम होता है, क्योंकि इस में खटाई आदि किसी प्रकार की कोई वस्तु कभी नहीं विगड़ती है।

३–भोजन का बनानेवाला (रसोइया) वैद्यक शास्त्र के नियमों का जाननेवाला तथा उसी नियम से भोजन के सब पदार्थों का बनानेवाला होना चाहिये, सामान्यतया रसोई बनाने का कार्य गृहस्थों में स्त्रियों के ही आधीन होता है इसलिये स्त्रियों को भोजन बनाने का ज्ञान अच्छे प्रकार से होना आवश्यक है।

४–भोजन करने का स्थान भोजन बनाने के स्थान से अलग और हवादार होना चाहिये, उस को अच्छे प्रकार से सफेदी से पुतवाते रहना चाहिये तथा उस में नाना प्रकार की सुगन्धित मनोहर और अनोखी वस्तुयें रक्खी रहनी चाहियें जिन के देखने से नेत्रों को आनंद तथा मन को हर्ष प्राप्त होवे।

५–भोजन बनाने के सब पदार्थ (आटा दाल और मसाले आदि) अच्छी तरह चुने वीने (साफ किये हुए) हों तथा ऋतु के अनुकूल हों और उन पदार्थों को ऐसा पकाना चाहिये कि न तो अधकच्चे रहें और न विशेष जलने पावें, क्योंकि अधकच्चा तथा जला हुआ भोजन बहुत हानि करता है, उस में भी मन्दाग्निवालों के लिये तो उक्त (अधकच्चा तथा जलाहुआ) भोजन विष के समान है।

६–भोजन सदा नियत समय पर करना उचित है, क्योंकि ऐसा करने से भोजन ठीक समय पर पचकर भूख को लगाता है, भोजन करने के बाद पांच घंटे तक फिर भोजन नहीं करना चाहिये, एवं अधूरी भूख में तथा अजीर्ण में भी भोजन नहीं करना चाहिये, इस के सिवाय हैज़ा और सन्निपात में तो दोष के पके विना (जबतक वातादि दोष पक नजावें तबतक) भोजन करना मानो मौत की निशानी है, अच्छी तरह से भूख लगने के बाद भूख को मारना भी नहीं चाहिये, क्योंकि भूख लगने के बाद न खाने से विना ईंधन की अग्नि के समान शरीर की अग्नि बुझ जाती है, इस लिये प्रतिदिन नियमित समय पर ही भोजन करना अतिउत्तम है।

७–भोजन करने के समय मन प्रसन्न रहे ऐसा यत्न करना चाहिये अर्थात् मन में खेद ग्लानि और क्रोध आदि विकार किसी प्रकार नहीं होने चाहियें, चारों ओर से गोल तथा एक गज़ लम्बी और एक बालिश्त ऊंची एक चौकी को सामने रख कर उस के ऊपर यथायोग्य सम्पूर्ण पदार्थों से सज्जित थाल को रख कर मुनि को देने की भावना भावे, पश्चात् आनंदपूर्वक भोजन करे, भोजन में प्रथम सेंधा नमक लगा कर अदरख के दश बीस टुकड़े खाना बहुत अच्छा है, भोजन भी सीधे आसन से बैठ कर करना चाहिये

१–ऊपर कही हुई दोनों बातों में सावधान रहना चाहिये नहीं तो अवश्य हानि होती है॥

२–जैसे किसी लकड़ीमें लगी हुई अग्नि को जब दूसरी लकड़ी नहीं मिलती है तब वह अग्नि उस लकड़ी को जला कर बुझ जाती है, इसी प्रकार से आहार के न मिलने से शरीर की अग्नि बुझ जाती है॥

३–खेद आदि को उत्पन्न करनेवाली वस्तु को नहीं देखना चाहिये और न कोई ऐसी बात सुननी वा करनी चाहिये॥

अर्थात् झुक कर नहीं करना चाहिये, क्योंकि झुक कर भोजन करने से पेठ के दवे रहने के कारण पक्काशय की धमनी निर्बल हो जाती है और उस के निर्वल होने से भोजन ठीक समय पर नहीं पचता है इस लिये सदा छाती को उठा कर भोजन करना चाहिये।

८-भोजन करते समय न तो अति विलम्ब और न अति शीघ्रता ही करनी चाहिये अर्थात् अच्छी तरह से धीरे २ चवा २ कर खाना चाहिये, क्योंकि अच्छी तरह से धीरे २ चवा २ कर न खाने से भोजन के पचने में देरी लगती है तथा वह हानि भी करता है, भोजन के चवाने के विषय में डाक्टरों का यह सिद्धान्त है कि जितने समय में २५ की गिनती गिनी जा सके उतने समय तक एक ग्रास को चवा कर पीछे निगलना चाहिये।

९-भोजन करने के समय माता, पिता, भाई, पाककर्त्ता, वैद्य, मित्र, पुत्र तथा स्वजनों (सम्वन्धियों) को समीप में रखना उचित है, इन के सिवाय किसी भिन्न पुरुष को भोजन करने के समय समीप में नहीं रहने देना चाहिये, क्योंकि किसी २ मनुष्य की दृष्टि महाखराव होती है, भोजन करने के समय में वार्त्तालाप करना भी अनुचित है, क्योंकि एक इन्द्रिय से एक समय में दो कार्य ठीक रीति से नहीं हो सकते हैं, किन्तु दोनों अधूरे ही रह जाते हैं, अतः एक समय में एक इन्द्रिय से एक ही काम लेना योग्य है, हां मित्र आदि लोग भोजन समय में उत्तम प्रसन्न करने वाली तथा प्रीतिकारक वातों को सुनाते जावें तो अच्छी वात है, यह भी स्मरण रहे कि-भोजन करने में जो रस अधिक होता है उसी के तुल्य दूसरे रस भी वन जाते हैं, भोजन करते समय रोटी और रोट आदि कड़े पदार्थों को प्रथम घी से खाना चाहिये पीछे दाल और शाक आदि के साथ खाना चाहिये, पित्त तथा वायु की प्रकृतिवाले पुरुष को मीठे पदार्थ भोजन के मध्य

१-वहुत से लोग इस कहावत पर आरूढ हैं कि-"स्त्री का नहाना और पुरुष का खाना" तथा इस का अर्थ ऐसा करते हैं कि स्त्री जैसे फुर्त्ती से नहा लेती है वैसे ही पुरुष को फुर्त्ती के साथ भोजन कर लेना चाहिये, परन्तु वास्तव में इस कहावत का यह अर्थ नहीं है जैसा कि वे समझ रहे हैं, क्योंकि आजकल की मूर्खा स्त्रियां जो स्नान करती हैं वह वास्तव में स्नान ही नहीं है, आजकल की स्त्रियों का तो स्नान यह है कि उन्होंने नग्न होकर शरीर पर पानी डाला और तत्काल घाघरा पहना, वस स्नान हो गया, अव अविद्या देवी के उपासकों ने यह समझ लिया कि स्त्री का नहाना और पुरुष का खाना समान समय में होना चाहिये, परन्तु उन को कुछ तो अक्ल से भी खुदा को पहचानना चाहिये (कुछ तो वुद्धि से भी सोचना चाहिये) देखो! प्रथम लिख आये हैं कि-स्नान केवल शरीर के मैल को साफ करने के लिये किया जाता है तो यह स्नान (कि स्त्री ने शरीर पर पानी डाला और तत्काल घाघरा पहना) क्या वास्तव में स्नान कहा जा सकता है? कभी नहीं, क्योंकि कहिये इस स्नान से क्या लाभ है! इस लिये यद्यपि यह कहावत तो ठीक है परन्तु अविद्या देवी के उपासकों ने इस का अर्थ उलटा कर लिया है, इस का असली मतलव यह है कि-जैसे स्त्री एकान्त में वैठकर धीरे २ नहाती है अर्थात् सम्पूर्ण शरीर का मैल दूर करती है उसी प्रकार से पुरुष भी एकान्त में वैठ कर स्थिरता के साथ अर्थात् खूव चवा २ कर भोजन करे॥

में खाने चाहियें, पीछे दाल भात आदि नरम पदार्थों को खाकर अन्त में दूध या छाछ आदि पतले पदार्थों को खाना चाहिये, मन्दाग्निवाले के लिये उड़द आदि पदार्थ स्वभाव से ही भारी होते हैं तथा मूंग, मौठ, चना और अरहर, ये सब परिमाण से अधिक खायें जाने से भारी होते हैं, मिस्से की पूड़ी वा रोटी भी मन्दाग्निवाले को बहुत हानि पहुँचाती है अर्थात् पेट में मल और वायु को बढ़ाती है तथा इस के सिवाय अतीसार और संग्रहणी के भी होने में कोई आश्चर्य नहीं होता है, दलाहुआ अन्न बनाने के फेर फार से भारी हो जाता है, जैसे गेहूँ का दलिया रांधा जावे तो वह वैसा भारी नहीं होता है जैसी कि लापसी भारी अर्थात् गरिष्ठ होती है।

१०–भोजन के समय में पहिले पानी के पीने से अग्नि मंद होजाती है, बीच २ में थोड़ा २ एकाध वार जल पीने से वह (जल) घी के समान फायदा करता है, भोजन के अन्त में आचमनमात्र (तीन घूंट) जल पीना चाहिये, इस के बाद जब प्यास लगे तब जल पीना चाहिये, ऐसा करने से भोजन अच्छीतरह पच जाता है, भोजन के अन्त में अधिक जल पीने से अन्न हज़म नहीं होता है, भोजन को खूब पेटभर कर (गलेतक) कभी नहीं करना चाहिये, देखो ! शार्ङ्गधर का कथन है कि–जब भोजन अच्छी तरह से पचता है तब तो उस का रस हो जाता है तथा वह (रस) शरीर का पोषण करने में अमृत के तुल्य होता है और जब भोजन अच्छी तरह से नहीं पचता है तब रस न होकर आम हो जाता है और वह आम विष के तुल्य होता है इस लिये मनुष्यों को अग्नि के बल के अनुसार भोजन करना चाहिये।

११–बहुत से पदार्थ अत्यन्त गुण कारी हैं परन्तु दूसरी चीज़ के साथ मिलने से वे हानिकारी हो जाते हैं तथा उन की हानि मनुष्यों को एकदम नहीं मालूम होती है किन्तु उस के बीज शरीर में छिपे हुए अवश्य रहते हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतु में जंगल के अन्दर ज़मीन में देखा जावे तो कुछ भी नहीं दीखता है परन्तु जल के बरसने पर नाना प्रकार के बीजों के अङ्कुर निकल आते हैं, इसी प्रकार ऊपर कहेहुए पदार्थों के खाने से एकदम हानि नहीं मालूम होती है किंतु वे इकट्ठे होकर किसी समय एकदम अपना ज़ोर दिखा देते हैं, जो २ पदार्थ दूध के साथ में मिलने से विरोधी हो जाते हैं उन को

१–देखो लिखा है कि–"अद्धमसणस्स सव्वं जणस्स कुज्जादवस्स दो भागे, वाउ पविआरणट्ठा छब्भाय ऊणगं कुज्जा ॥ १ ॥ अर्थात् बुद्धि के द्वारा कल्पना कर के अपने उदर के छःभाग करने चाहियें, उन में से तीन भागों को तो अन्न से भरना चाहिये, दो भागों को पानी से भरना चाहिये तथा एक भाग को खाली रखना चाहिये कि जिस से उच्छ्वास और निःश्वास सुखपूर्वक आता जाता रहे ॥

२–बहुत से लोग जीमण जूठण में दो दिन की कसर एक ही वख्त में निकाल लेते हैं, यह अविद्या देवी की कृपा है, इस का फल उन को अवश्य ही मिलता है ॥

तो हम दूध के प्रकरण में पहिले लिख चुके हैं, शेष कुछ पदार्थों को यहां लिखते हैं— केला और छाछ, केला और दही, दही और उष्ण पदार्थ, घी और शहद समान भागमें तथा शहद और पानी बराबर वज़न में, ये सब पदार्थ सङ्गदोष से अत्यन्त हानिकारक हो जाते हैं अर्थात् विष के तुल्य होजाते हैं, एवं बासा अन्न फिर गर्म करने से अत्यन्त हानि करता है, इस के सिवाय—गर्म पदार्थ और वर्षा के जल के साथ शहद, खिचड़ी के साथ खीर, बेल के फल के साथ केला, कांसे के पात्र में दशदिनतक रक्खा रहा हुआ घी, जल के साथ घी और तेल, तथा पुनः गर्म किया हुआ काढ़ा, ये सब ही पदार्थ हानि कारक हैं, इसलिये इन का त्याग करना चाहिये।

१२—सायंकाल का भोजन दो घड़ी दिन शेष रहने पर ही कर लेना चाहिये तथा शाम को हलका भोजन करना चाहिये किन्तु रात्रि में भोजन कभी नहीं करना चाहिये, क्योंकि जैन सिद्धान्त में तथा वैद्यक शास्त्रों में रात्रिभोजन का अत्यंत निषेध किया है, इस का कारण सिर्फ यही है कि—रात्रि को भोजन करने में भोजन के साथ छोटे २ जन्तुओं के पेट मे चले जाने के द्वारा अनेक हानियों की सम्भावना रहती है, देखो! रात्रि में भोजन के अन्दर यदि लाल तथा काली चीटियां खाने में आजावें तो बुद्धि भ्रष्ट होकर पागलपन होता है, जुयें से जलोदर, कांटे तथा केश से स्वरभंग तथा मकड़ी से पित्ती के ददोड़े, दाह, वमन और दस्त आदि होते हैं, इसी प्रकार अनेक जन्तुओं से बदहज़मी आदि अनेक रोगों के होने की सम्भावना रहती है, इस लिये रात्रि का भोजन अन्धे के भोजन के समान होता है, (प्रश्न) बहुत से महेश्वरी वैश्यों से सुना है कि हमारे शास्त्रों में एक सूर्य में दो वार भोजन का करना मना है इसलिये दूसरे समय का भोजन रात्रि में ही करना उचित है, (उत्तर) मालूम होता है कि—उन (वैश्यों) को उन के पोप और स्वार्थी गुरुओं ने अपने स्वार्थ के लिये ऐसा बहका दिया है और बेचारे भोले भाले महेश्वरी वैश्यों ने अपने शास्त्रों को तो देखा नहीं, न देखने की उन में शक्ति है इस लिये पोप लोगों से सुन कर उन्हों ने रात्रि में भोजन करने का प्रारम्भ कर दिया, देखो! हम उन्हीं के शास्त्रों का प्रमाण रात्रिभोजन के निषेध में देते हैं—यदि अपने शास्त्रों पर विश्वास हो तो उन महेश्वरी वैश्यों को इस भव और पर भव में दुःखकारी रात्रिभोजन को त्याग देना चाहिये—

१—शेष संयोग विरुद्ध पदार्थों का वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये॥

२—यद्यपि घी और शहद तथा शहद और जल प्रायः दवा आदि के काम में लिया जाता है और वह बहुत फायदेमन्द भी है परन्तु बराबर होने से हानि करता है, इस लिये इन दोनों को समान भाग में कभी नहीं लेना चाहिये॥

देखो ! महा भारत ग्रन्थ में लिखा है कि—

मद्यमांसाशनं रात्रौ, भोजनं कन्दभक्षणम् ॥
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां, तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥

अर्थात् जो पुरुष मद्य पीते हैं, मांस खाते हैं, रात्रि में भोजन करते हैं और कंदे[1] को खाते हैं उन की तीर्थयात्रा, जप और तप सब वृथा है ॥ १ ॥ मार्कण्डेयपुराण का वचन है कि—

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते ॥
अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥ १ ॥

अर्थात् दिवानाथ (सूर्य) के अस्त होने के पीछे जल रुधिर के समान और अन्न मांस के समान कहा है, यह वचन मार्कण्डेय ऋषि का है ॥ १ ॥ इसी प्रकार महाभारत ग्रन्थ में पुनः कहा गया है कि—

चत्वारि नरकद्वारं, प्रथमं रात्रिभोजनम् ॥
परस्त्री गमनं चैव, सन्धानानन्तकायकम् ॥ १ ॥
ये रात्रौ सर्वदाहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः ॥
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ॥ २ ॥
नोदकमपि पातव्यं, रात्रावत्र युधिष्ठिर ॥
तपस्विनां विशेषेण, गृहिणां ज्ञानसम्पदाम् ॥ ३ ॥

अर्थात्—चार कार्य नरक के द्वाररूप हैं–प्रथम–रात्रि में भोजन करना, दूसरा–परस्त्री में गमन करना, तीसरा–संधाना (आचार) खाना और चौथा–अनन्त काय अर्थात् अनन्त जीववाले कन्द मूल आदि वस्तुओं को खाना ॥ १ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष एक महीनेतक निरन्तर रात्रिभोजन का त्याग करते हैं उन को एक पक्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है ॥ २ ॥ इस लिये हे युधिष्ठिर ! ज्ञानी गृहस्थ को और विशेष कर तपस्वी को रात्रि में पानी भी नहीं पीना चाहिये ॥ ३ ॥ इसी प्रकार से सब शास्त्रों में रात्रिभोजन का निषेध किया है परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भय से अब विशेष प्रमाणों को नहीं लिखते हैं, इसलिये बुद्धिमानों को उचित है कि–सब प्रकार के खाने पीने के पदार्थों का कभी भी रात्रि में उपयोग न करें, यदि कभी वैद्य कठिन रोगादि में भी कोई दवा या खुराक को रात्रि में उपयोग के लिये बतलावे तो भी यथा शक्य उसे रात्रि में नहीं लेना चाहिये किन्तु सोने से दो तीन घण्टे पहिले ही ले लेना चाहिये, क्योंकि धन्य पुरुष वे ही हैं जो कि सूर्य की साक्षी से ही खान पान करके अपने व्रत का निर्वाह करते हैं ।

१–पृथिवी के नीचे जो वस्तु उत्पन्न होती है उसे कंद कहते हैं, जैसे–आलू, मूली, कांदा और गाजर आदि ॥

१३-एक थाली वा पत्तल में अधिक मनुष्यों को भोजन करना योग्य नहीं है, क्योंकि-प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पृथक् २ होता है, देखो! कोई चाहता है कि मैं दाल भात को मिला कर खाऊँ, किसी की रुचि इस के विरुद्ध होती है, इसी प्रकार अन्य जनों का भी अन्य प्रकार का ही स्वभाव होता है तो इस दशा में साथ में खानेवाले सब ही लोगों को अरुचि से भोजन करना पड़ता है और भोजन में अरुचि होने से अन्न अच्छे प्रकार से नहीं पचता है; साथ में खाने के द्वारा अरुचि के उत्पन्न होने से बहुधा मनुष्य भूखे भी उठ बैठते हैं और बहुतों को नाना प्रकार के रोग भी हो जाते हैं, इस के सिवाय प्रत्येक पुरुष के हाथ वारंवार मुँह में लगते हैं फिर भोजनों में लगते हैं, इस कारण एक के रोग दूसरे में प्रवेश कर जाते हैं, इस के अतिरिक्त यह भी एक बड़ी ही विचारणीय वात है कि यदि कुटुम्ब का दूरदेशस्थ (जो दूर देश में रहता है वह) कोई एक सम्बंधी पुरुष गुप्तरूप से मद्य वा मांस का सेवन करता है अथवा व्यभिचार में लिप्त है तो एक साथ खाने पीने से अन्य मनुष्यों की भी पवित्रता में धब्बा लग जाता है, शास्त्रों में जूठे भोजन का करना महापाप भी कहा है और यह सत्य भी है क्योंकि इस से केवल शारीरिक रोग ही उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु यह बुद्धि को अशुद्ध कर उस के सम्पूर्ण वल का भी नाश कर देता है; प्रत्यक्ष में ही देख लीजिये कि-जो मनुष्य जूठा भोजन खाते हैं उन के मस्तक गन्दे (मलीन) होते हैं कि जिस से उन में सोच विचार करने का स्वभाव बिलकुल ही नहीं रहता है, इस का कारण यही है कि जूठा भोजन करने से स्वच्छता का नाश होता है और जहां स्वच्छता वा शुद्धता नहीं है वहां भला शुद्धबुद्धि का क्या काम है, जूठा खाने वालों की बुद्धि मोटी हो जाने से उन में सभ्यता भी नहीं देखी जाती है, इन्हीं कारणों से धर्मशास्त्रों में भी जूठाखाने का अत्यन्त निषेध किया है, इसलिये आर्य पुरुषों का यही धर्म है कि-चाहें अपना लड़का ही क्यों न हो उस को भी जूठा भोजन न दें और न उस का जूठा आप खावें, सत्य तो यह है कि जूंठ और झूंठ, इन दोनों का बाल्यावस्था से ही त्याग कर देना उचित है अर्थात् वचपन से ही झूंठ वचन और जूंठे भोजन से घृणा करना उचित है, बहुधा देखा जाता है कि-हमारे स्वदेशीय बन्धु (जो न तो धर्मशास्त्रों का ही अवलोकन करते हैं और न कभी उन को किसी विद्वान् से सुनते हैं वे) अपने छोटे २ बच्चों को अपने साथ में भोजन कराने में उन का जूठा आप खाने में तथा अपना पिया हुआ पानी उन्हें पिलाने में वड़ा ही लाड़ समझते हैं, यह अत्यंत ही शोक का विषय है कि वे महानिन्दित कर्म को लाड़ प्यार वा अपना धर्म कार्य समझें तथा उन (बच्चों) की बुद्धि का नाश मार कर उन के

१-सिर्फ यही हेतु है कि कोढ़ी को कोई भी अपने साथ में भोजन नहीं कराता है ॥

२-क्योंकि सभ्यता शुद्धबुद्धि का फल है, उन की वुद्धि शुद्ध न होने से उन के पास सभ्यता कहां?

सर्वस्व का सत्यानाश कर दें और तिस पर भी उन के परम हितैषी कहलावें, हा शोक ! हा शोक ! ! हा शोक ! ! !

१४–भोजन करने के बाद मुख को पानी के कुर्ले कर साफ कर लेना चाहिये तथा दाँतों की चिमटी आदि से दाँतों और मसूड़ों में से जूठन को विलकुल निकाल डालना चाहिये, क्योंकि खुराक का अंश मसूड़ों में वा दाँतों की जड़ में रह जाने से मुख में दुर्गन्धि आने लगती है तथा दाँतों का और मुख का रोग भी उत्पन्न हो जाता है ।

१५–भोजन करने के पीछे सौ कदम टहलना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से अन्न पचता और आयु की वृद्धि होती है, इस के पीछे थोड़ी देर तक पलंग पर लेटना चाहिये, इस से अंग पुष्ट होता है, परन्तु लेटकर नींद नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि नींद के लेने से रोग उत्पन्न होते हैं, इस विषय में यह भी स्मरण रहे कि प्रातःकाल को भोजन करने के पश्चात् पलंगपर बांये और दहिने करवट से लेटना चाहिये परन्तु नींद नहीं लेनी चाहिये तथा सायंकाल को भोजन करने के पश्चात् टहलना परम लाभदायक है ।

१६–भोजन करने के पश्चात् बेञ्च, स्टूल, तिपाई और कुर्सी आदि पर बैठने, नींद लेने, आग के सन्मुख बैठने, धूप में चलने, दौड़ने, घोड़े वा ऊंट आदि की सवारी पर चढ़ने तथा कसरत करने आदि से नाना प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिये भोजन के पश्चात् एक घण्टे वा इस से भी कुछ अधिक समयतक ऐसे काम नहीं करने चाहियें ।

१७–भोजन के पाचन के लिये किसी चूर्ण को खाना वा शर्बत आदि को पीना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वैसा ही अभ्यास पड़ जाता है और वैसा अभ्यास पड़ जाने पर चूर्ण आदि के सेवन किये विना अन्न का पाचन ही नहीं होता है, कुछ समयतक ऐसा अभ्यास रहने से जठराग्नि की स्वाभाविक तेज़ी न रहने से आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है।

१८–भोजन के समय में अत्यंत पानी का पीना, विना पचे भोजन पर भोजन करना, विना भूख के खाना, भूख का मारना, आधसेर के स्थान में सेर भर खाना तथा अत्यंत न्यून खाना आदि कारणों से अजीर्ण तथा मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिये इन बातों से बचते रहना चाहिये ।

१९–पथ्यापथ्य वर्णन में तथा ऋतुचर्या वर्णन में जो कुछ भोजन के विषय में लिखा गया है उस का सदैव ख्याल रखना चाहिये ॥

१–हा भारत ! तेरे पवित्र यश में नाना प्रकार के धब्बे लग गये हैं, क्योंकि-इस देश में बहुधा ऐसे मत चल गये हैं कि-जिन में गृहस्थ पुरुषों और स्त्रियों को गुरु का जूठा खाना भी धर्म का अंश माना गया है और बतलाया गया है और जिस से निरक्षर भट्टाचार्य गुरु घण्टल का जूठा परसाद (प्रसाद) वा जूठा पानी भी अमृत के समान मान कर बेचारे भोले स्त्री पुरुष पीते हैं, हे मित्रगण ! भला अब तो सोचो समझो और सावधान हो ! तुम इस अविद्याकी गाढ़ निद्रा में कबतक पड़े सोते रहोगे ?

२–भोजन का विशेष वर्णन भोजन वाग्विलास आदि ग्रन्थों में किया गया है, वहां देख लेना चाहिये ॥

मुख सुगन्ध ॥

पहिले कह चुके हैं कि भोजन के पश्चात् पानी के कुर्ले करके मुख को साफ कर लेना चाहिये तथा दाँतों और मसूड़ों को भी खूब शुद्ध कर लेना चाहिये, आजकल इस देश में भोजन के पश्चात् मुख सुगन्ध के लिये अनेक वस्तुओं का उपयोग किया जाता है, सो यदि मुख को पानी आदि के द्वारा ही बिलकुल साफ कर लिया जावे तो दूसरी वस्तु के उपयोग की कोई आवश्यकता नहीं रहती है, क्योंकि मुखसुगन्ध का प्रयोजन केवल मुख को साफ रखने का है, जब जलादि के द्वारा मुख और दाँत आदि बिलकुल साफ हो गये तो सुपारी तथा पान चवाने आदि की कोई आवश्यकता नहीं है, हां यदि कभी विशेष रुचि वा आवश्यकता हो तो वस्तुविशेष का भी उपयोग कर लेना चाहिये परन्तु उस की आदत नहीं डालनी चाहिये।

मुखसुगन्ध के लिये अपने देश में सुपारी पान और इलायची आदि मुख्य पदार्थ हैं, परन्तु इस समय में तो घर घर (प्रति गृह) चिलम हुक्का और सिगरेट ही प्रधानता के साथ वर्त्ताव में आते हुए देखे जाते हैं, पूर्व समय में इस देशवाले पुरुष इन में बड़ा ऐब समझते थे, परन्तु अब तो बिछौने से उठते ही यही हरिभजनरूप बन गया है तथा इसी को अविद्या देवी के उपासकों ने मुखवासक भी ठहरा रक्खा है, यह उन की महा अज्ञानता है, देखो! मुखवास का प्रयोजन तो केवल इतना ही है कि डाढ़ों तथा दाँतों में यदि कोई अन्न का अंश रह गया हो तो किसी चावने की चीज़ के चावने से उस के साथ में वह अन्न का अंश भी चावा जाकर साफ हो जावे तथा वह (चावने की) चीज़ खुशबूदार और फायदेमन्द हो तो मुँह सुवासित भी हो जावे तथा थूक को पैदा करने वाली हो तो वह थूक होजरी में जाकर खाये हुए पदार्थ के पचाने में भी सहायक हो जावे, इसी लिये तो उक्त गुणों से युक्त नागर बेल के पान, कत्था, चूना, केसर, कस्तूरी, सुपारी, इलायची और भीमसेनी कपूर आदि पदार्थ उपयोग में लिये जाते हैं,[1] परन्तु तमाखू, गांजा, सुलफा और चंडूल[2] से मुख की जैसी सुवास होती है वह तो संसार से छिपी नहीं है, यद्यपि तमाखू में थूक की पैदा करने का स्वभाव तो है परन्तु वह थूक ऐसा निकृष्ट होता है कि भीतर पहुँचते ही भीतर स्थित तमाम खाये पिये को उसीवख्त निकाल कर बाहर ले आता है, इस के विषय में जो बुद्धिमानों का यह कथन है कि—"इस को खावे उसका घर और मुँह भ्रष्ट, इस को पिये उसका जन्म और मुँह भ्रष्ट, इस को सूंघे उस के कपड़े भ्रष्ट[3]" सो यह बात बिलकुल ही सत्य है तथा इस का अनुभव भी प्रायः

१–प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) भाष्य की टीका में द्विविधाहार (दुविहार) के निर्णय में मुखवास का भी वर्णन है ॥

२–चंडूल अर्थात् चण्डू (कहना तो इसे चण्डूल ही चाहिये) ॥

३–दक्षिण के लोग पान के साथ तमाखू खाते हैं, उन का भी यही हाल है ॥

सब ही को होगा, तमाखू के कदरदान (कदर करनेवाले) बड़े आदमी तमाखू का रस थूकने के लिये पीक दान रखते हैं परन्तु हम को बड़ा आश्चर्य होता है कि जिस तमाखू के थूक को वे जठराग्नि का उपयोगी समझते हैं उस को निरर्थक क्यों जाने देते हैं ?

अब जो लोग मुखवास के लिये प्रायः सुपारी का सेवन करते हैं उस के विषय में भी संक्षेप से लिख कर पाठकगण को उस के हानि लाभ दिखलाते हैं:—

सुपारी मुखवास के लिये एक अच्छी चीज़ है परन्तु इसे बहुत ही थोड़ा खाना चाहिये, क्योंकि इस का अधिक खाना हानि करता है, पूर्व तथा दक्षिण में स्त्री पुरुष छालियों को तथा बीकानेर आदि मारवाड़ देशस्थ नगरों में कत्थे में उबाली हुई चिकनी सुपारियों को सेरों खा जाते हैं, इस से परिणाम में हानि होती है, यद्यपि इस का सेवन स्त्रियों के लिये तो फिर भी कुछ अच्छा है परन्तु पुरुषों को तो नुक्सान ही करता है, सुपारी में शरीर के सांधों को तथा धातु को ढीला करने का स्वभाव है, इस लिये खासकर पुरुषों को इस का अधिक खाना कभी भी उचित नहीं है, इस लिये आवश्यकता के समय भोजन करने के बाद इस का ज़रा सा टुकड़ा मुख में डालकर चावना चाहिये तथा उस का थूक निगल जाना चाहिये परन्तु मुख में बचाहुआ उस का कूजट (गुट्टा) थूक देना चाहिये, सुपारी का ज़ादा टुकड़ा कंठ को बिगाड़ता है ।

पान[1] का सेवन यदि किया जावे तो वह ताज़ा और मुँह में गर्मी न करे ऐसा होना चाहिये[2], किन्तु व्यसनी बन कर जैसा मिले वैसा ही चाब लेने से उलटी हानि होती है तथा सब दिन पानों को चावते रहना जंगलीपन भी समझा जाता है, बहुत पान खाने से वह आंख और शरीर का तेज, बाल, दाँत, जठराग्नि, कान, रूप और ताकत को नुक़सान पहुँचाता है, इसलिये थोड़ा खाना ठीक है ।

पानों के साथ में जो कत्थे और चूने का उपयोग किया जाता है उस में भी किसी तरह की दूसरी चीज़की मिलावट नहीं होनी चाहिये तथा इन दोनों को पानों में ठीक २ (न्यूनाधिक नहीं) लगाना चाहिये[3] ।

पान और सुपारी के सिवाय-इलॉयची, लौंग और तज भी मुख सुगन्धि की चीज़ें हैं, इन में से इलायची[4] तर गर्म है और फायदेमन्द होती है परन्तु इसे भी अधिक नहीं खाना चाहिये, तज और लौंग वायु और कफ की प्रकृतिवाले को थोड़ी २ खानी चाहिये ।

१–पान और सन्तरे नागपुर के उत्तम होते है ॥

२–शीतकाल में बँगला पान फायदा करता है ॥

३–पान खानेवालों को यदि इन सब बातों का भी ज्ञान न हो तो उन को पान खाने का अभ्यास रखना ही व्यर्थ है ॥

४–खाने में छोटी (सफेद) इलायची का उपयोग करना चाहिये ॥

मुखसुगन्धि की सब चीजों में से धनियां और सोंफ, ये दो चीजें अधिक लाभदायक मानी गई हैं, क्योंकि ये दीपन पाचन हैं, स्वादिष्ट हैं, कंठ को सुधारती हैं और किसी प्रकार का विकार नहीं करती हैं।

इस प्रकार भोजन क्रिया से निवृत्त होकर तथा थोड़ी देर तक विना निद्रा के विश्राम लेकर मनुष्य को अपने जीवन निर्वाह के उद्यम में प्रवृत्त होना चाहिये परन्तु वह उद्यम भी न्याय और धर्म के अनुकूल होना चाहिये अर्थात् उस उद्यम के द्वारा परापमान तथा पर हानि आदि कभी नहीं होना चाहिये, इस के सिवाय मनुष्य को दिन भर में क्रोध आदि दुर्गुणों का त्याग कर मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाले रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि विषयों का सेवन करना चाहिये, दिन में कदापि स्त्री सेवन नहीं करना चाहिये, दिन के चार वा पांच वजे (ऋतु के अनुसार) व्यावहारिक कार्यों से निवृत्त होकर थोड़ी देर तक विश्राम लेकर शौच आदि से निवृत्त हो जावे, पीछे यथायोग्य भोजन आदि कार्य करे भोजन के पश्चात् मील दो मील तक (समयानुसार) वायु सेवन के लिये अवश्य जावे, वायु के सेवन से लौट कर सायंकाल सम्बंधी यथावश्यक धर्म ध्यान आदि कार्य करे इस से निवृत्त होने के पश्चात् दिनचर्या का कोई कार्य अवशिष्ट नहीं रहता है किन्तु केवल निद्रारूप कार्य शेष रहता है।

जीवन की स्थिरता तथा नीरोगता के लिये निद्रा भी एक बहुत ही आवश्यक पदार्थ है इस लिये अब निद्रा वा शयन के विषय में लिखते हैं:—

शयन वा निद्रा ॥

मनुष्य की आरोग्यता के लिये अच्छी तरह से नींद का आना भी एक मुख्य कारण है परन्तु अच्छी तरह से नींद के आने का सहज उपाय केवल परिश्रम है, देखो! जो लोग दिन में परिश्रम नहीं करते हैं किन्तु आलसी होकर पड़े रहते हैं उन को रात्रि में अच्छी तरह

१–इन दोनों के सिवाय जो मुख सुगन्धि के लिये दूसरी चीजों का सेवन किया जाता है उन में देश काल और प्रकृति के विचार से कुछ न कुछ दोष अवश्य रहता है, उन में भी तमाखू आदि कई पदार्थ तो महाहानिकारक हैं, इस लिये उन से अवश्य वचना चाहिये, हां आवश्यकता हो तो ऊपर लिखे सुपारी आदि पदार्थों का उपयोग अपनी प्रकृति और देश काल आदि का विचार कर अल्प मात्रा में कर लेना चाहिये ॥

२–मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाले रूपादि विषयों के सेवन से भोजन का परिपाक ठीक होने से आरोग्यता वनी रहती है ॥

३–दिन में स्त्री सेवन से आयु घटती है तथा बुद्धि मलीन हो जाती है ॥

४–शौच आदि में प्रातःकाल के लिये कहे हुए नियमों का ही सेवन करे ॥

५–रात्रिभोजन का निषेध तो अभी लिख ही चुके हैं ॥

६–इस कार्य का मुख्य सम्बंध रात्रिचर्या से है किन्तु रात्रिचर्यारूप यही कार्य है परन्तु यहां रात्रिचर्या को पृथक् न लिखकर दिनचर्या में ही उस का समावेश कर दिया गया है ॥

से [1]नींद नहीं आती है, इस के अतिरिक्त परिमित तथा प्रकृति के अनुकूल आहार विहार से भी नींदका घनिष्ठ (बहुत बड़ा) सम्बंध है, देखो ! जो लोग शाम को अधिक भोजन करते हैं उन को प्रायः स्वप्न आया करते हैं अर्थात् पकी नींद का नाश होता है, क्योंकि मनुष्य को स्वप्न तब ही आते हैं जब कि उस के मगज़ में आल जंजाल रहते हैं और मगज़ को पूरा विश्राम नहीं मिलता है इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि अपनी शक्ति के अनुसार शारीरिक तथा मानसिक परिश्रमों को करे और अपने आहार विहार को भी अपनी प्रकृति तथा देश काल आदि का विचार कर करता रहे जिस से निद्रा में विघात न होवे क्योंकि निद्रा के विघात से भी कालान्तर में अनेक भयंकर हानियां [2]होती हैं निद्रा में विघात न होने अर्थात् ठीक नींद आने का लक्षण यही है कि मनुष्य को शयनावस्था में स्वप्न न आवें क्योंकि स्वप्न दशा में चित्त की स्थिरता नहीं होती है किन्तु चञ्चलता रहती है ।

स्वप्नों के विषय में अर्थात् किस प्रकार का स्वप्न कब आता है और क्यों आता है इस विषय में भिन्न २ शास्त्रों तथा भिन्न २ आचार्यों की भिन्न २ सम्मति है एवं स्वप्नों के फल के विषय में भी पृथक् २ सम्मति है, इन के विषय का प्रतिपादक एक स्वप्नशास्त्र भी है जिस में स्वप्नों का शुभाशुभ आदि बहुतसा फल लिखा है, उक्त शास्त्र[3] के अनुसार वैद्यक ग्रन्थों में भी स्वप्नों का शुभाशुभ फल माना है, देखो ! वाग्भट्ट ने रोगप्रकरण में शकुन और स्वप्नों का फल एक अलग प्रकरण में रोग के साध्यासाध्य के जानने के लिये लिखा है, उस विषय को ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से अधिक नहीं लिख सकते हैं, परन्तु प्रसंगवश पाठकों के ज्ञानार्थ संक्षेप से इस का वर्णन करते हैं:—

स्वप्नविचार ॥

१–अनुभूत वस्तु का जो स्वप्न आता है, उसे असत्य समझना चाहिये अर्थात् उस का कुछ फल नहीं होता है ।

२–सुनी हुई बात का भी स्वप्न असत्य ही होता है ।

३–देखी हुई वस्तु का जो स्वप्न आता है वह भी असत्य है ।

४–शोक और चिन्ता से आया हुआ भी स्वप्न असत्य होता है ।

५–प्रकृति के विकार से भी स्वप्न आता है जैसे–पित्त प्रकृति वाला मनुष्य पानी, फूल, अन्न, भोजन और रत्नों को स्वप्न में देखता है तथा हरे पीले और लाल रंग की वस्तुओं

१–जैन सिद्धान्त में स्वभावसिद्ध दर्शनावरणी कर्मजन्य नींद को अच्छी नींद माना है ॥

२–निद्राविघातजन्य हानियों का वर्णन अनेक ग्रन्थों में किया गया है इस लिये यहां पर उन हानियों का वर्णन नहीं करते हैं ॥

३–इस शास्त्र को निमित्त शास्त्र कहते हैं ॥

को अधिक देखता है, तमाम रात सैकड़ों बाग बगीचों और फ़ुहारों की शैर करता रहता है, परन्तु इसे भी असत्य समझना चाहिये, क्योंकि प्रकृति के विकार से उत्पन्न होने के कारण यह कुछ भी लाभ और हानि को नहीं कर सकता है।

६–वायु की प्रकृतिवाला मनुष्य स्वप्न में पहाड़ पर चढ़ता है, वृक्षों के शिखर पर जा बैठता है और मकान के ठीक ऊपर जाकर सरक जाता है, कूदना, फांदना, सवारी पर चढ़ कर हवा खाने को जाना और आकाश में उड़ना आदि कार्य उस को स्वप्न में अधिक दिखलाई देते हैं, इसे भी पूर्ववत् असत्य समझना चाहिये, क्योंकि प्रकृति के विकार से उत्पन्न होने से इस का भी कुछ फलाफल नहीं होता है।

७–स्वप्न वह सच्चा होता है जो कि धर्म और कर्म के प्रभाव से आया हो, वह चाहे शुभ हो अथवा अशुभ हो, उस का फल अवश्य होता है।

८–रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा हुआ स्वप्न बारह महीने में फल देता है, दूसरे प्रहर में देखा हुआ स्वप्न नौ महीने में फल देता है, तीसरे प्रहर में देखा हुआ स्वप्न छः महीने में फल देता है और चौथे प्रहर में देखा हुआ स्वप्न तीन महीने में फल देता है, दो घड़ी रात बाकी रहने पर देखा हुआ स्वप्न दश दिन में और सूर्योदय के समय में देखा हुआ स्वप्न उसी दिन अपना फल देता है।

९–दिन में सोते हुए पुरुष को जो स्वप्न आता है वह भी असत्य होता है अर्थात् उस का कुछ फल नहीं होता है।

१०–अच्छा स्वप्न देखने के बाद यदि नींद खुल जावे तो फिर नहीं सोना चाहिये किन्तु धर्मध्यान करते हुए जागते रहना चाहिये[1]।

११–बुरा स्वप्न देखने के बाद यदि नींद खुल जावे और रात अधिक बाकी हो तो फिर सो जाना अच्छा है।

१२–पहिले अच्छा स्वप्न देखा हो और पीछे बुरा स्वप्न देखा हो तो अच्छे स्वप्न का फल मारा जाता है (नहीं होता है), किन्तु बुरे स्वप्न का फल होता है, क्योंकि बुरा स्वप्न पीछे आयाहै।

१३–पहिले बुरा स्वप्न देखा हो और पीछे अच्छा स्वप्न देखा हो तो पिछला ही स्वप्न फल देता है अर्थात् अच्छा फल होता है, क्योंकि पिछला अच्छा स्वप्न पहिले बुरे स्वप्न के फल को नष्ट कर देता है[2]।

१–अच्छा स्वप्न देखने के बाद जागते रहने की इस हेतु आज्ञा है कि सो जाने पर फिर कोई बुरा स्वप्न आकर पहिले अच्छे स्वप्न के फल को न बिगाड़ डाले॥

२–परन्तु अफ़सोस तो इस बात का है कि भले वा बुरे स्वप्न की पहचान भी तो सब लोगों को नहीं होती है॥

यह स्वप्नों का संक्षेप से वर्णन किया गया[1], अब प्रसंगानुसार निद्रा के विषय में कुछ आवश्यक नियमों का वर्णन किया जाता है:—

१–पूर्व अथवा दक्षिण की तरफ सिर करके सोना चाहिये।

२–सोने की जगह साफ एकान्त में अर्थात् गड़बड़ वा शब्द से रहित और हवादार होनी चाहिये।

३–सोने के बिछौने भी साफ होने चाहियें, क्योंकि मलीन जगह और मलीन बिछौने पर सोने से माकड़ आदि अनेक जन्तु सताते हैं जिस से नींद में बाधा पहुँचती है और मलीनता के कारण अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

४–चौमासे में ज़मीन पर नहीं सोना चाहिये, क्योंकि इस से शर्दी आदि के अनेक विकार होते हैं और जीवजन्तु के काटने आदि का भी भय रहता है।

५–चूने के गछ पर सोना वायु और कफ की प्रकृतिवाले को हानि करता है।

६–पलँग आदि पर सदा मुलायम बिछौने बिछा कर सोना चाहिये।

७–केवल उष्ण तासीर वाले को खुली जगह में ग्रीष्म ऋतु में ही सोना चाहिये परन्तु जिन देशों में ओस गिरती है उन में तो खुली जगह में वा खुली चांदनीमें नहीं सोना चाहिये, एवं जिस स्थान में सोने से शरीर पर हवा का अधिक झपाटा (झकोरा) सामने से लगता हो उस स्थान में नहीं सोना चाहिये।

८–सोने के कमरे के दर्वाज़े तथा खिड़कियों को बिलकुल बंद कर के कभी नहीं सोना चाहिये, किन्तु एक या दो खिड़कियां अवश्य खुली रखनी चाहियें जिस से ताज़ी हवा आती रहे[2]।

९–बहुत पढ़ने आदि के अभ्यास से, बहुत विचार से, नशा आदि के पीने से, अथवा अन्य किसी कारण से यदि मन उचका हुआ (अस्थिर) हो तो तुर्त नहीं सोना चाहिये।

१०–सोने के पहिले शिर को ठंढा रखना चाहिये, यदि गर्म हो तो ठंढे जल से धो डालना चाहिये।

११–पैरों को सोने के समय सदा गर्म रखना चाहिये, यदि पैर ठंढे हों तो तलवों को तेल से मलवा कर गर्म पानी में रख कर गर्म कर लेना चाहिये[3]।

१–स्वप्नों का पूरा वर्णन देखना हो तो हमारे बनाये हुए अष्टाङ्ग निमित्त रत्नाकर नामक ग्रंथ में देखो, उस का मूल्य १) रुपया मात्र है॥

२–देखो! शायरों ने कहा है कि–"सावण सूधे साथरे, माह उघाड़े खाट॥ विन मारे मर जायगा, जो जेठ चलेगा वाट॥ १॥

३–हमेशह ही (सोने के अतिरिक्त भी) शिर को ठंढा और पैरों को गर्म रखना चाहिये॥

१२–बहुत देर से तथा बहुत देरतक नहीं सोना चाहिये, किन्तु जल्दी सोना चाहिये तथा जल्दी उठना चाहिये।

१३–बहुत पेटभर खाकर तुर्त नहीं सोना चाहिये।

१४–संसार की सब चिन्ता को छोड़ कर चार शरणा लेकर चारों आहारों का त्याग करना चाहिये और यह सोचना चाहिये कि जीता रहा तो सूर्योदय के बाद खाना पीना बहुत है, चौरासी लाख जीवयोनि से अपने अपराध की माफी मांग कर सोना चाहिये।

१५–सात घंटे की नींद काफी होती है, इस से अधिक सोना दरिद्रों का काम है।

इस प्रकार रात्रि के व्यतीत होने पर प्रातःकाल चार बजे उठकर पुनः पूर्व लिखे अनुसार सब वर्त्ताव करना चाहिये[२] ॥

यह चतुर्थ अध्याय का दिनचर्यावर्णन नामक आठवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

नवां प्रकरण—सदाचारवर्णन[३] ॥

सदाचार का स्वरूप ॥

यद्यपि सद्विचार और सदाचार, ये दोनों ही कार्य मनुष्य को दोनों भवों में सुख देते हैं परन्तु विचार कर देखने से ज्ञात होता है कि इन दोनों में सदाचार ही प्रबल है, क्योंकि सद्विचार सदाचार के आधीन[४] है, देखो सदाचार करनेवाले (सदाचारी) पुण्यवान् पुरुष को अच्छे ही विचार उत्पन्न होते हैं और दुराचार करनेवाले (दुराचारी) दुष्ट पापी पुरुष को बुरे ही विचार उत्पन्न होते हैं, इसी लिये सत्य शास्त्रों में सदाचार की बहुत ही प्रशंसा की है तथा इस को सर्वोपरि माना है, सदाचार का अर्थ यह है कि—मनुष्य दान, शील, व्रत, नियम, भलाई, परोपकार दया, क्षमा, धीरज और सन्तोष के साथ अपने सर्व व्यापारों को कर के अपने जीवन का निर्वाह करे[५]।

१–इस के हानि लाभ पूर्व इस प्रकरण की आदि में लिख चुके हैं ॥

२–यह दिनचर्या का वर्णन संक्षेप से किया गया है, इस का विस्तारपूर्वक और अधिक वर्णन देखना हो तो वैद्यक के दूसरे ग्रन्थों में देख लेना चाहिये, इस दिनचर्या में स्त्री प्रसंग का वर्णन ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं लिखा गया है तथा इस के आवश्यक नियम पूर्व लिख भी चुके हैं अतः पुनः यहां पर उस का वर्णन करना अनावश्यक समझ कर भी नहीं लिखा है ॥

३–इस ग्रन्थ के इसी अध्याय के छठे प्रकरण में लिखे हुए पथ्य विहार का भी समावेश इसी प्रकरण में हो सकता है ॥

४–क्योंकि "बुद्धिः कर्मानुसारिणी" अर्थात् बुद्धि और विचार, ये दोनों कर्म के अनुसार होते हैं अर्थात् मनुष्य जैसे भले वा बुरे कार्य करेगा वैसे ही उस के बुद्धि और विचार भी भले वा बुरे होंगे, यही शास्त्रीयसिद्धान्त है ॥ ५–इसी प्रकार के वर्त्ताव का नाम श्रावकव्यवहार भी है ॥

सदाचारपूर्वक वर्ताव करनेवाले पुरुष के दोनों लोक सुधरते हैं तथा मनुष्य में जो सर्वोत्तम गुण ज्ञान है उस का फल भी यही है कि सदाचारपूर्वक ही वर्त्ताव किया जावे, इस लिये ज्ञान को प्राप्तकर यथाशक्य इसी मार्गपर चलना चाहिये, हां यदि कर्मवश इस मार्ग पर चलने में असमर्थ हो तो इस मार्गपर चलने के लिये प्रयत्न तो अवश्य ही करते रहना चाहिये तथा अपने इरादे को सदा अच्छा रखना चाहिये क्योंकि यदि मनुष्य ज्ञान को पाकर भी ऐसा न करे तो ज्ञानका मिलना ही व्यर्थ है ।

परन्तु महान् शोक का विषय है कि—वर्त्तमान में आर्य लोगों की बुद्धि और विवेक प्रायः सदाचार से रहित होने के कारण नष्टप्राय होगये हैं, देखो ! भाग्यवान् (श्रीमान्) पुरुष तो प्रायः अपने पास लुच्चे, बदमाश, महाशौकीन, विषयी, चुगुलखोर और नीच जातिवाले पुरुषों को रखते हैं, वे न तो अच्छे २ पुस्तकों को देखते हैं और न अच्छे जनों की संगति ही करते हैं तब कहिये उन के हृदय में सदाचार और सद्विचार कहां से उत्पन्न हो सकता है ? सिर्फ इसी कारण से वर्त्तमान में यथायोग्य आचार सद्विचार और सत्संगति बिलकुल ही उठ गई, इन लोगों के सुधरने का अब केवल यही उपाय है कि ये लोग कुसंगको छोड़ कर नीति[1] और धर्मशास्त्र आदि ग्रन्थों को देखें, सत्संग करें, भ्रष्टाचारों से बचें और सदाचार को उभयलोक का सुखद समझें, देखो ! भ्रष्टाचारों की मुख्य जड़ कुव्यसनादि हैं क्योंकि उन्हीं से बुद्धि भ्रष्ट होकर सदाचार नष्ट हो जाता है परन्तु बड़े ही खेद का विषय है कि—इस ज़माने में कुव्यसनों के फंदे से बिरले ही बचे हुए होंगे, इस का कारण सिर्फ यही है कि—हमारे देश के बहुत से भ्राता व्यसनों के यथार्थ स्वरूप से तथा उनसे परिणाम में होनेवाली हानि से बिलकुल ही अनभिज्ञ हैं अतः व्यसनों के विषय में यहां संक्षेप से लिखते हैं:—

जैन सूत्रों में सात व्यसन[2] कहे हैं जो कि इस भव और परभव दोनों को बिगाड़ देते हैं, उन का विवरण संक्षेप से इस प्रकार है:—

१ जुआ—यह सब से प्रथम नम्बर में है अर्थात् यह सातों व्यसनों का राजा है, इस के व्यसन से बहुत लोग फकीर हो चुके हैं और हो रहे हैं ।

१–जो चाणक्य नीतिसार दोहावली इसी ग्रन्थ में दी गई है उस को ध्यानपूर्वक देखना चाहिये और पहिले जो ऋतुसम्बंधी तथा नैत्यिक नियमों के पालन की विधि लिख चुके हैं उस के अनुसार वर्त्तना चाहिये ॥

२–सात महाव्यसनों का वर्णन यहां पर प्रसंगवश पाठकों को इधर ध्यान देने के वास्ते ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से बहुत ही संक्षेप से किया है, सुज्ञ गुणग्राही पुरुष इतने ही वर्णन से इन के दोषों को समझ जावेंगे, हम अपने मित्रों से यह भी अनुरोध किये विना नहीं रह सकते हैं कि–हे प्रियमित्रो यदि आप में कुसंग दोष आदि से कोई महाव्यसन पड़ गया हो तो आप उस को छोड़ने की अवश्य कोशिश करें ऐसा करने से आप को उस का फल स्वयं ही प्राप्त हो जायगा ॥

२ चोरी—दूसरा व्यसन चोरी है, इस व्यसनवाले का कोई भी विश्वास नहीं करता है और उस को जेलखाना अवश्य देखना पड़ता है जिस (जेलखाने) को इस भव का नरक कहने में कोई हर्ज नहीं है।

३ परस्त्रीगमन—तीसरा व्यसन परस्त्रीगमन है, यह भी महाभयानक व्यसन है, देखो! इसी व्यसन से रावण जैसे प्रतापी शूर वीर राजा का भी सत्यानाश हो गया तो दूसरों की तो क्या गिनती है, इस समय भी जो लोग इस व्यसन में संलग्न हैं उन को कैसी २ कठिन तकलीफें उठानी पड़ती हैं जिन को वे ही लोग जान सकते हैं।

४ वेश्यागमन—चौथा व्यसन वेश्यागमन है, इस के सेवन से भी हज़ारों लाखों बर्बाद होगये और होते हुए दीख पड़ते हैं, देखो! संसार में तन धन और प्रतिष्ठा, ये तीन पदार्थ अमूल्य समझे जाते हैं परन्तु इस महाव्यसन से उक्त तीनों पदार्थों का नाश होता है, आहा! श्रीभर्तृहरि[1] महाराज ने कैसा अच्छा कहा है कि—"यह वेश्या तो

१–इन का इतिहास इस प्रकार है कि–उज्जयिनी नगरी में सकलविद्यानिपुण और परम शूर राजा भर्तृहरि राज्य करता था, उस के दो भाई थे, जिन में से एक का नाम विक्रम था (संवत् इसी विक्रम राजा का चल रहा है) और दूसरे का नाम सुभट वीर्य था, इन दो भाइयों के सिवाय तीसरी एक छोटी बहिन भी थी जिसका सम्बंध गौड़ (बंगाल) देश के सार्वभौम राजा त्रैलोक्यचन्द्र के साथ हुआ था, इस भर्तृहरि राजा का पुत्र गोपीचंद नाम से संसार में प्रसिद्ध है, यह भर्तृहरि राजा प्रथम युवावस्था में अति विषयलम्पट था, उस की यह व्यवस्था थी कि उस को एक निमेष भी स्त्री के विना एक वर्ष के समान मालूम होता था, उस के ऐसे विषयासक्त होने के कारण यद्यपि राज्य का सब कार्य युवा राजा विक्रम ही चलाता था परन्तु यह भर्तृहरि अत्यन्त दयाशील था और अपनी समस्त प्रजा में पूर्ण अनुराग रखता था, इसी लिये प्रजा भी इस में पितृतुल्य प्रेम रखती थी, एक दिन का ज़िक्र है कि–उस की प्रजा का एक विद्वान् ब्राह्मण जंगल में गया और वहां जाकर उस ने एक ऋषि से मुलाकात की तथा ऋषि ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मण को एक अमृतफल दिया और कहा कि इस फल को जो कोई खावेगा उसे जरा नहीं प्राप्त होगी अर्थात् उसे बुढ़ापा कभी नहीं सतावेगा और शरीर में शक्ति बनी रहेगी, ब्राह्मण उस फल को लेकर अपने घर आया और विचारने लगा कि यदि मैं इस फल को खाऊं तो मुझे यद्यपि जरा (वृद्धावस्था) तो प्राप्त नहीं होगी परन्तु मैं महादरिद्र हूँ यदि मैं इस फल को खाऊं तो दरिद्रता से और भी बहुत समयतक महा कष्ट उठाना पड़ेगा और निर्धन होने से मुझ से परोपकार भी कुछ नहीं बन सकेगा, इस लिये जिस के हाथ से अनेक प्राणियों की पालना होती है उस भर्तृहरि राजा को यह फल देना चाहिये कि जिस से वह बहुत दिनोंतक राज्य कर प्रजा को सुखी करता रहे, यह विचार कर उस ने राजसभा में जाकर उस उत्तम फल को राजा को अर्पण कर दिया और उस के गुण भी राजा को कह सुनाये, राजा उस फल को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और ब्राह्मण को बहुत सा द्रव्य और सम्मान देकर विदा किया, तदनन्तर स्त्री में अत्यन्त प्रीति होने के कारण राजा ने यह विचार किया कि यह फल अपनी परम प्यारी स्त्री को देऊं तो ठीक हो क्योंकि वह इस को खाकर सदा यौवनवती और लावण्ययुक्त रहेगी, यह विचार कर वह फल राजा ने अपनी स्त्री को दे दिया, रानी ने अपने मन में विचार किया कि मैं रानी हूँ मुझ को किसी बात की तकलीफ नहीं है फिर मुझ को बुढ़ापा क्या तकलीफ दे सकता है, ऐसा विचार कर उस ने उस फल को अपने यार कोतवाल को दे दिया (क्योंकि उस की कोतवाल से यारी थी) उस

सुन्दरता रूपी इन्धन से प्रचण्ड रूप धारण किये हुए जलती हुई कामाग्नि है और कामी पुरुष उस में अपने यौवन और धन की आहुति देते हैं" पुनः भी उक्त महात्मा ने कहा है कि—"वेश्या का अधरपल्लव यदि सुन्दर हो तो भी उस का चुम्बन कुलीन पुरुष को नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह (वेश्या का अधरपल्लव) तो ठग, चोर, दास, नट और जारों के थूकने का पात्र है" इसके विषयमें वैद्यक शास्त्र का कथन है कि—वेश्या की योनि सुज़ाख और गर्मी आदि चेपी रोगों का जन्मस्थान है, और विचार कर देखा जावे तो यह बात बिलकुल सत्य है और इस की प्रमाणता में लाखों उदाहरण प्रत्यक्ष ही दीख पड़ते हैं कि— वेश्यागमन करनेवालों के ऊपर कहे हुए रोग प्रायः हो ही जाते हैं जिनकी परसादी उन की विवाहिता स्त्री और उन के सन्तानोंतक को मिलती है, इसका कुछ वर्णन आगे किया जायगा।

५ **मद्यपान**—पांचवां व्यसन मद्यपान है, वह भी व्यसन महाहानिकारक है, मद्य के पीने से मनुष्य बेसुध हो जाता है और अनेक प्रकार के रोग भी इस से हो जाते हैं, डाक्टर लोग भी इस की मनाई करते हैं—उनका कथन है कि—मद्य पीनेवालों के

फल को लेकर कोतवाल ने विचारा कि-मेरे हाथ में राजा की रानी है और सब प्रकार का माल मैं खाता हूं मेरा वृद्धावस्था क्या कर सकेगी, इसलिये अपनी प्यारी चन्द्रकला वेश्या को यह फल दे दूँ, ऐसा विचार कर कोतवाल ने वह अमृतफल उसी वेश्या को जाकर दे दिया, वह चंद्रकला वेश्या भी विचार करने लगी कि मुझ को अच्छे २ पदार्थ खाने को मिलते हैं, नगर का कोतवाल मेरे हाथ में है, मेरा बुढ़ापा क्या कर सकता है, इस लिये इस उत्तम फल को मैं भर्तृहरि राजा को भेंट कर दूं तो अच्छा है, ऐसा विचार कर उस ने दर्बार में जाकर वह फल राजा को भेंट किया और उस फल के पूर्वोक्त गुण कहे, राजा फल को देख अत्यन्त आश्चर्य करने लगा और मन में विचार ने लगा कि इस फल को तो मैं ने अपनी रानी को दिया था यह फल इस वेश्या के पास कैसे पहूँचा! आखिरकार तलाश कर ने पर राजा को सब हाल मालूम हो गया और उस के मालूम होनेसे राजा को उसी समय अत्यन्त वैराग्य प्राप्त हुआ जिस से वह स्त्री और राज्यलक्ष्मी आदि सब कुछ छोड़कर वन में चला गया, देखो! उस समय उस ने यह श्लोक कहा है कि-यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता। साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः॥ अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या। धिक् तां च तं च मदनं च इमाञ्च माञ्च॥ १॥ इस श्लोक का अर्थ यह है कि-जिस प्रियतमा अपनी स्त्री को मैं निरन्तर प्राणों से भी अधिक प्रिय मानता हूं वह मुझ से विरक्त हो कर अन्य पुरुष की इच्छा करती है और वह (अन्य पुरुष) दूसरी स्त्रीपर आसक्त है तथा वह (अन्य स्त्री) मुझ से प्रसन्न है, इस लिये मेरी प्रिया को (जो अन्य पुरुष से प्रीति रखती है) धिक्कार है, उस अन्य पुरुष को (जो ऐसी रानी को पाकर भी अन्य स्त्री अर्थात् वेश्या पर आसक्त है) धिक्कार है, इस अन्य स्त्री को (जो मुझ से प्रसन्न है) धिक्कार है तथा मुझ को और इस कामदेव को भी धिक्कार है॥ १॥ यह राजा वड़ा पण्डित था, इस ने भर्तृहरिशतक नामक ग्रन्थ बनाया और उस के प्रारम्भ में ऊपर लिखा हुआ श्लोक रक्खा है, इस ग्रन्थ के तीन शतक हैं अर्थात् पहिला नीतिशतक, दूसरा शृंगारशतक और तीसरा वैराग्यशतक है, यह ग्रन्थ देखने के योग्य है, इस में जो शृङ्गारशतक है वह लोगों को विषय जाल में फँसाने के लिये नहीं है किन्तु वह शृंगार के जाल का यथार्थ खरूप दिखलाता है जिस से उस में कोई न फँससके, ऐसे राजाओं को धन्य है॥

कलेजे में चालनी के समान छिद्र हो जाते हैं और वे लोग आधी उम्र में ही प्राण त्याग करते हैं, इस के सिवाय धर्मशास्त्र ने भी इस को दुर्गति का प्रधान कारण कहा है।

६ **मांस खाना**—छठा व्यसन मांसभक्षण है, यह नरक का देनेवाला है, इस के भक्षण से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, देखो! इस की हानियों को विचार कर अव यूरोप आदि देशों में भी मांस न खाने की एक सभा हुई है उस सभा के डाक्टरों ने और सभ्यों ने वनस्पति का खाना पसन्द किया है तथा प्रत्येक स्थान में वह सभा (वेजेटेरियन सुसाइटी) मांस भक्षण के दोषों और वनस्पति के गुणों का उपदेश कर रही है।

७ **शिकार खेलना**—सातवां महा व्यसन शिकार खेलना है, इस के विषय में धर्मशास्त्रों में लिखा है कि— इस के फन्दे में पड़ कर अनेक राजे महाराजों ने नरकादि दुःखों को पाया है, वर्त्तमान समय में वहुत से कुलीन राजे महाराजे भी इस दुर्व्यसन में संलग्न हो रहे हैं, यह वड़े ही शोक की वात है, देखो! राजाओं का मुख्य धर्म तो यह है कि सव प्राणियों की रक्षा करें अर्थात् यदि शत्रु भी हो और शरण में आ जावे तो उस को न मारें, अव विचारना चाहिये कि वेचारे मृग आदि जीव तृण खाकर अपना जीवन विताते हैं उन अनाथ और निरपराध पशुओं पर शस्त्र का चलाना और उन को मरण जन्य असह्य दुःख का देना कौन सी वहादुरी का काम है? अलवत्ता प्राचीन समयके आर्य राजा लोग सिंहकी शिकार किया करते थे जैसा कि कल्पसूत्र की टीका में वर्णन है कि—त्रिपृष्ठ वासुदेव जंगल में गया और वहां सिंह को देखकर मन में विचारने लगा कि न तो यह रथपर चढ़ा हुआ है, न इस के पास शस्त्र है और न शरीर पर

१–मनु जी ने अपने वनाये हुए धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) में मांसभक्षण के निषेध प्रकरण में मांस शब्द का यह अर्थ दिखलाया है कि जिस जन्तु को मैं इस जन्ममें खाता हूं वही जन्तु मुझ को पर जन्म में खावेगा, उक्त महात्मा के इस शब्दार्थ से मांसभक्षकों को शिक्षा लेनी चाहिये॥

२–वासुदेव के वल का परिमाण इस प्रकार समझना चाहिये कि वारह आदमियों का वल एक वैल में होता है, दश वैलों का वल एक घोड़े में होता है, वारह घोड़ों का वल एक भैंसे में होता है, पांच सौ भैंसों का वल एक हाथी में होता है, पांच सौ हाथियों का वल एक सिंह में होता है, दो सौ सिंहों का वल एक अष्टापद (जन्तुविशेष) में होता है, दो सौ अष्टापदों का वल एक वलदेव में होता है, दो वलदेवों का वल एक वासुदेव में होता है, नौ वासुदेवों का वल एक चक्रवर्त्ती में होता है, दश लाख चक्रवर्त्तियों का वल एक देवता में होता है, एक करोड़ देवताओं का वल एक इन्द्र में होता है और तीन काल के इन्द्रों का वल एक अरिहन्त में होता है, परन्तु वर्त्तमान समय में ऐसे वलधारी नहीं हैं, जो अपने वल का घमण्ड करते हैं वह उन की भूल है, पूर्व समय में आदमियों में और पशुओं में जैसी ताकत होती थी अव वह नहीं होती है, पूर्व काल के राजे भी ऐसे वलवान् होते थे कि यदि तमाम प्रजा भी वदल जावे तो अकेले ही उस को वश में ला सकते थे, देखो! संसार में शक्ति भी एक वड़ी अपूर्व वस्तु है जो कि पूर्वपुण्य से ही प्राप्त होती है॥

कवच ही है, इस लिये मुझको भी उचित है कि मैं भी रथ से उतर कर शस्त्र छोड़ कर और कवच को उतार कर इस के साथ युद्ध कर इसे जी तूं, इस प्रकार मन में विचार कर रथ से उतर पड़ा और शस्त्र तथा कवच का त्याग कर सिंह को दूर से ललकारा, जब सिंह नज़दीक आया तब दोनों हाथों से उस के दोनों ओठों को पकड़ कर जीर्ण वस्त्र की तरह चीर कर ज़मीन पर गिरा दिया परन्तु इतना करने पर भी सिंह का जीव शरीर से न निकला तब राजा के सारथि ने सिंह से कहा कि—हे सिंह! जैसे तू मृग-राज है उसी प्रकार तुझ को मारनेवाला यह नरराज है, यह कोई साधारण पुरुष नहीं है, इस लिये अब तू अपनी वीरता के साहस को छोड़ दे, सारथि के इस वचन को सुन कर सिंह के प्राण चले गये।

वर्त्तमान समय में जो राजा आदि लोग सिंह का शिकार करते हैं वे भी अनेक छल बल कर तथा अपनी रक्षा का पूरा प्रबंध कर छिपकर शिकार करते हैं, विना शस्त्र के तो सिंह की शिकार करना दूर रहा किन्तु समक्ष में ललकार कर तलवार या गोली के चलानेवाले भी आर्यावर्त्त भर में दो चार ही नरेश होंगे।

धर्मशास्त्रों का सिद्धान्त है कि जो राजे महाराजे अनाथ पशुओं की हत्या करते हैं उन के राज्य में प्रायः दुर्भिक्ष होता है, रोग होता है तथा वे सन्तानरहित होते हैं, इत्यादि अनेक कष्ट इस भव में ही उन को प्राप्त होते हैं और पर भव में नरक में जाना पड़ता है, विचार करने की बात है कि— यदि हमको दूसरा कोई मारे तो हमारे जीव को कैसी तकलीफ मालूम होती है, उसी प्रकार हम भी जब किसी प्राणी को मारें तो उस को भी वैसा ही दुःख होता है, इसलिये राजे महाराजों का यही मुख्य धर्म है कि अपने २ राज्य में प्राणियों को मारना बंद कर दें और स्वयं भी उक्त व्यसन को छोड़ कर पुत्रवत् सब प्राणियों की तन मन धन से रक्षा करें, इस संसार में जो पुरुष इन बड़े सात व्यसनों से बचे हुए हैं उन को धन्य है और मनुष्यजन्म का पाना भी उन्हीं का सफल समझना चाहिये, और भी बहुत से हानिकारक छोटे २ व्यसन इन्हीं सात व्यसनों के अन्तर्गत हैं, जैसे—१—कौड़ियों से तो जुए को न खेलना परन्तु अनेक प्रकार का फाटका (चांदी आदिका सट्टा) करना, २—नई चीज़ों में पुरानी और नक़ली चीज़ों का बेंचना, कम तौलना, दगाबाज़ी करना, ठगाई करना (यह सब चोरी ही है), ३—अनेक प्रकार का नशा करना, ४—घर का असबाव चाहें बिक ही जावे परन्तु मोल मँगाकर नित्य मिठाई खाये विना नहीं रहना, ५—रात्रि को विना खाये चैन का न पड़ना, ६—इधर उधर की चुगली करना, ७—सत्य न बोलना आदि, इस प्रकार अनेक तरह के व्यसन हैं, जिन के फन्दे में पड़ कर उन से पिण्ड छुड़ाना कठिन हो जाता है, जैसा कि किसी कवि ने कहा है कि—"डांकण मन्त्र अफीम रस। तस्कर ने जूआ॥ पर घर रीझी

का मणी, ये छूटसी मूआ" ॥ १ ॥ यद्यपि कवि का यह कथन बिलकुल सत्य है कि ये बातें मरने पर ही छूटती हैं तथापि इन की हानि को समझकर जो पुरुष सच्चे मन से छोड़ना चाहे वह अवश्य छोड़ सकता है, इस लिये व्यसनी पुरुष को चाहिये कि यथाशक्य व्यसन को धीरे २ कम करता जावे, यही उस (व्यसन) के छूटने का एक सहज उपाय है तथा यदि आप व्यसन में पड़ कर उस से निकलने में असमर्थ हो जावे तो अपनी सन्तति का तो उस से अवश्य बचाव रक्खे जिस से भावी में वह तो दुर्दशा में न पड़े।

इन पूर्व कहे हुए सात महा व्यसनों के अतिरिक्त और भी बहुत से कुव्यसन हैं जिन से बचना बुद्धिमानों का परम धर्म है, हे पाठक गणो! यदि आप को अपनी शारीरिक उन्नति का, सुखपूर्वक धन को प्राप्त करने का तथा उस की रक्षा का ध्यान है, एवं धर्म के पालन करने की, नाना आपत्तियों से बचने की तथा देश और जाति को आनन्द मंगल में देखने की अभिलाषा है तो सदा अफीम, चण्डू, गांजा, चरस, धतूरा और भांग आदि निकृष्ट पदार्थों से बचिये, क्योंकि ये पदार्थ परिणाम में बहुत ही हानि करते हैं, इसी लिये धर्मशास्त्रों में इन के त्याग के लिये अनेकशः आज्ञा दी गई है, यद्यपि इन पदार्थों के सेवन करने वालोंकी दुर्दशा को बुद्धिमानोंने देखा ही होगा तथापि सर्व साधारण के जानने के लिये इन पदार्थों के सेवन से उत्पन्न होनेवाली हानियों का संक्षेप से वर्णन करते हैं:-

अफीम—अफीम के खाने से बुद्धि कम हो जाती है तथा मगज़ में खुश्की बढ़ जाती है, मनुष्य न्यूनबल तथा सुस्त हो जाता है, मुख का प्रकाश कम हो जाता है, मुखपर स्याही आ जाती है, मांस सूख जाता है तथा खाल मुरझा जाती है, वीर्यका बल कम हो जाता है, इस का सेवन करनेवाले पुरुष घंटोंतक पीनक[१] में पड़े रहते हैं, उन को रात्रि में नींद नहीं आती है और प्रातःकाल में दिन चढ़ने तक सोते हैं जिस से आयु कम हो जाती है, दो पहर को शौच के लिये जाकर वहां (शौचस्थान में) घण्टों तक बैठे रहते हैं, समय पर यदि अफीम खाने को न मिले तो आंखों में जलन पड़ती है तथा हाथ पैर ऐंठने लगते हैं, जाड़े के दिनों में उनको पानी से ऐसा डर लगता है कि वे स्नानतक नहीं करते हैं इस से उन के शरीर में दुर्गंध आने लगती है, उन का रंग पीला पड़ जाता है तथा खांसी आदि अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं।

चण्डू—इस के नशे से भी ऊपर लिखी हुई सब हानियां होती हैं, हां इस में इतनी विशेषता और भी है कि इस के पीने से हृदय में मैल जम जाता है जिस

१-पीनक में पड़ने पर उन लोगों को यह भी सुध बुध नहीं रहती है कि हम कहां हैं, संसार किधर है और संसार में क्या हो रहा है ॥

से हृदयसम्बंधी अनेक महाभयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा हृदय निर्बल हो जाता है ।

गांजा, चरस, धतूरा और भांग—इन चारों पदार्थों के भी सेवन से खांसी और दमा आदि अनेक हृदय रोग हो जाते हैं, मगज़ में विक्षिप्तता को स्थान मिलता है, विचारशक्ति, स्मरणशक्ति और बुद्धि का नाश होता है, इन का सेवन करनेवाला पुरुष सभ्य मण्डली में बैठने योग्य नहीं रहता है तथा अनेक रोगों के उत्पन्न होने से इन का सेवन करनेवालों को आधी उम्रमें ही मरना पड़ता है ।

तमाखू—मान्यवरो ! वैद्यक ग्रन्थों के देखने से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि तमाखू संखिया से भी अधिक नशेदार और हानिकारक पदार्थ है अर्थात् किसी वनस्पति में इस के समान वा इस से अधिक नशा नहीं है ।

डाक्टर टेलर साहब का कथन है कि–"जो मनुष्य तमाखू के कारखानों में काम करते हैं उन के शरीरमें नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं अर्थात् थोड़े ही दिनों में उन के शिर में दर्द होने लगता है, जी मचलाने लगता है, बल घट जाता है, सुस्ती घेरे रहती है, भूख कम हो जाती है और काम करने की शक्ति नहीं रहती है" इत्यादि ।

बहुत से वैद्यों और डाक्टरोंने इस बातको सिद्ध कर दिया है कि इस के धुएं में ज़हर होता है इसलिये इस का धुआं भी शरीर की आरोग्यता को हानि पहुँचाता है अर्थात् जो मनुष्य तमाखू पीते हैं उन का जी मचलाने लगता है, कय होने लगती है, हिचकी उत्पन्न हो जाती हैं, श्वास कठिनता से लिया जाता है और नाड़ी की चाल धीमी पड़ जाती है, परन्तु जब मनुष्य को इस का अभ्यास हो जाता है तब ये सब बातें सेवन के समय में कम मालूम पड़ती हैं परन्तु परिणाम में अत्यन्त हानि होती है ।

डाक्टर सिथ का कथन है कि–तमाखू के पीने से दिल की चाल पहिले तेज़ और फिर धीरे २ कम हो जाती है ।

वैद्यक ग्रन्थों से यह स्पष्ट प्रकाशित है कि–तमाखू बहुत ही ज़हरीली (विषैली) वस्तु है, क्योंकि इस में नेकोशिया कार्बोनिक एसिड और मगनेशिया आदि वस्तुयें मिली रहती हैं जो कि मनुष्य के दिल को निर्बल कर देती हैं कि जिस से खांसी और दम आदि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है, दिल पर कीट अर्थात् मैल जम जाता है, तिल्ली का रोग उत्पन्न होकर चिरकालतक ठहरता है तथा प्रतिसमय में जी मचलाता रहता है और मुख में दुर्गन्ध बनी रहती है, अब बुद्धि से विचारने की यह बात है कि लोग मुसलमान तथा ईसाई आदि से तो बड़ा ही परहेज़ करते हैं परन्तु वाह री तमाखू ! तेरी प्रीति में लोग धर्म कर्म की भी कुछ सुध और परवाह न कर सब ही से परहेज़ को तोड़ देते हैं, देखो ! तमाखू के बनाने

वाले मुसलमान लोग अपने ही वर्त्तनों में उसे बनाते हैं और अपने ही घड़ों का पानी डालते हैं उसी को सब लोग मजे से पीते हैं, इस के अतिरिक्त एक ही चिलम को हिन्दू मुसलमान और ईसाई आदि सब ही लोग पीते हैं कि जिस से आपस में अवखरात (परमाणु) अदल बदल हो जाते हैं तो अब कहिये कि हिन्दू तथा मुसलमान या ईसाइयों में क्या अन्तर[2] रहा, क्या इसी का नाम शौच वा पवित्रता है?

प्रिय सुजनो! केवल पदार्थविद्या के न जानने तथा वैद्यकशास्त्र पर ध्यान न देने के कारण इस प्रकार की अनेक मिथ्या बातों में फँसे हुए लोग चले जाते हैं जिस से सब के धर्म कर्म तथा आरोग्यता आदि में अन्तर पड़ गया और प्रतिदिन पड़ता जाता है, अतः अब आप को इन सब हानिकारक बातों का पूरा २ प्रबन्ध करना योग्य है कि जिस से आप के भविष्यत् (होनेवाले) सन्तानों को पूर्ण सुख तथा आनन्द प्राप्त हो।

हे विद्वान् पुरुषो! और हे प्यारे विद्यार्थियो! आपने स्कूलों में पदार्थविद्या को अच्छे प्रकार से पढ़ा है इसलिये आप को यह बात अच्छे प्रकार से मालूम है और हो सकती है कि तमाखू में कैसे २ विषैले पदार्थ मिश्रित हैं और आप लोगों को इस के पीने से उत्पन्न होनेवाले दोष भी अच्छे प्रकार से प्रकट हैं अतः आप लोगों का परम कर्त्तव्य है कि इस महानिकृष्ट हुक्के के पीने का स्वयं त्याग कर अपने भाइयों को भी इस से बचावें क्योंकि सत्य विद्याका फल परोपकार[3] ही है।

इस के अतिरिक्त यह भी सोचने की बात है कि तमाखू आदि के पीने की आज्ञा किसी सत्यशास्त्र में नहीं पाई जाती है किन्तु इस का निषेध ही सर्व शास्त्रों में देखा जाता है, देखो—

तमाखुपत्रं राजेन्द्र, भज माज्ञानदायकम् ॥
तमाखुपत्रं राजेन्द्र, भज माज्ञानदायकम् ॥ १ ॥

अर्थात् हे राजेन्द्र! अज्ञान को देनेवाले तमाखुपत्र (तमाखू के पत्ते) का सेवन मत करो किन्तु ज्ञान और लक्ष्मी को देनेवाले उस आखुपत्र अर्थात् गणेश देव का सेवन करो ॥ १ ॥

१–तमाखू बनाते समय उन का पसीना भी उसी में गिरता रहता है, इत्यादि अनेक मलीनतायें भी तमाखू में रहती हैं ॥

२–देखो! जिस चिलम को प्रथम एक हिन्दू ने पिया तो कुछ उस के भीतर अवखरात गर्मी के कारण अवश्य चिलम में रह जावेंगे फिर उसी को मुसलमान और ईसाई ने पिया तो उस के भी अवखरात गर्मी के कारण उस चिलम में रह गये, फिर उसी चिलम को जब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यादि ने पिया तो कहिये अब परस्पर में क्या भेद रह गया?

३–इसी प्रकार देशी पाठशालाओं तथा कालिजों के शिक्षकों को भी योग्य है कि वे कदापि इस हुक्के को न पियें कि जिन की देखादेखी सम्पूर्ण विद्यार्थी भी चिलम का दम लगाने लगते हैं ॥

४–यह सुभाषितरत्नभांडागार के प्रारंभ में श्लोक है ॥

धूम्रपानरतं विप्रं, सत्कृत्य ददाति यः ॥
दाता स नरकं याति, ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ॥ २ ॥

अर्थात् जो मनुष्य तमाखू पीनेवाले ब्राह्मण का सत्कार कर उस को दान देता है वह (दाता) पुरुष नरक को जाता है और वह ब्राह्मण ग्राम का शूकर (सुअर) होता है ॥ २ ॥ इसी प्रकार शार्ङ्गधर वैद्यक ग्रन्थ में लिखा है कि—**"बुद्धिं लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते"** अर्थात् जो पदार्थ बुद्धि का लोप करता है उस को मदकारी कहते हैं।

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि तमाखू आदि का पीना महाहानिकारक है परन्तु वर्तमान में लोग शास्त्रों से तो बिलकुल अनभिज्ञ हैं अतः उन को पदार्थों के गुण और दोष विदित नहीं हैं, दूसरे—देशभर में इन कुव्यसनों का अत्यन्त प्रचार बढ़ रहा है जिस से लोग प्रायः उसी तरफ को झुक जाते हैं, तीसरे—कुव्यसनी लोगों ने भोले लोगों को बहकाने और फँसाने के लिये इन निकृष्ट वस्तुओंके सेवन की प्रशंसा में ऐसी २ कपोलकल्पित कवितायें रचडाली हैं जिन्हें सुनकर वे बेचारे भोले पुरुष उन वाक्यों को मानो शास्त्रीय वाक्य समझ कर बहक जाते और फँस जाते हैं अर्थात् उन्हीं निकृष्ट पदार्थों का सेवन करने लगते हैं, देखिये ! इन कुव्यसनी लोगों की कविता की तरफ दृष्टि डालिये और विचारिये कि इन्हों ने भोले भाले लोगों के फँसाने के लिये कैसी माया रची है:—

अफीम[3]—**गज गाहण डाहण गढां, हाथ या देण हमल्ल ॥**
मतवालां पौरष चढ़े, आयो मीत अमल्ल ॥ १ ॥

१—यह पद्मपुराण का वाक्य है ॥

२—तात्पर्य यह है कि मदकारी पदार्थ बुद्धि का लोप करता है ॥

३—आजकल राजपूतों में अफीम बड़ी ही ज़रूरी चीज़ समझी जाती है अर्थात् इस की ज़रूरत सन्तान के पैदा होने, सगाई, व्याह, लड़ाई और गमी आदि प्रत्येक मौके पर उन को होती है, इन अवसरों में वे लोग अफीम को बांटते हैं और गालवां कर के लोगों को पिलाते हैं, उन लोगों में सब से बढ़ कर बात यह है कि किसी आदमी से चाहे कितनी ही अदावत हो परन्तु जब उस के हाथ से अफीम ले ली तो बस उसी दम सफाई हो जावेगी, राजपूत लोग अफीम के नशे को मर्द नशाभी कहते हैं अर्थात् मद्य के नशे से इसे अच्छा मानते हैं और इस का बहुत बखान भी करते हैं, यद्यपि अफीम का प्रचार उत्तर पश्चिम मारवाड़ में और मद्य का प्रचार पूर्व में अधिक है तथापि प्रायः सर्दार और जागीरदार लोग मद्य से ही बिगड़ते और मरते हैं क्योंकि वे लोग इस का पीना बचपन से ही गोले गोलियों की खराब संगति में पड़ कर सीख जाते हैं, फिर—ढोली, ढाढी, रण्डी और भडुए आदि मद्य की तारीफ के गीत गा २ कर उन के नशे को प्रतिदिन बढ़ाते रहते हैं, जैसी कि मद्य की महिमा कुछ ऊपर लिख कर बतलाई है, इस का प्रचार केवल किसी देशविशेष में ही हो यह बात नहीं है किन्तु संपूर्ण आर्यावर्त्त में यही दशा हो रही है इस लिये बुद्धिमानों का यही कर्त्तव्य है कि अपने और समस्त देश के हिताहित का विचार कर इन कुव्यसनों को दूर करें ॥

हुक्का—अस चढ़ना अस उचकना, नित खाना खिर गोश ॥
जगमांही जीनाजिते, पीना चम्मर पोश ॥ १ ॥
शिरपर बँधा न सेहरा, रण चढ़ किया न रोस ॥
लाहा जग में क्या लिया, पिया न चम्मर पोस ॥ २ ॥
हुक्का हरि को लाड़लो, राखे सब को मान ॥
भरी सभा में यों फिरे, ज्यों गोपिन में कान ॥ ३ ॥

मद्य—दारू पियो रंग करो, राता राखो नैंण ॥
बेरी थांरा जलमरे, सुख पावेला सैंण ॥ १ ॥
दारू दिल्ली आगरो, दारू बीकानेर ॥
दारू पीयो साहिबा, कोई सौ रुपियां रो सेर ॥ २ ॥
दारू तो भक भक करे, सीसी करे पुकार ॥
हाथ पियालो धन खड़ी, पीयो राजकुमार ॥ ३ ॥

गांजा—जिस ने न पी गांजे की कली। उस लड़के से लड़की भली॥१॥

भांग—घोट छांण घट में धरी, उठत लहर तरङ्ग ॥
विना मुक्त वैकुण्ठ में, लिया जात है भङ्ग ॥ १ ॥
जो तू चाहै मुक्त को, सुण कलियुग का जीव ॥
गंगोदक मे छाण कर, भंगोदक कूं पीव ॥ २ ॥
भंग कहै सो बावरे, विजया कहैं सो कूर ॥
इसका नाम कमलापती, रहे नैन भर पूर ॥ ३ ॥

तमाखू-कृष्ण चले वैकुण्ठ को, राधा पकड़ी बांहि ॥
यहां तमाखू खायलो, वहां तमाखू नांहि ॥ १ ॥ इत्यादि ।

प्रिय सुजन पुरुषो ! विचारशीलों का अब यही कर्त्तव्य है कि वैद्यशास्त्र आदिसे निषिद्ध तथा महा हानिकारक इन कुव्यसनों का जड़मूल से ही नाश कर दें अर्थात् स्वयं इन का त्याग कर दूसरों को भी इन की हानियां समझा कर इन का त्याग करने की शिक्षा दें, क्योंकि इन से ऊपर कही हुई हानियों के सिवाय कुछ ऐसी भी हानियां होती हैं जिन से मनुष्य किसी काम का ही नहीं रहता है देखिये। जो पुरुष जितना इन नशों को पीता है उतनी ही उसकी रुचि और भी अधिक बढ़ती जाती है जिस से उस का फिर इन व्यसनों से निकलना कठिन हो कर इन्हीं में जीवन का त्याग करना पड़ता है, दूसरे-इन में रुपया तथा समय भी व्यर्थ जाता है, तीसरे-इन के सेवन से वहुधा मनुष्य पागल भी हो जाते हैं और वहुतसे मर भी जाते हैं, चौथे-छोटे २ मनुष्यों में भी नशेवाजों की प्रतिष्ठा नहीं रहती है फिर भला वड़े लोगों में तो ऐसों को कौन पूंछता है, अतः समझदार लोगों को इन की ओर दृष्टि भी नहीं डालनी चाहिये ॥

सर्वहितकारी कर्त्तव्य ॥

शरीर की आरोग्यता रखने की जो २ मुख्य बातें हैं उन सब का जानना और उन्हीं के अनुसार चलना मनुष्यमात्र को योग्य है, इस विषय में आवश्यक बातों का संग्रह संक्षेप से इस ग्रन्थमें कर दिया गया है, अब विचारणीय विषय यह है कि–शरीर की आरोग्यता के लिये जो २ आवश्यक नियम हैं वे सब ही सामान्य प्रजा जनों के आधीन नहीं हैं किन्तु उन में से कुछ नियम स्वाधीन हैं तथा कुछ नियम पराधीन हैं, देखो! आरोग्यताजन्य सुख के लिये प्रत्येक पुरुष को उचित आहार और विहार की आवश्यकता है इस लिये उस के नियमों को समझ कर उन की पाबन्दी रखना यह प्रत्येक पुरुष का धर्म है क्योंकि आहार और विहार के आवश्यक नियम प्रत्येक पुरुष के स्वाधीन हैं परन्तु नगरों की सफाई और आवश्यक प्रबन्धों का करना कराना आदि आवश्यक नियम प्रत्येक पुरुष के आधीन नहीं हैं किन्तु ये नियम सभा के लोगों के तथा सर्कार के नियत किये हुए शहर सफाई खाते के अमलदारों के आधीन हैं, इसलिये इन को चाहिये कि प्रजा के आरोग्यताजन्य सुख के लिये पूरी २ निगरानी रक्खें तथा जो २ आरोग्यता के आवश्यक उपाय प्रजा के आधीन हैं उन पर प्रजा को पूरा ध्यान देना चाहिये, क्योंकि उन उपायों के न जानने से तथा उन पर पूरा ध्यान न देने से अज्ञान प्रजाजन अनेक उपद्रवों और रोगों के कारणों में फँस जाते हैं, इसलिये आरोग्यता के आवश्यक उपायों का जानना प्रत्येक छोटे बड़े मनुष्य का मुख्य कार्य है, क्योंकि इन के न जानने से बड़ी हानि होती है, देखो! कभी २ एक मनुष्य की ही अज्ञानता से हज़ारों लाखों मनुष्यों की जान को जोखम पहुँच जाती है, परन्तु यह सब ही जानते हैं कि साधारण पुरुष उपदेश और शिक्षा के विना कुछ भी नहीं सीख सकते हैं और न कुछ जान सकते हैं, इसलिये अज्ञान प्रजाजनों को आहार और विहार आदि आरोग्यता की आवश्यक बातों से विज्ञ करना मुख्यतया विद्वान् वैद्य डाक्टर और सर्कार का मुख्य कर्त्तव्य है अर्थात् लोग आरोग्यता के द्वारा सुखी रहें इस प्रकार के सद्भाव को हृदय में रखनेवाले वैद्य और डाक्टरों को वैद्यक विद्या का अवश्य उद्धार करना चाहिये अर्थात् वैद्य और डाक्टरों को उचित है कि वे रोगों की उत्पत्ति के कारणों को खोज २ कर ज़ाहिर करें, उन कारणों को हटावें और वे कारण फिर न प्रकट हो सकें, इस का पूरा प्रबंध करें और उन कारणों के हटाने के योग्य उपायों से प्रजाजनों को विज्ञ करें तथा प्रजाजनों को चाहिये कि उन आवश्यक उपायों को समझ कर उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करें उस से विरुद्ध कदापि न चलें, क्योंकि उस से विरुद्ध चलने से नियमों की पाबन्दी जाती रहती है और प्रबन्ध व्यर्थ जाता है, देखो! म्यूनीसिपल कमेटी के अधिकारी आदि जन बड़े २ रास्तों में गली कूंचों में तथा सब मुहल्लों में जाकर तथा खोज कर चाहें जितनी सफाई रक्खें परन्तु

जब तक प्रजा जन अपने २ घर आंगन में इकट्ठी हुई रोगों को पैदा करनेवाली मलीनता को नहीं हटावेंगे तथा आहार विहार के आवश्यक स्वाधीन नियमों को नहीं जानेंगे तथा उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव नहीं करेंगे तवतक शहर की सफाई और किये हुए आवश्यक प्रवन्धों से कुछ भी फल नहीं निकल सकेगा।

वर्त्तमान में जो आरोग्यता में वाधा पड़ रही है और सव आवश्यक नियम और प्रवन्ध अस्थिरवत् हो रहे हैं उस का कारण यही है कि इस समय में अज्ञान लोग अधिक हैं अर्थात् पढ़े लिखे भी वहुत से पुरुष शरीर रक्षा के नियमों से अनभिज्ञ हैं, यदि इस पर कोई पुरुष यह प्रश्न करे कि अव तो स्कूलों में अनेक विद्यायें और अनेक कलायें सिखलाई जाती हैं जिन के सीखने से लोगों का अज्ञान दूर हो रहा है फिर आप कैसे कहते हैं कि वर्त्तमान समय में अज्ञान लोग अधिक हैं? तो इस का उत्तर यह है कि—वर्त्तमान समय में स्कूलों में जो अनेक विद्यायें और अनेक कलायें सिखलाई जाती हैं यह तो तुह्मारा कहना ठीक है परन्तु शरीर संरक्षण की शिक्षा स्कूलों में पूरे तौर से नहीं दी जाती है, इसीलिये हम कहते हैं कि पढ़े लिखे भी वहुत से पुरुष शरीर रक्षाके नियमों से अनभिज्ञ हैं, देखो! मारवाड़ में जो विद्या के पढ़ाने का क्रम है उसे तो हम पहिले लिखही चुके हैं कि उन की पढ़ाई शिक्षा के विषय में खाख धूल भी नहीं है, अव गुजराती, वंगला, मराठी और अंग्रेज़ी पाठशालाओं की तरफ दृष्टि डालिये तो यही ज्ञात होगा कि उक्त पाठशालाओं में तथा उक्त भाषाओं की पुस्तकों में जिस क्रम से कसरत, हवा, पानी और प्रकाश आदि का विषय पढ़ाने के लिये नियत किया गया है वह क्रम ऐसा है कि छोटे २ वालकों की समझ में वह कभी नहीं आ सकता है, क्योंकि वह शिक्षा का क्रम अति कठिन है तथा संक्षेप में वर्णित है अर्थात् विस्तार से वह नहीं लिखा गया है, देखो! थोड़े वर्ष पूर्व अंग्रेज़ी के पांचवें धोरण में सी-नेटरी प्रायमर अर्थात् आरोग्यविद्याका प्रवेश किया गया था परन्तु उस का फल अवतक कुछ भी नहीं दीख पड़ता है, इस का कारण यही प्रतीत होता है कि उस का प्रारंभ वर्ष के अन्तिम दिनों में कक्षा में होता है और परीक्षा करनेवाले पुरुष अमुक २ विषय के प्रश्नों को प्रायः पूछते हैं इस वात का खयालकर शिक्षक और माष्टर लोग मुख्य २ विषयों के प्रश्नों को घोखा २ के कण्ठाग्र करा देते हैं अर्थात् सव विषयों को याद नहीं कराते हैं, परन्तु इस में माष्टरों का कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि दूसरे जो मुख्य २ विषय नियत हैं उन्हीं को सिखाने के लिये जव शिक्षकों को काफी समय नहीं मिलता है तो भला जो विषय गौण पक्ष में नियत किये हैं उनपर शिक्षक पुरुष पूरा ध्यान कव दे सकते हैं, ऐसी दशा में सर्कार को ही इस विषय में ध्यान देकर इस विद्या को उन्नति देनी चाहिये अर्थात् इस आरोग्यप्रद वैद्यक विद्या को सर्व विद्याओं में शिरोमणि समझ

कर धोरण में मुख्य विषय के तरीके पर नियत करना चाहिये, हमारे इस कथन का यह प्रयोजन नहीं है कि श्रीमती सर्कार को कोर्स में नियत कर के सम्पूर्ण ही वैद्यक विद्या की शिक्षा देनी चाहिये किन्तु हमारे कथन का प्रयोजन यही है कि कम से कम हवा, पानी, खुराक, सफाई और कसरत आदि के गुण दोषोंकी आवश्यक शिक्षा तो अवश्य देनी ही चाहिये जिस के वर्त्ताव से प्रतिदिन ही मनुष्य को काम पड़ता है, इस के लिये सहल उपाय यही है कि पाठशालाओं में पढ़ाने के लिये नियत की हुई पुस्तकों के पाठों में पहिले तो इस विद्या के सामान्य नियम बतलाये जावें जो कि सरल और उपयोगी हों तथा जिन के समझने में विद्यार्थियों को अधिक परिश्रम न पड़े, पीछे इस (विद्या) के सूक्ष्म विषयों को उन्हीं पुस्तकों के पाठों में प्रविष्ट करना चाहिये ।

वर्त्तमान में जो इस विद्या की कुछ बातें स्कूलों में पढ़ी पढ़ाई भी जाती हैं उन्हें गौण जानकर उन पर पूरे तौर से न तो कुछ ध्यान दिया जाता है और न वे बातें ही ऐसी हैं कि पाठकों के चित्तपर अपना कुछ प्रभाव डाल सकें इसलिये उन का पढ़ना पढ़ाना बिलकुल व्यर्थ जाता है, देखो ! स्कूल का एक विद्वान् विद्यार्थी भी (जिस ने इस विद्या की यह शिक्षा पाई है तथा दूसरों को भी शिक्षा के देने का अधिकारी हो गया है कि साफ पानी पीना चाहिये, साफ वस्त्र पहरने चाहियें तथा प्रकृति के अनुकूल खुराक खानी चाहिये) घर में जाकर प्रतिदिन उपयोग में आनेवाली वस्तुओं के भी गुण और दोष को न जान कर उन का उपयोग करता है, भला कहिये यह कितनी अज्ञानता है, क्या स्कूल में शिक्षा के पाने का यही फल है ? स्कूल का पदार्थ विद्या का वेत्ता एक विद्यार्थी यदि यह नहीं जानता है कि मूली और दूध तथा मूंग की दाल और दूध मिश्रित कर खाने से शरीर में थोड़ा २ ज़हर प्रतिदिन इकट्ठा होकर भविष्यत् में क्या २ बिगाड़ करता है तो उस के पदार्थविद्या के पढ़ने से क्या लाभ है ! भला सोचो तो सही कि ऊपर लिखी हुई एक छोटीसी बात को भी वह विद्यार्थी जब कि स्वप्न में भी नहीं जानता है तो आरोग्यता के विशेष नियमों को वह क्यों कर जान सकता है; वा कैसे उन के जानने का अधिकारी हो सकता है ? स्कूल के उच्च कक्षा के विद्यार्थी भी जो कि आकाश के ग्रहों और तारों की गति के तथा उन के परिवर्त्तन के नियमों को कण्ठाग्र पढ़ जाते हैं ऋतुओं के परिवर्त्तन से शरीर में क्या २ परिवर्त्तन होता है उस के लिये किस २ आहार विहार की संभाल रखनी चाहिये इत्यादि बातों को बिलकुल नहीं जानते हैं, इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण के कारण को तथा उन के आकर्षण से समुद्रों में होनेवाले ज्वार भाटे (उतार चढ़ाव) के नियम को तो वे (विद्यार्थी) समझ सकेंगे परन्तु इस ग्रहचक्र का शरीर पर कैसा असर होता है और उस के आकर्षण से शरीर में

१-जिन के विषय में हम पहिले लिख चुके हैं ॥

किस प्रकार की न्यूनाधिकता होती है इन वातों का ज्ञान उन विद्यार्थियों को कुछ भी नहीं होता है, सिर्फ यही कारण है कि वैद्यक शास्त्र के नियमों का ज्ञान उन्हें न होने से वे स्वयं उन नियमों का पालन नहीं करते हैं तथा दूसरों को नियमों का पालन करते हुए देखकर उन का उलटा उपहास करते हैं, जैसे देखो ! द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णमासी और अमावस, इन तिथियों में उपवास और व्रत नियम का करना वैद्यक विद्या के आधार से बुद्धिमान् आचार्यों ने धर्म रूप में प्रविष्ट किया है, इस के असली तत्त्व को न समझ कर वे इस का हास्य कर अपनी विशेष अज्ञानता को प्रकट करते हैं, इसी प्रकार भाद्रपद में पित्त के सञ्चित हो चुकने से उस के कोप का समय समीप आता है इस लिये सर्वज्ञ ने पर्यूषण पर्व को स्थापन किया जिस में तेला[1] उपवासादि करना होता है तथा इस की समाप्ति होने पर पारणे[2] में लोग मीठा रस और दूध आदि पदार्थों को खाते हैं जिन के खाने से पित्त की बिलकुल शान्ति हो जाती है, देखो ! चरक ने दोषों को पकाने के लिये लंघन को सर्वोपरि पथ्य लिखा है उस में भी पित्त और कफ के लिये तो कहना ही क्या[3] है, इसी नियम को लेकर आश्विन (आसोज) सुदि सप्तमी वा अष्टमी से जैन धर्म वाले नौ दिन तक आंविल करते हैं तथा मन्दिरों में जाकर दीप और धूप आदि सुगन्धित वस्तुओं से स्नात्र अष्टप्रकारी और नवपदादि पूजा करते हैं जिस से शरद् ऋतु की हवा भी साफ होती है, क्योंकि इस ऋतु की हवा बहुत ही ज़हरीली होती है, शरीर में जो पित्त से रक्तसम्बंधी विकार होता है वह भी आंविल के तप[4] से शान्त हो जाता है, इसी प्रकार वसन्त ऋतु की हवा को शुद्ध करने के लिये भी चैत्र सुदि सप्तमी वा अष्टमी से लेकर नौदिन तक यही (पूर्वोक्त तप) विधिपूर्वक किया जाता है जिस के पूजासम्बन्धी व्यवहार से हवा साफ होती है तथा उक्त तप से कफ की भी शान्ति होती है, इसी प्रकार से जो २ पर्व बांधे गये हैं वे सब वैद्यक विद्या के आश्रय से ही धर्मव्यवस्था प्रचारार्थ उस सर्वज्ञ के द्वारा आदिष्ट (कथित) हैं, एवं अन्य मतों में भी देखने से वही व्यवस्था प्रतीत होती है जिस का वर्णन अभी कर चुके हैं, देखो ! आश्विन के कृष्ण पक्ष में ब्राह्मणों ने जो श्राद्धभोजन चलाया है वह भी वैद्यक विद्या से सम्बंध

१–तेला उपवास अर्थात् तीन दिन का उपवास ॥

२–उपवास अथवा व्रत नियम के समाप्त होने पर प्रकृत्यनुसार उपयोज्य वस्तु के उपयोग को पारण कहते हैं ॥

३–अर्थात् पित्त और कफ के पकने के लिये तथा उन की शान्ति के लिये तो लंघन ही मुख्य उपाय है ॥

४–आंविल तप उसे कहते हैं जिस में सब रसों का त्याग कर चावल, गेहूँ, चना मूंग और उड़द इन पांच अन्नों में से केवल एक अन्न निमक के बिना ही सिजाया हुआ खाया जाता है और गर्म कियाहुआ जल पिया जाता है ॥

रखता है अर्थात् श्राद्ध में प्रायः दूध और मीठा खाया जाता है जिस के खाने से पित्त शान्त हो जाता है, तात्पर्य यह है कि प्राचीन विद्वानों और बुद्धिमानों ने जो २ व्यवहार ऋतु आदि के आहार विहार को विचार कर प्रवृत्त किये हैं वे सब ही मनुष्यों के लिये परम लाभदायक हैं परन्तु उन के नियमों को ठीक रीति से न जानना तथा नियमों के जाने विना उन का मनमाना वर्त्ताव करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता है।

अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है कि यद्यपि प्राचीन सर्व व्यवहारों को पूर्वाचार्यों ने बड़ी दूरदर्शिता के साथ वैद्यक विद्या के नियमों के अनुसार बांधा था कि जिन से सर्व साधारण को आरोग्यता आदि सुखों की प्राप्ति हो परन्तु वर्त्तमान में इतनी अविद्या बढ़ रही है कि लोग उन प्राचीन समय के पूर्वाचार्यों के बांधे हुए सब व्यवहारों के असली तत्त्व को न समझ कर उन में भी मनमाना अनुचित व्यवहार करने लगे हैं जिस से सुख के बदले उलटी दुःख की ही प्राप्ति होती है, अतः सुजनों का यह कर्त्तव्य है कि इस ओर अवश्य ध्यान देकर वैद्यक विद्या के नियमों के अनुसार बांधे हुए व्यवहारों के तत्त्व को खूब समझ कर उन्हीं के अनुसार स्वयं वर्त्ताव करें तथा दूसरों को भी उन की शिक्षा देकर उन में प्रवृत्त करें कि जिस से देश का कल्याण हो तथा सर्वसाधारण की हितसिद्धि होने से उभय लोक के सुखों की प्राप्ति हो ॥

यह चतुर्थ अध्याय का सदाचारवर्णन नामक नवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

१–परन्तु महा शोक का विषय है कि वर्त्तमान समय में अविद्या के कारण इस (श्राद्ध) में केवल एक नय मात्र घटता है अर्थात् सर्वांग नयपूर्वक श्राद्ध की क्रिया वर्त्तमान में नहीं होती है इस लिये इस से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है, देखो। वैद्यकशास्त्रानुसार इस ऋतु में खीर का भोजन कुपथ्य है, क्योंकि खीर का भोजन पित्तकारी और गर्म है परन्तु श्राद्धी ब्राह्मण इसे खूब खाते हैं, फिर देखो। श्राद्ध में जीमनेवाले ब्राह्मण पेट भर कर गले तक पराया माल खा जाते हैं और शरद् ऋतु में अधिक भोजन का करना मानों यम की डाढ़ में जाना है, फिर यह भी देखा गया है कि एक एक ब्राह्मण के आठ २ दश २ निमन्त्रण आते हैं और वे अज्ञानता से दक्षिणा के लोभ से सब जगह भोजन करते ही जाते हैं किन्तु यह नहीं समझते हैं कि अध्यशन (भोजन पर भोजन करना) सब रोगों का मूल है, यद्यपि पूर्व लिखे अनुसार श्राद्ध चलानेवाले का प्रयोजन वैद्यक विद्या के अनुकूल ही होगा कि श्राद्ध में मधुर पदार्थों के सेवन से पित्त की शान्ति हो, और बुद्धिमान् पुरुष इस पर ध्यान देने से इस के उक्त प्रयोजन को समझ सकते हैं और मान भी सकते हैं, परन्तु वर्त्तमान समय में जो श्राद्ध में आचरण हो रहा है वह तो मनुष्य को रोगी बनाने का पूरा साधन है, इस में कोई सन्देह नहीं है, क्यों कि शरद् ऋतु में गरिष्ठ भोजन को पेट भर कर गलेतक खाना मानो मौत को पुकारना है और बहुत से लोग इस के फल को पाचुके हैं और पाते हैं, परन्तु तो भी चेतते नहीं है और न यह विचारते हैं कि श्राद्ध का असली प्रयोजन क्या है ॥

दशवां प्रकरण—रोगसामान्य कारण ॥

रोग का विवरण ॥

आरोग्यता की दशा में अन्तर पड़ जाने का नाम रोग है परन्तु नीरोगावस्था और रोगावस्था के बीच की मर्यादा की कोई स्पष्ट पहिचान नहीं है कि—इन दोनों के बीच की दशा कैसी है और उस में क्या २ असर है, इस लिये इन दोनों अवस्थाओं का भी पूरा २ वर्णन करना कुछ कठिन बात है, देखो। आदमी को ज़रा भी खबर नहीं पड़ती है और वह एक दशा से धीरे २ दूसरी दशा में जा गिरता है अर्थात् नीरोगावस्था से रोगावस्था में पहुँच जाता है।

हमारे पूर्वाचार्यों ने इन दोनों अवस्थाओं का वर्णन यथाशक्य अच्छा किया है, उन्हीं के लेखानुसार हम भी पाठकों को इन के स्वरूप का बोध कराने के लिये यथाशक्ति चेष्टा करते हैं—देखो! नीरोगावस्था की पहिचान पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार से की है कि—सब अंगों का काम स्वाभाविक रीति से चलता रहे—अर्थात् फेफसे से श्वासोच्छ्वास अच्छी तरह चलता रहे, होजरी तथा आँतों में खुराक अच्छी तरह पचता रहे, नसों में नियमानुसार रुधिर फिरता रहे, इत्यादि सब क्रियायें ठीक २ होती रहें, मल और मूत्र आदि की प्रवृत्ति नियमानुसार होती रहे तथा मन और इन्द्रियां स्वस्थ रह कर अपने २ कार्यों को नियमपूर्वक करते रहें, इसी का नाम नीरोगावस्था है तथा शरीर के अङ्ग स्वाभाविक रीति से अपना २ काम न कर सकें अर्थात् श्वासोच्छ्वास में अड़चल मालूम हो वा दर्द हो, रुधिर की गति में विषमता हो, पाचन क्रिया में विघ्न हो, मन और इन्द्रियों में ग्लानि रहे, मल और मूत्र आदि वेगों की नियमानुसार प्रवृत्ति न हो, इसी प्रकार दूसरे अंगों की यथोचित प्रवृत्ति न हो, इसी का नाम रोगावस्था है अर्थात् इन बातों से समझ लेना चाहिये कि आरोग्यता नहीं है किन्तु कोई न कोई रोग हुआ है, इस के सिवाय जब किसी आदमी के किसी अवयव में दर्द हो तो भी रोग का होना समझा जाता है. विशेष कर दाहयुक्त रोगों में, अथवा रोग की आरम्भावस्था में आदमी नरम हो जाता है, किसी प्रकार का दर्द उत्पन्न हो जाता है, शरीर के अवयव थक जाते हैं शिर में दर्द होता है और भूँख नहीं लगती है, जब ऐसे लक्षण मालूम पड़ें तो समझ लेना चाहिये कि कोई रोग हो गया है, जब शरीर में रोग उत्पन्न हो जावं तब मनुष्य को उचित है कि—काम काज और परिश्रम को छोड़ कर रोग के हटाने की चेष्टा करे अर्थात् उस (रोग) को आगे न बढ़ने दे और उस के हेतु का निश्चय कर उस का योग्य उपाय करे, क्योंकि आरोग्यता का बना रहना ही जीव की स्वाभाविक स्थिति है और रोग का होना

विकृति है, परन्तु सब ही जानते और मानते हैं कि अशातावेदनी नामक कर्म का जब उदय होता है तब चाहे आदमी कितनी ही सम्भाल क्यों न रक्खे परन्तु उस से भूल हुए विना कदापि नहीं रहती है (अवश्य भूल होती है) किन्तु जबतक शातावेदनी कर्म के योग से आदमी कुदरती नियम के अनुसार चलता है और जबतक शरीर को साफ हवा पानी और खुराक का उपयोग मिलता है तबतक रोग के आने का भय नहीं रहता है, यद्यपि आदमी का कभी न चूकना एक असम्भव बात है (मनुष्य चूके विना कदापि नहीं बच सकता है) तथापि यदि विचारशील आदमी शरीर के नियमों को अच्छे प्रकार समझ कर उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करे तो बहुत से रोगों से अपने शरीर को बचा सकता है ॥

रोग के कारण ॥

इस बात का सर्वदा सब को अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि कारण के विना रोग कदापि नहीं हो सकता है और रोग के कारण को ठीक २ जाने विना उस का अच्छे प्रकार से इलाज भी नहीं हो सकता है, इस बात को यदि आदमी अच्छी तरह समझ ले तो वह अभ्यन्तर (आन्तरिक) विचारशील होकर अपने रोग की परीक्षा को स्वयं ही कर सकता है और रोग की परीक्षा कर लेने के बाद उस का इलाज कर लेना भी स्वाधीन ही है, देखो ! जब रोग का कारण निवृत्त हो जावेगा तब रोग कैसे रह सकता है ? क्योंकि अज्ञानता से होचुकी हुई भूल को ज्ञान से सुधारनेपर स्वाभाविक नियम ही अपना काम कर के फिर असली दशा में पहुँचा देता है, क्योंकि जीव का स्वरूप अव्याबाध (विशेष बाधा से रहित अर्थात् अव्याघात) है इसलिये शरीर में रोग के कारणों को रोकनेवाली स्वाभाविक शक्ति स्थित है, दूसरे—पुण्य के कृत्यों के करने से भी शातावेदनी कर्म में भी रोग को रोकने की स्वाभाविक शक्ति है, इस लिये रोग के अनेक कारण तो उद्यम के विना ही स्वाभाविक क्रिया से दूर होते जाते हैं, क्योंकि एक दूसरे के विरोधी होने से रोग और स्वाभाविक शक्ति का, शातावेदनी और अशातावेदनी कर्म का तथा निश्चयनय से जीव और कर्म का परस्पर शरीर में सदा झगड़ा रहता है, जब शातावेदनी कर्म की जीत होती है तब रोग को उत्पन्न करनेवाले कारणों का कुछ भी असर नहीं होता है किन्तु जब असातावेदनी कर्म की जीत होती है तब रोग के कारण

१–जानने अर्थात् ज्ञान की बड़ी महिमा है क्योंकि ज्ञान से ही सब कुछ हो सकता है, देखो ! भगवती सूत्र में लिखा है कि–"ज्ञानी जिस कर्म को श्वासोच्छ्वास में तोड़ता है उस कर्म को अज्ञानी करोड़ वर्ष तक कष्ट भोग करभी नहीं तोड़ सकता है" ॥

२–क्योंकि रोग का निदान यदि ठीक रीति से समझ में आजावे तो रोग की चिकित्सा कर लेना कुछ भी कठिन बात नहीं है ॥

अपना असर कर उसी समय रोग को उत्पन्न कर देते हैं, देखो! पुण्य के योग से बलवान् आदमी के शरीर में रोग के कारणों को रोकनेवाली शातावेदनी कर्म की शक्ति अधिक हो जाती है परन्तु निर्बल आदमी के शरीर में कम होती है इस लिये बलवान् आदमी बहुत ही कम तथा निर्बल आदमी बार २ बीमार होता है।

जीव की स्वाभाविक शक्ति ही शरीर में ऐसी है कि उस से रोगोत्पत्ति के पश्चात् उपाय के बिना भी रोग दब जाता वा चला जाता है, इस के अनेक उदाहरण शरीर में प्रायः देखे जाते हैं जैसे—आंख में जब कोई तृण आदि चला जाता है तब शीघ्र ही अपने आप पानी झर झर कर वह (तृण आदि) बह कर बाहर निकल पड़ता है, यदि कभी रात में वह (तृण आदि) आंख में पड़ जाता है तो प्रातःकाल स्वयं ही कीचड़ (आंख के मैल) के साथ निकल जाता है और आंख बिना इलाज किये ही अच्छी हो जाती है, कभी २ जब अधिक भोजन कर लेनेपर पेट में बोझा हो जाता है तथा दर्द होने लगता है तब प्रायः स्वयं ही (अपने आप ही) अर्थात् ओषधि के बिना ही वमन और दस्त होकर वह (बोझा और दर्द) मिट जाता है, यदि कोई इस वमन और दस्त को रोक देवे तो हानि होती है, क्योंकि जीव के साथ सम्बंध रखनेवाली जो शातावेदनी कर्म की शक्ति है वह पेट के भीतरी बोझे और दर्द को मिटाने के लिये वमन और दस्त की क्रिया को पैदा करती है, शरीरपर फोड़े, फफोले और छोटी २ गुमड़ियां होकर अपने आप ही मिट जाती हैं तथा जुखाम, शर्दी गर्मी और खांसी होकर प्रायः इलाज के बिना (अपने आप ही) मिट जाती है और इन के कारण उत्पन्न हुआ बुखार भी अपने आप ही चला जाता है, तात्पर्य यही है कि—अशातावेदनी कर्म तो जीव के साथ प्रदेशबन्ध में रहता है और वह अलग है किन्तु शातावेदनी कर्म जीव के सर्व प्रदेशों में सम्बद्ध है, इस लिये ऊपर लिखी व्यवस्था होती है, जैसे—पक्की दीवारपर सूखे चूने की वा धूल की मुट्ठी के डालने से वह (सूखा चूना वा धूल) थोड़ा सा रह जाता है, बाकी गिर जाता है, बाकी रहा वह हवा के झपट्टे से अलग हो जाता है, इसी क्रम से वह रोग भी स्वतः मिट जाता है, इस से यह सिद्ध हुआ कि जीव के साथ कर्मों के चार बन्ध हैं अर्थात् प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबंध और प्रदेशबन्ध, इन चारों बन्धों को लड्डू के दृष्टान्त से समझ लेना चाहिये—देखो! जैसे सोंठ के लड्डू की प्रकृति अर्थात् स्वभाव तीक्ष्ण (तीखा) होता है, इस को प्रकृतिबन्ध कहते हैं, वह लड्डू महीने भरतक अथवा बीस दिनतक निज स्वभाव से रहता है इस के बाद उस में वह स्वभाव नहीं रहता है, इस को स्थितिबंध अर्थात् अवधि (मुद्दत) बन्ध कहते हैं, छटांक भर का, आधपाव का अथवा पाव भर का लड्डू है, इत्यादि परिमाण आदि को अनुभागबंध कहते हैं, जिन २ पदार्थों के परमाणुओं को इकट्ठा कर के वह लड्डू बांधा गया है उस में स्थित जो पदार्थों के प्रदेश

हैं उन को प्रदेशबंध कहते हैं, प्रकृतिवन्ध के विषय में इतना और भी जान लेना चाहिये कि–जैसे ज्ञानावरणी कर्म का स्वभाव आंखपर पट्टी बांधने के समान है उसी प्रकार भिन्न २ कर्मों का भिन्न २ स्वभाव है, इन्हीं कर्मों[3] के सम्बंध के अनुकूल प्रदेशबंध के द्वारा उत्पन्न हुआ रोग साध्य तथा कष्टसाध्यतक होता है और स्थितिबंधवाला रोग साध्य, असाध्य और कष्टसाध्यतक होता है, इसी प्रकार अनेक दर्द कर्मस्वभावद्वारा अर्थात् स्वभाव से (विना ही परिश्रम के) मिट जाते हैं परन्तु इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सब ही दर्द और रोग विना परिश्रम और विना इलाज के अच्छे हो जावेंगे, क्योंकि कर्मस्वभावजन्य कारणों में अन्तर होता है, देखो ! थोड़ी अज्ञानता से जब थोड़ा सा कष्ट अर्थात् अल्प बुखार शर्दी और पेट का दर्द आदि होता है तब तो वह शरीर में एक दो दिनतक गर्मी शर्दी दस्त और वमन आदि की थोड़ी सी तकलीफ देकर अपने आप मिट जाता है परन्तु वड़ी अज्ञानता से वड़ा कष्ट होता है अर्थात् वड़े २ रोग उत्पन्न होकर वहुत दिनोंतक ठहरते हैं तथा उन के कारणों को यदि न रोका जावे तो वे रोग गम्भीर रूप धारण करते हैं ।

पहिले कह चुके हैं कि–रोग के दूर करने का सब से पहिला उपाय रोग के कारण को रोकना ही है, क्योंकि रोग के कारण की रुकावट होने से रोग आप ही शान्त हो जावेगा, जैसे यदि किसी को अजीर्ण से बुखार आ जावे और वह एक दो दिनतक लंघन कर लेवे अथवा मूंग की दाल का पतलासा पानी अथवा अन्य कोई वहुत हलका पथ्य लेवे तो वह (अजीर्णजन्य ज्वर) शीघ्र ही चला जाता है परन्तु रोग के कारण को समझे विना यदि रोग की निवृत्ति के अनेक उपाय भी किये जावें तो भी रोग वढ जाते हैं, इस से सिद्ध है कि रोग के कारण को समझ कर तदनुकूल पथ्य करना जितना लाभदायक होता है उतनी लाभदायक ओषधि कदापि नहीं हो सकती है, क्योंकि देखो ! पथ्य के न करनेपर ओषधि से कुछ भी लाभ नहीं होता है तथा पथ्य करने पर ओषधि की भी कोई आवश्यकता नहीं रहती है, इस बात का सदा ही ध्यान रखना चाहिये कि ओषधि रोग को नहीं मिटाती है किन्तु केवल रोग के मिटाने में सहायक मात्र होती है ।

ऊपर जिस का वर्णन कर चुके हैं वह रोग को मिटानेवाली जीव की स्वाभाविक शक्ति निश्चयनय से शरीर में रातदिन अपना काम करती ही रहती है, उस को जब सानुकूल

१–जैसे सोंठ का स्वभाव वायु और कफ के हरने का है ॥

२–जैसे भिन्न २ लड्डू का भिन्न २ स्वभाव पित्त के, वायु के और कफ के हरने का है ॥

३–कर्मों का स्वरूप यदि विस्तारपूर्वक देखना हो तो कर्म प्रतिपादक ग्रन्थों में देखो ॥

४–जैसा कि वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है कि–"पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥ पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥ १ ॥" अर्थात् पथ्य के करने पर रोग से पीड़ित पुरुष को औषध सेवन की क्या आवश्यकता है और पथ्य न करनेपर रोग से पीड़ित पुरुष को औषध सेवन से क्या लाभ है ॥ १ ॥

आहार और विहार मिलता है तथा सहायक औषधि का संसर्ग होता है तव शीघ्र ही संयोगरूप प्रयत्न के द्वारा कर्म विशेषजन्य रोगपर जीव की जीत होती है अर्थात् शाताकर्म असाताकर्म को हटाता है, यह व्यवहारनय है, जो वैद्य वा डाक्टर ऐसा अभिमान रखते हैं कि रोग को हम मिटाते हैं उन का यह अभिमान विलकुल झूंठा है, क्योंकि काल और कर्म से बड़े २ देवता भी हार चुके हैं तो मनुष्य की क्या गणना है? देखो! पांच सम चायों में से मनुष्य का एक समवाय उद्यम है, वह भी पूर्णतया तव ही सिद्ध होता है जव कि पहिले को चारों समवाय अनुकूल हो, हां वेशक यद्यपि कई एक वाहरी रोग काट छांट के द्वारा योग्य उपचारों से शीघ्र अच्छे हो सकते हैं तथापि शरीर के भीतरी रोगों पर तो रोगनाशिका (रोग का नाश करनेवाली) स्वाभाविकी (स्वभावसिद्ध) शक्ति ही काम देती है, हां इतनी वात अवश्य है कि-उस में यदि दवा को भी समझ वूझकर युक्ति से दिया जावे तो वह (ओषधि) उस स्वाभाविकी शक्ति की सहायक हो जाती है परन्तु यदि विना समझे वूझे दवा दी जावे तो वह (दवा) उस स्वाभाविकी शक्ति की क्रिया को वन्द कर लाभ के वदले हानि करती है, इन ऊपर लिखी हुई वातों से यदि कोई पुरुष यह समझे कि-जव ऐसी व्यवस्था है तो दवा से क्या हो सकता है? तो उस का यह पक्ष भी एकान्तनय है और जो कोई पुरुष यह समझे कि दवा से अवश्य ही रोग मिटता है तो उस का यह भी पक्ष एकान्त नय है, इस लिये स्याद्वाद का स्वीकार करना ही कल्याणकारी है, देखो! जीव की स्वाभाविक शक्ति रोग को मिटाती है यह निश्चयनय की वात है, किन्तु व्यवहारनय से दवा और पथ्य, ये दोनों मिलकर रोग को मिटाते हैं, व्यवहार के साधे विना निश्चय का ज्ञान नहीं हो सकता है इस लिये स्वाभाविक शक्तिरूप शातावेदनी कर्मको निर्वल करनेवाले कई एक कारण अशाताकर्म के सहायक होते हैं अर्थात् ये कारण शरीर को रोग के असर के योग्य कर देते हैं और जव शरीर रोग के असर के योग्य हो जाता है तव कई एक दूसरे भी कारण उत्पन्न होकर रोग को पैदा कर देते हैं।

रोग के मुख्यतया दो कारण होते हैं-एक तो दूरवर्ती कारण और दूसरे समीपवर्त्ती कारण, इन में से जो रोग के दूरवर्त्ती कारण हैं वे तो शरीर को रोग के असर के योग्य कर देते हैं तथा दूसरे जो समीपवर्त्ती कारण हैं वे रोग को पैदा कर देते हैं, अव इन दोनों प्रकार के कारणों का संक्षेप से कुछ वर्णन करते हैं:—

सर्वज्ञ भगवान् श्री ऋषभदेव पूर्व वैद्यने रोग के कारणों के अनेक भेद अपने पुत्र हारीत[1] को वतलाये थे, जिन में से मुख्य तीन कारणों का कथन किया था, वे तीनों कारण

१-इन्हों ने हारीतसंहिता नामक एक वहुत वड़ा वैद्यक का ग्रन्थ वनाया था, परन्तु वह वर्त्तमान में पूर्ण उपलब्ध नहीं होता है, इस समय जो हारीतसंहिता नाम वैद्यक का ग्रन्थ छपा हुआ उपलब्ध (प्राप्त) होता है वह इन का वनाया हुआ नहीं है किन्तु किसी दूसरे हारीत का वनाया हुआ है॥

ये हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, इन में से आध्यात्मिक कारण उन्हें कहते हैं कि जो कारण स्वकृत पाप कर्म के योग से माता पिता के रज वीर्य के विकार से तथा अपने आहार विहार के अयोग्य वर्त्ताव से उत्पन्न होकर रोगों के कारण होते हैं, इस प्रकार के कारणों में ऊपर कहे हुए निश्चय और व्यवहार, इन दोनों नयों को सर्वत्र जान लेना चाहिये, शस्त्र का ज़खम और ज़हरीले जल से उत्पन्न हुआ ज़खम आदि अनेकविध रोगोत्पादक (रोगों को उत्पन्न करनेवाले) कारणों को तथा आगन्तुक कारणों को आधिभौतिक कारण कहते हैं, इन सब में निश्चयनय में तो पूर्व बद्ध कर्मोदय तथा व्यवहारनय में आगन्तुक कारण जानने चाहियें, हवा, जल, गर्मी, ठंढ और ऋतुपरिवर्त्तन आदि जो रोगों के स्वाभाविक कारण हैं उन्हें आधिदैविक कारण कहते हैं, इन कारणों में भी पूर्वोक्त दोनों ही नय समझने चाहियें।

इन्हीं त्रिविध कारणों को पुनः दूसरे प्रकार से तीन प्रकार का बतलाया है जिन का वर्णन इस प्रकार है:—

१–**स्वकृत**—बहुत से रोग प्रत्येक मनुष्य के शरीर में अपनी ही भूलों से होते हैं, इस प्रकार के रोगों के कारणों को स्वकृत कहते हैं।

२–**परकृत**—बहुत से रोग अपने पड़ोसी की, अपनी जाति की, अपने सम्बंधी की अथवा अन्य किसी दूसरे मनुष्य की भूल से अपने शरीर में होते हैं, इस प्रकार के रोगों के कारणों को परकृत कहते हैं।

३–**दैवकृत वा स्वभावजन्य**—बहुत से रोग स्वाभाविक प्रकृति के परिवर्त्तन से शरीर में होते हैं, जैसे–ऋतु के परिवर्त्तन से हवा और मनुष्यों की प्रकृति में विकार होकर रोगों का उत्पन्न होना आदि, इस प्रकार के रोगों के कारणों को दैवकृत अथवा स्वभावजन्य कहते हैं।

यद्यपि रोग के कारणों के ये तीन भेद ऊपर कहे गये हैं परन्तु वास्तव में तो मनुष्यकृत और दैवकृत, ये दो ही भेद हो सकते हैं, क्योंकि रोगों के सब ही कारण इन दोनों भेदों में अन्तर्गत हो सकते हैं, इन दोनों प्रकार के कारणों में से मनुष्यकृत कारण उन्हें कहते हैं कि–जो कारण प्रत्येक आदमी अथवा आदमियों के समुदाय के द्वारा मिल कर बांधे हुए व्यवहारों से उत्पन्न होते हैं, इन मनुष्यकृत कारणों के भेद संक्षेप से इस प्रकार हो सकते हैं:—

१–क्योंकि मा बाप के रज वीर्य का विकार, गर्भावस्था में गर्भिणी स्त्री का विरुद्ध वर्त्ताव और जन्म होने के पीछे माता आदि का अयोग्य आहार और विहार का करना कराना आदि कारण जीव के पूर्वकृत पाप के उदय से होकर दुःखरूप कार्य को पैदा करते हैं॥

१-**प्रत्येक मनुष्यकृत कारण**—प्रत्येक मनुष्य अपनी भूल से, आहार विहार की अपरिमाणता से और नियमों के उलंघन करने से जिन रोग वा मृत्यु को प्राप्त होने के कारणों को उत्पन्न करे, इन को प्रत्येक मनुष्यकृत कारण कहते हैं।

२-**कुटुम्बकृत कारण**—कुटुम्ब में प्रचलित विरुद्ध व्यवहारों से तथा निकृष्ट आचारों से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते हैं, इन को कुटुम्बकृत कारण कहते हैं।

३-**जातिकृत कारण**—निकृष्ट प्रथा से तथा जाति के खोटे व्यवहारों से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते हैं, इन्हें जातिकृत कारण कहते हैं, देखो! बहुत सी जातियों में बालविवाह आदि कैसी २ कुरीतियां प्रचलित हैं, ये सब रोगोत्पत्ति के दूरवर्त्ती कारण हैं, इसी प्रकार वोहरे आदि कई एक जातियों में बुरखे (पड़दा विशेष) का प्रचार है जिस से उन जातियों की स्त्रियां निर्बल और रोगिणी हो जाती हैं, इत्यादि रोगोत्पत्ति के अनेक जातिकृत कारण हैं जिन का वर्णन ग्रन्थविस्तारभय से नहीं करते हैं।

४-**देशकृत कारण**—बहुत से देशों की आब हवा (जल और वायु) के प्रतिकूल होने से अथवा वहां के निवासियों की प्रकृति के अनुकूल न होने से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते हैं, इन्हें देशकृत कारण कहते हैं।

५-**कालकृत कारण**—बाल्य, यौवन और वृद्धत्व (बुढ़ापा) आदि भिन्न २ अवस्थाओं में तथा छः ऋतुओं में जो २ वर्त्ताव करना चाहिये उस २ वर्त्ताव के न करने से अथवा विपरीत वर्त्ताव के करने से जो रोगोत्पत्ति के कारण होते हैं, इन्हें कालकृत कारण कहते हैं।

६-**समुदायकृत कारण**—मनुष्यों का भिन्न २ समुदाय एकत्रित होकर ऐसे नियमों को बांधे जो कि शरीर संरक्षण से विरुद्ध होकर रोगोत्पत्ति के कारण हों, इन्हें समुदायकृत कारण कहते हैं।

७-**राज्यकृत कारण**—राज्य के जो नियम और प्रबंध मनुष्यों की तासीर और जल वायु के विरुद्ध होकर रोगोत्पत्ति के कारण हों, इन्हें राज्यकृत कारण कहते हैं।

८-**महा कारण**—जिस से सब सृष्टि के जीव मृत्यु के भय में आ गिरें, इस प्रकार का कोई व्यवहार पैदा होकर रोगोत्पत्ति वा मृत्यु का कारण हो, इस प्रकार के कारण को महा कारण कहते हैं, अत्यन्त ही शोक का विषय है कि—यह कारण वर्त्तमान समय में प्रायः सर्व जातियों में इस आर्यावर्त्त में देखा जाता है, जैसे—देखो! ब्रह्मचर्य और गर्भाधान

१-इस का अनुभव बहुत पुरुषों को हुआ ही होगा कि—अनेक कुटुम्बों में बड़े २ व्यसनों और दुराचारों के होने से उन कुटुम्बों के लोग रोगी बन जाते हैं॥

२-जिन कारणों से पुरुषजाति तथा स्त्रीजाति की पृथक् २ हानि होती है वे भी (कारण) इन्हीं कारणों के अन्तर्गत हैं॥

आदि सोलह संस्कार आदि व्यवहार वर्तमान समय में कैसे अधोदशापन्न (नीच दशा को पहुँचे हुए) हैं, जिन को पूर्वाचार्य तो शारीरिक उन्नति के शिखरपर ले जाने के कारण समझ कर धर्म की आवश्यक क्रियाओं में गिनते थे, परन्तु अब वर्तमान समय में इन का प्रचार शायद विरले ही स्थानों में होगा, इस का कारण यही है कि–वर्तमान समय में राज्यकृत अथवा जातिकृत न तो ऐसा कोई नियम ही है और न लोगों को इन बातों का ज्ञान ही है, इस से लोग अपने हिताहित को न विचार कर मनमाना वर्ताव करने लगे हैं, जिस का फल पाठकगण नेत्रों से प्रत्यक्ष ही देख रहे हैं कि मनुष्यगण तनछीन, मन मलीन, द्रव्यरहित और पुत्र तथा परिवार आदि से रहित हो गये हैं, इन सब दुःखों का कारण केवल न करने योग्य व्यवहार का करना ही है, इस सर्व हानि को व्यवहारनय की अपेक्षा समझना चाहिये, इसी को–दैव कहो, चाहे कर्म कहो, चाहे भवितव्यता कहो।

१–गृहस्थ धर्म के जो सोलह संस्कार हैं उन की विधि "आचारदिनकर" नामक संस्कृत ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक लिखी है, उन संस्कारों के नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, सूर्यचन्द्रदर्शन, क्षीराशन, षष्ठीपूजन, शुचिकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, केशवपन, उपनयन, विद्यारम्भ, विवाह, व्रतारोप और अन्तकर्म, इन सोलह संस्कारों की विधि बहुत बड़ी है अतः उस का वर्णन यहां पर नहीं किया जा सकता है परन्तु पाठकों के ज्ञानार्थ हम यहां पर सिर्फ इतना ही लिखते हैं कि कौन २ सा संस्कार किस २ समय कराया जाता है—१–गर्भाधान—यह संस्कार गर्भ रहने के बाद पांचवें महीने में कराया जाता है। २–पुंसवन—यह संस्कार गर्भवती के आठवें महीने में कराया जाता है। ३–जन्म–यह संस्कार सन्तान के जन्म समय में कराया जाता है अर्थात् जन्म समय में योग्य ज्योतिषी को बुला कर सन्तान के जन्म ग्रहों को स्पष्ट कराना तथा उस ज्योतिषी को रुपया श्रीफल और मोहर आदि (जो कुछ देना उचित समझा जावे वा जैसी अपनी श्रद्धा और शक्ति हो) देना। ४–सूर्यचन्द्रदर्शन–यह संस्कार जन्मदिन से दो दिन व्यतीत होने पर (तीसरे दिन) कराया जाता है। ५–क्षीराशन–यह संस्कार भी सूर्यचन्द्र दर्शन संस्कार के ही दिन अथवा उस के दूसरे दिन कराया जाता है, इस संस्कार में बालक को स्तनपान कराया जाता है–(पहिले लिख चुके हैं कि–जन्मकाल से तीन दिन तक प्रसूता स्त्री का दूध विकार युक्त रहता है इस लिये उन दिनों में ओषधि के द्वारा अथवा गाय के दूध से बालक का रक्षण करना ठीक है किन्तु जो लोग इस में जल्दी करते हैं उन के बालकों के कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, यह संस्कार भी हमारे उसी कथन की पुष्टि करता है)। ६–षष्ठी पूजन–यह संस्कार जन्म से छठे दिन कराया जाता है। ७–शुचि-कर्म–यह संस्कार जन्म समय से दश दिन व्यतीत होने के बाद (ग्यारहवें दिन) कराया जाता है। ८–नामकरण– यह संस्कार भी शुचिकर्म संस्कार के दिन ही कराया जाता है। ९–अन्नप्राशन–यह संस्कार लड़के का छः महीने के बाद और लड़की का पांच महीने के बाद कराया जाता है। १०–कर्णवेध–यह संस्कार तीसरे, पांचवें वा सातवें वर्ष में कराया जाता है। ११–केशवपन–यह संस्कार यथोचित समय में कराया जाता है, इस संस्कार में बालक के केश उतराये जाते हैं, इसे मुण्डनसंस्कार भी कहते हैं। १२–उपनयन–यह संस्कार आठ वर्ष की अवस्था के पीछे कराया जाता है। १३–विद्यारम्भ–यह संस्कार आठवें वर्ष में कराया जाता है। १४–विवाह–यह संस्कार उस समय में कराया जाता है या कराया जाना चाहिये जब कि स्त्री और पुरुष इस संस्कार के योग्य अवस्थावाले हो जावें, क्योंकि जैसे कच्चा फल खाने में स्वादिष्ठ नहीं लगता है तथा हानि भी करता है उसी प्रकार कच्ची अवस्था में विवाह का होना भी कुछ लाभ नहीं पहुँचाता है, प्रत्युत अनेक हानियों को करता है। १५–व्रतारोप–यह संस्कार वह है जिस में स्त्री पुरुष

पहिले जो हम ने पांच समवाय रोग होने के कारण लिखे हैं—वे सब कारण (पांच समवाय) निश्चय और व्यवहारनय के विना नहीं होते हैं, इन में से बिजुली या मकान आदि के गिरनेद्वारा जो मरना या चोट का लगना है, वह भवितव्यता समवाय है तथा यह समवाय सब ही समवायों में प्रधान है, गर्मी और ठंढ के परिवर्त्तन से जो रोग होता है उस में काल प्रधान है, प्लेग और हैज़ा आदि रोगों के होने में बँधे हुए समुदायी कर्म को प्रधान समझना चाहिये, इस प्रकार पांचों समवायों के उदाहरणों को समझ लेना चाहिये, निश्चयनय के द्वारा तो यह जाना जाता है कि उस जीव ने वैसे ही कर्म बांधे थे तथा व्यवहारनय से यह जाना जाता है कि—उस जीव ने अपने उद्यम और आहार-विहार आदि को ही उस प्रकार के रोग के होने के लिये किया है, इस लिये यह जानना चाहिये कि—निश्चयनय तो जानने के योग्य और व्यवहारनय प्रवृत्ति करने के योग्य है, देखो! बहुत से रोग तो व्यवहारनय से प्राणी के विपरीत उपचार और वर्त्तावों

व्रत का ग्रहण करते हैं। १६–अन्तकर्म–इस संस्कार का दूसरा नाम मृत्युसंस्कार भी है, क्योंकि यह संस्कार मृत्युसमय में किया जाता है, इस संस्कार के अन्त में जीवात्मा अपने किये हुए कर्मों के अनुसार अनेक योनियों को तथा नरक और स्वर्ग आदि को प्राप्त होता है, इस लिये मनुष्य को चाहिये कि–अपनी जीवनावस्था में कर्मफल को विचार कर सदा शुभ कर्म ही करता रहे, देखो! संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो मृत्यु से बचा हो, किन्तु इस (मृत्यु) ने अपने परम सहायक कर्म के योग से सब ही को अपने आधीन किया है, क्योंकि जितना आयुः कर्म यह जीवात्मा पूर्व भव से बांध लाया है उस का जो पूरा हो जाना है इसी का नाम मृत्यु है, यह आयुः कर्म अपने पुण्य और पाप के योग से सब ही के साथ बंधा है अर्थात् क्या राजा और क्या रंक, सब ही को अवश्य मरना है और मरने के पश्चात् इस जीवात्मा के साथ यहां से अपने किये हुए पाप और पुण्य के सिवाय कुछ भी नहीं जाता है अर्थात् संसार की सकल सामग्री यहीं पड़ी रह जाती है, देखो! इस संसार में असंख्य राजे महाराजे और बादशाह आदि ऐश्वर्यपात्र हो गये परन्तु यह पृथ्वी और पृथ्वीस्थ पदार्थ किसी के साथ न गये, किन्तु केवल सब लोग अपनी २ कमाई का भोग कर रवाना हो गये, इसी तत्वज्ञानसम्बन्धिनी बात को यदि कोई अच्छे प्रकार सोच लेवे तो वह घमण्ड और परहानि आदि को कभी न करेगा तथा धीरे २ शुभ कर्मों के योग से उस के पुण्य की वृद्धि होती जावेगी जिस से उस के अगले भव भी सुधरते जावेंगे अर्थात् अगले भवों में वह सर्व सुखों से सम्पन्न होगा, परन्तु जो पुरुष इस तत्वसम्बन्धिनी बात को न सोच कर अशुभ कर्मों में प्रवृत्त रहेगा तो उन अशुभ कर्मों के योग से उस के पाप की वृद्धि होती जावेगी जिस से उस के अगले भव भी बिगड़ते जावेंगे अर्थात् अगले भवों में वह सर्व दुःखों से युक्त होगा, तात्पर्य यही है कि–मनुष्य के किये हुए पुण्य और पाप ही उस को उत्तम और अधम दशा में ले जाते हैं तथा संसार में जो २ न्यूनाधिकतायें तथा भिन्नतायें दीख पड़ती हैं वे सब इन्हीं के योग से होती हैं, देखो! सब से अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् बड़ा राजा चक्रवर्त्ती होता है, उस की शक्ति इतनी होती है कि–यदि तमाम संसार भी बदल जावे तो भी वह अकेला ही सब को सीधा (काबू में) कर सकता है, अर्थात् एक तरफ तमाम संसार का बल और एक तरफ उस अकेले चक्रवर्त्ती का बल होता है तो भी वह उसे वश में कर लेता है, यह उस के पुण्य का ही प्रभाव है कहिये इतना बड़ा पद पुण्य के विना कौन पा सकता है? तात्पर्य यही है कि–जिस ने पूर्व भव में तप किया है, देव गुरु और धर्म की सेवा की है तथा परोपकार करके धर्म की बुद्धि का विस्तार किया है उसी को धर्मज्ञता और राज्यपदवी मिल सकती है, क्योंकि राज्य और सुख का मिलना पुण्य का ही फल है,

से ही होते हैं, काल का तो स्वभाव ही वर्त्तने का है इस लिये कभी शीत और कभी गर्मी का परिवर्त्तन होता ही है, अतः अपनी प्रकृति, पदार्थों के स्वभाव और ऋतुओं के स्वभाव के अनुसार वर्त्ताव करना तथा उसी के अनुकूल आहार और विहार का उपचार करना प्राणी के हाथ में है, परन्तु कर्म अति विचित्र है, इस लिये कुदरती कारणों से जो रोग के कारण पैदा होते हैं वे कर्मवश विरले ही आदमियों के शरीर में रोगोत्पत्ति करते हैं, वातावरण में जो २ परिवर्त्तन होता है वह तो रोग तथा रोग के कारणों को दूर करनेवाला है परन्तु उस में भी अपने कर्म के वश कोई प्राणी रोगी हो जाते हैं, इस लिये ऋतुओं का जो परिवर्त्तन है वह वातावरण अर्थात् हवा की शुद्धि से ही सम्बन्ध रखता है परन्तु उस से भी जो पुरुष रोगी हो जाते हैं उन के लिये तो इन विकारों को दैवकृत भी मान सकते हैं, इसलिये वास्तव में तो यही उचित प्रतीत होता है कि–हर किस्म के रोगों को पहिचान कर ही उन का यथोचित इलाज करना चाहिये, यही इस ग्रन्थ की सम्मति है ॥

यदि मनुष्य पुण्य (धर्म) न करे तो उस के लिये दुःखागार (दुःख का घर) नरक गति तैयार हैं, आहा! इस संसार की अनित्यता को तथा कर्मगति के चमत्कार को देखो कि जिन के घर में नव निधान और चौदह रत्न मौजूद थे, सोलह हजार देवते जिन के यहां नौकर थे, वत्तीस हज़ार मुकुटधारी राजे जिन का मुजरा करते थे, जिन के यहां खूब सूरत रानियां, कौतल घोड़े, हाथी, रथ, दीवान, नायवदीवान, डंका, निशान, चौघड़िये, ग्राम, नगर, वाग, वगीचे, राजधानी, रत्नों की खानें, सोना चांदी और लोहे की खानें, दास, दासी, नाटक मण्डली, पाकशास्त्र के ज्ञाता रसोइये, भिस्ती, तम्वोली, गोसमूह, खचर, हल, वन्दूकें, तोपें, मसालची, म्याने, पानकी और अष्टांग के जाननेवाले निमित्तिये सदा हाज़िर रहते थे, छड़ी, चँवर, गवैये और वाराङ्गनायें जिन की सेवा में हर वख्त उपस्थित रहते थे और जिन की जूतियों में भी अमूल्य रत्न झलझलाया करते थे वे भी चले गये तो भला दूसरों की गिनती को कौन करे ? सोचो तो सही कि जब चक्रवर्त्तीसरीखे इस संसार में न रहे तो औरों की क्या कथा है ? चक्रवर्त्ती के चमत्कार और ऐश्वर्य की तरफ देखो कि–लाख योजन का लम्वा चौड़ा जम्बूद्वीप है, उस में दक्षिण दिशा की तरफ भारतवर्ष नामक एक सब से छोटा टुकड़ा है, इस के यदि वड़े विभागों को गिनें तो छः खण्ड होते हैं, चक्रवर्त्ती उन छःवों खण्डों का मालिक होता है, वासुदेव तीन खण्ड का मालिक होता है, वासुदेव से छोटा माण्डलिक राजा होता है, उस से छोटा मुकुटवन्ध होता है और उस से भी छोटा छत्रपति होता है, इस प्रकार से नीचे उतरते २ यह भी मानना ही पड़ता है कि–सामन्तराज, ठाकुर, जागीरदार और सर्दार आदि भी अपनी पृथ्वी के राजे ही हैं, इसी प्रकार दीवान और नायवदीवान यद्यपि राजा नहीं हैं किन्तु राजा के नौकर हैं परन्तु तथापि सामान्य प्रजा के लिये तो वे भी राजा के ही तुल्य हैं, देखो ! गवर्नर जनरल और गवर्नर आदि हाकिम भी यद्यपि राजा नहीं हैं किन्तु राजा के भेजे हुए अधिकारी हैं परन्तु तथापि वड़ों के भेजे हुए होने से वे भी राजा के ही तुल्य माने जाते हैं यह सब न्यूनाधिकता केवल पुण्य और पाप की न्यूनाधिकता से ही होती है, इस वात को सदा ध्यान में रखकर सब अधिकारियों को उचित है कि न्याय के ही मार्गपर चलें, अन्याय के मार्ग का स्वयं त्यागकर दूसरों से भी त्याग करावें, देखो ! पुण्य के प्रताप से एक समय वह था कि आर्य खण्ड के राजों को अनार्य खंड के राजे मुजरा करते थे परन्तु पुण्य की हीनता से आज वह समय है कि अनार्य खंड के राजों को आर्यखंड के राजे मुजरा करते हैं, तात्पर्य यह है कि जब जिस का सितारा तेज होता है तब उसी का जोर शोर चारों ओर फैल जाता है, इसी लिये कहा

रोग के दूरवर्त्ती कारण ॥

देखो ! घर में रहनेवाले वहुत से मनुष्यों में से किसी एक मनुष्य को विषूचिका (हैज़ा वा कोलेरा) हो जाता है, दूसरों को नहीं होता है, इस का कारण यही है कि-रोगोत्पत्ति के करनेवाले जो कारण हैं वे आहार विहार के विरुद्ध वर्त्ताव से अथवा माता-पिता की ओर से सन्तान को प्राप्त हुई शरीर की प्राकृतिक निर्वलता से जिस आदमीका शरीर जिन २ दोषों से दव जाता है उसी के रोगोत्पत्ति करते हैं क्योंकि वे दोष शरीर को उसी रोग विशेष के उत्पन्न होने के योग्य वना कर उन्हीं कारणों के सहायक हो जाते हैं इसलिये उन्हीं २ कारणों से उन्हीं २ दोष विशेषवाला शरीर उन्हीं २ रोग विशेषों के ग्रहण करने के लिये प्रथम से ही तैयार रहता है, इस लिये वह रोग विशेष उसी एक आदमी के होता है किन्तु दूसरे के नहीं होता है, जिन कारणों से रोग की उत्पत्ति नहीं होती है परन्तु वे (कारण) शरीर को निर्वल कर उस को दूसरे रोगोत्पादक कारणों का स्थानरूप बना देते हैं वे रोग विशेष के उत्पन्न होने के योग्य वनानेवाले कारण कहलाते हैं, जैसे देखो ! जब पृथ्वी में वीज को वोना होता है तब पहिले पृथ्वी को जोतकर तथा खाद आदि डाल कर तैयार कर लेते हैं पीछे वीज को वोते हैं, क्योंकि जव पृथ्वी वीज के वोने के योग्य हो जाती है तब ही तो उस में बोया हुआ वीज उगता

जाता है कि-यह जीवात्मा जैसा २ पुण्य परभव में करता है वैसा २ ही उस को फल भी प्राप्त होता है, देखो ! मनुष्य यदि चाहे तो अपनी जीवित दशा में धन्यवाद और सुख्याति को प्राप्त कर सकता है, क्योंकि धन्यवाद और सुख्याति के प्राप्त करने के सव साधन उस के पास विद्यमान हैं अर्थात् ज्यों ही गुणों की वृद्धि की त्यों ही मानो धन्यवाद और सुख्याति प्राप्त हुई, ये दोनों ऐसी वस्तुयें हैं कि इन के साधन-भूत शरीर आदि का नाश होनेपर भी इन का कभी नाश नहीं होता है, जैसे कि तेल में फूल नहीं रहता है परन्तु उस की सुगन्धि वनी रहती है, देखो ! संसार में जन्म पाकर अलवत्तह सव ही मनुष्य प्रायः मानापमान सुख दुःख और हर्ष शोक आदि को प्राप्त होते हैं परन्तु प्रशंसनीय वे ही मनुष्य हैं जो कि सम भाव से रहते हैं, क्योंकि सुख दुःख और हर्ष शोकादि वास्तव में शत्रुरूप हैं, उन के आधीन अपने को कर देना अत्यन्त मूर्खता है, वहुत से लोग ज़रा से सुख से इतने प्रसन्न होते हैं कि फूले नहीं समाते हैं तथा ज़रा से दुःख और शोक से इतने घवड़ा जाते हैं कि जल में डूव मरना तथा विष खाकर मरना आदि निकृष्ट कार्य कर वैठते हैं, यह अति मूर्खों का काम है, भला कहो तो सही क्या इस तरह मरने से उन को स्वर्ग मिलता है ? कभी नहीं, किन्तु आत्मघातरूप पाप से वुरी गति होकर जन्म जन्म में कष्ट ही उठाना पड़ेगा, आत्मघात करनेवाले समझते हैं कि ऐसा करने से संसार में हमारी प्रतिष्ठा वनी रहेगी कि अमुक पुरुष अमुक अपराध के हो जाने से लज्जित होकर आत्मघात कर मर गया, परन्तु यह उन की महा मूर्खता है, यदि अच्छे लोगों की शिक्षा पाई है तो याद रक्खो कि इस तरह से जान को खोना केवल वुरा ही नहीं किन्तु महापाप भी है, देखो ! स्थानांगसूत्र के दूसरे स्थान में लिखा है कि-क्रोध, मान, माया और लोभ कर के जो आत्मघात करना है वह दुर्गति का हेतु है, अज्ञानी और अव्रती का मरना वालमरण में दाखिल है, ज्ञानी और सर्व विरति पुरुष का मरना पण्डित मरण है, देशविरति पुरुष का मरना वालपण्डित मरण है और आराधना करके अच्छे ध्यान में मरना अच्छी गति के पाने का सूचक है ॥

है, इसीप्रकार बहुत से दोषरूप कारण शरीर को ऐसी दशा में ले आते हैं कि वह (शरीर) रोगोत्पत्ति के योग्य बन जाता है, पीछे उत्पन्न हुए नवीन कारण शीघ्र ही रोग को उत्पन्न कर देते हैं, यद्यपि शरीर को रोगोत्पत्ति के योग्य बनानेवाले कारण बहुत से हैं परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भय से उन सब का वर्णन नहीं करना चाहते हैं–किन्तु उन में से कुछ मुख्य ८ कारणों का वर्णन करते हैं—१–माता पिता की निर्बलता। २–निज कुटुम्ब में विवाह। ३–बालकपन में (कच्ची अवस्था में) विवाह। ४–सन्तान का बिगड़ना। ५–अवस्था। ६–जाति। ७–जीविका वा वृत्ति (व्यापार)। ८–प्रकृति (तासीर)। बस शरीर को रोगोत्पत्ति के योग्य बनानेवाले ये ही आठ मुख्य कारण हैं, अब इन का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

१–माता पिता की निर्बलता—यदि गर्भ रहने के समय दोनों में से (माता-पिता में से) एक का शरीर निर्बल होगा तो बालक भी अवश्य निर्बल ही उत्पन्न होगा, इसी प्रकार यदि पिता की अपेक्षा माता अधिक अवस्थावाली होगी अथवा माता की अपेक्षा पिता बहुत ही अधिक अवस्थावाला होगा (स्त्री की अपेक्षा पुरुष की अवस्था ड्योढ़ी तथा दूनीतक होगी तबतक तो जोड़ा ही गिना जावेगा परन्तु इस से अधिक अवस्थावाला यदि पुरुष होगा) तो वह जोड़ा नहीं किन्तु कुजोड़ा गिना जायगा इस कुजोड़े से भी उत्पन्न हुआ बालक निर्बल होता है और निर्बलता जो है वही बहुत से रोगों का मूल कारण है।

२–निज कुटुम्ब में विवाह—यह भी निर्बलता का एक मुख्य हेतु है, इस लिये वैद्यक शास्त्र आदि में इस का निषेध किया है, न केवल वैद्यक शास्त्र आदि में ही इस का निषेध किया है किन्तु इस के निषेध के लौकिक कारण भी बहुत से हैं परन्तु उन का वर्णन ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहांपर नहीं करना चाहते हैं। हां उन में से दो तीन कारणों को तो अवश्य ही दिखलाना चाहते हैं–देखिये:—

१–देखो! इसी लिये युगादि भगवान् श्रीऋषभदेव ने प्रजा को बलवती करने के लिये युगला धर्म को दूर किया था अर्थात् पूर्व समय में युगल जोड़ों से मैथुन होता था इस लिये उस समय में न तो प्रजा की वृद्धि ही थी और न वे कोई पुरुषार्थ का काम ही कर सकते थे, किन्तु वे तो केवल पूर्व बद्ध पुण्य का फल कल्पवृक्षों से भोगते थे, उस समय कल्पवृक्ष का नाश होता हुआ देख कर प्रभुने पुरुषार्थ बढ़ाने के लिये दूसरों २ की सन्तति से विवाह करने की आज्ञा दी, तब सब लोग एक के साथ जन्मे हुए जोड़े का दूसरे के साथ जन्मे हुए जोड़े से विवाह करने लगे, बड़ी मनु में भी ऐसी ही आज्ञा है परन्तु भृगुऋषि की बनाई हुई छोटी मनु में ऐसा लिखा है कि–जो माता के सपिण्ड में न हो और पिता के गोत्र में न हो ऐसी कन्या के साथ उत्तम जातिवाले पुरुष को विवाह करना चाहिये इत्यादि, परन्तु वास्तव में तो बड़ी मनु का जो नियम है वह अर्हन्नीति के अनुकूल होने से माननीय है॥

१-संस्कृत भाषा में बेटीका नाम दुहिता रक्खा है और उस का अर्थ ऐसा होता है कि-जिस के दूर व्याहे जाने से सब का हित होता है।

२-प्राचीन इतिहासों से यह बात अच्छे प्रकार से प्रकट है और इतिहासवेत्ता इस बात को भलीभाँति से जानते भी हैं कि इस आर्यावर्त्त देश में पूर्व समय में पुत्री के विवाह के लिये स्वयंवर मण्डप की रचना की जाती थी अर्थात् स्वयंवर की रीति से विवाह किया जाता था और उस के वास्तविक तत्त्वपर विचार कर देखने से यह बात मालूम होती है कि वास्तव में उक्त रीति अति उत्तम थी, क्योंकि उस में कन्या अपने गुण कर्म और स्वभावादि के अनुकूल अपने योग्य वर का वरण (स्वीकार) कर लेती थी कि जिस से आजन्म वे (स्त्री पुरुष) अपनी जीवनयात्रा को सानन्द व्यतीत करते थे, क्योंकि सब ही जानते और मानते हैं कि स्त्री पुरुष का समान स्वभावादि ही गृहस्थाश्रम के सुख का वास्तविक (असली) कारण है।

३-ऊपर कही हुई रीति के अतिरिक्त उस से उतर कर (घट कर) दूसरी रीति यह थी कि वर और कन्या के माता पिता आदि गुरुजन वर और कन्या की अवस्था, रूप, विद्या आदि गुण, सद्वर्त्ताव और स्वभावादि बातों का विचार कर अर्थात् दोनों में, उक्त बातों की समानता को देखकर उन का विवाह कर देते थे, इस से भी वही अभीष्ट सिद्ध होता था जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं अर्थात् दोनों (स्त्री पुरुष) गृहस्थाश्रम के सुख को प्राप्त कर अपने जीवन को विताते थे।

४-ऊपर कही हुई दोनों रीतियाँ जब नष्टप्राय हो गईं अर्थात् स्वयंवर की रीति बन्द होगई और माता पिता आदि गुरुजनों ने भी वर और कन्या के रूप, अवस्था, गुण, कर्म और स्वभावादि का मिलान करना छोड़ दिया, तब परिणाम में होनेवाली हानि

१-जैसा कि निरुक्त ग्रन्थ में 'दुहिता' शब्द का व्याख्यान है कि-"दूरे हिता दुहिता" इस का भावार्थ ऊपर लिखे अनुसार ही है, विचार कर देखा जावे तो एक ही नगर में बसनेवाली कन्या से विवाह होने की अपेक्षा दूर देश में बसनेवाली कन्या से विवाह होना सर्वोत्तम भी प्रतीत होता है, परन्तु खेद का विषय है कि-बीकानेर आदि कई एक नगरों में अपने ही नगर में विवाह करने की रीति प्रचलित हो गई है तथा उक्त नगरों में यह भी प्रथा है कि स्त्री दिनभर तो अपने पितृगृह (पीहर) में रहती है और रात को अपने श्वसुर गृह (सासरे) में रहती है और यह प्रथा खासकर वहां के निवासी उत्तम वर्णों में अधिक है, परन्तु यह महानिकृष्ट प्रथा है, क्योंकि इस से गृहस्थाश्रम को बहुत हानि पहुँचती है, इस बुरी प्रथा से उक्त नगरों को जो २ हानियाँ पहुँच चुकी हैं और पहुँच रही हैं उन का विशेष वर्णन लेखके बढ़ने के भय से यहां नहीं करना चाहते हैं, बुद्धिमान् पुरुष स्वयं ही उन हानियों को सोचलेंगे ॥

२-कन्नौज के महाराज जयचन्द्रजी राठौर ने अपनी पुत्री के विवाह के लिये स्वयंवरमण्डप की रचना करवाई थी अर्थात् स्वयंवर की रीति से अपनी पुत्री का विवाह किया था, बस उस के बाद से प्रायः उक्त रीती से विवाह नहीं हुआ अर्थात् स्वयंवर की रीती उठ गई, यह बात इतिहासों से प्रकट है ॥

३-द्रव्य के लोभ आदि अनेक कारणों से ॥

की सम्भावना को विचार कर[1] अनेक बुद्धिमानों ने वर और कन्या के गुण आदि का विचार उन के जन्मपत्रादिपर रक्खा अर्थात् ज्योतिषी के द्वारा जन्मपत्र और ग्रहगोचर के विचार से उन के गुण आदि का विचार करवा कर तथा किसी मनुष्य को भेज कर वर और कन्या के रूप और अवस्था आदि को जान कर उन (ज्योतिपी आदि) के कहदेने पर वर और कन्या का विवाह करने लगे, बस तब से यही रीति प्रचलित हो गई, जो कि अब भी प्रायः सर्वत्र देखी जाती है[2]।

अब पाठक गण प्रथम संख्या में लिखे हुए दुहिता शब्द के अर्थ से तथा दूसरी संख्या से चौथी संख्या पर्यन्त लिखी हुई विवाह की तीनों रीतियों से भी (लौकिक कारणों के द्वारा) निश्चय कर सकते हैं कि इन ऊपर कहे हुए कारणों से क्या सिद्ध होता है, केवल यही सिद्ध होता है कि निजकुटुम्ब में विवाह का होना सर्वथा निषिद्ध है, क्योंकि-देखो! दुहिता शब्द का अर्थ तो स्पष्ट कह ही रहा है कि-कन्या का विवाह दूर होना चाहिये, अर्थात् अपने ग्राम वा नगर आदि में नहीं होना चाहिये, अब विचारो! कि-जब कन्या का विवाह अपने ग्राम वा नगर आदि में भी करना निषिद्ध है तब भला निज कुटुम्ब में व्याह के विषय में तो कहना ही क्या है! इस के अतिरिक्त विवाह की जो उत्तम मध्यम और अधम रूप ऊपर तीन रीतियाँ कही गईं हैं वे भी घोषणा कर साफ २ बतलाती हैं कि-निज कुटुम्ब में विवाह कदापि नहीं होना चाहिये, देखो!

१-अर्थात् समान स्वभाव और गुण आदि का विचार न करने पर विरुद्ध स्वभाव आदिके कारण वर और कन्या को गृहस्थाश्रम का सुख नहीं प्राप्त होगा, इत्यादि हानि की सम्भावना को विचार कर ॥

२-परन्तु महाशोक का विषय है कि-वर और कन्या के माता पिता आदि गुरु जन अब इस अति साधारण तीसरे दर्जे की रीती का भी द्रव्य लोभादि से परित्याग करते चले जाते हैं अर्थात् वर्त्तमान में प्रायः देखा जाता है कि-श्रीमान् (द्रव्यपात्र) लोग अपने समान अथवा अपने से भी अधिक केवल द्रव्यास्पद घर देखते हैं, दूसरी बातों (लड़के का लड़की से छोटा होना आदि हानिकारक भी बातों) को बिलकुल ही नहीं देखते हैं, इस का कारण यह है कि द्रव्यास्पद घराने में सम्बंध होने से वे संसार में अपनी नामवरी को चाहते हैं (कि अमुक के सम्बन्धी अमुक बड़े सेठजी हैं इत्यादि), अब श्रीमान् लोगों के सिवाय जो साधारण जन हैं उन को तो बड़ों को देखकर वैसा करना ही है अर्थात् वे कब चाहने लगे कि हमारी कन्या बड़े घर में न जावे अथवा हमारे लड़के का सम्बंध बड़े घर में न होवे, तात्पर्य यह है कि-गुण और स्वभावादि सब बातों का विचार छोड़कर द्रव्य की ओर देखने लगे, यहाँतक कि ज्योतिषी जी आदितक को भी द्रव्य का लोभ देकर अपने वश में करने लगे अर्थात् उन से भी अपना ही अभीष्ट करवाने लगे, इस के सिवाय लोभादि के कारण जो विवाह के विषय में कन्याविक्रय आदि अनेक हानियां हो चुकी हैं और होती जाती हैं उन को पाठक गण अच्छे प्रकार से जानते ही हैं अतः उन को लिखकर हम ग्रन्थ का विस्तार करना नही चाहते हैं, किन्तु यहां पर तो "निजकुटुम्ब में विवाह कदापि नहीं होना चाहिये" इस विषय को लिखते हुए प्रसंगवशात् यह इतना आवश्यक समझ कर लिखा गया है। आशा है कि-पाठक गण हमारे इस लेख से यथार्थ तत्वको समझ गये होंगे ॥

स्वयंवर की रीति से विवाह करने में यह होता था कि–निजकुटुम्ब से भिन्न (किन्तु देश की प्रथा के अनुसार स्वजातीय) जन देश देशान्तरों से आते थे और उन सब के गुण आदि का श्रवण कर कन्या ऊपर लिखे अनुसार सब बातों में अपने समान पति का स्वयं (खुद) वरण (स्वीकार) कर लेती थी, अब पाठकगण सोच सकते हैं कि–यह (स्वयंवर की) रीति न केवल यही बतलाती है कि–निज कुटुम्ब में विवाह नहीं होना चाहिये किन्तु यह रीति दुहिता शब्द के अर्थ को और भी पुष्ट करती है (कि कन्या का स्वग्राम वा स्वनगर आदि में विवाह नहीं होना चाहिये) क्योंकि यदि निज कुटुम्ब में विवाह करना अभीष्ट वा लोकसिद्ध होता अथवा स्वग्राम वा स्वनगरादि में ही विवाह करना योग्य होता तो स्वयंवर की रचना करना ही व्यर्थ था, क्योंकि वह (निज कुटुम्ब में वा स्वग्रामादि में) विवाह तो विना ही स्वयंवर रचना के कर दिया जा सकता था, क्योंकि अपने कुटुम्ब के अथवा स्वग्रामादि के सब पुरुषों के गुण आदि प्रायः सब को विदित ही होते हैं, अब स्वयंवर के सिवाय जो दूसरी और तीसरी रीति लिखी है उस का भी प्रयोजन वही है कि जो ऊपर लिख चुके हैं, क्योंकि–ये दोनों रीतियां स्वयंवर नहीं तो उस का रूपान्तर वा उसी के कार्य को सिद्ध करनेवाली कही जा सकती हैं, इन में विशेषता केवल यही है कि–पति का वरण कन्या स्वयं नहीं करती थी किन्तु माता पिता के द्वारा तथा ज्योतिषी आदि के द्वारा पति का वरण कराया जाता था, परन्तु तात्पर्य वही था कि–निज कुटुम्ब में तथा यथासम्भव स्वग्रामादि में कन्या का विवाह न हो।

ऊपर लिखे अनुसार शास्त्रीय सिद्धान्त से तथा लौकिक कारणों से निजकुटुम्ब में विवाह करना निषिद्ध है अतः निर्बलता आदि दोषों के हेतु इस का सर्वथा परित्याग करना चाहिये ॥

३–बालकपन में विवाह—प्यारे सुजनो! आप को विदित ही है कि इस वर्त्तमान समय में हमारे देश में ज्वर, शीतला, विषूचिका (हैज़ा) और प्लेग आदि अनेक रोगों की अत्यन्त ही अधिकता है कि जिन से इस अभागे भारत की यह शोचनीय कुदशा हो रही है जिस का स्मरण कर अश्रुधारा बहने लगती है और दुःख विसराया भी नहीं जाता है, परन्तु इन रोगों से भी बढ़ कर एक अन्य भी महान् भयंकर रोग ने इस जीर्ण भारत को धर दबाया है, जिस को देख व सुनकर वज्रहृदय भी दीर्ण होता है, तिस पर भी आश्चर्य तो यह है कि उस महा भयंकर रोग के पञ्जे से शायद कोई ही भारतवासी रिहाई पा चुका होगा, यह ऐसा भयंकर रोग है कि–ज्यों ही वह (रोग) शिर पर चढ़ा त्योंही (थोड़े ही दिनों में) वह इस प्रकार थोथा और निकम्मा कर देता है कि जिस प्रकार गेहूँ आदि अन्न में घुन लगने से उस का सत निकल कर उस की अत्यन्त कुदशा हो जाती है कि जिस से वह किसी काम का नहीं रहता है, फिर देखो।

दूसरे रोगों से तो व्यक्तिविशेष (किसी खास) को ही हानि पहुँचती है परन्तु इस भयंकर रोग से समूह का समूह ही वरन उस से भी अधिक जाति जनसंख्या व देश जनसंख्या ही निकम्मी होकर कुदशा को प्राप्त हो जाती है, सुजनो ! क्या आप को मालूम नहीं है कि यह वही महाभयानक रोग है कि जिस से मनुष्य की सुरत भयावनी तथा नाक कान और आंख आदि इन्द्रियां थोड़े ही दिनों में निकम्मी हो जाती हैं, उस में विचारशक्ति का नाम तक नहीं रहता है, उस को उत्साह और साहस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते हैं, सच पूँछो तो जैसे ज्वर के रहने से तिल्ली आदि रोग हो जाते हैं उसी प्रकार वरन उस से भी अधिक इस महाभयंकर रोग के होने से प्रमेह, निर्बलता, वीर्यविकार, अफरा, दमा, खांसी और क्षय आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं जिन से शरीर की चमक दमक और शोभा जाती रहती है तथा मनुष्य आलसी और क्रोधी वन जाता है तथा उस की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, तात्पर्य लिखने का यही है कि इसी महाभयंकर रोग ने इस भारत को बिलकूल ही चौपट कर दिया, इसी ने लोगों को सभ्य से असभ्य, राजा से रंक (फकीर) और दीर्घायु से अल्पायु वना दिया, भाइयो ! कहां तक गिनावें सब प्रकार के सुख और वैभव को इसी ने छीन लिया ।

हमारे पाठकगण इस वात को सुनकर अपने मन में विचार करने लगे होंगे कि वह कौन सा महान् रोग वला के समान है तथा उस के नाम को सुनने के लिये अत्यन्त विकल होते होंगे, सो हे सज्जनो ! इस महान् रोग को तो आप जैसे सुजन तो क्या किन्तु सब ही जन जानते हैं, क्योंकि प्रतिदिन आप ही सबों के गृहों में इस का निवास हो रहा है, देखो ! कौन ऐसा भारतवर्षीय जन है जो कि वर्त्तमान समय में इस से न सताया गया हो, जिस ने इस के पापड़ों को न वेला हो, जो इस के दुःखों से घायल होकर न तड़फड़ाता हो, यह वह मीठी मार है कि जिस के लगते ही मनुष्य अपने आप ही सर्व सुखों की पूर्णाहुति देकर मियांमिट्ठू वन जाते हैं, इस पर भी तुर्रा यह है कि जब यह रोग किसी गृह में प्रवेश करने को होता है तब दो तीन चार अथवा छः मास पहिले ही अपने आगमन की सूचना देता है, जब इस के आगमन के दिन निकट आते हैं तब तो यह उस गृह को पूर्णरूप से स्वच्छ कराता है, उस गृह के निवासियों को ही नहीं किन्तु उन से सम्बन्ध रखनेवालों को भी कपड़े लत्ते सुथरे पहिनाता है, इस के आगमन की खबर को सुनकर गृह में मंगलाचार होते हैं, इधर उधर से भाई वन्धु आते हैं यह सब कुछ तो होता ही है किन्तु जिस रात्रि को इन महारोग का आगमन होता है उस रात्रि को सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच जाता है और उस गृह में तो ऐसा उत्साह होता है कि जिस का पारावार ही नहीं है अर्थात् दर्वाजो पर नौवत झड़ती है, रण्डियां नाच २ कर मुवारक वादें देती हैं, धूर गोले और आतिशवाज़ी चलती है, पण्डित जन मन्त्रों

का उच्चारण करते हैं, फिर सब लोग मिल कर अत्यन्त हर्ष के साथ उस महारोग को एक उस नादान भोली मूर्त्ति से चपेट देते हैं कि जिस के शिरपर मौर होता है, इस के बाद उस के दूसरे ही दिन प्रातःकाल होते ही सब स्थानों में इस के उस गृह में प्रवेश होने की घोषणा (मुनादी) हो जाती है।

पाठक गण! अब तो यह महान् रोग आप को प्रत्यक्ष प्रकट हो गया, कहिये तो सही यह किस धूमधाम से आता है? क्या २ खेल खिलाता है? कैसे २ नाच नचाता है? किस प्रकार सब को बेहोश कर देता है कि उस गृह के लोग तो क्या किन्तु अड़ोसीपड़ोसीतक इस के कौतुक में वशीभूत हो जाते हैं। सच पूछो तो इस रोग का ऐसे गाजे बाजे के साथ में घर में दखल होता है कि जिस में किसी प्रकार की रोक टोक नहीं होती है बरन यह कहना भी यथार्थ ही होगा कि सब लोग मिलकर आप ही उस महारोग को बुलाते हैं कि जिस का नाम "बाल्यविवाह" (न्यून अवस्था का विवाह) है।

पाठक गण ऊपर के वर्णन से समझ गये होंगे कि—जो २ हानियां इस भारत वर्ष में हुई हैं उन का मूल कारण यही बाल्यावस्था का विवाह है, इस के विषय में वर्त्तमान समय के अच्छे २ बुद्धिमान् डाक्टर लोग भी पुकार २ कर कहते हैं कि—ऐसे विवाहों से कुछ लाभ नहीं है किन्तु अनेक हानियां होती हैं, देखिये! डाक्टर डियूडविस्मिथ साहब (साबिक प्रिन्सिपिल मेडिकल कालेज कलकत्ता) का वचन है कि—"न्यून अवस्था के विवाह की रीति अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि इस से शारीरिक तथा आत्मिक बल जाता रहता है, मन की उमग चली जाती है—फिर सामाजिक बल कैसा?"

डाक्टर नीवीमन कृष्ण बोप का वचन है कि—"शारीरिक बल के नष्ट होने के जितने कारण हैं उन सब में मुख्य कारण न्यून अवस्था का विवाह जानो, यही मस्तक के बल की उन्नति का रोकनेवाला है"।

मिसस पी. जी. फिफसिन (लेडी डाक्टर मुम्बई) का कथन है कि—"हिन्दुओं की स्त्रियों में रुधिरविकार तथा चर्मदूषण आदि बीमारियों के अधिक होने का कारण बाल्य-विवाह ही है, क्योंकि इस से सन्तान शीघ्र उत्पन्न होती है, फिर उस को उस दशा में दूध पिलाना पड़ता है जब कि माता की रगें दृढ़ नहीं होती हैं; जिस से माता दुर्बल होकर नाना प्रकार के रोगों में फँस जाती है"।

डाक्टर महेन्द्रलाल सर्कार एम. डी. का वचन है कि—"बाल्यावस्था का विवाह अत्यन्त बुरा है, क्योंकि इस से जीवन की उन्नति की बहार लुट जाती है तथा शारीरिक उन्नति का द्वार बन्द हो जाता है"।

उक्त डाक्टर साहब ने किसी समय सभा के बीच में यह भी वर्णन किया था कि—मैं अपनी तीस वर्ष की परीक्षा से यह कह सकता हूँ कि—फी सदी २५ स्त्रियां बाल्यावस्था के

विवाह के हेतु से मरती है तथा फी सदी दो मनुष्य इसी से ऐसे हो जाते हैं कि जिन को सदा रोग घेरे रहते हैं और वे आधे आयु में ही मरते हैं ।

प्रिय सज्जनो ! इस के अतिरिक्त अपने शास्त्रों की तरफ तथा प्राचीन इतिहासों की तरफ भी ज़रा दृष्टि दीजिये कि विवाह का क्या समय है और वह किस प्रयोजन के लिये किया जाता है—आर्ष (ऋषिप्रणीत) ग्रन्थोंपर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तान का उत्पन्न करना है और उस का (सन्तानोत्पत्ति का) समय शास्त्रकारों ने इस प्रकार कहा है कि:—

स्त्रियां षोडशवर्षायां, पञ्चविंशतिहायनः ॥
बुद्धिमानुद्यमं कुर्यात्, विशिष्टसुतकाम्यया ॥ १ ॥

अर्थ—पचीस वर्ष की अवस्थावाले (जवान) बुद्धिमान् पुरुष को सोलह वर्ष की स्त्री के साथ सुपुत्र की कामना से संभोग करना चाहिये ॥ १ ॥

तदा हि प्राप्तवीर्यौ तौ, सुतं जनयतः परम् ॥
आयुर्बलसमायुक्तं, सर्वेन्द्रिय समन्वितम् ॥ २ ॥

अर्थ—क्योंकि—उस समय दोनों ही (स्त्री पुरुष) परिपक्क (पके हुए) वीर्य से युक्त होने से आयु बल तथा सर्व इन्द्रियों से परिपूर्ण पुत्र को उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

न्यूनषोडशवर्षायां, न्यूनाब्दपञ्चविंशतिः ॥
पुमान् यं जनयेद् गर्भं, स प्रायेण विपद्यते ॥ ३ ॥
अल्पायुर्बलहीनो वा, दारिद्र्योपद्रुतोऽथवा ॥
कुष्ठादि रोगी यदि वा, भवेद्वा विकलेन्द्रियः ॥ ४ ॥

अर्थ—यदि पचीस वर्ष से कम अवस्थावाला पुरुष—सोलह वर्ष से कम अवस्थावाली स्त्री के साथ सम्भोग कर गर्भाधान करे तो वह गर्भ प्रायः गर्भाशय में ही नाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥

अथवा वह सन्तति अल्प आयुवाली, निर्बल, दरिद्री, कुष्ठ आदि रोगों से युक्त, अथवा विकलेन्द्रिय (अपांग) होती है ॥ ४ ॥

शास्त्रों में इस प्रकार के वाक्य अनेक स्थानों में लिखे हैं जिन का कहांतक वर्णन करें ।

प्रियमित्रो ! अपने और देश के शुभचिन्तको ! अब आप से यही कहना है कि—यदि आप अपने सन्तानों को सुखी देखना चाहते हो तथा परिवार और देश की उन्नति को चाहते हो तो सब से प्रथम आप का यही कर्त्तव्य होना चाहिये कि—अनेक रोगों के मूल कारण इस बाल्यावस्था के विवाह की कुरीति को बंद कर शास्त्रोक्त रीति को प्रचलित

१—ये सब श्लोक जैनाचार्य श्रीजिनदत्तसूरिकृत "विवेकविलास" के पञ्चम उल्लास में लिखे हैं ॥

कीजिये, यही आप के पूर्व पुरुषों की सनातन रीति है इसी के अनुसार चलकर प्राचीन काल में तुल्य गुण कर्म और स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुष शास्त्रानुसार स्वयम्वर[1] में विवाह कर गृहस्थाश्रम के आनन्द को भोगते थे, बाल्यावस्था में विवाह होने की यह कुरीति तो इस भारत वर्ष में मुसलमानों की बादशाही होने के समय से चली है, क्योंकि मुसलमान लोग हिन्दुओं[2] की रूपवती अविवाहिता कन्याओं को जबरदस्ती से छीन लेते थे किन्तु विवाहिताओं को नहीं छीनते थे, क्योंकि मुसलमानों की धर्मपुस्तक के अनुसार विवाहिता कन्याओं का छीनना अधर्म माना गया है[3], बस हिन्दुओं ने "मरता क्या न करता" की कहावत को चरितार्थ किया क्योंकि उन्हों ने यही सोचा कि अब बाल्य विवाह के बिना इन (मुसलमानों) से बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं है, यह विचार कर छोटे २ पुत्रों और पुत्रियों का विवाह करना प्रारम्भ कर दिया, बस तब से आजतक वही रीति चल रही है, परन्तु प्रियमित्रो! अब वह समय नहीं है अब तो न्यायशीला श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट का वह न्याय राज्य है कि जिस में सिंह और बकरी एक घाट पर पानी पीते हैं, कोई किसी के धर्मपर आक्षेप नहीं कर सकता है और न कोई किसी को विना कारण छेड़ वा सता सकता है, इस के सिवाय राज्यशासकों की अति प्रशंसनीय बात यह है कि–वे परस्त्री को बुरी दृष्टि से कदापि नहीं देखते हैं, जब वर्त्तमान ऐसा शुभ समय है तो अब भी हमारे हिन्दू (आर्य) जनों का इन कुरीतियों को न सुधारना बड़े ही अफ़सोस का स्थान है।

इस के सिवाय एक विचारणीय विषय यह है कि–जिस समय जिस वस्तु की प्राप्ति की मन में इच्छा होती है उसी समय उस के मिलने से परम सुख होता है किन्तु विना समय के वस्तु के मिलने से कुछ भी उत्साह और उमंग नहीं होती है और न किसी

१–स्वयंवररूप विवाह परम उत्तम विवाह है, इस में यह होता था कि कन्या का पिता अपनी जाति के योग्य मनुष्यों को एक तिथिपर एकत्रित होने की सूचना देता था और वे सब लोग सूचना के अनुसार नियमित तिथिपर एकत्रित होते थे तथा उन आये हुए पुरुषों में से जिसको कन्या अपने गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल जान लेती थी उसी के गले में जयमाला (वरमाला) डाल कर उस से विवाह करती थी, बहुधा यह भी प्रथा थी कि स्वयंवरों में कन्या का पिता कोई प्रण करता था तथा उस प्रण को जो पुरुष पूर्ण कर देता था तब कन्या का पिता अपनी कन्या का विवाह उसी पुरुष से कर देता था, इन सब बातों का वर्णन देखना हो तो कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत संस्कृत रामायण तथा पाण्डवचरित्र आदि ग्रन्थों को देखो ॥

२–इतिहासों से सिद्ध है कि आर्यावर्त्त के बहुत से राजाओं की भी कन्याओं के डोले यवन बादशाहों ने लिये हैं, फिर भला सामान्य हिन्दुओं की तो क्या गिनती है ॥

३–क्योंकि विवाहिता कन्यापर दूसरे पुरुष का (उसके स्वामी का) हक हो जाता है और इन के मत का यह सिद्धान्त है कि दूसरे के हक में आई हुई वस्तु का छीनना पाप है ॥

४–सचमुच यही गृहस्थाश्रमका प्रथम पाया भी है ॥

प्रकार का आनन्द ही आता है, जिस प्रकार भूख के समय में सूखी रोटी भी अच्छी जान पड़ती है परन्तु भूख के विना मोहनभोग को खाने को भी जी नहीं चाहता है, इसी प्रकार योग्य अवस्था के होनेपर तथा स्त्री पुरुष को विवाह की इच्छा होनेपर दोनों को आनन्द प्राप्त होता है किन्तु छोटे २ पुत्र और पुत्रियों का उस दशा में जब कि उन को न तो कामाग्नि ही सताती है और न उन का मन ही उधर को जाता है, विवाह कर देने से क्या लाभ हो सकता है ? कुछ भी नहीं, किन्तु यह विवाह तो विना भूख के खाये हुए भोजन के समान अनेक हानियां ही करता है ।

हे सुजनो ! इन ऊपर कही हुई हानियों के सिवाय एक बहुत बड़ी हानि वह होती है कि जिस के कारण इस भारत में चारों ओर हाहाकार मच रहा है तथा जिससे उसके निर्मल यश में धब्बा लग रहा है, वह बुरी बाल विधवाओं का समूह है कि जिन की आहें इस भारत के घाव पर और भी नमक डाल रही हैं, हा प्रभो ! वह कौन सा ऐसा घर है जिस में विधवाओं के दर्शन नहीं होते हैं, उसपर भी वे भोली विधवायें कैसी हैं कि जिन के दूध के दाँततक नहीं गिरे हैं, न उन को अपने विवाह की कुछ सुध बुध है और न वे यह जानती हैं कि हमारी चूड़ियां क्योंकर फूटी हैं, हमारे ऊपर पैदा होते ही कौन सा वज्रपात हो गया है, इसपर भी तुर्रा यह है कि–जब वे बेचारी तरुण होती हैं तब कामानल (कामाग्नि) के प्रबल होनेपर उन का नियोग भी नहीं होता है । भला सोचिये तो सही कि कामानल के दुःसह तेज का सहन कैसे हो सकता है ? सिर्फ यही कारण है कि हज़ारों में से दश पांच ही सुन्दर आचरणवाली होती हैं, नहीं तो प्रायः नाना लीलायें रचती हैं कि जिन से निष्कलंक कुलवालों के भी शिर से लज्जा की पगड़ी गिर जाती है, क्या उस समय कुलीन पुरुषों की मूछें उन के मुँहपर शोभा देती हैं ? नहीं कभी नहीं, उन के यौवन का मद एकदम उतर जाता है, उन की प्रतिष्ठापर भी इस प्रकार छार पड़ जाती है कि–दश आदमियों में ऊँचा मुँह कर के उन की बोलने की भी ताकत नहीं रहती है, सत्य तो यह है कि–मातापिता इस जलती हुई चिताको अपनी छातीपर देख २ कर हाड़ों का सांचा बन जाते हैं, इन सब क्लेशों का कारण बाल्यावस्था का विवाह ही है, देखो ! भारत में विधवाओं की संख्या वर्त्तमान में इतनी है कि जितनी अन्य किसी देश में नहीं पाई जाती, क्योंकि अन्यत्र बाल्यावस्था में विवाह नहीं होता है, देखो ! पूर्वकाल में जब इस भारत में बाल्यावस्था में विवाह नहीं होता था तब यहां विधवाओं की गणना (संख्या) बहुत ही न्यून थी ।

बाल्यावस्था के विवाह से हानि का प्रत्यक्ष प्रमाण और दृष्टान्त यही है कि–देखो ! जब किसी खेत में गेहूँ आदि अन्न को बोते हैं तो जमने के पीछे दश पांच दिन में बहुत से मर जाते हैं, एक महीने के पीछे बहुत कम मरते हैं, दो चार महीने के पीछे

अत्यन्त ही कम मरते हैं, इस के पश्चात् बचे हुए चिरस्थायी हो जाते हैं, इसी प्रकार जन्म से पांच वर्षतक जितने बालक मरते हैं उतने पांच से दश वर्षतक नहीं मरते हैं, दश से पन्द्रह वर्षतक उस से भी बहुत कम मरते हैं, इस का हेतु यही है कि बाल्यावस्था में दाँतों का निकलना तथा शीतला आदि अनेक रोग प्रकट होकर बालकों के प्राणघातक होते हैं।

समझने की बात है कि—जब किसी पेड़ की जड़ मजबूत हो जाती है तो वह बड़ी २ आँधियों से भी बच जाता है किन्तु निर्बल जड़वाले वृक्षों को आंधी आदि तूफान समूल उखाड़ डालते हैं, इसी प्रकार बाल्यावस्था में नाना भांति के रोग उत्पन्न होकर मृत्युकारक हो जाते हैं परन्तु अधिक अवस्था में नहीं होते हैं, यदि होते भी हैं तो सौ में पांच को ही होते हैं।

अब इस ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि—यदि बाल्यावस्था का विवाह भारत से उठा दिया जावे तो प्रायः बालविधवाओं का यूथ (समूह) अवश्य कम हो सकता है तथा ये सब (ऊपर कहे हुए) उपद्रव मिट सकते हैं, यद्यपि वर्त्तमान में इस निकृष्ट प्रथा के रोकने में कुछ दिक्कत अवश्य होगी परन्तु बुद्धिमान् जन यदि इस के हटाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करें तो यह धीरे २ अवश्य हट सकती है अर्थात् धीरे २ इस निकृष्ट प्रथा का अवश्य नाश हो सकता है और जब इस निकृष्ट प्रथा का बिलकुल नाश हो जावे गा अर्थात् बाल्यविवाह की प्रथा बिलकुल उठ जावे गी तब निस्सन्देह ऊपर लिखे सब ही उपद्रव शान्त हो जावेंगे और महादुःख का एक मात्र हेतु विधवाओं की संख्या भी अति न्यून हो जावेगी अर्थात् नाममात्र को रह जावेंगी (ऐसी दशा में विधवा विवाह वा नियोग विषयक चर्चा के प्रश्नके भी उठने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी कि जिस का नाम सुनकर साधारण जन चकित से रह जाते हैं) क्योंकि देखो! यह निश्चयपूर्वक माना जा सकता है कि—यदि शास्त्रानुसार १६ वर्ष की कन्या के साथ २५ वर्ष के पुरुष का विवाह होने लगे तो सौ स्त्रियों में से शायद पाँच स्त्रियाँ ही मुश्किल से विधवा हो सकती हैं (इस का हेतु विस्तारपूर्वक ऊपर लिख ही चुके हैं कि बाल्यावस्था में रोगों से विशेष मृत्यु होती है किन्तु अधिकावस्था में नहीं इत्यादि) और उन पाँच विधवाओं में से भी तीन विधवायें योग्य समय में विवाह होने के कारण अवश्य सन्तानवती माननी पड़ेगी अर्थात् विवाह होने के बाद दो तीन वर्ष में उन के बालबच्चे हो जावेंगे पीछे वे विधवा होंगी ऐसी दशा में उन के लिये वैधव्ययातना अति कष्टदायिनी नहीं हो सकती है, क्योंकि—सन्तान के होने के बाद यदि कुछ समय के पीछे पतिका मरण भी हो जावे तो वे स्त्रियाँ उन बच्चों की भावी आशापर उन के लालन पालन में अपनी आयु को [illegible] में व्यतीत कर सकती हैं और उन को उक्त दशा में

विधवापन की तकलीफ विशेष नहीं हो सकती है, बस इस हिसाब से सौ विवाहिता स्त्रियों में से केवल दो विधवायें ऐसी दीख पड़ेंगी कि जो सन्तानहीन तथा निराश्रयवत् होंगी अर्थात् जिन का कुछ अन्य प्रबन्ध करने की आवश्यकता रहेगी।

इस लिये सब उच्च वर्ण (ऊंची जाति)वालों को उचित है कि स्वयंवर की रीति से विवाह करने की प्रथा को अवश्य प्रचलित करें, यदि इस समय किसी कारण से उक्त रीति का प्रचार न हो सके तो आप खुद गुण कर्म और स्वभाव को मिलाकर उसी प्रकार कार्य को कीजिये कि जिस प्रकार आप के प्राचीन पुरुष करते थे।

देखिये ! विवाह होने से मनुष्य गृहस्थ हो जाते हैं और उन को प्रायः गृहस्थोपयोगी सब ही प्रकार के पदार्थों की आवश्यकता होती है तथा वे सब पदार्थ धन ही से प्राप्त होते हैं और धन की प्राप्ति विद्या आदि उत्तम गुणों से ही होती है तथा विद्या आदि उत्तम गुणों के प्राप्त करने का समय केवल बाल्यावस्था ही है, अतः यदि बाल्यावस्था में विवाह कर सन्तान को बन्धन में डाल दिया जावे तो कहिये विद्या आदि उत्तम गुणों की प्राप्ति कब और कैसे हो सकती है तथा विद्या आदि उत्तम गुणों के अभाव में धन की प्राप्ति कैसे हो सकती है और उस के विना आवश्यक गृहस्थोपयोगी पदार्थों की अनुपलब्धि (अप्राप्ति) से गृहस्थाश्रम में पूर्ण सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? सत्य तो यह है कि—बाल्यावस्था में विवाह का कर देना मानो सब आश्रमों को और उन के सुखों को नष्ट कर देता है, इसी कारण से तो प्राचीन काल में विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह होता था, शास्त्रकारों ने भी यही आज्ञा दी है कि—प्रथम अच्छे प्रकार से विद्याध्ययन कर फिर विवाह कर के गृह में वास करें, क्योंकि विद्या, जितेन्द्रियता और पुरुषार्थ के प्राप्त हुए विना गृहस्थाश्रम का पालन नहीं किया जा सकता है और जिस ने इन (विद्या आदि) को प्राप्त नहीं किया वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को भी नहीं सिद्ध कर सकता है ॥

१—माता पिता को उचित है कि जब अपने पुत्र और पुत्री युवावस्था को प्राप्त हो जावें तब उन के योग्य कन्या और वर के ब्रह्मचर्य की, विद्या आदि सद्गुणों की तथा उन के धर्माचरण की अच्छे प्रकार से परीक्षा करके ही उन का विवाह करें, इस की विधि शास्त्रकारों ने इस प्रकार कही है कि—१—लड़के की अवस्था २५ वर्ष की तथा लड़की की अवस्था सोलह वर्ष की होनी चाहिये। २—ऊँचाई में लड़की लड़के के कन्धे के बराबर होनी चाहिये, अथवा इस से भी कुछ कम होनी चाहिये अर्थात् लड़के से लड़की ऊँची नहीं होनी चाहिये। ३—दोनों के शरीर सम होने चाहिये। ४—दोनों या तो विद्वान् होने चाहियें अथवा दोनों ही मूर्ख होने चाहियें ॥

पुत्रीके गुण—१—जिस के शरीर में कोई रोग न हो। २—जिस के शरीर में दुर्गन्ध न आती हो। ३—जिस के शरीरपर बड़े २ बाल न हों तथा मूँछ के बाल भी न हों। ४—जो बहुत बकवाद करनेवाली न हो। ५—जिस का शरीर टेढ़ा न हो तथा अंगहीन भी न हो। ६—जिस का शरीर कोमल हो परन्तु दृढ़ हो। ७—जिस की वाणी मधुर हो ८— जिस का वर्ण पीला न हो। [illegible]रे नेत्रवाली न हो। १०—जिस

४–सन्तान का विगड़ना—बहुत से रोग ऐसे हैं जो कि पूर्व क्रम से सन्तानों के हो जाते है अर्थात् माता पिता के रोग बच्चों को हो जाते हैं, इस प्रकार के रोगों में मुख्य २ ये रोग हैं–क्षय, दमा, क्षिप्तचित्तता (दीवानापन), मृगी, गोला, हरस (मस्सा), सुज़ाख, गर्मी, आंख और कान का रोग तथा कुष्ठ इत्यादि, पूर्वक्रम से सन्तान में होनेवाले बहुत से रोग अनेक समयों में वृद्धि को प्राप्त होकर जब सर्व कुटुम्ब का संहार कर डालते हैं उस समय लोग कहते हैं कि–देखो ! इस कुटुम्ब पर परमेश्वर का कोप हो गया है परन्तु वास्तव में तो परमेश्वर न तो किसी पर कोप करता है और न किसी पर प्रसन्न होता है किन्तु उन २ जीवों के कर्म के योग से वैसा ही संयोग आकर उपस्थित हो जाता है क्योंकि क्षय और क्षिप्तचित्तता रोग की दशा में रहा हुआ जो गर्भ है वह भी क्षय रोगी तथा क्षिप्तचित्त (पागल) होता है, यह वैद्यकशास्त्र का नियम है, इसलिये चतुर पुरुषों को इस प्रकार के रोगों की दशा में विवाह करने तथा सन्तान के उत्पन्न करने से दूर रहना चाहिये।

किसी २ समय ऐसा भी होता है कि–सन्तान के होनेवाले रोग एक पीढ़ी को छोड़ कर पोते के हो जाते हैं।

सन्तान के होनेवाले रोगों से युक्त बालक यद्यपि अनेक समयों में प्रायः पहिले तनदुरुस्त दीखते हैं परन्तु उन की उस तनदुरुस्ती को देखकर यह नहीं समझना चाहिये कि वे नीरोग हैं, क्योंकि ऐसे बालकों का शरीर रोग के लायक अथवा रोग के लायक होने की दशा में ही होता है, ज्योंही रोग को उत्तेजन देनेवाला कोई कारण बन जाता है त्यों ही उन के शरीर में शीघ्र ही रोग दिखलाई देने लगता है, यद्यपि सन्तान के होनेवाले रोगों का ज्ञान होने से तथा बचपन में हीं योग्य सम्भाल रखने से भी सम्भव है कि उस रोग की बिलकुल जड़ न जावे तो भी मनुष्य का उचित उद्यम उस को कई दर्जों में कम कर सकता तथा रोक भी सकता है ॥

का नाम शास्त्रानुसार हो, जैसे–यशोदा, सुभद्रा, विमला, सावित्री आदि। ११–जिस की चाल हंस वा हथिनी के तुल्य हो। १२–जो अपने चार गोत्रों में की न हो। १३–मनस्मृति आदि धर्म शास्त्रों में कन्या के नाम के विषय में कहा है कि–"नर्क्षवृक्षनदी नाम्नीं, नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं, न च भीषणनामिकाम् ॥ १ ॥" अर्थात् कन्या नक्षत्र नामवाली न हो, जैसे–रोहिणी, रेवती इत्यादि, वृक्ष नामवाली न हो, जैसे–चम्पा, तुलसी आदि, नदी नामवाली न हो, जैसे–गंगा, यमुना, सरस्वती आदि अन्त्य (नीच) नामवाली न हो, जैसे–चाण्डाली आदि, पर्वत नामवाली न हो, जैसे–विन्ध्याचला, हिमालया आदि, पक्षी नामवाली न हो, जैसे–कोकिला, मैना, हंसा आदि, सर्प नामवाली न हो, जैसे–सर्पिणी, नागी, व्याली आदि, प्रेष्य (भृत्य) नामवाली न हो, जैसे–दासी किङ्करी आदि, तथा भीषण (भयानक) नामवाली न हो, जैसे–भीमा, भयंकरी, चण्डिका आदि, क्योंकि ये सब नाम निषिद्ध हैं अतः कन्याओं के ऐसे नाम ही नहीं रखने चाहियें)।

५-**अवस्था**—शरीर को रोग के योग्य वनानेवाले कारणों में से एक कारण अवस्था भी है, देखो! बचपन में शरीर की गर्मी के कम होने से ठंढ जल्दी असर कर जाती है, उस की योग्य सम्भाल न रखने से थोड़ीसी ही देर में हाफनी, दम, खांसी और कफ आदि के अनेक रोग हो जाते हैं।

जवानी (युवावस्था) में रोगों को रोकनेवाली शातावेदनी शक्ति की प्रवलता के होने से शरीर को रोग के योग्य वनानेवाले कारणों का ज़ोर थोड़ा ही रहता है।

तीसरी वृद्धावस्था में शरीर फिर निर्बल पड़ जाता है और यह निर्वलता वृद्ध मनुष्य के शरीर को वार २ रोग के योग्य वनाती है॥

६-**जाति**—विचार कर देखा जावे तो पुरुषजाति की अपेक्षा स्त्रीजाति का शरीर रोग के असर के योग्य अधिक होता है, क्योंकि स्त्रीजाति में कुछ न कुछ अज्ञान, विचार से हीनता और हठ अवश्य होता है, इस लिये वह आहार विहार में हानि लाभ का कुछ भी विचार नहीं रखती है, दूसरे–उस के शरीर के वन्धेज नाजुक होने से गर्भ-

---

प्यारे सुजनो! विवाह के विषय में शास्त्रानुसार इन वातों का विचार अवश्यमेव करना चाहिये, क्योंकि इन वातों का विचार न करने से जन्मभरतक दुःख भोगना पड़ता है तथा गृहस्थाश्रम दुःखों की खानि हो जाता है, देखो! उत्तम कुल वृक्षके तुल्य है, उस की सम्पत्ति शाखाओं के सदृश है तथा पुत्र मूलवत् है, जैसे मूलके नष्ट होने से वृक्ष कभी कायम नहीं रह सकता है, उसी प्रकार अयोग्य विवाह के द्वारा पुत्रके नष्ट भ्रष्ट होने से कुल का नाश हो जाता है, इसलिये जो पुरुष अपने पुत्र और पुत्रियों को सदा सुखी रखना चाहें वे सुखरूपी तत्व का विचार कर शास्त्रानुसार उचित विधि से विवाह करें क्योंकि जो ऐसा करेंगे वे ही लोग कुलरूपी वृक्ष की वृद्धिरूपी फल फूल और पत्तों को देख सकते हैं, वल्कि सच पूछो तो सन्तान ही नहीं किन्तु उस का योग्य विवाह ही कुलरूपी वृक्ष का मूल है, इस लिये जैसे वृक्ष की रक्षा के लिये उसके मूल की रक्षा करनी पड़ती है उसी प्रकार कुल की रक्षा के लिये योग्य विवाह की संभाल और रक्षा करनी चाहिये, जैसे जिस वृक्ष का मूल दृढ़ होगा तो वह वड़े २ प्रचण्ड वायु के झपट्टों से भी कभी नहीं गिर सकेगा परन्तु यदि मूल ही निर्वल हुआ तो हवा के थोड़े ही झटके से उखड़ कर गिर पड़ेगा इसी प्रकार जो पुत्र सपूत वा सुलक्षण होगा तथा उसका योग्य विवाह होगा तो धन तथा कुल की प्रतिदिन उन्नति होगी, सर्व प्रकार से वाप दादे का नाम तथा यश फैलेगा और नाना भांति से सुख तथा आनन्द की वृद्धि होगी, क्योंकि गुणवान् और उत्तम आचरणवाले एक ही सुपुत्र से सम्पूर्ण कुल इस प्रकार शोभित और प्रख्यात हो जाता है जैसे चन्दनके एक ही वृक्ष से तमाम वन सुगन्धित रहता है, परन्तु यदि पुत्र कुपूत वा कुलक्षण हुआ तो वह अपने तन, मन, धन, मान और कीर्त्ति आदि को धूल में मिला देगा, इस लिये विवाह में धन आदि की अपेक्षा लड़के के गुण कर्म और शील आदि का मिलाना अत्यंत उचित है, क्योंकि धन तो इस संसार में वादल की छाया के समान है, प्रतिष्ठा पतङ्ग के रंग के सदृश और कुल केवल नाम के लिये है, इस कारण मूलपर सदा ध्यान करने से परम सुख मिल सकता है अन्यथा कदापि नहीं, देखो! किसी ने सत्य कहा है कि–"एक हि साधे सब सधैं, सब साधे सब जाय॥ जो तू सींचै मूल को, फूले फले अघाय"॥ १॥ अतः वर और कन्या के ऊपर लिखे हुए गुणों को मिला कर विवाह करना उचित है, जिस से उन दोनों की प्रकृति सदा एक सी रहे, क्योंकि यही सुख का मूल है, देखो! किसी कविने कहा है कि–"प्रकृति मिले मन मिलत है, अन मिल से न मिलाय॥

स्थान में वार २ परिवर्त्तन (उथलपुथल) हुआ करता है, इसलिये स्त्री का निर्वल शरीर रोग के योग्य होता है, वर्त्तमान में स्त्रीजाति की उत्पत्ति पुरुषजाति से तिगुनी दीखती है तथा स्त्रीजाति पुरुषजाति की अपेक्षा अधिक मरती है, यही कारण है कि-एक एक पुरुष तीन २ चार २ तक विवाह किया करते हैं ॥

दूध दही से जमत है, कांजी से फटि जाय" ॥ १ ॥ ऊपर लिखी हुई वातों के मिलाने के अतिरिक्त यह भी देखना उचित है कि जो लड़का ज्वारी, मद्यप (शरावी), वेश्यागामी (रण्डीवाज़) और चोर आदि न हो किन्तु पढ़ा लिखा, श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता और धर्मात्मा हो उसी से कन्या का विवाह करना चाहिये, नहीं तो कदापि सुख नहीं होगा, परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि-वर्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी पर कुछ भी ध्यान न देकर केवल कुंभ मीन आदि का मिलान कर वर कन्या का विवाह कर देते हैं, जिस का फल यह होता है कि उत्तम गुणवती कन्या का विवाह दुर्गुण वाले वर के साथ अथवा उत्तम गुणवाले पुत्र का विवाह दुर्गुणवाली कन्या के साथ हो जाने से घरों में प्रतिदिन देवासुरसंग्राम मचा रहता है, इन सव हानियों के अतिरिक्त जव से भारत में वालहत्या के मुख्य हेतु वालविवाह तथा वृद्धविवाह का प्रचार हुआ तव से एक और भी खोटी रीति का प्रचार हो गया है और वह यह है कि लड़की के लिये वर खोजने के लिये-नाई, वारी, धीवर, भाट और पुरोहित आदि भेजे जाते हैं, यह कैसे शोक की वात है कि-अपनी प्यारी पुत्री के जन्मभर के सुख दुःख का भार दूसरे परम लोभी, मूर्ख, गुणहीन, स्वार्थी और नीच पुरुषों पर डाल दिया जाता है, देखो! जव कोई पुरुष एक पैसे की हांडी को भी मोल लेता है तो उस को खूव ठोक वजा कर लेता है परन्तु अफसोस है कि इस कार्य पर कि जिस पर अपने आत्मजों का सुख निर्भर है किञ्चित् भी ध्यान नहीं दिया जाता है, सुजनो! यह कार्य ऐसा नहीं है कि इस को सामान्य वुद्धिवाला मनुष्य कर सके किन्तु यह कार्य तो ऐसे मनुष्य के करने का है कि जो विद्वान् तथा निर्लोभ हो और संसार को खूव देखे हुए हो, क्या आप इन नाई वारी भाट और पुरोहितों को नहीं जानते हैं कि ये लोग केवल एक एक पैसे पर प्राण देते हैं, फिर उन की वुद्धि की क्या तारीफ करें, उन की वुद्धि का तो साधारण नमूना यही है कि चार सभ्य पुरुषों में वैठ कर वे वात तक का कहना भी नहीं जानते हैं, न तो वे कुछ पढ़े लिखे ही होते हैं और न विद्वानों का ही संग किये हुए होते हैं फिर भला वे लोभरहित और वुद्धिमान् कहां से हो सकते हैं, देखो! संसार में लोभ से वचना अति कठिन काम है क्योंकि यह वड़ा प्रवल ग्रह है, इस ने वड़े २ विद्वान् तथा महात्माओं को भी सताया है तथा सताता है, इसी लोभ में आकर औरंगज़ेव ने अपने पिता और भ्राता को भी मार डाला था, लोभ के ही कारण आजकल भाई भाइयों में भी नहीं वनती है, फिर भला उन का क्या कहना है कि जो दिन रात धन ही की लालसा में लगे रहते हैं और उस के लिये लोगों की झूठी खुशामदें करते हैं, उन की तो साक्षात् यह दशा देखी गई है कि चाहें लड़का काला और कुवड़ा आदि कैसा ही क्यों न हो किन्तु जहां लड़के के पिता ने उन से मुट्ठी गर्म करने का प्रण किया वा खूव आवभगत से उन को लिया त्यों ही वे लोग लड़की वाले से आकर लड़के की तथा कुल की वहुत ही प्रशंसा करते हैं अर्थात् सम्वंध करा ही देते हैं, परन्तु यदि लड़केवाला उन की मुट्ठी को गर्म नहीं करता है तथा उन की आवभक्ति नहीं करता है तो चाहें लड़का

७-जीविका वा वृत्ति—बहुत सी जीविकायें वा वृत्तियें (रोज़गार) भी ऐसी हैं जो कि शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारण बन जाती हैं, जैसे देखो! सब दिन बैठ कर काम करनेवालों, आंख को बहुत परिश्रम देनेवालों, कलेजा और फेफसा दबा रहे इस प्रकार बैठकर काम करने वालों, रंग का काम करने वालों, पारा तथा फास-

---

कैसा ही उत्तम क्यों न हो तो भी वे लोग आकर लड़की वाले से बहुत अप्रशंसा तथा निन्दा कर देते हैं जिस के कारण परस्पर सम्बंध नहीं होता है और यदि दैवयोग से सम्बंध हो भी जाता है तो पति पत्नियों में परस्पर प्रेम नहीं रहता है क्योंकि वे (वर और कन्या) भाट आदि के द्वारा एक दूसरे की निन्दा सुने हुए होते हैं, इन्हीं अप्रबन्धों और परस्पर के द्वेष के कारण बहुधा मनुष्य नाना प्रकार की कुचालों में पड़ गये और उन्हों ने अपनी अर्धाङ्गिनी रूप बहुतेरी बालिकाओं को जीते जी रंडापे का स्वाद चखा दिया, इधर नाई बारी और पुरोहित आदि के दुखड़े का तो रोना है ही परन्तु उधर एक महान् शोक का स्थान और भी है कि माता पिता आदि भी न पुत्र को देखते हैं और न पुत्री को देखते हैं, हां यदि आंखें खोल कर देखते हैं तो यही देखते हैं कि कितना रुपया पास है और क्या २ माल टाल है किन्तु पुत्र और पुत्री चाहे चोर और ज्वारी क्यों न हों, चाहे समस्त धन को दो ही दिन में उड़ा दें और चाहें लड़की अपने फूहरपन से गृह को पति के वास्ते जेलखाना ही क्यों न बना दे परन्तु इस की उन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं होती है, सत्य पूछो तो यही कहा जा सकता है कि वे विवाह को पुत्र के साथ नहीं वरन धन के साथ करते हैं, जब उन की कोई बुराई प्रकट होती है तब कहते हैं कि हम क्या करें, हमारे यहां तो सदा से ऐसा ही होता चला आया है, प्रिय महाशयो! देखिये! इधर माता पिता आदि की तो यह लीला है, अब उधर शास्त्रकार क्या कहते हैं-शास्त्रकारों का कथन है कि-चाहें पुत्र और पुत्री मरणपर्यन्त कुमारे (अविवाहित) ही क्यों न रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्परविरुद्ध गुण कर्म और स्वभाव वालों का विवाह नहीं करना चाहिये इत्यादि, देखिये। प्राचीन काल में आप के पुरुषा लोग इसी शास्त्रोक्त आज्ञा के अनु-सार अपने पुत्र और पुत्रियों का विवाह करते थे, जिस का फल यह था कि उस समय में यह गृहस्था-श्रम स्वर्गधाम की शोभा को दिखला रहा था, शास्त्रकारों की यह भी सम्मति है कि जो स्त्री पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त एक दूसरे को अपनी इच्छा से पसन्द कर विवाह करते हैं वे ही उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर सदा प्रसन्न रहते हैं, इस कथन का मुख्य तात्पर्य यही है कि-इन ऊपर कहे हुए गुणों में जिस स्त्री से जिस पुरुष को और जिस पुरुष से जिस स्त्री को अधिक आनन्द मिले उन्हीं को परस्पर विवाह करना चाहिये, (देखो! श्रीपाल राजा का प्राकृत चरित्र, उस में इस का वर्णन आया है) शास्त्र कार यह भी पुकार २ कर कहते हैं कि-अति उत्तम विवाह वही है कि जिस में तुल्य रूप और स्वभाव आदि गुणों से युक्त कन्या और वर का परस्पर सम्बन्ध हो तथा कन्या से वर का बल और आयु दूना वा ड्योढ़ा तो अवश्य हो, परन्तु अफसोस का विषय तो यह है कि-शास्त्र को आज कल न कोई देखता और न कोई सुनता ही है, फिर इस दशा में शास्त्रों और शास्त्रकारों की सम्मति प्रत्येक विषय में कैसे मालूम हो सकती है? बस यही कारण है कि-विवाहविषय में शास्त्रीय सिद्धान्त ज्ञात न होने से अनेक प्रकार की कुरीतियां प्रचलित हो गईं और होती जाती हैं, जिन का वर्णन करते हुए अतिखेद होता है, देखिये! विवाह के विषय में एक यह और भी बड़ी भारी कुरीति प्रचलित है कि

फरस की चीज़ों के बनानेवालों, पत्थर को घड़नेवालों, धातुओं का काम करनेवालों (लुहार, कसेरे, ठँठेरे और सुनार आदिकों) कोयले की खान को खोदने वाले मजूरों, कपड़े की मिल में काम करनेवाले मजूरों, वहुत वोलनेवालों, वहुत फूंकनेवालों और रसोई का काम प्रतिदिन करनेवालों का तथा इसी प्रकार के अन्य धन्धे (रोज़गार) करनेवालों का शरीर रोग के योग्य हो जाता है तथा इन की आयु भी परिमाण से कम हो जाती है॥

८-प्रकृति—प्रकृति (समाव वा मिजाज़) भी शरीर को रोग के योग्य बनानेवाला कारण है, देखो! किसी का मिजाज़ ठंढा, किसी का गर्म, किसी का वातल और

बहुधा उत्तम २ जातियों में विवाह ठेके पर होता है अर्थात् सगाई करने से पूर्व इकरार (करार) हो जाता है कि-हम इतनी बड़ी वरात लावेंगे और इतने रुपये आप को खर्च करने पड़ेंगे इत्यादि, उधर वेटी वाले वर के पिता से करार करा लेते हैं कि तुम को इतना गहना वींदणी को चढ़ाना पड़ेगा, यह तो बड़े २ श्रीमन्तों का हाल देखने में आता है, अव वाकी रह गये हज़ारिये और गरीव गृहस्थ लोग, सो इन में भी वहुत से लोग रुपया लेकर कन्या का विवाह करते हैं तथा रुपये के लोभ में पड़ कर ऐसे अन्धे वन जाते हैं कि वर की आयु आदि का भी कुछ विचार नहीं करते हैं अर्थात् वर चाहें साठ वर्ष का बुड्ढा क्यों न हो तो भी रुपये के लोभ से अपनी अवोध (अज्ञान वा भोली) वालिका को उस जर्जर के गले से वांध कर उस के लिये दुःखागार का द्वार खोल देते हैं, सत्य तो यह है कि जब से यहां कन्याविक्रय की कुरीति प्रचलित हुई तव ही से इस भारतवर्ष का सत्यानाश हो गया है, हे प्रभो! क्या ऐसे निर्दयी माता पिता भी कन्या के माता पिता कहे जा सकते हैं? जो कि केवल रुपये की तरफ देखते हैं और इस वात पर विलकुल ध्यान नहीं देते हैं कि दो वर्ष के वाद यह बुड्ढा मर जायगा और हमारी पुत्री विधवा होकर दुःखसागर में गोते मारेगी या हमारे कुल को कलङ्कित करेगी, इस कुरीति के प्रचार से इस देश में जो २ हानियां हो चुकी हैं और हो रही हैं उन का वर्णन करने में हृदय विदीर्ण होता है तथा विस्तृत होने से उन का वर्णन भी पूरे तौर पर यहां नहीं कर सकते हैं और न उन के वर्णन करने की कोई आवश्यकता ही है क्योंकि इस की हानियां प्रायः सुजनों को विदित ही हैं, अव आप से यहां पर यही निवेदन करना है कि हे प्रिय मित्रो! आप लोग अपनी २ जाति में इस वुरी रीति को विलकुल ही उठा देने (नेस्तनावूद करने) का पूरा २ प्रतिवन्ध कीजिये, क्योंकि यदि इस (वुरी रीति) को जड़ (मूल) से न उठा दिया जावेगा तो कालान्तर में अत्यन्त हानि की सम्भावना है, इस लिये इस कुरीतिको उठा देना और इन निम्न लिखित कतिपय वातों का भी ध्यान रखना आप का मुख्य कर्त्तव्य है कि जिस से दोनों तरफ किसी प्रकार का क्लेश न हो और मन न विगड़े, जैसा कि इस समय हमारे देश में हो रहा है, जिस के कारण भारत की प्रतिष्ठारूपी पताका भी छिन्न भिन्न हो गई है तथा उत्तम २ वर्णवालों को भी नीचा देखना पड़ता है, इस विषय में ध्यान रखने योग्य ये वातें हैं— १-वरात में वहुत भीड़ नहीं ले जानी चाहिये। २-वखेर या लूट की चाल को उठाना चाहिये। ३-वागवहारी में फजूल खर्ची नहीं करनी चाहिये। ४-आतिशवाज़ी में रुपये को व्यर्थ में नहीं फूंकना चाहिये। ५-रण्डियों का नाच कराना मानो अशुभ मार्ग की प्रवृत्ति करना है, इस लिये इस को भी

किसी का मिश्र होता है, मिश्रित प्रकृतिवालों में से कोई २ पुरुष दो प्रकृति की प्रधानतावाले तथा कोई २ तीनों प्रकृतियों की प्रधानतावाले भी होते हैं।

गर्म मिजाज़वाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही क्रोध तथा बुखार के आधीन हो जाता है, ठंढे मिजाज़वाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही शर्दी कफ और दम आदि रोगों के आधीन हो जाता है, एवं वायु प्रकृतिवाला मनुष्य प्रायः शीघ्र ही वादी के रोगों के आधीन हो जाता है।

यद्यपि मूल में तो यह प्रकृतिरूप दोप होता है परन्तु पीछे जब उस प्रकृति को विगाड़नेवाले आहार विहार से सहायता मिलती है तब उसी के अनुसार रोगोत्पत्ति हो जाती है, इसलिये प्रकृति को भी शरीर को रोग के योग्य बनानेवाले कारणों में गिनते हैं॥

उठा देना चाहिये। बुद्धिमान् जन यद्यपि इन पांचों ही कुरीतियों के फल को अच्छे प्रकार से जानते ही होंगे तथापि साधारण पुरुषों के ज्ञानार्थ इन कुरीतियों की हानियों का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

बरात में बहुत भीड़भाड़ का ले जाना—प्रथम तो यही विचार करना चाहिये कि बरात को खूब ठाठ वाट से ले जाने में दोनों तरफ के लोगोंको क्लेश होता है और अच्छा प्रवन्ध तथा आदर सत्कार नहीं वन पड़ता है, इस के सिवाय इधर उधर का धन भी बहुत खर्च हो जाता है, अतः बहुत धूमधाम से बरातको ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, वरन थोड़ी सी बरात को अच्छे सजाव के साथ ले जाना अति उत्तम है, क्योंकि थोड़ी सी बरात का दोनों तरफ वाले उत्तम खान पान आदि से अच्छे प्रकार से सत्कार कर अपनी शोभा को कायम रख सकते हैं, इस के सिवाय यह भी विचार की वात है कि–इस कार्य में विशेप धन का लगाना वृथा ही है, क्योंकि यह कोई चिरस्थायी कार्य तो है ही नहीं सिर्फ दो दिन की वात है, अधिक बरात के ले जाने में नेकनामी की प्रायः कम आशा होती है किन्तु बदनामी की ही सम्भावना रहती है, क्योंकि यह कायदे की वात है कि समर्थ पुरुष को भी बहुत से जनोंका उनकी इच्छा के अनुसार पूरा २ प्रबंध करने में कठिनता पड़ती है, बस जहां बरातियों के आदर सत्कार में ज़रा त्रुटि हुई तो शीघ्र ही बराती जन यही कहते हैं कि अमुक पुरुप की बरात में गये थे वहां खाने पीने तक का भी कुछ प्रवन्ध नहीं था, सब लोग भूखों के मारे मरते थे, पानी तथा दाना घास भी समय पर नहीं मिलता था, इधर सेठजी ले जाने के समय तो बड़ी सीप साप (लल्लो चप्पो) करते थे परन्तु वहां तो दुम दवाये जनवासे ही में बैठे रहे इत्यादि, कहिये यह कितना अशोभा का स्थान है। एक तो धन जावे और दुसरे कुयश हो, इस में क्या फायदा है? इस लिये बुद्धिमानों को थोड़ी ही सी बरात ले जाना चाहिये।

वखेर या लूट—वखेर का करना तो सर्व प्रकार ही महा हानिकारक कार्य है, देखो! वखेर का नाम सुनकर दूर २ के भंगी आदि नीच जाति के लोग तथा लूले, लँगड़े, अपाहज, कँगले और दुर्वल आदि इकट्ठे होते हैं, क्योंकि लालच बुरी बला है, इधर नगर निवासियों में से सब ही छोटे बड़े छत और अटारियों पर तथा बाज़ारों में इकट्ठे होकर ठट्ठके ठट्ठ लग जाते हैं, वखेर करनेवाले वहां पर मुट्ठियां अधिक मारते हैं जहां स्त्रियों तथा मनुष्यों के समूह अधिक होते हैं, उन मुट्ठियों के चलते ही हज़ारों स्त्री पुरुष

रोग को उत्पन्न करनेवाले समीपवर्त्ती कारण ॥

रोगको उत्पन्न करनेवाले समीपवर्त्ती कारणों में से मुख्य कारण अठारह हैं और वे ये हैं-हवा, पानी, खुराक, कसरत, नींद, वस्त्र, विहार, मलीनता, व्यसन, विषयोग, रस-विकार, जीव, चेप, ठंढ, गर्मी, मनके विकार, अकस्मात् और दवा, ये सब पृथक् २ अनेक रोगों के कारण हो जाते हैं, इन में से मुख्य सात बातें हैं जिन को अच्छे प्रकार से उपयोग में लाने से शरीर का पोषण होकर तनदुरुस्ती बनी रहती है तथा इन्हीं वस्तुओं का आवश्यकता से कम अधिक अथवा विपरीत उपयोग करने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

और बाल बच्चे तले ऊपर गिरते हैं कि जिस से अवश्य ही दश बीस लोगों के चोट लगती है तथा एक आध मर भी जाते हैं, उस समय में लोभवश आये हुए बेचारे अन्धे लूले और लँगड़े आदि की तो अत्यन्त ही दुर्दशा होती है और ऐसी अन्धाधुन्धी मचती है कि कोई किसी की नहीं सुनता है, इधर तो ऊपर से मुट्ठी धड़ाधड़ चली आती है तथा वह दूर की मुट्ठी जिस किसी की नाक वा कान में लगती है वह वैसा ही रह जाता है, उधर लुचे गुंडे लोग स्त्रियों की ऐसी कुदशा देख उनकी नथ आदि में हाथ मार कर भागते हैं कि जिस से उन बेचारियों की नथ आदि तो जाती ही है किन्तु नाक आदि भी फट जाती है, यह तो मार्ग की दशा हुई-अब आगे बढ़िये-लूट का नाम सुनकर समधी के दर्वाज़े पर भी झुंडके झुण्ड लग जाते हैं और जब वहां रुपयों की मुट्ठी चलती है उस समय लूटनेवालों को बेहोसी हो जाती है और तले ऊपर गिरने से बहुत से लोग कुचल जाते हैं, किसी के दांत टूटते हैं, किसी के हाथ पैर टूटते हैं, किसी के मुख आदि अंगों से खून बहता है और कोई पड़ा २ सिसकता है इत्यादि जो २ वहां दुर्दशा होती है वह देखने ही से जानी जाती है, भला बतलाइये तो इस बखेर से क्या लाभ है कि जिस में ऐसे २ कौतुक हों तथा धन भी व्यर्थ में जावे? देखो! बखेर में जितना रुपया फेंका जाता है उस में से आधे से अधिक तो मिट्टी आदि में मिल जाता है, बाकी एक तिहाई हट्टे कट्टे भंगी आदि नीचों को मिलता है जिस को पाकर वे लोग खूब मांस और मद्य का खान पान करते हैं तथा अन्य बुरे कामों में भी व्यय करते हैं, शेष रहा सो अन्य सामान्य जनों को मिलता है, परन्तु लूले लँगड़े और अपाहिजों के हाथ में तो कुछ भी नहीं आता है, वरन् उन बेचारों का तो काम हो जाता है अर्थात् अनेकों के चोटें लग जाती हैं, इस के अतिरिक्त किन्हीं २ के पहुँची, छल्ला, नथुनी और अंगुठी आदि भूषण जाते रहते हैं इस दशामें चाहे पानेवाले कुछ लोग तो सेठजीकी प्रशंसा भी करें परन्तु बहुधा वे जन कि जिन के चोट लग जाती है या जिन की कोई चीज़ जाती रहती है सेठजी तथा लालाजी के नाम को रोते ही हैं, जिन मनुष्यों को कुछ भी नहीं मिलता है वे यही कहते हैं कि सेठजी ने बखेर का तो नाम किया था, कहीं २ कुछ पैसे फेंकते थे, ऐसे फेंकने से क्या होता है, वह कंजूस क्या बखेर करेगा इत्यादि, देखिये! यह कैसी बात है-एक तो रुपये गमाना और दुसरे बदनामी कराना, इस लिये बखेर की प्रथा को अवश्य बन्द कर देना चाहिये, हां यदि सेठजी के हृदय में ऐसी ही उदारता हो तथा द्रव्य खर्चकर नामवरी ही लेना चाहते हों तो लूले और लँगडों के लिये सदावर्त्त आदि जारी कर देना चाहिये।

इन अठारहों विषयों में से बहुत से विषयों का विवरण हम विस्तारपूर्वक पहिले भी कर चुके हैं, इसलिये यहां पर इन अठारहों विषयों का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार से किया जायगा कि इन में से प्रत्येक विषय से कौन २ से रोग उत्पन्न होते हैं, इस वर्णन से पाठक गणों को यह बात ज्ञात हो जायगी कि शरीर को अनेक रोगों के योग्य बनानेवाले कारण कौन २ से हैं।

१–**हवा**—अच्छी हवा रोग को मिटाती है तथा खराब हवा रोग को उत्पन्न करती है, खराब हवा से मलेरिया अर्थात् विषम जीर्ण ज्वर नामक बुखार, दस्त, मरोड़ा, हैज़ा, कामला, आधाशीसी, शिर का दुखना (दर्द), मंदाग्नि और अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

बहुत ठंढी हवा से खांसी, कफ, दम, सिसकना, शोथ और सन्धिवायु आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

बाग बहारी अर्थात् फूल टट्टी—बाग बहारी की भी वर्तमान समय में यह चर्चरी है कि-रंगीन कागज़ और अबरख (भोडल) के फूलों के स्थान में (यद्यपि वे भी फजूल खर्चा में कुछ कम नहीं थे) हुंडी, नोट, चांदी सोने की कटोरियां, बादाम, रुपये और अशर्फियों को तख्तामें लगाने की नौबत आ पँहुची। यों तो सब ही लोग अपने रुपये और माल की रक्षा करते हैं परन्तु हमारे देशभाई अपने द्रव्य को आंखों के सामने खड़े होकर खुशी से लुटवा देते हैं और द्रव्यको खर्च कर के भी कुछ लाभ नहीं उठाते हैं, हां यह तो अवश्यमेव सुनने में आता है कि अमुक लाला या साहूकार की बरात में फूलट्टी अच्छी थी, हरतरह बचाई गई परन्तु न बची, लड़कीवालेके सामने तक न पहुँचने पाई कि फूल टट्टी लुट गई, अब प्रथम तो यही विचार करने का स्थान है कि विवाह के कार्य की प्रसन्नता के पहिले लुटने की अशुभ वाणी का मुँह से निकलना (कि अमुक की फूल टट्टी लुट गई) कैसा बुरा है। इसके सिवाय इस में कभी २ लट्ठ भी चल जाते हैं, जब टोपी तथा पगड़ी उतर जाती है तब वह फूल हाथ में आते हैं मानो लूटनेवालों की प्रतिष्ठा के जाने पर कुछ मिलता है, आपस में दंगा हो जाने से बहुधा मेजिस्ट्रेट तक भी नौबत पहुँचती है सब से बड़ी शोचनीय बात यह है कि विवाह जैसे शुभ कार्य के आरम्भ ही में गमी का सब सामान करना पड़ता है।

आतिशबाज़ी—आतिशबाज़ी से न तो कोई सांसारिक ही लाभ है और न पारलौकिक ही है, वरन् वर्षों के उपार्जन किये हुए धन की क्षणमात्र में जला कर राख की ढेरी का बना देना है, इस में भीड़भाड़ भी इतनी हो जाती है कि एक एक के ऊपर दश दश गिरते हैं, एक इधर दौड़ता है, एक उधर दौड़ता है इस से यहां तक धक्कमधक्का मच जाती है कि-बहुधा लोग बेदम हो जाते हैं, तमाशा यह होता है कि-किसी के पैर की उँगली पिची, किसी की डाढ़ी जली, किसी की भौंओं तथा मूंछों का सफाया हुआ, किसी का दुपट्टा तथा किसी का अँगरखा जल गया तथा किसी २ के हाथ पाँव भुन गये, इस से बहुधा मकानों के छप्परों में भी आग लग जाती है कि जिस से चारों ओर हाहाकार मच जाता है और उस से अन्यत्र भी आग लगने के द्वारा बहुधा अनेक हानियां हो जाती हैं, कभी २ मनुष्य तथा पशु भी

बहुत गर्म हवा से जलन, रूखापन, गर्मवायु, प्रमेह, प्रदर, भ्रम, अँधेरी, चक्कर, भँवर आना, वातरक्त, गलत्कुष्ठ, शील, ओरी, पिंडलियों का कटना, हैज़ा और दस्त आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥

२-**पानी**—निर्मल (साफ) पानी के जो लाभ हैं वे पहिले लिख चुके हैं उन के लिखने की अब कोई आवश्यकता नहीं है।

खराब पानी से-हैज़ा, कृमि, अनेक प्रकार का ज्वर, दस्त, कामला, अरुचि, मन्दाग्नि, अजीर्ण, मरोड़ा, गलगण्ड, फीकापन और निर्वलता आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

अधिक खारवाले पानी से-पथरी, अजीर्ण, मन्दाग्नि और गलगण्ड आदि रोग होते हैं।

सड़ी हुई वनस्पति से अथवा दूसरी चीज़ों से मिश्रित (मिले हुए) पानी से दस्त, शीत ज्वर, कामला और तापतिल्ली आदि रोग होते हैं।

मरे हुए जन्तुओं के सड़े हुए पदार्थ से मिले हुए पानी से हैज़ा, अतीसार तथा दूसरे भी भयंकर और ज़हरीले बुखार उत्पन्न होते हैं।

जल कर प्राणों को त्यागते हैं, इस के अतिरिक्त इस निकृष्ट कार्य से हवा भी विगड़ जाती है कि जिस से प्राणी मात्र की आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है, इस से द्रव्य का नुकसान तो होता ही है किन्तु उस के साथ में महारम्भ (जीवहिंसाजन्य अपराध) भी होता है, तिस पर भी तुर्रा यह है कि-घर वालों को कामों की अधिकता से घर फूंक के भी तमाशा देखने की नौवत नहीं पहुँचती है।

रण्डी (वेश्या) का नाच—सत्य तो यह है कि-रण्डियों के नाच ने इस भारत को गारत कर दिया है, क्योंकि तवला और सारंगी के विना भारत वासियों को कल ही नहीं पड़ती है, जब यह दशा है तो वरात में आने जाने वालों के लिये वह सञ्जीवनी क्यों न हो। समधी तथा समधिन का भी पेट उस के विना नहीं भरता है, ज्यों ही वरात चली त्यों ही विषयी जन विना वुलाये चलने लगते हैं, वेश्या को जो रुपया दिया जाता है उस का तो सत्यानाश होता ही है किन्तु उस के साथ में अन्य भी वहुत सी हानियों के द्वार खुल जाते हैं, देखो! नाच ही में कुमार्गी मित्र उत्पन्न हो जाते हैं, नाच ही में हमारे देश के धनाढ्य साहूकार लज्जा को तिलाञ्जलि देते हैं, नाच ही में वेश्याओं को अपनी शिकार के फाँसने तथा नौ जवानों का सत्यानाश मारने का समय (मौका) हाथ लगता है, बाप वेटे भाई और भतीजे आदि सब ही छोटे बड़े एक महफिल में बैठकर लज्जा का परदा उठा कर अच्छे प्रकार से घूरते तथा अपनी आंखों को गर्म करते हैं वेश्या भी अपने मतलव को सिद्ध करने के लिये महफिलों में ठुमरी, टप्पा, वारहमासा और गज़ल आदि इश्क के द्योतक रसीले रागों को गाती हैं, तिस पर भी तुर्रा यह है कि-ऐसे रसीले रागों के साथ में तीक्ष्ण कटाक्ष तथा हाव भाव भी इस प्रकार वताये जाते हैं कि जिन से मनुष्य लोट पोट हो जाते हैं तथा खूब सूरत और शृंगार किये हुए नौ जवान तो उस की सुरीली आवाज़ और उन तीक्ष्ण कटाक्ष आदि से ऐसे घायल हो जाते हैं कि फिर उन को सिवाय इश्क वस्ल यार के और कुछ भी नहीं सूझता है, देखिये! किसी महात्मा ने कहा है कि—

धातुओं के योग से मिले हुए पानी से (जिस में पारा सोमल और सीसा आदि विषैले पदार्थ गलकर मिले रहते हैं उस जलसे) भी रोगों की उत्पत्ति होती है ॥

२-**खुराक**—शुद्ध, अच्छी, प्रकृति के अनुकूल और ठीक तौर से सिजाई हुई खुराक के खाने से शरीर का पोषण होता है तथा अशुद्ध, सड़ी हुई, बासी, बिगड़ी हुई, कच्ची, रूखी, बहुत ठंढी, बहुत गर्म, भारी, मात्रा से अधिक तथा मात्रा से न्यून खुराक के खाने से बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं, इन सब का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार है:—

१-सड़ी हुई खुराक से—कृमि, हैज़ा, वमन, कुष्ठ (कोढ़), पित्त तथा दस्त आदि रोग होते हैं ।

दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शनात् हरते बलम् ।
मैथुनात् हरते वीर्यं, वेश्या प्रत्यक्षराक्षसी ॥ १ ॥

अर्थात् दर्शन से चित्त को, छूने से बल को और मैथुन से वीर्य को हर लेती है, अतः वेश्या नन्मुच राक्षसी ही है ॥ १ ॥ यद्यपि सब ही जानते हैं कि इस राक्षसी वेश्या ने हज़ारों घरों को धूल में मिला दिया है तिस पर भी तो बाप और बेटे को साथ में बैठ कर भी कुछ नहीं सूझता है, जहां उस की आंख लगी कि चकनाचूर हो जाते हैं, प्रतिष्ठा तथा जवानी को खोकर बदनामी का तौक़ गले में पहनते हैं, देखो ! हजारों लोग इश्क़ के नशे में चूर होकर अपना घर बार बेंचकर दो २ दानों के लिये मारे २ फिरते हैं, बहुत से नादान लोग धन कमा २ कर इन की भेंट चढ़ाते हैं और उनके मातापिता दो २ दानों के लिये मारे २ फिरते हैं, सच पूछो तो इस कुकार्य से उन की जो २ कुदशा होती है वह सब अपनी करनी का ही निकृष्ट फल है, क्योंकि वे ही प्रत्येक उत्सव अर्थात् बालकजन्म, नामकरण, मुण्डन, सगाई और विवाह में तथा इन के सिवाय जन्माष्टमी, रासलीला, रामलीला, होली, दिवाली, दशहरा और वसन्तपञ्चमी आदि पर बुलवा २ कर अपने नौ जवानों को उन राक्षसियों की रसभरी आवाज़ तथा मधुरी आंखें दिखलवाते हैं कि जिस से वे बहुधा रण्डीबाज़ हो जाते हैं तथा उन को आतशक और सुज़ाक आदि बीमारियां घेर लेती हैं, जिन की आग में वे खुद भुनते रहते हैं तथा उन की परसादी अपनी औलाद को भी देकर निराश छोड़ जाते हैं, बहुतसे मूर्ख जन रण्डीयों के नाज़ नखरे तथा बनाव शृंगार आदि पर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि घर की विवाहिता स्त्रियों के पास तक नहीं जाते हैं तथा उन (विवाहिता स्त्रियों) पर नाना प्रकार के दोष रखकर मुँह से बोलना भी अच्छा नहीं समझते हैं, वे बेचारी दुःख के कारण रातदिन रोती रहती हैं, यह भी अनुभव किया गया है कि-बहुधा जो स्त्रियां महफिल का नाच देख लेती हैं उन पर इस का ऐसा बुरा असर पड़ता है कि-जिस से घर के घर उजड़ जाते हैं, क्योंकि-जब वे देखती हैं कि-सम्पूर्ण महफिल के लोग उस रण्डी की ओर टकटकी लगाये हुए उस के नाज़ और नखरों को सह रहे हैं, यहांतक कि जब वह थूकने का इरादा करती है तो एक आदमी पीकदान लेकर हाज़िर होता है, इसी प्रकार यदि पान खाने की ज़रूरत हुई तो भी निहायत नाज़ तथा अदब के साथ उपस्थित किया जाता है, इस के सिवाय वह दुष्टा नीचे से ऊपरतक सोने और चांदी के आभूषणों तथा अतलस, गुलबदन और कमरख्वाब आदि बहुमूल्य वस्त्रों के पेसवाज़ को एक एक दिन में चार २ दफे

२-कच्ची खुराक से-अजीर्ण, दस्त, पेट का दुखना और कृमि आदि रोग होते हैं।

३-रूखी खुराक से-वायु, शूल, गोला, दस्त, कब्ज़ी, दम और श्वास आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

४-वातल खुराक से-शूल, पेट में चूंक, गोला तथा वायु आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

५-बहुत गर्म खुराक से-खांसी, अम्लपित्त (खट्टी वमन), रक्तपित्त (नाक और मुख आदि छिद्रों से रुधिर का गिरना) और अतीसार आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

६-बहुत ठंढी खुराक से-खांसी, श्वास, दम, हांफनी, शूल, शर्दी और कफ आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

नई २ किस्म के बदलती है तथा अतर और फुलेल की लपटें उस के पास से चली आती हैं बस इन्हीं सब बातों को देखकर उन विद्याहीन स्त्रियों के मन में एक ऐसा बुरा असर पड़ जाता है कि जिस का अन्तिम (आखिरी) फल यह होता है कि बहुधा वे भी उसी नगर में खुल्लमखुल्ला लज्जा को त्याग कर रण्डी बन कर गुलछर्रे उड़ाने लगती हैं और कोई २ रेल पर सवार होकर अन्य देशों में जाकर अपने मन की आशा को पूर्ण करती हैं, इस प्रकार रण्डी के नाच से गृहस्थों को अनेक प्रकार की हानियां पहुंचती हैं, इस के अतिरिक्त यह कैसी कुप्रथा चल रही है कि-जब दर्वाज़ों पर रण्डियां गाली गाती हैं और उधर से (घर की स्त्रियों के द्वारा) उस का जवाब होता है, देखिये! उस समय कैसे २ अपशब्द बोले जाते हैं कि-जिन को सुन कर अन्यदेशीयलोगों का हँसते २ पेट फूल जाता है और वे कहते हैं कि इन्हों ने तो रण्डियों को भी मात कर दिया, धिक्कार है ऐसी सास आदि को। जो कि मनुष्यों के सम्मुख (सामने) ऐसे २ शब्दों का उच्चारण करें! अथवा रण्डियों से इस प्रकार की गालियों को सुनकर भाई बन्धु माता और पिता आदि की किञ्चित् भी लज्जा न करें और गृह के अन्दर घूंघट बनाये रखकर तथा ऊंची आवाज़ से बात भी न कह कर अपने को परम लज्जावती प्रकट करें! ऐसी दशा में सच पूछो तो विवाह क्या मानो परदे वाली स्त्रियों (शर्म रखनेवाली स्त्रियों) को जान बूझकर बेशर्म बनाना है, इस पर भी तुर्रा यह है कि-खुश होकर रण्डियों को रुपया दिया जाता है (मानो घर की लज्जावती स्त्रियों को निर्लज्ज बनाने का पुरस्कार दिया जाता है), प्यारे सुजनो! इन रण्डियों के नाच के ही कारण जब मनुष्य वेश्यागामी (रण्डीबाज़) हो जाते हैं तो वे अपने धर्म कर्म पर भी धता भेज देते हैं, प्रायः आपने देखा होगा कि जहां नाच होता है वहां दश पांच तो अवश्य मुंड ही जाते हैं, फिर ज़रा इस बात को भी सोचो कि जो रुपया उत्सवों और खुशियों में उन को दिया जाता है वे उस रुपये से बकराईद में जो कुछ करती हैं वह हत्या भी रुपया देनेवालों के ही शिर पर चढ़ती है, क्योंकि-जब रुपया देनेवालों को यह बात प्रकट है कि यदि इन के पास रुपया न होगा तो ये हाथ मलमल कर रह जावेंगी और हत्या आदि कुछ भी न कर सकेंगी-फिर यह जानते हुए भी जो लोग उन्हें रुपया देते हैं तो मानो वे खुद ही उन से हत्या करवाते हैं, फिर ऐसी दशा में वह पाप रुपया देनेवालों के शिर पर क्यों न चढ़ेगा? अब कहिये कि यह कौन सी बुद्धिमानी है कि रुपया खर्च करना और पाप को शिर पर लेना! प्यारे सुजनो! इस वेश्या के नृत्य से विचार कर देखा जावे तो उभयलोक के सुख नष्ट होते हैं और इस के समान कोई भी कुत्सित प्रथा नहीं है, यद्यपि बहुत से लोग इस दुष्कर्म की हानियों

७-भारी खुराक से-अपची, दस्त, मरोड़ा और बुखार आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

८-मात्रा से अधिक खुराक से-दस्त, अजीर्ण, मरोड़ा और ज्वर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

९-मात्रा से न्यून खुराक से-क्षय, निर्बलता, चेहरे और शरीर का फीकापन और बुखार आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

इस के सिवाय मिट्टी से मिली हुई खुराक से-पाण्डु रोग होता है, बहुत मसालेदार खुराक से-यकृत् (कलेजा अर्थात् लीवर) बिगड़ता है और बहुत उपवास के करने से शूल और वायुजन्य रोग आदि उत्पन्न होकर शरीर को निर्बल कर देते हैं ॥

को अच्छे प्रकार से जानते भी हैं तो भी इस को नहीं छोड़ते हैं, संसार की अनेक बदनामियों को शिर पर उठाते हैं तो भी इस से मुख नहीं मोड़ते हैं, इस कुरीति की जो कुछ निकृष्टता है उस को दूसरे तो क्या बतलावें किन्तु वह नृत्य तथा उस का सर्व सामान ही बतलाता है, देखो! जब नृत्य होता है तथा वेश्या गाती है तब यह उपदेश मिलता है कि—

सवैया—शुभ काजको छांड कुकाज रचैं, धन जात है व्यर्थ सदा तिन को।
एक रांड बुलाय नचावत हैं, नहिं आवत लाज ज़रा तिनको ॥
मिरदंग भनै धृक है धृक है, सुरताल पुछै किन को किन को।
तब उत्तर रांड बतावत है, धृक है इन को इन को इन को ॥ १ ॥

एक समय का प्रसंग है कि-किसी भाग्यवान् वैश्य के यहां एक ब्राह्मण ने भागवत की कथा बांची तब उस वैश्य ने कथा पर केवल तीस रुपये चढ़ाये परन्तु उसी भाग्यवान् के यहां जब पुत्र का विवाह हुआ तो उस ने वेश्या को बुलाई और उसे सात सौ रुपये दिये, उस समय उस ब्राह्मण ने कहा है कि—

दोहा—उलटी गति गोपाल की, घट गई बिश्वा बीस ॥
रामजनी को सात सौ, अभयराम को तीस ॥ १ ॥

प्रियवरो! अब अन्त में आप से यही कहना है कि-यदि आप के विचार में भी ऊपर कही हुई सब बातें ठीक हों तो शीघ्र ही भारतसन्तान के उद्धार के लिये वेश्या के नाच कराने की प्रथा को अवश्य त्याग दीजिये, अन्यथा (इस का त्याग न करने से) सम्मति देने के द्वारा आप भी दोषी अवश्य होंगे, क्योंकि-किसी विषय का त्याग न करना सम्मति रूप ही है ॥

भांड—वेश्या के नृत्य के समान इस देश में भांडों के कौतुक कराने की भी प्रथा पड़ रही है, इस का भी कुछ वर्णन करना चाहते हैं, सुनिये-ज्योंही वेश्याओं के नाच से निश्चिन्त हुए त्योंही भांडों का लश्कर बरसात के मेंडकों की भांति भांति २ की बोली बोलता हुआ निकल पड़ा, अब लगीं तालियां बजने, कोई किसी की घुटी हुई खोपड़ी में चपत जमाता है, कोई गधे की भांति चिल्लाता है, एक कहता है कि मिया ओ! दूसरा कहता है फुस, तात्पर्य यह है कि वे लोग अनेक प्रकार के कोलाहल मचाते हैं तथा ऐसी २ नकलें बनाते और सुनाते हैं कि लालाजी सेठजी और बाबू जी आदि की प्रतिष्ठा में पानी पड़ जाता है, ऐसे २ शब्दों का उच्चारण करते हैं कि जिन के लिखने में भी लेखनीको तो लज्जा आती

८-कसरत—कसरत से होनेवाले लाभों का वर्णन पहिले कर चुके हैं तथा उस का विधान भी लिख चुके हैं, उसी नियम के अनुसार यथाशक्ति कसरत करने से बहुत लाभ होता है, परन्तु बहुत मेहनत करने से तथा आलसी होकर बैठे रहने से बहुत से रोग होते हैं, अर्थात् बहुत परिश्रम करने से बुखार, अजीर्ण, ऊरुस्तम्भ (नीचे के भाग का रह जाना) और श्वास आदि रोगों के होने की संभावना होती है तथा आलसी होकर बैठे रहने से-अजीर्ण, मन्दाग्नि, मेदवायु और अशक्ति आदि रोग होते हैं, भोजन कर कसरत करने से-कलेजे को हानि पहुँचती है, भारी अन्न खाकर कसरत करने से-आमवात का प्रकोप होता है।

कसरत दो प्रकार की होती है-एक शारीरिक (शरीर की) और दूसरी मानसिक (मन की), इन दोनों कसरतों को पूर्व लिखे अनुसार अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिये, क्योंकि हद् से अधिक शारीरिक कसरत तथा परिश्रम करने से हृदय में व्याकुलता (धड़धड़ाहट) होती है, नसों में रुधिर बहुत शीघ्र फिरता है, श्वासोच्छ्वास

है परन्तु उस सभा के बैठनेवाले जो सभ्य कहलाते हैं कुछ भी लज्जा नहीं करते हैं, वरनः प्रसन्न चित्त होकर हँसते २ अपना पेट फुलाते और उन्हें पारितोषिक प्रदान करते हैं, प्यारे सुजनो! इन्हीं व्यर्थ बातों के कारण भारत की सन्तानों का सत्यानाश मारा गया, इस लिये इन मिथ्या प्रपञ्चों का शीघ्र ही त्याग कर दीजिये कि जिन के कारण इस देश का पटपड़ हो गया, कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि-जहां प्राचीन समय में प्रत्येक उत्सव में पण्डित जनों के सत्योपदेश होते थे वहां अब रण्डी तथा लौंडों का नाच होता है तथा भांति २ की नकलें आदि तमाशे दिखलाये जाते हैं जिन से अशुभ कर्म बँधता है, क्योंकि धर्मशास्त्रों में लिखा है कि-नकल करने से तथा उसे देखकर खुश होने से बहुत अशुभ कर्म बंधता है, हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!! इस के सिवाय थोड़ा सा वृत्तान्त और भी सुन लीजिये और उसे सुनने से यदि लज्जा प्राप्त हो तो उसे छोड़िये, वह यह है कि-विवाह आदि उत्सवों के समय स्त्रियों में बाज़ार, गली, कूंचे तथा घर में फूहर गालियों अथवा गीतों के गाने की निकृष्ट प्रथा अविद्या के कारण चल पड़ी है तथा जिस से गृहस्थाश्रम को अनेक हानियां पहुंच चुकी हैं और पहुँच रही हैं, उसे भी छोड़ना आवश्यक है, इस लिये आप को चाहिये कि इस का प्रबन्ध करें अर्थात् स्त्रियों को फूहर गालियां तथा गीत न गाने देवें, किन्तु जिन गीतों में मर्यादा के शब्द हों उन को कोमल वाणी से गाने दें, क्योंकि युवतियों का युवावस्था में निर्लज्ज शब्दों का मुख से निकालना मानो बारूद की चिनगारी का छोड़ना है, इस के अतिरिक्त इस व्यवहार से स्त्रियों का स्वभाव भी बिगड़ जाता है, चित्त विकारों से भर जाता है और मन विषय की तरफ दौड़ने लगता है फिर उस का साधना (काबू में रखना) अत्यन्त ही कठिन वरनः दुस्तर हो जाता है, इस लिये उचित है कि मन को पहिले ही से विषयरस की तरफ न झुकने देवें तथा यौवन रूपी मदवाले के हाथ में विषयरस रूपी हथियार देके अपने हितकारी सद्गुणों का नाश न करावें, यदि मन को पहिले ही से इस से न रोका जावेगा तो फिर उस का रुकना अति कठिन हो जावेगा।

बहुत ज़ोर से चलता है जिस से मगज़ तथा फेफसे आदि आवश्यक भागों पर अधिक दवाव होने से तत्सम्बंधी रोग होता है, भँवर आते हैं, कानों में आवाज़ होती है, आँखों में अँधेरा छा जाता है, भूख मारी जाती है, अजीर्ण होता है, नींद नहीं आती है तथा बेचैनी होती है तथा शक्ति से बढ़कर मानसिक कसरत करने से मनुष्य के मगज़ में जुस्सा भर जाता है जिस से बेहोसी हो जाती है तथा कभी २ मृत्यु भी हो जाती है, मानसिक विपरीत परिश्रम करनेसे अर्थात् चिन्ता फिक्र आदि से अंग सन्तप्त हो जाते हैं,

---

इस के सिवाय विवाह के विषय में एक बात और भी अवश्य ध्यान में रखने योग्य है कि दोनों ओर से ऐसा कोई काम नहीं होना चाहिये कि जिस से आपस में प्रेम न रहे जैसे कि-बहुधा लोग बरातों में दाने घास और परो से आदि तनिक २ सी बातों में ऐसे झगड़े डाल देते हैं कि जिन से समधियों के मनों में अन्तर पड़ जाता है कि जिस के कारण लाख देने पर भी आनन्द नहीं आता है, यह बात बिलकुल सच है कि-प्रेम के विना सर्वस्व मिलने पर भी प्रसन्नता नहीं होती है अतः प्रीतिपूर्वक प्रत्येक कार्य को करना चाहिये कि जिस से दोनों ही तरफ प्रशंसा हो और खर्च भी व्यर्थ न हो, भला सोचने की बात है कि-दो सम्बंधियों में से जब एक की बुराई हुई तो क्या वह अपना सम्बंधी नहीं है ? क्या उस की बदनामी से अपनी बदनामी नहीं हुई ? सच पूछो तो जो लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते हैं उन सम्बंधियों पर धता भेजना उचित है, क्योंकि विवाह का समय आपस में आनन्द तथा प्रेमरस के बरसाने और मृदु मधुर वार्त्तालाप करने का है, किन्तु एक दूसरे के विपरीत लीला रच कर युद्ध का सामान इकट्ठा कर लेने का यह समय नहीं है, इस लिये जो लोग ऐसा करते हैं यह उन की सर्वथा मूर्खता की बात है, अतः दोनों को एक दूसरे की भलाई का तन मन से विचार कर कामों को कर के यश का लेना उचित है, दोनों सम्बंधियों को यह भी उचित है कि-जो मनुष्य मन से दोनों की धूर उड़ाना चाहते हैं तथा बाहर से बहुत सी लल्लो पत्तो करते हैं उन की वार्त्ता पर कदापि ध्यान न दें, क्योंकि इस संसार में दूसरे को खुशामद आदि के द्वारा निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलनेवाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु जो वचन सुनने में चाहे अप्रिय ही हो परन्तु वास्तव में कल्याण करनेवाला हो उस के बोलनेवाले तथा सुनने वाले पुरुष दुर्लभ हैं, देखो ! बहुधा गुप्त शत्रु तथा दुष्ट लोग सामने तो हां में हां मिलाते हैं और पीछे बुराई निकालकर दर्शाते हैं परन्तु सत्पुरुष तो मुँह पर प्रत्येक वस्तु के गुण और दोषों का वर्णन करते हैं और परोक्ष में प्रशंसा ही करते हैं, इन बातों को विचार कर दोनों समधियों को योग्य है कि-दोनों समक्ष में मिलकर प्रत्येक बात का स्वयं निर्णय कर जो दोनों के लिये लाभदायक हो उसी का अंगीकार करें जिस से दोनों आनन्द में रहें, क्योंकि यही विवाह और सम्बंध का मुख्य फल है ।

विवाह की रीति जो इस समय बिगड़ रही है वह प्रसङ्गवश पाठकों को संक्षेप से बतला दी गई, यदि इस का पूरे तौर से वर्णन कर इस के दोष और गुण बतलाये जावें तो इसी विषय का एक ग्रन्थ बन जावे परन्तु बुद्धिमान् पुरुष सङ्केतमात्र से ही तत्त्व को समझ लेते हैं अतः अतिसंक्षेप से ही इस विषय का वर्णन किया है, आशा है कि पाठक गण इतने ही कथन से अपने हिताहित का विचार कर अशुभ और अहित कुमार्ग का त्याग कर शुभ और हितकारक सन्मार्ग का अवलम्बन करेंगे ॥

शरीर में निर्बलता अपना घर कर लेती है, इसी प्रकार शक्ति से बाहर पढ़ने लिखने तथा बांचने से, वहुत विचार करने से और मन पर वहुत दवाव डालने से कामला, अजीर्ण, वादी और पागलपन आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

स्त्रियों को योग्य कसरत के न मिलने से-उनका शरीर फीका, नाताकत और रोगी रहता है, गरीव लोगों की स्त्रियों की अपेक्षा द्रव्यपात्र तथा ऐश आराम में संलग्न लोगों की स्त्रियां प्रायः सुख में अपने जीवन को व्यतीत करती हैं तथा विना परिश्रम किये दिनभर आलस्य में पड़ी रहती हैं, इस से वहुत हानि होती है, क्योंकि-जो स्त्रियां सदा वैठी रहा करती हैं उन के हाथ पांव ठंडे, चेहरा फीका, शरीर तपाया हुआ सा तथा दुर्वल, वादी से फूला हुआ मेद, नाड़ी निर्बल, पेट का फूलना, वदहज़मी, छाती में जलन, खट्टी डकार, हाथ पैरों में कांपनी, चसका और हिष्टीरिया आदि अनेक प्रकार के दुःखदायी रोग तथा ऋतुधर्मसम्वन्धी भी कई प्रकार के रोग होते हैं, परन्तु ये सव रोग उन्हीं स्त्रियों के होते हैं जो कि शरीर की पूरी २ कसरत नहीं करती हैं और भाग्यमानी के घमण्ड में आकर दिन रात पड़ी रहती हैं॥

५-**नींद**—आवश्यकता से अधिक देर तक नींद के लेने से रुधिर की गति ठीक रीति से नहीं होती है, इस से शरीर में चर्वीका भाग जम जाता है, पेट की दूद (तोंद) वाहर निकलती है, (इसे मेदवायु कहते हैं), कफ का जोर होता है, जिस से कफ के कई एक रोगों के होने की सम्भावना हो जाती है तथा आवश्यकता से थोड़ी देरतक (कम) नींद के लेने से शूल, ऊरुस्तम्भ और आलस्य आदि रोग हो जाते हैं।

वहुत से मनुष्य दिन में निद्रा लिया करते हैं तथा दिन में सोने को ऐश आराम समझते हैं परन्तु इस से परिणाम में हानि होती है, जैसे-क्रोध, मान, माया और लोभ आदि आत्मशत्रुओं (आत्मा के वैरियों) को थोड़ा सा भी अवकाश देने से वे अन्तःकरण पर अपना अधिकार अधिक २ जमाने लगते हैं और अन्त में उसे वश में कर लेते हैं उसी प्रकार दिन में सोने की आदत को भी थोड़ा सा अवकाश देने से वह भी भांग और अफीम आदि के व्यसन के समान चिपट जाती है, जिस का परिणाम यह होता है कि यदि किसी दिन कार्यवश दिन में सोना न वन सके तो शिर भारी हो जाता है, पैर टूटने लगते हैं और जमुहाइयां आने लगती हैं, इसी तरह यदि कभी विवश होकर काम में लग जाना पड़ता है तो अन्तःकरण सोलह आने के वदले आठ आने मात्र काम (आधा काम) करने योग्य हो जाता है, यद्यपि अत्यन्त निर्बल और रोगग्रस्त मनुष्य के लिये वैद्यकशास्त्र दिन में सोने की भी आज्ञा देता है परन्तु स्वस्थ (नीरोग) मनुष्य के लिये तो वह (वैद्यक शास्त्र) ऐसा करने (दिन में सोने) का सदा विरोधी है।

गर्मी की ऋतु में जब अधिक गर्मी पड़ती है तब शरीर का जलमय तत्त्व और बाहरी गर्मी शरीर के भीतरी भागों पर अपना प्रभाव दिखलाने लगती है उस समय दिन में भी थोड़ी देरतक सोना बुरा नहीं है परन्तु तब भी नियम से ही सोना चाहिये, बहुत से लोग उस समय में ग्यारह बजे से लेकर सायंकाल के पांच बजे तक सोते रहते हैं, सो यह वे अनुचित आचरण ही करते हैं, क्योंकि उस समय में भी दिन का अधिक सोना हानि ही करता है।

इस के सिवाय दिन में सोने से एक हानि और भी है और वह यह है कि–रात्रि में अवश्य ही सोकर विश्राम लेने की आवश्यकता है परन्तु वह दिनका सोना रात्रि की निद्रा में बाधा डालता है जिस से हानि होती है।

बहुत से मनुष्य भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि दिन में सोकर उठने के बाद उन का शरीर मिट्टीसा और कुछ ज्वर आजाने के समान निर्माल्य (कुह्मलाया हुआ सा) हो जाता है।

दिन में अच्छीतरह सोकर उठनेवाले मनुष्य के मुख की मुद्रा को देखकर लोग उस से प्रश्न करते हैं कि क्या आज आप की तबीयत अच्छी नहीं है? परन्तु उत्तर यही मिलता है कि–नहीं, तबीयत तो अच्छी है परन्तु सोकर उठा हूँ, इस से आंखें लाल दिखलाई देती होंगी, अब कहिये कि दिन का सोना सुखकर हुआ कि हानिकर?

दिन में सोने से शरीर के सब धातु खास कर विकृत और विषम बन जाते हैं तथा शरीर के दूसरे भी कई भीतरी भागों में विकार उत्पन्न होता है।

कुछ मनुष्यों का यह कथन है कि–हम को सुख मिलता है इसलिये हम दिन में सोते हैं, परन्तु उन की यह दलील चलने योग्य नहीं है, क्योंकि मुख्य बात तो यह है कि उन के ऊपर आलस्य सवार होता है और उन्हें लेटते ही निद्रा आ जाती है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि दिन की निद्रा स्वाभाविक निद्रा नहीं है, किन्तु वैकारिक अर्थात् विकार को उत्पन्न करनेवाली है, देखो! दिन में सोने वालों में से मनुष्यों का अधिक भाग इस बात को स्वीकार करेगा कि दिन में सोने से उन्हें बहुत से विकृत स्वप्न आते हैं, कहिये इस से क्या सिद्ध होता है? इसलिये बुद्धिमानों को सदा दिन में सोने के व्यसन को अपने पीछे नहीं लगाना चाहिये।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–जिस प्रकार दिन में सोने से हानि होती है उसी प्रकार रात्रि में जागना भी हानिकर होता है, परन्तु उपवास के अन्त में रात्रि का जागना हानि नहीं करता है, किन्तु नियमित आहार कर के जागना हानि करनेवाला है, रात्रि में जागने से सब से प्रथम अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है, भला सोचने की बात है कि–साधारण और अनुकूल आहार ही जब रात्रि में जागने से नहीं पचता है तो अनुकूलता

पर ध्यान देने के बदले केवल स्वाद ही पर चलनेवाले और मात्रा के अनुसार खाने के बदले खूब डाट कर ठूंसनेवाले मनुष्य यदि रात्रि में जागने से अजीर्ण रोग में फँस जांय तो इस में आश्चर्य ही क्या है ?

जो लोग दिन में सोकर रात्रि को वारह बजेतक जागते रहते हैं तथा जो दिन में तो इधर उधर फिरते रहते हैं और रात्रि में काम करके बारह बजेतक जागते हैं, वे जानबूझ कर अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारते हैं और अपनी आयु को घटाते हैं, किन्तु जो रात्रि में सुख से सोने वाले हैं वे ही दीर्घजीवी गिने जा सकते हैं, देखो ! पहिले यहां के लोगों में ऐसी अच्छी प्रथा प्रचलित थी कि प्रातःकाल उठकर अपने स्नेहियों से कुशल प्रश्न पूछते समय यही प्रश्न किया जाता था कि रात्रि सुखनिद्रा में व्यतीत हुई ? इस शिष्टाचार से क्या सिद्ध होता है यही कि लोग रात्रि में सुख से निद्रा लेते हैं वे ही दीर्घजीवी होते हैं ।

निद्रा को रोकने से शिर में दर्द हो जाता है, जमुहाइयां आने लगती हैं, शरीर टूटने लगता है, काम में अरुचि होती है और आंखें भारी हो जाती हैं ।

देखो ! निद्रा का योग्य समय रात्रि है, इसलिये जो पुरुष रात्रि में निद्रा नहीं लेता है वह मानो अपने जीवन के एक मुख्य पाये को निर्बल करता है, इस में कुछ भी सन्देह नहीं है ॥

६–**वस्त्र**—देश और काल के अनुसार वस्त्रों का पहनना उचित होता है, क्योंकि वह भी शरीररक्षा का एक उत्तम साधन है, परन्तु बड़े ही शोक का विषय है कि–वर्तमान समय में बहुत ही कम लोग इन बातों पर ध्यान देते हैं अर्थात् सर्वसाधारण लोग इन बातों पर जरा भी ध्यान नहीं देते हैं और न वस्त्रों के पहरने के हानिलाभों को सोचते हैं किन्तु जो जिस के मन में आता है वह उसी को पहनता है ।

वस्त्र पहरने में यह भी देखा जाता है कि लोग देश काल और प्रकृति आदि का कुछ भी विचार न करके एक दूसरे की देखा देखी वस्त्र पहरने लगते हैं, जैसे देखो ! आज कल इस देश में काला कपड़ा बहुत पहिना जाता है परन्तु इस का पहनना देश और काल दोनों के विपरीत है, देखिये ! यह देश उष्ण है और काली वस्तु में गर्मी अधिक घुस जाती है तथा वह बहुत देरतक बनी रहती है, इस पर भी यह खूबी कि ग्रीष्म ऋतु में भी काले वस्त्र को पहनते हैं, उन का ऐसा करना मानो दुःखों को आप ही बुलाना है, क्योंकि सर्वदा काले वस्त्र का पहरना इस उष्णता प्रधान देश के वासियों को अयोग्य और हानिकारक है, इस के पहरने से उन के रस रक्त और वीर्य में गर्मी अधिक पहुँचती है, जिस से स्वच्छ और अनुकूल भोजन के खाने पर भी धातु की क्षीणता और

१–नाटक के देखने के शौकीन लोगों को भी आयु को ही घटानेवाले जानो ॥

रक्तविकार आदि रोग उन्हें घेरे रहते हैं, देखो ! इस समय इस देश में बहुत ही कम पुरुष ऐसे निकलेंगे कि जिन को धातुसम्बन्धी किसी प्रकार की बीमारी नहीं है नहीं तो जिधर जाइये उधर यही रोग फैला हुआ दीख पड़ता है, अतः सब मनुष्यों को अपने प्राचीन पुरुषोंके सदृश वैद्यक शास्त्र के कथनानुसार तथा ऋतु और देश के अनुकूल श्वेताम्बर (सफेद वस्त्र) पीताम्बर (पीले वस्त्र) और रक्ताम्बर (लाल वस्त्र) आदि भांति २ के वस्त्र पहरने चाहियें ।

इस के सिवाय यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–वस्त्र को मैला नहीं रखना चाहिये, बहुधा देखा जाता है कि–लोग बहुमूल्य वस्त्रों को तो पहनते हैं परन्तु उन की स्वच्छता पर ध्यान नहीं देते हैं, इस कारण उन को शरीर की स्वच्छता से भी कुछ लाभ नहीं होता है, अतः उचित यही है कि अपनी शक्ति के अनुसार पहना हुआ कपड़ा चाहे अधिक मूल्य का हो चाहे कम मूल्य का हो उस को आठवें दिन उतार कर दूसरा स्वच्छ वस्त्र पहना जावे कि जिससे स्वच्छताजन्य लाभ प्राप्त हो, क्योंकि मलीन कपड़े से दुर्गन्ध निकलता है जिस से आरोग्यता में हानि होती है, दूसरे पुरुष भी ऐसे पुरुषों से घृणा करते हैं तथा उन की सर्व सज्जनों में निन्दा होती है ।

निर्मल वस्त्रों के धारण करने से कान्ति यश और आयु की वृद्धि होती है, अलक्ष्मी का नाश होता है, चित्त में हर्ष रहता है तथा मनुष्य श्रीमानों की सभा में जाने के योग्य होता है ।

तंग वस्त्र भी नहीं पहरना चाहिये क्योंकि तंग वस्त्र के पहरने से छाती तथा कलेजे (लीवर) पर दवाव पड़ने से ये अवयव अपने काम को ठीक रीति से नहीं करते हैं, इस से रुधिर की गति बन्द हो जाती हैं और रुधिर की गति के बन्द होने से श्वास की नली का तथा कलेजे का रोग उत्पन्न होता है ।

इस के अतिरिक्त अति सुर्ख और भीगे हुए कपड़ों को भी नहीं पहरना चाहिये, क्यों कि इस प्रकार के वस्त्र के पहरने से कई प्रकार की हानि होती है ।

इन सब बातों के उपरान्त यह भी आवश्यक है कि अपने देश के वस्त्रों को सब कामों में लाना योग्य है, जिस से यहां के शिल्प में उन्नति हो और यहां का रुपया भी बाहर को न जावे, देखो ! हमारे भारत देश में भी बड़े २ उत्तम और दृढ़ वस्त्र बनते हैं, यदि सम्पूर्ण देशभाइयों की इस ओर दृष्टि हो जावे तो फिर देखिये भारत में कैसा धन बढ़ता है, जो सर्व सुखों की जड़ है ॥

७–विहार[1]—विहार शब्द से इस स्थानपर स्त्री पुरुषों के खानगी (प्राइवेट) व्यापार (भोग) का मुख्यतया समावेश समझना चाहिये, यद्यपि विहार के दूसरे भी

१–विहार अर्थात् स्त्रीविहार को अंग्रेजी में "कोहेबिस्टेशन" कहते हैं ॥

अनेक विषय हैं परन्तु यहां पर तो ऊपर कहे हुए विषय का ही सम्बंध है, स्त्री विहा मेंर इन बातों का विचार रखना अतिआवश्यक है कि वयोविचार, रूपगुणविचार, कालविचार, शारीरिक स्थिति, मानसिक स्थिति, पवित्रता और एकपत्नीव्रत, अब इन के विषय में संक्षेप से क्रम से वर्णन किया जाता है:—

१–**वयोविचार**–इस विषय में मुख्य बात यही है कि–लगभग समान अवस्थावाले स्त्रीपुरुषों का सम्बंध होना चाहिये, अथवा लड़की से लड़के की अवस्था ड्योढ़ी होनी चाहिये, बालविवाह की कुचाल बन्द होनी चाहिये, जबतक यह कुचाल बंद न हो तबतक समझदार मातापिता को अपनी पुत्रियों को १६ वर्ष की अवस्था के होने के पहिले श्वसुरगृह (सासरे) को नहीं भेजना चाहिये।

समान अवस्था का न होना स्त्रीपुरुष के विराग और अप्रीति का कारण होता है और विराग ही इस संसार के व्यापार में शारीरिक अनीति "कार्पोरियलरिग्युलेरिटी" को जन्म देता है।

२० से २५ वर्षतक का लड़का और १६ वर्ष की लड़की संसारधर्म में प्रवृत्त होने के लिये योग्य गिने जाते हैं, इस से जितनी अवस्था कम हो उतना ही शारीरिक नीति "कार्पोरियलरिग्युलेरिटी" का भंग होना समझना चाहिये।

संसारधर्म के लिये पुरुष के साथ योग होने में लड़की की १२ वर्ष की अवस्था बहुत न्यून है, यद्यपि हानिविशेष का विचार कर सर्कार ने अपने नियम में १२ वर्ष की अवस्था नियत की है परन्तु उस सीमा को क्रम २ से बढ़ा कर १६ वर्षतक लाकर नियत करानी चाहिये।

२–**रूपगुणविचार**–रूप तथा गुण की असमानता भी अवस्था की असमानता के समान खराबी करती है, क्योंकि इन की समानता के विना शारीरिक धर्म "कार्पोरियल ला" के पालन में रस (आनन्द) नहीं उपजता है तथा उस की शारीरिक नीति "कार्पोरियलरिग्युलेरिटी" के अर्थात् शारीरिक कर्तव्यों के उल्लङ्घन का कारण उत्पन्न होता है।

अवस्था, रूप और गुण की योग्यता और समानता का विचार किये विना जो माता पिता अपने सन्तानों के बन्धन लगा देते हैं उस से किसी न किसी प्रकार से शारीरिक धर्म की हानि होती है, जिस का परिणाम ब्रह्मचर्य का भंग अर्थात् व्यभिचार है।

३–**कालविचार**–वैद्यकशास्त्र की आज्ञा है कि–"ऋतौ भार्यामुपेयात्" अर्थात् ऋतुकाल[1] में भार्या के पास जाना चाहिये, क्योंकि स्त्री के गर्भ रहने का काल यही है, ऋतुकाल के दिवसों में से दोनों को जो दिन अनुकूल हो ऐसा एक दिन पसन्द करके

१–जिस दिन रजस्वला स्त्री को ऋतुस्राव हो उस दिन से लेकर १६ रात्रितक समय को ऋतु अथवा ऋतुकाल कहते हैं, यह पहिले ही लिख चुके हैं॥

स्त्री के पास जाना चाहिये, किन्तु ऋतुकाल के विना वारंवार नहीं जाना चाहिये, क्योंकि ऋतुकाल के वीत जाने पर अर्थात् ऋतुस्राव से १६ दिन वीतने के बाद जैसे दिन के अस्त होने से कमल संकुचित होकर बंद हो जाते हैं उसी प्रकार स्त्री का गर्भाशय संकुचित होकर उस का मुख बंद हो जाता है, इस लिये ऋतुकाल के पीछे गर्भाधान के हेतु से संयोग करना अत्यन्त निरर्थक है, क्योंकि उस समय में गर्भाधान हो ही नहीं सकता है किन्तु अमूल्य वीर्य ही निष्फल जाता है जो कि (वीर्य ही) शरीर में अद्भुत शक्ति है, प्रायः यह अनुमान किया गया है कि एक समय के वीर्यपात में २॥ तोले वीर्य के बाहर गिरने का सम्भव होता है, यद्यपि क्षीणवीर्य और विषयी पुरुषों में वीर्य की कमी होने से उन के शरीर में से इतने वीर्य के गिरने का सम्भव नहीं होता है तथापि जो पुरुष वीर्य का यथोचित रक्षण करते हैं और नियमित रीति से ही वीर्य का उपयोग करते हैं उन के शरीर में से एक समय के समागम में २॥ तोले वीर्य बाहर गिरता है, अब यह विचारणीय है कि यह २॥ तोले वीर्य कितनी खुराक में से और कितने दिनों में बनता होगा, इस का भी विद्वानों ने हिसाब निकाला है और वह यह है कि ८० रतल खुराक में से २ रतल रुधिर बनता है और २ रतल रुधिर में से २॥ तोला वीर्य बनता है, इस से स्पष्ट है कि–दो ? मन खुराक जितने समय में खाई जावे उतने समय में २॥ रुपये भर नया वीर्य बनता है, इस सर्व परिगणन का सार (मतलब) यही है कि दो मन खाई हुई खुराक का सत्व एक समय के स्त्री समागम में निकल जाता है, अब देखो! यदि तनदुरुस्त मनुष्य प्रतिदिन सामान्यतया १॥ या २ रतल की खुराक खावे तो ४० दिन में ८० रतल खुराक खा सकता है, इस हिसाब से यह सिद्ध होता है कि–यदि ४० दिवस में एक वार वीर्य का व्यय हो तबतक तो हिसाब बराबर रह सकता है परन्तु यदि उक्त समय (४० दिवस) से पूर्व अर्थात् थोड़े २ समय में वीर्य का खर्च हो तो अन्त में शरीर का क्षय अर्थात् हानि होने में कोई सन्देह ही नहीं है, परन्तु बड़े ही शोक का स्थान है कि जिस तरह लोग द्रव्यसम्बंधी हिसाब रखते हैं तथा अत्यन्त कृपणता (कञ्जूसी) करते हैं और द्रव्य का संग्रह करते हैं उस प्रकार शरीर में स्थित वीर्यरूप सर्वोत्तम द्रव्य का कोई ही लोग हिसाब रखते हैं, देखो! द्रव्यसम्बन्धी स्थिति में तो गृहस्थों में से बहुत ही थोड़े दिवाला निकालते हैं परन्तु वीर्यसम्बंधी व्यवहार में तो पुरुषों का विशेष भाग दिवालियों का धन्धा करता है अर्थात् आय की अपेक्षा व्यय विशेष करते हैं और अन्त में युवावस्था में ही निर्बल बन कर पुरुषत्व (पुरुषार्थ) से हीन हो बैठते हैं।

ऊपर जो ऋतुकाल का समय ऋतुस्राव के दिन से सोलह रात्रि लिख चुके हैं उन में से जितने दिनतक रक्तस्राव होता रहे उतने दिन छोड़ देने चाहियें अर्थात् ऋतुस्राव के

दिन ऋतुकाल में नहीं गिनने चाहियें, ऋतुस्राव के प्रायः तीन दिन गिने जाते हैं अर्थात् नीरोग स्त्री के तीन दिनतक ऋतुस्राव रहता है, चौथे दिन स्नान करके रजस्वला शुद्ध हो जाती है, ये (ऋतुस्राव के) दिन स्त्रीसंग में निषिद्ध हैं अर्थात् ऋतुस्राव के दिनों में स्त्रीसंग कदापि नहीं करना चाहिये, जो पुरुष मन तथा इन्द्रियों को वश में न रख कर रजस्वला स्त्री से संगम करता है (जिस के रक्तस्राव होता हो उस स्त्री से समागम करता है) तो उस की दृष्टि आयु तथा तेज की हानि होती है और अधर्म की प्राप्ति होती है, इस के सिवाय रजस्वला से समागम करने से गर्भस्थिति की संभावना नहीं होती है अर्थात् प्रथम तो उस समय में समागम करने से गर्भ ही नहीं रहता है यदि कदाचित् गर्भ रहे भी तो प्रथम के दो दिन में जो गर्भ रहता है वह नहीं जीता है और तीसरे दिन जो गर्भ रहता है वह अल्पायु तथा विकृत अंगवाला होता है।

रजोदर्शन के दिन से लेकर सोलह रात्रि पर्यन्त रात्रियों में चौथी रात्रि से लेकर सोलहवीं रात्रिपर्यन्त ऋतुकाल अर्थात् गर्भाधान का जो समय है उस में भी सम रात्रियां प्रधान हैं अर्थात् चौथी, छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं तथा सोलहवीं रात्रियां उत्तम हैं और इन में भी क्रम से उत्तरोत्तर रात्रियां उत्तम गिनी जाती हैं।

पूर्णमासी, अमावस्या, प्रातःकाल, सन्ध्याकाल, पिछली रात्रि, मध्य रात्रि और मध्याह्नकाल में स्त्रीसंयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस से जीवन का क्षय होता है।

गर्भवती से पुरुष को कभी संयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि गर्भावस्था में जिस चेष्टा के अनुसार व्यापार किया जाता है उसी चेष्टा के गुणों से युक्त बालक उत्पन्न होता है और बड़ा होने पर वह बालक विषयी और व्यभिचारी होता है।

विहार के विषय में ऋतु का भी विचार करना आवश्यक है अर्थात् जो ऋतु विहार के लिये योग्य हो उसी में विहार करना चाहिये, विहार के लिये गर्मी की ऋतु बिलकुल प्रतिकूल है तथा शीत ऋतु में पौष और माघ, ये दो महीने विशेष अनुकूल हैं परन्तु किसी भी ऋतु में विहार का अतियोग (अत्यन्त सेवन) तो परिणाम में हानि ही करता है, यह बात अवश्य लक्ष्य (ध्यान) में रखनी चाहिये।

४–**शारीरिक स्थिति**—जिस समय में स्त्री वा पुरुष के शरीर में कोई व्याधि (रोग), त्रुटि (कसर) अथवा बेचैनी हो उस में विहार का त्याग कर देना चाहिये अर्थात् स्त्री की रोगावस्था आदि में पुरुष को और पुरुष की रोगावस्था आदि में स्त्री को अपने मन को वश में रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, किन्तु ऐसे समय में तो विहारसम्बन्धी विचार भी मन में नहीं लाना चाहिये, क्योंकि रोगावस्था आदि में विहार करने से अवश्य शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है तथा यदि कदाचित् ऐसे समय में गर्भस्थिति हो जावे तो स्त्री और गर्भ दोनों का जीव जोखम में पड़ जाता है।

वहुत से रोगों में प्रायः विहार (विषयभोग) की इच्छा कम होने के वदले अधिक हो जाती है, जैसे-क्षयरोगी को वारंवार विहार की इच्छा हुआ करती है, यह इच्छा स्वाभाविक नहीं है किंतु यह (उक्त) रोग ही इस इच्छा को जन्म देता है इस लिये क्षय-रोगी को सावधानी रखनी चाहिये।

विहार के विषय में परस्पर की शारीरिक शक्ति का भी विचार करना चाहिये, क्योंकि यह वहुत ही आवश्यक वात है, स्त्री पुरुष को इस विषय में लम्पट वन कर केवल स्वार्थी नहीं होना चाहिये, तात्पर्य यह है कि पुरुष को स्त्री की शक्ति का और स्त्री को पुरुष की शक्ति का विचार करना चाहिये, यदि स्त्री पुरुष के जोड़े में एक तो विशेष वलवान् हो और दूसरा विशेष निर्वल हो तो यह अलवत्तह खरावी का मूल है, परन्तु यदि भाग्ययोग से ऐसा ही जोड़ा वँध जावे तो पीछे परस्पर के हित का विचार क्यों नहीं करना चाहिये अर्थात् अवश्य करना चाहिये।

वहुत से विचाररहित मूर्ख पुरुष विहार के विषय में स्त्रीजातिपर अपने हक़ का दावा करते हैं और ऐसे विचार के द्वारा दावे का अनुचित उपयोग कर के स्त्री को लाचार कर परवश करते हैं, सो यह अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि देखो! स्त्री पुरुष का परस्पर व्यापार एक शारीरिक धर्म है और धर्म में एकतरफी हक़ का सवाल नहीं रहता है किन्तु दोनों वरावर हक़दार हैं और परस्पर के सुख के लिये दोनों दम्पती धर्म में वँधे हुए हैं इस लिये स्त्री और पुरुष को परस्पर की शक्ति तथा अनुकूलता का अवश्य विचार करना चाहिये।

५–मानसिक स्थिति—दोनों में से यदि किसी का मन चिन्ता, श्रम, शोक, क्रोध और भय से व्याकुल हो रहा हो तो ऐसे प्रतिकूल समय में विहार सम्वन्धी कोई भी चेष्टा नहीं करनी चाहिये, परन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि–वर्त्तमान समय में स्त्री पुरुष इस विषय का वहुत ही कम विचार करते हैं।

इच्छा के विना वलात्कार से किया हुआ कर्म सन्तोषदायक नहीं होता है और असंतोष शारीरिक तथा मानसिक विकार का कारण होता है, इस लिये इच्छा के विना जो विहार किया जाता है वह निष्फल होता है और उलटा शरीर को विगाड़ता है, इस लिये इस वात को दोनों पक्षों में ध्यान में रखना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि स्त्री की इच्छा के विना स्त्रीगमन करने में और हाथ से वीर्यपात करने में विलकुल फ़र्क़ नहीं है, इस लिये हाथ के द्वारा वीर्यपात की क्रिया को भी भूलकर भी नहीं करना चाहिये, इच्छा के विना संयोग होने से काम की शान्ति नहीं होती है किन्तु उलटी काम की वृद्धि ही

१–इस निकृष्ट व्यापार के द्वारा अनेक हानियां होती हैं जिन का कुछ वर्णन आगे पन्द्रहवें प्रकरण में सुजाख़ रोग के वर्णन में किया जावेगा॥

होती है और ऐसा होने से यह बड़ी हानि होती है कि स्त्री का रज जिस समय पक्व होना चाहिये उस की अपेक्षा शीघ्र ही अर्धपक्व (अधपका) होकर गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाता है और वहां पुरुष के वीर्य के प्रविष्ट होने से कच्चा गर्भ बँध जाता है।

६-**पवित्रता**—विहार के विषय में पवित्रता अथवा शारीरिक शुद्धि का विचार रखना भी बहुत ही आवश्यक बात है, क्योंकि स्त्री पुरुषों के गुप्त अंगों की व्याधि प्रायः स्थानिक अपवित्रता और मलीनता से ही उत्पन्न होती है, इतना ही नहीं किन्तु यह स्थानिक मलीनता इन्द्रियों को विकारी (विकार से युक्त) बनाती है, परन्तु बड़े ही सन्ताप की बात है कि–इस प्रकार की बातों की तरफ लोगों का बहुत ही कम ध्यान देखा जाता है, इसी का जो कुछ परिणाम हो रहा है वह प्रत्यक्ष ही दीख रहा है कि–चांदी, सुज़ाख और गर्मी आदि अनेक दुष्ट और मलीन व्याधियों से शायद कोई ही भाग्यवान् जोड़ा बचा हुआ देखा जाता है, कहिये यह कुछ कम खेद की बात है ?

शरीर के अवयवों पर मैल जम कर चमड़ी को चञ्चल कर देता है और अज्ञान मनुष्य इस चञ्चलता का खोटा खयाल और खोटा उपयोग करने को उस्कराते हैं, इस लिये स्त्री पुरुषों को अपने शरीर के अवयवों को निरन्तर पवित्र और शुद्ध रखने के लिये सदा यत्न करना चाहिये, यद्यपि ऊपरी विचार से यह बात साधारण सी प्रतीत होती है परन्तु परिणाम का विचार करने से यह बड़े महत्त्वकी बात समझी जा सकती है, क्योंकि पवित्रता शारीरिक धर्म का एक मुख्य सद्गुण "गुडक्वालिटी" है, इसी लिये बहुत से धर्मवालों ने पवित्रता को अपने २ धर्म में मिला कर कठिन नियमों को नियत किया है, इस का गम्भीर वा मुख्य हेतु इस के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं हो सकता है कि पवित्रता ही सब सद्गुणों और सद्धर्मों का मूल है।

७-**एकपत्नीव्रत**—अपनी विवाहिता पत्नी के साथ ही सम्बन्ध रखने को एकपत्नीव्रत कहते हैं, विचार कर देखा जावे तो यह (एकपत्नीव्रत) भी ब्रह्मचर्य का एक मुख्य अंग और गृहस्थाश्रम का प्रधान भूषण है, जो पुरुष एकपत्नीव्रत का पालन करते हैं वे निस्सन्देह ब्रह्मचारी हैं और जो स्त्रियां एकपतिव्रत का पालन करती हैं वे निस्सन्देह ब्रह्मचारिणी हैं, स्त्री के लिये एक ही पुरुष का और पुरुष के लिये एक ही स्त्री का होना जगत् में सब से बड़ी नीति है और इसी पर शारीरिक और व्यावहारिक आदि सर्व प्रकार की उन्नति निर्भर है।

इस नियम के उल्लंघन करने से अर्थात् व्यभिचार से न केवल व्यावहारिक नीति का ही भंग होता है किन्तु शारीरिक नीति और आरोग्यता की भी हानि होती है इस लिये इस महाहानिकारक विषय को अवश्य छोड़ना चाहिये, इस विषय का यदि अच्छे प्रकार

से वर्णन किया जावे तो एक ग्रन्थ वन सकता है, इस लिये संक्षेप से ही पाठकों को इस विषय को दर्शाते हैं:—

यदि विवाहित स्त्री पुरुप ऊपर लिखी हुई वातों को लक्ष्य में रख कर उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करें तो वे नीरोगशरीरवाले और दीर्घायु हो सकते हैं तथा सद्गुणों से युक्त सन्तति को भी उत्पन्न कर सकते हैं और विचार कर देखा जावे तो ब्रह्मचर्य के पालन करने का प्रयोजन भी यही है, आहार विहार में नियमित और अनुकूलतापूर्वक रहना एक सर्वोत्तम और परमावश्यक नियम है तथा इसी नियम के पालन करने का नाम ब्रह्मचर्य है, ब्रह्मचर्य के विपय में एक विद्वान् अंग्रेज ने कुछ वर्णन किया है उस का निदर्शन करना आवश्यक समझ कर उस का संक्षिप्त अनुवाद यहां लिखते हैं, उक्त विद्वान् का कथन है कि–"यह निश्चित बात है कि–ब्रह्मचर्यव्रत के नियम की अज्ञानता वा उस के उल्लंघन के कारण वीर्य का अनुचित उपयोग होने से खोटे परिणाम निकलते हैं, क्योंकि वहुत से लोग इस नियम को जानते भी हैं तो भी जान बूझ कर उलटी रीति से वर्त्ताव करते हैं किन्तु वहुत से लोग तो इस नियम से अत्यन्त अनभिज्ञ ही देखे जाते हैं, मनुष्य के तन और मन के साथ में सम्बन्ध रखनेवाला तथा उस के कल्याण सुख और जीवन के जय का करनेवाला ब्रह्मचर्य व्रत ही है, इस लिये इस विषय में जो कुछ विचार किया जावे अथवा दलील दी जावे वह वास्तविक है, ब्रह्मचर्यव्रतधारी अथवा ब्रह्मचारी वही गिना जा सकता है जो कि शरीरवल और सुन्दर स्त्री आदि सर्व सामग्री के उपस्थित होने पर भी शास्त्रोक्त ज्ञान से अपने मन को वश में रखता है, इच्छापूर्वक स्त्रीसंग से अत्यन्त अलग रहने के लिये जो दृढ़ निश्चय किया जाता है उसे प्रयोग (अमल) में लाने के लिये इच्छापूर्वक स्त्रीसंग नहीं करना चाहिये, किन्तु ऋतुदान के समय प्रतिज्ञा के अनुसार स्त्रीसंग करना उचित है, इस नियम के पालन करनेवाले गृहस्थ को ब्रह्मचारी कहते हैं, इसलिये यही परम उचित कर्तव्य है कि–प्रजा (सन्तान) के उत्पन्न करने के लिये ही स्त्रीसंग करना ठीक है, अन्यथा नहीं ॥

८–मलीनता—इस में सन्देह नहीं है कि मलीनता वहुत से रोगों को उत्पन्न करती है, क्योंकि घर के भीतर की तथा आसपास की मलीनता खराव हवा को उत्पन्न करती है और उस हवा से अनेक रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना होती है, देखो ! शरीर की मलीनता से चमड़ी के वहुत से रोग हो जाते हैं, जैसे–रूखापन, खुजली और गुमड़े आदि, इस के सिवाय मैल से चमड़ी के छेद रुक जाते हैं, छेदों के रुक जाने से पसीने का निकलना बंद हो जाता है, पसीने के निकलने के बन्द होने से रुधिर ठीक तौर से शुद्ध नहीं हो सकता है और रुधिर के ठीक तौर से शुद्ध न होने से अनेक रोग हो जाते हैं ॥

९-**व्यसन**—व्यसनों के सेवन से अनेक महाकष्टकारी रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिन का कुछ वर्णन तो पहिले कर चुके हैं तथा कुछ यहां भी करते हैं—मद्य, ताड़ी, अफीम, भांग, तमाखू, तवाखीर, चाय और काफी आदि व्यसनों की बहुत सी चीज़ें हैं, यद्यपि इन चीजों में से कई एक चीज़ें रोगपर दवा के तरीके से योग्य रीति से वर्त्तने से फायदा करती हैं परन्तु ये सब ही चीजें यदि थोड़े दिनोंतक लगातार उपयोग में लाई जावे तो इन का व्यसन पड़ जाता है और जब ये चीजें व्यसन के तरीके से नित्य ही प्रयोग में लाई जाती हैं तब इन से पृथक् २ अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे—मद्य के व्यसन से रसविकार, वदहजमी, वमन (उलटी), दस्त की कब्जी, खट्टापन, मन्दाग्नि और मगज की खरावी होती है, आलस्य, दीर्घसूत्रता (टिलड़पन), असाहस (हिम्मत हारना), भीरुता (डरपोकपन) और निर्बुद्धिता (बुद्धि का नाश) आदि मद्य पीनेवाले के खास लक्षण हैं, मद्य से फेफसे की भयंकर बीमारी, यकृत् अर्थात् लीवर का संकोच, यकृत् का पकना, क्षय, मधुप्रमेह और गुर्दे का विकार आदि अनेक बड़े २ भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं, मद्य का पीना शरीर में विषपान के समान असर करता है तथा बुद्धि को विगाड़ता है।

ताड़ी के व्यसन से पेशाव के गुर्दे का रोग, मन्दाग्नि, अफरा और दस्त आदि रोग होते हैं तथा ताड़ी का पीना बुद्धि को भ्रष्ट करता है।

अफीम के व्यसन से आलस्य, बुद्धि की न्यूनता और क्षिप्तचित्तता (पागलपन) आदि उत्पन्न होते हैं, विशेष क्या लिखें इस व्यसन से शरीर विलकुल नष्ट भ्रष्ट (वरवाद) हो जाता है।

भांग के व्यसन से बुद्धि तथा चतुराई का नाश होता है, मनुष्यत्व (आदमियत) का नाश होकर पशुत्व (पशुपन अर्थात् हैवानी) प्राप्त होता है, स्मरणशक्ति घट जाती है, विचारशक्ति का नामतक नहीं रहता है, चक्कर आता है, मन खराब होता है तथा आयु घट जाती है।

तमाखू के व्यसन से अर्थात् तमाखू के चावने से-पाचन शक्ति मन्द पड़ती है, वदहजमी रहती है, इस के खाने से पहिले तो कुछ चेतनता सी होती है परन्तु पीछे सुस्ती आती है, हाथ पैर ढीले हो जाते हैं, मन की चञ्चलता तथा चेतनता कम हो जाती है तथा विचारशक्ति भी कम हो जाती है, इस के अधिक खाने से विष के समान असर होता है अर्थात् जीवन को जोखम में गिरना पड़ता है।

तमाखू के पीने से—छाती में दाह, श्वास तथा कफ का रोग उत्पन्न होता है।

१—हां एक दूध इस का मित्र है, यदि शरीर के अनुकूल हो तो तैयार कर देता है॥

तमाखू के सूंघने से–मलीनता होती है, कपड़े खराव होते हैं तथा अनेक प्रकार के रोग भी उत्पन्न होते हैं।

चाय और काफी के व्यसन से भी नशे के पीने के समान हानि होती है, क्योंकि इस में भी थोड़ा २ नशा होता है, यह अधिक गर्म और रूक्ष होने के कारण रूखी और कम खुराक खानेवाले गरीव लोगों को वहुत हानि पहुँचाती है तथा इस के सेवन से मगज और उस के ज्ञानतन्तु निर्वल हो जाते हैं ॥

१०–**विषयोग**—पहिले लिख चुके हैं कि यदि अभक्ष्य वस्तु खाने पीने में आ जावे अथवा परस्पर (एक से दूसरा) विरुद्ध पदार्थ खाने में आ जावे तो वह शरीर में विष के समान हानि करता है, इस के सिवाय जो अनेक प्रकार के विष हैं वे भी पेट में जाकर हानि करते हैं, एक प्रकार की विषैली (विषभरी) हवा भी होती है जिस से वुखार, पाण्डु और मरोड़ा आदि रोग होते हैं।

शीसे और तांवे के पेट में जाने से चूंक हो जाती है, वत्सनाग (सिंगिया) के पेट में जाने से मूर्च्छा तथा दाह होता है और सोमल तथा रसकपूर के पेट में जाने से दस्त के वन्धन खुल जाते हैं, तात्पर्य यह है कि सव ही प्रकार के विष पेट में जाकर हानि ही करते हैं ॥

११–**रसविकार**–दस्त, पेशाव, पसीना, थूक और पित्त आदि पदार्थ रुधिर से उत्पन्न होते हैं तथा इन सवों को शरीर का रस कहते हैं, यह रस जव आवश्यकता से न्यून वा अधिक होकर शरीर में रहता है तव हानि करता है, जैसे–यदि पसीना न निकले तो भी हानि करता है और यदि आवश्यकता से अधिक निकले तो भी हानि करता है, इसी तरह दस्त आदि के विषय में भी समझ लेना चाहिये, यदि पेशाव कम हो तो पेशाव के रास्ते से जो हानिकारक अंश वाहर निकलना चाहिये वह निकल नहीं सकता है तथा खून में जमा हो जाता है और अनेक हानियों को करता है, यदि पेशाव का होना विलकुल ही वन्द हो जावे तो प्राणी शीघ्र ही मर जाता है, देखो ! हैजा और मरी रोग में प्रायः पेशाव रुक कर ही मृत्यु होती है, वहुत पसीना, वहुत दिनों का अतीसार, मस्सा, नाक से गिरता हुआ खून तथा स्त्रियों का प्रदर इत्यादि वहते हुए प्रवाह को एकदम वन्द कर देने से हानि होती है, पित्त के वढ़ने से पित्त के रोग होते हैं और खट्टे रस के सञ्चय से सांधों में दर्द हो जाता है ॥

१२–**जीव**—जीव अर्थात् कृमि वा जन्तु से कण्ठमाल, वात रक्त, वमन, मृगी, अतीसार तथा चमड़ी के अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ॥

१–इस का भी लोगों को व्यसन ही पड़ जाता है ॥

१३–चेप—चेपीहवा से अथवा दूसरे मनुष्य के स्पर्श से बहुत सी बीमारियां होती हैं, जैसे–उपदंश (गर्मी का रोग), वातरक्त, गलितकुष्ठ, प्रमेह, सुज़ाख, प्रदर, टाईफाइड तथा टाईफस नामक ज्वर (शील ओरी), हैजा, ब्युव्योनिक प्लेग (अग्निरोहणी) और विस्फोटक आदि, इन के सिवाय और भी खाज दाद आदि रोग चेप से होते हैं ॥

१४–ठंढ—शरीर की गर्मी जब कम होती है तब उस को ठंढ कहते हैं, बहुत ठंढ से अर्थात् शर्दी से ज्वर, मरोड़ा, चूंक, मूत्रपिण्डका शोथ, सन्धिवात अर्थात् गँठिया, मधुप्रमेह, हृदयरोग, फेफसे का शोथ, दम, क्षय और खांसी आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥

१५–गर्मी—शरीर की स्वाभाविक गर्मी से जब अधिक गर्मी बढ़ जाती है तब ज्वर, वातरक्त, यकृत्, रक्तपित्त, गर्मी की खांसी, पिंडलियों का ऐंठना और अतीसार आदि रोग होते हैं, कठिन धूप की गर्मी से मगज की बीमारी, कठिन ज्वर, हैजा, शीतला और मरोड़ा आदि रोग उत्पन्न होते हैं, एवं शरीर पर फुनसियें और फफोले आदि चमड़ी की भी व्याधियां हो जाती हैं, जिस प्रकार विस्फोटक आदि दुष्टरोग दुष्टस्पर्श से उत्पन्न हुए गर्मी के विष से होते हैं उसी प्रकार गर्म पदार्थों के खाने से बढ़ी हुई गर्मी से भी इस प्रकार के रोग होते हैं ॥

१६–मन के विकार—मन के विकारों से भी बहुत से रोग होते हैं, जैसे–देखो ! बहुत क्रोध से ज्वर और वातरक्त आदि बीमारियां हो जाती हैं, बहुत भय से मूर्छा, कामला, चूंक, गुल्म, दस्त और अजीर्ण आदि रोग होते हैं, बहुत चिन्ता से अजीर्ण, कामला, मधुप्रमेह, क्षय और रक्तपित्त आदि रोग होते हैं ॥

१७–अकस्मात्—गिर जाने, कुचल जाने, डूब जाने और विष खाजाने आदि अनेक अकस्मात् कारणों से भी अनेक रोग होते हैं ॥

१८–दवा—यद्यपि दवा रोगों को मिटाती है अथवा मिटाने में सहायता करती है परन्तु युक्ति के विना अज्ञानता से ली हुई वा दी हुई दवा से कुछ भी लाभ नहीं होता है अथवा इस प्रकार से ली हुई दवा एक रोग को दबा कर दूसरे को उत्पन्न कर देती है तथा भूल से दी हुई दवा से मनुष्य मर भी जाता है, इस लिये इन सब बातों को अपनी गफलत में अथवा अकस्मात्वर्ग में गिनते हैं, परन्तु लेभगंगू[1] नीम हकीम और मूर्ख वैद्य अपने अल्पज्ञान से अथवा लोभ से अथवा रोगी पर पूरी दया न रखने के कारण बेपर्वाही से चिकित्सा करने से सैकड़ों रोगों के कारणरूप हो जाते हैं, देखो ! हज़ारों मनुष्य इन लेभगुओं के हाथ से मारे जाते हैं, हज़ारों मनुष्य इन के हाथ से कष्ट पाते हैं, इन बातों का कुछ दृष्टान्तों के द्वारा खुलासा वर्णन करते हैं:—

१–कहीं से कोई तथा कहीं से कोई बात ले उड़नेवाले को लेभगगू कहते हैं ॥

शरीर में वायु के बढ़ जाने का मुख्य कारण ठंढ अर्थात् शर्दी ही है परन्तु कभी २ शरीर में बहुत गर्मी के बढ़ जाने से भी वायु जोर किया करती है, अब देखो ! शरीर में जब गर्मी के बढ़ने से वायु का जोर बढ़ जाता है और रोगी तथा दूसरे भी सब लोग वादी की पुकार करते हैं (सब कहते हैं कि वादी है वादी है) उस की चिकित्सा के लिये यदि कोई योग्य वैद्य आकर गर्मी की निवृत्ति के द्वारा वायु की निवृत्ति करता है तब तो ठीक ही है परन्तु जब कोई मूर्ख वैद्य चिकित्सा करने के लिये आता है तो वह भी शर्दी से वादी की उत्पत्ति समझ कर गर्म दवा देता है जिस से महाहानि होती है, खूबी यह है कि यदि कदाचित् कोई बुद्धिमान् वैद्य यह कहे कि यह रोग गर्मी के द्वारा उत्पन्न हुई वादी से है इस लिये यह गर्म दवा से नहीं मिटेगा किन्तु ठंढी दवा से ही मिटेगा, तो उस रोगी के घरवाले सब ही स्त्री पुरुष वैद्य को मूर्ख ठहरा देते हैं और उस की बतलाई हुई दवा को मञ्जूर नहीं करते हैं किन्तु मनमानी गर्म दवाइयां देते हैं जिन से गर्मी अधिक बढ़ कर रोग को असाध्य कर देती है, जैसे—पित्तसम्बंधी भयंकर गर्मी से उत्पन्न हुए पानीझरे में वृद्ध रण्डायें और मूर्ख वैद्य सौ २ लौंगों को कुल्हिये (कुल्हड़े) में छौंक २ कर दिलाते हैं जिस से रोगी प्रायः मर ही जाता है, हां सौ में से शायद कोई एक दीर्घायु ही बचता है, यदि बच भी जाता है तो उस को वह अत्यन्त गर्मी जन्मभर तक सताती रहती है, इसी प्रकार गर्मी के द्वारा जब कभी धातु का विकार होकर पुरुषत्व का नाश होता है, उपदंश, और सुज़ाख से अथवा भय और चिन्ता से बहुत से आदमियों का मगज फिर जाता है विचारवायु हो जाता है, पागलपन हो जाता है तब ऐसे रोगों पर भी अज्ञान लोग और ज्ञान से हीन ऊँट वैद्य आंखें वन्द कर एकदम गर्म दवा दिये जाते हैं जिस से वीमारी का घटना तो दूर रहा उलटी वायु अधिक बढ़ जाती है जिस से रोगी के और भी खरावी उत्पन्न होती है, क्योंकि इस प्रकार के रोग प्रायः मगज़ के खाली पड़ जाने से तथा धातु के नाश से होते हैं, इस लिये इन रोगों में तो जब मगज और धातु सुधरे तब ही वायु मिटकर लाभ हो सकता है, इसी लिये मगज़ को पुष्ट करनेवाला, तरावट लानेवाला और शीतल इलाज इन रोगों में वतलाया गया है, परन्तु मूर्ख वैद्य इन बातों को कहां से जानें ?

अज्ञान वैद्य बहुत जुलाब के अयोग्य शरीरवाले को बहुत जुलाब दे देते हैं जिस से दस्त और मरोड़े का रोग हो जाता है, आम तथा खून टूट पड़ता है और कई वार आंतें काम न देकर अशक्त हो जाती हैं, जिस से रोगी मर जाता है ॥

एक रोग दूसरे रोग का कारण ॥

जैसे बहुत से रोग आहार विहार के विरुद्ध वर्त्ताव से स्वतन्त्रतया होते हैं उसी प्रकार दूसरे रोगों से भी अन्य रोग पैदा होते हैं, जैसे बहुत खाने से अथवा अपनी

प्रकृति के प्रतिकूल अथवा बहुत गर्म वा बहुत ठंढे पदार्थ के खाने से जठराग्नि विगड़ती है वैसे ही अधिक विषय सेवन से भी शरीर का सत्त्व कम होकर पाचनशक्ति मन्द पड़ती है, इस मन्दाग्नि का यदि शीघ्र ही इलाज न किया जावे तो इस (मन्दाग्नि) से क्रम से अनेक रोग पैदा होते हैं, जैसे देखोः—

१–मन्दाग्नि से अजीर्ण होता है, अजीर्ण से दस्त होते हैं, दस्तों से मरोड़ा होता है, मरोड़े से संग्रहणी होती है, संग्रहणी से मस्सा (हरस) होता है, मस्सा से पेट का दर्द अफरा और गुल्म (गोले) का रोग होता है ।

२–**शर्द गर्मी (जुखाम)**—यद्यपि यह एक छोटा सा रोग है तथा तीन चार दिनतक रह कर आप से ही मिट जाता है परन्तु किसी २ समय जब यह शरीर में जकड़ जाता है तो वड़े २ भयंकर रोगों का कारण बन जाता है, जैसे–इस में खाने पीने की हिफाज़त न रहने से दोष वढ़ कर खांसी होती है और कफ वढ़ता है, उस से फेफसे में हरकत पहुंचकर आखिरकार क्षय रोग के चिह्न प्रकट होते हैं तथा पीनसरोग भी जुखाम से ही होता है ।

३–**अजीर्ण**—अजीर्ण भी एक ऐसा साधारण रोग है कि वह मनुष्यों को प्रायः बना रहता है तथा वह आप ही सहज और साधारण उपाय से मिट भी जाता है, हां यह वात अवश्य है कि जहांतक शरीर में ताकत रहती है वहांतक तो इस की अधिक हरकत नहीं मालूम पड़ती है परन्तु नाताकत मनुष्य के लिये साधारण भी अजीर्ण वड़े २ रोगों का कारण वन जाता है, जैसे देखो ! अजीर्ण[1] से मरोड़ा होता है, मरोड़े से संग्रहणी जैसे असाध्य रोग की उत्पत्ति होती है तथा हैजे और मरी को बुलानेवाला भी अजीर्ण ही है ।

इस में वड़ी भयंकरता यह है कि यदि इस का इलाज न किया जावे तो यह (अजीर्ण) जीर्ण रूप पकड़ता है और शरीर में सदा के लिये घर बना लेता है ।

अजीर्ण से प्रायः बहुत से रोग होते हैं जिन में से मुख्य रोग ये हैं—कृमि, बुखार, चूंक, दस्त की कब्जी आदि ।

४–**बुखार**—बुखार से तिल्ली, जीर्णज्वर, शोथ, अरुचि, कास, श्वास, वमन और अतीसार आदि ।

५–**कृमि**—कृमि रोग से हिचकी, हृदय का रोग, हिष्टीरिया, शिर का दर्द, छींक, दस्त, वमन और गुमड़े आदि रोग होते हैं ।

६–**धातुविकार**—धातुविकार से असाध्य क्षय रोग होता है, यदि उस का उपाय

१–इस को अंग्रेजी में डिसपेप्सिया कहते हैं ॥

न किया जावे तो उस से मगज़ की वायु, विचारवायु अथवा भ्रम हो जाता है, बुद्धि का नाश हो जाता है और मनुष्य पागल के समान बन जाता है ।

७-**खांसी**—यद्यपि यह एक साधारण रोग है परन्तु उस का उपाय न करने से उस की वृद्धि होकर राजयक्ष्मा हो जाता है ।

८-**मदात्यय**—इस रोग से अजीर्ण, दाह और पागलपन का असाध्य रोग होता है ।

९-**उपदंश वा गर्मी**—उपदंश अर्थात् दुष्ट स्त्री आदि से उत्पन्न हुई गर्मी के रोग से विस्फोटक, गांठ, वातरक्त, रक्तपित्त, हरस, भगन्दर, नासूर और गँठिया आदि रोग होते हैं ।

१०-**सुज़ाख**—सुज़ाख होकर प्रमेह हो जाता है, उस (प्रमेह) से वदगांठ, मूत्र-कृच्छ्र, मूत्राघात और प्रमेहपिटिका (छोटी २ फुनसियां) आदि रोग तथा उपदंश सम्बंधी भी सब प्रकार के रोग होते हैं ॥

यह चतुर्थ अध्याय का रोग सामान्यकारण नामक दशवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ग्यारहवां प्रकरण—त्रिदोषजरोगवर्णन ॥

त्रिदोषज अर्थात् वात पित्त और कफ से उत्पन्न होनेवाले रोगों का समय ॥

आर्य वैद्यक शास्त्र के अनुसार यह सिद्ध है कि—सब ही रोगों की जड़ वात पित्त और कफ ही हैं, जबतक ये तीनों दोष बराबर रहते हैं अथवा अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहते हैं तबतक शरीर नीरोग गिना जाता है परन्तु जब इन में से कोई एक अथवा दो वा तीनों ही दोष अपनी २ मर्यादा को छोड़ कर उलटे मार्गपर चलते हैं तब बहुत से रोग उत्पन्न होते[2] हैं ।

ये तीनों दोष किस प्रकार से अपनी मर्यादा को छोड़ते हैं तथा उन से कौन २ से रोग प्रकट होते हैं इस विषय का संक्षेप से वर्णन करते हैं:—

१-बहुत शराब के पीने से जो रोग होता है उस को मदात्यय कहते हैं ॥

२-जैसा कि वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है कि-"तेषां समत्वमारोग्यं क्षयवृद्धी विपर्ययः" अर्थात् उन (त्रिदोषों अर्थात् वात पित्त और कफ) का जो समान रहना है वही आरोग्यता है और उन की जो न्यूनाधिकता है वही रोगता है ॥

वायु के कोप के कारण ॥

अपान वायु के, दस्त के और पेशाव के वेग को रोकना, तिक्त तथा कषैले रसवाले पदार्थों का खाना, वहुत ठंढे पदार्थों का खाना, रात्रि को जागरण करना, वहुत स्त्रीसंग (मैथुन) करना, वहुत परिश्रम करना, वहुत खाना, वहुत मार्ग चलना, अधिक बोलना, भय करना, रूखे पदार्थों का खाना, उपवास करना, वहुत खारी कड़ुए तथा तीखे पदार्थों का खाना, वहुत हिचके खाना और सवारी पर वैठ कर यात्रा करना, इत्यादि कार्य वायु को कुपित करने में कारण होते हैं।

इन के सिवाय-वहुत ठंढ में, वरसात की भीगी हुई जमीन में, वरसते समय में, स्नान करने के पीछे, पानी पीने के पीछे, दिन के पिछले भाग में, खाये हुए भोजन के पचने के पीछे और जोर से पवन (हवा) चल रहा हो उस समय में शरीर में वायु जोर करता है तथा शरीर में ८० प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है, उन ८० प्रकार के रोगों के नाम ये हैंः—

१-**आक्षेपवायु**—इस रोग में शरीर की नसों में हवा भरकर शरीर को इधर उधर फेंकती है।

२-**हनुस्तम्भ**—इस रोग में ठोड़ी वादी से जकड़ कर टेढ़ी हो जाती है।

३-**ऊरुस्तम्भ**—इस रोग में वादी से जंघा अकड़ कर चलने की शक्ति कम हो जाती है।

४-**शिरोग्रह**—इस रोग में शरीर की नसों में वादी भर कर शिर को जकड़ देती और पीड़ा करती है।

५-**बाह्यायाम**—इस रोग में पीठ की रगों में वादी भर कर शरीर को धनुष के समान झुका देती है।

६-**अन्तरायाम**—इस रोग में छाती की तरफ से शरीर कमान के समान बांका (टेढ़ा) हो जाता है।

७-**पार्श्वशूल**—इस रोग में पसवाड़ों की पसलियों में चसके चलते हैं।

८-**कटिग्रह**—इस रोग में वादी कमर को पकड़ के जकड़ देती है।

९-**दण्डापतानक**—इस रोग में वादी शरीर को लकड़ी की तरह सीधा ही जकड़ देती है।

१०-**खल्ली**—इस रोग में वायु भर कर पैर, हाथ, जांघ, गोड़े और पींडियों का कम्पन करती है।

११-**जिह्वास्तम्भ**—इस रोग में वादी जीभ की नसों को पकड़ कर बोलने की शक्ति को वन्द कर देती है।

१२-**अर्दित**—इस रोग में मुख का आधा भाग टेढ़ा होकर जीभ का लोचा वँधता है और करड़ा (सख्त) हो जाता है।

१३-**पक्षाघात**—इस रोग में आधे शरीर की नसों का शोषण हो कर गति की रुकावट हो जाती है।

१४-**क्रोष्टुशीर्षक**—इस रोग में गोड़ों में वादी खून को पकड़ कर कठिन सूजन[1] को पैदा करती है।

१५-**मन्यास्तम्भ**—इस रोग में गर्दन की नसों में वायु कफ को पकड़ कर गर्दन को जकड़ देती है।

१६-**पङ्गु**—इस रोग में कमर तथा जांघों में वादी घुस कर दोनों पैरों को निकम्मा कर देती है।

१७—**कलायखञ्ज**—इस रोग में चलते समय शरीर में कम्पन होता है तथा पैर टेढ़े पड़ जाते हैं।

१८-**तूनी**—इस रोग में पक्काशय में चिनग पैदा होकर गुदा और उपस्थ (पेशाव की इन्द्रिय) में जाती है।

१९-**प्रतितूनी**[2]—इस रोग में तूनी की पीड़ा नीचे को उतर कर पीछे नाभि की तरफ जाती है।

२०-**खञ्ज**—इस रोग में पंगु (पांगले) के समान सब लक्षण होते हैं, परन्तु विशेषता केवल यही है कि-यह रोग केवल एक पैर में होता है, इस लिये इस रोगवाले को लँगड़ा कहते हैं।

२१-**पादहर्ष**—इस रोग में पैर में केवल झनझनाहट होती है तथा पैर शून्य जैसा हो जाता है।

२२-**गृध्रसी**—इस रोग में कटि (कमर) के नीचे का भाग (जांघ) और पैर आदि) जकड़ जाता है।

२३-**विश्वाची**—इस रोग में हथेली तथा अंगुलियां जकड़ जाती हैं और हाथ से काम नहीं होता है।

२४-**अपबाहुक**—इस रोग में हाथों की नाड़ी जकड़ कर हाथ दूखते (दर्द करते) रहते हैं।

२५-**अपतानक**—इस रोग में वादी हृदय में जाकर दृष्टि को स्तब्ध (रुकी हुई) करती है, ज्ञान और संज्ञा (चेतनता) का नाश करती है और कण्ठ से एक विलक्षण (अजीब) तरह की आवाज निकलती है, जब यह वायु हृदय से अलग हटती है तब रोगी को संज्ञा प्राप्त होती है (होश आता है), इस रोग में हिष्टीरिया (उन्माद) के समान चिह्न वार २ होते तथा मिट जाते हैं।

१-यह सूजन शृगाल के शिर के समान होती है, इसी लिये इस को क्रोष्टुशीर्षक (शृगाल का शिर) कहते हैं॥
२-इस को कोई २ शास्त्रकार प्रतूनी भी कहते हैं॥

२६-**व्रणायाम**—इस रोग में चोट अथवा ज़खम से उत्पन्न हुए व्रण (घाव) में वादी दर्द करती है।

२७-**व्यथा**—इस रोग में पैरों में तथा घुटनों में चलते समय दर्द होता है।

२८-**अपतन्त्रक**—इस रोग में पैरों में तथा शिर में दर्द होता है, मोह होता है, गिर पड़ता है, शरीर धनुष कमान की तरह वांका हो जाता है, दृष्टि स्तब्ध होती है तथा कबूतर की तरह गले में शब्द होता है।

२९-**अंगभेद**—इस रोग में सब शरीर टूटा करता है।

३०-**अंगशोष**—इस रोग में वादी सब शरीर के खून को सुखा डालती है तथा शरीर को भी सुखा देती है।

३१-**मिनमिनाना**—इस रोग में मुँह से निकलनेवाला शब्द नाक से निकलता है, इसे गूंगापन कहते हैं।

३२-**कल्लता**—इस रोग में हिचक २ कर तथा रुक २ कर थोड़ा २ बोला जाता है तथा बोलने में उबकाई खाता है।

३३-**अष्ठीला**—इस रोग में नाभि के नीचे पत्थर के समान गांठ होती है।

३४-**प्रत्यष्ठीला**—इस रोग में नाभि के ऊपर पेट में गांठ तिरछी होकर रहती है।

३५-**वामनत्व**—इस रोग में गर्भ में प्राप्त होकर जब वादी गर्भविकार को करती है तब बालक वामन होता है।

३६-**कुब्जत्व**—इस रोग में पीठ और छाती में वायु भर कर कूबड़ निकाल देती है।

३७-**अंगपीड़**—इस रोग में सब शरीर में दर्द होता है।

३८-**अंगशूल**—इस रोग में सब शरीर में चसके चलते हैं।

३९-**संकोच**—इस रोग में वादी नसों को संकुचित कर शरीर को अकड़ देती है।

४०-**स्तम्भ**—इस रोग में वादी से सब शरीर ग्रस्त हो जाता है।

४१-**रूक्षपन**—इस रोग में वादी के कोप से शरीर रूखा और निस्तेज हो जाता है।

४२-**अंगभंग**—इस रोग में ऐसा प्रतीत होता है कि–मानो वादी से शरीर टूट जायगा।

४३-**अंगविभ्रम**—इस रोग में शरीर का कोई भाग लकड़ी के समान जड़ हो जाता है।

४४-**मूकत्व**—इस रोग में बोलने की नाड़ी में वादी के भर जाने से ज़बान बन्द हो जाती है।

४५-**विट्ग्रह**—इस रोग में आँतों में वायु भर कर दस्त और पेशाब को रोक देती है।

४६-**बद्धविट्कता**—इस रोग में वादी से दस्त बहुत करड़ा आता है ।

४७-**अतिजृम्भा**—इस रोग में वादी से उवासी अर्थात् जँभाई बहुत आती हैं ।

४८-**प्रत्युद्गार**—इस रोग में वादी के कोप से डकारें बहुत आती हैं ।

४९-**अन्त्रकूजन**—इस रोग में वादी के कोप से आँतों में कूजन (कुर २ की आवाज़) वार २ होती हैं ।

५०-**वातप्रवृत्ति**—इस रोग में वादी के जोर से अधोवायु (अपान वायु) बहुत निकलती है ।

५१-**स्फुरण**—इस रोग में वादी के जोर से आँख अथवा हाथ आदि कोई अंग फरकता है ।

५२-**शिरापूर्ण**—इस रोग में वादी से सब नसें और शिरायें भर जाती हैं ।

५३-**कम्पवायु**—इस रोग में वायु से सब अंग अथवा शिर काँपा करता है ।

५४-**कार्श्य**—इस रोग में वादी के कोप से शरीर प्रतिदिन (दिन पर दिन) दुर्बल होता जाता है ।

५५-**श्यामता**—इस रोग में वादी से शरीर काला पड़ता जाता है ।

५६-**प्रलाप**—इस रोग में वादी से मनुष्य बहुत बकता और बोलता रहता है ।

५७-**क्षिप्रमूत्रता**—इस रोग में वादी से दम २ में (थोड़ी २ देर में) पेशाव उतरा करती है ।

५८-**निद्रानाश**—इस रोग में वादी से नींद नहीं आती है ।

५९-**स्वेदनाश**—इस रोग में वादी पसीने के छिद्रों (छेदों) को बन्द कर पसीने को बन्द कर देती है ।

६०-**दुर्बलत्व**—इस रोग में वायु के कोप से शरीर की शक्ति जाती रहती है ।

६१-**बलक्षय**—इस रोग में वादी के कोप से शक्ति का बिलकुल ही नाश हो जाता है ।

६२-**शुक्रप्रवृत्ति**—इस रोग में वादी के कोप से शुक्र (वीर्य) बहुत गिरा करता है ।

६३-**शुक्रकार्श्य**—इस रोग में वायु धातु में मिलकर धातु को सुखा देती है ।

६४-**शुक्रनाश**—इस रोग में वायु से धातु का बिल्कुल ही नाश हो जाता है ।

६५-**अनवस्थितचित्तता**—इस रोग में वायु मगज़ में जाकर चित्त को अस्थिर कर देती है ।

६६-**काठिन्य**—इस रोग में वायु के कोप से शरीर करड़ा हो जाता है ।

६७-**विरसास्यता**—इस रोग में वायु के कोप से मुँह में रस का स्वाद बिलकुल नहीं रहता है ।

६८-**कषायवक्त्रता**—इस रोग में वादी के कोप से मुँह में कषैले रस का स्वाद रहता है ।

६९-**आध्मान**—इस रोग में वायु के कोप से नाभि के नीचे अफरा हो जाता है।

७०-**प्रत्याध्मान**—इस रोग में हृदयके नीचे और नाभि के ऊपर अफरा हो जाता है।

७१-**शीतता**—इस रोग में वायु से शरीर ठंढा पड़ जाता है।

७२-**रोमहर्ष**—इस रोग में वादी के कोप से शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं।

७३-**भीरुत्व**—इस रोग में वायु के कोप से भय लगता रहता है।

७४-**तोद**—इस रोग में शरीर में सुई के चुभाने के समान व्यथा प्रतीत होती है।

७५-**कण्डू**—इस रोग में वादी से शरीर में खाज चला करती है।

७६-**रसाज्ञता**—इस रोग में रसों का स्वाद नहीं मालूम होता है।

७७-**शब्दाज्ञता**—इस रोग में वादी के कोप से कानों से शब्द सुनाई नहीं देता है।

७८-**प्रसुप्ति**—इस रोग में वायु के कोप से स्पर्श का ज्ञान नहीं होता है।

७९-**गन्धाज्ञता**—इस रोग में वायु के कोप से गंध का ज्ञान नहीं होता है।

८०-**दृष्टिक्षय**—इस रोग में दृष्टि में वायु अपना प्रवेश कर देखने की शक्ति को कम कर देती है।

सूचना—वायु के कोप से शरीर में ऊपर कहे हुए रोगो में से एक अथवा अनेक रोगों के लक्षण स्पष्ट दिखलाई देते हैं, उन (लक्षणों) से निश्चय हो सकता है कि यह रोग वादी का है, खून और वादी का भी निकट सम्बंध है इस लिये वादी खून में मिल कर बहुत से खून के विकारों को पैदा करती है, अतः ऐसे रोगों में खून की शुद्धि और वायु की शान्ति करने वाला इलाज करना चाहिये ॥

पित्त के कोप के कारण ॥

बहुत गर्म, तीखे, खट्टे, रूखे और दाहकारी पदार्थों के खाने पीने से, मद्य आदि नशों के व्यसन से, बहुत उपवास करने से, क्रोध से, अति मैथुन से, बहुत शोक से, बहुत धूप और अग्नि तेज आदि के सेवन से, इत्यादि आहार विहार से पित्त का कोप होता है, जिस से पित्तसम्बन्धी ४० रोग होते हैं, जिन के नाम ये हैं:—

१-**धूमोद्गार**—इस रोग में धुएँ के समान जली हुई डकार आती है।

२-**विदाह**—इस रोग में शरीर में बहुत जलन होती है।

३-**उष्णाङ्गत्व**—इस रोग में शरीर हरदम गर्म रहता है।

४-**मतिभ्रम**—इस रोग में शिर (मगज़) सदा घूमा करता है।

१-वायु से उत्पन्न होने वाले इन ८० प्रकार के रोगों का यहां पर कथन कर दिया है परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि अनेक आचार्यों ने कई रोगों के नामान्तर (दूसरे नाम) लिखे हैं तथा उन के लक्षण भी और ही लिखे हैं, परन्तु संख्या में कोई भेद नहीं है अर्थात् रोग संख्या सब ही के मत में ८० ही है, यही विषय पित्त और कफ से उत्पन्न होनेवाले रोगों के विषय में भी समझना चाहिये ॥

५-**कान्तिहानि**—इस रोग में शरीर के तेज का नाश होता है।
६-**कण्ठशोष**—इस रोग में कण्ठ (गला) सूख जाता है।
७-**मुखशोष**—इस रोग में मुँह में शोष हो जाता है।
८-**अल्पशुक्रता**—इस रोग में धातु (वीर्य) कम हो जाता है।
९-**तिक्तास्यता**—इस रोग में मुँह कड़ुआ रहता है।
१०-**अम्लवक्त्रत्व**—इस रोग में मुँह खट्टा रहता है।
११-**स्वेदस्राव**—इस रोग में पसीना बहुत आता है।
१२-**अङ्गपाक**—इस रोग में शरीर पक जाता है।
१३-**क्लम**—इस रोग में ग्लानि तथा अशक्ति (कमजोरी) रहती है।
१४-**हरितवर्णत्व**—इस रोग में शरीर का रंग हरा दीखता है।
१५-**अतृप्ति**—इस रोग में भोजन करने पर भी तृप्ति नहीं होती है।
१६-**पीतकायता**—इस रोग में शरीर का रंग पीला दीखता है।
१७-**रक्तस्राव**—इस रोग में शरीर के किसी स्थान से खून गिरता है।
१८-**अङ्गदरण**—इस रोग में शरीर की चमड़ी फटती है।
१९-**लोहगन्धास्यता**—इस रोग में मुँह में से लोह के समान गन्ध आती है।
२०-**दौर्गन्ध्य**—इस रोग में मुँह तथा शरीर से दुर्गन्ध निकलती है।
२१-**पीतमूत्रत्व**—इस रोग में पेशाब पीला उतरता है।
२२-**अरति**—इस रोग में पदार्थों पर अप्रीति रहती है।
२३-**पित्तविट्कता**—इस रोग में दस्त पीला आता है।
२४-**पीतावलोकन**—इस रोग में आँखों से पीला दीखता है।
२५-**पीतनेत्रता**—इस रोग में आंखें पीली हो जाती हैं।
२६-**पीतदन्तता**—इस रोग में दाँत पीले हो जाते हैं।
२७-**शीतेच्छा**—इस रोग में ठंढे पदार्थ की वांछा रहती है।
२८-**पीतनखता**—इस रोग में नख पीले हो जाते हैं।
२९-**तेजोद्वेष**—इस रोग में सूर्य आदि का तेज सहा नहीं जाता है।
३०-**अल्पनिद्रता**—इस रोग में नींद थोड़ी आती है।
३१-**कोप**—इस रोग में क्रोध (गुस्सा) बढ़ जाता है।
३२-**गात्रसाद**—इस रोग में शरीर में पीड़ा होती है।
३३-**भिन्नविट्कत्व**—इस रोग में दस्त पतला आता है।
३४-**अन्धता**—इस रोग में आंख से नहीं दीखता है।
३५-**उष्णोच्छ्वासत्व**—इस रोग में श्वास गर्म निकलता है।

३६-**उष्णमूत्रत्व**—इस रोग में पेशाब गर्म आता है ।

३७-**उष्णमलत्व**—इस रोग में दस्त गर्म उतरता है ।

३८-**तमोदर्शन**—इस रोग में आंखों में अँधेरी आती है ।

३९-**पित्तमण्डलदर्शन**—इस रोग में पीले मण्डल (चक्कर) दीखते हैं ।

४०-**निःसरत्व**—इस रोग में वमन और दस्त में पित्त निकलता है ।

सूचना—पित्त के कोप से शरीर में उक्त रोगो में से एक अथवा अनेक रोगों के लक्षण दिखलाई देते हैं, उन को खूब समझ कर रोगों का इलाज करना चाहिये, क्योंकि बहुधा देखा गया है कि-मतिभ्रम, तिक्तास्यता, स्वेदस्राव, क्लम, अरति, अल्पनिद्रता, गात्रसाद, भिन्नविट्कता और तमोदर्शन आदि बहुत से पित्त के रोगों को साधारण मनुष्य अपनी समझ के अनुसार वायु के रोग गिनकर (मान कर) उन के मिटाने के लिये गर्म इलाज किया करते हैं, उस से उलटा रोग बढ़ता है, इसी प्रकार बहुत से रोग बाहर से वायु के से (वायुजन्य रोगों के समान) दीखते हैं परन्तु असल में निश्चय करने पर वे (रोग) पित्त के (पित्तजन्य) ठहरते हैं (सिद्ध होते हैं), एवं बहुत से रोग बाहरी लक्षणों से पित्त तथा गर्मी के मालूम देते हैं परन्तु असल में निश्चय करने पर वे रोग वायु से उत्पन्न हुए सिद्ध होते हैं, इस लिये रोगों के कारणों के खोजने में बहुत विचार-शक्ति और सूक्ष्म बुद्धि से जांच करने की आवश्यकता है ॥

कफ के कोप के कारण ॥

गुड़, शक्कर, बूरा और मिश्री आदि मीठे पदार्थों के खाने से, घी और मक्खन आदि चिकने पदार्थों के खाने से, केला और भैंस का दूध आदि भारी पदार्थों के खाने से, ठंढे और भारी पदार्थों के अधिक खाने से, दिन में सोने से, अजीर्ण में भोजन करने से, विना मेहनत के खाली बैठे रहने से, शीतकाल में अधिक ठंढे पानी के पीने से और वसन्त ऋतु में नये अन्न के खाने से, इत्यादि आहार विहार से शरीर में कफ बढ़ कर बहुत से रोगों को उत्पन्न करता है, जिन में से मुख्यतया कफ के २० रोग हैं, जिन के नाम ये हैं:—

१-**तन्द्रा**—इस रोग में आंखों में मिँचाव सा लगा रहता है ।

२-**अतिनिद्रता**—इस रोग में नींद बहुत आती है ।

३-**गौरव**—इस रोग में शरीर भारी रहता है ।

४-**मुखमाधुर्य**—इस रोग में मुँह मीठा २ सा लगता है ।

५-**मुखलेप**—इस रोग में मुँह में चिकनापन सा रहता है ।

६-**प्रसेक**—इस रोग में मुँह से लार गिरती रहती है ।

७-**श्वेतावलोकन**—इस रोग में सब वस्तुयें सफेद दीखती हैं ।

८-**श्वेतविट्कत्व**—इस रोग में दस्त सफेद रँग का उतरता है ।

९-**श्वेतमूत्रता**—इस रोग में पेशाब श्वेत (सफेद) उतरता है ।

१०-**श्वेतांगवर्णता**—इस रोग में शरीर का रंग सफेद हो जाता है ।

११-**उष्णेच्छा**—इस रोग में अति गर्म पदार्थ के खाने की इच्छा होती है ।

१२-**तिक्तकामता**—इस रोग में कड़ुई चीज़ की इच्छा होती है ।

१३-**मलाधिक्य**—इस रोग में दस्त अधिक होकर उतरता है ।

१४-**शुक्रबाहुल्य**—इस रोग में वीर्य का अधिक सञ्चय होता है ।

१५-**बहुमूत्रता**—इस रोगमें पेशाब बहुत आता है ।

१६-**आलस्य**—इस रोग में आलस्य बहुत आता है ।

१७-**मन्दबुद्धित्व**—इस रोग में बुद्धि मन्द हो जाती है ।

१८-**तृप्ति**—इस रोग में थोड़ा सा खाने से ही तृप्ति हो जाती है ।

१९-**घर्घरवाक्यता**—इस रोग में आवाज़ घर्घर होकर निकलती है ।

२०-**अचैतन्य**—इस रोग में चेतनता जाती रहती है ।

सूचना—कफ का कोप होने से शरीर में से उक्त रोगोंमेंसे एक अथवा अनेक रोगों के जब लक्षण दीख पड़ें तब उन को खूब सोच समझ कर रोगों का इलाज करना चाहिये ।

कफ के रोगों में जो श्वेतावलोकन तथा श्वेतविट्कत्व रोग गिनाये गये हैं उन का तात्पर्य यह नहीं है कि सब वस्तुयें बर्फ के समान सफेद दीखें तथा बर्फ के समान सफेद दस्त आवें, किन्तु उन का तात्पर्य यही है कि आरोग्यता की दशा में जैसा रंग दीखता था तथा जिस रंग का दस्त आता था वैसा रंग न दीख कर तथा उस रंग का दस्त न होकर पूर्व की अपेक्षा अधिक श्वेत दीखता है तथा अधिक श्वेत दस्त आता है ॥

यह चतुर्थ अध्याय का त्रिदोषज रोगवर्णन नामक ग्यारहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

बारहवां प्रकरण—रोगपरीक्षाप्रकार ॥

रोग की परीक्षा के आवश्यक क्रम वा प्रकार ॥

रोग की परीक्षा के बहुत से प्रकार हैं—उन में से तीन प्रकार निमित्त शास्त्र के द्वारा माने जाते हैं, जो कि ये हैं—स्वप्न, शकुन और स्वरोदय, स्वप्न के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि—रोगी को या उस के किसी सम्बन्धी को या उस के चिकित्सक (रोगी की चिकित्सा करने वाले) वैद्य को जो स्वप्न आवे उस का शुभाशुभ फल

विचार कर रोग की परीक्षा करना, शकुन के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि–जिस समय वैद्य को बुलाने के लिये दूत जावे उसी समय मकान से निकलते ही उस को गर्म शकुन का होना शुभ होता है, सौम्य तथा ठंढा शकुन होवे तो वह अच्छा नहीं होता है इत्यादि, स्वरोदय के द्वारा रोग की परीक्षा इस प्रकार से होती है कि–जब दूत वैद्य के पास पहुंचे तब वैद्य स्वरोदय देखे, वह भी भरीहुई दिशा में देखे, यदि दूत बैठ कर या खड़ा रह कर प्रश्न करे तो सजीव दिशा समझे, यदि उस समय वैद्य के अग्नितत्त्व चलता हो तो पित्त वा गर्मी का रोग समझे, रोगी के वायुतत्त्व चलता हो तो वायु का रोग समझे, इत्यादि तत्त्वों का विचार करे, यदि खाली दिशा में बैठ कर प्रश्न हो वा सुषुम्ना नाड़ी चलती हो तो रोगी मर जाता है, आकाशतत्त्व में वैद्य को यश नहीं मिलता है, यदि वैद्य के चन्द्र स्वर चलता हो पीछे उस में पृथिवी और जलतत्त्व चले तथा उस समय रोगीके घर जावे तो वैद्य को अवश्य यश मिलेगा, दवा देते समय वैद्य के सूर्य स्वर का होना इसी तरह पुनः वैद्य को मकान से निकलते ही ठंढे और सौम्यशकुन का होना अच्छा होता है परन्तु गर्म शकुन का होना अच्छा नहीं है, इत्यादि।

इस प्रकार से स्वप्न शकुन और स्वरोदय के द्वारा परीक्षा करने से वैद्य इस बात को निमित्त शास्त्र के द्वारा अच्छी तरह जान सकता है कि–रोगी जियेगा या बहुत दिनोंतक भुगतेगा अथवा आराम हो जायगा इत्यादि।

यद्यपि इन तीनों विषयों का कुछ यहां पर विशेष वर्णन करना आवश्यक था परन्तु ग्रंथ के बढ़ जाने के भय से यहां विशेष नहीं लिख सकते हैं किन्तु यहां पर तो अब रोग परीक्षा के जो लोकप्रसिद्ध मुख्य उपाय हैं उन का विस्तारसहित वर्णन करते हैं:—

रोगपरीक्षा के लोकप्रसिद्ध मुख्य चार उपाय हैं—प्रकृतिपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, दर्शनपरीक्षा और प्रश्नपरीक्षा, इन में से प्रकृतिपरीक्षा में यह देखा जाता है कि रोगी की प्रकृति वायुप्रधान है, वा पित्तप्रधान है, वा कफप्रधान है, अथवा रक्तप्रधान है, (इस विषय का वर्णन प्रकृति के स्वरूप के निर्णय में किया जावेगा), स्पर्शपरीक्षा में रोगी के शरीर के भिन्न २ भागों की हाथ के स्पर्श से तथा दूसरे साधनों से जांच की जाती है, इस परीक्षा का भी वर्णन आगे विस्तार से किया जावेगा, यह स्पर्शपरीक्षा हाथ से तथा थर्मामीटर (उष्णतामापक नली) से और स्टेथोस्कोप (हृदय तथा श्वास नली की क्रिया के जानने की भुंगली) आदि दूसरे भी साधनों से हो सकती है, नाड़ी, हृदय, फेफसा तथा चमड़ी, ये सब स्पर्शपरीक्षा के अंग हैं, दर्शनपरीक्षा में यह वर्णन है कि–रोगी के शरीर को अथवा उस के जुदे २ अवयवों को केवल दृष्टि के द्वारा देखने मात्र से रोग

१–स्वरोदय का कुछ वर्णन आगे (पञ्चमाध्याय में) किया जायगा, वहां इस विषय को देख लेना चाहिये॥
२–अष्टाङ्ग निमित्त के यथार्थ ज्ञान को जो कोई पुरुष झूठा समझते हैं यह उन की मूर्खता है॥

का बहुत कुछ निर्णय हो सकता है इस परीक्षा में बहुत से दर्शनीय दूसरे भी विषय आ जाते हैं, जैसे—रूप अर्थात् चेहरे का देखना, त्वचा (चमड़ी), नेत्र, जीभ, मल (दस्त) और मूत्र आदि के रंग को देखना तथा उन के दूसरे चिह्नों को देखना, इत्यादि। इन सब के दर्शन से भी रोगपरीक्षा हो सकती है, प्रश्नपरीक्षा में यह होता है कि—रोगी की हकीकत को सुन कर तथा पूछ कर आवश्यक बातों का ज्ञान होकर रोग का ज्ञान हो जाता है, अब इन चारों परीक्षाओं का विशेष वर्णन किया जाता है:—

प्रकृतिपरीक्षा ॥

आर्यवैद्यक शास्त्र के मुख्यतया वर्णनीय विषय वात पित्त और कफ, ये तीन ही हैं और इन्हीं पर वैद्यक शास्त्र का आधार है, नाड़ीपरीक्षा में भी ये ही तीनों उपयोगी हैं, इस लिये इन तीनों विषयों का विचार पहिले किया जाता है—

नाड़ी आदि की परीक्षा के विषय पर आने से पहिले यह जानना परम आवश्यक है कि प्रत्येक दोष[2] वाली प्रकृति का क्या २ स्वरूप होता है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को अपनी २ प्रकृति (तासीर) से वाकिफ होना बहुत ही जरूरी है, देखो ! हमारी प्रकृति शान्त है अथवा तामसी (तमोगुण से युक्त) है इस बात को तो प्रायः सब ही मनुष्य आप भी जानते हैं तथा उन के सहवासी (साथ में रहनेवाले) इष्ट मित्र भी जानते हैं, परन्तु वैद्यकशास्त्र के नियम के अनुसार हमारी प्रकृति वात की है, वा पित्त की है, वा कफ की है, वा रक्त की है, अथवा मिश्र (मिलीहुई) है, इस बात को बहुत थोड़े ही पुरुष जानते हैं, इस के न जानने से खान पान के पदार्थों के सामान्य गुण और दोषों का ज्ञान होने पर भी उस से कुछ लाभ नहीं उठा सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जब अपनी प्रकृति को जान लेता है तब इस के बाद खान पान के पदार्थों के सामान्य—गुण दोष को जान कर तथा अपनी प्रकृति के अनुसार उन का उपयोग कर अपनी आरोग्यता को कायम रख सकता है तथा रोग हो जाने पर उन का इलाज भी स्वयं ही कर सकता है।

प्रकृति की परीक्षा में इतनी विशेषता है कि—इस का ज्ञान होने से दूसरी भी बहुत सी परीक्षायें सामान्यतया जानी जा सकती हैं, देखो! यह सब ही जानते हैं कि—सब आदमियों में वात पित्त कफ और खून अवश्य होते हैं परन्तु वे (वात आदि) सब के समान नहीं होते हैं अर्थात् किसी के शरीर में एक प्रधान होता है शेष गौण (अप्रधान) होते हैं, किसी के शरीर में दो प्रधान होते हैं शेष गौण होते हैं, अब इस में यह जान लेना चाहिये कि जिस मनुष्य का जो दोष प्रधान होता है उसी दोष के नाम से उसकी

१—इस का यहां पर उचित समझ कर 'प्रश्नपरीक्षा, नाम रख दिया है ॥

२—वात पित्त और कफ, इन्हीं तीनों का नाम दोष है, क्योंकि ये ही विकृत होकर शरीर को दूषित करते हैं ॥

प्रकृति पहचानी और मानी जाती है, यह भी स्मरण रहे कि–प्रकृति प्रायः मनुष्यों की पृथक् २ होती है, देखो ! यह प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि–एक वस्तु एक प्रकृतिवाले को जो अनुकूल आती है वह दूसरे को अनुकूल नहीं आती है, इस का मुख्य हेतु यही है कि–प्रकृति में भेद होता है, इस उदाहरण से न केवल प्रकृति में ही भेद सिद्ध होता है किन्तु वस्तुओं के खभाव का भी भेद सिद्ध होता है ।

जब मनुष्य स्वयं अपनी प्रकृति को नहीं जान सकता है तब खान पान की वस्तु प्रकृति की परीक्षा कराने में सहायक हो सकती है, इस का दृष्टान्त यही हो सकता है कि–जिस समय दूसरी किसी रीति से रोग की परीक्षा नहीं हो सकती है तब चतुर वैद्य वा डाक्टर ठंढे वा गर्म इलाज के द्वारा रोग का बहुत कुछ निर्णय कर सकते हैं तथा खान पान के पदार्थों के द्वारा प्रकृति की परीक्षा भी कर लेते हैं, जैसे–जब रोगी को गर्म वस्तु अनुकूल नहीं आती है तो समझ लिया जाता है कि इस की पित्त की प्रकृति है, इसी प्रकार ठंढी वस्तु के अनुकूल न आने से वायु की वा कफ की प्रकृति समझ ली जाती है ।

प्रकृति के मुख्य चार भेद हैं—वातप्रधान, पित्तप्रधान, कफप्रधान और रक्तप्रधान, इन चारों का परस्पर मेल होकर जब मिश्रित (मिले हुए) लक्षण प्रतीत होते हैं तब उसे मिश्रप्रकृति कहते हैं, अब इन चारों प्रकृतियों का वर्णन क्रम से करते हैं:—

वातप्रधान प्रकृति के मनुष्य—वातप्रधान प्रकृति के मनुष्य के शरीर के अवयव बड़े होते हैं परन्तु विना व्यवस्था के अर्थात् छोटे बड़े और बेडौल होते हैं, उस का शिर शरीर से छोटा या बड़ा होता है, ललाट मुख से छोटा होता है, शरीर सूखा और रूखा होता है, उस के शरीर का रंग फीका और रक्तहीन (विना खून का) होता है, आंखें काले रंग की होती हैं, बाल मोटे काले और छोटे होते हैं, चमड़ी तेजरहित तथा रूखी होती है परन्तु स्पर्श का ज्ञान जल्दी कर लेती है, मांस के लोचे करड़े होते हैं परन्तु विखरे हुए होते हैं, इस प्रकृतिवाले मनुष्य की गति जल्दी चञ्चल और कांपती हुई होती है, रुधिर की गति परिमाणरहित होती है इसलिये किसी का यदि शिर गर्म होता है तो हाथ पैर ठंढे होते हैं और किसी का यदि शिर ठंढा होता है तो हाथ पैर गर्म होते हैं, मन यद्यपि काम करने में प्रबल होता है परन्तु चञ्चल अर्थात् अस्थिर होता है, यह पुरुष काम और क्रोध आदि वैरियों के जीतने में अशक्त होता है, इस को प्रीति अप्रीति तथा भय जल्दी पैदा होता है, इस की न्याय और अन्याय के विचार करने में सूक्ष्मदृष्टि होती है परन्तु अपने न्याययुक्त विचार को अपने उपयोग में लाना उस को कठिन होता है, यह सब जीवन को अस्थिर अर्थात् चंचल वृत्ति से गुजारता है, सब कामों में जल्दी करता है, उस के शरीर में रोग बहुत जल्दी आता है तथा उस (रोग)

का मिटना भी कठिन होता है, वह रोग का सहन भी नहीं कर सकता है, उस को रोग-समय में चौगुना कष्ट दिखाई देता है, दूसरी प्रकृतिवाले का शरीर और मन ज्यों २ अवस्था आती जाती है त्यों २ शिथिल और मन्द पड़ता जाता है परन्तु वायुप्रधान प्रकृतिवाले का मन अवस्था के बढ़ने पर करड़ा और मजबूत होता जाता है, इस प्रकृति-वाले मनुष्य के अजीर्ण, बद्धकोष्ठ और अतीसार (दस्त) आदि पेट के रोग, शिर का दर्द, चसका, वातरक्त, फेफसे का वरम, क्षय और उन्माद आदि रोगों के होने का अधिक सम्भव होता है, इस प्रकृतिवाले मनुष्य की आयु शक्ति और धन थोड़ा होता है, इस प्रकृति के मनुष्य को तीखे चटपटे गर्मागर्म तथा खारी पदार्थों पर अधिक प्रीति होती है तथा खट्टे मीठे और ठंढे पदार्थों पर अप्रीति (अरुचि) होती है ॥

पित्तप्रधान प्रकृति के मनुष्य—पित्तप्रधान प्रकृति के मनुष्य के शरीर के सब अंग और उपांग खूब सूरत होते हैं, उस के शरीर के बन्धान अच्छे तथा मांस के लोचे ढीले होते हैं, शरीर का रंग पिङ्गल होता है, बाल थोड़े करबरे होते हैं तथा जल्दी सफेद हो जाते हैं, शरीर पर थोड़ी २ फुनसियां हुआ करती हैं, उस को भूख प्यास जल्दी लगती है, उस के मुख शिर और बगल में से दुर्गन्ध आया करती है, इस प्रकृति का मनुष्य बुद्धिमान् और क्रोधी होता है, उस की आंख पेशाब तथा दस्त का रंग पीला होता है, वह साहसी उत्साही तथा क्लेश करने पर सहने की शक्तिवाला होता है, उस की आयु शक्ति द्रव्य और ज्ञान मध्यम होते हैं, इस प्रकृतिवाले को अजीर्ण पित्त और हरस आदि रोगों के होने का अधिक सम्भव होता है, उस को मीठे तथा खट्टे रस पर अधिक प्रीति होती है तथा तीखे और खारी रस पर रुचि कम होती है ॥

कफप्रधानप्रकृति के मनुष्य—कफ प्रधानप्रकृति के मनुष्य का शरीर रमणीक भरा हुआ तथा मजबूत होता है, शरीर का तथा सब अवयवों का रंग सुन्दर होता है, चमड़ी कोमल होती है, बाल रमणीक होते हैं, रंग स्वच्छ होता है, उस की आंखें चिलकती (चमकती) हुई सफेद तथा धूसर रंग की होती हैं, दाँत मैले तथा सफेद होते हैं, उस का स्वभाव गम्भीर होता है, उस में बल अधिक होता है, उसे नींद अधिक आती है, वह आहार थोड़ा करता है, उस की विचारशक्ति कोमल होती है, बोलने की शक्ति थोड़ी होती है, स्मरणशक्ति और विवेकबुद्धि अधिक होती है, उस के विचार न्याययुक्त होते हैं तथा व्यवहार अच्छे होते हैं, उस के शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अधिक होती है, उस के शरीर की चाल मन्द होती है परन्तु मज़बूत होती है, इस प्रकृति का मनुष्य प्रायः ताकतवर धनवान् और लम्बीउम्रवाला होता है, उस के सामान्य कारण से रोग हो जाता है, कफ के संग रस की वृद्धि होती है, उस का शरीर भारी और मेदवाला होता है, उस के द्वारा अशक्ति बढ़ती है, उस का शरीर बहुत स्थूल होता

है, पेट की तोंद छिटक पड़ती है, उस के हाथ और सांधे बड़े तथा स्थूल होते हैं, मांस के लोचे ढीले होते हैं, उस का चेहरा विरस और फीका होता है, उस का शरीर जैसा ऊपर से स्थूल दीखता है वैसी अन्दर ताकत नहीं होती है, निर्बलता; शोथ; जलवृद्धि और हाथी के समान पैरों का होना आदि इस प्रकृति के मुख्य रोग हैं, इस प्रकृतिवाले को तीखे और खारी पदार्थों पर अधिक प्रीति होती है तथा मीठे पदार्थों पर रुचि कम होती है॥

रक्तप्रधान धातु के मनुष्य—वात पित्त और कफ, इन तीन प्रकृतियों के सिवाय जिस मनुष्य में रक्त अधिक होता है उस के ये लक्षण हैं—शरीर की अपेक्षा शिर छोटा होता है, मुँह चपटा तथा चौकोन होता है, ललाट बड़ा तथा बहुतों का पीछे की ओर से ढालू होता है, छाती चौड़ी गम्भीर और लम्बी होती है, खड़े रहने से नाभि पेटकी सपाटी के साथ मिल जाती है अर्थात् न बाहर और न अन्दर दीखती है, चरबी थोड़ी होती है, शरीर पुष्ट तथा खून से भरा हुआ खूबसूरत होता है, बाल नरम पतले और आंटेदार होते हैं, चमड़ी करड़ी होती है तथा उस में से मांस के लोचे दिखलाई देते हैं, नाड़ी पूर्ण और ताकतवर होती है, दाँत मज़बूत तथा पीलापन लिये हुए होते हैं, पीने की चीज़ पर बहुत प्रीति होती है, पाचनशक्ति प्रबल होती है, मेहनत करने की शक्ति बहुत होती है, मानसिक वृत्ति कोमल तथा बुद्धि स्वाभाविक (स्वभावसिद्ध) होती है, इस प्रकार का मनुष्य सहनशील; सन्तोषी; लोगों का उपकार करनेवाला; बोलने में चतुर; सरलभाषी और साहसी होता है, वह हरदम न तो काम में लगा रहना चाहता है और न घर में बैठ कर समय को व्यर्थ में बिताना चाहता है, इस मनुष्य के दाह; फेफसे का वरम; नजला; दाहज्वर; खून का गिरना; कलेजे का रोग और फेफसे का रोग होना अधिक सम्भव होता है, वह धूप का सहन नहीं कर सकता है ॥

यद्यपि जुदी २ प्रकृति की पहिचान करना कठिन है, क्योंकि बहुत से मनुष्यों की मूल प्रकृति दो दो दोषों से मिली हुई भी होती है तथा दोनों दोषों के लक्षण भी मिले हुए होते हैं तथापि एक प्रकृति के लक्षणों का ज्ञान होने के बाद लक्षणों के द्वारा दूसरी प्रकृति का जान लेना कुछ भी कठिन नहीं है।

यदि मनुष्य सूक्ष्म विचार कर देखे तो उस को यह भी मालूम हो जाता है कि-मेरी प्रकृति में अमुक दोष प्रधान है तथा अमुक दोष गौण अथवा कम है, इस प्रकार से जब प्रकृति की परीक्षा हो जाती है तब रोग की परीक्षा; उस का उपाय तथा पथ्यापथ्य का निर्णय आदि सब बातें सहज में बन सकती हैं, इस लिये वैद्य वा डाक्टर को सब से प्रथम प्रकृति की परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि यह अत्यावश्यक बात है।

१—सर्व साधारण को प्रकृति की परीक्षा इस ग्रन्थ के अनुसार प्रथम करनी चाहिये क्योंकि इस में प्रकृति के लक्षणों का अच्छे प्रकार से वर्णन किया है, देखो! परिश्रम और यत्न करने से कठिनसे कठिन कार्य भी हो जाते हैं, यदि लक्षणों के द्वारा प्रकृतिपरीक्षा में सन्देह रहे तो रोगी से पूछ कर भी वैद्य वा डाक्टर परीक्षा कर सकते हैं॥

दोष के और प्रकृति के आपस में कुछ सम्बन्ध है या नहीं? यह एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न है, इस का उत्तर यही है कि–दोष का प्रकृति के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् जिस मनुष्य की प्रकृति में जो दोष प्रधान होता है वही दोष[1] उस मनुष्य की प्रकृति कहा जाता है और बहुधा उस मनुष्य के उसी दोष के कोप से रोग होता है, जैसे–यदि कोई रोगी पुरुष वायुप्रधानप्रकृति का है तो उस के ज्वर आदि जो कोई रोग होगा वह (रोग) वायुरूप दोष के साथ विशेष सम्बन्ध रखनेवाला होगा, इसी प्रकार पित्त और कफ आदि के विषय में भी समझना चाहिये।

अब स्याद्वादमत के अनुसार इस विषय में दूसरा पक्ष दिखलाते हैं—रोग सदा शरीर की मूल प्रकृति के ही अनुसार होता हो यही एकान्त निश्चय नहीं है, क्योंकि अनेक समयों में ऐसा भी होता है कि–रोगी की मूलप्रकृति पित्त की होती है और रोग का कारण वायु होता है, रोगी की प्रकृति वायु की होती है और रोग का कारण पित्त होता है, इस प्रकार बहुत से रोग ऐसे हैं जो कि प्रकृति से बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखते हैं तो भी रोगी के रोग की परीक्षा करने में और उस का इलाज करने में रोगी की प्रकृति का ज्ञान होना बहुत ही उपयोगी है॥

स्पर्शपरीक्षा॥

शरीर के किसी भाग पर हाथ से अथवा दूसरे यन्त्र (औज़ार) से स्पर्श कर यह दर्याफ्त करना कि इस के शरीर में गर्मी की; शर्दी की; खून की तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया कितने अन्दाज़न है, इसी को स्पर्शपरीक्षा मानी है, इस परीक्षा में नाड़ीपरीक्षा, त्वचापरीक्षा, थर्मामेटर (शरीर की गर्मी मापने की नली) और स्टेथोस्कोप (छाती में लगाकर भीतरी विकार को दर्याफ्त करने की नली) का समावेश होता है।

स्पर्शपरीक्षा का सब से पहिला तथा अच्छा साधन तो हाथ ही है, क्योंकि रोग की परीक्षा में हाथ बहुत सहायता देता है, देखो! शरीर गर्म है, वा ठंढा है, सुँहाला है, वा खरखरा है, शरीर के अन्दर का अमुक भाग नरम है, पोला है, वा कठिन है, वा अन्दर के भाग में गांठ है, अथवा शोथ है, इत्यादि सब बातें हाथ के द्वारा स्पर्श करने से शीघ्र ही मालूम होजाती हैं, नाड़ीपरीक्षा भी हाथ से ही होती है जो कि रोग की परीक्षा का उत्तम साधन है, क्योंकि नाड़ी के देखने से शरीर में कितनी गर्मी वा शर्दी है तथा कौन-सा दोष कितने अंश में कुपित है इत्यादि बातों का ज्ञान शीघ्र ही हो जा सकता है, देखो! अनुभवी वैद्य और हकीम अपने अनुभव और अभ्यास से शरीर की गर्मी को केवल नाड़ी पर अंगुलियां रखकर निस्सन्देह कह देते हैं अर्थात् थर्मामेटर जितना काम करता है लगभग उतना ही काम उन का चतुर हाथ और अनुभववाली अंगुलियां कर सकती हैं।

१–सत्य पूछो तो दोष का ही नाम तो प्रकृति है॥

कुछ समय पूर्व स्पर्शपरीक्षा केवल हाथ के द्वारा ही होती थी परन्तु अब अन्वेषण (ढूँढ़ वा खोज) करनेवाले चतुर लोगों ने हाथ का काम दूसरे साधनों से भी लेना शुरू कर दिया है अर्थात् शरीर की गर्मी का माप करने के लिये बुद्धिमानों ने जो थर्मामेटर यन्त्र बनाया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है, क्योंकि इस साधन से एक साधारण आदमी भी स्वयमेव शरीर की गर्मी वा ज्वर की गर्मी का माप कर सकता है, हां इतनी त्रुटि इस में अवश्य है कि इस यन्त्र से केवल शरीर की साधारण गर्मी मालूम होती है किन्तु इस से दोषों के अंशांश का कुछ भी बोध नहीं होता है, इस लिये इस में चतुर वैद्यों के हाथ कई दर्जे इस की अपेक्षा प्रबल जानने चाहियें, बाकी तो रोगपरीक्षा में यह एक सर्वोपरि निदान है, इसी प्रकार हृदय में खून की चाल तथा श्वासोच्छ्वास की क्रिया को जानने के लिये स्टेथोस्कोप नाम की नली भी बुद्धिमान् पश्चिमीय विद्वानों ने बनाई है, यह भी हाथ का काम करती है तथा कान को सहायता देती है, इस लिये यह भी प्रशंसा के योग्य है, तात्पर्य यह है कि-स्पर्शपरीक्षा चाहे हाथ से की जावे चाहे किसी यन्त्रविशेष के द्वारा की जावे उस का करना अत्यावश्यक है, क्योंकि रोगपरीक्षा का प्रधान कारण स्पर्शपरीक्षा है, अतः क्रम से स्पर्श परीक्षा के अंगों का वर्णन संक्षेप से किया जाता है:—

नाड़ीपरीक्षा—हृत्पिण्ड की गति के द्वारा हृदय में से खून बाहर धक्का खाकर धोरी नसों में जाता है, इस से उन नसों में खटका हुआ करता है और उन्हीं खटकों से खून का न्यूनाधिक होना तथा वेग से फिरना मालूम होता है, इसी को नाड़ीज्ञान कहते हैं, इस नाड़ीज्ञानसे रोग की भी कुछ परीक्षा हो सकती है, यद्यपि किसी भी धोरी नस के ऊपर अंगुली के रखने से नाड़ीपरीक्षा हो सकती है तथापि रोगका अधिक निश्चय करने के लिये हाथ के अंगूठे के नीचे नाड़ी को देखते हैं, हाथ के पहुँचे के आगे दो कठिन डोरी के समान नसें हैं, गोरी चमड़ीवाले तथा पतले शरीरवाले पुरुषों के ये रगें स्पष्ट दिखाई देती हैं, उन में से अंगूठे की तरफ की डोरी के समान जो नाड़ी है उसपर बाहर की तरफ हाथ की दो वा तीन अंगुलियों के रखने से अँगुली के नीचे खट २ होता हुआ शब्द मालूम पड़ता है, उन्हीं खटकों को नाड़ी का ठनाका तथा चाल कहते हैं, नाड़ी की इसी धीमी वा तेज़ चाल के द्वारा चतुर वैद्य अंगुलियां रखकर शरीर की गर्मी शर्दी रुधिर की गति तथा ज्वर आदि बातों का ज्ञान कर सकता है ।

नाड़ीपरीक्षा की साधारण रीति यह है कि-एक घड़ी को सामने रख कर एक हाथ से नाड़ी को देखना चाहिये अर्थात् हाथ की दो या तीन अंगुलियों को नाड़ीपर रखकर यह देखना चाहिये कि नाड़ी एक मिनट में कितने ठपके देती है, एक साधारण पुरुष की नाड़ी एक मिनट में ११० ठपके दिया करती है, क्योंकि हृदय में शुद्ध खून का

एक हौद है वह एक मिनट में ११० वार ढीला तथा तंग होता है और खून को धक्का मारता है परन्तु नीरोग शरीर में अवस्था के भेद से नाड़ी की गति भिन्न २ होती है, जिसका वर्णन इस प्रकार है:—

संख्या।	अवस्थाभेद।	एक मिनटमें नाड़ी की गति का क्रम ॥
१	वालक के गर्भस्थ होनेपर ॥	१४० से १५० वार ॥
२	तुरत जन्मे हुए वालक की नाड़ी ॥	१३० से १४० वार ॥
३	पहिले वर्ष में ॥	११५ से १३० वार ॥
४	दूसरे वर्ष में ॥	१०० से ११५ वार ॥
५	तीसरे वर्ष में ॥	९५ से १०५ वार ॥
६	चार से सात वर्षतक ॥	९० से १०० वार ॥
७	आठ से चौदह वर्षतक ॥	८० से ९० वार ॥
८	पन्द्रह से इक्कीस वर्षतक ॥	७५ से ८५ वार ॥
९	वाईस से पचास वर्षतक ॥	७० से ७५ वार ॥
१०	वुढापे में ॥	७५ से ८० वार ॥

नाड़ीज्ञान में समझने योग्य वातें—१-हमारे कुछ शास्त्रों में तथा आधुनिक ग्रन्थों में नाड़ी का हिसाव पलों पर लिखा है, उस हिसाव से इस हिसाव में थोड़ासा फर्क है, यह हिसाव जो लिखा गया है वह विद्वान् डाक्टरों का निश्चय किया हुआ है परन्तु वहुत प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में नाड़ीपरीक्षा कहीं भी देखने में नहीं आती है, इस से यह निश्चय होता है कि-यह परीक्षा पीछे से देशी वैद्यों ने अपनी बुद्धि के द्वारा निकाली है तथा उस को देखकर यूरोपियन विद्वान् डाक्टरों ने पूर्वोक्त हिसाव लगाया है, परन्तु यह हिसाव सर्वत्र ठीक नहीं मिलता है, क्योंकि जाति और स्थिति के भेद से इस में फर्क पड़ता है, देखो! ऊपर के कोठे में नीरोग वड़े आदमी की नाड़ी की चाल एक मिनट में ७० से ७५ वारतक वतलाई है परन्तु इतनी ही अवस्थावाली नीरोग स्त्री की नाड़ी की चाल धीमी होती है अर्थात् पुरुष की अपेक्षा स्त्री की नाड़ी की चालें दश वारह कम होती हैं, इसी प्रकार स्थिति के भेद से भी नाड़ी की गति में भेद होता है, देखो! खड़े हुए पुरुष की अपेक्षा वैठे हुए पुरुष की नाड़ी की चाल धीमी होती है और नींद में इस से भी अधिक धीमी होती है, एवं कसरत करते; दौड़ते; चलते तथा परिश्रम का काम करते हुए पुरुष की नाड़ी की चाल वढ़ जाती है, इस से स्पष्ट है कि नाड़ी की गति का कोई निश्चित हिसाव नहीं है किन्तु इस का यथार्थ ज्ञान अनुभवी पुरुषों के अनुभव पर ही निर्भर है। २-चतुर वैद्य वा हकीम को दोनों हाथों की नाड़ी देखनी चाहियें, क्योंकि कभी २ एक हाथ की धोरी नस अपनी हमेशा की जगह को छोड़ कर

हाथ के पीछे की तरफ से अंगूठे के नीचे के सांधे के आगे चली जाती है उस से नाड़ी देखनेवाले के हाथ में नहीं लगती है तव देखनेवाला घवड़ाता है परन्तु यदि शरीर में खून फिरता होगा तो एक हाथ की नाड़ी हाथ में न लगी तो भी दूसरे हाथ की नाड़ी तो अवश्य ही हाथ में लगेगी, इस लिये दोनों हाथों की नाड़ी को देखना चाहिये। ३–हाथ पर अथवा हाथ के पहुँचे पर कोई पट्टी डोरा वा वाजूवंद आदि वँधा हुआ हो तो नाड़ी का ठीक ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि वांधने से घोरी नस में खून ठीक रीति से आगे नहीं चल सकता है, इसलिये बन्धन को खोल कर नाड़ी देखनी चाहिये। ४–यदि हाथ को शिर के नीचे रख कर सोता हो तो हाथ को निकाल कर पीछे नाड़ी को देखना चाहिये। ५–डरपोक आदमी किसी डर से वा डाक्टर को देख कर जब डर जाता है तव उस की नाड़ी जलदी चलने लगती है इस लिये ऐसे आदमी को दम दिलासा देकर उस का दिल ठहरा कर अथवा वातों में लगाकर पीछें नाड़ी को देखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने पर ही नाड़ी के देखने से ठीक रीति से नाड़ी का ज्ञान होगा। ६–आदमी को बैठाकर वा सुलाकर उस की नाड़ी को देखना चाहिये। ७–परिश्रम किये हुए पुरुष की तथा मार्ग में चलकर तुरत आये हुए पुरुष की नाड़ी को थोड़ीदेरतक बैठने देकर पीछे देखना चाहिये। ८–बहुत खूनवाले पुरुष की नाड़ी बहुत जलदी और जोर से चलती है। ९–प्रातःकाल से सन्ध्यासमय की नाड़ी धीमी चलती[1] है। १०–भोजन करने के वाद नाड़ी का वेग बढ़ता है तथा मद्य चाह और तमाखू आदि मादक और उत्तेजक वस्तु के खाने के पीछे भी नाड़ी की चाल बढ़ जाती है।

इस प्रकार जब नीरोग मनुष्यों की नाड़ी में भी भिन्न २ स्थितियों और भिन्न २ समयों में अन्तर मालूम पड़ता है तो वीमारों की नाड़ी में अन्तर के होने में आश्चर्य ही क्या है, इस लिये नाड़ीपरीक्षा में इन सब वातों[2] को ध्यान में रखना चाहिये।

नाड़ी में दोषों का ज्ञान—नाड़ी में दोषों के जानने के लिये इस दोहे को कण्ठ रखना चाहिये—

तर्जनि मध्य अनामिका, राखु अंगुली तीन ॥
कर अँगूठ के मूल सों, वात पित्त कफ चीन ॥ १ ॥

अर्थात् हाथ में अँगूठे के मूल से तर्जनी[3] मध्यमा[4] और अनामिका[5], ये तीन अंगुलियां

१–क्योंकि दिनभर कार्य कर चुकने से सन्ध्यासमय मनुष्य श्रान्त (थका हुआ) हो जाता है और श्रान्त पुरुष की नाड़ी का धीमा होना स्वाभाविक ही है ॥

२–जिन को ऊपर लिख चुके हैं ॥

३–तर्जनी अर्थात् अंगूठे के पासवाली अंगुली ॥

४–मध्यमा अर्थात् वीच की अंगुली ॥

५–अनामिका अर्थात् कनिष्ठिका (छगुनिया) के पासवाली अंगुली ॥

नाड़ी परीक्षामें लगानी चाहियें और उन से क्रम से वात पित्त और कफ को पहिचानना चाहिये ॥

नाड़ीपरीक्षा का निषेध—जिन २ समयों में और जिन २ पुरुषों की नाड़ी नहीं देखनी चाहिये, उन के स्मरणार्थ इन दोहों को कण्ठ रखना चाहिये—

तुरत नहाया जो पुरुष, अथवा सोया होय ॥
क्षुधा तृषा जिस को लगी, वा तपसी जो कोय ॥ १ ॥
व्यायामी अरु थकित तन, इन में जो कोउ आहि ॥
नाड़ी देखे वैद्य जन, समुझि परै नहिँ वाहि ॥ २ ॥

अर्थात् जो पुरुष शीघ्र ही स्नान कर चुका हो, शीघ्र ही सोकर उठा हो, जिस को भूख वा प्यास लगी हो, जो तपश्चर्या में लगा हो, जो शीघ्र ही व्यायाम (कसरत) कर चुका हो और जिस का शरीर परिश्रम के द्वारा थक गया हो, इतने पुरुषों की नाड़ी उक्त समयों में नहीं देखनी चाहिये, यदि वैद्य वा डाक्टर इन में से किसी पुरुष की नाड़ी देखेगा तो उस को उक्त समयों में नाड़ी का ज्ञान यथार्थ कभी नहीं होगा।

स्मरण रखना चाहिये कि नाड़ीपरीक्षा के विषय में चरक सुश्रुत तथा विद्वान् ब्राह्मणों के बनाये हुए प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में कुछ भी नहीं लिखा है, इसी प्रकार प्राचीन जैन गुप्त (वैश्य) पण्डित वाग्भट्ट ने भी नाड़ीपरीक्षा के विषय में अष्टाङ्ग-हृदय (वाग्भट्ट) में कुछ भी नहीं लिखा है, तात्पर्य यही है कि-प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में नाड़ीपरीक्षा नहीं है किन्तु पिछले बुद्धिमान् वैद्योंने यह युक्ति निकाली है जैसा कि हम प्रथम लिख चुके हैं, हां वेशक श्रीमज्जैनाचार्य हर्षकीर्त्तिसूरिकृत योगचिन्तामणि आदि कई एक प्रामाणिक वैद्यक ग्रन्थों में नाड़ीपरीक्षा का वर्णन है, उस को हम यहां भाषा छन्द में प्रकाशित करते हैं:—

१-तात्पर्य यह है कि तर्जनी अंगुली के नीचे जो नाड़ी का ठपका हो उस से वात की गति को पहिचाने, मध्यमा अंगुलि के नीचे जो नाड़ी का ठपका हो उस से पित्त की गति को पहिचाने तथा अनामिका अंगुलि के नीचे जो नाड़ी का ठपका हो उस से कफ की गति को पहिचाने, देशी वैद्यक शास्त्रों में नाड़ी-परीक्षा का यही क्रम (जो ऊपर कहा गया है) लिखा है, क्योंकि उक्त शास्त्रों का यही सिद्धान्त है कि—अंगूठे के मूल में जो तर्जनी आदि तीन अंगुलियां वरावर लगाई जाती हैं उन में से प्रथम (तर्जनी) अंगुली के नीचे वायु की नाड़ी है, दूसरी (मध्यमा) अंगुली के नीचे पित्त की नाड़ी है तथा तीसरी (अनामिका) अंगुलि के नीचे कफ की नाड़ी है, जिस प्रकार उक्त तीनों अंगुलियों के द्वारा उक्त तीनों दोषों की गति का वोध होता है उसी प्रकार से उक्त अंगुलियों के ही द्वारा मिश्रित दोषों की गति का भी वोध हो सकता है, जैसें-वातपित्त की नाड़ी तर्जनी और मध्यमा के नीचे चलती है, वातकफ की नाड़ी अनामिका और तर्जनी के नीचे चलती है, पित्तकफ की नाड़ी मध्यमा और अनामिका के नीचे चलती है तथा सन्निपात की नाड़ी तीनों अंगुलियों के नीचे चलती है ॥

दोहा—वात वेग पर जो चलै, सांप जोंक ज्यों कोय ॥
पित्तकोप पर सो चले, काक मेंडुकी होय ॥ १ ॥
कफ कोपे तब हंसगति, अथवा गति कापोत ॥
तीन दोष पर चलत सो, तित्तर लव ज्यों होत ॥ २ ॥
टेढ़ी ह्वै उछलत चलै, वात पित्त पर नारि ॥
टेढ़ी मन्दगती चलै, वात सलेषम कारि ॥ ३ ॥
प्रथम उछल पुनि मन्दगति, चले नाड़ि जो कोय ॥
तौ जानो तिस देह में, कोप पित्त कफ होय ॥ ४ ॥

सोरठा—कबहुँ मन्दगति होय, नारी सो नाड़ी चले ॥
कबहुँ शीघ्र गति सोय, दोष दोय तब जानिये ॥ ५ ॥

दोहा—ठहर ठहर कर जो चले, नाड़ी मृत्यु दिखात ॥
पति वियोग ते ज्यों प्रिया, शिर धूनत पछितात ॥ ६ ॥
अति हि क्षीणगति जो चले, अति शीत तर होय ॥
तौ पति की गति नाश की, प्रकट दिखावत सोय ॥ ७ ॥
काम क्रोध उद्वेग भय, बसैं चित्त जिह चार ॥
ताहि वैद्य निश्चय धरै, चलत जलद गति नार ॥ ८ ॥

छप्पय—धातु क्षीण जिस होय मन्द वा अगनी या की ।
तिस की नाड़ी चलत मन्द ते मन्दतरा की ॥

१–दोहों का संक्षेप में अर्थ—वातवेगवाली नाड़ी सांप और जोंक के समान टेढ़ी चलती है, पित्तवेगवाली नाड़ी–काक और मेंडुकी के समान चलती है ॥ १ ॥ कफवेगवाली नाड़ी–हंस और कबूतर के समान चलती है, तीनों दोषोंवाली अर्थात् सन्निपातवेगवाली नाड़ी–तीतर तथा लव (बटेर) के समान चलती है ॥ २ ॥ वातपित्तवेगवाली नाड़ी—टेढ़ी तथा उछलती हुई चलती है, वातकफवेगवाली नाड़ी—टेढ़ी तथा मन्द २ चलती है ॥ ३ ॥ प्रथम उछले पीछे मन्द २ चले तो शरीर में पित्त कफ का कोप जानना चाहिये ॥ ४ ॥ कभी मन्द २ चले तथा कभी शीघ्र गति से चले, उस नाड़ी को दो दोषोंवाली समझना चाहिये ॥ ५ ॥ जो नाड़ी ठहर २ कर चले, वह मृत्युको सूचित करती है, जैसे कि पति के वियोग से स्त्री शिर धुनती और पछताती है॥६॥ जो नाड़ी अत्यन्त क्षीणगति हो तथा अत्यंत शीत हो तो वह स्वामी (रोगी) के नाश की गति को दिखलाती है ॥ ७ ॥ जिस के हृदय में काम क्रोध उद्वेग और भय होते हैं उस की नाड़ी शीघ्र चलती है, यह वैद्य निश्चय जान ले ॥ ८ ॥ जिस की धातु क्षीण हो अथवा जिस की अग्नि मन्द हो उस की नाड़ी अति मन्द चलती है, जो नाड़ी तप्त और भारी चलती हो उस से रुधिर का विकार समझना चाहिये, भारी नाड़ी सम चलती है, बलवती नाड़ी स्थिर रूप से चलती है, भूख से युक्त पुरुष की नाड़ी चपल तथा भोजन किये हुए पुरुष की नाड़ी स्थिर होती है ॥ ९ ॥

तपत तौन तन चलत जोंन सी भारी नारी।
ताहि वैद्य मन धरैं तौन सी रुधिर दुखारी ॥
भारी नाड़ी सम चले स्थिरा वलवती जान।
क्षुधावन्त नाड़ी चपल स्थिरा तृप्तिमय मान ॥ ९ ॥

१-**वायु की नाड़ी**—सांप तथा जोंक की तरह बांकी (टेढी) चलती है।

२-**पित्त की नाड़ी**—कौआ या मेंढक की तरह कूदती हुई शीघ्र चलती है।

३-**कफ की नाड़ी**—हंस कबूतर मोर और मुर्गे की तरह धीरे २ चलती है।

४-**वायुपित्त की नाड़ी**—सांप की तरह टेढ़ी तथा मेंढक की तरह कुदकती हुई चलती है।

५-**वातकफ की नाड़ी**—सांप की तरह टेढ़ी तथा हंस की तरह धीरे २ चलती है।

६-**पित्तकफ की नाड़ी**—कौए की तरह कूदती तथा मोर की तरह मंद चलती है।

७-**सन्निपात की नाड़ी**—लकड़ी वहरने की करवत की तरह वा तीतर पक्षी की तरह चलती २ अटक जाती है, फिर चलती है फिर अटकती है, अथवा दो तीन कुदके मार कर फिर अटक जाती है, इस प्रकार त्रिदोष (सन्निपात) की नाड़ी विचित्र होती है ॥

विशेष विवरण—१-धीमी पड़ कर फिर सरसर (शीघ्र २) चलने लगे उस नाड़ी को दो दोषों की जाने। २-जो नाड़ी अपना स्थान छोड़ दे, जो नाड़ी ठहर २ कर चले, जो नाड़ी बहुत क्षीण हो तथा जो नाड़ी बहुत ठंढी पड़ जावे, यह चार तरह की नाड़ी प्राणघातक है। ३-बुखार की नाड़ी गर्म होती है तथा बहुत जल्द चलती है। ४-चिन्ता तथा डर की नाड़ी मन्द पड़ जाती है। ५-कामातुर और क्रोधातुर की नाड़ी जल्दी चलती है। ६-जिस का खून विगड़ा हो उस की नाड़ी गर्म तथा पत्थर के समान जड़ और भारी होती है। ७-आम के दोष की नाड़ी बहुत भारी चलती है। ८-गर्भवती की नाड़ी गहरी पुष्ट और हलकी चलती है। ९-मन्दाग्नि धातुक्षीणता और नींद से युक्त तथा नींद से तुरत उठे हुए आलसी और सुखी, इन सब की नाड़ी स्थिर चलती है। १०-अतिक्षुधायुक्त की नाड़ी चंचल चलती है। ११-जिसको बहुत दस्त लगते हों उस की नाड़ी बहुत जल्दी चलती है। १२-भोजन के बाद नाड़ी धीमी चलती है। १३-जो नाड़ी टूट २ कर चले, क्षण में धीमी तथा क्षण में जल्दी चले, बहुत जल्दी चले, लक्कड़ के समान करड़ी, स्थिर और टेढ़ी चले बहुत गर्म चले तथा अपने ठिकाने पर चलती २ वन्द हो जावे, ये सब तरह की नाडियां प्राणनाशके चिन्ह को दिखानेवाली हैं ॥

डाक्टरों के मत से नाड़ीपरीक्षा—हमारे वहुत से देशी मनुष्य तथा भोले वैद्यजन ऐसा कहते हैं कि—"डाक्टर लोगों को नाड़ी का ज्ञान नहीं होता है और वे नाड़ी को देखते भी नहीं हैं" इत्यादि, सो उन का यह कथन केवल मूर्खता का है, क्योंकि डाक्टर लोग नाड़ी को देखते हैं तथा नाड़ीपरीक्षा पर ही अनेक वातों का आधार समझते हैं, जिस तरह से वहुत से तवीव नाड़ीपरीक्षा में वहुत गहरे उतरते हैं (वहुत अनुभवी होते हैं) और नाड़ी पर ही वहुत सा आधार रख नाड़ीपरीक्षा के अनुभव से अनेक वातें कह देते हैं और उन की वे वातें मिल जाती हैं तथा जैसे देशी वैद्य जुदे २ वेगों की–नाड़ी के वायु की पित्त की कफ की और त्रिदोष की इत्यादि नाम रखते हैं, इसी तरह डाक्टरी परीक्षा में जल्दी, धीमी, भरी, हलकी, सख्त, अनियमित और अन्तरिया, इत्यादि नाम रक्खे गये हैं तथा जुदे २ रोगों में जो जुदी २ नाड़ी चलती है उस की परीक्षा भी वे लोग करते हैं, जिस का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार है:—

१–**जल्दी नाड़ी**—नीरोगस्थिति में नाड़ी के वेग का परिमाण पूर्व लिख चुके हैं, नीरोग आदमी की दृढ़ अवस्था की नाड़ी की चाल ७५ से ८५ वारतक होती है, परन्तु बीमारी में वह चाल वढ़ कर १०० से १५० वारतक हो जाती है, इस तरह नाड़ी का वेग बहुत बढ़ जाता है, इस को जल्दी नाड़ी कहते हैं, यह नाड़ी क्षयरोग, लू का लगना और दूसरी अनेक प्रकार की निर्वलताओं में चलती है, झड़पवाली नाड़ी के संग हृदय का धवकारा वहुत ज़ोर से चलता है और नाड़ी की चाल हृदय के धवकारों पर ही विशेष आधार रखती है, इस लिये ज्यों २ नाड़ी की चाल जल्दी २ होती जाती है त्यों २ रोग का ज़ोर वहुत वढ़ता जाता है और रोगी का हाल विगड़ता जाता है, वुखार की नाड़ी भी जल्दी होती है तथा ज्वरार्त्त (ज्वर से पीड़ित) रोगी का अंग गर्म रहता है, एवं सादा वुखार, आन्तरिक ज्वर, सन्निपात ज्वर, सांधों का सख्त दर्द, सख्त खांसी, क्षय, मगज़; फेंफसा; हृदय; होजरी और आंतें आदि मर्म स्थानों का शोथ, सख्त मरोड़ा, कलेजे का पकना, आंख तथा कान का पकना, प्रमेह और सख्त गर्मी की टांकी आदि रोगों की दशा में भी जल्दी नाड़ी ही देखी जाती है।

२–**धीमी नाड़ी**—नीरोगावस्था में जैसी नाड़ी चाहिये उस की अपेक्षा मन्द चाल से चलनेवाली नाड़ी को धीमी नाड़ी कहते हैं, जैसे–ठंढ, श्रान्ति, क्षुधा, दिलगीरी, उदासी, मगज़ की कई एक बीमारियां (जैसे मिरगी वेशुद्धि आदि) और तमाम रोगों की अन्तिम दशा में नाड़ी वहुत धीमी चलती है।

३-**भरी नाड़ी**—जिस प्रकार नाड़ीपरीक्षा में अंगुलियों को नाड़ी का वेग अर्थात् चाल मालूम देती है उसी प्रकार नाड़ी का वज़न अथवा कद भी मालूम होता है, यह वज़न अथवा कद जब आवश्यकता से अधिक बढ़ जाता है तब उस को भरी नाड़ी अथवा बड़ी नाड़ी कहते हैं, जैसे—खून के भराव में, पोरुष की दशा में, बुखार में तथा वरम में नाड़ी भरी हुई मालूम देती है, इस भरीहुई नाड़ी से ऐसी हालत मालूम होती है कि शरीर में खून पूरा और बहुत है, जिस प्रकार नदी में अधिक पानी के आने से पानी का जोर बढ़ता है उसी प्रकार खून के भराव से नाड़ी भरीहुई लगती है।

४-**हलकी नाड़ी**—थोड़े खूनवाली नाड़ी को छोटी या हलकी कहते हैं, क्योंकि अंगुलि के नीचे ऐसी नाड़ी का कद पतला अर्थात् हलका लगता है, जिन रोगों में किसी द्वार से खून बहुत चला गया हो या जाता हो ऐसे रोगों में, बहुत से पुराने रोगों में, हैजे में तथा रोग के जाने के बाद निर्बलता में नाड़ी पतली सी मालूम देती है, इस नाड़ी से ऐसा मालूम हो जाता है कि इस के शरीर में खून कम है या बहुत कम हो गया है, क्योंकि नाड़ी की गति का मुख्य आधार खून ही है, इस लिये खून के ही वज़न से नाड़ी के ४ वर्ग किये जाते हैं—भरीहुई, मध्यम, छोटी वा पतली और बेमालूम, खून के विशेप जोर में भरीहुई, मध्यम खून में मध्यम तथा थोड़े खून में छोटी वा पतली नाड़ी होती है, एवं हैज़े के रोग में खून बिलकुल नष्ट होकर नाड़ी अंगुली के नीचे कठिनता से मालूम पड़ती है उस को बेमालूम नाड़ी कहते हैं।

५-**सख्त नाड़ी**—जिस धोरी नस में होकर खून बहता है उस के भीतरी पड़दे की तांतों में संकुचित होने की शक्ति अधिक हो जाती है, इस लिये नाड़ी सख्त चलती है, परन्तु जब वही संकुचित होने की शक्ति कम हो जाती है तब नाड़ी नरम चलती है, इन दोनों की परीक्षा इस प्रकार से है कि नाड़ीपर तीन अंगुलियों को रख कर ऊपर की (तीसरी) अंगुलि से नाड़ी को दबाते समय यदि बाकी की (नीचे की) दो अंगुलियों को धड़का लगे तो समझना चाहिये कि नाड़ी सख्त है और दोनों अंगुलियों को धड़का न लगे तो नाड़ी को नरम समझना चाहिये।

६-**अनियमित नाड़ी**—नाड़ी की परिमाण के अनुकूल चाल में यदि उस के दो ठनकों के बीच में एक सदृश समयविभाग चला आवे तो उसे नियमित नाड़ी (कायदे के अनुसार चलनेवाली नाड़ी) जानना चाहिये, परन्तु जिस समय कोई रोग हो और नाड़ी नियमविरुद्ध (बेकायदे) चले अर्थात् समय विभाग ठीक न चलता हो (एक ठनका जल्दी आवे और दूसरा अधिक देरतक ठहर कर आवे) उस नाड़ी को अनियमित नाड़ी समझना चाहिये, जब ऐसी (अनियमित) नाड़ी चलती है तब

प्रायः इतने रोगों की शंका होती है–हृदय का दर्द, फेफसे का रोग, मगज़ का रोग, सन्निपातज्वर, सुवा रोग और शरीर का अत्यन्त सड़ना, इस नाड़ी से उक्त रोगों के सिवाय अन्य भी कई प्रकार के अत्यन्त भयंकर स्थितिवाले रोगों की सम्भावना रहती है।

७–**अन्तरिया नाड़ी**–जिस नाड़ी के दो तीन ठनके होकर बीच में एकाध ठनके जितनी नागा पड़े अर्थात् ठवका ही न लगे, फिर एकदम दो तीन ठवके होकर पूर्ववत् (पहिले की तरह) नाड़ी बंद पड़ जावे और फिर बारंवार यही व्यवस्था होती रहे वह अन्तरिया नाड़ी कहलाती है, जब हृदय की बीमारी में खून ठीक रीति से नहीं फिरता है तब बड़ी धोरी नस चौड़ी हो जाती है और मगज़ का कोई भाग विगड़ जाता है तब ऐसी नाड़ी चलती है॥

डाक्टर लोग प्रायः नाड़ी की परीक्षा में तीन बातों को ध्यान में रखते हैं वे ये हैं—

१–नाड़ी की चाल जल्दी है या धीमी है। २– नाड़ी का कद बड़ा है या छोटा है। ३–नाड़ी सख्त है या नरम है।

खूनवाले जोरावर आदमी के बुखार में, मगज के शोथ में कलेजे के रोग में और गँठियावायु आदि रोगों में जल्दी, बहुत बड़ी और सख्त नाड़ी देखने में आती है, ऐसी नाड़ी यदि बहुत देरतक चलती रहे तो जान को जोखम आ जाती है, जब बुखार के रोग में ऐसी नाड़ी बहुत दिनोंतक चलती है तब रोगी के बचने की आशा थोड़ी रहती है, हां यदि नाड़ी की चाल धीरे २ कम पड़ती जावे तो रोगी के सुधरने की आशा रहती है, प्रायः यह देखा गया है कि–फश्त खोलने से, जोंक लगाने से, अथवा अपने आप ही खून का रास्ता होकर जब बढ़ा हुआ खून निकल जाता है तो नाड़ी सुधर जाती है, निर्बल आदमी को जब बुखार आता है अथवा शरीरपर किसी जगह सूजन आ जाती है तब उतावली छोटी और नरम नाड़ी चलती है, जब खून कम होता है, आंतों में शोथ होता है तथा पेट के पड़दे पर शोथ होता है तब जल्दी छोटी और सख्त नाड़ी चलती है, यह नाड़ी यद्यपि छोटी तथा महीन होती है परन्तु बहुत ही सख्त होती है, यहांतक कि अंगुलि को तार के समान महीन और करड़ी लगती है, ऐसी नाड़ी भी खून का जोर बतलाती है॥

नाडी के विषय में लोगों का विचार–केवल नाड़ी के देखने से सब रोगों की सम्पूर्ण परीक्षा हो सकती है ऐसा जो लोगों के मनों में हद्द से ज्यादा विश्वास जम गया है उस से वे लोग प्रायः ठगाये जाते हैं, क्योंकि नाड़ी के विषय में झूंठा फांका मारनेवाले धूर्त वैद्य और हकीम अज्ञानी लोगों को अपने वचनजाल में फँसाकर उन्हें मन माना ठगते हैं, इन धूर्तोंने यहांतक लीला फैलाई है कि जिस से नाड़ीपरीक्षा के विषय

में अनेक अद्भुत और असम्भव बातें प्रायः सुनी जाती हैं, जैसे-हाथ में कच्चे सूत का तागा बांधकर सब हाल कह देना इत्यादि, ऐसी बातों में सत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता है किन्तु केवल झूठ ही होता है, इस लिये सुजनों को उचित है कि धूर्तों के बनावटी जाल से बचकर नाड़ीपरीक्षा के यथार्थ तत्त्व को समझें।

इस ग्रन्थ में जो नाड़ीपरीक्षा का विवरण किया है वह नाड़ीज्ञान के सच्चे अभिलाषियों और अभ्यासियों के लिये बहुत उपयोगी है, क्योंकि इस ग्रन्थ में किये हुए विवरण के अनुसार कुछ समयतक अभ्यास और अनुभव होने से नाड़ीपरीक्षा के सूक्ष्म विचार और रोगपरीक्षा की बहुत सी आवश्यक कूंचियां भी मिल सकती हैं, इस लिये विद्वानों की लिखीहुई नाड़ीपरीक्षा अथवा उन्हीं के सिद्धान्त के अनुकूल इस ग्रन्थ में वर्णित नाड़ीपरीक्षा का ही अभ्यास करना चाहिये किन्तु नाड़ीपरीक्षा के विषय में जो धूर्तों ने अत्यन्त झूंठी बातें प्रसिद्ध कर रक्खी हैं उनपर बिलकुल ध्यान नहीं देना चाहिये, देखो! धूर्तों ने नाड़ीपरीक्षा के विषय में कैसी २ मिथ्या बातें प्रसिद्ध कर रक्खी हैं कि रोगी ने छः महीने पहिले अमुक साग खाया था, कल अमुक ने ये २ चीजें खाई थीं, इत्यादि, कहिये ये सब गप्पें नहीं तो और क्या हैं?

बहुत से हकीमसाहबों ने और वैद्यों ने नाड़ी की हद्द से ज्यादा महिमा बढ़ा रक्खी है तथा असम्भव और घड़ीहुई गप्पों को लोगों के दिलों में जमा दी हैं, ऐसे भोले लोगों का जब कभी डाक्टरी चिकित्साके द्वारा रोग का मिटना कठिन होता है अथवा देरी लगती है तब वे मूर्ख लोग डाक्टरों की बेवकूफी को प्रकट करने लगते हैं और कहते हैं कि-"डाक्टरों को नाड़ीपरीक्षा का ज्ञान नहीं है" पीछे वे लोग देशी वैद्य के पास जाकर कहते हैं कि-"हमारी नाड़ी को देखो, हमारे शरीर में क्या रोग है, हम वैद्य उसी को समझते हैं कि-जो नाड़ी देखकर रोग को बतला देवे" ऐसी दशा में जो सत्यवादी वैद्य होता है वह तो सत्य २ कह देता है कि-"भाइयो! नाड़ीपरीक्षा से तुम्हारी प्रकृति की कुछ बातों को तो हम समझ लेंगे परन्तु तुम अपनी अव्वल से आखिरतक जो २ हकीकत बीती है और जो हकीकत है वह सब साफ २ कह दो कि किस कारण से रोग हुआ है, रोग कितने दिनों का हुआ है, क्या २ दवा ली थी और क्या २ पथ्य खाया पिया था, क्योंकि तुम्हारा यह सब हाल विदित होने से हम रोग की परीक्षा कर सकेंगे" यद्यपि विद्वान् तथा चतुर वैद्य नाड़ी को देखकर रोगी के शरीर की स्थिति का बहुत कुछ अनुमान तो स्वयं कर सकते हैं तथा वह अनुमान प्रायः सच्चा भी निकलता है तथापि वे (विद्वान् वैद्य) नाड़ीपरीक्षा पर अतिशय श्रद्धा रखनेवाले अज्ञान लोगों के सामने अपनी परीक्षा देकर आपनी कीमत नहीं करना चाहते हैं, परन्तु

१-अर्थात् केवल नाड़ी देखकर सब वृत्तान्त कह कर ॥ २-कीमत अर्थात् बेकदरी ॥

ऐसे भोले तथा नाड़ीपरीक्षापर ही परम श्रद्धा रखनेवाले जब किन्हीं धूर्त चालाक और पाखण्डी वैद्यों के पास जाते हैं तो वे (वैद्य) नाड़ी देखकर बड़ा आडम्बर रचकर दो बातें वायु की दो बातें पित्त की तथा दो बातें कफ की कह कर और पांच पचीस[1] बातों की गप्पें इधर उधर की हकालते[2] हैं, उस समय उनकी बातों में से थोड़ी बहुत बातें रोगी के बीतेहुए अहवालों[3] से मिल ही जाती हैं तब वे भोले अज्ञान तथा अत्यन्त श्रद्धा रखनेवाले बेचारे रोगीजन उन ठगों से अत्यन्त ठगाते हैं और मन में यह जानते हैं कि–संसार भर में इन के जोड़े का[4] कोई हकीम नहीं है, बस इस प्रकार वे विद्वान् वैद्यों और डाक्टरोंको छोड़कर ढोंगी तथा धूर्त वैद्यों के जाल में फँस जाते हैं।

प्रिय पाठकगण! ऐसे धूर्त वैद्यों से बचो! यदि कोई वैद्य तुम्हारे सामने ऐसा घमण्ड करे कि–मैं नाड़ी को देखकर रोग को बतला सकता हूँ तो उस की परीक्षा पहिले तुम ही कर डालो, बस उस का घमण्ड उतर जावेगा, उस की परीक्षा सहज में ही इस प्रकार हो सकती है कि–पांच सात आदमी इकट्ठे हो जाओ, उन में से आधे मनुष्य जीमलो (भोजन करलो) तथा आधे भूखे रहो, फिर घमण्डी वैद्य को अपने मकान पर बुलाओ चाहे तुम ही उस के मकान पर जाओ और उस से कहो कि–हम लोगों में जीमे हुए कितने हैं और भूखे कितने हैं? इस बात को आप नाड़ी देखकर बताइये, बस इस विषय में वह कुछ भी न कह सकेगा और तुम को उस की परीक्षा हो जावेगी अर्थात् तुम को यह विदित हो जावेगा कि जब यह नाड़ी को देखकर एक मोटी सी[5] भी इस बात को नहीं बता सका तो फिर रोग की सूक्ष्म बातों को क्या बतला सकता है।

बड़े ही शोक का विषय है कि–वर्तमान समय में वैद्यों की योग्यता और अयोग्यता तथा उन की परीक्षा के विषयमें कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है, गरीबों और साधारण लोगों की तो क्या कहें आजकल के अज्ञान भाग्यवान् लोग भी विद्वान् और मूर्ख वैद्य की परीक्षा करनेवाले बहुत ही थोड़े (आटे में नमक के समान) दिखलाई देते हैं, इस लिये सर्व साधारण को उचित है कि–नाड़ीपरीक्षा के यथार्थतत्त्व को समझें और उसी के अनुसार वर्ताव करें, मूर्ख वैद्यों पर से श्रद्धा को हटावें तथा उन के मिथ्याजाल में न फँसें, नाड़ी देखने का जो कायदा हमने आर्यवैद्यक तथा डाक्टरी

१–पांच पचीस अर्थात् बहुतसी ॥

२–हकालते हैं अर्थात् हांकते हैं ॥

३–अहवालों अर्थात् हकीकतों यानी हालों ॥

४–जोड़े का अर्थात् बराबरी का ॥

५–यद्यपि एक विद्वान् अनुभवी वैद्य जिस पुरुषकी नाड़ी पहिले भी देखी हो उस पुरुषकी नाड़ी को देखकर उक्त बात को अच्छे प्रकार से बतला सकता है क्योंकि पहिले लिख चुके हैं कि भोजन करने के बाद नाड़ी का वेग बढ़ता है इत्यादि, परन्तु धूर्त और मूर्ख वैद्य को इन बातों की खबर कहाँ ॥

मत से लिखा है उसे वाचकवृन्द अच्छीतरह समझें तथा इस बात का निश्चय करलें कि रोग पेट में है, शिर में है, नाक में है, वा कान में है, इत्यादि बातें पूर्णतया नाड़ी के देखने से कभी नहीं मालूम पड़ सकती हैं, हां बेशक अनुभवी चिकित्सक रोगी की नाड़ी, चेहरा, आंख, चेष्टा और बात चीत आदि से रोगी की बहुत कुछ हकीकत को जान सकता है तथा रोगी की विशेष हकीकत को सुने विना भी बाहरी जांच से रोगी का मुख्य स्वरूप कह सकता है परन्तु इस से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वैद्य ने सब परीक्षा नाड़ी के द्वारा ही कर ली है और हमेशा नाड़ीपरीक्षा सच्ची ही होती है, जो लोग नाड़ीपरीक्षा पर हद्दसे ज्यादा विश्वास रखकर ठगाते हैं उन से हमारा इतना ही कहना है कि केवल (एकमात्र) नाड़ीपरीक्षा से रोग का कभी आजतक न तो निश्चय हुआ न होगा और न हो सकता है, इस लिये विद्वान् वैद्य वा डाक्टरपर पूर्ण विश्वास रखकर उनकी यथार्थ आज्ञा को मानना चाहिये।

यह भी स्मरण रहे कि–बहुत से वैद्य और डाक्टर लोग रोगी की प्रकृति पर बहुत ही थोड़ा खयाल करते हैं किन्तु रोग के बाहरी चिह्न और हकीकत पर विशेष आधार रख कर इलाज किया करते हैं, परन्तु इसतरह रोगी का अच्छा होना कठिन है, क्योंकि कोई रोगी ऐसे होते हैं कि वे अपने शरीर की पूरी हकीकत खुद नहीं जानते और इसी लिये वे उसे बतला भी नहीं सकते हैं, फिर देखो ! अचेतना और सन्निपात जैसे महा भयंकर रोगों में, एवं उन्माद, मूर्च्छा और मृगी आदि रोगों में रोगी के कहेहुए लक्षणों से रोग की पूरी हकीकत कभी नहीं मालूम हो सकती है, उस समय में नाड़ीपरीक्षा पर विशेष आधार रखना पड़ता है तथा रोगी की प्रकृतिपर इलाज का बहुत आश्रय (आसरा) लेना होता है और प्रकृति की परीक्षा भी नाड़ी आदि के द्वारा अनेक प्रकार से होती है, डाक्टर लोग जो भुँगली लेकर हृदय का धड़का देखते हैं वह भी नाड़ीपरीक्षा ही है क्योंकि हाथ के पहुँचे पर नाड़ी का जो ठबका है वह हृदय का धड़का और खून के प्रवाह का आखिरी धड़का है, शरीर में जिस २ जगह धोरी नस में खून उछलता है वहां २ अंगुलि के रखने से नाड़ीपरीक्षा हो सकती है, परन्तु जब खून के फिरने में कुछ भी फर्क होता है तब पहिली धोरी नसों के अन्त भाग को खून का पोषण मिलना बंद होता है, अन्य सब नाड़ियों को छोड़ कर हाथ के पहुँचे की नाड़ी की ही जो परीक्षा की जाती है उस का हेतु यह है कि–हाथ की जो नाड़ी है वह धोरी नस का किनारा है, इस लिये पहुँचे पर की नाड़ी का धबकारा अंगुलि को स्पष्ट मालूम देता है, इस लिये ही हमारे पूर्वाचार्यों ने नाड़ीपरीक्षा करने के लिये पहुँचे पर की नाड़ी को ठीक २ जगह ठहराई है, पैरों में गिरिये के पास भी यही नाड़ी देखी जाती है क्योंकि वहां भी धोरी नस का किनारा है, (प्रश्न) स्त्री की नाड़ी बायें हाथ की देखते हैं और

पुरुष की नाड़ी दहिने हाथ की देखते हैं, इस का क्या कारण है? (**उत्तर**) धर्मशास्त्र तथा निमित्तादि शास्त्रों में पुरुष का दहिना अंग और स्त्री का वांयां अंग मुख्य माना गया है, अर्थात् निमित्तशास्त्र सामुद्रिक में उत्तम पुरुष और स्त्री के जो २ लक्षण लिखे हैं उन में स्पष्ट कहा है कि-पुरुष के दहिने अंग में और स्त्री के वांयें अंग में लक्षणों को देखना चाहिये, इसी प्रकार जो २ अंग प्रस्फुरण (अंगों का फड़कना) आदि अंग सम्बन्धी शकुन माने गये हैं वे पुरुष के दहिने अंग के तथा स्त्री के वांयें अंग के गिने जाते हैं, तात्पर्य यह है कि लक्षण आदि सब ही वातों में पुरुष से स्त्री में ठीक विपरीतता मानी जाती है, इसी लिये संस्कृत भाषा में स्त्री का नाम वामा है, अतः पुरुष का दहिना अंग प्रधान है और स्त्री का वांयां अंग प्रधान है, इस लिये पुरुष के दहिने हाथ की और स्त्री की वांयें हाथ की नाड़ी देखने की रीति है, वाकी तो दोनों हाथों में धोरी नस का किनारा है और वैद्यक शास्त्र में दोनों हाथों की नाड़ी देखना लिखा है। (**प्रश्न**) हम ने वहुत से वैद्यों के मुख से सुना है कि-नाभिस्थान में वहुत सी नाड़ियों का एक गुच्छा कछुए के आकार का वना हुआ है, वह पुरुष के सुलटा (सीधा) और स्त्री के उलटा मुख कर के रहता है इस लिये पुरुष के दहिने हाथ की और स्त्री के वांये हाथ की नाड़ी देखी जाती है। (**उत्तर**) इस वात की चर्चा मासिकपत्रों में अनेक वार छप चुकी है तथा इस वात का निश्चय हो चुका है कि-नाभिस्थान में नाड़ियों का कोई गुच्छा नहीं है, इस के सिवाय डाक्टर लोग (जो कि शरीर को चीरने फाड़ने का काम करते हैं तथा शरीर की रग रग से पूरे विज्ञ (वाकिफ) हैं) कहते हैं कि-"यह वात विलकुल गलत है" भला कहिये कि ऐसी दशा में नाभिस्थान में नसों के गुच्छे का होना कैसे माना जा सकता है? इस लिये बुद्धिमानों को अब इस असत्य वात को छोड़ देना चाहिये, क्योंकि प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है[1] ॥

त्वचापरीक्षा—त्वचा के स्पर्श से शरीर की गर्मी शर्दी तथा पसीने आदि की परीक्षा होती है, इस का संक्षेप से वर्णन इस प्रकार है—

१-**दोष युक्त चमड़ी**—वायुरोगवाले की चमड़ी ठंढी, पित्तरोगवाले की गर्म और कफरोगवाले की भीगी होती है, यद्यपि यह नियम सर्वत्र नहीं होता है तथापि प्रायः ये (ऊपर लिखे) लक्षण होते हैं।

२-**गर्म चमड़ी**—पित्त और सव प्रकार के वुखारों में चमड़ी गर्म होती है, चमड़ी की उष्णता से भी वुखार की गर्मी मालूम हो जाती है परन्तु अन्तर्वेगी (जिस का वेग भीतर ही हो ऐसे) ज्वर में वुखार अन्दर ही होता है इस लिये वाहर की चमड़ी वहुत गर्म नहीं होती है किन्तु साधारण होती है, इस अवस्था (दशा)

१-'प्रत्यक्षे किम्प्रमाणम्' इति न्यायात् ॥

में चमड़ी की परीक्षा में वैद्य लोग प्रायः धोखा खा जाते हैं, ऐसे अवसर पर नाड़ीपरीक्षा के द्वारा अथवा थर्मामेटर के द्वारा अन्तर (अन्दर) की गर्मी जानी जा सकती है, कभी २ ऐसा भी होता है कि–ऊपर से तो चमड़ी जलती हुई तथा बुखार सा मालूम देता है परन्तु अन्दर बुखार नहीं होता है।

३–**ठंढी चमड़ी**—बहुत से रोगों में शरीर की चमड़ी ठंढी पड़ जाती है, जैसे–बुखार के उतर जाने के बाद निर्बलता (नाताकती) में, दूसरी बीमारियों से उत्पन्न हुई निर्बलता में, हैज़े में तथा बहुत से पुराने रोगों में चमड़ी ठंढी पड़ जाती है, जब कभी किसी सख्त बीमारी में शरीर ठंढा पड़ जावे तो पूरी जोखम (ख़तरा) समझनी चाहिये।

४–**सूखी चमड़ी**—चमड़ी के छेदों में से सदा पसीना निकलता रहता है उस से चमड़ी नरम रहती है परन्तु जब कईएक रोगों में पसीना निकलना बंद हो जाता है तब चमड़ी सूखी और खरखरी हो जाती है, बुखार के प्रारम्भ में पसीना निकलना बन्द हो जाता है इस लिये बुखारवाले की तथा बादी के रोगवाले की चमड़ी सूखी होती है।

५–**भीगी चमड़ी**–आवश्यकता से अधिक पसीना आने से चमड़ी भीगी रहती है, इस के सिवाय कई एक रोगों में भी चमड़ी ठंढी और भीगी रहती है और ऐसे रोगों में रोगी को पूरा डर रहता है, जैसे–सन्धिवात (गँठिया) में चमड़ी गर्म और भीगी रहती है तथा हैज़े में ठंढी और भीगी रहती है, निर्बलतामें बहुत ठंढा और भीगा अंग जोखम को जाहिर करता है, यदि कभी रातको पसीना हो, चमड़ी भीगी रहे और निर्बलता (नाताकती) बढ़ती जावे तो क्षयके चिन्ह समझकर जल्दी ही सावधान हो जाना चाहिये॥

थर्मामेटर—शरीर में कितनी गर्मी है, इस बात का ठीक माप थर्मामेटर से हो सकता है, थर्मामेटर काच की नली में नीचे पारे से भराहुआ गोल पपोटा (काच का गोल बल्ब) होता है, इस पारेवाले बल्ब को मुँह में जीभ के नीचे वा बगल में पांच मिनटतक रख कर पीछे बाहर निकाल कर देखते हैं, उस के अन्दर का पारा शरीर की गर्मी से ऊपर चढ़ता है तथा शर्दी से नीचे उतरता है, अच्छे तनदुरुस्त आदमी के शरीर की गर्मी साधारणतया ९८ से १०० डिग्री के बीच में रहती है, बहुतों के शरीर में मध्यम गर्मी ९८ से ९९ होती है और बाहर की गर्मी अथवा परिश्रम से उस में कुछ २ बढ़ोतरी (वृद्धि) होती है तब पारा १०० तक चढ़ता है, नींद में और सम्पूर्ण शान्ति के समयों में एकाध डिग्री गर्मी कम होती है, रोग में शरीर की गर्मी विशेष चढ़ाव और उतार करती है और शरीर की स्वाभाविक गर्मी से पारा अधिक उतर जाता

है वा चढ़ जाता है, सादे बुखार में वह पारा १०१ से १०२ तक चढ़ता है, सख्त बुखार में १०४ तक चढ़ता है और अधिक भयंकर बुखारमें १०५ से लेकर आखिरकार १०६½ तक चढ़ता है, शरीर के किसी मर्मस्थान में शोथ (सूजन) और दाह होता है तब बुखार की गर्मी बढ़कर १०८ तक अथवा इस से भी ऊपर चढ़ जाती है, ऐसे समय में रोगी प्रायः बचता नहीं है, स्वाभाविक गर्मी से दो डिग्री गर्मी बढ़ जाती है और उस से जितना भय होता है उस की अपेक्षा एक डिग्री भी गर्मी जब कम हो जाती है उस में अधिक भय रहता है, हैजे में जब शरीर अन्त में ठंढा पड जाता है तब शरीर की गर्मी घट कर अन्त में ७७ डिग्री पर जाकर ठहरती है, उस समय रोगी का बचना कठिन हो जाता है, जबतक १०४ डिग्री के अन्दर बुखार होता है वहाँतक तो डर नहीं है परन्तु उस के आगे जब गर्मी बढ़ती है तब यह समझ लिया जाता है कि रोग ने भयङ्कर रूप धारण कर लिया है, ऐसा समझ कर बहुत जल्दी उस का उचित इलाज करना चाहिये, क्योंकि साधारण दवा से आराम नहीं हो सकता है, इस में गफलत करने से रोगी मर जाता है, जब स्वाभाविक गर्मी से एक डिग्री गर्मी बढ़ती है तब नाड़ी के स्वाभाविक ठवकों से १० ठवके बढ़ जाते हैं, बस नाड़ी के ठवकों का यही क्रम समझना चाहिये कि एक डिग्री गर्मी के बढ़ने से नाड़ी के दश दश ठवके बढ़ते हैं, अर्थात् जिस आदमी की नाड़ी आरोग्यदशा में एक मिनट में ७५ ठवके खाती हो उस की नाड़ी में एक डिग्री गर्मी बढ़ने से ८५ ठवके होते हैं तथा दो डिग्री गर्मी बढ़ने से बुखार में एक मिनट में ९५ वार धड़के होते हैं, इसी प्रकार एक एक डिग्री गर्मी के बढ़ने के साथ दश दश ठवके बढ़ते जाते हैं, जब बगल भीगी होती है अथवा हवा या ज़मीन भीगी होती है तब थर्मामेटर से शरीर की गर्मी ठीक रीति से नहीं जानी जा सकती है, इस लिये जब बगल में थर्मामेटर लगाना हो तब बगल का पसीना पोंछ कर फिर थर्मामेटर लगाकर पांच मिनट तक दबाये रखना चाहिये, इस के बाद उसे निकालकर देखना चाहिये, जिस प्रकार थर्मामेटर से शरीर की गर्मी प्रत्यक्ष दीखती है तथा उसे सब लोग देख सकते हैं उस प्रकार नाड़ीपरीक्षा से शरीर की गर्मी प्रत्यक्ष नहीं दीखती है और न उसे हर एक पुरुष देख सकता है॥

इस यन्त्र में बड़ी खूबी यह है कि-इस के द्वारा शरीर की गर्मी के जानने की क्रिया को हर एक आदमी कर सकता है इसी लिये बहुत से भाग्यवान् इस को अपने घरों में रखते हैं और जो नहीं रखते हैं उन को भी इसे अवश्य रखना चाहिये[1]॥

१-प्रिय मित्रो! देखो!! इस ग्रन्थकी आदि में हम विद्या को सब से बढ़ कर कह चुके हैं, सो आप लोग प्रत्यक्ष ही अपनी नज़रसे देख रहे हैं परन्तु शोक का विषय है कि-आप लोग उस तरफ कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, विद्या के महत्त्व को देखिये कि थर्मामेटर की नली में केवल दो पैसे का सामान है, परन्तु बुद्धिमान् और विद्याधर यूरोपियन अपनी विद्या के गुण से उस का मूल्य पांच रुपये लेते हैं, जिन्हों ने इस को निकाला था वे कोट्यधिपति (करोड़पति) हो गये, इसी लिये कहा जाता है कि-'लक्ष्मी विद्या की दासी है,॥

स्टेथोस्कोप—इस यन्त्र से फेफसा, श्वास की नली, हृदय तथा पसलियों में होती हुई क्रिया का बोध होता है, यद्यपि इस के द्वारा जिस प्रकार उक्त विषय का बोध होता है उस का वर्णन करना कुछ आवश्यक है परन्तु इस के द्वारा जांचने की क्रिया का ज्ञान ठीक रीति से अनुभवी डाक्टरों के पास रह कर सीखने से तथा अपनी बुद्धि के द्वारा उस का सब वर्त्ताव देखने ही से हो सकता है, इस लिये यहां उस के अधिक वर्णन करने की आवश्यकता नहीं समझी गई ॥

दर्शनपरीक्षा ॥

आंख से देख कर जो रोगी की परीक्षा की जाती है उसे यहां दर्शनपरीक्षा के नाम से लिखी है, इस परीक्षा में जिह्वा, नेत्र, आकृति (चेहरा), त्वचा, मूत्र और मल की परीक्षा का समावेश समझना चाहिये, इन का संक्षेपतया क्रम से वर्णन किया जाता है:—

जिह्वापरीक्षा—जिह्वा की दशा से गले होजरी और आँतों की दशा का ज्ञान होता है, क्योंकि जिह्वा के ऊपर का बारीक पड़त गले होजरी और आँतों के भीतरी बारीक पड़त के साथ जुड़ा हुआ और एक सदृश (एकरस अर्थात् अत्यन्त) मिला हुआ है, इस के सिवाय जिह्वापरीक्षा के द्वारा दूसरे भी कई एक रोग जाने जा सकते हैं, क्योंकि जीभ के गीलेपन रंग और ऊपरी मैल से रोगों की परीक्षा हो सकती है, आरोग्यदशा में जीभ भीगी और अच्छी होती है तथा उस की अनी ऊपर से कुछ लाल होती है, अब इस की परीक्षा के नियमों का कुछ वर्णन करते हैं:—

भीगी जीभ—अच्छी हालत में जीभ थूक से भीगी रहती है परन्तु बुखार में जीभ सूखने लगती है, इस लिये जब जीभ भीगी हुई हो तो समझ लेना चाहिये कि बुखार नहीं है, इसी प्रकार हर एक रोग में जीभ सूख कर जब फिर भीगनी शुरू हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि रोग अच्छा होनेवाला है, यद्यपि रोग दशा में जल के पीने से एक बार तो जीभ गीली हो जाती है परन्तु जो बुखार होता है तो तुरत ही फिर भी सूख जाती है ॥

सूखी जीभ—बहुत से रोगों में आवश्यकता के अनुसार शरीर में रस उत्पन्न नहीं होता है और रस की कमी से उसी कदर थूक भी थोड़ा पैदा होता है इस से जीभ सूख जाती है और रोगी को भी जीभ सूखी हुई मालूम देती है, उस समय रोगी कहता है कि–मेरा सब मुँह सूख गया, इस प्रकार की जीभ पर अंगुलि के लगाने से भी वह सूखी और करड़ी मालूम पड़ती है, बुखार, शीतला, ओरी तथा दूसरे भी तमाम चेपी बुखारों में, होजरी तथा आँतों के रोगों में और बहुत जोर के बुखार में जीभ सूख जाती है अर्थात् ज्यों २ बुखार अधिक होता है त्यों २ जीभ अधिक सूखती है, जीभ का करड़ा होना मौत की निशानी है ॥

लाल जीभ—जीभ की अनी तथा उस का किनारे का भाग सदा कुछ लाल होता है परन्तु यदि सब जीभ लाल हो जावे अथवा उस का अधिक भाग लाल हो जावे तो शीतला, मुखपाक, मुँह का आना, पेट का शोथ तथा सोमल विष का खाना, इतने रोगों का अनुमान होता है, बुखार की दशा में भी जीभ अनीपर तथा दोनों तरफ कोरपर अधिक लाल हो जाती है ॥

फीकी जीभ—शरीर में से बहुत सा खून निकलने के पीछे अथवा बुखार तिल्ली और इसी प्रकार की दूसरी बीमारियों में भी शरीर में से रक्तकणों के कम हो जाने से जैसे चेहरा तथा चमड़ी फीकी पड़ जाती है उसी प्रकार जीभ भी सफेद और फीकी पड़ जाती है ॥

मैली जीभ—कई रोगों में जीभपर सफेद थर आ जाती है उसी को मैली जीभ कहते हैं, बहुत सख्त बुखार में, सख्त सन्धिवात में, कलेजे के रोग में, मगज़ के रोग में और दस्त की कब्जी में जीभ मैली हो जाती है, इस दशा में जीभ की अनी और दोनों तरफ की कोरों से जब जीभ का मैल कम होना शुरू हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि रोग कम होना शुरू हुआ है, परन्तु यदि जीभ के पिछले भाग की तरफ से मैल की थर कम होना शुरू हो तो जानना चाहिये कि रोग धीरे २ घटेगा अभी उस के घटने का आरंभ हुआ है, यदि जीभ के ऊपर की थर जल्दी साफ हो जावे और जीभ का वह भाग लाल चिलकता हुआ और फटा हुआसा दीखे तो समझना चाहिये कि बीच में कोई स्थान सड़ा है वा उस में ज़खम हो गया है, क्योंकि जीभ का इस प्रकार का परिवर्त्तन खराबी के चिह्नों को प्रकट करता है, बहुत दिनों के बुखार में जीभ की थर भूरी अथवा तमाखू के रंग की होती है और जीभ के ऊपर बीच में चीरा पड़ता है वह भी बड़ी भयंकर बीमारी का चिह्न है, पित्त के रोग में जीभ पर पीला मैल जमता है।

काली जीभ—कई एक रोगों में जीभ जामूनी रंग की (जामून के रंग के समान रंगवाली) या काले रंग की होती है, जैसे दम श्वास और फेफसे के साथ सम्बंध रखनेवाले खांसी आदि रोगों में जब श्वास लेने में अड़चल (दिक़्क़त) पड़ती है तब खून ठीक रीति से साफ नहीं होता है इस से जीभ काली झांखी अथवा आसमानी रंग की होती है, स्मरण रहे कि—कई एक दूसरे रोगों में जब जीभ काले रंग की होती है तब रोगी के बचने की आशा थोड़ी रहती है।

काँपती हुई जीभ—सन्निपात में, मगज़ के भयंकर रोग में तथा दूसरे भी कई एक भयंकर वा सख्त रोगों में जीभ काँपा करती है, यहाँ तक कि वह रोगी के

अधिकार (काबू) में नहीं रहती है अर्थात् वह उसे बाहर निकालता है तब भी वह काँपती है, इस प्रकार काँपती हुई जीभ अत्यन्त निर्बलता और भय की निशानी है।

सामान्यपरीक्षा—बहुत से रोगों की परीक्षा करने में जीभ दर्पणरूप है अर्थात् जीभ की भिन्न २ दशा ही भिन्न २ रोगों को सूचित कर देती है, जैसे–देखो! जीभ पर सफेद मैल जमा हो तो पाचनशक्ति में गड़बड़ समझनी चाहिये, जो मोटी और सूजी हुई हो तथा दाँतों के नीचे आ जाने से जिस में दाँतों का चिह्न बन जावे ऐसी जीभ होजरी तथा मगज़तन्तुओं में दाह के होने पर होती है, जीभ पर मीटा तथा पीले रंग का मैल हो तो पित्तविकार जानना चाहिये, जीभ मैं कालापन तथा भूरे रंग का पड़त खराब बुखार के होने पर होता है, जीभ पर सफेद मैल का होना साधारण बुखार का चिह्न है, सूखी; मैलवाली; काली और काँपती हुई जीभ इक्कीस दिनों की अवधिवाले भयंकर सन्निपातज्वर का चिह्न है, एक तरफ लोचा करती हुई जीभ आधी जीभ में वादी आने का चिह्न है, जब जीभ बड़ी कठिनता तथा अत्यंत परिश्रम से बाहर निकले और रोगी की इच्छा के अनुसार अन्दर न जावे तो समझना चाहिये कि रोगी बहुत ही शक्तिहीन और दुर्दशापन्न (दुर्दशा को प्राप्त) हो गया है, बहुत भारी रोग हो और उस में फिर जीभ कांपने लगे तो बड़ा डर समझना चाहिये, हैजा, होजरी और फेफसे की बीमारी में जब जीभ सीसे के रंग के समान झांखी दिखलाई देवे तो खराब चिह्न समझना चाहिये, यदि कुछ आसमानी रंग की जीभ दिखलाई देवे तो समझना चाहिये कि खून की चाल में कुछ अवरोध (रुकावट) हुआ है, मुँह पक जावे और जीभ सीसे के रंग के समान हो जावे तो वह मृत्यु के समीप होने का चिह्न है, वायु के दोष से जीभ खरदरी फटी हुई तथा पीली होती है, पित्त के दोष से जीभ कुछ २ लाल तथा कुछ काली सी पड़ जाती है, कफ के दोष से जीभ सफेद भीगी हुई और नरम होती है, त्रिदोष से जीभ कांटेवाली और सूखी होती है तथा मृत्युकाल की जीभ खरखरी, अन्दर से बढ़ी हुई, फेनवाली, लकड़ी के समान करड़ी और गतिरहित हो जाती है[1]।

नेत्रपरीक्षा—रोगी के नेत्रों से भी रोग की परीक्षा होती है जिसका विवरण इस प्रकार है–वायु के दोष से नेत्र रूखे, निस्तेज, धूम्रवर्ण (धुएँ के समान धूसर रंगवाले), चञ्चल तथा दाहवाले होते हैं, पित्त के दोष से नेत्र पीले, दाहवाले और दीपक आदि के तेज को न सह सकनेवाले होते हैं, कफ के दोष से नेत्र भीगे, सफेद, नरम, मन्द,

१–देशी वैद्यकशास्त्र की अपेक्षा यहां पर हम ने डाक्टरी मतानुसार जिह्वापरीक्षा अधिक विस्तार से लिखी है॥

निस्तेज, तन्द्रायुक्त, कृष्ण और जड़[1] होते हैं, त्रिदोष (सन्निपात) के नेत्र भयंकर, लाल, कुछ काले और मिचे हुए होते[2] हैं।

आकृतिपरीक्षा—आकृति (चेहरा) के देखने से भी बहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, प्रातःकाल में रोगी की आकृति तेजरहित विचित्र और झांकने से काली दीखती हो तो वादी का रोग समझना चाहिये, यदि आकृति पीली मन्द और शोथयुक्त दीखे तो पित्त का रोग समझना चाहिये; यदि आकृति मन्द और तेलिया (तेल के समान चिकनी) दीखे तो कफ का रोग समझना चाहिये, स्वाभाविक नीरोगता की आकृति शान्त स्थिर और सुखयुक्त होती है, परन्तु जब रोग होता है तब रोग से आकृति फिर (बदल) जाती है तथा उस का स्वरूप तरह २ का दीखता है, रात दिन के अभ्यासी वैद्य आकृति को देख कर ही रोग को पहिचान सकते हैं, परन्तु प्रत्येक वैद्य को इस (आकृति) के द्वारा रोग की पहिचान नहीं हो सकती है।

आकृति की व्यवस्था का वर्णन संक्षेप से इस प्रकार है:—

१-**चिन्तायुक्त आकृति**—सख्त बुखार में, बड़े भयंकर रोगों की प्रारम्भदशा में, हिचकी तथा खैंचातान के रोगों में, दम तथा श्वास के रोग में, कलेजे और फेफसे के रोग में, इत्यादि कई एक रोगों में आकृति चिन्तायुक्त अथवा चिन्तातुर रहती है।

२-**फीकी आकृति**—बहुत खून के जाने से, जीर्ण ज्वर से, तिल्ली की बीमारी से, बहुत निर्बलता से, बहुत चिन्ता से, भय से तथा भर्त्सना से, इत्यादि कई कारणों से खून के भीतरी लाल रजःकणों के कम हो जाने से आकृति फीकी हो जाती है, इसी प्रकार ऋतुधर्म में जब स्त्री का अधिक खून जाता है अथवा जन्म से ही जो शक्तिहीन बांधेवाली स्त्री होती है उस का बालक बारंवार दूध पीकर उस के खून को कम कर देता है और उस को पुष्टिकारक भोजन पूर्णतया नहीं मिलता है तो स्त्रियों की भी आकृति फीकी हो जाती है।

३-**लाल आकृति**—सख्त बुखार में, मगज़ के शोथ में तथा लू लगने पर लाल आकृति हो जाती है, अर्थात् आंखें खून के समान लाल हो जाती हैं और गालों

१-जड़ अर्थात् क्रियारहित ॥

२-इसी विषय का वर्णन किसी विद्वान् ने दोहों में किया है, जो कि इस प्रकार है—वातनेत्र रूखे रहें, धूम्रज रंग विकार ॥ झमकें नहिं चञ्चल खुले, काले रंग विकार ॥ १ ॥ पित्तनेत्र पीले रहें, नीले लाल तपेह ॥ तप्त धूप नहिं दृष्टि दिक, लक्षण ताके येह ॥ २ ॥ कफज नेत्र ज्योतीरहित, चिट्टे जलभर ताहि ॥ भारे बहुता हि प्रभा, मन्द दृष्टि दरसाहि ॥ ३ ॥ काले खुले जु मोह सों, व्याकुल अरु विकराल ॥ रूखे कबहूँ लाल हों, त्रैदोषज समभाल ॥ ४ ॥ तीन तीन दोषहि जहाँ, त्रैदोषज सो मान ॥ दो २ दोष लखे जहाँ, द्वन्द्वज तहाँ पिछान ॥ ५ ॥ इन दोहों का अर्थ सरल ही है इस लिये नहीं लिखते हैं ॥

पर गुलावी रंग मालूम होता है तथा गाल उपसे हुए मालूम होते हैं, जब आकृति लाल हो उस समय यह समझना चाहिये कि खून का शिर की तरफ तथा मगज़ में अधिक जोश चढ़ा है ।

४-**फूली हुई आकृति**—बहुत निर्वलता जीर्णज्वर और जलोदर आदि रोगों में आकृति फूली हुई अर्थात् थोथरवाली होती है, आंख की ऊपर की चमड़ी चढ़ जाती है, गाल में अंगुलि के दवाने से गड्ढा पड़ जाता है तथा आकृति सूजी हुई दीखती है ।

५-**अन्दर खुड्डी बैठी हुई आकृति**—जैसे वृक्ष की शाखा के पत्ते तथा छिलकों के छीलने के वाद शाखा सूड़ी हुई मालूम होती है इसी प्रकार कई एक भयंकर रोगों की अन्तिम अवस्था में रोगी की आकृति वैसी ही हो जाती है, देखो ! हैज़े में मरने के समय जो आकृति बनती है वह प्रायः इसी प्रकार की होती है, इस दशा में ललाट में सल, आंख के डोले अन्दर घुसे हुए, आंख में गड्ढे पड़े हुए, नाक अनीदार, कनपटी के आगे गड्ढे पड़े हुए, गाल बैठे हुए, हाड़ों पर सल पड़े हुए तथा आकृति का रंग आसमानी होता है, ऐसे लक्षण जब दिखलाई देने लगें तो समझ लेना चाहिये कि रोगी का जीना कठिन है ॥

त्वचापरीक्षा—जैसे त्वचा के स्पर्शसे गर्मी और ठंढ की परीक्षा होती है उसी प्रकार त्वचा के रंग से तथा उस में निकली हुई कुछ चटों और गांठों आदि से शरीर के दोषों का कुछ अनुमान हो सकता है, शीतला ओरी और अचपड़ा (आकड़ा काकड़ा) आदि रोगों में पहिले बुखार आता है उस बुखार को लोग बेसमझी से पहिले सादा बुखार समझ लेते हैं परन्तु फिर त्वचा का रंग लाल हो जाता है तथा उस पर महीन २ दाने निकल आते हैं वे ही उक्त रोगों की पहिचान करा सकते हैं इस लिये उन्हें अच्छी तरह से देखना चाहिये, यदि शरीर पर कोई स्थान लाल हो अथवा कहीं पर सूजन हो तो उसे खून के ज़ोर से अथवा पित्त के विकार से समझना चाहिये, जिस की त्वचा का रंग काला पड़ता जावे उस के शरीर में वायु का दोष समझना चाहिये, जिस के शरीर का रंग पीला पड़ता जावे उस के शरीर में पित्त का दोष समझना चाहिये, जिस के शरीर का रंग गोरा और सफेद पड़ता जावे उस के शरीर में कफ का दोष समझना चाहिये तथा जिस के शरीर की त्वचा का रंग बिलकुल रूखा होकर अन्दर चीरा २ सा दिखाई देवे तो समझ लेना चाहिये कि खून बिगड़ गया है अथवा तप गया है, लोग इसे गर्मी कहते हैं, जब त्वचा तक खून नहीं पहुँचता है तब त्वचा गर्म और रूखी पड़ जाती है, यदि त्वचा का रंग ताँबे के रंग के समान (तामड़ा) हो तो समझ लेना चाहिये कि रक्तपित्त तथा वातरक्त का रोग है, यदि त्वचा पर काले

चट्टे और धव्वे पड़ें तो समझ लेना चाहिये कि इस को ताज़ी और अच्छी खुराक नहीं मिली है इस लिये खून विगड़ गया है, इसी तरह से एक प्रकार के चट्टे और विस्फोटक हों तो समझ लेना चाहिये कि इस को गर्मी का रोग है, हैज़े की निकृष्ट वीमारी में त्वचा तथा नखों का रंग आसमानी और काला पड़ जाता है और यही उस के मरने की निशानी है इस तरह त्वचा के द्वारा वहुत से रोगों की परीक्षा होती है।

मूत्रपरीक्षा—नीरोग आदमी के मूत्र का रंग ठीक सूखी हुई घास के रंग के समान होता है, अर्थात् जिस तरह सूखी हुई घास न तो नीली, न पीली, न लाल, न काली और न सफेद रंग की होती है किन्तु उस में इन सव रंगों की छाया झलकती रहती है, वस उसी प्रकार का रंग नीरोग आदमी के मूत्र का समझना चाहिये, मूत्र के द्वारा भी वहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, क्योंकि मूत्र खून में से छूट कर निकला हुआ निरुपयोगी (विना उपयोग का) प्रवाही (वहनेवाला) पदार्थ है, क्योंकि खून को शुद्ध करने के लिये मूत्राशय मूत्र को खून में से खींच लेता है, परन्तु जव शरीर में कोई रोग होता है तव उस रोग के कारण खून का कुछ उपयोगी भाग भी मूत्र में जाता है इस लिये मूत्र के द्वारा भी वहुत से रोगों की परीक्षा हो सकती है, इस मूत्रपरीक्षा के विषय में हम यहां पर योगचिन्तामणिशास्त्र से तथा डाक्टरी ग्रन्थों से डाक्टरों की अनुभव की हुई विशेष वातों के विवरणके द्वारा अष्टविध (आठ प्रकार की) परीक्षा लिखते हैं:—

१—वायुदोषवाले रोगी का मूत्र वहुत उतरता है और वह वादल के रंग के समान होता है।

२—पित्तदोषवाले रोगी का मूत्र कसूँभे के समान लाल, अथवा केसूले के फूल के रंग के समान पीला, गर्म, तेल के समान होता है तथा थोड़ा उतरता है।

३—कफ के रोगी का मूत्र तालाव के पानी के समान ठंढा, सफेद, फेनवाला तथा चिकना होता है।

४—मिले हुए दोषोंवाला मूत्र मिलेहुए रंग का होता है।[1]

५—सन्निपात रोग में मूत्र का रंग काला होता है।

६—खून के कोपवाला मूत्र चिकना गर्म और लाल होता है।

७—वातपित्त के दोषवाला मूत्र गहरा लाल अथवा किरमची रंग का तथा गर्म होता है।

१—जैसे वातपित्त के रोग में वादल के रंग के समान तथा लाल वा पीला होता है, वातकफ के रोग में वादल के रंग के समान तथा सफेद होता है तथा पित्तकफ के रोग में लाल वा पीला तथा सफेद रंग का होता है, इस का वर्णन नं० ७ से ८ तक आगे किया भी गया है॥

८–वातकफ दोषवाले का मूत्र सफेद तथा बुद्बुदाकार (बुलबुले की शकल का) होता है।

९–कफपित्तवाले रोगी का मूत्र लाल होता है परन्तु गदला होता है।

१०–अजीर्ण रोगी का मूत्र चांवलों के धोवन के समान होता है।

११–नये बुखारवाले का मूत्र किरमची रंग का होता है तथा अधिक उतरता है।

१२–मूत्र करते समय यदि मूत्र की लाल धार हो तो बड़ा रोग समझना चाहिये, काली धार हो तो रोगी मर जाता है, मूत्र में बकरी के मूत्र के समान गन्ध आवे तो अजीर्ण रोग समझना चाहिये।

१३–**मूत्रपरीक्षा के द्वारा रोग की साध्यासाध्यपरीक्षा**—रोग साध्य (सहज में मिटनेवाला) है, अथवा कष्टसाध्य (कठिनता से मिटनेवाला) है, अथवा असाध्य (न मिटनेवाला) है, इस की संक्षेप से परीक्षा लिखते हैं—प्रातःकाल चार घड़ी के तड़के रोगी को उठाकर उस के मूत्र को एक काच के सफेद प्याले में लेना चाहिये परन्तु मूत्र की पहिली और पिछली धार नहीं लेनी चाहिये अर्थात् विचली (बीचकी) धार लेनी चाहिये तथा उस को स्थिर (विना हिलाये डुलाये) रहने देना चाहिये, इस के बाद सूर्य की धूप में घण्टे भर तक उसे रख के पीछे उस में एक घास के तृण (तिनके) से धीरे से तेल की बूंद डालनी चाहिये, यदि वह तेल की बूंद डालते ही मूत्रपर फैल जावे तो रोग को साध्य समझना चाहिये, यदि बूंद न फैले अर्थात् ऊपर ज्यों की त्यों पड़ी रहे तो रोग को कष्टसाध्य समझना चाहिये तथा यदि वह बूंद अन्दर (मूत्र के तले) बैठ जावे अथवा अन्दर जाकर फिर ऊपर आकर कुण्डाले की तरह फिरने लगे अथवा बूंद में छेद २ पड़ जावें अथवा वह बूंद मूत्र के संग मिल जावे तो रोग को असाध्य जानना चाहिये।

दूसरी रीति से परीक्षा इस प्रकार भी की जाती है कि–यदि तालाव, हंस, छत्र, चमर, तोरण, कमल, हाथी, इत्यादि चिह्न दीखें तो रोगी बच जाता है, यदि तलवार, दण्ड, कमान, तीर, इत्यादि शस्त्रों के चिह्न उस बूंद के हो जावें तो रोगी मर जाता है, यदि बूंद में बुद्बुदे उठें तो देवता का दोष जानना चाहिये इत्यादि, यह सब मूत्रपरीक्षा योगचिन्तामणि ग्रन्थ में लिखी है तथा इन में से कई एक बातें अनुभव सिद्ध भी हैं क्योंकि केवल ग्रन्थ के बांचने से ही परीक्षा नहीं हो सकती है, देखो! बुद्धिमानों ने यह सिद्धान्त किया है कि–इल्म का करता उस्ताद और अनकरता शागिर्द होता है, ग्रन्थ के बांचने से केवल वायु पित्त कफ खून तथा मिले हुए दोषों आदि की परीक्षा मूत्र के देखने से हो सकती है, किन्तु उस में जो २ विशेषतायें हैं वे तो नित्य के अभ्यास और बुद्धि के दौड़ाने से ही ज्ञात हो सकती हैं॥

डाक्टरी मत से मूत्रपरीक्षा—रसायनशास्त्र की रीति से मूत्रपरीक्षा की डाक्टरोंने अच्छी छानवीन (खोज) की है इस लिये वह प्रमाण करने (मानने) योग्य है, उनके मतानुसार मूत्र में मुख्यतया दो चीज़े हैं–युरिआ और एसिड, इनके सिवाय उस में नमक, गन्धक का तेजाव, चूना, फासफरिक (फासफर्स) एसिड, मेगनेशिया, पोटास और सोडा, इन सब वस्तुओं का भी थोड़ा २ तत्त्व और बहुत सा भाग पानी का होता है, मूत्र में जो २ पदार्थ हैं सो नीचे लिखे कोष्ठ से विदित हो सकते हैं:—

मूत्र में स्थित पदार्थ ॥		मूत्र के १००० भागोंमें ॥	
पानी ॥		९५६॥	भाग ॥
	युरिया ॥	१४॥	भाग ॥
शरीर के घसारे से पैदा	यूरिक एसिड ॥	०	०
होनेवाली चीज़ें ॥	चरवी, चिकनाई, आदि ॥	०	०
खार ॥	नमक ॥	७।	भाग ॥
,,	फासफरिक एसिड ॥	२	,,
,,	गन्धक का तेज़ाव ॥	१॥।	,,
,,	चूना ॥	०॥	,,
,,	मेगनेशिया ॥	०।	,,
,,	पोटास ॥	१॥।	,,
,,	सोडा ॥	बहुत थोड़ा ॥	

मूत्र में यद्यपि ऊपर लिखे पदार्थ हैं परन्तु आरोग्यदशा में मूत्र में ऊपर लिखी हुई चीज़ें सदा एक वज़न में नहीं होती हैं, क्यों कि खुराक और कसरत आदि पर उनका होना निर्भर है, मूत्र में स्थित पदार्थों को पक्के रसायनशास्त्री (रसायनशास्त्र के जानने-वाले) के सिवाय दूसरा नही पहिचान सकता है और जब ऐसी (पक्की) परीक्षा होती है तभी मूत्र के द्वारा रोगों की भी पक्की परीक्षा हो सकती है। हमारे देशी पूर्वाचार्य इस रसायन विद्यामें बड़े ही प्रवीण थे तभी तो उन्होंने बीस जाति के प्रमेहों में शर्करा-प्रमेह और क्षीरप्रमेह आदि की पहिचान की है, वे इस विषय में पूर्णतया तत्त्ववेत्ता थे यह बात उनकी की हुई परीक्षा से ही सिद्ध होती है।

बहुत से लोग डाक्टरों की इस वर्तमान परीक्षा को नई निकाली हुई समझकर आश्चर्य में रह जाते हैं, परन्तु यह उनकी परीक्षा नई नहीं है किन्तु हमारे पूर्वाचार्यों के ही गूढ़ रहस्य से खोज करने पर इन्होंने प्राप्त की है, इस लिये इस परीक्षा के विषयमें उनकी कोई तारीफ नहीं है, हां अलबतह उनकी बुद्धि और उद्यम की तारीफ करना हरएक गुणग्राही मनुष्य का काम है, यद्यपि मूत्र को केवल आंखों से देखने से उस में स्थित

अनेक चीज़ों की न्यूनाधिकता ठीक रीति से मालूम नहीं होती है तथापि मूत्र के जत्थे से तथा मूत्र के पतलेपन वा मोटेपन से कई एक रोगों की परीक्षा अच्छी तरह से जाँच करने से हो सकती है।

नीरोग आदमी को सब दिन में (२४ घण्टे में) सामान्यतया २॥ रतल मूत्र होता है तथा जब कभी पतला पदार्थ कमती या बढ़ती खानेमें आ जाता है तब मूत्र में भी घट बढ़ होती है, ऋतुके अनुसार भी मूत्र के होने में फर्क पड़ता है, जैसे देखो ! शीत काल की अपेक्षा उष्णकाल में मूत्र थोड़ा होता है।

मूत्राशय का एक रोग होता है जिस को मूत्राशय का जलन्दर कहते हैं, यह रोग मूत्राशय में विकार होने से आल्व्युमेन नामक एक आवश्यक तत्त्व के मूत्रमार्गद्वारा खून में से निकल जाने से होता है, मूत्र में आल्व्युमेन है वा नहीं इस बात की जांच करने से इस रोग की परीक्षा हो सकती है, इसी तरह मूत्र सम्बन्धी एक दूसरा रोग मधुप्रमेह (मीठा मूत्र) नामक है, इस रोगमें मूत्रमार्ग से मीठे का अधिक भाग मूत्रमें जाता है और वह मीठे का भाग मूत्र को साधारणतया आंख से देखने से यद्यपि नहीं मालूम होता है (कि इसमें मीठा है वा नहीं) तथापि अच्छी तरह परीक्षा करने से तो वह मीठा भाग जान ही लिया जाता है, इस के जानने की एक साधारण रीति यह भी है कि मीठे मूत्र पर हज़ारों चीटियां लग जाती हैं।

मूत्र में खार भी जुदा २ होता है और जब वह परिमाण से अधिक वा कम जाता है तथा खटास (एसिड) का भाग जब अधिक जाता है तो उस से भी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, मूत्र में जानेवाले इन पदार्थों की जब अच्छी तरह परीक्षा हो जाती है तब रोगों की भी परीक्षा सहज में ही हो सकती है॥

मूत्र में जानेवाले पदार्थों की परीक्षा—मूत्रकी परीक्षा अनेक प्रकार से की जाती है अर्थात् कुछ बातें तो मूत्र को आंख से देखने से ही मालूम होती हैं, कुछ चीज़ें रसायनिक प्रयोग के द्वारा देखने से मालूम होती हैं और कुछ पदार्थ सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा देखने से मालूम पड़ते हैं, इन तीनों प्रकारों से परीक्षा का कुछ विषय यहां लिखा जाता है।

१—आंखो से देखने से मूत्र के जुदे २ रंग की पहिचान से जुदे २ रोगों का अनुमान कर सकते हैं, नीरोग पुरुष का मूत्र पानी के समान साफ और कुछ पीलास पर (पीलेपन से युक्त) होता है, परन्तु मूत्र के साथ जब खून का भाग जाता है तब मूत्र लाल अथवा काला दीखता है, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि कई एक दवाओं के खाने से भी मूत्र का रंग बदल जाता है, ऐसी दशा में मूत्रपरीक्षाद्वारा रोग का निश्चय

१–इसे अंग्रेज़ी में वाइट्स डिज़ीज़ कहते हैं॥

नहीं करलेना चाहिये यदि मूत्रको थोड़ी देरतक रखने से उस के नीचे किसी प्रकार का जमाव हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि–खार, खून, पीप तथा चर्बी आदि कोई पदार्थ मूत्र के साथ जाता है, मूत्र के साथ जब आल्व्युमीन और शक्कर जाता है तो उस की परीक्षा आंखों के देखने से नहीं होती है इस लिये उस का निश्चय करना हो तो दूसरी रीति से करना चाहिये, इसी प्रकार यद्यपि मूत्र के साथ थोड़ा बहुत खार तो मिला हुआ होता ही है तो भी जब वह परिमाण से अधिक जाता है तब मूत्र को थोड़ी देरतक रहने देने से वह खार मूत्र के नीचे जम जाता है तब उस के जाने का ठीक निश्चय हो जाता है, रोग की परीक्षा करना हो तब इन निम्नलिखित बातों का खयाल रखना चाहिये:—

१–मूत्र धुएँके रंगके समान हो तो उस में खून का सम्भव होता है।

२–मूत्र का रंग लाल हो तो जान लेना चाहिये कि–उस में खटास (एसिड) जाता है।

३–मूत्र के ऊपर के फेन यदि जल्दी न बैठें तो जान लेना चाहिये कि उस में आल्व्युमीन अथवा पित्त है।

४–मूत्र गहरे पीले रंग का हो तो उस में पित्त का जाना समझना चाहिये।

५–मूत्र गहरा भूरा या काले रंग का हो तो समझना चाहिये कि–रोग प्राणघातक है।

६–मूत्र पानी के समान बहुत होता हो तो मधुप्रमेह की शङ्का होती है, हिस्टीरिया के रोगमें भी मूत्र बहुत होता है, मूत्रपर हजारों चीटियां लगें तो समझ लेना चाहिये कि मधुप्रमेह है।

७–यदि मूत्र मैला और गदला हो तो जान लेना चाहिये कि उस में पीप जाता है।

८–मूत्र लाल रंग का और बहुत थोड़ा होता हो तो कलेजे के, मगज़ के और बुखार के रोग की शंका होती है।

९–मूत्र में खटास अधिक जाता हो तो समझना चाहिये कि पाचनक्रिया में बाधा पहुँची है।

१०–कामले (पीलिये) में और पित्त के प्रकोप में मूत्र में बहुत पीलापन और हरापन होता है तथा किसी समय यह रंग ऐसा गहरा हो जाता है कि काले रंग की शंका होती है, ऐसे मूत्र को हिलाकर देखने से अथवा थोड़ा पानी मिलाकर देखने से मूत्र का पीलापन मालूम हो सकता है।

२–रसायनिक प्रयोग से मूत्र में स्थित भिन्न २ वस्तुओं की परीक्षा करने से कई एक बातों का ज्ञान हो सकता है, इस का वर्णन इसप्रकार है:—

१–इस का नियम भी यही है कि–जब मूत्र बहुत आता है तब वह पानी के समान ही होता है ॥

१-**पित्त**—यद्यपि मूत्र के रंग के देखने से पित्त का अनुमान कर सकते हैं परन्तु रसायनिक रीति से परीक्षा करने से उस का ठीक निश्चय हो जाता है, पित्त के जानने के लिये रसायनिक रीति यह है कि—मूत्र की थोड़ी सी बूंद को काच के प्याले में अथवा रकेबी में डाल कर उस में थोड़ा सा नाइट्रिक एसिड डालना चाहिये, दोनों के मिलने से यदि पहिले हरा फिर जामुनी और पीछे लाल रंग हो जावे तो समझ लेना चाहिये कि मूत्र में पित्त है।

२-**युरिक एसिड**—यूरिक एसिड आदि मूत्र के यद्यपि स्वाभाविक तत्त्व हैं परन्तु वे भी जब अधिक जाते हों तो उन की परीक्षा इस प्रकार से करनी चाहिये कि-मूत्र को एक रकेबी में डाल कर गर्म करे, पीछे उस में नाइट्रिक एसिड की थोड़ी सी बूंद डाल देवे, यदि उस में पासे बँध जावें तो जान लेना चाहिये कि मूत्र में यूरिया अधिक है तथा मूत्र को रकेबी में डाल कर उस में नाइट्रिक एसिड डाला जावे पीछे उसे तपाने से यदि उस में पीले रंग का पदार्थ हो जावे तो जानलेना चाहिये कि मूत्र में यूरिक एसिड जाता है।

३-**आल्ब्युमीन**—आल्ब्युमीन एक पौष्टिक तत्त्व है, इसलिये जब वह मूत्र के साथ में जाने लगता है तब शरीर कमज़ोर हो जाता है, इस के जाने की परीक्षा इस रीति से करनी चाहिये कि मूत्र की परीक्षा करने की एक नली (ट्युब) होती है, उस में दो तीन रुपये भर मूत्र को लेना चाहिये, पीछे उस नली के नीचे मोमबत्ती को जला कर उस से मूत्र को गर्म करना चाहिये, जब मूत्र उबलने लगे तब उस के अन्दर शोरेके तेज़ाब की थोड़ी सी बूंदें डाल देनी चाहियें, इस की बूंदों से मूत्र बादलों की तरह धुँधला हो जावेगा और वह धुँधला हुआ मूत्र जब ठहर जावेगा तब उस में यदि आल्ब्युमीन होगा तो नीचे बैठ जावेगा और आँखों से दीखने लगेगा परन्तु मूत्र के गर्म करने से अथवा गर्म कर उस में शोरे के तेज़ाब की बूँदें डालने से यदि वह मूत्र धुँधला न होवे अथवा धुँधला होकर धुँधलापन मिट जावे तो समझ लेना चाहिये कि मूत्र में आल्ब्युमीन नहीं जाता है, इस परीक्षा से गर्म किये हुए और नाइट्रिक एसिड मिले हुए मूत्र में जमा हुआ पदार्थ क्षार होगा तो वह फिर भी मूत्र में मिल जायगा और आल्ब्युमीन होगा तो वैसे का वैसा ही रहेगा।

४-**स्युगर अर्थात् शक्कर**—जब मूत्र में अधिक वा कम शक्कर जाती है तब उस रोग को मधुप्रमेह का भयङ्कर रोग हैं, इस रोग कहते कहते में मूत्र बहुत मीठा सफेद

१-डाक्टर लोग तो इस के नीचे स्पिरीट (मद्य) का दीपक जलाते हैं परन्तु आर्य लोगों को तो मोमबत्ती ही जलानी चाहिये ॥

तथा पानी के समान होता है और उस में शहद के समान गन्ध आती है, इस रोग में रसायनिक रीति से परीक्षा करने से शक्कर का होना ठीक रीति से जाना जा सकता है, इस की परीक्षा की यह रीति है कि–यदि शक्कर की शङ्का हो तो फिर मूत्र को गर्म कर छान लेना चाहिये ऐसा करने से यदि उस में आल्ब्युमीन होगा तो अलग हो जावेगा, पीछे मूत्र को काच की नली में लेकर उस में आधा लीकर पोटास अथवा सोडा डालना चाहिये, पीछे नीलेथोथे के पानी की थोड़ी सी बूंदें डालनी चाहियें परन्तु नीलेथोथे की बूँदें बहुत ही होशियारी से (एक बूँद के पीछे दूसरी बूँद) डालना चाहिये तथा नली को हिलाते जाना चाहिये, इस तरह करने से वह मूत्र आसमानी रंग का तथा पारदर्शक (जिस में आर पार दीखे ऐसा) हो जाता है, पीछे उस को खूब उबालना चाहिये, यदि उस में शक्कर होगी तो नली के पेंदे में नारंगी के रंग के समान लाल पीले पदार्थ का जमाव होकर ठहर जावेगा तथा स्थिर होने के बाद वह कुछ लाल और भूरे रंग का हो जावेगा, यदि ऐसा न हो तो समझ लेना चाहिये कि मूत्र में शक्कर नहीं जाती है ।

५–**खार और खटास (एसिड और आल्कली क्षार)**—मूत्र में खार का भाग जितना जाना चाहिये उस से अधिक जाने से रोग होता है, खार के अधिक जाने की परीक्षा इस प्रकार होती है कि–हलदी का[1] पानी करके उस में सफेद ब्लाटिंग पेपर (स्याही चूसनेवाला कागज़) भिगाना चाहिये, फिर उस कागज़ को सुखाकर उस में का एक टुकड़ा लेकर मूत्र में भिगा देना चाहिये, यदि मूत्र में खार का भाग अधिक होगा तो इस पीले कागज़[2] का रंग बदल कर नारंगी अथवा बादामी रंग हो जायगा, फिर इस कागज को पीछे किसी खटाई में भिगाने से पूर्व के समान पीला रंग हो जावेगा ।

यह खार की परीक्षा की रीति कह दी गई, अब अधिक खटास जाती हो[3] उस की परीक्षा लिखते हैं—एक प्रकार का लीटमस पेपर बना हुआ तैयार आता है उसे लेना चाहिये, यदि वह न मिल सके तो ब्लाटिंगपेपर को लेकर उसे कोबिज के रस में भिगाना चाहिये, फिर उसे सुखा लेना चाहिये, तब उस का आसमानी रंग हो जावेगा, उस कागज का टुकड़ा लेकर मूत्र में भिगाना चाहिये, यदि मूत्र में खटास अधिक होगा तो उस कागज़ का रंग भी अधिक लाल हो जावेगा और यदि खटास कम होगा तो

१–डाक्टर लोग हलदी का टिंक्चर लेते हैं ॥

२–इस प्रकार की मूत्रपरीक्षा के लिये बना हुआ भी टरमेरिक पेपर इंगलेंड से आता है, यदि वह न होवे तो हलदी में भिगाया हुआ ही पूर्वोक्त (पहिले कहा हुआ) कागज़ लेना चाहिये ॥

३–अधिक खटास के जाने से भी शरीर में अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं ॥

कागज़ का रंग भी कम लाल होगा, तात्पर्य यह है की खटास की न्यूनाधिकता के समान ही कागज़ के लाल रंग की भी न्यूनाधिकता होगी ॥

३–सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा जो मूत्रपरीक्षा की जाती है उस में ऊपर लिखी हुई दोनों रीतियों में से एक भी रीति के करने की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात् न तो आँखोंके द्वारा ध्यान के साथ देखकर मूत्र के रँग आदि की जाँच करनी पड़ती है और न रसायनिक परीक्षा के द्वारा अनेक रीतियों से मूत्र में स्थित अनेक पदार्थों की जाँच करनी पड़ती है, किन्तु इस रीतिसे मूत्र के रँग आदि की तथा मूत्र में स्थित और मूत्र के साथ जानेवाले पदार्थों की जाँच अतिसुगमता से हो जाती है, परन्तु हाँ इस (सूक्ष्मदर्शक) यन्त्र के द्वारा मूत्र में स्थित पदार्थों की ठीक तौर से जाँच कर लेना प्रायः उन्हीं के लिये सुगम है जिन को मूत्र में स्थित पदार्थों का स्वरूप ठीक रीति से मालूम हो, क्योंकि मिश्रित पदार्थ में स्थित वस्तुविशेष (ख़ास चीज़) का ठीक निश्चय कर लेना सहज वा सर्वसाधारण का काम नहीं है, यद्यपि यह बात ठीक है कि–सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से मूत्र में मिश्रित तथा सूक्ष्म पदार्थ भी उत्कटरूप से प्रतीत होने लगता है तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि–उस पदार्थ के स्वरूप को न जाननेवाला पुरुष उस का निश्चय कैसे कर सकता है, जैसे–दृष्टान्त के लिये यह कहा जा सकता है कि–आल्व्युमीन के स्वरूप को जो नहीं जानता है वह सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्र में स्थित आल्व्युमीन को देख कर भी उस का निश्चय कैसे कर सकता है, तात्पर्य केवल यही है कि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा वे ही लोग मूत्र में स्थित पदार्थों का निश्चय सहज में कर सकते हैं जो कि उन (मूत्र में स्थित) पदार्थों के स्वरूप को ठीक रीति से जानते हों।

यह तो प्रायः सब ही जानते और मानते हैं कि–वर्तमान समय में अपने देश के वैद्यों की अपेक्षा डाक्टर लोग शरीर के आभ्यन्तर (भीतरी) भागों, उन की क्रियाओं और उन में स्थित पदार्थों से विशेष विज्ञ (जानकार) हैं, क्योंकि उन को शरीर के आभ्यन्तर भागों के देखने भालने आदि का प्रतिदिन काम पड़ता है, इसलिये यह कहा जा सकता है कि–डाक्टर लोग सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा को अच्छे प्रकार से कर सकते हैं।

पहिले कह चुके हैं कि–इस (सूक्ष्मदर्शक) यन्त्र के द्वारा जो मूत्रपरीक्षा होती है वह मूत्र में स्थित पदार्थों के स्वरूप के ज्ञान से विशेष सम्बन्ध रखती है, इस लिये सर्वसाधारण लोग इस परीक्षा को नहीं कर सकते हैं, क्योंकि मूत्र में स्थित सब पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान होना सर्वसाधारण के लिये अतिदुस्तर (कठिन) है, अतः सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा जब मूत्रपरीक्षा करनी वा करानी हो तब डाक्टरों से करालेनी चाहिये, अर्थात् डाक्टरों से मूत्रपरीक्षा करा के मूत्र में जानेवाले पदार्थों की न्यूनाधिकता (कमी वा ज्यादती) का निश्चय कर तदनुकूल उचित उपाय करना चाहिये।

ऊपर लिखे अनुसार मूत्र में स्थित सब पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान-यद्यपि सर्वसाधारण के लिये अति दुस्तर है और उन सब पदार्थों के स्वरूप का वर्णन करना भी एक अति कठिन तथा विशेषस्थानापेक्षी (अधिक स्थान की आकांक्षा रखनेवाला) विषय है अतः उन सब का वर्णन ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं लिख सकते हैं परन्तु तथापि संक्षेप से कुछ इस परीक्षा के विषय में तथा मूत्र में स्थित अत्यावश्यक कुछ पदार्थों के स्वरूप के विषय में गृहस्थों के लाभ के लिये लिखते हैं:—

१–पहिले कह चुके हैं कि–नीरोग मनुष्य के मूत्र का रँग ठीक सूखी हुई घास के रंग के समान होता है, तथा उस में जो खार और खटास आदि पदार्थ यथोचित परिमाण में रहते हैं उन का भी वर्णन कर चुके हैं, इस लिये सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा करनेपर नीरोग मनुष्य का मूत्र ऊपर लिखे अनुसार (उक्त रँग से युक्त तथा यथोचित खार आदि के परिमाण से युक्त) ऊपर से स्पष्टतया न दीखने पर भी उक्त यन्त्र से साफ तौर से दीख जाता है।

२–वात, पित्त, कफ, द्विदोष (दो २ मिले हुए दोष) तथा सन्निपात (त्रिदोष) दोषवाले, एवं अजीर्ण और ज्वर आदि विकारवाले रोगियों का मूत्र पहिले लिखे अनुसार उक्त यन्त्र से ठीक दीख जाता है, जिस से उक्त दोषों वा उक्त विकारों का निश्चय स्पष्टतया हो जाता है।

३–मूत्र में तैल की बूँद के डालने से दूसरी रीति से जो मूत्रपरीक्षा तालाव, हंस, छत्र, चमर और तोरण आदि चिह्नों के द्वारा रोग के साध्यासाध्यविचार के लिये लिख चुके हैं वे सब चिह्न स्पष्ट न होने पर भी इस यन्त्र से ठीक दीख जाते हैं अर्थात् इस यन्त्र के द्वारा उक्त चिह्न ठीक २ मालूम होकर रोग की साध्यासाध्यपरीक्षा सहज में हो जाती है।

४–पहिले कह चुके हैं कि–डाक्टरों के मत से मूत्र में मुख्यतया दो चीजें हैं—युरिआ और एसिड, तथा इन के सिवाय–नमक, गन्धक का तेज़ाब, चूना, फासफरिक (फासफर्स) एसिड, मेगनेशिया, पोटास और सोडा, इन सब वस्तुओं का भी थोड़ा २ तत्त्व और बहुत सा भाग पानी का होता है[1], अतः इस यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा करने पर उक्त पदार्थों का ठीक २ परिमाण प्रतीत होजाता है, यदि न्यूनाधिक परिमाण हो तो पूर्व लिखे अनुसार विकार वा हानि समझ लेनी चाहिये, इन पदार्थों में से गन्धक का तेज़ाब, चूना, पोटास तथा सोडा, इन के स्वरूप को प्रायः मनुष्य जानते ही हैं अतः इस यन्त्र के द्वारा इन के परिमाणादि का निश्चय कर सकते हैं, शेष आवश्यक पदार्थों का स्वरूप आगे कहा जायगा।

१–इन सब पदार्थों के परिमाण का विवरण पहिले ही लिख चुके हैं॥

५–इस यन्त्र के द्वारा मूत्र को देखने से यदि उस (मूत्र) के नीचे कुछ जमाव सा मालूम पड़े तो समझ लेना चाहिये कि–खार, खून, रसी (पीप) तथा चर्वी आदि का भाग मूत्र के साथ जाता है, इन में भी विशेषता यह है कि–खार का भाग अधिक होने से मूत्र फटा हुआ सा, खून का भाग अधिक होने से धूम्रवर्ण, रसी (पीप) का भाग अधिक होने से मैल और गदलेपन से युक्त तथा चर्वी का भाग अधिक होने से चिकना और चर्वी के कतरों से युक्त दीख पड़ता है।

६–मूत्र में खटास का भाग अधिक होने से वह (मूत्र) रक्तवर्ण का (लाल रँग का) तथा पित्त का भाग अधिक होने से पीत वर्णका (पीले रँग का) और फेनों से हीन इस यन्त्र के द्वारा स्पष्टतया (साफ तौर से) दीख पड़ता है।

७–मूत्र में शक्कर के भाग का जाना इस यन्त्र के द्वारा प्रायः सब ही जान सकते हैं, क्योंकि शक्कर का स्वरूप सब ही को विदित है।

८–इस यन्त्र के द्वारा परीक्षा करने से यदि मूत्र–फेनरहित, अतिश्वेत (बहुत सफेद अर्थात् अण्डे की सफेदी के समान सफेद), स्निग्ध (चिकना), पौष्टिक तत्त्व से युक्त, आँटे के लस के समान लसदार, पोश्त के तेल के समान स्निग्ध तथा नारियल के गूदे के समान स्निग्ध (चिकने) पदार्थ से संघट्ट (गुथा हुआ), गाढ़ा तथा रक्त (खून) की कान्ति (चमक) से युक्त दीख पड़े तो जान लेना चाहिये कि–मूत्र में आल्व्यूमीन है, इस प्रकार आल्व्युमीन का निश्चय हो जाने-पर मूत्राशय के जलन्धर का भी निश्चय हो सकता है, जैसा कि पहिले लिख चुके हैं।

९–इस यन्त्र के द्वारा देखने पर यदि मूत्र में जलाये हुए पौधे की राख के समान, वा कढ़ाई में भूने हुए पदार्थ के समान कोई पदार्थ दीखे अथवा सोडे की राख

१–इस का कुछ वर्णन आगे नवीं संख्या में किया जावेगा ॥

२–यह शब्द दो प्रकार का है–जिन में से एक का उच्चारण आल्व्युम्यन है, यह लाटिन तथा फ्रेंच भाषा का शब्द है, इस को फ्रेंच भाषा में अलबस भी कहते हैं, जिस का अर्थ 'सफेद, है, इस शब्द के तीन अर्थ हैं–१–अण्डे की सफेदी, २–परवरिश करनेवाला मादा जो बहुत से पौधों के बीजके परदे में इकट्ठा रहता है परन्तु गर्भ में मिला नहीं रहता है, यह अन्न अर्थात् गेहूँ और इसी किस्म के दूसरे अन्नों में आटे का हिस्सा होता है, पोश्त के दाने में रोगनी (तेल का) हिस्सा होता है और नारियल में गूदेदार हिस्सा होता है, ३–यह रसायन के लिहाज़ से वही वस्तु है जो कि आल्व्युमीन है (जिस का अर्थ अभी आगे कहते हैं), दूसरे शब्द का उच्चारण आल्व्युमीन है, यह गाढ़ा द्रव तथा विषैला पदार्थ होता है जो कि खास आवश्यक (जरूरी) मादा अण्डे का होता है और लोहू का पंछा होता है और यह दूसरे हैवानी मादों में पाया जाता है, वह चाहे द्रव हो और चाहे दृढ़ हो. इस के सिवाय यह पौधों में भी पाया जाता है, यह पानी में घुलजाता है तथा गर्मी और दूसरी रसायनिक रीतियों से जम जाता है ॥

सी दीख पड़े अथवा तेज़ावी सोडा वा तेज़ावी पोटास दीख पड़े तो जान लेना चाहिये कि मूत्र में खार और खटास (आलकैली खार और एसिड) है।

यह संक्षेप से सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा मूत्रपरीक्षा कही गई है, इस के विषय में यदि विशेष हाल जानना हो तो डाक्टरी ग्रन्थों से वा डाक्टरों से पूँछ कर जान सकते हैं॥

मलपरीक्षा—मल से भी रोग की बहुत कुछ परीक्षा हो सकती है तथा रोग के साध्य वा असाध्य की भी परीक्षा हो सकती है, इस का वर्णन इस प्रकार है:—

१–वायुदोषवाले का मल–फेनवाला, रूखा तथा धुएँके रंग के समान होता है और उस में चौथा भाग पानी के सदृश होता है।

२–पित्तदोषवाले का मल–हरा, पीला, गन्धवाला, ढीला तथा गर्म होता है।

३–कफदोषवाले का मल–सफेद, कुछ सूखा, कुछ भीगा तथा चिकना होता है।

४–वातपित्तदोषवाले का मल–पीला और काला, भीगा तथा अन्दर गांठोंवाला होता है।

५–वातकफदोषवाले का मल–भीगा, काला तथा पपोटेवाला होता है।

६–पित्तकफदोषवाले का मल–पीला तथा सफेद होता है।

७–त्रिदोषवाले का मल–सफेद, काला, पीला, ढीला तथा गांठोंवाला होता है।

८–अजीर्णरोगवाले का मल–दुर्गन्धयुक्त और ढीला होता है।

९–जलोदररोगवाले का मल–बहुत दुर्गन्धयुक्त और सफेद होता है।

१०–मृत्युसमय को प्राप्त हुए रोगी का मल–बहुत दुर्गन्धयुक्त, लाल, कुछ सफेद, मांस के समान तथा काला होता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस रोगी का मल पानी में डूब जावे वह रोगी बचता नहीं है।

इस के अतिरिक्त मलपरीक्षा के विषय में निम्नलिखित बातों का भी जानना अत्यावश्यक है जिन का वर्णन संक्षेप से किया जाता है:—

१–इस शब्द का प्रयोग बहुवचन में होता है अर्थात् अलकलिस वा अलकलीज, इस को फ्रेंच भाषा में अल्कली भी कहते हैं, यह एक प्रकार का खार पदार्थ है, इस शब्द के कोषकारों ने कई अर्थ लिखे हैं, जैसे-पौधे की राख, कढ़ाई में भूनना, वा भूनना, सोडे की राख, तेज़ावी सोडा तथा तेज़ावी पोटास इत्यादि, इस का रासायनिक स्वरूप यह है कि–यह तेजावी असली चीजों में से है, जैसे–सोडा, पोटास, गोंदविशेष और सोडे की किस्म का एक तेज़ तेज़ाब, इस का मुख्य गुण यह है कि–यह पानी और अलकोहल (विष) में मिल जाता है तथा तेल और चर्बी से मिल कर साबुन को बनाता है और तेजाब से मिलकर नमक को बनाता है या उसे मातदिल कर देता है, एवं बहुत से पौधों की ज़र्दी (पीलेपन) को भूरे रंग की कर देता है और काई वा पौधे के लाल रंग को नीला कर देता है॥

१-पतला दस्त—अपची से अथवा संग्रहणी के रोग से पतले दस्त होते हैं, यदि मल में खुराक का कच्चा भाग दीखे तो समझना चाहिये कि-अन्न का पाचन ठीक रीतिसे नहीं होता है, आँतों में पित्तके बढ़ने से भी मल पतला और नरम आता है, अतीसार और हैज़े में दस्त पानी के समान पतला आता है, यदि क्षय रोग में विनाकारण ही पतला दस्त आवे तो समझ लेना चाहिये कि रोगी नहीं बचेगा।

२-करड़ा दस्त—नित्य की अपेक्षा यदि करड़ा दस्त आवे तो कब्ज़ियत की निशानी समझनी चाहिये, हरस के रोगी को सदा सख्त दस्त आता है तथा उस में प्रायः सफरे का भाग छिल जाने से उस में से खून आता है, पेट में अथवा सफरे में वादी के रहने से सदा दस्त की कब्जी रहती है, यदि कलेजे में पित्त की क्रिया ठीक रीति से न होवे तथा आवश्यकता के अनुसार पित्तकी उत्पत्ति न हो अथवा मल को आगे ढकेलने के लिये आँतों में तंग और ढीले होने की यथावश्यक (जितनी चाहिये उतनी) शक्ति न होवे तो दस्त करड़ा आता है।

३-खूनवाला दस्त—यदि दस्तके साथ में मिला हुआ खून आता हो अथवा आम गिरती हो तो समझ लेना चाहिये कि मरोड़ा हो गया है, हरस रोग में तथा रक्तपित्त रोग में खून दस्त से अलग गिरता है, अर्थात् दस्त के पहिले वा पीछे धार होकर गिरता है।

४-अधिक खून व पीपवाला दस्त—यदि दस्त के मार्ग से खून बहुत गिरे तथा पीप एक दम से आने लगे तो समझ लेना चाहिये कि कलेजा पककर आँतों में फूटा है।

५-मांस के धोवन के समान दस्त—यदि दस्त धोये हुए मांस के पानी के समान आवे तथा उस में चाहे कुछ खून भी हो वा न हो परन्तु काले छोतों के समान हो और उस में बहुत दुर्गन्ध हो तो समझना चाहिये कि आँतें सड़ने लगी हैं।

६-सफेद दस्त—यदि दस्त का रंग सफेद हो तो समझना चाहिये कि कलेजे में से पित्त यथावश्यक (चाहिये जितना) आँतों में नहीं आता है, प्रायः कामला पित्ताशय तथा कलेजे के रोग में ऐसा दस्त आता है।

७-सफेद कांजी के समान वा चाँवलों के धोवन के समान दस्त—हैज़े में तथा बड़े (अत्यन्त) अजीर्ण में दस्त सफेद कांजी के समान अथवा चाँवलों के धोवन के समान आता है।

८-**काला वा हरा दस्त**—यदि काला अथवा हरा दस्त आवें तो समझना चाहिये कि कलेजे में रोग तथा पित्त का विकार है[1]।

प्रश्नपरीक्षा ॥

रोगी से कुछ हकीकत के पूछने से भी रोगों की विज्ञता (जानकारी) होती है और ऐसी विज्ञता पहिले लिखी हुई परीक्षाओं से भी नहीं हो सकती है[2], यद्यपि कई समयों में ऐसा भी होता है कि-रोगी से पूछने से भी रोग का यथार्थ हाल नहीं मालूम होता है और ऐसी दशा में उस के कथन पर विशेष विश्वास भी रखना योग्य नहीं होता है, परन्तु इस से यह नहीं मान लेना चाहिये कि-रोगी से हकीकत का पूछना ही व्यर्थ है, किन्तु रोगी से पूछ कर उस की सब अगली पिछली हकीकत को तो अवश्य जानना ही चाहिये, क्योंकि पूछने से कभी २ कोई २ नई हकीकत भी निकल आती है, उस से रोग की उत्पत्ति के कारण का पता मिल सकता है और रोग की उत्पत्ति के कारण का अर्थात् निदान का ज्ञान होना वैद्यों के लिये चिकित्सा करने में बहुत ही सहायक[3] है, इस लिये रोगी से वारंवार पूछ २ कर खूब निश्चय कर लेना चाहिये, केवल इतना ही नहीं किन्तु बहुत सी वातों को रोगी के पास रहनेवालों से अथवा सहवासियों से पूछ के निश्चय करना चाहिये, जैसे-यदि रोगी को वमन (उलटी) होता है तो वमन के कारण को पूछ कर उस कारण को वन्द करना चाहिये, ऐसा करने से वमन को बन्द करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती[4] है, जैसे यदि पित्त से वमन होता हो पित्त को दवाना चाहिये, यदि अजीर्ण से होता हो तो अजीर्ण का इलाज करना चाहिये, तथा यदि होजरी की हरकत से होता हो तो उस ही का इलाज करना चाहिये, तात्पर्य यह है कि-वमन के रोग में वमन के कारण का निश्चय करने के लिये बहुत पूछ ताछ करने की आवश्यकता है, इसी प्रकार से सब रोगों के कारणों का निश्चय सब से प्रथम करना चाहिये, ऐसा न करने से चिकित्सा का कुछ भी फल नहीं होता[5] है, देखो! यदि बुखार अजीर्ण से आया हो और उस का इलाज दूसरा किया जावे तो वह आराम नहीं हो सकता है, इसलिये पहिले इस का निश्चय करना चाहिये कि बुखार अजीर्ण से हुआ है अथवा और किसी

१-परन्तु स्मरण रहे कि आँवला गूगुल तथा लोहे से वनी हुई दवाओं के खाने से दस्त काला आता है, इस लिये यदि इन में से कोई कारण हो तो काले दस्त से नहीं डरना चाहिये ॥

२-क्योंकि दूसरी परीक्षाओं से कुछ न कुछ सन्देह रह जाता है परन्तु रोगी से हकीकत पूछ लेने से रोग का ठीक निश्चय हो जाता है ॥

३-सहायक ही नहीं किन्तु यह कहना चाहिये कि-निदान का जानना ही चिकित्सा का मुख्य आधार है ॥

४-क्योंकि वमन के कारण को वन्द कर देनेसे वमन आप ही वन्द हो जाता है ॥

५-कारण का निश्चय किये विना केवल चिकित्सा ही निष्फल हो जाती हो यही नहीं किन्तु ऐसी चिकित्सा दूसरे रोगों का कारण वन जाती है ॥

कारण से हुआ है, इस का निश्चय जैसे दूसरे लक्षणों आदि से होता है उसी प्रकार रोगी ने दो तीन दिन पहिले क्या किया था, क्या खाया था, इत्यादि बातों के पूछने से शीघ्र ही निश्चय हो जाता है।

बहुत से रोग चिन्ता, भय, क्रोध और कामविकार आदि मनःसम्बधी कारणों से भी पैदा होते हैं और शरीर के लक्षणों से उन का ठीक २ ज्ञान नहीं होता है, इसलिये रोगों में हकीकत के पूछने की बहुत ही आवश्यकता है, उदाहरण के लिये पाठकगण जान सकते हैं कि–शिर का दुखना एक साधारण रोग है परन्तु उस के कारण बहुत से हैं, जैसे–शिर में गर्मी का होना, दस्त की कब्जी, धातु का जाना और प्रदर आदि कई कारणों से शिर दुखा करता है, अब शिर दुखने के कारण का ठीक निश्चय न करके यदि दूसरा इलाज किया जावे तो कैसे आराम हो सकता है? फिर शिर दुखने के कारणों को तलास करने में यद्यपि नाड़ीपरीक्षा भी कुछ सहायता देती है परन्तु यदि किसी प्रकार से रोग के कारण का पूर्ण अनुभव हो जावे तो शेष किसी परीक्षा से कोई काम नहीं है और रोग के कारण का अनुभव होने में केवल रोगी से सब हाल का पूछना प्रधान साधन है, जैसे देखो! शिर के दर्द में यदि रोगी से पूछ कर कारण का निश्चय कर लिया जावे कि तेरा शिर किस तरह से और कब से दुखता है इत्यादि, इस प्रकार कारण का निश्चय हो जाने पर इलाज करने से शीघ्र ही आराम हो सकता है, परन्तु कारण का निश्चय किये विना चिकित्सा करने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, जैसे देखो! यदि ऊपर लिखे कारणों में से किसी कारण से शिर दुखता हो और उस कारण को न समझ कर अमोनिया सुँघाया जावे तो उस से बिलकुल फायदा नहीं हो सकता है, फिर देखो! दाँत के तथा कान के रोग से भी शिर अत्यन्त दुखने लगता है, इस बात को भी विरले ही लोग समझते हैं, इसी प्रकार कान के बहने से भी शिर दुखता है, इस बात को रोगी तो स्वम में भी नहीं जान सकता है, हां यदि वैद्य कान के दुखने की बात को पूछे अथवा रोगी अपने आप ही वैद्य को अव्वल से आखीर तक अपनी सब हकीकत सुनाते समय कान के बहने की बात को भी कह देवे तो कारण का ज्ञान हो सकता है।

बहुत से अज्ञान लोग वैद्य की आबरू (प्रतिष्ठा) और परीक्षा लेने के लिये हाथ लम्बा करते हैं और कहते हैं कि–"आप देखो! नाड़ी में क्या रोग है?" परन्तु ऐसा कभी भूल कर भी नहीं करना चाहिये, किन्तु आप को ही अपनी सब हकीकत साफ २ कह देनी चाहिये, क्योंकि केवल नाड़ी के द्वारा ही रोग का निश्चय कभी नहीं हो सकता है, किन्तु रोग के निश्चय के लिये अनेक परीक्षाओं की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार वैद्य को भी चाहिये कि केवल नाड़ी के देखनेका आडम्बर रचकर रोगी को भ्रम में न डाले और न उसे डरावे किन्तु उस से धीरज से पूछ २ कर रोग की असली पहिचान

करे, यदि रोग की ठीक परीक्षा कराने के लिये कोई नया वा अज्ञान (अजान) रोगी आ जावे तो उस को थोड़ी देर तक बैठने देना चाहिये, जब वह स्वस्थ (तहेदिल) हो जावे तब उस की आकृति, आँखें और जीभ आदि परीक्षणीय (परीक्षा करने के योग्य) अङ्गों को देखना चाहिये, इस के बाद दोनों हाथों की नाड़ी देखनी चाहिये, तथा उस के मुख से सब हकीकत सुननी चाहिये, पीछे उस के शरीर का जो भाग जांचने योग्य हो उसे देखना और जांचना चाहिये, रोगी से हकीकत पूछते समय सब बातों का खूब निश्चय करना चाहिये अर्थात् रोगी की जाति, वृत्ति (रोज़गार), रहने का ठिकाना, आयु, व्यसन[2], भूतपूर्व रोग (जो पहिले हो चुका है वह रोग[3]), विधिसहित पूर्वसेवित औषध (क्या २ दवा कैसे २ ली, क्या २ खाया पिया ? इत्यादि), औषधसेवन का फल (लाभ हुआ वा हानि हुई इत्यादि), इत्यादि सब बातें पूँछनी चाहियें[1] ।

इन सब बातों के सिवाय रोगी के मा बाप का हाल तथा उन की शरीरसम्बन्धिनी (शरीर की) व्यवस्था (हालत) भी जाननी चाहिये, क्योंकि बहुत से रोग माता पिता से ही पुत्रों के होते हैं ।

यद्यपि स्वरपरीक्षा से भी रोगी के मरने जीने कष्ट रहने तथा गर्मी शर्दी आदि सब बातों की परीक्षा होती है परन्तु वह यहां ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से नहीं लिखी है, हां स्वरोदय के विषय में इस का भी कुछ वर्णन किया है, वहां इस विषय को देखना चाहिये ।

साध्यासाध्यपरीक्षा बल के द्वारा भी होती है, इस के सिवाय मृत्यु के चिह्न संक्षेप से कालज्ञान में लिखे हैं, जैसे–कानों में दोनों अंगुलियों के लगाने से यदि गड़ागड़ाहट न होवे तो प्राणी मर जाता है, आंख को मसल कर अँधेरे में खोले, यदि बिजुली का सा झबका न होवे तथा आंख को मसल कर मींचने से रंग २ का (अनेक रंगों का) जो आकाश से बरसता हुआ सा दीखता है वह न दीखे तो मृत्यु जाननी चाहिये, छाया-पुरुष से अथवा काच में देखने से यदि मस्तक आदि न दीखें तो मृत्यु जाननी चाहिये, यदि चैतसुदि ४ को प्रातःकाल चन्द्रस्वर न चले तो नौ महीने में मृत्यु जाननी चाहिये,

---

१–बहुत से धूर्त वैद्य अपना महत्त्व दिखलाने के लिये रोगी का हाल आदि कुछ भी न पूँछकर केवल नाड़ी ही देखते हैं (मानो सर्वसाधारण को वे यह प्रकट करना चाहते हैं कि हम केवल नाड़ी देखकर ही रोग की सर्व व्यवस्था को जान सकते हैं) तथा नाड़ी देखकर अनेक झूंठी सच्ची बातें बना कर अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये रोगी को बहका दिया करते हैं, परन्तु सुयोग्य और विद्वान् वैद्य ऐसा कभी नहीं करते हैं ॥

२–यदि कोई हो तो ॥

३–भूतपूर्व रोग का पूछना इस लिये आवश्यक है कि–उस का भी विचार कर ओषधि दी जावे, क्योंकि उपदंश आदि भूतपूर्व कई रोग ऐसे भी हैं कि जो कारणसामग्री की सहायता पाकर फिर भी उत्पन्न हो जाते हैं–इस लिये यदि ऐसे रोग उत्पन्न होचुके हों तो चिकित्सा में उन के पुनरुत्पादक कारण को बचाना पड़ता है ॥

इत्यादि, यह सब विवरण ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहां नहीं लिखा है, हां स्वर का तो कुछ वर्णन आगे (पञ्चमाध्याय में) लिखा ही जावेगा—यह संक्षेप से रोगपरीक्षा और उस के आवश्यक प्रकारों का कथन किया गया ॥

यह चतुर्थ अध्याय का रोगपरीक्षाप्रकार नामक वारहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तेरहवां प्रकरण—औषध प्रयोग ॥

औषधों का संग्रह ॥

जंगल में उत्पन्न हुई जो अनेक वनस्पतियां बाज़ार में विकती हैं तथा अनेक दवायें जो धातुओं के संसर्ग से तथा उन की भस्म से वनती हैं इन्हीं सवों का नाम औषध (दवा)[1] है, परन्तु इस ग्रन्थ में जो २ वनस्पतियां संग्रहीत की गई हैं अथवा जिन २ औषधों का संग्रह किया गया है वे सव साधारण हैं, क्योंकि जिस औषध के बनानें में बहुतज्ञान, चतुराँई, समय और धन की आवश्यकता है उस औषध का शास्त्रोक्त (शास्त्र में कहा हुआ) विधान और रस आदि विद्योशाला[2] के सिवाय अन्यत्र यथावस्थित (ठीक २) वन सकना असम्भव है, इस लिये जिन औषधों को साधारण वैद्य तथा गृहस्थ खुद बना सके अथवा बाज़ार से मंगा कर उपयोग में ला सके उन्हीं औषधों का संक्षेप से यहां संग्रह किया गया है तथा कुछ साधारण अंग्रेज़ी औषधों के भी नुसख़े लिखे हैं कि जिन का वर्त्ताव प्रायः सर्वत्र किया जाता है।

इन में से प्रथम कुछ शास्त्रोक्त औषधों का विधान लिखते हैं:—

अरिष्ट और आसव—पानी काढ़ा अथवा पतले प्रवाही पदार्थ में औषध को डाल कर उसे मिट्टी के वर्तन में भर के कपड़मिट्टी से उस वर्तन का मुँह वन्द कर एक या दो पखवाड़े तक रक्खा रहने दे, जव उस में खमीर पैदा हो जावे तव उसे काम में लावे, औषधों को उवाले विना रहने देने से आसैव[3] तैयार होता है और उवाल कर तथा दूसरे औषधों को पीछे से डाल कर रख छोड़ते हैं तव अरिष्ट[4] तैयार होता है।

१—अर्थात् वनस्पतियों और धातुओं से चिकित्सार्थ वने हुए पदार्थों का समावेश औषध नाम में हो जाता है ॥

२—'विद्याशाला, शब्द से यहां वह स्थान समझना चाहिये कि जहां वैद्यकविद्या का नियमानुसार पठन पाठन होता हो तथा उसी के नियम के अनुसार सब ओषधियां ठीक २ तैयार की जाती हों ॥

३—जैसे कुमार्यासव, द्राक्षासव, आदि ॥

४—जैसे अमृतारिष्ट आदि ॥

जहा औषधों का वजन न लिखा हो वहां इस परिमाण से लेना चाहिये कि—अरिष्ट के लिये उवालने की दवा ५ सेर, शहद ६। सेर, गुड़ १२॥ सेर और पानी ३२ सेर, इसी प्रकार आसव के लिये चूर्ण १। सेर लेना चाहिये तथा शेष पदार्थ ऊपर लिखे अनुसार लेने चाहियें[1]।

इन दोनों के पीने की मात्रा ४ तोला है[2]।

मद्य—इसे यन्त्र पर चढ़ा कर अर्क टपकाते हैं, उसे मद्य (स्पिरिट) कहते हैं।

अर्क—औषधों को एक दिन भिगाकर यन्त्र[3] पर चढ़ा के भभका खींचते हैं, उसे अर्क[4] कहते हैं।

अवलेह—जिस वस्तु का अवलेह[5] बनाना हो उस का स्वरस लेना चाहिये, अथवा काढ़ा[6] बना कर उस को छान लेना चाहिये, पीछे उस पानी को धीमी आंच से गाढ़ा पड़ने देना चाहिये, फिर उस में शहद गुड़ शक्कर अथवा मिश्री तथा दूसरी दवायें भी मिला देना चाहिये, इस की मात्रा आधे तोले से एक तोले तक है।

कल्क[7]—गीली वनस्पति को शिलापर पीस कर अथवा सूखी ओषधि को पानी डाल कर पीस कर लुगँदी कर लेनी चाहिये, इस की मात्रा एक तोले की है।

क्वाथ[8]—एक तोले ओषधि में सोलह तोले पानी डाल[9] कर उसे मिट्टी वा कलई के पात्र (वर्त्तन) में उकालना (उवालना) चाहिये, जब अष्टमांश (आठवां भाग) शेष रहे तब उसे छान लेना चाहिये, प्रायः उकालने की ओषधि का वजन एक समय के लिये ४

१-परन्तु कई आचार्यों का यह कथन है कि-अरिष्ट में डालने के लिये प्रक्षेपवस्तु ४० रुपये भर, शहद २०० रुपये भर, गुड़ ४०० रुपये भर तथा द्रव पदार्थ १०२४ रुपये भर होना चाहिये ॥

२-यह पूर्णअवस्थावाले पुरुष के लिये मात्रा है, किन्तु न्यूनावस्था वाले के लिये मात्रा कम करनी पड़ती है, जिस का वर्णन आगे किया जावेगा, (इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये) ॥

३-यन्त्र कई प्रकार के होते हैं, उन का वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

४-दयाधर्मवालों के लिये अर्क पीने योग्य अर्थात् भक्ष्य पदार्थ है परन्तु अरिष्ट और आसव अभक्ष्य हैं, क्योंकि जो बाईस प्रकार के अभक्ष्य के पदार्थों के खाने से बचता है उसे ही पूरा दयाधर्म का पालनेवाला समझना चाहिये ॥

५-जो वस्तु चाटी जावे उसे अवलेह कहते हैं ॥

६-तात्पर्य यह है कि यदि गीली वनस्पति हो तो उस का स्वरस लेना चाहिये परन्तु यदि सूखी ओषधि हो तो उस का काढ़ा बना लेना चाहिये ॥

७-इस को मुसलमान वैद्य (हकीम) लऊक कहते हैं तथा संस्कृत में इस का नाम कल्क है ॥

८-इस को उकाली भी कहते हैं ॥

९-तात्पर्य यह है कि ओषधि से १६ गुना जल डाला जाता है-परन्तु यह जल का परिमाण १ तोले से लेकर ४ तोले पर्यन्त औषध के लिये समझना चाहिये, चार तोले से उपरान्त कुड़व पर्यन्त औषध में आठगुना जल डालना चाहिये और कुड़व से लेकर प्रस्थ (सेर) पर्यन्त औषध में चौगुना ही जल डालना चाहिये ॥

तोले है, यदि क्राथ को थोड़ा सा नरम करना हो तो चौथा हिस्सा पानी रखना चाहिये, एक बार उकाल कर छानने के पीछे जो कूचा रह जावे उस को दूसरी वार (फिर भी शाम को) उकाला जावे तथा छान कर उपयोग में लाया जावे उसे परक्राथ (दूसरी उकाली) कहते हैं, परन्तु शाम को उकाले हुए क्राथ का वासा कूचा दूसरे दिन उपयोग में नहीं लाना चाहिये, हां प्रातःकाल का कूचा उसी दिन शाम को उपयोग में लाने में कोई हर्ज नहीं है।

निर्बल रोगी को क्राथ का अधिक पानी नहीं देना चाहिये।

नवीन ज्वर में पाचन क्राथ (दोषों को पकानेवाला क्राथ) देना हो तो अर्द्धावशेष (आधा वाकी) रख कर देना चाहिये।

कुटकी आदि कटु पदार्थों का क्राथ ज्वर में देना हो तो ज्वर के पकने के बाद देना चाहिये।[1]

स्मरण रहे कि-क्राथ करने के समय वर्तन पर ढक्कन देना (ढांकना) नहीं चाहिये, क्योंकि ढक्कन देकर (ढांक कर) बनाया हुआ क्राथ फायदे के बदले बड़ा भारी नुकसान करता है।

कुरला[2]—दवा को उकाल कर उस पानी के अथवा रात को भिगोये हुए ठंढे हिम के अथवा फिटकड़ी और नीलाथोथा आदि को पानी में डाल कर उस पानी के मुखपाक आदि (मुँह का पक जाना अथवा मसूड़ों का फूलना आदि) रोगों में कुरले[3] किये जाते हैं।

ऊपर कहे हुए रोगों में त्रिफला, रांग, तिलकँटा, चमेली के पत्ते, दूध, घी और शहद, इन में से किसी एक वस्तु से कुरले करने से भी फायदा होता है।

गोली[4]—किसी दवा को अथवा सत्त्व को शहद, नींबू का रस, अदरख का रस, पान का रस, गुड़, अथवा गूगुल[5] की चासनी में डाल कर छोटी २ गोलियां बनाई जाती हैं, पीछे इन का यथावश्यक उपयोग होता है।

१-ज्वर के पकने का समय यह है कि-वातिक ज्वर सात दिन में, पैत्तिक ज्वर दश दिन में तथा श्लैष्मिक ज्वर बारह दिन में पकता है ॥

२-कुरले को संस्कृत में गण्डूष कहते हैं ॥

३-कुरले के ४ भेद हैं—स्नेहन (चिकनाहट करनेवाला), शमन (शान्ति करनेवाला), शोधन (साफ करनेवाला) और रोपण (स्वच्छ धातुओं की भरती करके घाव को पूरा करनेवाला), वात की पीड़ा में स्नेहन, पित्त की पीड़ा में शमन, कफ की पीड़ा में शोधन तथा घाव आदि में रोपण कुरले किये जाते हैं, (इन का विधान वैद्यक ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक देख लेना चाहिये) ॥

४-इन को संस्कृत में गुटिका कहते हैं तथा बड़ी २ गोलियों को मोदक कहते हैं ॥

५-गूगुल को यदि शोधना हो तो त्रिफला के क्राथ में शोधना चाहिये तथा शिलाजीत भी इसी में शुद्ध होता है ॥

घी तथा तेल—जिन २ औषधों का घी अथवा तेल बनाना हो उन का स्वरस लेना चाहिये, अथवा औषधों का पूर्वोक्त कल्क लेना चाहिये, उस से चौगुना घी अथवा तेल लेना चाहिये, घी तथा तेल से चौगुना पानी, दूध, अथवा गोमूत्र लेना चाहिये और सूखे औषध को १६ गुने पानी में उकाल कर चतुर्थांश रखना चाहिये, क्वाथ से चौगुना घी तथा तेल होना चाहिये, गीले औषधों का कल्क बना कर ही डालना चाहिये, पीछे सब को उकालना चाहिये, उकालने से जब पानी जल जावे तथा औषध का भाग पक्का (लाल) हो जावे तथा घी अलग हो जावे तब उतार कर ठंढा कर छान लेना चाहिये।

इन के सिद्ध हो जाने की पहिचान यह है कि–तेल में जब झागों का आना बंद हो जावे तब उसे तैयार समझकर झट नीचे उतार लेना चाहिये तथा घी में जब झाग आ जावें त्योंही झट उसे उतार लेना चाहिये[2]।

इन के सिवाय वस्तुओं के तेल घाणी में तथा पातालयन्त्रादि से निकाले जाते हैं जिस का जानना गुरुगम तथा शास्त्राधीन है, इस घृत तथा तेल की मात्रा चार तोले की है।

चूर्ण—सूखे हुए औषधों को इकट्ठा कर अथवा अलग २ कूटकर तथा कपड़छान कर रख छोड़ना चाहिये, इस की मात्रा आधे तोले से एक तोले तक की है।

धुआँ वा धूप—जिस प्रकार अङ्गार में दवा को सुलगा कर धूप दे कर घर की हवा साफ की जाती है उसी प्रकार कई एक रोगों में दवा का धुआं चमड़ी को दिया जाता है, इस की रीति यह है कि–अंगारे पर दवाको डालकर उसे खाट (चार पाई) के नीचे रख कर खाटपर बैठ कर मुँह को उघाड़ (खुला) रखना चाहिये और सब शरीर को कपड़े से खाट समेत चारों तरफसे इस प्रकार ढकना चाहिये कि धुआँ बाहर न निकलने पावे किन्तु अंगपर लगता रहे।

धूम्रपान—जैसे दवा का धुआं शरीर पर लिया जाता है उसी प्रकार दवा को हुक्के

१–तात्पर्य यह है कि–गिलोय आदि मृदु पदार्थों में चौगुना जल डालना चाहिये. सोंठ आदि सूखे पदार्थों में आठगुना जल डालना चाहिये तथा देवदारु आदि बहुत दिन के सूखे पदार्थों में सोलह गुना जल डालना चाहिये ॥

२–इन की दूसरी परीक्षा यह भी है कि स्नेह का पाक करते २ जब कल्क अंगुलियों में मींडने से वत्ती के समान हो जावे और उस कल्क को अग्नि में डालने से आवाज़ न हो अर्थात् चटचटावे नहीं तब जानना चाहिये कि अब यह स्नेह (घृत अथवा तेल) सिद्ध हो गया है ॥

३–यदि चूर्ण में गुड़ मिलाना हो तो समान भाग डालें, खांड डालनी हो तो दूनी डालें तथा चूर्ण में यदि हींग डालनी हो तो घृत में भून कर डालनी चाहिये, ऐसा करने से यह उत्क्लेद नहीं करती है, यदि चूर्ण को घृत या शहद में मिला कर चाटना हो तो उन्हें (घृत वा शहद को) चूर्ण से दूने लेवे, इसी प्रकार यदि पतले पदार्थ के साथ चूर्ण को लेना हो तो वह (जल आदि) चौगुना लेना चाहिये ॥

में भरकर फिरंग तथा गठिया आदि रोगों में मुँह से वा नाक से पीते हैं, इसे धूम्रपान कहते हैं।

नस्य—नाक में घी तेल तथा चूर्णकी सूँघनी ली जाती है उस को नस्य कहते हैं।

पान—किसी दवा को ३२ गुने अथवा उस से भी अधिक पानी में उकाल कर आधा पानी बाकी रक्खा जावे तथा उसे पिया जावे इसे पान कहते हैं।

पुटपाक—किसी हरी वनस्पति को पीस कर गोला बना कर उस को बड़ (बरगद) वा एरण्ड अथवा जामुन के पत्ते में लपेट कर ऊपर कपड़मिट्टी का थर दे कर वनकंडों को सुलगा कर निर्धूम होनेपर उस में रख देना चाहिये, जब गोले की मिट्टी लाल हो जावे तब उसे निकाल कर तथा मिट्टी को दूर कर रस निचोड़ लेना चाहिये, परन्तु यदि वनस्पति सूखी हो तो जल में पीस कर गोला कर लेना चाहिये, इस रस को पुटपाक कहते हैं, इस के पीने की मात्रा दो से चार तोले तक की है।

पञ्चाङ्ग—मूल (जड़), पत्ते, फल, फूल तथा छाल, इस को पञ्चाङ्ग कहते हैं।

फलवर्ती—योनि अथवा गुदा के अन्दर दवा की मोटी[3] बत्ती दी जाती है तथा इस में घी वा दवाका तेल अथवा साबुन आदि भी लगाया जाता है।

फांट—एक भाग दवा के चूर्ण को आठ भाग[4] गर्म पानी में कुछ घंटोंतक भिगा कर उस पानी को दवा के समान पीना चाहिये, ठंढे पानी में १२ घण्टेतक भीगने से भी फांट[5] तैयार होता है, इस की मात्रा ५ तोले से १० तोले तक है।

वस्ति—पिचकारी में कोई प्रवाही दवा भर कर मल वा मूत्र के स्थान में दवा चढ़ाई जाती है, इस का नाम वस्ति[6] है, वह खाने की दवा के समान फायदा करती है।

१–धूम्रपान छः प्रकार का है–शमन, बृंहण, रेचन, कासहा, वमन और व्रणधूपन, इन का विधान और उपयोग दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये–थका हुआ, डरपोक, दुखिया, जिस को तत्काल वस्तिविधि कराई गई हो, रेचन लिया हुआ, रात्रि में जागा हुआ, प्यासा, दाह से पीड़ित, जिस का तालु सूख रहा हो, उदररोगी, जिस का मस्तक तप्त हो, तिमिररोगी, छर्दिवाला, अफरे से पीड़ित, उरःक्षतवाला, प्रमेह से पीड़ित, पाण्डुरोगी, गर्भवती स्त्री, रूक्ष और क्षीण, जिस ने दूध शहद घृत और आसव का उपयोग किया हो, जिस ने अन्न दही आदि का उपयोग किया हो, बालक, वृद्ध और कृश, इत्यादि प्राणियों को धूम्रपान नहीं करना चाहिये ॥

२–नस्य के सब भेद और उन का विधान आदि दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये, क्योंकि नस का विधान बहुत विस्तृत है ॥

३–इस की मोटाई अंगुष्ठ के समान होनी चाहिये ॥

४–कोई आचार्य चौगुने जल में भिगाने को लिखते हैं ॥

५–इस को कोई आचार्य हिम कहते हैं तथा इसी जल को रई से मथने से मन्थ कहलाता है ॥

६–वस्ति के सब भेद तथा उन का विधान आदि दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये, क्योंकि इस का बहुत विस्तार है ॥

भावना—दवा के चूर्ण को दूसरे रस के पिलाने को (दूसरे रस में भिगाकर शुष्क करने को) भावना कहते हैं, एकवार रस में घोट कर या भिगा कर सुखाले, इस को एक भावना कहते हैं, इसी प्रकार जितनी भावनायें देनीं हों उतनी देते चले जांवें।

बाफ—बाफ कई प्रकारसे ली जाती है, बहुत सीं सेंक और बांधने की दवायें भी बफारे का काम देती हैं, केवल गर्म पानी की अथवा किसी चीज़ को डाल कर उकाले हुए पानी की बाफ सँकड़े मुखवाले वर्त्तन से लेनी चाहिये, इस की विधि पहिले लिख चुके हैं।

बन्धेरण—किसी वनस्पति के पत्ते आदि को गर्म कर शरीर के दुखते हुए स्थान पर बाँधने को बन्धेरण कहते हैं।

मुरब्बा—हरड़ आँवला तथा सेव आदि जिस चीज़ का मुरब्बा बनाना हो उस को उबाल करें तथा धो कर दुगुनी या तिगुनी खांड या मिश्री की चासनी में डुबा कर रख छोड़ना चाहिये, इसे मुरब्बा कहते हैं।

मोदक—बड़ी गोली को मोदक कहते हैं, मेथीपाक तथा सोंठपाक आदि के मोदक गुड़ खांड़ तथा मिश्री आदि की चासनी में बाँधे जाते हैं।

मन्थ—दवा के चूर्ण को दवा से चौगुने पानी में डाल कर तथा हिला कर या मथकर छान कर पीना चाहिये, इसे मन्थ कहते हैं।

यवागू—कांजी–अनाज के आटे को छःगुने पानी में उकाल कर गाढ़ा कर के उतार लेना चाहिये।

लेप—सूखी हुई दवा के चूर्ण को अथवा गीली वनस्पति को पानी में पीस कर लेप किया जाता है, लेप दोपहर के समयमें करना चाहिये ठंढी वख्त नहीं करना चाहिये, परन्तु रक्त पित्त, सूजन, दाह और रक्तविकार में समय का नियम नहीं है।

१–जितने रस में सब चूर्ण डूब जावे उतना ही रस भावना के लिये लेना चाहिये, क्योंकि यही भावना का परिमाण वैद्यों ने कहा है॥

२–इस का मुख्य प्रयोजन पसीना लाने से है कि पसीने के द्वारा दोष शरीर में से निकले॥

३–यदि कोई कड़ी वस्तु हो तो फिटकड़ी आदि के तेज़ाब से उसे नरम कर लेना चाहिये॥

४–मधुपक्क हरड आदि को भी मुरब्बा ही कहते हैं॥

५–अभयादि मोदक आदि मोदक कई प्रकार के होते हैं॥

६–लेप के दो भेद हैं–प्रलेप और प्रदेह, पित्तसम्बंधी शोथ में प्रलेप तथा कफसम्बंधी शोथ में प्रदेह किया जाता है, (विधान वैद्यक ग्रन्थों में देखो)॥

७–रात्रि में लेप नहीं करना चाहिये परन्तु दुष्ट व्रणपर रात्रि में भी लेप करने में कोई हानि नहीं है, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्रायः लेपपर लेप नहीं किया जाता है॥

लूपड़ी वा पोल्टिस—गेहूँ का आटा, अलसी, नींव के पत्ते तथा कांदा आदि को जल में पीस कर अथवा गर्म पानी में मिला कर लुगदी बना कर शोथ (सूजन) तथा गुमड़े आदिपर बांधना चाहिये, इसे लूपड़ी वा पोल्टिस कहते हैं।

सेंक—सेंक कई प्रकार से किया जाता है—कोरे कपड़े की तह से, रेत से, ईंट से, गर्म पानी से भरी हुई काच की शीशी से और गर्म पानी में डुबाकर निचोड़े हुए फलालैन वा ऊनी कपड़े से अथवा बाफ दिये हुए कपड़े से इत्यादि।

स्वरस—किसी गीली वनस्पति को बाँट (पीस) कर आवश्यकता के समय थोड़ा सा जल मिला कर रस निकाल लेना चाहिये, इसे स्वरस कहते हैं, यदि वनस्पति गीली न मिले तो सूखी दवा को अठगुने पानी में उकाल कर चौथा भाग रखना चाहिये, अथवा २४ घण्टे तक पानी में भिगाकर रख छोड़ना चाहिये, पीछे मल कर छान लेना चाहिये, गीली वनस्पति के स्वरस के पीने की मात्रा दो तोले है तथा सूखी वनस्पति के स्वरस की मात्रा चार तोले है परन्तु बालक को स्वरस की मात्रा आधा तोला देनी चाहिये।

हिम—ओषधि के चूर्ण को छः गुने जल में रातभर भिगा कर जो प्रातःकाल छान कर लिया जाता है; उस को हिम कहते हैं।

क्षार—जौ आदि वनस्पतियों में से जवाखार आदि क्षार (खार) निकाले जाते हैं, इसी प्रकार मूली, कारपाठा (घीग्वारपाठा) तथा औंधाझाड़ा आदि भी बहुत सी चीज़ों का खार निकाला जाता है।

इस के निकालने की यह रीति है कि—वनस्पति को मूल (जड़) समेत उखाड़ कर उस के पञ्चांग को जला कर राख कर लेनी चाहिये, पीछे चौगुने जल में हिला कर किसी मिट्टी के बर्तन में एक दिनतक रखकर ऊपर का नितरा हुआ जल कपड़े से छान लेना

१–सेंक के–स्नेहन, रोपण और लेखन, ये तीन मुख्य भेद हैं, वातपीड़ा में–स्नेहन, पित्तपीड़ा में रोपण तथा कफपीड़ा में लेखन सेंक किया जाता है, इन का विधान आदि सब विषय वैद्यक ग्रन्थों में देखना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि–सेंक दिन में करना चाहिये परन्तु अति आवश्यक अर्थात् महादुःखदायी रोग हो तो रात्रि के समय में भी करना चाहिये ॥

२–पानी की बाफ से युक्त फलालैन अथवा ऊनी कपड़े से सेंक करने की विधि पहिले लिख चुके हैं ॥

३–वनस्पति वह लेनी चाहिये जो कि सरदी अग्नि और कीड़े आदि से बिगड़ी न हो ॥

४–इसे स्वरस तथा अंगरस भी कहते हैं ॥

५–इसे स्वरस तथा रस भी कहते हैं ॥

६–इस को शीतकषाय भी कहते हैं, इस के पीने की मात्रा दो पल अर्थात् ८ तोले है ॥

७–किन्हीं लोगों ने यवक्षार (जौखार) के बनाने की रीति यह लिखी है कि जौ के शूक की राख एक सेर चौंसठ (६४) सेर पानी में मिलाकर मोटे कपड़े में वह पानी क्रमशः २१ बार छान लेना चाहिये, फिर इस पानी को किसी पात्र में भर कर औटाना चाहिये, जब पानी जलकर चूर्णवत् (चूर्ण के समान) पदार्थ बाकी रह जावे उसी को यवक्षार (जवाखार) कहते हैं ॥

चाहिये, पीछे उस जल को फिर जलाना चाहिये, इस प्रकार जलानेपर आखिरकार क्षार पेंदी में सूख कर जम जायगा।

सत[1]—गिलोय तथा मुलेठी आदि पदार्थों का सत बनाया जाता है, इस की रीति यह है कि–गीली औषध को कूट जल में मथकर एक पात्र में जमने देना चाहिये, पीछें ऊपर का जल धीरे से निकाल डालना चाहिये, इस के पीछे पेंदी पर सफेदसा पदार्थ रह जाता है वही सूखने के बाद सत जमता है।

सिरका[2]—अंगूर[3] जामुन[4] तथा सांठे (गन्ना वा ईख) का सिरका बनाया जाता है, इस की रीति यह है कि–जिस पदार्थ का सिरका बनाना हो उस का रस निकाल कर तथा थोड़ासा नौसादर डाल कर धूप में रख देना चाहिये, सड़ उठनेपर तीन वा सात दिन में बोतलों को भर कर रख छोड़ना चाहिये, इस की मात्रा आधे तोले से एक तोले-तक की है, दाल तथा शाक में इस की खटाई देने से बहुत हाज़मा होता है, भोजन के पीछे एक घण्टे के बाद इसे पानी में मिलाकर पीने से पाचनशक्ति दुरुस्त होती है।

गुलकन्द[5]—गुलाब या सेवती के फूलों की पँखड़ियों की मिश्री बुरका कर तह पर तह देते जाना चाहिये तथा उसे ढँक कर रख देना चाहिये, जब फूल गल कर एक रस हो जावे तब कुछ दिनों के बाद वह गुलकन्द तैयार हो जाता है, यह बड़ी तरावट रखता है, उष्णकाल में प्रातःकाल इसे घोट कर पीने से अत्यन्त तरावट रहती है तथा अधिक प्यास नही लगती[6] है।

कुछ औषधों के अंग्रेज़ी तथा हिन्दी नाम ॥

संख्या॥	अंग्रेज़ी नाम॥	हिन्दी नाम॥	संख्या॥	अंग्रेजी नाम॥	हिन्दी नाम॥
१	इनफ्यूज़न ॥	चाय ॥	११	पलास्टर ॥	लेप ॥
२	एकवा ॥	पानी ॥	१२	पोल्टिस ॥	लूपड़ी ॥
३	एक्स्ट्राक्ट ॥	सत्व, घन ॥	१३	फोमेनटेशन॥	सेंक ॥

१–इस को संस्कृत में सत्त्व कहते हैं॥

२–इसे पूर्वीय देशों में छिरका भी कहते हैं, वहां सिरके में आम करौंदे बेर और खीरा आदि फलों को भी डालते हैं जो कि कुछ दिनतक उस में पड़े रह कर अत्यन्त सुस्वादु हो जाते हैं॥

३–अंगूर का सिरका बहुत तीक्ष्ण (तेज) होता है॥

४–जामुन का सिरका पेट के लिये बहुत ही फायदेमन्द होता है, इस में थोड़ा सा काला नमक मिला कर पीने से पेट का दर्द शान्त हो जाता है॥

५–गुलकन्द में प्रायः वे ही गुण समझने चाहियें जो कि गुलाब वा सेवती के फूलों में तथा मिश्री में हैं॥

६–यह–शीतल, हृदय को हितकारी, ग्राही, शुक्रजनक (वीर्य को उत्पन्न करनेवाला), हलका, त्रिदोष-नाशक, रुधिरविकार को दूर करनेवाला, रंग को उज्ज्वल करनेवाला तथा पाचन है॥

४	एनिमा ॥	पिचकारी, वस्ति ॥	१४	बाथ ॥	बाफ, स्नान ॥
५	ओल्यम ॥	तेल (खानेका) ॥	१५	ब्लिस्टर ॥	फफोला उठाना ॥
६	अंग्वेन्टम ॥	मल्हम ॥	१६	मिक्सचर ॥	मिलावट ॥
७	कन्फेक्सन ॥	मुरब्बा, अचार ॥	१७	लाइकर ॥	प्रवाही ॥
८	टिंक्चर ॥	अर्क ॥	१८	लिनिमेंट ॥	तेल (लगाने का) ॥
९	डिकोक्सन ॥	काढ़ा, उकाली ॥	१९	लोशन ॥	पोता धोने की दवा ॥
१०	पल्वीस ॥	चूर्ण ॥	२०	वाइन ॥	आसव ॥

देशी तौल (वज़न) ॥

१ रत्ती=चिरमीभर ॥

३ रत्ती= १ वाल ॥

३ वाल=१ मासा ॥

६ मासा=१टंक[1] ॥

२ टंक=१ तोला ॥

४ वाल=अन्दाजन १ दुअन्नीभर ॥

८ वाल=१ चौअन्नीभर ॥

१६ वाल=१ अठन्नीभर ॥

३२ वाल=१ रुपयेभर ॥

४० रुपयेभर=॥ सेर, पाऊँड, रतल ॥

८० रुपयेभर=१ सेर ॥

अंग्रेजी तैल और माप ॥

सूखी दवाइयों की तौल ॥

१ ग्रेन =१ गेहूँभर ॥

२० ग्रेन =१ स्क्रुपल ॥

३ स्क्रुपल=१ ड्राम ॥

८ ड्राम =१ औंस ॥

१२ औंस =१ पाउण्ड ॥

२ ग्रेन =१ रत्ती ॥

६ ग्रेन =१ वाल ॥

१ औंस =२॥ रुपयेभर ॥

पतली दवाइयों की माप ॥

६० बूँद=मीनीम=१ ड्राम ॥

८ ड्राम=१ औंस ॥

२० औंस=१ पीन्ट ॥

८ पीन्ट=१ ग्यालन ॥

जो प्रवाही (पतली) दवाइयां ज़हरीलीं अथवा बहुत तेज़ नहीं होती हैं उन को साधारण रीति से (चमचा आदि भर के) भी पिला देते हैं, उस का क्रम इस प्रकार है:—

१ टी. स्पुन फुल=१ ड्राम । १ डिज़र्ट०स्पुन फुल= २ ड्राम । १ टेबुल स्पुन फुल= ४ ड्राम ½ औंस । १ वाइनग्लास फुल=२ औंस ।

१–परन्तु कहीं २ टंक चार ही मासे का माना जाता है ॥

अंग्रेजी में अवस्था के अनुसार दवा देने की देशी मात्रा ॥

पूरी अवस्था के आदमी को पूरी मात्रा का परिमाण (१ भाग गिनें तो) ॥

संख्या॥	अवस्था ॥	मात्रा ॥
१	१ से ३ महीने के बालक को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{१}{३६}$ ॥
२	३ से ६ महीने के बालक को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{१}{२४}$ ॥
३	६ से १२ महीने के बालक को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{१}{१२}$ ॥
४	१ से २ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{१}{८}$ ॥
५	२ से ३ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{१}{६}$ ॥
६	३ से ४ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{१}{४}$ ॥
७	४ से ७ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{१}{३}$ ॥
८	७ से १४ वर्ष के बालक को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{१}{२}$ ॥
९	१४ से २१ वर्ष के जवान को ॥	पूरी मात्रा का $\frac{२}{३}$ ॥
१०	२१ से ६० वर्ष के पूर्णायु पुरुष को ॥	पूर्ण मात्रा देनी चाहिये ॥

विशेष वक्तव्य—एक महीने के बच्चे को एक बायविड़ंग के दाने के वजन जितनी दवा देनी चाहिये, दो महीने के बच्चे को दो दाने जितनी दवा देनी चाहिये, इसी क्रम से प्रति महीने एक एक बायविड़ंग जितनी मात्रा बढ़ाते जाना चाहिये, इस प्रकार से १२ महीने के बालक को बारह बायविड़ंग जितनी दवा चाहिये, जिस प्रकार बालक की मात्रा अवस्था की वृद्धि में बढ़ा कर दी जाती है उसी प्रकार साठ वर्ष की अवस्था के पीछे वृद्ध पुरुष की मात्रा धीरें २ घटानी चाहिये अर्थात् साठ वर्षतक पूरी मात्रा देनी चाहिये पीछे प्रति सात २ वर्ष से ऊपर लिखे क्रम से मात्रा को कम करते जाना चाहिये परन्तु धातु की भस्म तथा रसायनिक दवा की मात्रा एक राई से लेकर अधिक से अधिक एक बाल तक भी दी जाती है ॥

अंग्रेजी-मात्रा ॥

संख्या॥	अवस्था ॥	अधिक से अधिक एक औंस वज़न ॥	अधिक से अधिक एक ड्राम वज़न ॥	अधिक से अधिक एक स्क्रुपल वज़न॥
१	१ से ६ महीनेतक॥	२४ ग्रेन ॥	३ ग्रेन ॥	१ ग्रेन ॥
२	२ से १२ महीनेतक॥	२ स्क्रुपल ॥	५ ग्रेन ॥	१॥ ग्रेन ॥
३	१ से २ वर्षतक ॥	१ ड्राम ॥	८ ग्रेन ॥	२॥ ग्रेन ॥
४	२ से ३ वर्षतक ॥	१। ड्राम ॥	९ ग्रेन ॥	३ ग्रेन ॥

१—यह विषय प्रायः देशी दवा के विषय में समझना चाहिये, अर्थात् अवस्था के अनुसार देशी दवा की मात्रा यह समझनी चाहिये ॥

५	३ से ५ वर्षतक ॥	१॥ ड्राम ॥	१२ ग्रेन ॥	४ ग्रेन ॥
६	५ से ७ वर्षतक ॥	२ ड्राम ॥	१५ ग्रेन ॥	५ ग्रेन ॥
७	७ से १० वर्षतक ॥	३ ड्राम ॥	२० ग्रेन ॥	७ ग्रेन ॥
८	१० से १२ वर्षतक ॥	॥ औंस ॥	॥ ड्राम ॥	॥ स्क्रुपल ॥
९	१२ से १५ वर्षतक ॥	५ ड्राम ॥	४० ग्रेन ॥	१४ ग्रेन ॥
१०	१५ से २० वर्षतक ॥	६ ड्राम ॥	४५ ग्रेन ॥	१६ ग्रेन ॥
११	२० से २१ वर्षतक ॥	१ औंस ॥	१ ड्राम ॥	१ स्क्रुपल ॥

विशेष सूचना—१–मात्रा शब्द जिस २ जगह लिखा हो वहां उसका अर्थ यह समझना चाहिये कि–इतनी दवा की मात्रा एक टङ्क (वख्त) की है।

२–अवस्था के अनुसार दवाइयों की मात्रा का वजन यद्यपि ऊपर लिखा है परन्तु उस में भी ताकतवर और नाताकृत (कमजोर) की मात्रा में अधिकता तथा न्यूनता करनी चाहिये तथा स्त्री और मनुष्य की जाति, ऋतु तथा रोग के प्रकार आदि सब बातों का विचार कर दवाकी मात्रा देनी चाहिये।

३–बालक को ज़हरीली दवा कभी नहीं देनी चाहिये, अफीम मिली हुई दवा भी चार महीने से कम अवस्थावाले बालक को नहीं देनी चाहिये, किन्तु इस से अधिक अवस्थावाले को देनी चाहिये और वह भी विशेष आवश्यकता ही में देनी चाहिये तथा देने के समय किसी विद्वान् वैद्य वा डाक्टर की सम्मति लेकर देनी चाहिये।

४–चूर्ण (फाँकी) की मात्रा अधिक से अधिक दो बाल के अन्दर देनी चाहिये तथा पतली दवा चार आने भर अथवा एक छोटे चमचे भर देनी चाहिये परन्तु उस में दवाई के गुण दोष तथा स्वभाव का विचार अवश्य करना चाहिये।

५–जो दवा पूरी अवस्था के आदमी को जिस वज़न में दी जावे उसे ऊपर लिखे अनुसार अवस्थाक्रम से भाग कर के देना चाहिये।

६–बालक को सोंठ मिर्च पीपल और लाल मिर्च आदि तीक्ष्ण ओषधि तथा मादक (नशीली) ओषधियां कभी नहीं देनी चाहियें।

१–क्योंकि दवा की शक्ति का सहन करने के लिये शक्ति की आवश्यकता है, इस लिये शक्ति का विचार कर ओषधि की मात्रा में न्यूनाधिकता कर लेनी चाहिये॥

२–बालक को ज़हरीली दवा के देने से उस के रुधिर में अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं जो कि शरीर में सदा के लिये अपना घर बना लेते हैं और शरीर में अनेक हानियां करते हैं॥

३–क्योंकि चार महीने से कम अवस्थावाला बालक अफीम मिली हुई दवा की शक्ति का सहन नहीं कर सकता है॥

४–विशेष अवस्था में न दे कर प्रायः अथवा नित्य देने से वह उस का अभ्यासी हो जाता है और उस से उस को अनेक हानियां पहुँचती हैं॥

७-गर्भिणी स्त्री के लिये भिन्न २ रोगों की जो खास २ दवा शास्त्रकारों ने लिखी है वही देनी चाहिये, क्योंकि बहुत गर्म दवाइयां तथा दस्तावर और तीक्ष्ण इलाज गर्भ को हानि पहुँचाते हैं ।

८-सब रोगों में सब दवाइयां ताज़ी और नई देनी चाहियें परन्तु वायबिड़ंग, छोटी पीपल, गुड़, धान्य, शहद और घी, ये पदार्थ दवा के काम के लिये एक वर्ष के पुराने लेने चाहियें ।

९-गिलोय, कुड़ाछाल, अडूसे के पत्ते, विदारीकन्द, सतावर, आसगँध और सोंफ, इत्यादि वनस्पतियों को दवा में गीली (हरी) लेना चाहिये तथा इन्हें दूनी नहीं लेना चाहिये ।

१०-इन के सिवाय दूसरी वनस्पतियां सूखी लेनी चाहियें, यदि सूखी न मिलें अर्थात् गीली (हरी) मिलें तो लिखे हुए वज़न से दूनी लेनी चाहियें ।

११-जो वृक्ष स्थूल और बड़ा हो उस की जड़ की छाल दवा में मिलानी चाहिये परन्तु छोटे वृक्षों की पतली जड़ ही लेनी चाहिये ।

१२-तमाम भस्म, तमाम रसायन दवायें तथा सब प्रकार के आसव ज्यों २ पुराने होते जावें त्यों २ गुणों में बढ़ कर होते हैं (विशेष गुणकारी होते हैं) परन्तु काष्ठादि की गोलियां एक वर्ष के बाद हीनसत्त्व (गुणरहित) हो जाती हैं, चूर्ण दो महीने के बाद हीनसत्त्व हो जाता है, औषधों के योग से बना हुआ घी तथा तेल चार महीने के बाद हीनसत्त्व हो जाता है, परन्तु पारा गन्धक हींगलू और बच्छनाग आदि को शुद्ध कर दवा में डालने से काष्ठादि रस दवाइयां पुरानी होनेपर भी गुणयुक्त रहती हैं अर्थात् उन का गुण नहीं जाता है ।

१३-काथ तथा चूर्ण आदि की बहुत सी दवाइयों में से यदि एक वा दो दवाइयां न मिलें तो कोई हरज नहीं है, अथवा इस दशा में उसी के सदृश गुणवाली दूसरी दवाई मिले तो उसे मिला देनी चाहिये तथा नुसखे में एक दो अथवा तीन दवाइयां रोग

१-परन्तु सांप आदि की बांबी, दुष्ट पृथिवी, जलप्राय स्थान, श्मशान, ऊपर भूमि और मार्ग में उत्पन्न हुई ताज़ी दवाई भी नहीं लेनी चाहिये, तथा कीड़ों की खाई हुई, आग से जली हुई, शर्दी से मारी हुई, लू लगी हुई, अथवा अन्य किसी प्रकार से दूषित भी दवा नहीं लेनी चाहिये ॥

२-तात्पर्य यह है कि लम्बी और मोटी जड़वाले (वट पीपल आदि) की छाल लेनी चाहिये तथा छोटी जड़वाले (कटेरी धमासा आदि) के सर्व अंग अर्थात् जड, पत्ता, फूल, फल और शाखा लेवें, परन्तु किन्हीं आचार्यों की यह सम्मति है जो कि ऊपर लिखी है ॥

३-कुछ ओषधियों की प्रतिनिधि ओषधियां यहां दिखलाते हैं-जिन को उनके अभाव में उपयोग में लाना चाहिये-चित्रक के अभाव में दन्ती अथवा ओंगा का खार, धमासे के अभाव में ज़वासा, तगर के अभावमें कूठ, मूर्वा के अभाव में जिंगनी की त्वचा, अहिंस्रा के अभाव में मानकन्द, लक्ष्मणा के अभाव में मोर-सिखा, मौरसिरी के अभाव में लाल कमल अथवा नीला कमल, नीले कमल के अभाव में कमोदनी, चमेली के फूल के अभाव में लौंग, आक आदि के दूध के अभाव में आक आदि के पत्तों का रस, पुहकरमूल

के विरुद्ध हों तो उन्हें निकाल कर उस रोग को मिटानेवाली न लिखी हुई दवाइयों को भी उस नुसखे में मिला देना चाहिये ।

१४-यदि गोली बांधने की कोई चीज़ (रस आदि) न लिखी हो तो गोली पानी में बांधनी चाहिये ।

१५-जिस जगह नुसखे में वज़न न लिखा हो वहां सब दवाइयां बराबर लेनी चाहियें।

१६-यदि चूर्ण की मात्रा न लिखी हो तो वहां चूर्ण की मात्रा का परिमाण पाव तोले से लेकर एक तोलेतक समझना चाहिये परन्तु जहरीली चीज का यह परिमाण नहीं है ।

१७-इस ग्रन्थ में विशेष दवाइयां नहीं दिखलाई गई हैं परन्तु बहुत से ग्रन्थों में प्रायः वजन आदि नहीं लिखा रहता है इस से अविज्ञ लोग घबड़ाया करते हैं तथा कभी २ वजन आदि को न्यूनाधिक करके तकलीफ भी उठाते हैं, इस लिये सब के जानने के लिये संक्षेप से यहांपर इस विषय को सूचित करना अत्यावश्यक समझा गया ॥

यह चतुर्थ अध्यायका औषधप्रयोगनामक तेरहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

और कलियारी के अभाव में कूठ, थूनेर के अभाव में कूठ, पीपरामूल के अभाव में चव्य और गजपीपल, बावची के अभाव में पमार के बीज, दारुहल्दी के अभाव में हल्दी, रसोत के अभाव में दारुहल्दी, सोरठी मिट्टी के अभाव में फिटकरी, तालीसपत्र के अभाव में स्वर्णतालीस, भारंगी के अभाव में तालीस अथवा कटेरी की जड़, रुचक के अभाव में रेह का नमक, मुलहटी के अभाव में धातकीपुष्प, अमलवेत के अभाव में चूका, दाख के अभाव में कम्भारी का फल, दाख और कम्भारी दोनों के अभाव में बन्धुक का फूल, नखद्रव्य के अभाव में लौंग, कस्तूरी के अभाव में कंकोल, कंकोल के अभाव में चमेली का फूल कपूर के अभाव में सुगन्ध मोथा अथवा गठौना, केसर के अभाव में कसूम के नये फूल, श्रीखण्ड (श्वेत चन्दन) के अभाव में कपूर, केशर और चन्दन के अभाव में लाल चन्दन, लाल चन्दन के अभाव में नई ख़स, अतीस के अभाव में नागरमोथा, हरड के अभाव में आँवला, नागकेशर के अभाव में कमल की केशर, मेदा महामेदा के अभाव में सतावर, जीवक ऋषभक के अभाव में विदारीकन्द, काकोली क्षीर काकोली के अभाव में असगँध, ऋद्धि वृद्धि के अभाव में वाराहीकन्द, वाराहीकन्द के अभाव में चर्मकाराळु, भिलाये के अभाव में लाल चन्दन अथवा चित्रक, ईख के अभाव में नरसल, सुवर्ण के अभाव में सोनामक्खी, चांदी के अभाव में रूपामक्खी, दोनों मक्षिकाओं (स्वर्णमक्षिका और रजतमक्षिका) के अभाव में स्वर्ण गेरू, सुवर्णभस्म और रजतभस्म के अभाव में कान्तिलोह की भस्म, कान्तिलोह के अभाव में तीक्ष्ण (खेरी) लोह, मोती के अभाव में मोती की सीप, शहद के अभाव में पुराना गुड़, मिश्री के अभाव में सफ़ेद बूरा, सफेद बूरे के अभाव में सफेद खांड, दूध के अभाव में मूंग का रस अथवा मसूर का रस, इत्यादि ॥

चौदहवां प्रकरण—ज्वरवर्णन ॥

ज्वर के विषय में आवश्यक विज्ञान ॥

ज्वर का रोग यद्यपि एक सामान्य प्रकार का गिना जाता है परन्तु विचार कर देखा जावे तो यह रोग बड़ा कठिन है, क्योंकि सब रोगों में मुख्य होने से यह सब रोगों का राजा कहलाता है, इसलिये इस रोग में उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, देखिये ! इस भारत वर्ष में बहुत सी मृत्युयें प्रायः ज्वर ही के कारण होती हैं, इसलिये इस रोग के समय में इस के भेदों का विचार कर उचित चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि भेद के जाने विना चिकित्सा ही व्यर्थ नहीं जाती है किन्तु यह रोग प्रबलता को धारण कर भयानक रूप को पकड़ लेता है तथा अन्त में प्राणघातक ही हो जाता है।

ज्वर के बहुत से भेद हैं—जिन के लक्षण आदि भी पूर्वाचार्यों ने पृथक् २ कहे हैं परन्तु यह सब प्रकार का ज्वर किस मूल कारण से उत्पन्न होता है तथा किस प्रकार चढ़ता और उतरता है इत्यादि बातों का सन्तोषजनक (हृदय में सन्तोष को उत्पन्न करने वाला) समाधान अद्यावधि (आजतक) कोई भी विद्वान् ठीक रीति से नहीं कर सका है और न किसी ग्रन्थ में ही इस के विषय का समाधान पूर्ण रीति से किया गया है किन्तु अपनी शक्ति और अनुभव के अनुसार सब विद्वानों ने इस का कथन किया है, केवल यही कारण है कि—बड़े २ विद्वान् वैद्य भी इस रोग में बहुत कम कृतकार्य होते हैं, इस से सिद्ध है कि—ज्वर का विषय बहुत ही गहन (कठिन) तथा पूर्ण अनुभवसाध्य है, ऐसी दशा में वैद्यक के वर्तमान ग्रन्थों से ज्वर का जो केवल सामान्य स्वरूप और उस की सामान्य चिकित्सा जानी जाती है उसी को बहुत समझना चाहिये।

उक्त न्यूनता का विचार कर इस प्रकरण में गुरुपरम्परागत तथा अनुभवसिद्ध ज्वर का विषय लिखते हैं अर्थात् ज्वर के मुख्य २ कारण, लक्षण और उन की चिकित्सा को दिखलाते हैं—इस से पूर्ण आशा है कि—केवल वैद्य ही नहीं किन्तु एक साधारण पुरुष भी इस का अवलम्बन कर (सहारा लेकर) इस महाकठिन रोग में कृतकार्य हो सकता है ॥

ज्वर के स्वरूप का वर्णन ॥

शरीर का गर्म होकर तप जाना अथवा शरीर में जो स्वाभाविक (कुदरती) उष्णता (गर्मी) होनी चाहिये उस से अधिक उष्णता का होना यह ज्वर का मुख्य रूप[1] है,

1—संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न और आकृति, ये छः शब्द रूप के पर्यायवाचक (एकार्थवाची) हैं ॥

परन्तु इस प्रकार से शरीर के तपने का क्या कारण है और वह (तपने की) क्रिया किस प्रकार होती है यह विषय बहुत सूक्ष्म है, देशी वैद्यकशास्त्रने ज्वर के विषय में यही सिद्धान्त ठहराया है कि वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष अयोग्य आहार और विहार से कुपित होकर जठर (पेट) में जाकर अग्नि को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं, इस विषय का विचार करने से यही सिद्ध होता है कि-वात, पित्त और कफ, इन तीनों दोषों की समानता (बराबर रहना) ही आरोग्यता का चिह्न है और इन की विषमता अर्थात् न्यूनाधिकता (कम वा ज्यादा होना) ही रोग का चिह्न है तथा उक्त दोषों की समानता और विषमता केवल आहार और विहार पर ही निर्भर है।

इस के सिवाय-इस विषय पर विचार करने से यह भी सिद्ध होता है कि जैसे शरीर में वायु की वृद्धि दूसरे रोगों को उत्पन्न करती है उसी प्रकार वह वातज्वर को भी उत्पन्न करती है, इसी प्रकार पित्त की अधिकता अन्य रोगों के समान पित्तज्वर को तथा कफ की अधिकता अन्य रोगों के समान कफज्वर को भी उत्पन्न करती है, उक्त क्रम पर ध्यान देने से यह भी समझमें आ सकता है कि-इन में से दो दो दोषों की अधिकता अन्य रोगों के समान दो दो दोषों के लक्षणवाले ज्वर को उत्पन्न करती है और तीनों दोषों के विकृत होने से वे (तीनों दोष) अन्य रोगों के समान तीनों दोषों के लक्षणवाले त्रिदोष (सन्निपात) ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

ज्वर के भेदों का वर्णन ॥

ज्वर के भेदों का वर्णन करना एक बहुत ही कठिन विषय है, क्योंकि ज्वर की उत्पत्तिके अनेक कारण हैं, तथापि पूर्वाचार्यों के सिद्धान्त के अनुसार ज्वर के कारण को यहां दिखलाते हैं-ज्वर के कारण मुख्यतया दो प्रकार के हैं-आन्तर और बाह्य, इन में से आन्तर कारण उन्हें कहते हैं जो कि शरीर के भीतर ही उत्पन्न होते हैं तथा बाह्य कारण उन्हें कहते हैं जो कि बाहर से उत्पन्न होते हैं, इन में से आन्तर कारणों के दो भेद हैं-आहार विहार की विषमता अर्थात् आहार (भोजन पान) आदि की तथा विहार (डोलना फिरना तथा स्त्रीसङ्ग आदि) की विषमता (विरुद्ध चेष्टा) से रस का विगड़ना औ उस से ज्वर का आना, इस प्रकार के कारणों से सर्व साधारण ज्वर उत्पन्न होते हैं, जैसे कि-तीन तो पृथक् २ दोषवाले, तीन दो २ दोषवाले तथा मिश्रित तीनों दोषवाला इत्यादि, इन्हीं कारणों से उत्पन्न हुए ज्वरों में विषमज्वर आदि ज्वरों का भी समावेश हो जाता है, शरीर के अन्दर शोथ (सूजन) तथा गांठ आदि का होना आन्तर कारण का दूसरा भेद है अर्थात् भीतरी शोथ तथा गांठ आदि के वेग से ज्वर

का आना, ज्वर के बाह्य कारण वे कहलाते हैं जो कि सब आगन्तुक ज्वरों (जिन के विषयमें आगे लिखा जावेगा) के कारण हैं, इन के सिवाय हवा में उड़ते हुए जो चेपी ज्वरों के परमाणु हैं उनका भी इन्हीं कारणों में समावेश होता है अर्थात् वे भी ज्वर के बाह्य कारण माने जाते हैं ॥

देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के भेद ॥

देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के केवल दश भेद हैं अर्थात् दश प्रकार का ज्वर माना जाता है, जिन के नाम ये हैं—वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, वातपित्तज्वर, वातकफज्वर, कफपित्तज्वर, सन्निपातज्वर, आगन्तुक ज्वर, विषमज्वर और जीर्णज्वर ॥

अंग्रेजी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के भेद ॥

अंग्रेज़ी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ज्वरों के केवल चार भेद हैं अर्थात् अंग्रेज़ी वैद्यक शास्त्र में मुख्यतया चार ही प्रकार का ज्वर माना गया है, जिन के नाम ये हैं—जारीज्वर, आन्तरज्वर, रिमिटेंट ज्वर और फूट कर निकलनेवाला ज्वर ।

इन में से प्रथम जारी ज्वर के चार भेद हैं—सादातप, टाइफस, टाईफोइड और फिर २ कर आनेवाला ।

दूसरे आन्तरज्वर के भी चार भेद हैं—ठंढ देकर (शीत लग कर) नित्य आनेवाला, एकान्तर, तेजरा और चौथिया[2] ।

तीसरे रिमिटेंट ज्वर का कोई भी भेद नहीं है[3], इसे दूसरे नाम से रिमिटेंट फीवर[4] भी कहते हैं ।

चौथे फूट कर निकलने वालेज्वर के बारह भेद हैं—शीतला, ओरी, अचपड़ा (आकड़ा काकड़ा), लाल बुखार, रंगीला बुखार, रक्तवायु (विसर्प), हैज़ा वा मरी का तप, इनफ्लुएञ्जा, मोती झरा, पानी झरा, थोथी झरा और काला मूंधोरा[5] ।

इन सब ज्वरों का वर्णन क्रमानुसार आगे किया जावेगा ॥

१–इस कारण को अंग्रेजी वैद्यक में ज्वर के कारण के प्रकरण में यद्यपि नहीं गिना है परन्तु देशी वैद्यकशास्त्र में इस को ज्वर के कारणों में माना ही है, इस लिये ज्वर के आन्तर कारण का दूसरा भेद यही है ॥

२–देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार ये चारों भेद विषम ज्वर के हो सकते हैं ॥

३–देशी वैद्यकशास्त्र के अनुसार यह (रिमिटेंट ज्वर) विषमज्वर का एक भेद सन्ततज्वर नामक हो सकता है ॥

४–अंग्रेज़ी भाषा में ज्वर को फीवर कहते हैं ॥

५–देशी वैद्यकशास्त्र में मसूरिका को क्षुद्र रोग तथा मूंधोरा नाम से लिखा है ॥

ज्वर के सामान्य कारण ॥

अयोग्य आहार और अयोग्य विहार ही ज्वर के सामान्य कारण हैं, क्योंकि इन्हीं दोनों कारणों से शरीरस्थ (शरीर में स्थित) धातु विकृत (विकार युक्त) होकर ज्वर को उत्पन्न करता है।[1]

यह भी स्मरण रहे कि–अयोग्य आहार में बहुत सी बातों का समावेश होता है, जैसे बहुत गर्म तथा बहुत ठंढी खुराक का खाना, बहुत भारी खुराक का खाना, बिगड़ी हुई और बासी खुराक का खाना, प्रकृति के विरुद्ध खुराक का खाना, ऋतु के विरुद्ध खुराक का खाना, भूख से अधिक खाना तथा दूषित (दोष से युक्त) जल का पीना, इत्यादि।

इसी प्रकार अयोग्य विहार में भी बहुत सी बातों का समावेश होता है, जैसे–बहुत महनत का करना, बहुत गर्मी तथा बहुत ठंढ का सेवन करना, बहुत विलास करना तथा खराब हवा का सेवन करना, इत्यादि।

बस ये ही दोनों कारण अनेक प्रकार के ज्वरों को उत्पन्न करते हैं ॥

ज्वर के सामान्य लक्षण ॥

ज्वर के बाहर प्रकट होने के पूर्व श्रान्ति (थकावट), चित्त की विकलता (बेचैनी), मुख की विरसता (विरसपन अर्थात् स्वाद का न रहना), आंखों में पानी का आना, जँभाई, ठंढ हवा तथा धूप की वारंवार इच्छा और अनिच्छा, अंगों का टूटना, शरीर में भारीपन, रोमाञ्च का होना (रोंगटे खड़े होना) तथा भोजन पर अरुचि इत्यादि लक्षण होते हैं, किन्तु ज्वर के बाहर प्रकट होने के पीछे (ज्वर भरने के पीछे) त्वचा (चमड़ी) गर्म मालूम पड़ती है, यही ज्वर का प्रकट चिह्न है, ज्वर में प्रायः पित्त अथवा गर्मी का मुख्य उपद्रव होता है, इस लिये ज्वर के प्रकट होने के पीछे शरीर में उष्णता के भरने के साथ ऊपर लिखे हुए सब चिह्न बराबर बने रहते हैं ॥

वातज्वर का वर्णन[2] ॥

कारण—विरुद्ध आहार और विहार से कोप को प्राप्त हुआ वायु आमाशय (होजरी)

१–तात्पर्य यह है कि–अयोग्य आहार और अयोग्य विहार, इन दोनों हेतुओं से आमाशय में स्थित जो वात पित्त और कफ हैं वे रस आदि धातुओं को दूषित कर तथा जठराग्नि को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

२–यद्यपि प्रत्येक रोग के ज्ञान के लिये हेतु (कारण), सम्प्राप्ति (दुष्ट हुए दोष से अथवा फैलते हुए रोग से रोग की उत्पत्ति), पूर्वरूप (रोग की उत्पत्ति होने से पहिले होनेवाले चिह्न), लक्षण (रोगोत्पत्ति के हो जाने पर उस के चिह्न) और उपशय (औषध आदि देने के द्वारा रोगी को सुख मिलने से वा न मिलने से रोग का निश्चय), इन पांच बातों की आवश्यकता है इस लिये प्रत्येक रोग के वर्णन में इन पाँचों का वर्णन करना यद्यपि आवश्यक था तथापि इन का विज्ञान वैद्यों के लिये आवश्यक समझकर हम ने इन पाँचों का वर्णन न करके केवल हेतु (कारण) और लक्षण, इन दो ही बातों का वर्णन रोग प्रकरण में किया है, क्योंकि साधारण गृहस्थों को उक्त दो ही विषय बहुत लाभदायक हो सकते हैं ॥

में जाकर उस में स्थित रस (आम) को दूषित कर जठर (पेट) की गर्मी (अग्नि) को बाहर निकालता है उस से वातज्वर उत्पन्न होता है।

लक्षण—जँभाई (वगासी) का आना, यह वातज्वर का मुख्य चिह्न है, इस के सिवाय ज्वर के वेग का न्यूनाधिक (कम ज्यादा) होना, गला ओष्ठ (होठ) और मुख का सूखना, निद्रा का नाश, छींक का वन्द होना, शरीर में रूक्षता (रूखापन), दस्त की कवजी का होना, सब शरीर में पीड़ा का होना, विशेष कर मस्तक और हृदय में बहुत पीड़ा का होना, मुख की विरसता, शूल और अफरा, इत्यादि दूसरे भी चिह्न मालूम पड़ते हैं, यह वातज्वर प्रायः वायुप्रकृतिवाले पुरुष के तथा वायु के प्रकोप की ऋतु (वर्षा ऋतु) में उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—१–यद्यपि सब प्रकार के ज्वर में परम हितकारक होने से लङ्घन सर्वोपरि (सब से ऊपर अर्थात् सब से उत्तम) चिकित्सा (इलाज) है[२] तथापि दोष, प्रकृति, देश, काल और अवस्था के अनुसार शरीर की स्थिति (अवस्था) का विचार कर लङ्घन करना चाहिये, अर्थात् प्रवल वातज्वर में शक्तिमान् (ताक़तवर) पुरुष को अपनी शक्ति का विचार कर आवश्यकता के अनुसार एक से छः लंघन तक करना चाहिये, यह भी जान लेना चाहिये कि–लंघन के दो भेद हैं–निराहार और अल्पाहार, इन में से बिलकुल ही नहीं खाना, इस को निराहार कहते हैं, तथा एकाध वख्त थोड़ी और हलकी ख़ुराक का खाना जैसे–दलिया, भात तथा अच्छे प्रकार से सिजाई हुई मूंग और अरहर (तूर) की दाल इत्यादि, इस को अल्पाहार कहते हैं, साधारण वात ज्वर में एकाध टंक (वख्त) निराहार लंघन करके पीछे प्रकृति तथा दोष के अनुकूल ज्वर के दिनों की मर्यादा तक (जिस का वर्णन आगे किया जावेगा) ऊपर लिखे अनुसार हलकी तथा थोड़ी ख़ुराक खानी चाहिये, क्योंकि–ज्वर का यही उत्तम पथ्य है, यदि इस का सेवन भली भांति से किया जावे तो औषधि के लेने की भी आवश्यकता नहीं रहती है।

१–**चौपाई**—बड़ो वेग कम्प तन होई ॥ ओठ कण्ठ मुख सूखत सोई ॥ १ ॥
निद्रा अरु छिक्का को नासू ॥ रूखो अङ्ग कवज़ हो तासू ॥ २ ॥
शिर हृद सब अँग पीड़ा होवै ॥ बहुत उवासी मुख रस खोवै ॥ ३ ॥
गाढ़ी विष्ठा मूत्र जु लाला ॥ उष्ण वस्तु चाहै चित चाला ॥ ४ ॥
नेत्र जु लाल रङ्ग पुनि होई ॥ उदर आफरा पीड़ा सोई ॥ ५ ॥
वातज्वरी के एते लक्षण ॥ इन पर ध्यानहिँ धरो विचक्षण ॥ ६ ॥

२–क्योंकि लंघन करने से अग्नि (आहार के न पहुँचने से) कोठे में स्थित दोषों को पकाती है और जब दोष पक जाते हैं तब उन की प्रबलता जाती रहती है, परन्तु जब लंघन नहीं किया जाता है अर्थात् आहार को पेट में पहुँचाया जाता है तब अग्नि उसी आहार को ही पकाती है किन्तु दोषों को नहीं पकाती है ॥

२–यदि कदाचित् ऊपर कहे हुए लंघन का सेवन करने पर भी ज्वर न उतरे तो सब प्रकार के ज्वरवालों को तीन दिन के बाद इस औषधि का सेवन करना चाहिये–देवदारु दो रुपये भर, धनिया दो रुपये भर, सोंठ दो रुपये भर, रींगणी दो रुपये भर तथा बड़ी कण्टाली दो रुपये भर, इन सब औषधों को कूट कर इस में से एक रुपये भर औषध का काढ़ा पाव भर पानी में चढ़ा कर तथा डेढ़ छटांक पानी के बाकी रहने पर छान कर लेना चाहिये, क्योंकि इस क्वाथ से ज्वर पाचन को प्राप्त होकर (परिपक्व होकर) उतर जाता है।

३–अथवा ज्वर आने के सातवें दिन दोष के पाचन के लिये गिलोय, सोंठ और पीपरा मूल, इन तीनों औषधों के क्वाथ का सेवन ऊपर लिखे अनुसार करना चाहिये, इस से दोष का पाचन होकर ज्वर उतर जाता है॥

पित्तज्वर का वर्णन ॥

कारण—पित्त को बढ़ानेवाले मिथ्या आहार और विहार से विगड़ा हुआ पित्त आमाशय (होजरी) में जाकर उस (आमाशय) में स्थित रस को दूपित कर जठर की गर्मी को बाहर निकालता है तथा जठर में स्थित वायु को भी कुपित करता है, इस लिये कोप को प्राप्त हुआ वायु अपने स्वभाव के अनुकूल जठर की गर्मी को बाहर निकालता है उस से पित्तज्वर उत्पन्न होता है।

लक्षण—आंखों में दाह (जलन) का होना, यह पित्तज्वर का मुख्य लक्षण है, इस के सिवाय ज्वर का तीक्ष्ण वेग, प्यास का अत्यंत लगना, निद्रा थोड़ी आना, अतीसार अर्थात् पित्त के वेग से दस्त का पतला होनां, कण्ठ ओष्ठ (ओठ) मुख और नासिका

१–यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–एक दोष कुपित होकर दूसरे दोष को भी कुपित वा विकृत (विकार युक्त) कर देता है ॥

२–वायु का यह स्वरूप वा स्वभाव है कि वायु दोष (कफ और पित्त), धातु (रस और रक्त आदि) और मल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचानेवाला, आशुकारी (जल्दी करने वाला), रजो गुणवाला, सूक्ष्म (बहुत वारीक अर्थात् देखने में न आनेवाला), रूक्ष (रूखा), शीतल (ठण्डा), हलका और चञ्चल (एक जगह पर न रहनेवाला) है, इस (वायु) के पांच भेद हैं–उदान, प्राण, समान, अपान और व्यान, इन में से कण्ठ में उदान, हृदय में प्राण, नाभि में समान, गुदा में अपान और सम्पूर्ण शरीर में व्यान वायु रहता है, इन पांचों वायुओं के पृथक् २ कार्य आदि सब बातें दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेनी चाहियें, यहां उन का वर्णन विस्तार के भय से तथा अनावश्यक समझ कर नहीं करते हैं ॥

३–**चौपाई**—तीक्षण वेग जु तृषा अपारा ॥ निद्रा अल्प होय अतिसारा ॥ १ ॥
कण्ठ ओष्ठ मुख नासा पाके ॥ मुर्छा दाह चित्त भ्रम ताके ॥ २ ॥
परसा तन कटु मुख वक वादा ॥ वमन करत अरु रह उन्मादा ॥ ३ ॥
शीतल वस्तु चाह तिस रहई ॥ नेत्रन तें जु प्रवाह जल वहई ॥ ४ ॥
नेत्र मूत्र पुनि मल हू पीता ॥ पित्त ज्वर के ये लक्षण मीता ॥ ५ ॥

४–इस ज्वर में पित्त के वेग से दस्त ही पतला होता है परन्तु इस पतले दस्त के होने से अतीसार रोग नहीं समझ लेना चाहिये ॥

(नाक) का पकना तथा पसीनों का आना, मूर्छा, दाह, चित्तभ्रम[1], मुख में कडुआपन, प्रलाप (बड़बड़ाना), वमन का होना, उन्मत्तपन, शीतल वस्तु पर इच्छा का होना, नेत्रों से जल का गिरना तथा विष्ठा (मल) मूत्र और नेत्र का पीला होना, इत्यादि पित्तज्वर में दूसरे भी लक्षण होते हैं, यह पित्तज्वर प्रायः पित्तप्रकृतिवाले पुरुष के तथा पित्त के प्रकोपकी ऋतु (शरद् तथा ग्रीष्म ऋतु) में उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में दोष के बल के अनुसार[2] एक टंक (वख्त) अथवा एक दिन वा जब तक ठीक रीति से भूख न लगे[3] तब तक लंघन करना चाहिये, अथवा मूंग की दाल का पानी, भात तथा पानी में पकाया (सिजाया) हुआ साबूदाना पीना चाहिये।

२–अथवा–पित्तपापड़े वा घासिया पित्तपापड़े का काढ़ा[4], फांट वा हिम पीना चाहिये॥

३–अथवा–दाख, हरड़, मोथा[5], कुटकी, किरमाले की गिरी (अमलतास का गूदा) और पित्तपापड़ा, इन का काढ़ा पीने से पित्तज्वर, शोष[6], दाह, भ्रम और मूर्छा आदि उपद्रव मिटकर दस्त साफ आता है।

४–अथवा–पित्तपापड़ा, रक्त (लाल) चन्दन, दोनों प्रकार का (सफेद तथा काला) वाला[7], इन का क्वाथ, फांट अथवा हिम पित्तज्वर को मिटाता है।

५–रात को ठंढे पानी में भिगाया हुआ धनिये का अथवा गिलोय का हिम पीने से पित्तज्वर का दाह शान्त होता है।

६–यदि पित्तज्वर के साथ में दाह बहुत होता हो तो कच्चे चावलों के धोवन में थोड़े से चन्दन तथा सोंठ को घिस कर और चावलों के धोवन में मिला कर थोड़ा शहद और मिश्री डाल कर पीना चाहिये॥

१–चित्तभ्रम अर्थात् चित्त का स्थिर न रहना॥

२–दोष के बल के अनुसार अर्थात् विकृत (विकार को प्राप्त हुआ) दोष जैसे लंघन का सहन कर सके उतना ही और वैसा ही लंघन करना चाहिये॥

३–दोष के विकार की यह सर्वोत्तम पहिचान भी है कि जब तक दोष विकृत तथा कच्चा रहता है तब तक भूख नहीं लगती है॥

४–काढ़ा, फांट तथा हिम आदि बनाने की विधि इसी अध्याय के औषधप्रयोगवर्णन नामक तेरहवें प्रकरण में लिख चुके हैं, वहां देख लेना चाहिये॥

५–मोथा अर्थात् नागरमोथा (इसी प्रकार मोथा शब्द से सर्वत्र नागरमोथा समझना चाहिये)॥

६–शोष अर्थात् शरीर का सूखना॥

७–वाला अर्थात् नेत्रवाला, इस को सुगंधवाला भी कहते हैं, यह एक प्रकार का सुगन्धित (खुशबूदार) तृण होता है, परन्तु पंसारी लोग इस की जगह नाड़ी के सूखे साग को दे देते हैं उसे नहीं लेना चाहिये॥

२–चिरायता, गिलोय, दाख, आँवला और कचूर, इन का काढ़ा कर के तथा उस में त्रिवर्षीय (तीन वर्ष का पुराना) गुड़ डाल कर पीना चाहिये।

३–अथवा–गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ, इन का क्वाथ करके पीना चाहिये, यह पञ्चभद्र क्वाथ वातपित्तज्वर में अतिलाभदायक (फायदेमन्द) माना गया है ॥

वातकफज्वर का वर्णन ॥

लक्षण—जँभाई (उवासी) का आना और अरुचि, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य हैं, इन के सिवाय–सन्धियों में फूटनी (पीड़ा का होना), मस्तक का भारी होना, निद्रा, गीले कपड़े से देह को ढाकने के समान मालूम होना, देह का भारीपन, खांसी, नाक से पानी का गिरना, पसीने का आना, शरीर में दाह का होना तथा ज्वर का मध्यम वेग, ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते हैं।

चिकित्सा—१–इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार लंघन का करना पथ्य है।

२–पसर कंटाली, सोंठ, गिलोय और एरण्ड की जड़, इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह लघुक्षुद्रादि क्वाथ है।

३–किरमाले (अमलतास) की गिरी, पीपलामूल, मोथा, कुटकी और जौं हरड़े (छोटी अर्थात् काली हरड़े), इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह आरग्वधादि क्वाथ है[3]।

४–अथवा–केवल (अकेली) छोटी पीपल की उकाली पीनी चाहिये ॥

पित्तकफज्वर का वर्णन ॥

लक्षण—नेत्रों में दाह और अरुचि, ये दो लक्षण इस ज्वर के मुख्य हैं, इन के सिवाय–तन्द्रा, मूर्छा, मुख का कफ से लिप्त होना (लिसा रहना), पित्त के ज़ोर से मुख

१–**सोरठा**—देह दाह गुरु गात, स्तैमित जृम्भा अरुचि हो ॥
मध्य हु वेग दिखात, स्वेद कास पीनस सही ॥ १ ॥
नींद न आवै कोय, सन्धि पीड़ मस्तक गहै ॥
वैद्य विचारै जोय, ये लक्षण कफवात के ॥ २ ॥

२–वायु शीघ्रगतिवाला है तथा कफ मन्दगतिवाला है, इस लिये दोनों के संयोग से वातकफज्वर मध्यमवेगवाला होता है ॥

३–यह आरग्वधादि क्वाथ–दीपन (अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला), पाचन (दोषों को पकानेवाला) तथा संशोधन (मल और दोषों को पका कर बाहर निकालनेवाला) भी है, इस के ये गुण होने से ही दोषों का पाचन आदि होकर ज्वर से शीघ्र ही मुक्ति (छुटकारा) हो जाती है ॥

४–**सोरठा**—मुख कटुता परतीत, तन्द्रा मूर्छा अरुचि हो ॥
वार वार में शीत, वार वार में तप्त हो ॥ १ ॥
लिप्त विरस मुख जान, नेत्र जलन अरु कास हो ॥
लक्षण होत सुजान, पित्तकफज्वर के यही ॥ २ ॥

में कडुआहट (कडुआपन,), खांसी, प्यास, वारंवार दाह का होना और वारंवार शीत का लगना, ये दूसरे भी लक्षण इस ज्वर में होते हैं।

चिकित्सा—१-इस ज्वर में भी पूर्व लिखे अनुसार लंघन का करना पथ्य है।

२-जहां तक हो सके इस ज्वर में पाचन ओषधि लेनी चाहिये।

३-रक्त (लाल) चन्दन, पद्माख, धनियाँ, गिलोय और नींव की अन्तर (भीतरी) छाल, इन का काढ़ा पीना चाहिये, यह रक्तचन्दनादि क्वाथ[1] है।

४-आठ आनेभर कुटकी को जल में पीस कर तथा मिश्री मिला कर गर्म जल से पीना चाहिये।

५-अडूसे के पत्तों का रस दो रुपये भर लेकर उस में २॥ मासे मिश्री तथा २॥ मासे शहद को डाल कर पीना चाहिये[2] ॥

सामान्यज्वर का वर्णन ॥

कारण तथा लक्षण—अनियमित खानपान, अजीर्ण, अचानक अतिशीत वा गर्मी का लगना, अतिवायु का लगना, रात्रि में जागरण और अतिश्रम, ये ही प्रायः सामान्यज्वर के कारण[3] हैं, ऐसा ज्वर प्रायः ऋतु के बदलने से भी हो जाता[4] है और उस की मुख्य ऋतु मार्च और अप्रेल मास अर्थात् वसन्तऋतु है तथा सितम्बर और अक्टूबर मास अर्थात् शरदृऋतु है, शरदृऋतु में प्रायः पित्त का बुखार होता[5] है तथा वसन्तऋतु में प्रायः कफ का बुखार होता है, इन के सिवाय-जून और जुलाई महीने में भी अर्थात् बरसात की वातकोपवाली ऋतु में भी वायु के उपद्रवसहित ज्वर चढ़ आता[6] है।

ऊपर जिन भिन्न २ दोषवाले ज्वरों का वर्णन किया है उन सबों की भी गिनती इस (सामान्य ज्वर) में हो सकती है, इन ज्वरों में अन्तरिया ज्वर के समान चढ़ाव उतार नहीं रहता है किन्तु ये (सामान्यज्वर) एक दो दिन आकर जल्दी ही उतर जाते हैं।

१-यह क्वाथ दीपन और पाचन है तथा प्यास, दाह, अरुचि, वमन और इस ज्वर (पित्तकफज्वर) को शीघ्र ही दूर करता है ॥

२-यह ओषधि अम्लपित्त तथा कामलासहित पित्तकफज्वर को भी शीघ्र ही दूर कर देती है, इस ओषधि के विषय में किन्हीं आचार्यों की यह सम्मति है कि अडूसे के पत्तों का रस (ऊपर लिखे अनुसार) दो तोले लेना चाहिये तथा उस में मिश्री और शहद को (प्रत्येक को) चार २ मासे डालना चाहिये ॥

३-अर्थात् इन कारणों से देश, काल और प्रकृति के अनुसार-एक वा दो दोष विकृत तथा कुपित होकर जठराग्नि को बाहर निकाल कर रसों के अनुगामी होकर ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

४-ऋतु के बदलने से ज्वर के आने का अनुभव तो प्रायः वर्तमान में प्रत्येक गृह में हो जाता है ॥

५-क्योंकि शरदृऋतु में पित्त प्रकुपित होता है ॥

६-पसीनों का न आना, सन्ताप (देह और इन्द्रियों में सन्ताप), सर्व अंगों का पीड़ा करके रह जाना अथवा सब अंगों का स्तम्भित के समान (स्तब्ध सा) रह जाना, ये सब लक्षण ज्वरमात्र के साधारण हैं अर्थात् ज्वरमात्र में होते हैं इन के सिवाय शेष लक्षण दोषों के अनुसार पृथक् २ होते हैं ॥

चिकित्सा—१–सामान्यज्वर के लिये प्रायः वही चिकित्सा हो सकती है जो कि भिन्न २ दोषवाले ज्वरों के लिये लिखी है।

२–इस के सिवाय–इस ज्वर के लिये सामान्यचिकित्सा तथा इस में रखने योग्य कुछ नियमों को लिखते हैं उन के अनुसार वर्त्ताव करना चाहिये।

३–जब तक ज्वर में किसी एक दोष का निश्चय न हो वहां तक विशेष चिकित्सा नहीं करनी चाहिये[1], क्योंकि सामान्यज्वर में विशेष चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु एकाध टंक (वख्त) लंघन करने से, आराम लेने से, हलकी खुराक के खाने से तथा यदि दस्त की कब्जी हो तो उस का निवारण करने से ही यह ज्वर उतर जाता है।

४–इस ज्वर के प्रारम्भ में गर्म पानी में पैरों को डुबाना चाहिये, इस से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है[2]।

५–इस ज्वर मे ठंढा पानी नहीं पीना चाहिये[3] किन्तु तीन उफान आने तक पानी को गर्म कर के फिर उस को ठंढा करके प्यास के लगने पर थोड़ा २ पीना चाहिये।

६–सोंठ, काली मिर्च और पीपल को घिस कर उस का अञ्जन आंख में करवाना चाहिये।

७–बहुत खुली हवा में तथा खुली हुई छत पर नहीं सोना चाहिये।

८–स्थलप्रदेश में (मारवाड़ आदि प्रान्त में) बाजरी का दलिया, पूर्व देश में भात की कांजी वा मांड, मध्य मारवाड़ में मूंग का ओसामण वा भात तथा दक्षिण में अरहर (तूर) की पतली दाल का पानी अथवा उस में भात मिला कर खाना चाहिये।

९–यह भी स्मरण रहे कि–यह ज्वर जाने के बाद कभी २ फिर भी वापिस आ जाता है इस लिये इस के जाने के बाद भी पथ्य रखना चाहिये अर्थात् जब तक शरीर में पूरी ताकत न आ जावे तब तक भारी अन्न नहीं खाना चाहिये तथा परिश्रम का काम भी नहीं करना चाहिये[4]।

१–सामान्यज्वर में दोष का निश्चय हुए विना विशेष चिकित्सा करने से कभी २ बड़ी भारी हानि भी हो जाती है अर्थात् दोष अधिक प्रकुपित हो कर तथा प्रबलरूप धारण कर रोगी के प्राणघातक हो जाते हैं॥

२–क्योंकि पसीने के द्वारा ज्वर की भीतरी गर्मी तथा उस का वेग बाहर निकल जाता है॥

३–क्योंकि शीतल जल दशाविशेष अथवा कारणविशेष के सिवाय ज्वर में अपथ्य (हानिकारक) माना गया है॥

४–ज्वर के जाने के बाद पूरी शक्ति के न आने तक भारी अन्न का खाना तथा परिश्रम के कार्य का करना तो निषिद्ध है ही, किन्तु इन के सिवाय–व्यायाम (दण्डकसरत), मैथुन, स्नान, इधर उधर विशेष डोलना फिरना, विशेष हवा का खाना तथा अधिक शीतल जल का सेवन, ये कार्य भी निषिद्ध हैं॥

१०–वातज्वर में जो काढ़ा दूसरे नम्बर में लिखा है उसे लेना चाहिये[1]।

११–गिलोय, सोंठ और पीपरामूल, इन का काढ़ा पीना चाहिये[2]।

१२–भूरींगणी, चिरायता, कुटकी, सोंठ, गिलोय और एरण्ड की जड़, इन का काढ़ा पीना चाहिये।

१३–दाख, धमासा और अडूसे का पत्ता, इन का काढ़ा पीना चाहिये।

१४–चिरायता, वाला, कुटकी, गिलोय और नागरमोथा, इन का काढ़ा पीना चाहिये।

१५–ऊपर कहे हुए काढ़ों में से किसी एक क्वाथ (काढ़ों) को विधिपूर्वक[3] तैयार कर थोड़े दिन तक लगातार दोनों समय पीना चाहिये, ऐसा करने से दोष का पाचन और शमन (शान्ति) हो कर[4] ज्वर उतर जाता है॥

सन्निपातज्वर का वर्णन॥

तीनों दोषों के एक साथ कुपित होने को सन्निपात वा त्रिदोष कहते हैं, यह दशा प्रायः सब रोगों की अन्तिम (आखिरी) अवस्था (हालत) में हुआ करती है[5], यह दशा ज्वर में जब होती है तब उस ज्वर को सन्निपातज्वर कहते हैं, किसी में एक दोष की प्रबलता तथा दो दोषों की न्यूनता से तथा किसी में दो दोषों की प्रबलता और एक दोष की न्यूनता से इस ज्वर के वैद्यकशास्त्र में एकोल्वणादि ५२ भेद[6] दिखलाये हैं तथा इस के तेरह दूसरे नाम भी रख कर इस का वर्णन किया है।

यह निश्चय ही समझना चाहिये कि–यह सन्निपात मौत के विना नहीं होता है चाहे मनुष्य बोलता चालता तथा खाता पीता ही क्यों न हो।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि–सन्निपात को निदान और कालज्ञान को पूर्णतया जाननेवाला अनुभवी वैद्य ही पहिचान सकता है, किन्तु मूर्ख वैद्यों को तो अन्तदशा तक में भी इस का पहिचानना कठिन है, हां यह निश्चय है कि–सन्निपात के वा त्रिदोष के साधारण लक्षणों को विद्वान् वैद्य तथा डाक्टर लोग सहज में जान सकते हैं[7]।

१–अर्थात् देवदार्वादि क्वाथ (देखो वातज्वर की चिकित्सा में दूसरी संख्या)॥

२–यह काढ़ा दीपन और पाचन भी है॥

३–काढ़े की विधि पहिले तेरहवें प्रकरण में लिख चुके हैं॥

४–अर्थात् अपक्व (कच्चे) दोष का पाचन और बढ़े हुए दोष का शमन होकर ज्वर उतर जाता है॥

५–तात्पर्य यह है कि–सन्निपात की दशा में दोषों का सँभालना अति कठिन क्या किन्तु असाध्य सा हो जाता है, बस वही रोग की वा यों समझिये कि प्राणी की अन्तिम (आखिरी) अवस्था होती है, अर्थात् इस संसार से विदा होने का समय समीप ही आजाता है॥

६–उन सब ५२ भेदों का तथा तेरह नामों का वर्णन दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये, यहां पर अनावश्यक समझकर उन का वर्णन नहीं किया गया है॥

७–तात्पर्य यह है कि–तीनों दोषों के लक्षणों को देख कर सन्निपात की सत्ता का जान लेना योग्य वैद्यों के लिये कुछ कठिन बात नहीं है परन्तु सन्निपात के निदान (मूलकारण) तथा दोषों के अंशांशीभाव का निश्चय करना पूर्ण अनुभवी वैद्य का ही कार्य है॥

इस के सिवाय यह भी देखा गया है कि-रात दिन के अभ्यासी अपठित (विना पढ़े हुए) भी बहुत से जन मृत्यु के चिह्नों को प्रायः अनेक समयों में बतला देते हैं, तात्पर्य सिर्फ यही है कि-**"जो जामें निशदिन रहत, सो तामें परवीन"** अर्थात् जिस का जिस विषय में रात दिन का अभ्यास होता है वह उस विषय में प्रायः प्रवीण हो जाता है, परन्तु यह बात तो अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि-सन्निपात ज्वर के जो १३ भेद कहे गये हैं उन के बतलाने में तो अच्छे २ चतुर वैद्यों को भी पूरा २ विचार करना पड़ता है अर्थात् यह अमुक प्रकार का सन्निपात है इस बात का बतलाना उन को भी महा कठिन पड़ जाता है।

इन सब बातों का विचार कर यही कहा जा सकता है कि-जो वैद्य सन्निपात की योग्य चिकित्सा कर मनुष्य को बचाता है उस पुण्यवान् वैद्य की प्रशंसा के लिखने में लेखनी सर्वथा असमर्थ है, यदि रोगी उस वैद्य को अपना तन मन और धन अर्थात् सर्वस्व भी दे देवे तो भी वह उस वैद्य का यथोचित प्रत्युपकार नहीं कर सकता है अर्थात् बदला नहीं उतार सकता है किन्तु वह (रोगी) उस वैद्य का सर्वदा ऋणी ही रहता है।

यहां हम सन्निपातज्वर के प्रथम सामान्य लक्षण और उस के बाद उस के विषय में आवश्यक सूचना को ही लिखेंगे किन्तु सन्निपात के १३ भेदों को नहीं लिखेंगे, इस का कारण केवल यही है कि सामान्य बुद्धिवाले जन उक्त विषय को नहीं समझ सकते हैं और हमारा परिश्रम केवल गृहस्थ लोगों को इस विषय का ज्ञान कराने मात्र के लिये है किन्तु उन को वैद्य बनाने के लिये नहीं है, क्योंकि गृहस्थजन तो यदि इस के विषय में इतना भी जान लेंगे तो भी उन के लिये इतना ही ज्ञान (जितना हम लिखते हैं) अत्यन्त हितकारी होगा।

लक्षण—जिस ज्वर में वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष कोप को प्राप्त हुए होते

१-चौपाई—क्षण क्षण दाह शीत पुनि होई ॥ पीड़ा हाड़ सन्धि शिर सोई ॥ १ ॥
गदले नैन नीर को स्रावैं ॥ रक्त कुटिल लोचन में आवैं ॥ २ ॥
कर्ण शूल भरणाटो जामें ॥ कण्ठ रोध पुनि होवै तामें ॥ ३ ॥
तन्द्रा मोह अरु भ्रम परलापा ॥ अरुचि श्वास पुनि कास सँतापा ॥ ४ ॥
जिह्वा श्याम दग्ध सी दीसै ॥ तीक्ष्ण स्पर्श पुनि विश्वा बीसं ॥ ५ ॥
अंग शिथिल अति होवैं जासू ॥ नासा रुधिर स्रवैं सो तासू ॥ ६ ॥
कफ पित मिल्यो रुधिर मुख आवै ॥ रक्त पीत ज्यों वरण दिखावै ॥ ७ ॥
तृष्णा शोष शीस को चालै ॥ नींदँ न आवै काल अकालै ॥ ८ ॥
मल रु मूत्र चिर कालहु वरसै ॥ अल्प स्वेद पुनि अँग में दरसैं ॥ ९ ॥
कण्ठकूज कफ की अति बाधा ॥ कृशित अङ्ग वा को नहिं लाधा ॥ १० ॥
श्याम रक्त मण्डल है ऐसा ॥ टांव्या खादा दाफड़ जैसा ॥ ११ ॥
भारी उदर सुने नहिं काना ॥ श्रोत्रपाक इत्यादिक नाना ॥ १२ ॥
बहुत काल में दोष जु पाचै ॥ सन्निपातज्वर लक्षण साचै ॥ १३ ॥
सन्निपातज्वर सहज सुरूपा ॥ ग्रन्थान्तर में वरण अनूपा ॥ १४ ॥

हैं (कुपित हो जाते हैं) वह सन्निपातज्वर कहलाता है, इस ज्वर में प्रायः ये चिह्न होते हैं कि-अकस्मात् क्षण भर में दाह होता है, क्षण भर में शीत लगता है, हाड़ सन्धि और मस्तक में शूल होता है, अश्रुपातयुक्त[1] गदले और लाल तथा फटे से नेत्र हो जाते हैं[2], कानों में शब्द और पीड़ा होती है, कण्ठ में कांटे पड़ जाते हैं, तन्द्रा तथा बेहोशी होती है, रोगी अनर्थप्रलाप (व्यर्थ बकवाद) करता है, खांसी, श्वास, अरुचि और भ्रम होता है, जीभ परिदग्धवत् (जले हुए पदार्थ के समान अर्थात् काली) और गाय की जीभ के समान खरदरी तथा शिथिल (लठर) हो जाती है, पित्त और रुधिर से मिला हुआ कफ थूक में आता है, रोगी शिर को इधर उधर पटकता है, तृषा बहुत लगती है, निद्रा का नाश होता है, हृदय में पीड़ा होती है, पसीना; मूत्र और मल, ये बहुत काल में थोड़े २ उतरते हैं, दोषों के पूर्ण होने से रोगी का देह कृश (दुबला) नहीं होता है, कण्ठ में कफ निरन्तर (लगातार) बोलता है, रुधिर से काले और लाल कोठ (टांटिये अर्थात् बर्र के काठने से उत्पन्न हुए दाफड़ अर्थात् ददोड़े के समान) और चकत्ते होते हैं. शब्द बहुत मन्द (धीमा) निकलता है, कान; नाक और मुख आदि छिद्रों में पाक (पकना) होता है, पेट भारी रहता है तथा वात, पित्त और कफ, इन दोषों का देर में पाक होता है[3]।

१-अश्रुपातयुक्त अर्थात् आँसुओं की धारा सहित ॥

२-कफ के कारण गदले, पित्त के कारण लाल तथा वायु के कारण फटे से नेत्र होते हैं ॥

३-(प्रश्न) वात आदि तीन दोप परस्पर विरुद्ध गुणवाले हैं वे सब मिल कर एक ही कार्य सन्निपात को कैसे करते हैं, क्योंकि प्रत्येक दोप परस्पर (एक दूसरे) के कार्य का नाशक है, जैसे कि-अग्नि और जल परस्पर मिलकर समान कार्य को नहीं कर सकते हैं (क्योंकि परस्पर विरुद्ध हैं) इसी प्रकार वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष भी परस्पर विरुद्ध होने से एक विकार को उत्पन्न नहीं कर सकते हैं? (उत्तर) वात, पित्त और कफ, ये तीनों दोष साथ ही में प्रकट हुए हैं तथा तीनों बराबर हैं, इस लिये गुणों में परस्पर (एक दूसरे से) विरुद्ध होने पर भी अपने २ गुणों से दूसरे का नाश नहीं कर सकते हैं, जैसे कि-साँप अपने विष से एक दूसरे को नहीं मार सकते हैं, यही समाधान (जो हमने लिखा है) दृढ़बल आचार्य ने किया है, परन्तु इस प्रश्न का उत्तर गदाधर आचार्य ने दूसरे हेतु का आश्रय लेकर दिया है, वह यह है कि-विरुद्ध गुणवाले भी वात आदि दोष सन्निपातावस्था में दैवेच्छा से (पूर्व जन्म के किये हुए प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों के प्रभाव से) अथवा अपने स्वभाव से ही इकट्ठे रहते हैं तथा एक दूसरे का विघात नहीं करते हैं। (प्रश्न) अस्तु-इस बात को तो हम ने मान लिया कि-सन्निपातावस्था में विरुद्ध गुणवाले हो कर भी तीनों दोष एक दूसरे का विघात नहीं करते हैं परन्तु यह प्रश्न फिर भी होता है कि वात आदि तीनों दोषों के सञ्चय और प्रकोप का काल पृथक् २ है इस लिये वे सब ही एक काल में न तो प्रकट ही हो सकते हैं (क्योंकि सञ्चय का काल पृथक् २ है) और न प्रकुपित ही हो सकते हैं (क्योंकि जब तीनों का सञ्चय ही नहीं है फिर प्रकोप कहाँ से हो सकता है) तो ऐसी दशा में सन्निपात रूप कार्य कैसे हो सकता है? क्योंकि कार्य का होना कारण के आधीन है। (उत्तर) तुम्हारा यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि शरीर में वात आदि दोष स्वभाव से ही विद्यमान हैं, वे (तीनों दोष) अपने (त्रिदोष) को प्रकट करनेवाले निदान के बल से एक साथ ही प्रकुपित हो जाते हैं अर्थात् त्रिदोषकर्त्ता मिथ्या आहार और मिथ्या विहार से तीनों ही दोष एक ही काल में कुपित हो जाते हैं और कुपित हो कर सन्निपात रूप कार्य को उत्पन्न कर देते हैं ॥

इन लक्षणों के सिवाय वाग्भट्टने ये भी लक्षण कहे हैं कि-इस ज्वर में शीत लगता है, दिन में घोर निद्रा आती है, रात्रिमें नित्य जागता है, अथवा निद्रा कभी नहीं आती है, पसीना बहुत आता है, अथवा आता ही नहीं है, रोगी कभी गान करता है (गाता है), कभी नाचता है, कभी हँसता और रोता है तथा उस की चेष्टा पलट (बदल) जाती है, इत्यादि ।

यह भी स्मरण रहे कि-इन लक्षणों में से थोड़े लक्षण कष्टसाध्य में और पूरे (ऊपर कहे हुए सब) लक्षण प्रायः असाध्य सन्निपात में होते हैं ।

विशेषवक्तव्य—सन्निपातज्वर में जब रोगी के दोषों का पाचन होता है अर्थात् मल पकते हैं तब ही आराम होता है अर्थात् रोगी होश में आता है, यह भी जान लेना चाहिये कि-जब दोषों का वेग (जोर) कम होता है तब आराम होने की अवधि (मुद्दत) सात दश वा बारह दिन की होती है, परन्तु यदि दोष अधिक बलवान् हों तो आराम होने की अवधि चौदह बीस वा चौबीस दिन की जाननी चाहिये, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-सन्निपात ज्वर में बहुत ही सँभाल रखनी चाहिये, किसी तरह की गड़बड़ नहीं करनी चाहिये अर्थात् अपने मनमाना तथा मूर्ख वैद्य से रोगी का कभी इलाज नहीं करवाना चाहिये, किन्तु बहुत ही धैर्य (धीरज)के साथ चतुर वैद्य से परीक्षा करा के उस के कहने के अनुसार रस आदि दवा देनी चाहिये, क्योंकि सन्निपात में रस आदि दवा ही प्रायः विशेष लाभ पहुँचाती है, हां चतुर वैद्य की सम्मति से दिये हुए काष्ठादि ओषधियों के काढ़े आदि से भी फायदा होता है, परन्तु पूरे तौर से तो फायदा इस रोग में रसादि दवा से ही होता है और उन रसों की दवा में भी शीघ्र ही फायदा पहुँचानेवाले ये रस मुख्य हैं-हेमगर्भ, अमृतसञ्जीवनी, मकरध्वज, षड्गुणगन्धक और चन्द्रोदय आदि, ये सब प्रधानरस पान के रस के साथ, आर्द्रक (अदरख) के रसमें, सोंठ के साथ, लौंग के साथ तथा तुलसी के पत्तों के रस के साथ देने चाहियें, परन्तु यदि रोगी की ज़बान बन्द हो तो सहजने की छाल के रस के साथ इन में से किसी रस को ज़रा गर्म कर के देना चाहिये, अथवा असली अम्बर वा कस्तूरी के साथ देना चाहिये ।

यदि ऊपर कहे हुए रसों में से कोई भी रस विद्यमान (मौजूद) न हो तो साधारण रस ही इस रोग में देने चाहियें जैसे-ब्राह्मी गुटिका, मोहरा गुटिका, त्रिपुरभैरव, आनन्द-भैरव और अमरसुन्दरी आदि, क्योंकि ये रस भी सामान्य (साधारण) दोष में काम दे सकते हैं ।

इन के सिवाय तीक्ष्ण (तेज़) नस्य का देना तथा तीक्ष्ण अञ्जन का आंखों में डालना आदि क्रिया भी विद्वान् वैद्य के कथनानुसार करनी चाहिये ।

उग्र (बड़े वा तेज़) सन्निपात में एक महीनेतक खूब होशियारी के साथ पथ्य तथा दवा का वर्त्ताव करना चाहिये तथा यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सोलह सेर जल का उवालने से जब एक सेर जल रह जावे तब उस जल को रोगी को देना चाहिये, क्योंकि यह जल दस्त, वमन (उलटी), प्यास तथा सन्निपात में परम हितकारक है अर्थात् यह सौ मात्रा की एक मात्रा है ।

इस के सिवाय जब तक रोगी का मल शुद्ध न हो, होश न आवे तथा सब इन्द्रियां निर्मल न हो जावें तब तक और कुछ खाने पीने को नहीं देना चाहिये[1] अर्थात् रोगी को इस रोग में उत्कृष्टतया (अच्छे प्रकार से) वारह लंघन अवश्य करवा देने चाहियें[2], अर्थात् उक्त समय तक केवल ऊपर लिखे हुए जल और दवा के सहारे ही रोगी को रखना चाहिये, इस के वाद मूंग की दाल का, अरहर (तूर) की दाल का तथा खारक (छुहारे) का पानी देना चाहिये, जब खूब (कड़क कर) भूख लगे तब दाल के पानी में भात को मिला कर थोड़ा २ देना चाहिये, इस के सेवन के २५ दिन वाद देश की खुराक के अनुसार रोटी और कुछ घी देना चाहिये ।

कर्णक नाम का सन्निपात तीन महीने का होता है, उस का खयाल उक्त समय तक वैद्य के वचन के अनुसार रखना चाहिये, इस बीच में रोगी को खाने को नहीं देना चाहिये, क्योंकि सन्निपात रोगी को पहिले ही खाने को देना विष के तुल्य असर करता है, इस रोग में यदि रोगी को दूध दे दिया जावे तो वह अवश्य ही मर जाता है ।

सन्निपात रोग काल के सदृश है इस लिये इस में सप्तस्मरण का पाठ और दान पुण्य आदि को भी अवश्य करना चाहिये, क्यों कि सन्निपात रोग के होने के वाद फिर उसी शरीर से इस संसार की हवा का प्राप्त होना मानो दूसरा जन्म लेना है ।

इस वर्त्तमान समय में विचार कर देखने से विदित होता है कि–अन्य देशों की अपेक्षा मरुस्थल देश में इस के चक्कर में आ कर वचनेवाले बहुत ही कम पुरुष होते हैं, इस का कारण व्यवहार नय की अपेक्षासे हम तो यही कहेंगे कि–उन को न तो ठीक तौर से ओषधि ही मिलती है और न उन की परिचर्या (सेवा) ही अच्छे प्रकार से की जाती है, बस इसी का यह परिणाम होता है कि–उन को मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है ।

पूर्व समय में इस देशके निवासी धनाढ्य (अमीर) सेठ और साहूकार आदि ऊपर

१–क्योंकि मल की शुद्धि और इन्द्रियों के निर्मल हुए विना आहार को दे देने से पुनः दोषों के अधिक कुपित हो जाने की सम्भावना होती है, सम्भावना क्या–दोष कुपित हो ही जाते हैं ॥

२–उत्कृष्टतया वारह लंघनों के करवा देने से मल और कुपित दोषों का अच्छे प्रकार से पाचन हो जाता है, ऐसा होने से जठराग्नि में भी कुछ वल आ जाता है ॥

कहे हुए रसों को विद्वान् वैद्यों के द्वारा बनवा कर सदा अपने घरों में रखते थे तथा अवसर (मौक़ा) पड़ने पर अपने कुटुम्ब, सगे, सम्बन्धी और ग़रीब लोगों को देते थे, जिससे रोगियों को तत्काल लाभ पहुँचता था और इस भयंकर रोग से बच जाते थे, परन्तु वर्त्तमान में वह बात बहुत ही कम देखने में आती है, कहिये ऐसी दशा में इस रोग में फँस कर बेचारे ग़रीबों की क्या व्यवस्था हो सकती है ? इस पर भी आश्चर्य का विषय यह है कि उक्त रस वैद्यों के पास भी बने हुए शायद ही कहीं मिल सकते हैं, क्यों कि उन के बनाने में द्रव्य की तथा गुरुगमता की आवश्यकता है, और न ऐसे दयावान् वैद्य ही देखे जाते हैं कि ऐसी कीमती दवा गरीबों को मुफ्त में दे देवें।

पूर्व समय में ऊपर लिखे अनुसार यहां के धनाढ्य सेठ और साहूकार परमार्थ का विचार कर वैद्यों के द्वारा रसोंको बनवा कर रखते थे और समय आने पर अपने कुटुम्बियों सगे सम्बन्धियों और ग़रीबों को देते थे, परन्तु अब तो परमार्थ का विचार, श्रद्धा तथा दया के न होने से वह समय नहीं है, किन्तु अब तो यहां के धनाढ्य लोग अविद्या देवी के प्रसाद से व्याह शादी गांवसारणी और औसर आदि व्यर्थ कामों में हज़ारों रुपये अपनी तारीफ़ के लिये लगा देते हैं और दूसरे अविद्या देवी के उपासक जन भी उन्हीं कामों में व्यय करने से जब उन की तारीफ करते हैं तब वे बहुत ही खुश होते हैं, परन्तु विद्या देवी के उपासक विद्वान् जन ऐसे कामों में व्यय करने की कभी तारीफ़ नहीं कर सकते हैं, क्यों कि ऐसे व्यर्थ कार्यों में हज़ारों रुपयोंका व्यय कर देना शिष्टसम्मत (विद्वानों की सम्मति के अनुकूल) नहीं है।

पाठक गण ऊपर के लेख से मरुदेश के धनाढ्यों और सेठ साहूकारों की उदारता का परिचय अच्छे प्रकारसे पा गये होंगे, अब कहिये ऐसी दशा में इस देश के कल्याण

१-वर्त्तमान समय में तो यहां के (मरुस्थल देश के) निवासी धनाढ्य सेठ और साहूकार आदि ऐसे मलीन हृदय के हो रहे हैं कि इन के विषय में कुछ कहा नहीं जाता है किन्तु अन्तःकरण में ही महासन्ताप करना पड़ता है, इन के चरित्र और वर्त्ताव ऐसे निन्द्य हो रहे हैं कि जिन्हें देखकर दारुण दुःख उत्पन्न होता है, ये लोग धन पाकर ऐसे मदोन्मत्त हो रहे हैं कि इन को अपने कर्त्तव्य की कुछ भी सुधि बुधि नहीं है, रातदिन इन लोगों का कुत्सिताचारी दुर्जनों के साथ सहवास रहता है, विद्वान् और ज्ञानवान् पुरुषों की संगति इन्हें घड़ी भर भी अच्छी नहीं लगती है, यदि कोई योग्य पुरुष इन के पास आकर बैठता है तो इन की आन्तरिक इच्छा यही रहती है कि-कब यह पुरुष उठ कर जावे और हम उपहास ठट्ठा तथा दिल्लगी बाज़ी में अपने समय को बितावें, हँसी ठट्ठा करना, स्त्रियों को देखना, उन की चर्चा करना, तास वा चौपड़ का खेलना, भंग आदि मादक द्रव्यों का सेवन करना, दूसरों की निन्दा करना तथा अमूल्य समय को व्यर्थ में नष्ट करना, यही इन का रातदिन का कार्य है, यह हम नहीं कहते हैं कि-मरुस्थल देशवासी सब ही धनाढ्य सेठ साहूकार आदि ऐसे हैं क्योंकि यहां भी कितनेक विद्वान् धर्मात्मा और विचारशील पुरुष देखे जाते हैं जो कि-दया और सद्भाव आदि गुणों से युक्त हैं, परन्तु अधिकांश में उन्हीं लोगों की संख्या है जिन का वर्णन हम अभी कर चुके हैं ॥

की संभावना कैसे हो सकती है? हां इस समय में हम मुर्शिदावाद के निवासी धनाढ्य और सेठ साहूकारों[1] को धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते हैं, क्यों कि उन में अब भी ऊपर कही हुई वात कुछ २ देखी जाती है, अर्थात् उस देश में वड़े रसों में से मकरध्वज और साधारण रसों में विलासगुटिका[2], ये दो रस प्रायः श्रीमानों के घरों में बने हुए तैयार रहते हैं और मौके पर वे सब को देते भी हैं, वास्तव में यह विद्यादेवी के उपासक होने की ही एकनिशानी है[3]।

अन्त में हमारा कथन केवल यही है कि-हमारे मरुस्थल देश के निवासी श्रीमान् लोग ऊपर लिखे हुए लेख को पढ़ कर तथा अपने हिताहित और कर्तव्यका विचार कर सन्मार्ग का अवलम्वन करें तो उन के लिये परम कल्याण हो सकता है, क्यों कि अपने कर्तव्य में प्रवृत्त होना ही परलोकसाधन का एक मुख्य सोपान (सीढ़ी) है[4] ॥

आगन्तुक ज्वर का वर्णन ॥

कारण—शस्त्र और लकड़ी आदि की चोट तथा काम, भय और क्रोध आदि[5] वाहर के कारण शरीरपर अपना असर कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं, उसे आगन्तुक ज्वर कहते हैं, यद्यपि अयोग्य आहार और विहार से विगड़ी हुई वायु भी आमाशय (होजरी) में जाकर भीतर की अग्नि को विगाड़ कर रस तथा खून में मिल कर ज्वर को उत्पन्न करती है परन्तु यह कारण सब प्रकार के ज्वरों का कारण नहीं हो सकता है-क्यों कि ज्वर दो प्रकार का है-शारीरिक और आगन्तुक, इन में से शारीरिक स्वतन्त्र (स्वाधीन[6]) और आगन्तुक परतन्त्र (पराधीन) है, इन में से शारीरिक ज्वर में ऊपर लिखा हुआ कारण हो सकता है, क्यों कि शारीरिक ज्वर वायु का कोप होकर ही उत्पन्न होता है, किन्तु आगन्तुक ज्वर में पहिले ज्वर चढ़ जाता है पीछे दोष का कोप होता है, जैसे-

---

१-इन को वहां की वोली में वावू कहते हैं, इन के पुरुषाजन वास्तव में मरुस्थलदेश के निवासी थे ॥

२-इस को वहां की देश भाषा में लक्खी विलासगुटिका कहते हैं ॥

३-क्योंकि उन के हृदय में दया और परोपकार आदि मानुषी गुण विद्यमान हैं ॥

४-उन को स्मरण रखना चाहिये कि यह मनुष्य जन्म वड़ी कठिनता से प्राप्त होता है तथा वारंवार नहीं मिलता है, इस लिये पशुवत् व्यवहारों को छोड़ कर मानुषी वर्त्ताव को अपने हृदय में स्थान दें, विद्वानों और ज्ञानी महात्माओं की सङ्गति करें, कुछ शक्ति के अनुसार शास्त्रों का अभ्यास करें, लक्ष्मी और तज्जन्य विलास को अनित्य समझ कर द्रव्य को सन्मार्ग में खर्च कर परलोक के सुख का सम्पादन करें, क्योंकि इस मल से भरे हुए तथा अनित्य शरीर से निर्मल और शाश्वत (नित्य रहनेवाले) परलोक के सुख का सम्पादन कर लेना ही मानुषी जन्म की कृतार्थता है ॥

५-आदि शब्द से भूत आदि का आवेश, अभिचार (घात और मूंठ आदि का चलाना), अभिशाप (ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और महात्मा आदि का शाप) विषभक्षण, अग्निदाह तथा हड्डी आदि का टूटना, इत्यादि कारण भी समझ लेने चाहियें ॥

६-यह स्वाधीन इस लिये है कि अपने ही किये हुए मिथ्या आहार और विहार से प्राप्त होता है ॥

देखो ! काम शोक तथा डर से चढ़े हुए ज्वर में पित्त का कोप होता है और भूतादि के प्रतिबिम्ब के बुखार में आवेश होनेसे तीनों दोषोंका कोप होता है, इत्यादि ।

भेद तथा लक्षण—१-विषजन्य (विषसे पैदा होनेवाला) आगन्तुक ज्वर— विष के खाने से चढ़े हुए ज्वर में रोगी का मुख काला पड़ जाता है, सुई के चुभाने के समान पीड़ा होती है, अन्न पर अरुचि, प्यास और मूर्छा होती है, स्थावर विषसे उत्पन्न हुए ज्वर में दस्त भी होते हैं, क्यों कि विष नीचे को गति करता है तथा मल आदि से युक्त वमन (उलटी) भी होती है ।

२-ओषधिगन्धजन्य ज्वर—किसी तेज तथा दुर्गन्धयुक्त वनस्पति की गन्ध से चढ़े हुए ज्वर में मूर्छा, शिर में दर्द तथा क़य (उलटी) होती है ।

३-कामज्वर—अभीष्ट (प्रिय) स्त्री अथवा पुरुष की प्राप्ति के न होने से उत्पन्न हुए ज्वर को कामज्वर कहते हैं, इस ज्वर में चित्तकी अस्थिरता (चञ्चलता), तन्द्रा (ऊंघ) आलस्य, छाती में दर्द, अरुचि, हाथ पैरों का ऐंठना, गलहस्त (गलहत्था) देकर फिक्र का करना, किसी की कही हुई बात का अच्छा न लगना, शरीर का सूखना, मुँह पर पसीने का आना तथा निःश्वास का होना आदि चिह्न होते[2] हैं ।

४-भयज्वर—डर से चढ़े हुए ज्वर में रोगी प्रलाप (बकवाद) बहुत करता है ।

५-क्रोधज्वर—क्रोध से चढ़े हुए ज्वर में कम्पन (काँपनी) होता[3] है तथा मुख कडुआ रहता है ।

६-भूताभिषङ्गज्वर—इस ज्वर में उद्वेग, हँसना, गाना, नाचना, काँपना तथा अचिन्त्य शक्ति का होना आदि चिह्न होते हैं ।

इन के सिवाय क्षतज्वर अर्थात् शरीर में घाव के लगने से उत्पन्न होनेवाला ज्वर, दाहज्वर, श्रमज्वर (परिश्रम के करने से उत्पन्न हुआ ज्वर) और छेदज्वर (शरीर के किसी भाग के कटने से उत्पन्न हुआ ज्वर) आदिज्वरों का इस आगन्तुक ज्वर में ही समावेश होता है ।

१-वाग्भट्टने इस ज्वरके लक्षण-भ्रम, अरुचि, दाह और लज्जा, निद्रा, बुद्धि और धैर्य का नाश माने हैं ॥

२-स्त्री के कामज्वर होने पर मूर्छा, देह का टूटना, प्यास का लगना, नेत्र स्तन और मुख का चञ्चल होना, पसीनों का आना तथा हृदय में दाह का होना ये लक्षण होते हैं ॥

३-(प्रश्न) कम्पन का होना वात का कार्य है फिर वह (कम्पन) क्रोध ज्वर में कैसे होता है, क्योंकि क्रोध में तो पित्त का प्रकोप होता है ? (उत्तर) पहिले कह चुके हैं कि एक कुपित हुआ दोष दूसरे दोष को भी कुपित करता है इसलिये पित्त के प्रकोप के कारण वात भी कुपित हो जाता है और उसी से कम्पन होता है, अथवा क्रोध से केवल पित्त का ही प्रकोप होता है, यह बात नहीं है किन्तु-वात का भी प्रकोप होता है, जैसा कि-विदेह आचार्य ने कहा है कि-"क्रोधशोकौ स्मृतौ वातपित्तरक्तप्रकोपनौ" अर्थात् क्रोध और शोक ये दोनों वात, पित्त और रक्त को प्रकुपित करनेवाले माने गये हैं, बस जब क्रोध से वात का भी प्रकोप होता है तो उस से कम्पन का होना साधारण बात है ॥

चिकित्सा—१–विष से तथा ओषधि के गन्ध से उत्पन्न हुए ज्वर में–पित्तशमन, कर्त्ता (पित्त को शान्त करनेवाला) औषध लेना चाहिये[1], अर्थात् तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर, कवावचीनी, अगर, केशर और लौंग, इन में से सब वा थोड़े सुगन्धित पदार्थ लेकर तथा उनका क्वाथ (काढा) बना कर पीना चाहिये।

२–काम से उत्पन्न हुए ज्वर में–वाला, कमल, चन्दन, नेत्रवाला, तज, धनियाँ तथा जटामांसी आदि शीतल पदार्थों की उकाली, ठंढा लेप तथा इच्छित वस्तु की प्राप्ति आदि उपाय करने चाहियें।

३–क्रोध, भय और शोक आदि मानसिक (मनःसम्बन्धी) विकारों से उत्पन्न हुए ज्वरों में–उन के कारणों को (क्रोध, भय और शोक आदिको) दूर करने चाहियें, रोगी को धैर्य (दिलासा) देना चाहिये, इच्छित वस्तु की प्राप्ति करानी चाहिये, यह ज्वर पित्त को शान्त करनेवाले शीतल उपचार, आहार और विहार आदि से मिट जाता है।

४–चोट, श्रम, मार्गजन्य श्रान्ति (रास्ते में चलने से उत्पन्न हुई थकावट) और गिर जाना इत्यादि कारणों से उत्पन्न हुए ज्वरों में–पहिले दूध और भात खाने को देना चाहिये तथा मार्गजन्य श्रान्ति से उत्पन्न हुए ज्वर में तेल की मालिश करवानी चाहिये तथा सुखपूर्वक (आराम के साथ) नींद लेनी चाहिये।

५–आगन्तुक ज्वरवाले को लंघन नहीं करना चाहिये[2] किन्तु स्निग्ध (चिकना), तर तथा पित्तशामक (पित्त को शान्त करनेवाला) शीतल भोजन करना चाहिये और मन को शान्त रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से ज्वर नरम (मन्द) पड़ कर उतर जाता है।

६–आगन्तुकज्वर वाले को वारंवार सन्तोष देना तथा उस के प्रिय पदार्थों की प्राप्ति कराना अति लाभदायक होता है, इस लिये इस बात का अवश्य खयाल रखना चाहिये[3] ॥

विषमज्वर का वर्णन ॥

कारण—किसी समय में आये हुए ज्वर के दोषों का शास्त्र की रीति के विना किसी प्रकार निवारण करने के पीछे, अथवा किसी ओषधि[4] से ज्वर को दबा देने से जब उस

१–इन दोनों (विषजन्य तथा ओषधिगन्धजन्य) ज्वरों में–पित्त प्रकुपित हो जाता है इस लिये पित्त को शान्त करनेवाली ओषधि के लेने से पित्त शान्त हो कर ज्वर शीघ्र ही उतर जाता है ॥

२–वाग्भट ने लिखा है कि "शुद्धवातक्षयागन्तुजीर्णज्वरिषु लङ्घनम्" नेष्यते, इति शेषः, अर्थात् शुद्ध वात में (केवल वातजन्य रोग में), क्षयजन्य (क्षयसे उत्पन्न हुए) ज्वर में, आगन्तुकज्वर में तथा जीर्णज्वर में लंघन नहीं करना चाहिये, वस यही सम्मति प्रायः सब आचार्यों की है ॥

३–इस ज्वर का सम्बंध प्रायः मन के साथ होता है इसी लिये मन को सन्तोष प्राप्त होने से तथा अभीष्ट वस्तु के मिलने से मन की शान्तिद्वारा यह ज्वर उतर जाता है ॥

४–जैसे क्विनाइन आदि से ॥

की लिंगस (अंश) नहीं जाती है तब वह ज्वर धातुओं में छिप कर ठहर जाता है तथा अहित आहार और विहार से दोष कोप को प्राप्त होकर पुनः ज्वर को प्रकट कर देते हैं उसे विषमज्वर कहते हैं, इस के सिवाय-इस ज्वर की उत्पत्ति खराब हवा आदि दूसरे कारणों से भी प्रारंभ दशों में हो जाती है।

लक्षण—विषमज्वर का कोई भी नियत समय नहीं है[3], न उस में ठंढ वा गर्मी का कोई नियम है और न उस के वेग की ही तादाद है, क्योंकि यह ज्वर किसी समय थोड़ा तथा किसी समय अधिक रहता है, किसी समय ठंढ और किसी समय गर्मी लग कर चढ़ता है, किसी समय अधिक वेग से और किसी समय मन्द (कम) वेग से चढ़ता है तथा इस ज्वर में प्रायः पित्त का कोप होता है।

भेद—विषम ज्वर के पांच भेद हैं—सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क (एकान्तरा), तेजरा और चौथिया, अब इन के स्वरूप का वर्णन किया जाता है:—

१-सन्तत—बहुत दिनोंतक विना उतरे ही अर्थात् एकसदृश रहनेवाले ज्वर को सन्तत कहते हैं, यह ज्वर वातिक (वायु से उत्पन्न हुआ) सात दिन तक, पैत्तिक (पित्त से उत्पन्न हुआ) दश दिन तक और कफज (कफ से उत्पन्न हुआ) वारह दिन तक अपने २ दोष की शक्ति के अनुसार रह कर चला जाता है, परन्तु पीछे (उतर कर पुनः) फिर भी बहुत दिनों तक आता रहता है, यह ज्वर शरीर के रस नामक धातु में रहता है।

१-तात्पर्य यह है कि जब प्राणी का ज्वर चला जाता है तब अल्प दोष भी अहित आहार और विहार के सेवन से पूर्ण होकर रस और रक्त आदि किसी धातु में प्राप्त होकर तथा उस को दूषित (विगाड़) कर फिर विषम ज्वर को उत्पन्न कर देता है ॥

२-अर्थात् ज्वर की प्रारम्भदशा में जब खराव वा विषैली हवा का सेवन अथवा प्रवेश आदि हो जाता है तब भी वह ज्वर विकृत होकर विषमज्वररूप हो जाता है ॥

३-"विषमज्वर का कोई भी नियत समय नहीं है" इस कथन का तात्पर्य यह है कि-जैसे वातजन्य ज्वर सात रात्रि तक, पित्तज्वर दश रात्रि तक तथा कफज्वर बारह रात्रि (दिन) तक रहता है तथा प्रबल वेग होने से वातजन्य चौदह दिन तक, पित्तज्वर तीस दिन तक तथा कफज्वर चौवीस दिन तक रहता है, इस प्रकार विषमज्वर नहीं रहता है, अर्थात् इस का नियमित काल नहीं है तथा इस के वेग का भी नियम नहीं है अर्थात् कभी प्रचण्ड वेग से चढ़ता है और कभी मन्द वेग से चढ़ता है ॥

४-इस ज्वर से सततज्वर भिन्न है, क्योंकि सततज्वर प्रायः दिन रात में दो वार चढता है अर्थात् एक वार दिन में और एक वार रात्रि में, क्योंकि-प्रत्येक दोष का रात दिन में दो वार प्रकोप का समय आता है परन्तु यह वैसा नहीं है, क्योंकि यह तो अपनी स्थिति के समय बराबर बना ही रहता है ॥

५-परन्तु किन्हीं आचार्यों की सम्मति है कि-यह ज्वर शरीर के रस और रक्त नामक (दोनों) धातुओं में रहता है ॥

२-सतत—बारह घण्टे के अन्तर से आनेवाले तथा दिन में और रात्रि में दो समय आनेवाले ज्वर को सतत कहते हैं, इस ज्वर का दोष रक्त (खून) नामक धातु में रहता है।

३-अन्येद्युष्क (एकान्तरा)—यह ज्वर सदा २४ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् प्रतिदिन एक बार चढ़ता और उतरता है[2], यह ज्वर मांस नामक धातु में रहता है।

४-तेजरा—यह ज्वर ४८ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् बीच में एक दिन नहीं आता है[3], इस को तेजरा कहते हैं परन्तु इस ज्वर को कोई आचार्य एकान्तर कहते हैं, यह ज्वर मेद नामक धातु में रहता है।

५-चौथिया—यह ज्वर ७२ घण्टे के अन्तर से आता है अर्थात् बीच में दो दिन न आकर तीसरे दिन[4] आता है, इस को चौथिया ज्वर कहते हैं, इस का दोष अस्थि (हाड़) नामक धातु में तथा मज्जा नामक धातु में रहता है।

इस ज्वर[5] में दोष भिन्न २ धातुओं का आश्रय लेकर रहता है इसलिये इस ज्वर को वैद्यजन रसगत, रक्तगत, इत्यादि नामों से कहते[6] हैं, इन में पूर्व २ की अपेक्षा उत्तर २ अधिक भयंकर होता है[7], इसी लिये इस अनुक्रम से अस्थि तथा मज्जा धातु में गया हुआ (प्राप्त हुआ) चौथिया ज्वर अधिक भयङ्कर होता[8] है, इस ज्वर में जब दोष वीर्य में पहुँच जाता है तब प्राणी अवश्य मर जाता है।

अब विषमज्वरों की सामान्यतया तथा प्रत्येक के लिये भिन्न २ चिकित्सा[9] लिखते हैं:—

१-क्योंकि दोष के प्रकोप का समय दिन और रातभर में (२४ घण्टे में) दो वार आता है ॥

२-इस में दिन वा रात्रि का नियम नहीं है कि दिन ही में चढ़े वा रात्रि में ही चढ़े किन्तु २४ घंटे का नियम है ॥

३-अर्थात् तीसरे दिन आता है, इस में ज्वर के आने का दिन भी ले लिया जाता है अर्थात् जिस दिन आता है उस दिन समेत तीसरे दिन पुनः आता है ॥

४-तीसरे दिन से तात्पर्य यहां पर ज्वर आने के दिन का भी परिगणन कर के चौथे दिन से है, क्योंकि ज्वर आने के दिन का परिगणन कर के ही इस का नाम चातुर्थिक वा चौथिया रक्खा गया है ॥

५-इस ज्वर में अर्थात् विषमज्वर में ॥

६-अर्थात् आश्रय की अपेक्षा से नाम रखते हैं, जैसे-सन्तत को रसगत, सतत को रक्तगत, अन्येद्युष्क को मांसगत, तेजरा को मेदोगत तथा चौथिया को मज्जास्थिगत कहते हैं ॥

७-अर्थात् सन्तत से सतत, सतत से अन्येद्युष्क, अन्येद्युष्क से तेजरा और तेजरे से चौथिया अधिक भयंकर होता है ॥

८-अर्थात् सब की अपेक्षा चौथिया ज्वर अधिक भयंकर होता है ॥

९-सम्पूर्ण विषमज्वर सन्निपात से होते हैं परन्तु इन में जो दोष अधिक हो उन में उसी दोष की प्रधानता से चिकित्सा करनी चाहिये, विषमज्वरों में भी देह का ऊपर नीचे से (वमन और विरेचन के द्वारा) शोधन करना चाहिये तथा स्निग्ध और उष्ण अन्नपानों से इन (विषम) ज्वरों को जीतना चाहिये ॥

चिकित्सा—१–सन्तत ज्वर—इस ज्वर में–पटोल, इन्द्रयव, देवदारु, गिलोय और नीम की छाल का क्काथ देना चाहिये ।

२–**सततज्वर**—इस ज्वर में–त्रायमाण, कुटकी, धमासा और उपलसिरी का क्काथ देना चाहिये ।

३–**अन्येद्युष्क (एकान्तर)**—इस ज्वर में–दाख, पटोल, कडुआ नीम, मोथ, इन्द्रयव तथा त्रिफला, इन का क्काथ देना चाहिये ।

४–**तेजरा**—इस ज्वर में–वाला, रक्तचन्दन, मोथ, गिलोय, धनिया और सोंठ, इन का क्काथ शहद और मिश्री मिला कर देना चाहिये ।

५–**चौथिया**—इस ज्वर में–अडूसा, आँवला, सालवण, देवदारु, जौं हरडें और सोंठ का क्काथ शहद और मिश्री मिला कर देना चाहिये ।

सामान्य चिकित्सा—६–दोनों प्रकार की (छोटी वड़ी) रींगणी, सोंठ, धनिया और देवदारु, इन का क्काथ देना चाहिये, यह क्काथ पाचन है इस लिये विषमज्वर तथा सब प्रकार के ज्वरों में इस क्काथ को पहिले देना चाहिये[1] ।

७–**मुस्तादि क्काथ**—मोथ, भूरींगणी[2], गिलोय, सोंठ और आँवला, इन पांचों की उकाली को शीतल कर शहद तथा पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये ।

८–**ज्वरांकुश**[3]—शुद्ध पारा, गन्धक, वत्सनाग, सोंठ, मिर्च और पीपल, इन छःओं पदार्थों का एक एक भाग तथा शुद्ध किये हुए धतूरे के वीज दो भाग लेने चाहियें, इन में से प्रथम पारे और गन्धक की कजली कर शेष चारों पदार्थों को कपड़छान कर तथा सब को मिला कर नींबू के रसमें खूब खरल[4] कर दो दो रती की गोलियां बनानी चाहियें, इन में से एक वा दो गोलियों को पानी में वा अदरख के रस में अथवा सोंठ के पानी में ज्वर आने तथा ठंढ लगने से आध घण्टे अथवा घण्टे भर पहिले लेना चाहिये, इस से ज्वर का आना तथा ठंढ का लगना बिलकुल बन्द हो जाता है, ठंढ के ज्वर में ये गोलियां क्किनाइन से भी अधिक फायदेमन्द[5] हैं ।

१–पहिले इसी क्काथ के देने से दोषों का पाचन होकर उन का वेग मन्द हो जाता है तथा उन की प्रबलता मिट जाती है और प्रबलता के मिट जाने से पीछे दी हुई साधारण भी ओषधि शीघ्र ही तथा विशेष फायदा करती है ॥

२–भूरींगणी अर्थात् कटेरी ॥

३–आते हुए ज्वर के रोकने के लिये तथा ठंढ लगने को दूर करने के लिये यह (ज्वराङ्कुश) बहुत उत्तम ओषधि है ॥

४–खरल कर अर्थात् खरल में घोंट कर ॥

५–क्योंकि ये गोलियां ठंढ को मिटा कर तथा शरीर में उष्णता का सञ्चार कर बुखार को मिटाती हैं और शरीर में शक्ति को भी उत्पन्न करती हैं ॥

फुटकर चिकित्सा—९–चौथिया तथा तेजरा के ज्वर में अगस्त के पत्तों का रस अथवा उस के सूखे पत्तों को पीस तथा कपड़छान कर रोगी को सुँघाना चाहिये तथा पुराने घी में हींग को पीस कर सुँघाना चाहिये।

१०–इन के सिवाय–सब ही विषम ज्वरों में ये (नीचे लिखे) उपाय हितकारी हैं–काली मिर्च तथा तुलसी के पत्तों को घोट कर पीना चाहिये, अथवा–काली जीरी तथा गुड़ में थोड़ी सी काली मिर्च को डाल कर खाना चाहिये, अथवा–सोंठ जीरा और गुड़, इन को गर्म पानी में अथवा पुराने शहद में अथवा गाढ़ी छाछ में पीना चाहिये, इस के पीने से ठंढ का ज्वर उतर जाता है, अथवा–नीम की भीतरी छाल, गिलोय तथा चिरायते के पत्ते, इन तीनों में से किसी एक वस्तु को रात को भिगा कर प्रातःकाल कपड़े से छान कर तथा उस जल में मिश्री मिला कर और थोड़ी सी काली मिर्च डाल कर पीना चाहिये, इस के पीने से ठंढ के ज्वर में बहुत फायदा होता है।

स्मरण रहे कि–देशी इलाजों में से वनस्पति के क्काथ के लेने में सब प्रकार की निर्भयता है तथा इस के सेवन में धर्म का संरक्षण भी है क्योंकि सब प्रकार के काढ़े ज्वर के होने पर तथा न भी होने पर प्रति समय दिये जा सकते हैं, इस के अतिरिक्त–इन से मल का पाचन होकर दस्त भी साफ आता है, इस लिये इन के सेवन के समय में साफ दस्त के आने के लिये पृथक् जुलाब आदि के लेने की आवश्यकता नहीं रहती है, तात्पर्य यह है कि–वनस्पति का क्काथ सर्वथा और सर्वदा हितकारी है तथा साधारण चिकित्सा है, इसलिये जहां तक हो सके पहिले इसी का सेवन करना चाहिये[२] ॥

सन्तत ज्वर (रिमिटेंट फीवर) का विशेष वर्णन ॥

कारण—विषमज्वर का कारण यह सन्तत ज्वर ही है जिस के लक्षण तथा

१–इस के–अगस्त्य, वंगसेन, मुनिपुष्प और मुनिद्रुम, ये संस्कृत नाम हैं, हिन्दी में इसे अगस्त अगस्तिया तथा हथिया भी कहते हैं, बंगाली में–वक, मराठी में–हदगा, गुजराती में–अगथियो तथा अंग्रेजी में ग्राण्डी फलोरा कहते हैं, इस का वृक्ष लम्बा होता है और इस पर पत्तेवाली वेलें अधिक चढ़ती हैं, इस के पत्ते इमली के समान छोटे २ होते हैं, फूल सफेद, पीला, लाल और काला होता है अर्थात् इस का फूल चार प्रकार का होता है तथा वह (फूल) केसूला के फूल के समान बांका (टेढ़ा) और उत्तम होता है, इस वृक्ष की लम्बी पतली और चपटी फलियां होती हैं, इस के पत्ते शीतल, रूक्ष, वातकर्ता और कड़ुए होते हैं, इस के सेवन से पित्त, कफ, चौथिया ज्वर और सरेकमा दूर हो जाता है ॥

२–यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि–वनस्पति की खुराक तथा रूपान्तर में उस का सेवन प्राणियों के लिये सर्वदा हितकारक ही है, यदि वनस्पति का क्काथ आदि कोई पदार्थ किसी रोगी के अनुकूल न भी आवे तो उसे छोड़ देना चाहिये परन्तु उस से शरीर में किसी प्रकार का विकार होकर हानि की सम्भावना कभी नहीं होती है जैसी कि अन्य रसादि की मात्राओं आदि से होती है, इसी लिये ऊपर कहा गया है कि–जहां तक हो सके पहिले इसी का सेवन करना चाहिये ॥

चिकित्सा पहिले संक्षेप से लिख चुके हैं वह मलेरिया की विषैली हवा में से उपन्न होता है[1] तथा यह ज्वर विषमज्वर के दूसरे भेदों की अपेक्षा अधिक भयङ्कर है[2]।

लक्षण—यह ज्वर सात दश वा बारह दिन तक एक सदृश (एकसरीखा) आया करता है अर्थात् किसी समय भी नहीं उतरता है, यह ज्वर प्रायः तीनों दोषों के कुपित होने से आता है, इस ज्वर के प्रारंभ में पाचनक्रिया की अव्यवस्था (गड़बड़), विकलता (बेचैनी), खिन्नता (चित्त की दीनता) तथा शिर में दर्द का होना आदि लक्षण मालूम होते हैं ठंढ की चमकारी इतनी थोड़ी आती है कि ठंढ चढ़ने की खबर तक नहीं पड़ती है और शरीर में एकदम गर्मी भर जाती है, इस के सिवाय-इस ज्वर में चमड़ी में दाह, वमन (उलटी), शिर में दर्द, नींद का न आना तथा तन्द्रा (मींट) का होना आदि लक्षण भी पाये जाते हैं।

अन्तर्वेगी (अन्तरिया) बुखार से इस बुखार में इतना भेद है कि-अन्तर्वेगी ज्वर में तो ज्वर का चढ़ना और उतरना स्पष्ट मालूम देता है परन्तु इस में ज्वर का चढ़ना और उतरना मालूम नहीं देता है, क्यों कि-अन्तर्वेगी ज्वर तो किसी समय बिलकुल उतर जाता है और यह ज्वर किसी समय भी नहीं उतरता है किन्तु न्यूनाधिक (कम ज्यादा) होता रहता है अर्थात् किसी समय कुछ कम तथा किसी समय अत्यन्त ही कम हो जाता है, इस लिये यह भी नहीं मालूम पड़ता है कि-कब अधिक हुआ और कब कम हुआ, यह बात प्रकटतया थर्मामेटर से ठीक मालूम[3] होती है, तात्पर्य यह है कि-इस ज्वर की दो स्थिति होती हैं-जिन में से पहिली स्थिति में थोड़े २ अन्तर से ऊपर ही ऊपर ज्वर का चढ़ाव उतार होता है और पीछे दूसरी स्थिति में ज्वर की भरती (आमद) अनुमान आठ २ घण्टे तक रहती है, इस समय चमड़ी बहुत गर्म रहती है, नाड़ी बहुत जल्दी चलती है, श्वासोच्छ्वास बहुत वेग से चलता[4] है और मन को विकलता प्राप्त होती है अर्थात् मन को चैन नहीं मिलता है, ज्वर की गर्मी किसी समय १०४

१-पहिले लिख चुके हैं कि मलेरिया की विषैली हवा चौमासे के बाद दलदलों में से उत्पन्न होती है ॥

२-तात्पर्य यह है कि मलेरिया की विषैली हवा शरीर के प्रत्येक भाग में प्रविष्ट होकर तथा अपना असर कर ज्वर को उत्पन्न करती है इस लिये यह ज्वर अधिक भयंकर होता है ॥

३-क्योंकि थर्मामेटर के लगाने से गर्मी की न्यूनता (कमी) तथा अधिकता (ज्यादती) स्पष्ट मालूम हो जाती है, बस उसी से ज्वर की भी न्यूनता तथा अधिकता मालूम कर ली जाती है, अर्थात् गर्मी की न्यूनता से ज्वर की न्यूनता तथा गर्मी की अधिकता से ज्वर की अधिकता का निश्चय हो जाता है, क्योंकि पहिले लिख चुके हैं कि ज्वर के वेग में गर्मी बढ़ती जाती है, थर्मामेटर के लगाने की रीति पहिले लिख चुके हैं ॥

४-नाड़ी का शीघ्र चलना तथा श्वासोच्छ्वास का वेग से आना, ये दोनों बातें ज्वर के वेग के ही कारण होती हैं तथा उसी से हृदय की अस्वस्थता होकर मन को विकलता प्राप्त होती है ॥

तक तथा किसी समय उस से भी आगे अर्थात् १०५ और १०७ तक भी वढ़ जाती है, इस प्रकार आठ दश घंटे तक अधिक वेगयुक्त होकर पीछे कुछ नरम (मन्द) पड़ जाता है तथा थोड़ा २ पसीना आता है, ज्वर की गर्मी के अधिक होने से इस के साथ खांसी, लीवर का वरम (शोथ), पाचनक्रिया में अव्यवस्था (गड़वड़) अतीसार और मरोड़ा आदि उपद्रव भी हो जाते हैं।

इस ज्वर में प्रायः सातवें दशवें वा बारहवें दिन[1] तन्द्रा (मींट) अथवा सन्निपात के लक्षण दीखने लगते हैं तथा इस ज्वर की उचित चिकित्सा न होने से यह १२ से २४ दिन तक ठहर जाता है[2]।

चिकित्सा—यह सन्ततज्वर (रिमिटेंट फीवर) बहुत ही भयंकर होता है इस लिये यदि गृहजनों को इस का ठीक परिज्ञान न हो सके तो कुशल वैद्य वा डाक्टर से इस की परीक्षा करा के चिकित्सा करानी चाहिये, क्यों कि सख्त और भयंकर बुखार में रोगी ७ से १२ दिन के अन्दर मर जाता है और जब रोग अधिकदिन तक ठहर जाता है तो गम्भीर रूप पकड़ लेता है अर्थात् पीछे उसका मिटना अति दुःसाध्य (कठिन) हो जाता है, सब से प्रथम इस बुखार की मुख्य चिकित्सा यही है कि–बुखार की टेम्परेचर (गर्मी) को जैसे हो सके वैसे कम करना चाहिये[3], क्यों कि ऐसा न करने से एकदम खून का जोश चढ़कर मगज़ में शोथ हो जाता है तथा तन्द्रा और त्रिदोष हो जाता है इस लिये गर्मी को कम करने के लिये यथाशक्य शीघ्र ही उपाय करना चाहिये, इस के अतिरिक्त जो देशी चिकित्सा पहिले लिख चुके हैं वह करनी चाहिये ॥

जीर्णज्वर का वर्णन ॥

कारण—जीर्णज्वर किसी विशेष कारण से उत्पन्न हुआ कोई नया बुखार नहीं है किन्तु नया बुखार नरम (मन्द) पड़ने के पीछे जो कुछ दिनों के बाद अर्थात् बारह दिन के बाद[4] मन्दवेग से शरीर में रहता है उस को जीर्णज्वर कहते हैं, यह ज्वर ज्यों

१–तात्पर्य यह है कि–वात के प्रकोप में सातवें दिन, पित्त के प्रकोप में दशवें दिन तथा कफ के प्रकोप में वारहवें दिन तन्द्रा होती है अथवा पूर्व लिखे अनुसार एक दोष कुपित हुआ दूसरे दोषों को भी कुपित कर देता है इस लिये सन्निपात के लक्षण दीखने लगते हैं ॥

२–तात्पर्य यह है कि दोषों की प्रवलता के अनुसार इस की १२ से २४ दिन तक स्थिति रहती है ॥

३–अर्थात् गर्मी को यथाशक्य उपायों द्वारा बढ़ने नहीं देना चाहिये ॥

४–तात्पर्य यह है कि–बारह दिन के बाद तथा तीनों दोषों के द्विगुण (दुगुने) दिनों के (तेरह द्विगुण छव्वीस) अर्थात् छव्वीस दिनों के उपरान्त जो ज्वर शरीर में मन्दवेग से रहता है उस को जीर्णज्वर कहते हैं, परन्तु कोई आचार्य यह कहते हैं कि २१ दिन के उपरान्त मन्दवेग से रहनेवाला ज्वर जीर्णज्वर होता है ॥

२ पुराना होता है त्यों २ मन्दवेगवाला होता है, इसी को अस्थिज्वर (अस्थि अर्थात् हाड़ों में पहुँचा हुआ ज्वर) भी कहते हैं[1] ।

लक्षण—इस ज्वर में मन्दवेगता (बुखार का वेग मन्द), शरीर में रूखापन, चमड़ी पर शोथ (सूजन), थोथर, अङ्गों का जकड़ना तथा कफ का होना, ये लक्षण होते हैं तथा ये लक्षण जब क्रम २ से बढ़ते जाते हैं तब वह जीर्णज्वर कष्टसाध्य हो जाता है[2] ।

चिकित्सा[3]—१-गिलोय का काढ़ा कर तथा उस में छोटीपीपल का चूर्ण तथा शहद मिलाकर कुछ दिन तक पीने से जीर्णज्वर मिट जाता है ।

२-खांसी, श्वास, पीनस तथा अरुचि के संग यदि जीर्णज्वर हो तो उस में गिलोय, भूरींगणी तथा सोंठ का काढ़ा बना कर उस मे छोटी पीपल का चूर्ण मिला कर पीने से वह फायदा करता है[4] ।

३-हरी गिलोय को पानी में पीसकर तथा उस का रस निचोड़ कर उस में छोटी पीपल तथा शहद मिला कर पीने से जीर्णज्वर, कफ, खांसी, तिल्ली और अरुचि मिट जाती है ।

४-दो भाग गुड़ और एक भाग छोटी पीपल का चूर्ण, दोनों को मिला कर इस की गोली बना कर खाने से अजीर्ण, अरुचि, अग्निमन्दता, खांसी, श्वास, पाण्डु तथा कृमि रोग सहित जीर्णज्वर मिट जाता है ।

५-छोटी पीपल को शहद में चाटने से, अथवा अपनी शक्ति और प्रकृति के अनुसार दो से लेकर सात पर्यन्त छोटी पीपलों को रात को जल को जल में वा दूध में भिगा कर

१-यह ज्वर क्रम २ से सातों धातुओं में जाता है, अर्थात् पहिले रस में, फिर रक्त में, फिर मांस में, फिर मेद में, फिर हड्डी में, फिर मज्जा में और फिर शुक्रमें जाता है, इस ज्वर के मज्जा और शुक्र धातु में पहुँचने पर रोगी का बचना असम्भव हो जाता है ॥

२-जीर्ण ज्वर का एक भेद वातबलासकी है, उस में ये सब लक्षण पाये जाते हैं, वह ज्वर कष्टसाध्य माना जाता है ॥

३-इस ज्वर में रोगी को लंघन नहीं करवाना चाहिये, क्योंकि लंघन के कराने से ज्यों २ रोगी क्षीण होता जावेगा त्यों २ यह ज्वर बढ़ता चला जावेगा ॥

४-पीपल का चूर्ण अनुमान ६ मासे डालना चाहिये तथा काढ़े की दवा दो तोले लेकर ३२ तोले जल में औटाना चाहिये तथा ८ तोले जल शेष रखना चाहिये ॥

५-यह क्वाथ अग्नि की मन्दता, शूल और अर्दित (लकवा) रोग को भी मिटाता है, इस क्वाथ के विषय में आचार्यों की यह भी सम्मति है कि-ऊर्ध्वगत (नाभि से ऊपर के) रोग के निवारण के लिये इसे सायंकाल को देना चाहिये (यह चक्रदत्त का मत है), यदि रात्रिज्वर हो तो भी सायंकाल को देना चाहिये, दूसरी अवस्था में प्रातःकाल देना चाहिये तथा पित्तप्रधानशूल में पीपल का चूर्ण न डाल कर उस के बदले में शहद डालना चाहिये ॥

खाने से, अथवा दूध में उकाल कर पीने से, अथवा पीपलों को पीस कर गोली बना कर खाने से और गोली पर गर्म कर ठंढा किया हुआ दूध पीने से अर्थात् प्रतिदिन क्रम २ से बढ़ाकर इस का सेवन करने से जीर्णज्वर आदि अनेक रोग मिट जाते हैं।

६-**आमलक्यादि चूर्ण**—आँवला, चित्रक, हरड़, पीपल और सेंधा निमक, इन का चूर्ण बनाकर सेवन करना चाहिये, इस चूर्ण से बुखार, कफ तथा अरुचि का नाश हो जाता है, दस्त साफ आता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

७-**स्वर्णवसन्तमालिनी और चौंसठपहरी पीपल**[1]—ये दोनों पदार्थ जीर्णज्वर के लिये अक्सीर दवा हैं॥

ज्वर में उत्पन्न हुए दूसरे उपद्रवों की चिकित्सा॥

ज्वर में कास (खांसी)—इस में कायफल, मोथ, भाड़ंगी, धनियां, चिरायता, पित्तपापड़ा, वच, हरड़, काकड़ासिंगी, देवदारु और सोंठ, इन ११ चीज़ों की उकाली बना कर लेनी चाहिये, इस के लेने से खांसी तथा कफ सहित बुखार चला जाता है।

अथवा पीपल, पीपरामूल, इन्द्रयव, पित्तपापड़ा और सोंठ, इन ओषधियों के चूर्ण को शहद में चाटने से फायदा होता है।

ज्वर में अतीसार—इस में लंघन करना चाहिये, क्योंकि इस में लंघन पथ्य है[2]।

अथवा-सोंठ, कुड़ाछाल, मोथ, गिलोय और अतीस की कली, इन की उकाली लेनी चाहिये।

अथवा-काली पाठ, इन्द्रयव, गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथ, सोंठ और चिरायता, इनकी उकाली लेनी चाहिये।

दुर्जलज्वर—यह ज्वर खराब तथा मैले पानी के पीने से, अथवा शिखरगिरि, बद्रीनाथ, आसाम और अड़ंग आदिस्थानों के पानी के लगने से होता है।

इसज्वर में-हरड़, नींब के पत्ते, सोंठ, सेंधानिमक और चित्रक, इनका चूर्ण कर बहुत दिनोंतक सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से बुखार मिट जाता है।

अथवा—पटोल वा कडुई तुरई, मोथ, गिलोय, अडूसा, सोंठ, धनिया और चिरायता, इन का क्वाथ शहद डालकर पीना चाहिये।

१-ये दोनों पदार्थ शास्त्रोक्त विधि से तैयार किये हुए हमारे "मारवाड़सुधावर्षणसलौषधालय" में सर्वदा तैयार रहते हैं, हमारे यहां का औषधसूचीपत्र मंगा कर देखिये॥

२-ज्वर में अतीसार होने पर लंघन के सिवाय दूसरी ओषधि नहीं है अर्थात् लंघन ही विशेष फायदा करता है, क्योंकि-लंघन बढ़े हुए दोषों को शान्त कर देता है तथा उन का पाचन भी करता है, इस लिये ज्वर में अतीसार होने पर बलवान् रोगी को तो अवश्य ही आवश्यकता के अनुसार लंघन कराने चाहियें, हां यदि रोगी निर्बल हो तो दूसरी बात है॥

अथवा—चिरायता, निसोत, खश, वाला, पीपल, वायविड़ंग, सोंठ और कुटकी, इन, सब औषधों का चूर्ण बना कर शहद में चाटना चाहिये ।

अथवा—सोंठ, जीरा और हरड़, इनकी चटनी बनाकर भोजन के पहिले खानी चाहिये ।

अथवा—वत्सनाग दो भाग, जलाई हुई कौड़ी पांच भाग और काली मिर्चे नौ भाग, इन को कूट कर तथा अदरख के रस में घोट कर मूंग के बराबर गोली बना लेनी चाहियें तथा इन में से दो गोलियों को प्रातःकाल तथा सायंकाल (दोनों समय) पानी से लेना चाहिये, ये गोलियां आमज्वर, खराब पानी के लगने से उत्पन्न ज्वर, अजीर्ण, अफरा, मलबन्ध, शूल, श्वास और कास आदि सब उपद्रवों में फायदा करती हैं ।

ज्वर में तृषा (प्यास)—इस में चाँदी की गोली को मुँह में रखकर चूसना चाहिये ।

अथवा—आलूबुखारा वा खजूर की गुठली को चूसना चाहिये ।

अथवा—शहद और पानी के कुरले करने चाहियें ।

अथवा—जहरी नारियल की गिरी, रुद्राक्ष, सेके (भूने) हुए लौंग, सोना, विना विंधे हुए मोती, मूँगिया और (मिल सके तो) फालसे की जड़, इन सब को घिस कर सीप में रख छोड़ना चाहिये तथा घण्टे २ भर पीछे जीभ के लगाना चाहिये, तत्पश्चात् पहरभर के बाद फिर घिस कर रख छोड़ना चाहिये और उसी प्रकार लगाना चाहिये, इस से पानी झरे तथा मोती झरे की प्यास, त्रिदोष की प्यास, कांटे, जीभ का कालापन और वमन (उलटी) आदि कष्टसाध्य भी रोग मिट जाते हैं तथा यह औषध रोगी को खुराक के समान सहारा और ताक़त देती है ।

ज्वर में हिक्का (हिचकी)—यदि ज्वर में हिचकी होती हो तो सेंधेनिमक को जल में बारीक पीस कर नस्य देना चाहिये ।

अथवा—सोंठ और खांडकी नस्य देना चाहिये ।

अथवा—हींगकी धूनी देना चाहिये ।

अथवा—निर्धूम अंगार पर हींग काली मिर्चे तथा उड़द को अथवा घोड़े की सूखी लीद को जला कर उस की धुआँ को सूंघना चाहिये ।

१–इस के सेवन से घोर तृषा भी शीघ्र ही शान्त हो जाती है, इस में जल बिलकुल ठंढा लेना चाहिये ॥

२–जम्भीरी, बिजौरा, अनारदाना, बेर और चूका, इन को पीसकर मुख में लेप करने से भी प्यास मिट जाती है, अथवा–शहद, वड़ (वरगद) की कोंपल और खील (भूने हुए धान अर्थात् तुपसहित चाँवल), इन सब को पीस कर मुख में इन का क़वल रखना चाहिये, यह भी तृषा (प्यास) की निवृत्ति के लिये अच्छा प्रयोग है ॥

अथवा—पीपल की सूखी छाल को जला कर पानी में बुझाना चाहिये फिर उसी पानी को छान कर पीना चाहिये।

अथवा—राई की आधे तोले बुकनी को आधसेर पानी में मिलाकर थोड़ीदेर तक रख छोड़ना चाहिये फिर नितरे हुए पानी को लेकर आधी २ छटाँक पानी को दो वा तीन घण्टे के अन्तर से पीना चाहिये।

ज्वर में श्वास—इस में दोनों भूरींगणी[1], धमासा, कड़ुई तोरई अथवा पटोल, काकड़ासिंगी, भाड़ंगी, कुटकी, कचूर और इन्द्रयव, इन की उकाली बना कर पीनी चाहिये[2]।

अथवा—छोटीपीपल, कायफल और काकड़ासिंगी, इन तीनों का चूर्ण शहद में चाटना चाहिये[3]।

ज्वर में मूर्छा—इस में अदरख का रस सुँघाना चाहिये।

अथवा—शहद, सेंधानिमक, मैनशिल और काली मिर्चे, इन को महीन पीस कर उस का आँख में अञ्जन करना चाहिये[4]।

अथवा—ठंढे पानी के छींटे आंख पर लगाने चाहियें।

अथवा—सुगन्धित धूप देनी चाहिये तथा पंखे की हवा लेनी चाहिये[5]।

ज्वर में अरुचि—इस में अदरख के रस को कुछ गर्म कर तथा उस में सेंधानिमक डाल कर थोड़ासा चाटना चाहिये।

अथवा-विजौरे के फल के अन्दर की कलियां और सेंधानिमक, इन को मिला कर मुँह में रखना चाहिये[6]।

ज्वर में वमन—इस में गिलोय के क्काथ को ठंढा कर तथा उस में मिश्री और शहद डाल कर उसे पीना चाहिये[7]।

१-दोनों भूरींगणी अर्थात् छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी ॥

२-यह दशांग क्काथ सन्निपात को भी दूर करता है ॥

३-ज्वर में श्वास होने के समय द्वात्रिंशत्क्काथ (३२ पदार्थों का काढ़ा) भी बहुत लाभदायक है, उस का वर्णन भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में देख लेना चाहिये, यहां विस्तार के भय से उसे नहीं लिखा है ॥

४-इन चारों चीज़ों को जल में बारीक पीस लेना चाहिये ॥

५-ज्वरदशा में मूर्छा होने के समय कुछ शीतल और मन को आराम देनेवाले उपचार करने चाहियें, जैसे-सुगन्धित अगर आदि की धूनी देना, सुगन्धित फूलों की माला का धारण करना, नरम ताल (ताड़) के पंखों की हवा करना तथा बहुत कोमल केले के पत्तों को शरीर से लगाना इत्यादि ॥

६-किन्हीं आचार्यों का कथन है कि-विजौरे की केशर (अन्दर की कलियां), घी और सेंधानिमक का, अथवा आँवले, दाख और मिश्री का कल्क मुख में रखना चाहिये ॥

७-किन्हीं आचार्यों की सम्मति केवल शहद डाल कर पीने की है ॥

अथवा–मिश्री डाल कर पित्तपापड़े का हिम पीना चाहिये ।

अथवा–आँचला, दाख और मिश्री का पानी, इन का सेवन करना चाहिये ।

अथवा–दाख, चन्दन, वाला, मोथ, मौलेठी और धनियां, इन सव चीज़ों को अथवा इन में से जो चीज़ मिले उस को भिगा कर तथा पीस कर उस का पानी पीना चाहिये ।

अथवा–मोर के जले हुए चार चँदवे, भुनी हुई पीपल, भुना हुआ जीरा, जली हुई नारियल की जोटी, जलाया हुआ रेशम का कूचा वा कपड़ा, पोदीना और कमलगट्टे (पव्वोड़ी) के अन्दर की हरियाई (गिरी), इन सव को पीस कर शहद में, अनार के शर्वत में, अथवा मिश्री की चासनी में वमन (उलटी) के होते ही चाटना चाहिये तथा फिर भी घण्टे घण्टे भर के वाद चाटना चाहिये, इस से त्रिदोष की भी वमन तथा छर्दी वन्द हो जाती है ।

अथवा–भुजा की दोनों नसों को खूव खींच कर वांधना चाहिये ।

अथवा–नारियल की जोटी, हलदी, काली मिर्च, उड़द और मोर के चन्दे का धूम्र-पान करना चाहिये ।

अथवा–नीम की भीतरी छाल का पानी मिश्री डाल कर पीना चाहिये ।

ज्वर में दाह[1]—इस में यदि भीतर दाह हो तो प्रायः वह चिकित्सा हितकारक है जो कि वमन के लिये लाभदायक है, परन्तु यदि वाहर दाह होता हो तो कच्चे चाँवलों के धोवन में घिसा हुआ चन्दन एक वाल तथा घिसी हुई सोंठ एक रत्ती लेनी चाहिये, इस में थोड़ा सा शहद मिला कर चाटना चाहिये तथा पानी में मिलाकर पीना चाहिये ।

अथवा–चन्दन, सोंठ, वाला और निमक, इन का लेप करना चाहिये ।

अथवा–मगज़ पर मुलतानी मिट्टी का थर भरना चाहिये ।

यदि पगथैली[2] तथा हथेलियों में दाह होता हो तो उत्तम साफ पेंदेवाली फूल (कांसे) की कटोरी लेकर धीरे २ फेरते रहना चाहिये, ऐसा करने से दाह अवश्य शान्त हो जावेगा[3] ।

ज्वर में पथ्य अर्थात् हितकारी कर्त्तव्य[4] ॥

१–परिश्रम के काम, लंघन (उपवास) और वायु से चढ़े हुए ज्वर में–दूध के साथ भात का खाना पथ्य (हितकारक) है, कफ के ज्वर में मूंग की दाल का पानी

१–ज्वर में दाह होने की दशा में प्रायः वे भी चिकित्सायें हितकारक हैं जो कि दाह के प्रकरण में ग्रन्थान्तरों में लिखी हैं, परन्तु इस में इस वात का अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि जो चिकित्सा ज्वर के विरुद्ध अर्थात् ज्वर को वढ़ानेवाली हो उसे कभी नहीं करना चाहिये ॥

२–पगथली अर्थात् पैरों के तलवे ॥

३–फूल अर्थात् कांसे की कटोरी के फेरने से एक प्रकार की विजुली की शक्ति के द्वारा आकर्षण हो कर दाह निकल जाता है ॥

४–ज्वर में पथ्य अर्थात् हितकारी कर्त्तव्य का अवश्य वर्त्ताव करना चाहिये, क्योंकि–पथ्य का वर्त्ताव न करने से दी हुई ओषधि से भी कुछ लाभ नहीं होता है तथा पथ्य का वर्त्ताव करने से ओषधि के देने की भी विशेष आवश्यकता नहीं रहती है ॥

तथा भात पथ्य है, पित्तज्वर के लिये भी यही पथ्य समझना चाहिये, परन्तु पित्तज्वर-वाले को ठंढा कर तथा थोड़ी सी मिश्री मिलाकर लेना चाहिये।

यदि दो दोष तथा त्रिदोष मालूम हों तो उस में केवल मूंग की दाल का पानी ही पथ्य है।

२-मूंग का ओसामण, भात, अथवा सावूदाना, ये सब वस्तुयें सामान्यतया ज्वर में पथ्य हैं, अर्थात् ज्वर समय में निर्भय खुराक हैं।

इस के अतिरिक्त—यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—जहां दूध को पथ्य लिखा है वहां दूध के साथ सावूदाना समझना चाहिये अर्थात् दूध के साथ सावूदाना देना चाहिये, अथवा सावूदाना को जल में पका कर तथा उस में दूध मिला कर देना चाहिये।

३-प्रायः सब ही ज्वरों में प्रथम चिकित्सा लङ्घन है, अर्थात् ज्वर की दशा में लंघन परम हितकारक है और खास कर कफ तथा आम के ज्वर में, पित्त के ज्वर में, दो २ दोषों से उत्पन्न हुए ज्वर में तथा त्रिदोषजन्यज्वर में तो लङ्घन परम लाभदायक होता है[1], यदि रोगी से सर्वथा निराहार न रहा जावे तो एक समय हलका आहार करना चाहिये, अथवा केवल मूंगका ओसामण (पानी) पीना चाहिये, क्योंकि ऐसा करना भी लंघन के समान ही लाभदायक है।

हां केवल वातज्वर, जीर्णज्वर, आगन्तुकज्वर और क्षय तथा यकृत् के वरम से उत्पन्न हुए ज्वर में विलकुल निराहाररूप लंघन नहीं करना चाहिये, क्योंकि इन ज्वरों में निराहाररूप लंघन करने से उलटी हानि होती है।

४-तरुणज्वर में अर्थात् १२ दिन तक दूध तथा घी का सेवन विष के समान है[2], परन्तु क्षय, शोथ, राजरोग और उरःक्षत के ज्वर में, यकृत् के ज्वर में, जीर्णज्वर में और आगन्तुकज्वर में दूध हितकारक है, इस में भी जीर्णज्वर में कफ के क्षीण होने के पीछे इक्कीस दिन के वाद तो दूध अमृत के समान है।

५-जो ज्वरवाला रोगी शरीर में दुर्वल हो, जिस के शरीरका कफ कम पड़ गया हो, जिस को जीर्णज्वर की तकलीफ हो, जिस को दस्त का वद्धकोष्ठ हो, जिस का शरीर रूखा हो, जिस को पित्त वा वायु का ज्वर हो तथा जिस को प्यास और दाह की तकलीफ हो उस रोगी को भी ज्वर में दूध पथ्य होता है[3]।

१-क्योंकि लंघन के करने से दोषों का पाचन हो जाता है॥

२-तरुण ज्वर में दूध और घी आदि स्निग्ध पदार्थों के सेवन से मूर्छा, वमन, मद और अरुचि आदि दूसरे रोग उत्पन्न हो जाते हैं॥

३-शरीर में दुर्वल रोगी की दूध पीने से शक्ति वनी रहती है, जिसके शरीर का कफ कम पड़ गया हो उस के दूध पान से कफ की वृद्धि होकर दोषों की समता के द्वारा उसे शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होती है, जीर्णज्वर में दूध पीने से शक्ति का क्षय न होने के कारण ज्वर की प्रवलता नहीं होती है, वद्धकोष्ठवाले को दूध के पीने से दस्त साफ आता रहता है, रूक्ष शरीरवाले के शरीर में दुग्धपान से रूक्षता मिट कर स्निग्धता (चिकनाहट) आती है, वातपित्तज्वर में दुग्धपान से उक्त दोषों की शान्ति हो कर ज्वर नष्ट हो जाता है तथा जिस रोगी को प्यास और दाह हो उस के भी उक्त विकार दूध के पीने से मिट जाते हैं॥

६–ज्वर के प्रारम्भ में लंघन, मध्य में पाचन दवा का सेवन, अन्त में कड़ुई तथा कषैली दवा का सेवन तथा सब से अन्त में दोष के निकालने के लिये जुलाब का लेना, यह चिकित्साका उत्तम क्रम है[1] ।

७–ज्वर का दोष यदि कम हो तो लंघन से ही जाता रहता है, यदि दोष मध्यम हो तो लंघन और पाचन से जाता है, यदि दोष बहुत बढ़ा हुआ हो तो दोष के संशोधनका उपाय करना चाहिये ।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—सात दिन में वायु का, दश दिन में पित्त का और बारह दिन में कफ का ज्वर पकता है, परन्तु यदि दोष का अधिक प्रकोप हो तो ऊपर कहे हुए समय से दुगुना समयतक लग जाता है ।

८–ज्वर में जबतक दोषों के अंशांशकी खबर न पड़े तबतक सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये ।

९–ज्वर के रोगी को निर्वात (वायु से रहित) मकान में रखना चाहिये तथा हवा की आवश्यकता होने पर पंखे की हवा करनी चाहिये, भारी तथा गर्म कपड़े पहराना और ओढ़ाना चाहिये तथा ऋतु के अनुसार परिपक्व (पका हुआ) जल पिलाना चाहिये ।

१०–ज्वरवाले को कच्चा पानी नहीं पिलाना चाहिये[3] तथा वारंवार बहुत पानी नहीं पिलाना चाहिये, परन्तु बहुत गर्मी तथा पित्त के ज्वर में यदि प्यास हो तथा दाह होता हो तो उस समय प्यास को रोकना नहीं चाहिये[4] किन्तु बाकी के सब ज्वरों में खयाल

१–ज्वर के प्रारम्भ में लंघन के करने से दोषों का पाचन होता है, मध्य में पाचन दवा के सेवन से लंघन से भी न पके हुए उत्कृष्ट दोषों का पाचन हो जाता है, अन्त में कड़ुई तथा कषैली दवा के सेवन से अग्नि का दीपन तथा दोषों का संशमन होता है तथा सब से अन्त में जुलाब के लेने से दोषों का संशोधन होने के द्वारा कोष्ठशुद्धि हो जाती है जिस से शीघ्र ही आरोग्यता प्राप्त होती है ॥

२–दोहा—सप्त दिवस ज्वर तरुण है, चौदह मध्यम जान ॥
तिहऊपर बुध जन कहैं, ज्वरहिँ पुरातन मान ॥ १ ॥
पकै पित्तज्वर दश दिनन, कफज्वर द्वादश जान ॥
सप्त दिवस मारुत पकै, लङ्घन तिन सम मान ॥ २ ॥
औषध काचे ताप में, दे देवै जो जान ॥
मानो काले सर्प को, कर उठाय लियो जान ॥ ३ ॥

३–क्योंकि ज्वर के रोगी को कच्चे जल के पिलाने से ज्वर की वृद्धि हो जाती है ॥

४–सुश्रुत ने लिखा है कि–प्यास के रोकने से (प्यास में जल न देने से) प्राणी बेहोश हो जाता है और बेहोशी की दशा में प्राणों का भी त्याग हो जाता है, इस लिये सब दशाओं में जल अवश्य देना चाहिये, इसी प्रकार हारीत ने कहा है कि–तृषा अत्यन्त ही घोर तथा तत्काल प्राणों का नाश करनेवाली होती है, इस लिये तृषार्त्त (प्यास से पीड़ित) को प्राण धारण (प्राणों का धारण करनेवाला) जल देना चाहिये, इन वाक्यों से यही सिद्ध होता है कि–प्यास को रोकना नहीं चाहिये, हां यह ठीक है कि–बहुत थोड़ा २ जल पीना चाहिये ॥

रखकर थोड़ा २ पानी देना चाहिये, क्योंकि—ज्वर की प्यास में जल भी प्राणरक्षक (प्राणों की रक्षा करनेवाला) है।

११–ज्वरवाले को खाने की रुचि न भी हो तो भी उस को हितकारक तथा पथ्य भोजन ओषधि की रीति पर (दवा के तरीके) थोड़ा अवश्य खिलाना चाहिये[1]।

१२–ज्वरवाले को तथा ज्वर से मुक्त (छूटे) हुए भी पुरुष को हानि करनेवाले आहार और विहार का त्याग करना चाहिये, अर्थात् स्नान, लेप, अभ्यङ्ग (मालिश), चिकना पदार्थ, जुलाब, दिन में सोना, रात में जागना, मैथुन, कसरत, ठंढे पानी का अधिक पीना, बहुत हवा के स्थान में बैठना, अति भोजन, भारी आहार, प्रकृतिविरुद्ध भोजन, क्रोध, बहुत फिरना तथा परिश्रम, इन सब बातों का त्याग करना चाहिये[2], क्योंकि—ज्वर समय में हानिकारक आहार और विहार के सेवन से ज्वर बढ़ जाता है तथा ज्वर जाने के पश्चात् शीघ्र उक्त वर्त्ताव के करने से गया हुआ ज्वर फिर आने लगता है।

१३–साठी चावल, लाल मोटे चावल, मूंग तथा अरहर (तूर) की दाल का पानी, चँदलिया, सोया (सोवा), मेथी, घियातोरई, परवल और तोरई आदि का शाक, घी में बघारी हुई दाख अनार और सफरचन्द, ये सब पदार्थ ज्वर में पथ्य हैं।

१४–दाह करनेवाले पदार्थ (जैसे उड़द, चँवला, तेल और दही आदि), खट्टे पदार्थ, बहुत पानी, नागरवेल के पान, घी और मद्य इत्यादि ज्वर में कुपथ्य हैं॥

फूट कर निकलनेवाले ज्वरों का वर्णन॥

फूट कर निकलनेवाले ज्वरों को देशी वैद्यकशास्त्रवालों ने ज्वर के प्रकरण में नहीं लिखा किन्तु इन को मसूरिका नाम से क्षुद्र रोगों में लिखा है तथा जैनाचार्य योगचिन्तामणिकार ने मूंधोरा नाम से पानीझरे को लिखा है, इसी को मरुस्थल देश में निकाला तथा सोलापुर आदि दक्षिण के देश के महाराष्ट्र (मराठे) लोग भाव कहते हैं,

---

१–ऐसा करने से शक्ति क्षीण नहीं होती है तथा वात और पित्त का प्रकोप भी नहीं बढ़ता है॥

२–देखो! ज्वर में स्नान करने से पुनः ज्वर प्रबलरूप धारण कर लेता है, ज्वर में कसरत के करने से ज्वर की वृद्धि होती है, मैथुन करने से देह का जकड़ना, मूर्छा और मृत्यु होती है, स्निग्ध (चिकने) पदार्थों के पान आदि से मूर्छा, वमन, उन्मत्तता और अरुचि होती है, भारी अन्न के सेवन से तथा दिन में सोने से विष्टम्भ (पेट का फूलना तथा गुड़ गुड़ शब्द का होना), वात आदि दोषों का कोप, अग्नि की मन्दता, तीक्ष्णता तथा छिद्रों का बहना होता है, इस लिये ज्वरवाला अथवा जिस का ज्वर उतर गया हो वह भी (कुछ दिनों तक) दाहकारी भारी और असात्म्य (प्रकृति के प्रतिकूल) अन्न पान आदि का, विरुद्ध भोजन का, अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन) का, दण्ड कसरत का, डोलना फिरना आदि चेष्टा का, उबटन तथा स्नान का परित्याग कर दे, ऐसा करने से ज्वररोगी का ज्वर चला जाता है तथा जिस का ज्वर चला गया हो उस को उक्त वर्त्ताव के करने से फिर ज्वर वापिस नहीं आता है॥

इसी प्रकार इन के भिन्न २ देशों में प्रसिद्ध अनेक नाम हैं, संस्कृत में इसका नाम मन्थ-ज्वर है, इस ज्वर में प्रायः पित्तज्वर के सब लक्षण होते हैं।

विचार कर देखा जावे तो ये (फूट कर निकलनेवाले) ज्वर अधिक भयानक होते हैं अर्थात् इन की यदि ठीक रीति से चिकित्सा न की जावे तो ये शीघ्र ही प्राणघातक हो जाते हैं परन्तु बड़े अफसोस का विषय है कि—लोग इन की भयंकरता को न समझ कर मनमानी चिकित्सा कर अन्त में प्राणों से हाथ धो बैठते हैं।

मारवाड़ देश की ओर जब दृष्टि उठा कर देखा जावे तो विदित होता है कि—वहां के अविद्या देवी के उपासकों ने इस ज्वर की चिकित्सा का अधिकार मूर्ख रण्डाओं (विधवाओं) को सौंप रक्खा है, जो कि (रंडायें) डाकिनी रूप हो कर इस की प्रायः पित्तविरोधी चिकित्सा करती हैं[1] अर्थात् इस ज्वर में अत्यन्त गर्म लौंग सोंठ और ब्राह्मी दिलाती हैं, इस का परिणाम यह होता है कि—इस चिकित्सा के होने से सौ में से प्रायः नव्वे आदमी गर्मी के दिनों में मरते[2] हैं, इस बात को हम ने वहां स्वयं देखा है और सौ में से दश आदमी भी जो बचते हैं वे भी किसी कारण से ही बचते हैं सो भी अत्यन्त कष्ट पाकर बचते हैं किन्तु उन के लिये भी परिणाम यह होता है कि वे जन्म भर अत्यन्त कष्टकारक उस गर्मी का भोग भोगते हैं, इस लिये इस बात पर मारवाड़ के निवासियों को अवश्य ही ध्यान देना चाहिये।

इन रोगों में यद्यपि मसूर के दानों के समान तथा मोती अथवा सरसों के दानों के समान शरीर पर फुनसियां निकलती हैं तथापि इन में मुख्यतया ज्वर का ही उपद्रव होता है इस लिये यहां हमने ज्वर के प्रकरण में इनका समावेश किया है।

भेद (प्रकार)—फूट कर निकलनेवाले ज्वरों के बहुत से भेद (प्रकार) हैं, उन में से शीतला, ओरी और अचपड़ा (इस को मारवाड़ में आकड़ा काकड़ा कहते हैं) आदि मुख्य हैं, इन के सिवाय– मोतीझरा, रंगीला, विसर्प, हैजा और प्लेग आदि सब भयंकर ज्वरों का भी समावेश इन्हीं में होता है।

कारण—नाना प्रकार के ज्वरों का कारण जितना शरीर के साथ सम्बन्ध रखता है उस की अपेक्षा बाहर की हवा से विशेष सम्बन्ध रखता है[3]।

१–ज्वर में पित्तविरोधी चिकित्सा का सर्वथा निषेध किया गया है अर्थात् ज्वर में पित्तविरोधी चिकित्सा कभी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से अनेक दूसरे भी उपद्रव उठ खड़े होते हैं ॥

२–क्योंकि उक्त दवा की गर्मी रोगियों के हृदय में समा जाती है और जब ग्रीष्मऋतु की गर्मी पड़ती है तब उन के शरीर में द्विगुण गर्मी हो जाती है कि–जिस का सहन नहीं हो सकता है और आखिरकार मर ही जाते हैं ॥

३–अर्थात् ज्वरों का कारण बाहरी हवा से विशेष प्रकट होता है ॥

ऐसे फूट कर निकलनेवाले रोग कहीं तो एकदम ही फूट कर निकलते हैं और कहीं कुछ विशेष विलम्ब से फूटते हैं[1], इन रोगों का मुख्य कारण एक प्रकार का ज़हर (पाइज़न) ही होता है और यह विशेष चेपी है[2] इस लिये चारों ओर फैल जाता है अर्थात् बहुत से आदमियों के शरीरों में घुस कर बड़ी हानि करता है, इस के फैलने के समय में भी कुछ आदमियों के शरीर को यह रोग लगता है तथा कुछ आदमियों के शरीर को नहीं लगता है, इस का क्या कारण है इस बात का निर्णय ठीक रीति से अभी-तक कुछ भी नहीं हुआ है परन्तु अनुमान ऐसा होता है कि कुछ लोगों के शरीर के बन्धेज विशेष के होने से तथा आहार विहार से प्राप्त हुई निकृष्ट (खराब) स्थिति-विशेष के द्वारा उन के शरीर के दोष ऐसे चेपी रोगों के परमाणुओं को शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं तथा कुछ लोगों के शरीर के बन्धेज विशेष ढंग के होने से तथा आहार विहार के द्वारा प्राप्त हुई उत्कृष्ट (उत्तम) स्थिति विशेष के द्वारा उन के शरीर के तत्त्वों-पर ऐसे रोगों के चेपी तत्त्व शीघ्र असर नहीं कर सकते हैं[3], इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि—एक ही स्थान में तथा एक ही घर में किसी को यह रोग लग जाता है और किसी को नहीं लगता है, इस का कारण केवल वही है जो कि अभी ऊपर लिख चुके हैं।

लक्षण—फूट कर निकलनेवाले रोगों में से शीतला आदि रोगों में प्रथम तो यह विशेषता है कि ये रोग प्रायः बच्चों के ही होते हैं परन्तु कभी २ ये रोग किसी २ बड़ी अवस्थावाले के भी होते हुए देखे जाते हैं, इन में दूसरी विशेषता यह है कि—जिस के शरीर में ये रोग एक बार हो जाते हैं उस के फिर ये रोग प्रायः नहीं होते हैं, इन में तीसरी विशेषता यह है कि—जिस बच्चे के शीतला का चेप लगा दिया गया हो अर्थात् शीतला खुदवा डाली हो (टीका लगवा दिया हो) उस को प्रायः यह रोग फिर नहीं होता है, यदि किसी २ के होता भी है तो थोड़ा अर्थात् बहुत नरम (मन्द) होता है

१—तात्पर्य यह है कि जब रोग के कारण का पूरा असर शरीर पर हो जाता है तब ही रोग उत्पन्न हो जाता है ॥

२—अर्थात् स्पर्श से अथवा हवा के द्वारा उड़ कर लगनेवाला है ॥

३—तात्पर्य यह है कि—प्रत्येक कार्य के लिये देश काल और प्रकृति आदि के सम्बन्ध से अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, इस लिये जिन लोगों का शरीर उक्त रोगों के कारणों का आश्रयणीय (आश्रय लेने योग्य) होता है उन के शरीर में चेपी रोग प्रकट हो जाता है तथा जिन का शरीर उक्त सम्बंध से रोगों के कारणों का आश्रयणीय नहीं होता है उन के शरीर में चेपी रोग के परमाणुओं का असर नहीं होता है ॥

किन्तु शीतला न खुदाये हुए बच्चों में से इस रोग से सौ में से प्रायः चालीस मरते हैं और शीतला को खुदाये हुए बच्चों में से प्रायः सौ में से छः ही मरते हैं[1] ।

इस प्रकार का विष शरीर में प्रविष्ट (दाखिल) होने के पीछे पूरा असर कर लेने पर प्रथम ज्वर के रूप में दिखलाई देता है और पीछे शरीर पर दाने फूट कर निकलते हैं, यही उस के होने का निश्चय करानेवाला चिह्न है ॥

शील, शीतला वा माता (स्मालपाक्स) का वर्णन ॥

भेद (प्रकार)—शीतला दो प्रकार की होती है—उन में से एक प्रकार की शीतला में तो दाने थोड़े और दूर २ निकलते हैं तथा दूसरे प्रकार की शीतला में दाने बहुत होते हैं तथा समीप २ (पास २) होते हैं अर्थात् दूसरे प्रकार की शीतला सब शरीर पर फूट कर निकलती है, इस में दाने इस प्रकार आपस में मिल जाते हैं कि—तिल भर भी (ज़रा भी) जगह खाली नहीं रहती है, यह दूसरे प्रकार की शीतला बहुत कष्टदायक और भयङ्कर होती है ।

१—यह रोग विलायत में भी पहिले बहुत होता था, डाक्टर मूर साहब लिखते हैं कि—लण्डन में जहां टीका के प्रचलित होने के पहिले प्रत्येक दश मृत्यु में एक मृत्यु शीतला के कारण होती थी वहां अब प्रत्येक पचासी मृत्यु में केवल एक ही शीतला से होती है, पन्द्रह वर्ष तक लण्डन के शीतलाअस्पताल में सौ शीतला के रोगियों में से पैंतीस मनुष्यों के लगभग मरते थे परन्तु जब से टीका की चाल निकाली गई है तब से दो सौ मनुष्यों में से जिन्हों ने टीका लगवाया था केवल एक ही मरा। जिन जातियों में टीका के लगाने का प्रचार नहीं है बहुधा एक हज़ार में से आठ सौ मनुष्यों के शीतला निकलती है परन्तु उन में जो टीका लगवाते हैं एक हज़ार में से केवल छःहीके शीतला निकलती है ॥

डाक्टर टामसन साहब लिखते हैं कि—हम ने स्काटलैंड में सन् १८१८ ई० से दिसम्बर सन् १८१९ तक ५०६ शीतला के रोगियों की दवा की, जिन में से २५० ने टीका नहीं लगवाया था उन में से ५० मरे, इकहत्तर को जिन्हों ने टीका लगवाया था फिर शीतला निकली और इन में से केवल तीन ही मरे, लगभग ३०० मनुष्यों में से जिन्हों ने दूसरी वार टीका लगवाया था एक ही मरा, सन् १८२८ ई० में फ्रांस के मारसेल्स नगर में महामारी फैली, उस समय उस नगर में ४०,००० (चालीस हज़ार) मनुष्य बसते थे, जिन में से ३०,००० (तीस हज़ार) के टीका लगा हुआ था २,००० (दो हज़ार) के अच्छी तरह से टीका नहीं लगा था और ८,००० (आठ हज़ार) ने टीका नहीं लगवाया था, तीस हज़ार टीका लगे हुए मनुष्यों में से दो हज़ार के शीतला निकली और उन में से केवल बीस मरे, इस लेख से पाठक गण टीका लगाने के लाभ को भले प्रकार से समझ गये होंगे, तात्पर्य यह है कि—सम्पूर्ण प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि टीका लगाना मनुष्य को शीतला से बचाता है और यदि उसे रोक नहीं देता तो उस की प्रबलता को अवश्य ही कम कर देता है, इतने पर भी भारतनिवासी जन मनुष्यजाति के क्रूर रोग के निवारण के उपायरूप टीका लगाने की प्रथा को स्वीकार न करें तो इस से अधिक क्या शोक की बात हो सकती है ? बड़े खेद का विषय है कि—जिन उपायों से सदैव प्राणरक्षा की संभावना होती है और जिन को सुप्रतिष्ठित डाक्टरों ने परीक्षा करके लाभकारी ठहराया है मनुष्य अपनी मूर्खता के कारण उन उपायों का भी तिरस्कार करते हैं ॥

लक्षण—शरीर में शीतला के विष का प्रवेश होने के पीछे बारह वा चौदह दिन में शीतला का ज्वर साधारण ज्वर के समान आता है अर्थात् साधारण ज्वर के समान इस ज्वर में भी ठंढ का लगना, गर्मी, शिर में दर्द, पीठ में दर्द तथा वमन (उलटी) का होना आदि लक्षण दीख पड़ते हैं, हां इस में इतनी विशेषता होती है कि—इस ज्वर में गले में शोथ (सूजन), थूक की अधिकता (ज्यादती), आंखों के पलकों पर शोथ का होना और श्वास में दुर्गन्धि (बदबू) का आना आदि लक्षण भी देखे जाते हैं ॥

कभी २ यह भी होता है कि—किशोर अवस्थावाले बालकों को शीतला के ज्वर के प्रारम्भ होते ही तन्द्रा (मींट वा ऊँघ) आती है और छोटे बच्चों के खैंचातान (श्वास में रुकावट) तथा हिचकियां होती हैं ।

ज्वर चढ़ने के पीछे तीसरे दिन पहिले मुँह तथा गर्दन में दाने निकलते हैं, पीछे-शिर, कपाल (मस्तक) और छाती में निकलते हैं, इस प्रकार क्रम से नीचे को जाकर आखिरकार पैरों पर दिखलाई देते हैं, यद्यपि दानों के दीखने के पहिले यह निश्चय नहीं होता है कि यह ज्वर शीतला का है अथवा सादा (साधारण) है परन्तु अनुभव तथा त्वचा (चमड़ी) का विशेष रंग शीघ्र ही इस का निश्चय करा देता है ।

जब शीतला के दाने बाहर दिखलाई देने लगते हैं तब ज्वर नरम (मन्द) पड़ जाता है परन्तु जब दाने पक कर भराव खाते हैं (भरने लगते हैं) तब फिर भी ज्वर वेग को धारण करता है, अनुमान दशवें दिन दाना फूट जाता है और खरूंट जमना शुरू हो जाता है, प्रायः चौदहवें दिन वह कुछ परिपक्क हो जाता है अर्थात् दानों के लाल चट्ठे हो जाते हैं, पीछे कुछ समय बीतने पर वे भी अदृश्य हो जाते हैं (दिखलाई नहीं देते हैं) परन्तु जब शीतला का शरीर में अधिक प्रकोप और वेग हो जाता है तब उस के दाने भीतर की परिपक्क (पकी हुई) चमड़ी में घुस जाते हैं तथा उन दानों के चिह्न मिटते नहीं हैं अर्थात् खड्डे रह जाते हैं, इस के सिवाय- इस के कठिन उपद्रव में यदि यथोचित चिकित्सा न होवे तो रोगी की आँख और कान इन्द्रिय भी जाती रहती है ।

चिकित्सा—टीका का लगवा लेना, यह शीतला की सर्वोपरि चिकित्सा है अर्थात् इस के समान वर्त्तमान में इस की दूसरी चिकित्सा संसार में नहीं है, सत्य तो यह है कि—टीका लगाने की युक्ति को निकालने वाले इंगलेंड देश के प्रसिद्ध डाक्टर जेनर साहब के तथा इस देश में उस का प्रचार करने वाली श्रीमती बृटिश गवर्नमेंट के इस परम उपकार से एतद्देशीय जन तथा उन के बालक सदा के लिये आभारी हैं अर्थात् उन के इस परम उपकार का बदला नहीं दिया जा सकता है[1], इस बात को प्रायः सब ही

१-क्योंकि संसार में जीवदान के समान कोई दान नहीं है, अत एव इस से बढ़ कर कोई भी परम उपकार नहीं है ॥

जानते हैं कि—जब से उक्त डाक्टर साहब ने खोज करके पीप (रेसा) निकाला है तब से लाखों बच्चे इस भयंकर रोग की पीड़ा से मुक्ति पाने और मृत्यु से बचने लगे हैं, इस उपकार की जितनी प्रशंसा की जावे वह थोड़ी है ।

इस से पूर्व इस देश में प्रायः इस रोग के होने पर अविद्यादेवी के उपासकों ने केवल इस की यही चिकित्सा जारी कर रक्खी थी कि-शीतलादेवी की पूजा करते थे जो कि अभी तक शीतलासप्तमी (शील सातम) के नाम से जारी है[१] ।

इस (शीतला रोग) के विषय में इस पवित्र आर्यावर्त्त के लोगों में और विशेष कर स्त्री जाति में ऐसा भ्रम (वहम) घुस गया है कि—यह रोग किसी देवी के कोप से प्रकट होता है[२], इस लिये इस रोग की दवा करने से वह देवी क्रुद्ध हो जाती है इस लिये इस की कोई भी दवा नहीं करनी चाहिये, यदि दवा की भी जावे तो लौंग सोंठ और किसमिस आदि साधारण वस्तुओं को कुल्हिये (कुल्हड़ी) में छौंक कर देना चाहिये और उन्हें भी देवी के नाम की आस्था (श्रद्धा) रख कर देना चाहिये[३] इत्यादि, ऐसे व्यर्थ और मिथ्या भ्रम (वहम) के कारण इस रोग की दवा न करने से हज़ारों बच्चे इस रोग से दुःख पाकर तथा सड़ २ कर मरते थे[४] ।

यद्यपि यह मिथ्याभ्रम अब कहीं २ से नष्ट हुआ है तथापि बहुत से स्थानों में यह अब तक भी अपना निवास किये हुए है, इस का कारण केवल यही है कि वर्त्तमान समय में हमारे देश की स्त्री जाति में अविद्यान्धकार (अज्ञानरूपी अँधेरा) अधिक प्रसरित हो रहा है (फैल रहा है[५]), ऐसे समय में स्वार्थी और पाखण्डी जनों ने स्त्रियों को बहका कर देवी के नाम से अपनी जीविका चला ली है[६], न केवल इतना ही किन्तु उन धूर्तों नें अपने जाल में फँसाये रखने के हेतु कुछ समय से शीतलाष्टक आदि भी बना डाले हैं, इस लिये उन धूर्तों के कपट का परिणाम यहां की स्त्रियों में पूरे तौर से पड़ रहा है कि स्त्रियां अभी तक उस शीतला देवी की मानता किया करती हैं, बड़े अफसो-

---

१-अर्थात् पूर्व समय में (टीका लगाने की रीति के प्रचरित होने से पूर्व) इस रोग की कोई चिकित्सा नहीं करते थे, सिर्फ शीतला देवी का पूजन और आराधन करते थे तथा उसी का आश्रय लेकर बैठे रहते थे कि शीतला माता अच्छा कर देगी, उस का परिणाम तो जो कुछ होता था वह सब ही को विदित है, अतः उस के लिखने की विशेष आवश्यकता नहीं है ॥

२-यदि ऐसा न होता तो अन्य उपयोगी चिकित्साओं को छोड़ कर क्यों शीतला माता का आश्रय लिये बैठे रहते ॥

३-क्योंकि उन को यह भी भ्रम है कि-देवी के नाम की आस्था न रख कर दी हुई साधारण वस्तु भी कुछ लाभ नहीं कर सकती है और ऐसा करने से भी देवी अधिक क्रुद्ध हो जावेगी इत्यादि ॥

४-यह बात सब को विदित ही होगी अथवा रिपोर्टों से विदित हो सकती है ॥

५-यद्यपि पुरुषों के विचार अब कुछ पलट गये हैं तथा पलटते (बदलते) जाते हैं परन्तु स्त्रियां अब भी पुरुषों के निषेध करने पर भी नहीं मानती हैं अर्थात् इस कार्य को नहीं छोड़ती हैं ॥

६-क्योंकि उन (धूर्तों) को मौका मिलगया है ॥

सका स्थान है कि—हमारे देशवासी जन डाक्टर जेनर साहब की इस विषय की जांच का शुभकारी प्रत्यक्ष फल देख कर भी अपने भ्रम (वहम) को दूर नहीं करते हैं और न अपनी स्त्रियों को समझाते हैं यह केवल अविद्या देवी के उपासकपन का चिह्न नहीं तो और क्या है ?

हे आर्यमहिलाओ ! अपने हिताहित का विचार करो और इस वात का हृदय में निश्चय कर लो कि—यह रोग देवी के कोप का नहीं हैं अर्थात् झूठे वहम को विलकुल छोड़ दो, देखो ! इस वात को तुम भी जानती और मानती हो कि अपने पुरुषा जन (वड़ेरे लोग) इस रोग का नाम माता कहते चले आये हैं सो यह वहुत ही ठीक है परन्तु तुम ने इस के असली तत्त्व का अव तक विचार नहीं किया कि पुरुषा जन इस रोग को माता क्यों कहते हैं, असली तत्त्व के न विचार ने से ही धूर्त और स्वार्थी जनों ने तुम को धोखा दिया है अर्थात् माता शब्द से शीतला देवीका ग्रहण करा के उस के पुजवाने के द्वारा अपने स्वार्थ की सिद्धि की है, परन्तु अव तुम माता शब्द के असली तत्त्व को विद्वानों के किये हुए निर्णय के द्वारा सोचो और अपने मिथ्या भ्रम को शीघ्र ही दूर करो, देखो ! पश्चिमीय विद्वानों ने यह निश्चय किया है कि—गर्भ रहने के पश्चात् स्त्रियों का ऋतुधर्म वन्द हो जाता है तव वह रक्त (खून) परिपक्व होकर स्तनों में दूधरूप में प्रकट होता है, उस दूध को वालक जन्मते ही (पैदा होते ही) पीता है, इस लिये दूध की वही गर्मी कारण पाकर फूट कर निकलती है, क्योंकि यह शारीरिक (शरीरसम्बंधी) नियम है कि—ऋतुधर्म के आने से स्त्री के पेट की गर्मी वहुत छँट जाती है[1] (कम हो जाती है) और ऋतुधर्म के रुकने से वह गर्मी अत्यन्त वढ़ जाती है, वही मातृसम्वन्धिनी (माता की) गर्मी फूट कर निकलती है अर्थात् शीतला रोग के रूप में प्रकट होती है, इसी लिये वृद्ध जनों ने इस रोग का नाम माता रक्खा है[2] ।

वस इस रोग का कारण तो मातृसम्वन्धिनी गर्मी थी परन्तु स्वार्थ को सिद्ध करने वाले धूर्त्तजनों ने अविद्यान्धकार (अज्ञान रूपी अँधेरे) में फँसे हुए लोगों को तथा विशेष कर स्त्रियों को इस माता शब्द का अर्थ उलटा समझा दिया है अर्थात् देवी ठहरा दिया है, इस लिये हे परम मित्रो ! अव प्रत्यक्ष फल को देख कर तो इस असत्य भ्रम (वहम) को जड़ मूल से निकाल डालो, देखो ! इस वात को तो प्रायः तुम स्वयं

१—केवल यही कारण है कि ऋतुधर्म के समय अत्यन्त मलीनता (मैलापन) और गर्मी होने के सवव से ही मैथुन का करना निषिद्ध (मना) है, अर्थात् उस समय मैथुन करने से गर्मी, सुज़ाख़, शिर में दर्द, कान्ति (तेज वा शोभा) की हीनता (कमी) तथा नपुंसकत्व (नपुंसकपन) आदि रोग हो जाते हैं ॥

२—अर्थात् माता के सम्वन्ध से प्राप्त होने के कारण इस रोग का भी नाम माता रक्खा गया है परन्तु मूर्खजन और अज्ञान महिलायें इसे शीतला माता की प्रसादी समझती हैं ॥

(खुद) ही जानते होगे कि— शीतला देवी के नाम से जो शीतला सप्तमी (शील सातम) के दिन ठंढा (वासा अन्न) खाया जाता है उस से कितनी हानि पहुँचती है[१], अब अन्त में पुनः यही कथन है कि—मिथ्या विश्वास[२] को दूर कर अर्थात् इस रोग के समय में शीतला देवी के कोप का विचार छोड़ कर उस की वैद्यक शास्त्रानुसार नीचे लिखी हुई चिकित्सा करो जिस से तुम्हारा और तुम्हारे सन्तानों का सदा कल्याण हो।

१–नींव की भीतरी छाल, पित्तपापड़ा, काली पाट, पटोल, चन्दन, रक्त (लाल) चन्दन, खश, वाला, कुटकी, आँवला, अडूसा और लाल धमासा, इन सब औषधों को समान भाग लेकर तथा पीस कर उस में मिश्री मिला कर उस का पानी बना कर रखना चाहिये तथा उस में से थोड़ा २ पिलाना चाहिये, इस से दाह और ज्वर आदि शान्त हो जाता है तथा मसूरिका मिट जाती है।

२–मजीठ, बड़ (बर्गद) की छाल, पीपर की छाल, सिरस की छाल और गूलर की छाल, इन सब को पीसकर दानों पर लेप करना चाहिये।

३–यदि दाने वाहर निकल कर फिर भीतर घुसते हुए मालूम दें तो कचनार के वृक्ष की छाल का क्वाथ कर तथा उस में सोनामुखी (सनाय) का थोड़ा सा चूर्ण मिला-कर पिलाना चाहिये, इस के पिलाने से दाने फिर वाहर आ जाते हैं।

४–यदि मुँह में तथा गले में व्रण हों वा चाँदी हो तो आँवला तथा मौलेटी का क्वाथ कर उस में शहद डालकर कुरले कराने चाहियें।

५–थेगी नामक दानों को तथा मौलेठी को पीस कर उन का पानी कर आँखों पर सींचना चाहिये[३], इस के सींचने से आँखों का बचाव होता है[४]।

६–मौलेठी, त्रिफला[५], पीलूड़ी, दारुहलदी, कमल, वाला, लोध तथा मजीठ, इन औषधों को पीस कर इन का आँखों पर लेप करने से वा इन के पानी की बूँदों को आँख में

१–जिस का कुछ वर्णन पहिले कर चुके हैं ॥

२–तुम्हारा यह मिथ्या विश्वास है इस वात को हम ऊपर दिखला ही चुके हैं और तुम अब इस बात को समझ भी सकते हो कि तुम्हारा वास्तव में मिथ्या विश्वास है वा नहीं? देखो! जब एक कार्य का कारण ठीक रीति से निश्चय कर लिया गया तथा कारण की निवृत्ति के द्वारा विद्वानों ने कार्य की निवृत्ति भी प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सहस्रों उदाहरणों से सर्वसाधारण को प्रत्यक्ष दिखला दी, फिर उस को न मानकर अपने हृदय में उन्मत्त के समान मिथ्या ही कल्पना को बनाये रखना मिथ्या विश्वास नहीं तो और क्या है? परन्तु कहावत प्रसिद्ध है कि–"सुबह का भूला हुआ शाम को भी घर आ जावे तो वह भूला नहीं कहा जाता है" बस इस कथन के अनुसार अब इस विद्या के प्रकाश के समय में अपने मिथ्या विश्वास को दूर कर दो, जिस से तुम्हारा और तुम्हारे भावी सन्तानों का सदा कल्याण होवे ॥

३–अर्थात् उस पानी के छींटे आँखों पर लगाने चाहियें ॥

४–अर्थात् आँखों में किसी तरह की खरावी नहीं उत्पन्न होने पाती है ॥

५–त्रिफला अर्थात् हरड़ बहेड़ा और आँवला ॥

डालने से आँखों के व्रण मिट जाते हैं और कुछ भी तकलीफ नहीं होती है, अथवा गूँदी (गोंदनी) की छाल को पीस कर उस का आँख पर मोटा लेप करने से आँख को फायदा होता है।

७–जब दाने फूट कर तथा किचकिचा कर उन में से पीप वा दुर्गन्धि निकलती है तब मारवाड़ देश में पञ्चवल्कल[1] का कपड़छान चूर्ण कर दवाते हैं अथवा कायफल का चूर्ण दवाते हैं, सो वास्तव में यह चूर्ण उस समय लाभ पहुँचाता है, इस के सिवाय—रसी को धो डालने के लिये भी पञ्चवल्कल का उकाला हुआ पानी अच्छा होता है।

८–कारेली के पत्तों का क्वाथ कर तथा उस में हलदी का चूर्ण डाल कर उसे पिलाने से चमड़ी में घुसे हुए (भीतरी) व्रण मिट जाते हैं तथा ज्वर के दाह की भी शान्ति हो जाती है।

९–यदि इस रोग में दस्त होते हों तो उन के वंद करने की दवा देनी चाहिये तथा यदि दस्त का होना वन्द हो तो हलका सा जुलाव देना चाहिये[2]।

१०–जब फफोले फूट कर खरूँट[3] आ जावें तथा उन में खाज (खुजली) आती हो तब उन्हें नख से नहीं कुचरने देना चाहिये[4] किन्तु उन पर मलाई चुपड़नी चाहिये, अथवा केरन आइल और कार वोलिक आइल को लगाना चाहिये, जब फफोले फूट कर मुर्झाने लगें तब उन पर चावलों का आटा अथवा सफेदा भुरकाना चाहिये, ऐसा करने से चट्टे (चकत्ते) और दाग नहीं पड़ते हैं।

विशेष सूचना—यह रोग चेपी है इस लिये इस रोग से युक्त पुरुष से घर के आदमियों को दूर रहना चाहिये अर्थात् रोगी के पास जिसका रहना अत्यावश्यक (वहुत ज़रूरी) ही है उस के सिवाय दूसरे आदमियों को रोगी के पास नहीं जाना चाहिये, क्योंकि प्रायः यह देखा गया है कि रोगी के पास रहनेवाले मनुष्यों के द्वारा यह चेपी रोग फैलने लगता है अर्थात् जिन के यह शीतला का रोग नहीं हुआ है उन वच्चों के भी यह रोग रोगी के पास रहनेवाले जनों के स्पर्श से अथवा गन्ध से हो जाता है।

१–वड़ (वरगद), गूलर, पीपल, पारिस पीपल और पाखर (प्लक्ष), ये पांच क्षीरी वृक्ष अर्थात् दूधवाले वृक्ष हैं, इन पांचों की छाल (वक्कल) को पञ्चवल्कल कहते हैं॥

२–हलका सा जुलाव देने का प्रयोजन यह है कि उक्त रोग के कारण रोगी को निर्वलता (कमजोरी) हो जाती है इस लिये यदि उस में तीक्ष्ण (तेज) जुलाव दिया जावेगा तो रोगी उस का सहन नहीं कर सकेगा और निर्वलता भी अधिक दस्तों के होने से विशेष वढ़ जावेगी॥

३–इन को पूर्वीय (पूर्व के) देशों में खुंट कहते हैं अर्थात् व्रण के ऊपर जमी हुई पपड़ी॥

४–क्योंकि नख (नाखून) से कुचरने (खुजलाने) से फिर व्रण (घाव) हो जाता है तथा नख के विष का प्रवेश होने से उस में और भी खरावी होने की सम्भावना रहती है॥

इस रोग में जो यह प्रथा देखी जाती है कि—शील और ओरी आदिवाले रोगी को पड़दे में रखते हैं तथा दूसरे आदमियों को उस के पास नहीं जाने देते हैं, सो यह प्रथा तो प्रायः उत्तम ही है परन्तु इस के असली तत्त्व को न समझ कर लोग भ्रम (वहम) के मार्ग में चलने लगे हैं, देखो! रोगी को पड़दे में रखने तथा उस के पास दूसरे जनों को न जाने देने का कारण तो केवल यही है कि—यह रोग चेपी है, परन्तु भ्रम में पड़े हुए जन उस का तात्पर्य यह समझते हैं कि—रोगी के पास दूसरे जनों के जाने से शीतला देवी क्रुद्ध हो जावेगी इत्यादि, यह केवल उन की मूर्खता और अज्ञानता ही है[1] ।

रोगी के सोने के स्थान में स्वच्छता (सफाई) रखनी चाहिये, वहां साफ हवा को आने देना चाहिये[2], अगरवत्ती आदि जलानी चाहिये वा धूप आदिके द्वारा उस स्थान को सुगन्धित रखना चाहिये कि जिस से उस स्थान की हवा न विगड़ने पावे[3] ।

रोगी के अच्छे होने के बाद उस के कपड़े और विछौने आदि जला देने चाहियें अथवा धुलवा कर साफ होने के बाद उन में गन्धक का धुँआ देना चाहिये[4] ।

खुराक—शीतला रोग से युक्त बच्चे को तथा बड़े आदमी को खान पान में दूध, चावल, दलिया, रोटी, बूरा डाल कर बनाई हुई रावड़ी, मूंग तथा अरहर (तूर) की दाल, दाख, मीठी नारंगी तथा अञ्जीर आदि मीठे और ठंढे पदार्थ प्रायः देने चाहियें, परन्तु यदि रोगी के कफ का ज़ोर हो गया हो तो मीठे पदार्थ तथा फल नहीं देने चाहियें[5], उसे कोई भी गर्म वस्तु खाने को नहीं देनी चाहिये ।

रोग की पहिली अवस्था में तथा दूसरी स्थिति में केवल दूध भात ही देना अच्छा है, तीसरी स्थिति में केवल (अकेला) दूध ही अच्छा है, पीने के लिये ठंढा पानी अथवा बर्फ का पानी देना चाहिये ।

रोग के मिटने के पीछे रोगी अशक्त (नाताकत) हो गया हो तो जब तक ताक़त

१–इस विषय में पहिले कुछ कथन कर ही चुके हैं जिस से पाठकों को विदित हो ही गया होगा कि वास्तव में यह उन लोगों की मूर्खता और अज्ञानता ही है ॥

२–अर्थात् बाहर से आती हुई हवा की रुकावट नहीं होनी चाहिये ॥

३–क्योंकि हवा के विगडने से दूसरे रोगों के उठ खडे होने (उत्पन्न हो जाने) की सम्भावना रहती है ॥

४–क्योंकि रोगी के कपड़े और विछौने में उक्त रोग के परमाणु प्रविष्ट रहते हैं यदि उन को जलाया न जावे अथवा साफ तौर से विना धुलाये ही काम में लाया जावे तो वे परमाणु दूसरे मनुष्यों के शरीर में प्रविष्ट हो कर रोग को उत्पन्न कर देते हैं ॥

५–क्योंकि मीठे पदार्थ और फल कफ की और भी वृद्धि कर देते हैं, जिस से रोगी के कफविकार के उत्पन्न हो जाने की आशङ्का रहती है ॥

न आ जावे तव तक उसे धूप, गर्मी, वरसात तथा ठंढ में नहीं जाने देना चाहिये तथा उसे थोड़ा और पथ्य आहार देना चाहिये तथा रोग के मिटने के पीछे भी वहुत दिनों तक ठंढे इलाज तथा ठंढे खान पान[1] देते रहना चाहिये।

रोगी को जो दवा के पदार्थ दिये जाते हैं उन के ऊपर खुराक में दूध के देने से वे वहुत फायदा करते हैं॥

[2]ओरी (माझल्स) का वर्णन॥

लक्षण—यह रोग प्रायः वच्चों के होता है तथा यह (ओरी) एक वार निकलने के वाद फिर नहीं निकलती है, शरीर में इस के विष के प्रविष्ट (दाखिल) होने के वाद यह दश वा पन्द्रह दिन के भीतर प्रकट होती है[3] तथा कफ[4] से इस का प्रारंभ होता है अर्थात् आँख और नाक झरने लगते हैं।

इस में—कफ, छींक, ज्वर, प्यास और वेचैनी होती है, आवाज़ गहरी[5] हो जाती है, गला आ जाता है[6], श्वास जल्दी चलता है, ज्वर सख्त आता है, शिर में दर्द वहुत होता है, दस्त वहुत होते हैं, वफारा वहुत होता है।

इस ज्वर में चमड़ी का रंग दूसरी तरह का ही वन जाता है[7], ज्वर आदि चिह्नों के दीखने के वाद तीन चार दिन पीछे ओरी दिखाई देती है, इस का फुनसी के समान छोटा और गोल दाना होता है, पहिले ललाट (मस्तक) तथा मुख पर दाना निकलता है और पीछे सव शरीर पर फैलता है।

जिस प्रकार शीतला में दानों के दिखाई देने के पीछे ज्वर मन्द पड़ जाता है उस प्रकार इस में नहीं होता है[8] तथा शीतला के समान दाने के परिमाण के अनुसार इस में ज्वर का वेग भी नहीं होता है[9], ओरी सातवें दिन मुरझाने लगती है, ज्वर कम हो जाता है, चमड़ी की ऊपर की खोल उतर कर खाज (खुजली) वहुत चलती है।

१—जैसे गुलकन्द आदि पदार्थ॥

२—यह भी शीतला रोग का ही एक भेद है अर्थात् शीतला सात प्रकार की मानी गई है उन्हीं सात प्रकारों में से एक यह प्रकार है॥

३—क्योंकि विष शरीर में प्रविष्ट होकर दश वा पन्द्रह दिन में अपना असर शरीर पर कर देता है तव ही इस रोग का प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) होता है॥

४—कफ से अर्थात् प्रतिश्याय (सरेकमा वा जुखाम) से इस का प्रारम्भ होता है, तात्पर्य यह है कि-इस के उत्पन्न होने के पूर्व प्रतिश्याय होता है अर्थात् नाक और आँख में से पानी झरने लगता है॥

५—गहरी अर्थात् गम्भीर वा भारी॥

६—गला आ जाता है अर्थात् गला कुछ पक सा जाता है तथा उस में छाले से पड़ जाते हैं॥

७—अर्थात् चमड़ी का रंग पलट जाता है॥

८—अर्थात् इस में दानों के दिखाई देने के पीछे भी ज्वर मन्द नहीं पड़ता है॥

९—अर्थात् शीतला में तो जैसे अधिक परिमाण के दाने होते हैं वैसा ही ज्वर का वेग अधिक होता है परन्तु इस में वह वात नहीं होती है॥

यह रोग यद्यपि शीतला के समान भयंकर नहीं है तो भी इस रोग में प्रायः अनेक समयों में छोटे बच्चों को हांफनी तथा फेफसे का वरम (शोथ) हो जाता है, उस दशामें यह रोग भी भयंकर हो जाता है अर्थात् उस समय में तन्द्रादि सन्निपात हो जाता है, ऐसे समय में इस का खूब सावधानी से इलाज करना चाहिये, नहीं तो पूरी हानि पहुँचती है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि—सख्त ओरी के दाने कुछ गहरे जामुनी रंग के होते हैं।

चिकित्सा—इस रोग में चिकित्सा प्रायः शीतला के अनुसार ही करनी चाहिये, क्योंकि इस की मुख्यतया चिकित्सा कुछ भी नहीं है, हां इस में भी यह अवश्य होना चाहिये कि रोगी को हवा में तथा ठंढ में नहीं रखना चाहिये[1]।

खुराक—भात दाल और दलिया आदि हलकी खुराक देनी चाहिये तथा दाख और धनिये को भिगा कर उस का पानी पिलाना चाहिये[2]।

इस रोगी को मासे भर सोंठ को जल में रगड़ कर (घिस कर) सात दिन तक दोनों समय (प्रातः काल और सायंकाल) विना गर्म किये हुए ही पिलाना चाहिये ॥

अछपड़ा[3] (चीनक पाक्स) का वर्णन ॥

यह रोग छोटे बच्चों के होता है तथा यह बहुत साधारण रोग है, इस रोग में एक दिन कुछ २ ज्वर आकर दूसरे दिन छाती पीठ तथा कन्धे पर छोटे २ लाल २ दाने उत्पन्न होते हैं, दिन भर में अनुमान दो २ दाने बड़े हो जाते हैं तथा उन में पानी भर जाता है, इस लिये वे दाने मोती के दाने के समान हो जाते हैं तथा ये दाने भी लगभग शीतला के दानों के समान होते हैं परन्तु बहुत थोड़े और दूर २ होते हैं।

इस रोग में ज्वर थोड़ा होता है तथा दानों में पीप नहीं होता है इस लिये इस में कुछ डर नहीं है, इस रोग की साधारणता प्रायः यहां तक है कि—कभी २ इस रोग के दाने बच्चों के खेलते २ ही मिट जाते[4] हैं, इस लिये इस रोग में चिकित्सा की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ॥

१–क्योंकि रोगी को हवा अथवा ठंढ में रखने से शरीर के जकड़ने की और सन्धियों में पीड़ा उत्पन्न होने की आशंका रहती है ॥

२–दाख और धनिये को भिगा कर उस का पानी पिलाने से अग्नि का दीपन, भोजन का पाचन तथा अन्न पर इच्छा होती है ॥

३–वास्तव में यह भी शीतला का ही एक भेद है ॥

४–पहिले कह चुके हैं कि–शीतला सात प्रकार की होती है उन में से कोई तो ऐसी होती है कि विना यत्न के भी अच्छी हो जाती है (जैसे यही अछपड़ा), कोई ऐसी होती है कि–कुछ कष्ट से दूर होती है तथा कोई ऐसी भी होती है कि यत्न करने पर भी नहीं जाती है ॥

रक्तवायु वा विसर्प (इरीसी पेलास) का वर्णन ॥

भेद (प्रकार)—देशी वैद्यक शास्त्र के अनुसार भिन्न २ दोष के तथा मिश्रित (संयुक्त) दोष के सम्बन्ध से विसर्प अर्थात् रक्तवायु उत्पन्न होता है तथा वह सात प्रकार का है[1], परन्तु उस के मुख्यतया दो ही भेद हैं[2]—दोषजन्य विसर्प और आगन्तुक विसर्प, इन में से विरुद्ध आहार से शरीर का दोष तथा रक्त (खून) विगड़कर जो विसर्प होता है उसे दोषजन्य विसर्प कहते हैं और क्षत (ज़खम), शस्त्र के विष अथवा विषैले जन्तु (जानवर) के नख (नाखून) तथा दाँत से उत्पन्न हुए क्षत (ज़खम) और ज़खम पर विसर्प के चेप के स्पर्श आदि कारणों से जो विसर्प होता है उसे आगन्तुक विसर्प कहते हैं ।

कारण—प्रकृतिविरुद्ध आहार[3], चेप, खराव विषैली हवा, ज़खम, मधुप्रमेह आदि रोग, विषैले जन्तु तथा उन के डंक का लगना इत्यादि अनेक कारण रक्तवायु के हैं ।

इन के सिवाय-जैनश्रावकाचार ग्रन्थ में तथा चरकऋषि के वनाये हुए चरक ग्रन्थ में लिखा है कि यह रोग विना ऋतु[4] के, विना जाँच किये[5] हुए तथा वहुत हरे शाकों के खाने का अभ्यास[6] रखने से भी हो जाता है ।

इन ऊपर कहे हुए कारणों में से किसी कारण से शरीर के रस तथा खून में विषैले जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं और शरीर में रक्तवायु फैल जाता है ।

लक्षण—वास्तव में रक्तवायु चमड़ी का वरम है और वह एक स्थान से दूसरे स्थान में फिरता और फैलता है, इसीलिये इस का नाम रक्तवायु रक्खा गया है[7], इस रोग में ज्वर आता है तथा चमड़ी लाल होकर सूज जाती है, हाथ लगाने से रक्तवायु के स्थान में गर्मी मालूम होती है और अन्दर चीस (चिनठा) चलती है[8] ।

१-वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज (त्रिदोषज), वातपित्तज, वातकफज तथा पित्तकफज, ये सात भेद हैं ॥

२-अर्थात् इन दो ही भेदों में सव भेदों का समावेश हो जाता है ॥

३-प्रकृतिविरुद्ध आहार अर्थात् प्रकृति को अनुकूल न आनेवाले खारी, खट्टे, कड़ुए और गर्म पदार्थ आदि॥

४-वहुत से वृक्षों में विना ऋतु के भी फल आ जाते हैं, (यह पाठकों ने प्रायः देखा भी होगा), उन के खाने से भी यह रोग हो जाता है ॥

५-वहुत से जंगली फल विषैले होते हैं अथवा विषैले जन्तुओं से युक्त होते हैं, उन्हें भी नहीं खाना चाहिये ॥

६-वैसे तो वनस्पति का आहार लाभदायक ही है परन्तु उस के खाने का अधिक अभ्यास नहीं रखना चाहिये ॥

७-इसी लिये इसे विसर्प भी कहते हैं ॥

८-यह भी स्मरण रखना चाहिये कि दोषों के अनुसार इस रोग में भिन्न २ लक्षण होते हैं ॥

सब से प्रथम इस रोग में ठंढ से कम्पन, ज्वर का वेग, मन्दाग्नि और प्यास, ये लक्षण होते हैं, रोगी के लाल मूत्र उतरता है, नाड़ी जल्दी चलती है तथा कभी २ रोगी के वमन (उलटी) और भ्रम भी हो जाता है जिस से रोगी बकने लगता है, तोफान भी करता है[1], इन चिह्नों के होने के बाद दूसरे वा तीसरे दिन शरीर के किसी भाग में रक्तवायु दीखने लगता है तथा दाह और लाल शोथ (सूजन) भी हो जाती है।

आगन्तुक रक्तवायु कुलथी के दाने के समान होकर फफोलों से शुरू होता है तथा उस में काला खून, शोथ, ज्वर और दाह बहुत होता है, जब यह रोग ऊपर की चमड़ी में होता है तब तो ऊपरी चिकित्सा से ही थोड़े दिनों में शान्त हो जाता है, परन्तु जब उस का विष गहरा (चमड़ी के भीतर) चला जाता है तब यह रोग बड़ा भयंकर होता है अर्थात् वह पकता है, फफोला होकर फूटता है, शोथ बहुत होता है, पीड़ा बेहद होती है, रोगी की शक्ति कम हो जाती है, एक स्थान में अथवा अनेक स्थानों में मुँह करके (छेद करके) फूटता है तथा उस में से मांस के टुकड़े निकला करते हैं, भीतर का मांस सड़ने लगता है, इस प्रकार यह अन्त में हाड़ोंतक पहुँच जाता है उस समय में रोगी का बचना अतिकठिन हो जाता है और खासकर जब यह रोग गले में होता है तब अत्यन्त भयंकर होता है[2]।

चिकित्सा—१–इस रोग में शरीर में दाह न करनेवाला[3] जुलाब देना चाहिये[4] तथा वमन (उलटी), लेप और सींचने की चिकित्सा करनी चाहिये तथा यदि आवश्यकता समझी जावे तो जोंक लगानी चाहिये।

२–रतवेलिया, काला हंसराज, हेमकन्द, कबावचीनी, सोना गेरू, वाला और चन्दन आदि शीतल पदार्थों का लेप करने से रक्तवायु का दाह और शोथ शान्त हो जाता है।

३–चन्दन अथवा पद्मकाष्ठ, वाला तथा मौलेठी, इन औषधों को पीस कर अथवा उकाल कर ठंडा कर के उस पानी की धार देने से शान्ति होती है तथा फूटने के बाद भी इस जल से धोने से लाभ होता है।

४–चिरायता, अडूसा, कुटकी, पटोल, त्रिफला, रक्तचन्दन तथा नीम की भीतरी छाल, इन का क्वाथ बना कर पिलाना चाहिये, इस के पिलाने से ज्वर, वमन, दाह, शोथ, खुजली और विस्फोटक आदि सब उपद्रव मिट जाते हैं।

५–रक्तवायु की चिकित्सा किसी अच्छे कुशल (चतुर) वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये।

१–अर्थात् ठंढ से कम्पन आदि इस रोग के पूर्वरूप समझे जाते हैं ॥

२–ऐसे समय में इस की चिकित्सा अच्छे कुशल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये ॥

३–क्योंकि दाह करनेवाले जुलाब के देने से इस रोग की वृद्धि की आशंका होती है ॥

४–किन्हीं आचार्यों की यह भी सम्मति है कि–जिन विसर्पों में दाह न होता हो उन में जुलाब देना चाहिये किन्तु शेष (जिन में दाह होता हो उन) विसर्पों में जुलाब नहीं देना चाहिये ॥

विशेष सूचना—इस रोग से युक्त पुरुष को खुराक अच्छी देनी चाहिये, इस रोगी के लिये दूध अथवा दूध डाल कर पकाई हुई चावलों की कांजी उत्तम पथ्य है, रोगी के आसपास स्वच्छता (सफाई) रखनी चाहिये तथा रोगी का विशेष स्पर्श नहीं करना चाहिये, देखो! अस्पतालों में इस रोगी को दूसरे रोगी के पास डाक्टर लोग नहीं जाने देते हैं, उन का यह भी कथन है कि—डाक्टर के द्वारा इस रोग का चेप दूसरे रोगियों के तथा खास कर ज़खमवाले रोगियों के शरीर में प्रवेश कर जाता है, इस लिये ज़खमवाले आदमी को इस रोगी के पास कभी नहीं आना चाहिये और न डाक्टर को इस रोगी का स्पर्श कर के ज़खमवाले रोगी का स्पर्श करना चाहिये[1] ॥

यह चतुर्थअध्यायका ज्वरवर्णन नामक चौदहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

पन्द्रहवां प्रकरण—प्रकीर्णरोगवर्णन ॥

प्रकीर्णरोग[2] और उन से शारीरिक सम्बन्ध ॥

यह वात प्रायः सव ही को विदित है कि वर्त्तमान समय में इस देश में प्रत्येक गृह में कोई न कोई साधारण रोग प्रायः वना ही रहता है किन्तु यह कहना भी अयुक्त न होगा कि प्रत्येक गृहस्थ मनुष्य प्रक्षिप्त (फुटकर) रोगों में से किसी न किसी रोग में फँसा ही रहता है[3], इस का क्या कारण है, इस विषय को हम यहां ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं दिखलाना चाहते हैं, क्योंकि प्रथम हम इस विषय में संक्षेप से कुछ कथन कर चुके हैं तथा तत्त्वदर्शी वुद्धिमान् जन वर्तमान में प्रचरित अनेक रोगों के कारणों को जानते भी हैं क्योंकि अनेक वुद्धिमानों ने उक्त रोगों के कारणों को सर्व साधारण को प्रकट कर इन से वचाने का भी उद्योग किया है तथा करते जाते हैं।

हम यहां पर (इस प्रकरण में) उक्त रोगों में से कतिपय[4] रोगोंके विशेषकारण, लक्षण तथा शास्त्रसम्मत (वैद्यकशास्त्र की सम्मति से युक्त) चिकित्सा को केवल इसी प्रयोजन

१–क्योंकि यह रोग भी चेपी (स्पर्शादि के द्वारा लगनेवाला) है ॥

२–प्रकीर्ण रोग अर्थात् फुटकर रोग ॥

३–क्योंकि वर्त्तमान समय में लोगों को आरोग्यता के मुख्य हेतु देश और काल का विचार एवं प्रकृति के अनुकूल आहार विहार आदि का ज्ञान विलकुल ही नहीं है और न इस के विषय में उन की कोई चेष्टा ही है, वस फिर प्रत्येक गृह में रोग के होने में अथवा प्रत्येक गृहस्थ मनुष्य के रोगी होने में आश्चर्य ही क्या है ॥

४–कतिपय रोगों के अर्थात् जिन रोगों से गृहस्थों को प्रायः पीड़ित होना पड़ता है उन रोगों के कारण लक्षण तथा चिकित्सा को लिखते हैं ॥

से लिखते हैं कि-साधारण गृहस्थ जन सामान्य कारणों से उत्पन्न होनेवाले उक्त रोगों से उन के कारणों को जान कर बचे रहें तथा दैववश वा आत्मदोष से[1] यदि उक्त रोगो में से कोई रोग उत्पन्न हो जावे तो लक्षणों के द्वारा उसका निश्चय तथा चिकित्सा कर उस (रोग) से मुक्ति पासकें, क्योंकि-वर्तमान में यह बात प्रायः देखी जाती है कि-एक साधारण रोग के भी उत्पन्न हो जानेपर सर्व साधारण को वैद्य के अन्वेषण (ढूँढने) और विनय; द्रव्यव्यय; अपने कार्य का त्याग; समय का नाश तथा क्लेशसहन आदि के द्वारा अतिकष्ट उठाना पड़ता है[2] ।

इस प्रकरण में उन्हीं रोगों का वर्णन किया गया है जो कि वर्त्तमान में प्रायः प्रचरित हो रहे हैं तथा जिन से प्राणियों को अनेक कष्ट पहुँच रहे हैं, जैसे-अजीर्ण, अग्निमान्द्य[3] (अग्नि की मन्दता), शिर का दर्द, अतीसार, संग्रहणी, कृमि, उपदंश और प्रमेह आदि ।

इन के वर्णन में यह भी विशेषता की गई है कि-इन के कारण और लक्षणों को भली भाँति समझा कर चिकित्सा का वह उत्तम क्रम रक्खा गया है कि-जिसे समझ कर एक साधारण पुरुष भी लाभ उठा सकता है, इस पर भी ओषधियों के प्रयोग प्रायः वे लिखे गये हैं जो कि रोगोंपर अनेकवार लाभकारी सिद्ध हो चुके हैं ।

इस के सिवाय यथास्थल रोगविशेष पर अंग्रेजी प्रयोग भी दिखला दिये गये हैं, जो कि-अनेक विद्वान् डाक्टरों के द्वारा प्रायः लाभकारी सिद्ध हो चुके हैं ।

आशा है कि-सर्वसाधारण तथा गृहस्थ जन इस से अवश्य लाभ उठावेंगे ।

अब कारण लक्षण तथा चिकित्सा के क्रम से आवश्यक रोगों का वर्णन किया जाता है ॥

अजीर्ण (इंडाइजेश्चन) का वर्णन ॥

अजीर्ण का रोग यद्यपि एक बहुत साधारण रोग माना जाता है परन्तु विचार कर देखने से यह अच्छे प्रकार से विदित हो जाता है कि यह रोग कुछ समय के पश्चात् प्रबलरूप को धारण कर लेता है अर्थात् इस रोग से शरीर में अनेक दूसरे रोगों की जड़ स्थित (कायम) हो जाती है, इस लिये इस रोग को साधारण न समझकर इस पर पूरा लक्ष्य (ध्यान) देना चाहिये, तात्पर्य यह है कि-यदि शरीर में ज़रा भी अजीर्ण मालूम पड़े तो उस का शीघ्र ही इलाज करना चाहिये, देखो! इस बात को प्रायः सब ही समझ

१-दैववश अर्थात् पूर्वकृत अशुभ कर्मों के उदय से तथा आत्मदोष से अर्थात् रोग से बचानेवाले कारणों का विज्ञान होनेपर भी कभी न कभी भूल हो जाने से ॥

२-इस कष्ट को प्रायः वे ही जन ठीक तौर से जानते हैं जिन को इस कष्ट का अनुभव हो चुका है ॥

३-अजीर्ण और अग्निमान्द्य, ये दो रोग तो प्रायः वर्त्तमान में मनुष्यों को अत्यन्त ही कष्ट पहुँचा रहे हैं और विचार कर देखा जावे तो ये ही दोनों रोग सब रोगों के मूलकारण हैं, अर्थात् इन्हीं दोनों से सब रोग उत्पन्न होते हैं ॥

सकते हैं कि शरीर का बन्धेज (बन्धान) खुराक पर निर्भर है परन्तु वह खुराक ही जब अच्छे प्रकार से नहीं पचती है तब वह (खुराक) शरीर को दृढ़ करने के बदले उलटा शिथिल (ढीला) कर देती है, तथा खुराक के ठीक तौर से न पचने का कारण प्रायः अजीर्ण ही होता है[1], इस लिये अजीर्ण के उत्पन्न होते ही उसे दूर करना चाहिये[2]।

कारण—अजीर्ण होने का कारण किसी से छिपा नहीं है अर्थात् इस के कारण को प्रायः सब ही जानते हैं कि अपनी पाचनशक्ति से अधिक और अयोग्य खुराक के खाने से अजीर्ण होता है[3], अर्थात् एक समय में अधिक खा लेना, कच्चे भोजन को खाना, बेपरिमाण (विना अन्दाज अर्थात् गलेतक) खाना, पहिले खाये हुए भोजन के पचने के पहिले ही फिर खाना, ठीक रीति से चबाये विना ही भोजन को खाना तथा खान पान के पदार्थों का मिथ्यायोग करना, ये सब अजीर्ण होने के कारण हैं।

इन के सिवाय—बहुत से व्यसन भी अजीर्ण के कारण होते हैं, जैसे मद्य (दारू), भंग (भाँग), गांजा और तमाखू का सेवन, आलस्य (सुस्ती), वीर्य का अधिक खर्च करना, शरीर को और मन को[4] अत्यन्त परिश्रम देना तथा चिन्ता का करना, इत्यादि अनेक कारणों से अजीर्णरूपी शत्रु शरीररूपी किले में प्रवेश कर अपनी जड़ को दृढ़ कर लेता है और रोगोत्पत्तिरूपी अनेक उपद्रवों को करता है।

लक्षण—अजीर्ण यद्यपि एक छोटासा रोग गिना जाता है परन्तु वास्तव में यह सब से बड़ा रोग है, क्योंकि यही (अजीर्ण ही) सब रोगों की जड़ है, यह रोग शरीर में स्थित होकर (ठहर कर) प्रायः दो क्रियाओं को करता है अर्थात् या तो दस्त लाता है अथवा दस्त को बन्द करता है, इन (दोनों) में से पूर्व क्रिया में दस्त होकर न पचा हुआ अन्न का भाग निकल जाता है, यदि वह न निकले तो प्रायः अधिक खराबी करता है परन्तु दूसरी क्रिया में दस्त की कब्जी होकर पेट फूल जाता है, खट्टी डकार आती है, जी मिचलाता है, उबकी आती है, वमन होता है, जीभपर सफेद थर (मैल) जमजाती है, छाती और आमाशय (होजरी) में दाह होता है तथा शिर में दर्द होता है, इन के सिवाय कभी २ पेट में चूंक चलती है और नींद में अनेक प्रकार के दुःस्वप्न (बुरे सुपने) होते हैं, इत्यादि अनेक चिह्न अजीर्णरोग में मालूम पड़ते हैं।

१–अजीर्ण शब्द का अर्थ ही यह है कि खाये हुए भोजन का न पचना ॥

२–क्योंकि उत्पन्न होते ही इस का इलाज कर लेने से यह शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है अर्थात् शरीर में इस की जड़ नहीं जमने पाती है ॥

३–पाचनशक्ति से अधिक खुराक के खाने से अर्थात् आधसेर की पाचनशक्ति होनेपर सेरभर खुराक के खा लेने से तथा अयोग्य खुराक के खाने से अर्थात् प्रकृति के विरुद्ध खुराक के खाने से अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है ॥

४–लिखने पढ़ने और सोचने आदि के द्वारा मन को भी अधिक परिश्रम देने से अजीर्ण रोग होता है, क्योंकि–दिल, दिमाग और अग्न्याशय, इन तीनों का बड़ा घनिष्ट सम्बध है ॥

भेद (प्रकार)—देशी वैद्यक शास्त्र में अजीर्ण के प्रकरण में जठराग्नि के विकारों का बहुत सूक्ष्मरीति से विचार किया है[1] परन्तु ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से उन सब का विस्तारपूर्वक वर्णन यहां नहीं लिख सकते हैं किन्तु आवश्यक जान कर उन का सार-मात्र संक्षेप से यहां दिखलाते हैं:—

न्यूनाधिक तथा सम विषम प्रभाव के अनुसार जठराग्नि के चार भेद माने गये हैं—मन्दाग्नि[2], तीक्ष्णाग्नि, विषमाग्नि और समाग्नि।

इन चारों के सिवाय एक अतितीक्ष्णाग्नि भी मानी गई है जिस को भस्मक रोग कहते हैं।

इन सब अग्नियों का स्वरूप इस प्रकार जानना चाहिये कि-मन्दाग्निवाले पुरुष के थोड़ा खाया हुआ भोजन तो पच जाता है परन्तु किञ्चित् भी अधिक खाया हुआ भोजन कभी नहीं पचता है, तीक्ष्णाग्निवाले पुरुष का अधिक भोजन भी अच्छे प्रकार से पच सकता है, विषमाग्निवाले पुरुष का खाया हुआ भोजन कभी तो अच्छे प्रकार से पच जाता है और कभी अच्छे प्रकार से नहीं पचता है, इस पुरुष की अग्नि का बल अनियमित होता है इस लिये इस के प्रायः अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, समाग्निवाले पुरुष का किया हुआ भोजन ठीक समय पर ठीक रीति से पचजाता है तथा इस का शरीर भी नीरोग रहता है तथा तीक्ष्णाग्निवाला (भस्मकरोगवाला) पुरुष जो कुछ खाता है वह शीघ्र ही

१—क्योंकि अजीर्ण से और जठराग्नि के विकारों से परस्पर में बड़ा सम्बंध है, या यों कहना चाहिये कि—अजीर्ण जठराग्निके विकाररूप ही है ॥

२—चौपाई—स्वल्प मातरा भोजन खावै ॥ तौ हूँ नाँहि पचै दुख पावै ॥ १ ॥
छर्दि गलानि भ्रम रु पर सेका ॥ शीस जठर अति भारी जेका ॥ २ ॥
मन्द अग्नि इन लखणां जानो ॥ तामें कफहिँ प्रबल पहिचानो ॥ ३ ॥
स्वल्प हु अधिक मातरा लेवै ॥ सो पचि जाय प्राण सुख देवै ॥ ४ ॥
बल अति वर्ण पुष्टता धारै ॥ पित्त प्रधान तीक्ष्ण गुण कारै ॥ ५ ॥
कबहुँ पचै अन कबहूँ नाहीं ॥ शूल आफरा उदर रहाहीं ॥ ६ ॥
गुड़गुड़ शब्द उदर में भासै ॥ कबहुँक मल स्रावक अति तासैं ॥ ७ ॥
विषम अगनि के ये हैं लिङ्गा ॥ या मैं बल वायू को सङ्गा ॥ ८ ॥
नित्य प्रमाण मातरा अन की ॥ सुख से पचै घटै नहिँ जन की ॥ ९ ॥
सम अगनी यह नाम बखानो ॥ चार अगनि में श्रेष्ठ जु जानो ॥ १० ॥
सम अगनी जाके तन होई ॥ पूरव जन्म पुण्य फल सोई ॥ ११ ॥
तीक्ष्ण अग्नि जाके तन होवै ॥ पथ्य कुपथ्य को ज्ञान न जोवै ॥ १२ ॥
रूक्ष कटुक अति भोजन सेवै ॥ विना दुग्ध घृत अन नित लेवै ॥ १३ ॥
क्षीण होय कफ जबहीं जाके ॥ वृद्ध होय पित वायू ताके ॥ १४ ॥
तीक्ष्ण अग्नि वायू कर बढ़ही ॥ पक्क अपक्क अन्न अति चढ़ही ॥ १५ ॥
जो खावहि सो भस्महि थावै ॥ तातें भस्मक नाम कहावै ॥ १६ ॥
भोजन समय उलंघन करही ॥ तब ही रक्त मांस को हरही ॥ १७ ॥

भस्म हो जाता है तथा उस को पुनः भूख लग जाती है, यदि उस भूख को रोका जावे तो उस की अतितीक्ष्णाग्नि उस के शरीर के धातुओं को खा जाती है (सुखा देती है)।

इन्हीं ऊपर कही हुई अग्नियों का आश्रय लेकर वैद्यक शास्त्र में अजीर्ण के जितने भेद कहे हैं उन सब का अब वर्णन किया जाता है:—

१–आमाजीर्ण[1]—यह अजीर्ण कफ से उत्पन्न होता है तथा इस में अंग में भारीपन, ओकारी[2], आंख के पोपचों पर थेथर[3] और खट्टी डकार का आना, इत्यादि लक्षण होते हैं[4]।

२–विदग्धाजीर्ण—यह अजीर्ण पित्त से उत्पन्न होता है तथा इस में भ्रम[5] का होना, प्यास, मूर्छा, सन्ताप, दाह तथा खट्टी डकार[6] और पसीने का आना, इत्यादि चिह्न होते हैं।

३–विष्टब्धाजीर्ण—यह अजीर्ण वादी से होता है तथा इस में शूल, अफरा, चूंक[7], मल तथा अधोवायु (अपानवायु) का अवरोध (रुकना), अंगों का जकड़ना और दर्द का होना, इत्यादि चिह्न होते हैं।

४–रसशेषाजीर्ण—भोजन करने के पीछे पेट में पके हुए अन्न का साररूप रस (पतला भाग) जब नहीं पकने पाता है अर्थात् उस के पकने के पहिले ही जब भोजन कर लिया जाता है तब अजीर्ण उत्पन्न होता है, उस को रसशेषाजीर्ण कहते हैं[8], इस अजीर्ण में हृदय के शुद्ध न होने से तथा शरीर में रस की वृद्धि होने से अन्नपर अरुचि होती है।

अजीर्णजन्य दूसरे उपद्रव—जब अजीर्ण का वेग बहुत बढ़ जाता है तब उस अजीर्ण के कारण विषूचिका (हैज़ा), अलसक तथा विलम्बिका नामक रोग हो जाता है[9], इन का वर्णन संक्षेप से करते हैं:—

१–आमाजीर्ण अर्थात् आम के कारण अजीर्ण ॥

२–ओकारी अर्थात् वमन होने की सी इच्छा ॥

३–आँख के पोपचों पर थेथर अर्थात् आँख के पलकों पर सूजन ॥

४–यह अजीर्ण कफ की अधिकता से होता है ॥

५–भ्रम अर्थात् चक्कर ॥

६–इस अजीर्ण में पित्त के वेग से धुएँ सहित खट्टी डकार आती है ॥

७–चूंक अर्थात् शूलभेदादि वातसम्बन्धी पीड़ा ॥

८–(प्रश्न) आमाजीर्ण में और रसशेषाजीर्ण में क्या भेद है, क्योंकि आमाजीर्ण आम (कच्चे रस के सहित होता है और रसशेषाजीर्ण भी रस के शेष रहनेपर होता है? (उत्तर) देखो! आमाजीर्ण में तो मधुर हुआ कच्चा ही अन्न रहता है, क्योंकि–मधुर हुए कच्चे अन्न की आम संज्ञा है और रसशेषाजीर्ण में भोजन किये हुए पके पदार्थ का रस पेट में शेष रहता है और वह रस जबतक जठराग्नि से नहीं पकता है तबतक उस की रसशेषाजीर्ण संज्ञा है, बस इन दोनों में यही भेद है ॥

९–स्मरण रखना चाहिये कि– विषूचिका, अलसक और विलम्बिका, ये तीनों उपद्रव प्रत्येक अजीर्ण से होते हैं (अर्थात् आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण, इन तीनों से यथाक्रम उक्त उपद्रव होते हों यह बात नहीं है) ॥

विषूचिका—इस रोग में अतीसार (दस्तों का लगना), मूर्च्छा (बेहोशी), वमन (उलटी,) भ्रम (चक्कर का आना), दाह (जलन), शूल (पीड़ा), हृदय में पीड़ा, प्यास, हाथ और पैरों में खेंचातान (बाँइटा), अतिजृम्भा (जँभाइयों का अधिक आना), देह का विवर्ण (शरीर के रंग का बदल जाना), विकलता (बेचैनी) और कम्प (काँपना), ये लक्षण होते हैं ।

अलसक—इस रोग में आहार न तो नीचे उतरता है न ऊपर को जाता है[1] और न परिपक्व ही होता है, किन्तु आलसी पुरुष के समान पेट में एक जगह ही पड़ा रहता है[2], इस के सिवाय इस रोग में अफरा, मल मूत्र और गुदा की पवन (अपानवायु) का रुकना तथा अति तृषा (प्यास का अधिक लगाना), इत्यादि लक्षण भी होते हैं, इस रोग में प्रायः मनुष्य को अतिकष्ट होता है ।

विलम्बिका—इस रोग में किया हुआ भोजन कफ और वात से दूषित होकर न तो ऊपर को जाता है और न नीचे को ही जाता है अर्थात् न तो वमन के द्वारा निकलता है और न विरेचन (दस्त) ही के द्वारा निकलता है, इस रोग में अलसक रोग से यह भेद है कि–अलसक रोग में तो शूल आदि घोर पीड़ा होती है परन्तु इस में वैसी पीड़ा नहीं होती है[3] ।

जब विषूचिका और अलसक रोग में रोगी के दाँत नख और ओष्ठ (ओठ) काले हो जावें, अत्यन्त वमन हो, ज्ञान (संज्ञा) का नाश हो जावे[4], नेत्र भीतर घुस जावें, स्वर क्षीण हो जावे[5] तथा सन्धियां शिथिल हो जावें तब इन लक्षणों के होने के बाद रोगी नहीं बचता है[6] ।

निद्रा का नाश, मन का न लगना, कम्प, मूत्र का रुकना और संज्ञा[7] का नाश, ये पांच विषूचिका के घोर उपद्रव हैं[8] ।

पहिले कह चुके हैं कि–बहुधा भोजन की विषमता से मनुष्य के अजीर्ण रोग हो जाता

१–अर्थात् न तो दस्त के द्वारा निकलता है और न वमन के द्वारा ही निकलता है ॥

२–इसी लिये इस रोग को अलसक कहते हैं ॥

३–परन्तु यह रोग भी दुश्चिकित्स्य (कठिनता से चिकित्सा करने योग्य) माना गया है ॥

४–ज्ञान का नाश हो जावे अर्थात् होश जाता रहे ॥

५–स्वर क्षीण हो जावे अर्थात् आवाज़ बैठ जावे ॥

६–क्योंकि ऐसी दशा में यह रोग असाध्य हो जाता है ॥

७–संज्ञा का नाश अर्थात् बेहोशी ॥

८–ये निद्रानाशादि उपद्रव तो प्रायः सब ही रोगों में भयंकर होते हैं परन्तु ये पांचों उपद्रव जब इस (विषूचिका) रोग में होते हैं तो रोगी कभी नहीं बचता है क्योंकि इन पांचों उपद्रवों सहित विषूचिकारोग असाध्य हो जाता है ॥

है तथा वही अजीर्ण सब रोगों का कारण है, इस लिये जहांतक हो सके अजीर्ण को शीघ्र ही दूर करना चाहिये, क्योंकि अजीर्ण रोग का दूर करना मानो सब रोगों को दूर करना है।

अजीर्ण जाता रहा हो उस के लक्षण[1]—शुद्ध डकार का आना, शरीर और मन का प्रसन्न होना, जैसा भोजन किया हो उसी के सदृश मल और मूत्र की अच्छे प्रकार से प्रवृत्ति होना, सब शरीर का हलका होना, उस में भी कोष्ठ (कोठे अर्थात् पेट) का विशेष हलका होना तथा भूख और प्यास का लगना, ये सब चिह्न अजीर्ण रोग के नष्ट होनेपर देखे जाते हैं, अर्थात् अजीर्ण रोग से रहित पुरुष के भोजन के पच जाने के बाद ये सब लक्षण देखे जाते हैं।

अजीर्ण की सामान्यचिकित्सा—१–आमाजीर्ण में गर्म पानी पीना चाहिये[2], विदग्धाजीर्ण में ठंढा पानी पीना तथा जुलाब लेना चाहिये[3], विष्टब्धाजीर्ण में पेटपर सेंक करना चाहिये[4] और रसशेषाजीर्ण में सो जाना चाहिये अर्थात् निद्रा लेनी चाहिये[5]।

२–यद्यपि अजीर्ण का अच्छा और सस्ता इलाज लंघन का करना है[6] परन्तु न जाने मनुष्य इस से क्यों भय करते हैं (डरते हैं), उन में भी हमारे मारवाड़ी भाई तो मरना स्वीकार करते हैं परन्तु लंघन के नाम से कोसों दूर भागते हैं और उन में भी भाग्यवानों का तो कहना ही क्या है, यह सब अविद्या का ही फल कहना चाहिये कि उन को अपने हिताहित का भी ज्ञान बिलकुल नहीं है।

३–सेंधानिमक, सोंठ तथा मिर्च की फंकी छाछ वा जल के साथ लेनी चाहिये।

४–चित्रक की जड़ का चूर्ण गुड़ में मिला कर खाना चाहिये।

५–छोटी हरड़, सोंठ तथा सेंधानिमक, इन की फंकी जल के साथ वा गुड़ में मिला कर लेनी चाहिये।

६–सोंठ, छोटी पीपल तथा हरड़ का चूर्ण गुड़ के साथ लेने से आमाजीर्ण, हरस[7] और कब्जी मिट जाती है।

१–अर्थात् जीर्णाहार (पचे हुए आहार) के लक्षण॥

२–इस (आमाजीर्ण) में वमन कराना भी हितकारक होता है॥

३–विदग्धाजीर्ण में लंघन कराना भी हितकारक होता है॥

४–अर्थात् इस (विष्टब्धाजीर्ण) मे सेंक कर पसीना निकालना चाहिये॥

५–क्योंकि निद्रा लेने (सो जाने) से वह शेष रस शीघ्र ही परिपक्व हो जाता (पच जाता) है॥

६–अच्छा इस लिये है कि ऊपर से आहार के न पहुंचने से उस पूर्वाहार का परिपाक हो ही गा और सस्ता इस लिये है कि इस में द्रव्य का खर्च कुछ भी नहीं है, अतः गरीब और अमीर सब को ही सुलभ है अर्थात् सब ही इसे कर सकते हैं॥

७–हरस अर्थात् बवासीर॥

७–धनिया तथा सोंठ का क्काथ पीने से आमाजीर्ण और उस का शूल मिट जाता है ।

८–अजवायन तथा सोंठ की फंकी अजीर्ण तथा अफरे को शीघ्र ही मिटाती है ।

९–काला जीरी दो से चार वालतक निमक के साथ चावनी चाहिये ।

१०–लहसुन, जीरा, सञ्चल निमक, सेंधा निमक, हींग और नींबू आदि दवाइयां भी अग्नि को प्रदीप्त करती तथा अजीर्ण को मिटाती हैं, इस लिये इन का उपयोग[1] करना चाहिये, अथवा इन में से जो मिले उस का ही उपयोग करना चाहिये, यदि नींबू का उपयोग किया जावे तो ऐसा करना चाहिये कि–नींबू की एक फांक में[2] काली मिर्च और मिश्री को तथा दूसरी फांक में काली मिर्च और सेंधेनिमक को डाल कर उस फाँक को अग्निपर रख कर गर्म कर उतार कर सहता २ चूसना चाहिये, इस प्रकार पांच सात नींबुओं को चूस लेना चाहिये, इस का सेवन अजीर्ण में तथा उस से उत्पन्न हुई प्यास और उलटी में बहुत फायदा करता है[3] ।

११–सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, दोनों जीरे (सफेद और काला), सेंधानिमक, घृत में भूनी हुई हींग और अजमोद[4], इन सब वस्तुओं को समान भाग लेकर तथा हींग के सिवाय सब चीजों को कूट तथा छान लेना चाहिये, पीछे उस में हींग को मिला देना चाहिये, इस को हिंगाष्टक चूर्ण कहते हैं, अपनी शक्ति के अनुसार इस में से थोड़े से चूर्ण को घृत में मिला कर भोजन के पहिले (प्रथम कवल के साथ) खाना चाहिये, इस के खाने से अजीर्ण, मन्दाग्नि, शूल, गुल्म, अरुचि और वायुजन्य (वायुसे उत्पन्न हुए) सर्व रोग शीघ्र ही मिट जाते हैं तथा अजीर्ण के लिये तो यह चूर्ण अति उत्तम औषध है[5] ।

१२–चार भाग सोंठ, दो भाग सेंधानिमक, एक भाग हरड़ तथा एक भाग शोधा हुआ गन्धक[6] इन सब को मिला कर नींबू के रस की सात पुट देनी चाहियें, पीछे एक

१–उपयोग अर्थात् सेवन ॥

२–एक फांक में अर्थात् आधे नींबू में ॥

३–अर्थात् इस के सेवन से अजीर्ण तथा उस से उत्पन्न हुई प्यास और उलटी मिट जाती है, इस के सिवाय इस के सेवन से वात आदि दोषों की शान्ति होती है, अन्नपर रुचि चलती है, शुद्ध डकार आती है, मुख का स्वाद ठीक हो जाता है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होती है ॥

४–अजमोद के स्थान में अजवायन डालनी चाहिये, यह किन्हीं लोगों की सम्मति है, क्योंकि अजवायन अन्तःसम्मार्जनी (कोठे को शुद्ध करनेवाली) है परन्तु अजमोद में वह गुण नहीं है ॥

५–यदि इच्छा हो तो विजौरे के रस के साथ इस चूर्ण की गोलियां बना कर उन का सेवन करना चाहिये ॥

६–गन्धक के शोधने की विधि यह है कि– लोहे की कलछी में थोड़े से घी को गर्म कर उस में गन्धक का चूर्ण डाल देना चाहिये, जब वह गल जावे तब उसे पानी मिलाये हुए दूध में डाल देना चाहिये, इसी तरह सब गन्धक को गला कर दूध में डाल देना चाहिये तथा अच्छी तरह से धोकर उसे सुखा लेना चाहिये ॥

एक मासे की गोलियां बनानी चाहियें तथा शक्ति के अनुसार इन गोलियों का सेवन करना चाहिये, इस गोली का नाम राजगुटिका है, यह अजीर्ण, वमन, विषूचिका, शूल और मन्दाग्नि आदि रोगों में शीघ्र ही फायदा करती है ॥

इन ऊपर कहे हुए साधारण इलाजों के सिवाय इन रोगों में कुछ विशेष इलाज भी हैं जिन में से प्रायः रामवाण रस, क्षुधासागर रस, अजीर्णकण्टक रस, अग्निकुमार रस तथा शूलदावानल रस, इत्यादि प्रयोग उत्तम समझे जाते हैं[1] ।

विशेष सूचना—अजीर्ण रोगवाले को अपने खाने पीने की सँभाल अवश्य रखनी चाहिये क्योंकि अजीर्ण रोग में खाने पीने की सँभाल न रखने से यह रोग प्रवल रूप धारण कर अतिभयंकर हो जाता है तथा अनेकरोगों को उत्पन्न करता है इस लिये जव अजीर्ण हो तव एक दिन लंघन कर दूसरे दिन हलकी खुराक खानी चाहिये[2] तथा ऊपर लिखी हुई साधारण दवाइयों में से किसी दवा का उपयोग करना चाहिये, ऐसा करने से अजीर्ण शीघ्र ही मिट जाता है, परन्तु इस रोग में प्रमाद (गफ़लत) करने से इस का असर शरीर में वहुत दिनोंतक वना रहता है अर्थात् अजीर्ण पुराना पड़ कर शरीर में अपना घर कर लेता है और फिर उस का मिटना अति कठिन हो जाता है ।

वहुधा यह भी देखा गया है कि—वहुत से आदमियों के यह अजीर्ण रोग सदा ही वना रहता है परन्तु तो भी वे उस का यथोचित उपाय नहीं करते हैं, इस का अन्त में परिणाम यह होता है कि—वे उस रोग के द्वारा अनेक कठिन रोगों में फँस जाते हैं और रोगों की फर्यादी (पुकार) करते हुए तथा अत्यन्त व्याकुल होकर अनेक मूर्ख वैद्यों से अपना दुःख रोते हैं तथा मूर्ख वैद्य भी अजीर्ण के कारण को ठीक न जान कर मनमानी चिकित्सा करते हैं कि जिस से रोगी के उदर की अग्नि सर्वदा के लिये विगड़ कर उन को दुःख देती है तथा अजीर्णरोग मृत्युसमय तक उन का पीछा नहीं छोड़ता है, इस लिये मन्दाग्नि तथा अजीर्णवाले पुरुष को सादी और वहुत हलकी खुराक खानी चाहिये, जैसे—दाल भात और दलिया आदि, क्योंकि यह खुराक ओषधि के समान ही फायदा करती है, यदि इस से लाभ प्रतीत (मालूम) न हो तो कोई अन्य साधारण चिकित्सा करनी चाहिये, अथवा किसी चतुर वैद्य वा डाक्टर से चिकित्सा करानी चाहिये ॥

१—इन सब का विधान आदि दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

२—परन्तु शाम को अजीर्ण मालूम हो तो थोड़ा सा भोजन करने में कोई हानि नहीं है, तात्पर्य यह है कि—प्रातःकाल किये हुए भोजन का अजीर्ण कुछ शाम को प्रतीत हो तो उस में शाम को भी थोड़ा सा भोजन कर लेने में कोई हानि नहीं है परन्तु शामको किये हुए भोजन का अजीर्ण यदि प्रातःकाल मालूम हो तो ओषधि आदि के द्वारा उस की निवृत्ति कर के ही भोजन करना चाहिये अर्थात् उसी अजीर्ण में भोजन नहीं कर लेना चाहिये ॥

पुराने अजीर्ण (डिसपेपसिया) का वर्णन ॥

वर्तमान समय में यह अजीर्ण रोग बड़े २ नगरों के सुधरे हुए भी समाज का तथा प्रत्येक घर का खास मर्ज़ बन गया है[1], देखिये ! अनेक प्रकार के मनमाने भोजन करने के शौक में पड़े हुए तथा परिश्रम न करनेवाले अर्थात् गद्दी तकियों का सहारा लेकर दिन भर पड़े रहनेवाले अनेक सभ्य पुरुषोंपर यह रोग उन की सभ्यता का कुछ विचार न करे[2] वारंवार आक्रमण (हमला) करता है परन्तु जो लोग चमकमाहटदार तथा स्वादिष्ट खान पान के आनन्द और उन के शौक से बचते हैं तथा जो लोग रात को नाच तमाशे और नाटक आदि के देखने की लत से बच कर साधारणतया अपने जीवन का निर्वाह करते हैं उनपर यह रोग प्रायः दया करता है अर्थात् वे पुरुष प्रायः इस रोग से बचे रहते हैं[3] ।

पाठकगण इस के उदाहरण को प्रत्यक्ष ही देख सकते हैं कि—बम्बई, हैदराबाद, कलकत्ता, बीकानेर, अहमदाबाद और सूरत आदि जैसे शौकीन नगरों में इस रोग का अधिक फैलाव है तथा साधारणतया निर्वाह करने योग्य सर्वत्र ग्राम आदि स्थानों में ढूँढने पर भी इस के चिह्न नहीं दीखते हैं, इस का कारण केवल वही है जो अभी कह चुके हैं ।

इस बात का अनुभव तो प्रायः सब ही को होगा कि जिन धनवानों के पास सुख के सब साधन मौजूद हैं उन की अज्ञानतासे उन के कुटुम्ब में सदा बादी और बदहज़मी रहती है तथा उसी के कारण शरीर और मन की अशक्ति उन का कभी पीछा नहीं छोड़ती है[4] ।

लक्षण—भूख तथा रुचि का नाश, छाती में दाह, खट्टी डकार, उबकी, वमन (उलटी), होजरी में दर्द, वायु का रुकना[5], मरोड़ा, धड़क (हृदय का धड़कना), श्वास का रुकना, शिर में दर्द, मन्दज्वर, अनिद्रा (नींद का न आना), बहुत स्वमों का आना, उदासी, मन में बुरे विचारों का उत्पन्न होना तथा मुँह में से पानी का गिरना, ये इस अजीर्ण के लक्षण हैं, इस रोग में अन्न नज़रों से भी देखे नहीं सुहाता है और न

१–तात्पर्य यह है कि—पहिले जो अजीर्ण रोग उत्पन्न हुआ था उस की ठीक तौर से चिकित्सा न की जाने से तथा उस के बढ़ानेवाले मिथ्या आहार और विहार के सेवन से उस की जड़ कायम हो जाने से वह प्रत्येक घर का एक खास मर्ज़ बन गया है ॥

२–अर्थात् ये सभ्य पुरुष हैं इन को तो मैं न सताऊँ, इस बात का कुछ भी विचार न कर के ॥

३–तात्पर्य यह है कि खाने पीने आदि के विशेष शौक में न पड़कर तथा यथोचित शारीरिक आदि परिश्रम कर अपना निर्वाह करते हैं उन को यह रोग नहीं सताता है ॥

४–कारण वही है जो अभी लिख चुके हैं कि वे गद्दी तकियों के दास बन कर पड़े रहते हैं ॥

५–वायु का रुकना अर्थात् डकार और अपानवायुविसर्जन आदिके द्वारा वायु का न निकलना ॥

खाया हुआ अन्न पचता है, परन्तु हां कभी २ ऐसा भी होता है कि इस रोग से युक्त पुरुष को अधिक भूख लगी हुई मालूम होती है यहांतक कि खाने के बाद भी भूख ही मालूम पड़ती है तथा खुराक के पेट में पहुँचने पर भी अंग गलता ही जाता है, शरीर में सदा आलस्य बना रहता है, कभी २ रोगी को ऐसा दुःख मालूम पड़ता है कि–वह यह विचारता है कि मैं आत्मघात (आत्महत्या) कर के मर जाऊँ, अर्थात् उस के हृदय में अनेक बुरे विचार उत्पन्न होने लगते हैं[1]।

कारण—मसालेदार खुराक, घी वा तेल से तर (भीगा हुआ) पक्वान्न (पकमान) वा तरकारी, अधिक मेवा, अचार, तेज़ और खट्टी चीजें, बहुत दिनोंतक उपवास करके पशु के समान खाने का अभ्यास, बहुत चाय का अभ्यास, जल पीकर पेट को फुला देना (अधिक जल का पी लेना), भोजन कर के शीघ्र ही अधिक पानी पीने का अभ्यास और गर्मागर्म (अति गर्म) चाय तथा काफी के पीने का अभ्यास, ये सब बादी और अजीर्ण को बुलानेवाले दूत हैं।

इस के सिवाय–मद्य, ताड़ी, खाने की तमाखू, पीने की तमाखू, सूंघने की तमाखू, भांग, अफीम और गांजा, इत्यादि विषैले पदार्थों के सेवन से मनुष्य की होजरी खराब हो जाती है[2], वीर्य का अधिक क्षय, व्यभिचार, सुज़ाख और गर्मी आदि कारणों से मनुष्य की आँतें नरम और शक्तिहीन (नाताकत) पड़ जाती हैं, निर्धनावस्था में किसी उद्यम के न होने से तथा जाति और सांसारिक (दुनिया की) प्रथा (रिवाज) के कारण औसर और विवाह आदि में व्यर्थ खर्च के द्वारा धन का अधिक नाश होने से उत्पन्न हुई चिन्ता से अग्नि मन्द हो जाती है तथा अजीर्ण हो जाता है, इत्यादि अनेक कारण अग्नि की मन्दता तथा अजीर्ण के हैं।

चिकित्सा—१–इस रोग की अधिक लम्बी चौड़ी चिकित्सा का लिखना व्यर्थ है, क्योंकि इस की सर्वोपरि (सब से ऊपर अर्थात् सब से अच्छी) चिकित्सा यही है कि ऊपर कहे हुए कारणों से बचना चाहिये तथा साधारण हलकी खुराक खाना चाहिये, शक्ति के अनुसार व्यायाम (कसरत) करना चाहिये तथा सामान्यतया शरीर की आरोग्यता को बढ़ानेवाली साधारण दवाइयों का सेवन करना चाहिये, बस इन उपायों के सिवाय और कोई भी ऐसी चतुराई नहीं है कि जिस से इस रोग से बचाव हो सके।

१–क्योंकि इस रोग का कष्ट रोगी को अत्यन्त पीड़ित करता है॥

२–बहुत से लोग यह समझते हैं कि मद्य और भांग आदि के पीने से तथा तमाखू आदि के सेवन से (खाने पीने आदि के द्वारा) भूख खूब लगती है, अन्न अच्छे प्रकार से खाया जाता है, पाचनशक्ति बढ़ जाती है तथा शरीर में शक्ति आती है इत्यादि, सो यह उन की भूल है, क्योंकि परिणाम में इन सब पदार्थों से आमाशय और जठराग्नि में विकार हो कर बहुत खराबी होती है अर्थात् कठिन अजीर्ण होकर अनेक रोगों को उत्पन्न कर देता है, इस लिये उक्त विचार से इन पदार्थों का व्यसनी कभी नहीं बनना चाहिये॥

२-न पचनेवाली अथवा अधिक काल में पचनेवाली वस्तुओं का त्याग करना चाहिये, जैसे-तरकारी, सब प्रकार की दालें, मेवा, अधिक घी, मक्खन, मिठाई तथा खटाई आदि ।

३-दूध, दलिया, खमीर की अथवा आटे में अधिक मोयन (मोवन) देकर गर्म पानी से उसन कर बनाई हुई पतली २ थोड़ी रोटी, बहुत नरम और थोड़ी चीज़, काफी, दाल तथा मूंग का ओसामण आदि ख़ुराक बहुत दिनों तक खानी चाहिये[1] ।

४-भोजन करने का समय नियत कर लेना चाहिये अर्थात् समय और कुसमय में नहीं खाना चाहिये, न वारंवार समय को बदलना चाहिये और न बहुत देर करके खाना चाहिये, रात को नहीं खाना चाहिये, क्योंकि रात्रि में भोजन करने से तनदुरुस्ती बिगड़ती है ।

बहुत से अज्ञान लोग रात्रि में भोजन करते हैं तथा इस विषय में अंग्रेजों का उदाहरण देते हैं अर्थात् वे कहते हैं कि-"अंग्रेज लोग रात्रि में सदा खाते हैं और वे सदा नीरोग रहते हैं, यदि रात्रि में भोजन करना हानिकारक (नुकसान करनेवाला) है तो उन के रोग क्यों नहीं होता है" इत्यादि, सो यह उन की अज्ञानता है तथा उन का यह कहना कि-"अंग्रेजों को रोग क्यों नहीं होता है" बिलकुल व्यर्थ है क्योंकि-रात्रि में भोजन करने से उन को भी रोग तो अवश्य होता है परन्तु वह रोग थोड़ा होता है और थोड़े ही समयतक ठहरता है, क्योंकि प्रथम तो उन लोगों के रहने के मकान ही ऐसे होते हैं कि क्षुद्र जीव प्रथम तो उन के मकानों में प्रवेश ही नही कर सकते हैं, दूसरे वे लोग नियत समय पर बहुत थोड़ा २ खाते हैं तथा खाने के पश्चात् विकार न करनेवाले किन्तु हाज़मा करनेवाले पदार्थों का सेवन करते हैं कि जिस से उन को अजीर्ण कभी नहीं होता है, तीसरे-जब कभी उन को रोग होता है तब शीघ्र ही वे विद्वान् डाक्टरों से उस की चिकित्सा करा लेते हैं कि जिस से रोग उन के शरीर में स्थान नहीं करने पाता है, चौथे-वे नियमानुसार शारीरिक (शरीर का) और मानसिक (मनका) परिश्रम करते हैं कि जिस से उन का शरीर रोग के योग्य ही नहीं होता है, पांचवें-नियमानुसार सर्व कार्यों के करने तथा निकृष्ट (बुरे) कार्यों से बचने से उन को आधि (मानसिक रोग)

१-बहुत से लोग इस (अजीर्ण) रोग में कुछ दिनों तक कुछ पथ्यादि रखते हैं परन्तु जब कुछ फायदा नहीं होता है तब खिन्न होकर पथ्यादि से चलना छोड़ देते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि पथ्यपूर्वक चलने से कुछ फायदा तो होता नहीं है फिर क्यों पथ्य से चलें, ऐसा समझकर पथ्य और कुपथ्य आदि सब ही पदार्थों का उपयोग करने लगते हैं, सो यह उन की भूल है क्योंकि-इस रोग में थोड़े ही दिनों तक पथ्यपूर्वक चलने से कुछ भी फायदा नहीं हो सकता है किन्तु एक अर्सेतक (बहुत दिनों तक) पथ्यपूर्वक चलना चाहिये तब फायदा मालूम होता है, थोड़े दिनों तक पथ्यपूर्वक वर्त्ताव कर फिर उसे छोड़ देने से तो उलटी और भी हानि होती है, क्योंकि आमाशय और अन्त्याशय बिगड़ जाता है और उस से दूसरे भी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥

और व्याधि (शारीरिक रोग) सताती ही नहीं है, इत्यादि अनेक वातों से रोग उन के पास तक नहीं आता है, परन्तु सब जानते हैं कि–हिन्दुस्थानी जनों के कोई भी व्यवहार उन के समान नहीं है, फिर हिन्दुस्थानी जन निषिद्ध (शास्त्र आदि से मना किया हुआ) कार्य कर के दुःखरूपी फल से कैसे बचसकते हैं ? अर्थात् हिन्दुस्थानी जन शरीर को बाधा पहुँचानेवाले कार्यों को करके उन (अंग्रेजों) के समान तनदुरुस्ती को कभी नहीं पा सकते हैं।[1]

वर्त्तमान में यह भी देखा जाता है कि–बहुत से आर्य श्रीमान् लोग अंग्रेजों के समान व्यवहार करने में अपना पैर रखते हैं[2] परन्तु उस का ठीक निर्वाह न होने से परिणाम (नतीजा) यह होता है कि वे विना मौत आधी ही उम्र में मरते हैं, क्योंकि प्रथम तो अंग्रेज़ों का सब व्यवहार उन से यथोचित बन नहीं आता है, दूसरे–इस देश की तासीर और जल वायु अंग्रेजों के देश से अलग है, इस लिये हिन्दुस्थानियों को उचित है कि–उन के अनुकरण (नकल करने) को छोड़ कर अपनी प्राचीन प्रथा (रिवाज़) पर ही चलते रहें अर्थात् प्रजापति भगवान् श्री नाभिकुलचन्द्र ने जो दिनचर्या (दिन का व्यवहार), रात्रिचर्या (रात्रि का व्यवहार) तथा ऋतुचर्या (ऋतु का व्यवहार) अपने पुत्र हारीत को बतलाई थी (जिस को हम संक्षेप से इसी अध्याय में लिख चुके हैं) उस के अनुसार ही व्यवहार करें, क्योंकि उस पर चलना ही उन के लिये कल्याणकारी है, तात्पर्य यह है कि–आर्यावर्त्त के निवासियों को इस (आर्यावर्त्त) देश के अनुसार ही अपना पहिराव, भेष, खान, पान तथा चाल चलन रखना चाहिये, अर्थात् भाषा (बोली), भोजन, भेष और भाव, इन चार बातों को अपने देश के अनुसार ही रखना चाहिये, ये ऊपर कही हुई चार बातें मुख्यतया ध्यान में रखने की हैं[3] ।

५–मद्य का सेवन नहीं करना चाहिये अर्थात् मद्य को कभी नहीं पीना चाहिये[4] ।

६–भोजन करने के समय में अथवा भोजन करने के पीछे शीघ्र ही अधिक जल नहीं पीना चाहिये[5] तथा बहुत गर्म चाय वा काफी को नहीं पीना चाहिये, यदि कोई पतला पदार्थ पीने में आवे तो वह बहुत गर्म वा बहुत ठंढा नहीं होना चाहिये ।

१–हिन्दुस्थानी जनों के व्यवहार उन के समान ही नहीं हैं, यह बात नहीं है किन्तु हिन्दुस्थानियों के सब व्यवहार ठीक उन (अंग्रेज़ों) के विरुद्ध (विपरीत) हैं, फिर ये (हिन्दुस्थानी) लोग उन के समान आरोग्यता के सुख को कैसे पा सकते हैं ॥

२–इस का अनुभव पाठकों को वर्तमान में अच्छे प्रकार से हो ही रहा है, इस लिये इस विषय के विवरण करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥

३–इन चारों बातों को ध्यान में रख कर देश, काल और प्रकृति आदि को विचार कर जो वर्त्ताव करेगा वही कभी धोखे में नहीं पड़ेगा ॥

४–यद्यपि प्रारम्भ में इस से कुछ लाभ सा प्रतीत होता है परन्तु परिणाम में इस से बड़ी भारी हानि पहुँचती है, यह सुयोग्य वैद्य और डाक्टरों ने ठीक रीति से परीक्षा कर के निर्धारित किया है ॥

५–क्योंकि भोजन करने के समय में अथवा भोजन करने के पीछे शीघ्र ही अधिक जल पीने से खाये हुए अन्न का ठीक रीति से पाचन नहीं होता है ॥

७–तमाखू को नहीं सूंघना चाहिये, यदि कदाचित् नकसीर रोग के बन्द करने के लिये वा कफ और नजले के निकालने के लिये उस के सूंघने की आवश्यकता हो वा उस का व्यसन पड़ गया हो तो यथाशक्य (जहांतक हो सके) उसे छोड़ कर दूसरी दवा से उस का कार्य लेना चाहिये, यदि कदाचित् अतिव्यसन हो जाने के कारण वह न छूट सके तो इतना खयाल तो अवश्य रखना चाहिये कि–भोजन करने से प्रथम उसे कभी नहीं सूंघना चाहिये, क्योंकि–भोजन करने से प्रथम तमाखू के सूंघने से भूख बन्द हो जाती है, इस बात की परीक्षा प्रत्येक सूंघनेवाला पुरुष कर सकता है।

८–खाने की तमाखू भी सूंघने की तमाखू के समान ही अवगुण करती है, परन्तु तमाखू खानेवाले लोग यह समझते हैं कि–तमाखू के खाने से खुराक हज़म होती है, सो उन का यह खयाल करना अत्यन्त गलत है, क्योंकि तमाखू के खाने से उलटा अजीर्ण रहता है।

९–बहुत परिश्रम नहीं करना चाहिये[1], खुली हुई स्वच्छ (साफ) हवा में अच्छे प्रकार भ्रमण करना (घूमना) चाहिये[2], यदि बहुत नींद लेने की (सोने की) आदत हो तो उसे छोड़ देना चाहिये तथा प्रातःकाल शीघ्र उठ कर खुली हुई स्वच्छ हवा में घूमना फिरना चाहिये।

१०–भोजन करने के पीछे शीघ्र ही बांचने, लिखने, पढ़ने तथा सूक्ष्म (बारीक) विषयों के विचार करने के लिये नहीं बैठना चाहिये, किन्तु कम से कम एक घंटा बीत जाने के बाद उक्त काम करने चाहियें[3]।

११–अन्न के पचाने (हजम करने) के लिये गर्म दवाइयां, गर्म खुराक तथा साफ दस्त लानेवाली दवा (जुलाब आदि) नहीं लेनी चाहियें[4]।

बस अजीर्ण रोग से बचने के लिये ऊपर लिखे नियमों के अनुसार चलना चाहिये, होजरी (आमाशय) को सुधारने के लिये कुछ समय तक बच्चों की भांति दूध से ही निर्वाह करना चाहिये, आरोग्यता को रखनेवाली सितोपलादि साधारण औषधों का सेवन करना चाहिये तथा घोड़ेपर सवार होकर अथवा पैदल ही प्रातःकाल और सायंकाल स्वच्छ वायु के सेवन के लिये भ्रमण करना चाहियें, क्योंकि होजरी के सुधारने के लिये यह सर्वोत्तम उपाय है॥

१–यद्यपि शारीरिक (शरीरसम्बन्धी) परिश्रम भी विशेष नहीं करना चाहिये किन्तु मानसिक (मनःसम्बंधी) परिश्रम तो भूल कर भी विशेष नहीं करना चाहिये, क्योंकि मानसिक परिश्रम से यह रोग विशेष बढ़ता है॥

२–स्वच्छ हवा में भ्रमण करने (घूमने) से इस रोग में बहुत ही लाभ होता है, यह बात पूरे तौर से अनुभव में आ चुकी है॥

३–भोजन करने के पीछे शीघ्र ही लिखने पढ़ने आदि का कार्य करने से भोजन ज्यों का त्यों आमाशय में स्थित रह जाता है अर्थात् परिपक्व नहीं होता है॥

४–क्योंकि ऐसा करने से जठराग्नि का स्वाभाविक बल नष्ट हो कर उस में विकार उत्पन्न हो जाता है॥

अतीसार (डायरिया) का वर्णन ॥

कारण—अजीर्ण रोग के समान अतीसार (दस्त) होने के भी बहुत से कारण हैं तथा इन दोनों रोगों के कारण भी प्रायः एक से ही हैं[1], इन के सिवाय अतिशय (अधिक) और अयोग्य खुराक, कच्चा फल, कच्चा अन्न, बासी तथा भारी खुराक, इत्यादि पदार्थों के उपयोग से भी अतीसार रोग होता है, एवं खराब पानी[2], खराब हवा, ऋतु का बदलना, शर्दी, भय तथा अचानक आई हुई विपत्ति, इत्यादि कई एक कारण भी इस रोग के उत्पादक (उत्पन्न करनेवाले) माने जाते हैं।

लक्षण—वारंवार पतले दस्त का होना, यह इस रोग का मुख्य चिह्न है, इस के सिवाय—जी मचलाना, अरुचि, जीभपर सफेद अथवा पीली थर का जमना, पेट में वायु का बढ़ना तथा उस की गड़गड़ाहट का होना, चूंक तथा खट्टी डकार का आना, इत्यादि दूसरे भी चिह्न इस रोग में होते हैं।

इस बात को सदा ध्यान में रखना चाहिये कि अतीसार रोग के दस्तों में तथा मरोड़े के दस्तों में बहुत फर्क होता है अर्थात् अतीसार रोग में पतला दस्त जलप्रवाह (जल के बहने) के समान होता है[3] और मरोड़े में आँतें मैल से भरी हुई होती हैं, इस लिये उस में खुलासा दस्त न होकर व्यथा (पीड़ा) के साथ थोड़ा २ दस्त आता है तथा आँतों में से आँव, जलयुक्त पीप और खून भी गिरता है, यदि कभी अतीसार के दस्तों में खून गिरे तो यह समझना चाहिये कि यह खून या तो मस्से के भीतर से वा खून की किसी नली के फूटने से अथवा आँतों वा होजरी में ज़खम (घाव) के होने से गिरता है।

अतीसार के भेद—देशी वैद्यक शास्त्र में अतीसार रोग के बहुत से भेद माने हैं[4] अर्थात् जिस अतीसार में जिस दोष की अधिकता होती है उस का उसी दोष के अनुसार नाम रक्खा है, जैसे—वातातीसार, पित्तातीसार, कफातीसार, सन्निपातातीसार, शोकातीसार, आमातीसार तथा रक्तातीसार इत्यादि, इन सब अतीसारों में दस्त के रंग में तथा दूसरे भी लक्षणों में भेद[5] होता है जैसे—देखो! वातातीसार में—दस्त झाँखा तथा धूम्रवर्ण का (धुएँ के समान रंगवाला) होता है, पित्तातीसार में—पीला तथा रक्तता (सुर्खी) लिये हुए होता है, कफातीसार में तथा आमातीसार में—दस्त सफेद तथा चिकना होता है और

१—अर्थात् अजीर्ण रोग के जो कारण कहे हैं वे ही अतीसार रोग के भी कारण जानने चाहियें ॥

२—खराब पानी के ही कारण प्रायः यात्रियों को दस्त होने लगते हैं ॥

३—अर्थात् साधारण अतीसार और मरोड़े को एक ही रोग नहीं समझ लेना चाहिये ॥

४—किन्हीं आचार्यों ने इस रोग के केवल छःही भेद माने हैं अर्थात् वातातीसार, पित्तातीसार, कफातीसार, सन्निपातातीसार, शोकातीसार और आमातीसार ॥

५—दूसरे लक्षणों में भी भेद पृथक् २ दोषों के कारण होता है ॥

रक्तातीसार में खून गिरता है, इस प्रकार दस्तों के सूक्ष्म (वारीक) भेदों को समझ कर यदि अतीसार रोग की चिकित्सा की जावे तो उस (चिकित्सा) का प्रभाव बहुत शीघ्र होता है[1], यद्यपि इस रोग की सामान्य (साधारण) चिकित्सायें भी बहुत सी हैं जो कि सब प्रकार के दस्तों में लाभ पहुँचाती हैं परन्तु तो भी इस बात का जान लेना अत्यावश्यक (बहुत ज़रूरी) है कि-जिस रोग में जो दोष प्रबल हो उसी दोष के अनुसार उसकी चिकित्सा होनी चाहिये, क्योंकि-ऐसा न होने से रोग उलटा बढ़ जाता है वा रूपान्तर (दूसरे रूप) में पहुँच जाता है, जैसे देखो ! यदि वातातीसार की चिकित्सा पित्तातीसारपर की जावे अर्थात् पित्तातीसार में यदि गर्म ओषधि दे दी जावे तो दस्त न रुक कर उलटा बढ़ जाता है और रक्तातीसार हो जाता है, इसी प्रकार दूसरे दोषों के विषय में भी समझना चाहिये ।

अजीर्ण से उत्पन्न अतीसार में-दस्त का रँग झाँखा और सफेद होता है परन्तु जब वह अजीर्ण कठिन (सख्त) होता है तब उस से उत्पन्न अतीसार में हैज़े के समान सब चिह्न मालूम होते हैं ।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा करने से पहिले दस्त (मल) की परीक्षा करनी चाहिये[2], दस्त की परीक्षा के दो भेद हैं-आमातीसार अर्थात् कच्चा दस्त और पक्कातीसार अर्थात् पक्का दस्त, इस के जानने का सहज उपाय यह है कि-यदि जल में डालने से मल डूब जावे तो उसे आम का मल अर्थात् अपक्क (कच्चा) समझना चाहिये और जल में डालने से यदि वह (मल) पानी के ऊपर तिरने (उतराने) लगे तो उसे पक्क (पक्का हुआ) मल समझना चाहिये[3], यदि मल आम का (कच्चा) हो अर्थात् आम से मिला हुआ हो तो उस के एकदम बन्द करने की ओषधि नहीं देनी चाहिये, क्योंकि आम के दस्त को एकदम बन्द कर देने से कई प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है, जैसे-अफरा, संग्रहणी, मस्सा, भगन्दर, शोथ, पाण्डु, तिल्ली, गोला, प्रमेह, पेट का रोग तथा ज्वर आदि, परन्तु हां इस के साथ यह बात भी अवश्य याद रखनी चाहिये कि-यदि

१-क्योंकि भेदों को समझ कर तथा दोष का विचार कर चिकित्सा करने से दोष की निवृत्ति के द्वारा उक्त रोग की शीघ्र ही निवृत्ति हो जाती है ॥

२-पहिले कह चुके हैं कि-दोष के अनुसार मल के रंग आदि में भेद होता है, इस लिये मल की परीक्षा के द्वारा दोष का निश्चय हो जानेपर चिकित्सा करनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दोष की निवृत्तिद्वारा रोग की निवृत्ति शीघ्र ही हो जाती है और ऐसा न करने से उलटी हानि होती है ॥

३-इस के सिवाय आम और पक्क की यह भी परीक्षा है कि-कच्चे दोषों से मिला हुआ आम मल गिलगिला होता है तथा उस में दुर्गन्धि विशेष आती है परन्तु पक्क मल गिलगिला नहीं होता है तथा उस में दुर्गन्धि कम आती है ॥

रोगी बालक, बुड्ढा, अथवा अशक्त (नाताकत) हो तथा अधिक दस्तों को न सह सकता हो तो आम के दस्तों को भी एकदम रोक देना चाहिये[1] ।

१-इस रोग की सब से अच्छी चिकित्सा लंघन है परन्तु पित्तातीसार तथा रक्तातीसार में लंघन नहीं कराना चाहिये, इन के सिवाय शेष अतीसारों में उचित लंघन कराने से रोगी को प्यास बहुत लगती है, उस को मिटाने के लिये धनियां तथा बाला को उकाल कर वह पानी ठंढा कर पिलाना चाहिये, अथवा धनियां, सोंठ, मोथा और पित्तपापड़े का तथा बाला का जल पिलाना चाहिये ।

२-यदि अजीर्ण तथा आम का दस्त होता हो तो लंघन कराने के पीछे रोगी को प्रवाही[2] तथा हलका भोजन देना चाहिये तथा आम को पचानेवाला, दीपन (अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला), पाचन (मल और अन्न को पचानेवाला) और स्तम्भन (मल को रोकनेवाला) औषध देना चाहिये ।

अब पृथक् २ दोषों के अनुसार पृथक् २ चिकित्सा को लिखते हैं:—

१-वातातीसार—इस में भुनी हुई भांग का चूर्ण शहद के साथ लेना चाहिये ।

अथवा चावल भर अफीम तथा केशर को शहद में लेना चाहिये तथा पथ्य में दही चावल खाना चाहिये ।

२-पित्तातीसार—इस में बेल की गिरी, इन्द्रजौं, मोथा, बाला और अतिविष, इन औषधों की उकाली लेनी चाहिये, क्योंकि यह उकाली पित्त तथा आम के दस्त को शीघ्र ही मिटाती है ।

अथवा-अतीस, कुड़ाछाल तथा इन्द्रजौं, इन का चूर्ण चावलों के धोवन में शहद डाल कर लेना चाहिये ।

३-कफातीसार—इस में लङ्घन करना चाहिये तथा पाचनक्रिया करनी चाहिये ।

अथवा-हरड़, दारुहलदी, वच, मोथा, सोंठ और अतीस, इन औषधों का काढ़ा पीना चाहिये।

१-वातपित्त की प्रकृतिवाला जो रोगी हो, जिस का बल और धातु क्षीण हो गये हों, जो अत्यन्त दोषों से युक्त हो और जिस को बे परिमाण दस्त हो चुके हों, ऐसे रोगी के भी आम के दस्तों को रोक देना चाहिये, ऐसे रोगियों को पाचन औषध के देने से मृत्यु हो जाती है, क्योंकि पाचन औषध के देने से और भी दस्त होने लगते हैं और रोगी उन का सहन नहीं कर सकता है, इस लिये पूर्व की अपेक्षा और भी अशक्ति (निर्बलता) बढ़ कर मृत्यु हो जाती है ॥

२-प्रवाही अर्थात् पतले पदार्थ, जैसे-यवागू और यूप आदि । (**प्रश्न**) वैद्यक ग्रन्थों में यह लिखा है कि-शूलरोगी दो दल के अन्नों को (मूंग आदि को), क्षयरोगी स्त्रीसंग को, अतीसाररोगी पतले पदार्थों और खटाई को तथा ज्वररोगी उक्त सब को त्याग देवे, इस कथन से अतीसाररोगी को पतले पदार्थ तो वर्जित हैं, फिर आपने प्रवाही पदार्थ देने को क्यों कहा ? (**उत्तर**) पतले पदार्थों का जो अतीसार रोग में निषेध किया है वहां दूध और घृत आदि का निषेध समझना चाहिये किन्तु यूष और पेया आदि पतले पदार्थों का निषेध नहीं है ॥

अथवा-हिङ्गाष्टक चूर्ण में हरड़ तथा सज्जीखार मिला कर उस की फंकी लेनी चाहिये ।

४-**आमातीसार**—इस में भी यथाशक्य लंघन करना चाहिये ।

अथवा-एरंडी का तेल पीकर कच्चे आम को निकाल डालना चाहिये ।

अथवा-गर्म पानी में घी डालकर पीना चाहिये ।

अथवा—सोंठ, सोंफ, खसखस और मिश्री, इन का चूर्ण खाना चाहिये ।

अथवा-सोंठ के चूर्ण को पुटपाक की तरह पका कर तथा उस में मिश्री डाल कर खाना चाहिये ।

५-**रक्तातीसार**—इस में पित्तातीसार की चिकित्सा करनी चाहिये ।

अथवा—चावलों के धोवन में सफेद चन्दन को घिस कर तथा उस में शहद और मिश्री को डाल कर पीना चाहिये ।

अथवा-आम की गुठली को छाछ में अथवा चावलों के धोवन में पीस कर खाना चाहिये ।

अथवा-कच्चे वेल की गिरी को गुड़ में लेना चाहिये ।

अथवा-जामुन, आम तथा इमली के कच्चे पत्तों को पीस कर तथा इन का रस निकाल कर उस में शहद घी और दूध को मिला कर पीना चाहिये ।

सामान्यचिकित्सा[1]-१—आम की गुठली का मगज[2] (गिरी) तथा वेल की गिरी, इन के चूर्ण को अथवा इन के क्वाथ[3] को शहद तथा मिश्री डाल कर लेना चाहिये ।

२-अफीम तथा केशर की आधी चिरमी[4] के समान गोली को शहद के साथ लेना चाहिये ।

३-जायफल, अफीम तथा खारक (छुहारे) को नागरवेल के पान के रस में घोट कर तथा वाल के परिमाण की गोली वनाकर उस गोली को छाछ के साथ लेना चाहिये ।

४-जीरा, भांग, वेल की गिरी तथा अफीम को दही में घोट कर वाल के परिमाण की गोली वना कर एक गोली लेनी चाहिये ।

विशेषवक्तव्य—जब किसी को दस्त होने लगते हैं तब वहुत से लोग यह समझते हैं कि-नाभि के वीच की गांठ (धरन वा पेचोंटी) खिसक गई है इस लिये दस्त होते हैं, ऐसा समझ कर वे मूर्ख स्त्रियों से पेट को मसलाते (मलवाते) हैं, सो उन का यह समझना विलकुल ठीक नहीं है और पेट के मसलाने से वड़ी भारी हानि पहुँचती है,

---

१-सामान्य चिकित्सा अर्थात् जो सब प्रकार के अतीसारों में फायदा करती है ॥

२-परन्तु आम की गुठली के मगज़ (गिरी) के ऊपर जो एक प्रकार का मोटा छिलकासा होता है उसे निकाल डालना चाहिये अर्थात् उसे उपयोग में नहीं लाना चाहिये ॥

३-क्काथ में अवशिष्ट जल पावभर का छटांकभर रखना चाहिये ॥

४-चिरमी अर्थात् गुञ्जा, जिसे भाषा में घुँघुची कहते हैं ॥

देखो! शारीरिक विद्या के जाननेवाले डाक्टरों का कथन है कि-धरन अथवा पेचोंटी नाम का कोई भी अवयव शरीर में नहीं है और न नाभि के बीच में इस नाम की कोई गांठ है और विचार कर देखने से डाक्टरों का उक्त कथन बिलकुल सत्य प्रतीत होता है[1], क्योंकि किसी ग्रन्थ में भी धरन का स्वरूप वा लक्षण आदि नहीं देखा जाता है, हां केवल इतनी वात अवश्य है कि-रगों में वायु अस्तव्यस्त होती है[2] और वह वायु किसी २ के मसलने से शान्त पड़ जाती है, क्योंकि वायु का धर्म है कि मसलने से तथा सेक करने से शान्त हो जाती है, परन्तु पेट के मसलने से यह हानि होती है कि-पेट की रगें नाताकत (कमजोर) हो जाती हैं[3], जिस से परिणाम में बहुत हानि पहुँचती है, इस लिये धरन के झूठे ख्याल को छोड़ देना चाहिये क्योंकि शरीर में धरन कोई अवयव नहीं है।

अतीसार रोग में आवश्यक सूचना—दस्तों के रोग में खान पान की बहुत ही सावधानी रखनी चाहिये तथा कभी २ एकाध दिन निराहार लंघन कर लेना चाहिये[4], यदि रोग अधिक दिन का हो जावे तो दाह को न करनेवाली थोड़ी २ खुराक लेनी चाहिये, जैसे-चावल और साबूदाना की कुटी हुई घाट तथा दही चावल इत्यादि।

पथ्य—इस रोग में-वमन (उलटी) का लेना, लंघन करना, नींद लेना, पुराने चावल, मसूर, तूर (अरहर), शहद, तिल, बकरी तथा गाय का दूध, दही, छाछ, गाय का घी, बेल का ताज़ा फल, जामुन, कवीठ, अनार, सब तुरे पदार्थ तथा हलका भोजन इत्यादि पथ्य हैं[5]।

कुपथ्य—इस रोग में-स्नान, मर्दन, करड़ा तथा चिकना अन्न, कसरत, सेक, नया अन्न, गर्म वस्तु, स्त्रीसंग, चिन्ता, जागरण करना, बीड़ी का पीना, गेहूँ, उड़द, कच्चे आम,

---

१-क्योंकि प्रथम तो उन लोगों का इस विषय में प्रत्यक्ष अनुभव है और प्रत्यक्ष अनुभव सब ही को मान्य होता है और होना ही चाहिये और दूसरे-जब वैद्यक आदि अन्य ग्रन्थ भी इस विषय में वही साक्षी देते हैं तो भला इस में सन्देह होने का ही क्या काम है ॥

२-अस्तव्यस्त होती है अर्थात् कभी इकट्ठी होती है और कभी फैलती है ॥

३-पेट के मसलने से प्रथम तो रगें नाताकत हो जाती हैं जिस से परिणाम में बहुत हानि पहुँचती है, दूसरे-यदि वायु की शान्ति के लिये मसला भी जावे तो आदत बिगड़ जाती है अर्थात् फिर ऐसा अभ्यास पड़ जाता है कि पेट के मसलाये विना भूख प्यास आदि कुछ भी नहीं लगती है, इस लिये पेट को विशेष आवश्यकता के सिवाय कभी नहीं मसलाना चाहिये ॥

४-क्योंकि कभी २ एकाध दिन निराहार लंघन कर लेने से दोषों का पाचन तथा अग्नि का कुछ दीपन हो जाता है ॥

५-जब अतीसार रोग चला जाता है तब मल के निकले विना मूत्र का साफ उतरना अधोवायु (अपानवायु) की ठीक प्रवृत्ति का होना, अग्नि का प्रदीप्त होना, कोष्ठ (कोठे) का हलका मालूम पड़ना शुद्ध डकार का आना, अन्न और जल का अच्छा लगना, हृदय में उत्साह होना तथा इन्द्रियों का स्वस्थ होना, इत्यादि लक्षण होते हैं ॥

पूरनपोली, कोला, ईख, मद्य, गुड़, खराब जल, कस्तूरी, पत्तों के सब शाक, ककड़ी तथा खट्टे पदार्थ, ये सब कुपथ्य हैं अर्थात् ये सब पदार्थ इस रोग में हानि करते हैं ।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-इस रोग में चाहे ओषधि कुछ देरी से ली जावे तो कोई हानि नहीं है परन्तु पथ्य खान पान करने में बिलकुल ही गलती (भूल) नहीं करनी चाहिये[1] ॥

मरोड़ा, आमातीसार, संग्रहणी (डिसेण्टरी) का वर्णन ॥

मरोड़ा, आमातीसार और संग्रहणी, ये तीनों नाम लगभग एक ही रोग के हैं, क्योंकि-इन सब रोगों में प्रायः समान ही लक्षण पाये जाते हैं, वैद्यक शास्त्र में जिस को आमातीसार नाम से कहा गया है उसी को लोग मरोड़ा कहते हैं, अतीसार और आमातीसार जब पुराने हो जाते हैं तब उन्हीं को संग्रहणी कहते हैं, इस लिये यहां पर तीनों को साथ में ही दिखलाते हैं, क्योंकि-अवस्था (स्थिति वा हालत) के भेद से वह प्रायः एक ही रोग है[2] ।

यह रोग प्रायः सब ही वर्ग के लोगों को होता है, जिस प्रकार एक विशेष प्रकार की विषैली हवा से विशेष जाति के रोग फूट कर निकलते हैं उसी प्रकार मरोड़े रोग का भी कारण एक विशेष प्रकार की विषैली हवा और विशेष ऋतु होती है, क्योंकि-मरोड़े का रोग सामान्यतया (साधारण रीति से) तो किसी २ के ही और कभी २ ही होता है परन्तु किसी २ समय यह रोग बहुत फैलता है[3] तथा वसन्त और वर्षा ऋतु में प्रायः इस का जोर अधिक होता है[4] ।

कारण—मरोड़ा होने के मुख्यतया दो कारण हैं-उन में से एक कारण इस रोग की हवा है अर्थात् एक प्रकार की ठंढी हवा इस रोग को उत्पन्न करती है और उस हवा का असर प्रायः एक स्थान के रहने वाले सब लोगों पर यद्यपि एक समान ही होता

१-यह बात केवल इसी रोग में नहीं किन्तु सब ही रोगों में ध्यान रखनेयोग्य है, क्योंकि-पहिले ही लिख चुके हैं कि-पथ्य न रखने से ओषधि से भी कुछ लाभ नहीं होता है तथा पथ्य रखने से ओषधि के लेने की भी विशेष आवश्यकता नहीं रहती है, परन्तु हां इतनी बात अवश्य है कि कई रोगों में कुपथ्य बहुत विलम्ब से तथा थोड़ी ही हानि करता है, परन्तु अतीसार आदि रोगों में कुपथ्य शीघ्र ही तथा बड़ी भारी हानि करता है, इस लिये इन (अतीसार आदि रोगों) में ओषधि की अपेक्षा पथ्यपर अधिक ध्यान देना चाहिये ॥

२-तात्पर्य यह है कि स्थिति (हालत) के भेद से अतीसार रोग के ही ये तीनों नाम पृथक् २ रक्खे गये हैं अत एव हम ने यहांपर इन तीनों को साथ में ही लिखा है, अब जो इन में स्थिति का भेद है उस का वर्णन यथायोग्य आगे किया ही जावेगा ॥

३-इस के फैलने के समय मनुष्यों की अधिकांश संख्या इस रोग से पीड़ित हो जाती है ॥

४-क्योंकि वसन्त और वर्षा ऋतु में क्रम से कफ और वायु का कोप होने से प्रायः अग्नि मन्द रहती है ॥

है तथापि अशक्त (नाताकत) मनुष्य और पाचनक्रिया के व्यतिक्रम (गड़वड़) से युक्त मनुष्यपर उस हवा का असर शीघ्र ही होता है[1] ।

इस रोग का दूसरा कारण खुराक है अर्थात् कच्चा और भारी अन्न, मिर्चे, गर्म मसाले और शाक तरकारी आदि के खाने से वादी तथा मरोड़ा उत्पन्न होता है[2] ।

इस रोग की उत्पत्ति का क्रम यह है कि–जब दस्त की कब्जी रहती है तथा उस के कारण मल आँतों में भर जाता है तथा वह मल आँतों के भीतरी पड़त को घिसता है तब मरोड़ा उत्पन्न होता है ।

इस के सिवाय–गर्म खुराक के खाने से तथा ग्रीष्म ऋतु (गर्मी की मौसम) में सख्त जुलाब के लेने से भी कभी २ यह रोग उत्पन्न हो जाता है ।

लक्षण—मरोड़े का प्रारंभ प्रायः दो प्रकार से होता है अर्थात् या तो सख्त मरोड़ा होकर पहिले अतीसार के समान दस्त होता है अथवा पेट में कब्जी होकर सख्त दस्त होता है अर्थात् टुकड़े २ होकर दस्त आता है, प्रारम्भ में होनेवाले इस लक्षण के सिवाय–बाकी सब लक्षण दोनों प्रकार के मरोड़े में प्रायः समान ही होते हैं ।

इस रोग में दस्त की शंका वारंवार होती है[3] तथा पेट में ऐंठन होकर क्षण २ में थोड़ा २ दस्त होता है, दस्त की हाजत वारंवार होती है, काँख २ के[4] दस्त आता है (उतरता है), शौचस्थान में ही बैठे रहने के लिये मन चाहता है[5] तथा खून और पीप[6] गिरता है ।

कभी २ किसी २ के इस रोग में थोड़ा बहुत बुखार भी हो जाता है, नाड़ी जल्दी चलती है और जीभपर सफेद थर (मैल) जम जाती है ।

ज्यों २ यह रोग अधिक दिनों का (पुराना) होता जाता है त्यों २ इस में खून और पीप अधिक २ गिरता है तथा ऐंठन की पीड़ा बढ़ जाती है[7], बड़ी आँत के पड़त में

१–अशक्त और पाचन क्रिया के व्यतिक्रम से युक्त मनुष्य की जठराग्नि प्रायः पहिले से ही अल्पबल होती है तथा आमाशय में पहिले से ही विकार रहता है अतः उक्त हवा का स्पर्श होते ही उस का असर शरीर में हो कर शीघ्र ही मरोड़ा रोग उत्पन्न हो जाता है ॥

२–तात्पर्य यह है कि उक्त खुराक के ठीक रीति से न पचने के कारण पेट में आमरस हो जाता है वही आँतों में लिपट कर इस रोग को उत्पन्न करता है ॥

३–मल आतों में और गुदा की भीतरी वली में फँसा रहता है और ऐसा मालूम होता है कि वह गिरना चाहता है इसी से वारंवार दस्त की आशङ्का होती है ॥

४–काँख २ के अर्थात् विशेष बल करने पर ॥

५–वारंवार यह प्रतीत होता है कि अब मल उतरना चाहता है इस लिये शौचस्थान से उठने को जी नहीं चाहता है ॥

६–पीप अर्थात् कच्चा रस (आम वा गिलगिला पदार्थ) ॥

७–क्योंकि आँतों में फँसा हुआ मल आँतों को रगड़ता है ॥

शोथ (सूजन) हो जाता है, जिस से वह पड़त लाल हो जाता है पीछे उस में लम्बे और गोल जखम हो जाते हैं तथा उस में से पहिले खून और पीछे पीप गिरता है, इस प्रकार का तीक्ष्ण (तेज वा सख्त) मरोड़ा जब तीन वा चार अठवाड़ेतक बना रहता है तब वह पुराना गिना जाता है, पुराना मरोड़ा वर्षोंतक चलता (ठहरता) है तथा जब इस का अच्छा और योग्य (मुनासिब) इलाज होता है तब ही यह जाता है, इसी पुराने मरोड़े को संग्रहणी कहते हैं[1] पूरे पथ्य और योग्य दवा के न मिलने से इस रोग से हज़ारों ही आदमी मर जाते हैं।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा करने से प्रथम यह देखना चाहिये कि–आँतों में सूजन है वा नहीं, इस की परीक्षा पेट के दवाने से हो सकती है अर्थात् जिस जगह पर दवाने से दर्द मालूम पड़े उस जगह सूजन का होना जानना चाहिये[2], यदि सूजन मालूम हो तो पहिले उस की चिकित्सा करनी चाहिये[3], सूजन के लिये यह चिकित्सा उत्तम है कि–जिस जगह पर दवाने से दर्द मालूम पड़े उस जगह राई का पलाष्टर (पलस्तर) लगाना चाहिये तथा यदि रोगी सह सके तो उस जगह पर जोंक लगाना चाहिये और पीछे गर्म पानी से सेंक करना चाहिये तथा अलसी की पोल्टिस लगानी चाहिये, ऐसी अवस्था में रोगी को स्नान नहीं करना चाहिये और न ठंढी हवा में बाहर निकलना चाहिये किन्तु बिछौनेपर ही सोते रहना चाहिये[4], आँतों में से मल से भरे हुए मैल को निकालने के लिये छः मासे छोटी हरड़ों का अथवा सोंठ की उकाली में अंडी के तेल का जुलाब देना चाहिये, क्योंकि प्रायः प्रारंभावस्था में मरोड़ा इस प्रकार के जुलाब से ही मिट जाता है अर्थात् पेट में से मैल से युक्त मल निकल जाता है, दस्त साफ होने लगता है तथा पेट की ऐंठन और वारंवार दस्त की हाजत मिट जाती है।

यह भी स्मरण रहे कि–मरोड़े वाले को अंडी के तेल के सिवाय दूसरा भारी जुलाब कभी नहीं देना चाहिये, यदि कदाचित् किसी कारण से अंडी के तेल का जुलाब न देना

१–अर्थात् पुराना मरोड़ा हो जानेपर दूषित हुई जठराग्नि ग्रहणी नाम छठी कला को भी दूषित कर देती है (अग्निधरा कला को संग्रहणी वा ग्रहणी कहते हैं) ॥

२–क्योंकि सूजन के स्थान में ही दवाव पड़ने से दर्द हो सकता है अन्यथा (सूजन न होनेपर) दवाने से दर्द नहीं हो सकता है ॥

३–पहिले सूजन की चिकित्सा हो जाने से अर्थात् चिकित्साद्वारा सूजन के निवृत्त हो जाने से आँतें नरम पड़ जाती हैं और आँतों के नरम पड़ जाने से मरोड़ा के लिये की हुई चिकित्सा से शीघ्र ही लाभ पहुँचता है ॥

४–क्योंकि पलाष्टर आदि के लगाने के समय में स्नान करने से अथवा ठंढी हवा के लग जाने से विशेष रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा कभी २ सूजन में भी ऐसा विकार हो जाता है कि वह मिटती नहीं है तथा पक २ कर फूटने लगती है, इस लिये ऐसी दशा में स्नान आदि न करने का पूरा ध्यान रखना चाहिये ॥

हो तो अंडी के तेल में भूनी हुई छोटी हरड़ें दो रुपये भर, सोंठ ५ मासे, सोंफ एक रुपये भर, सोनामुखी (सनाय) एक रुपये भर तथा मिश्री पांच रुपये भर, इन औषधों का जुलाब देना चाहिये, क्योंकि यह जुलाब भी लगभग अण्डी के तेल का ही काम देता है[1] ।

मरोड़ावाले रोगी को दूध, चावल, पतली घाट, अथवा दाल के सादे पानी के सिवाय दूसरी खुराक नहीं लेनी चाहिये ।

वस इस रोग में प्रारंभ में तो येही[2] इलाज करना चाहिये, इस के पश्चात् यदि आवश्यकता हो तो नीचे लिखे हुए इलाजों में से किसी इलाज को करना चाहिये ।

१-अफीम मरोड़े का रामबाण के समान इलाज है, परन्तु इसे युक्ति से लेना चाहिये अर्थात् हिंगाष्टक चूर्ण के साथ गेहूँ भर अफीम को मिला कर रात को सोते समय लेना चाहिये ।

अथवा-अफीम के साथ आठ आनेभर सोये को कुछ सेककर (भूनकर) तथा पानी के साथ पीसकर पीना चाहिये ।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि मरोड़ा तथा दस्त को रोकने के लिये यद्यपि अफीम उत्तम औषध है परन्तु अण्डी का तेल लेकर पेट में से मैल निकालेविना प्रथम ही अफीम का लेना ठीक नहीं है, क्योंकि पहिले ही अफीम ले लेने से वह विगड़े हुए मल को भीतर ही रोक देती है अर्थात् दस्त को वन्द कर देती है ।

२-ईशवगोल अथवा सफेदजीरा मरोड़े में वहुत फायदा करता है, इस लिये आठ २ आने भर जीरे को अथवा ईशवगोल को[3] दिन में तीन वार दही के साथ लेना चाहिये, यह दवा दस्त की कब्जी किये विना ही मरोड़े को मिटा देती है[4] ।

३-यदि एक वार अण्डी का तेल लेनेपर भी मरोड़ा न मिटे तो एक वा दो दिन ठहर कर फिर अण्डी का तेल लेना चाहिये तथा उसे या तो सोंठ की उकाली में या पिपरमेंट के पानी में अथवा अदरख के रस में लेना चाहिये अथवा लाडेनम अर्थात् अफीम के अर्क में लेना चाहिये, ऐसा करने से वह पेट की वायु को दूर कर दस्त को मार्ग देता है ।

४-वेल का फल भी मरोड़े के रोग में एक अकसीर इलाज है अर्थात् वेल की गिरी को गुड़ और दही में मिला कर लेने से मरोड़ा मिट जाता है ।

१-अर्थात् यह जुलाब भी अण्डी के तेल के समान मल को सहज में निकाल देता है तथा कोठे में अपना तीक्ष्ण प्रभाव उत्पन्न नहीं करता है ॥

२-यही अर्थात् ऊपर कहा हुआ ॥

३-अर्थात् दोनों में से किसी एक पदार्थ को दिन में दो तीन वार दही के साथ लेना चाहिये तथा एक समय में आठ आने भर मात्रा लेनी चाहिये ॥

४-मरोड़े की दूसरी दवाइयां प्रायः ऐसी हैं कि वे मरोड़े को तो मिटाती हैं लेकिन कुछ दस्त की कब्ज़ी करती हैं लेकिन यह दवा ऐसी नहीं है ॥

ऊपर लिखे हुए इलाजों में से यदि किसी इलाज से भी फायदा न हो तो उस रोग को असाध्य समझ लेना चाहिये[1], पीछे उस असाध्य मरोड़े में दस्त पतला (पानी के समान) आता है, शरीर में बुखार बना रहता है तथा नाड़ी शीघ्र चलती है।

इस के सिवाय यदि इस रोग में पेट का दूखना बराबर बना रहे तो समझ लेना चाहिये कि आँतों में अभी शोथ (सूजन) है तथा अन्दर ज़ख़म है, ऐसी हालत में अथवा इस से पूर्व ही इस रोग का किसी कुशल वैद्य से इलाज करवाना चाहिये।

संग्रहणी—पहिले कह चुके हैं कि-पुराने मरोड़े को संग्रहणी कहते हैं, उस (संग्रहणी) का निदान (मूल कारण) वैद्यक शास्त्रकारों ने इस प्रकार लिखा है कि कोष्ठ में अग्नि के रहने का जो स्थान है वही अन्न को ग्रहण करता है इस लिये उस स्थान को ग्रहणी कहते हैं, अर्थात् ग्रहणी नामक एक आँत है जो कि कच्चे अन्न को ग्रहण कर धारण करती है तथा पके हुए अन्न को गुदा के मार्ग से निकाल देती है[2], इस ग्रहणी में जो अग्नि है वास्तव में वही ग्रहणी कहलाती है[3], जब अग्नि किसी प्रकार दूषित (खराब) होकर मन्द पड़ जाती है तब उस के रहने का स्थान ग्रहणी नामक आँत भी दूषित (खराब) हो जाती है[4]।

वैद्यक शास्त्र में यद्यपि ग्रहणी और संग्रहणी, इन दोनों में थोड़ा सा भेद दिखलाया है अर्थात् वहां यह कहा गया है कि-जो आमवायु का संग्रह करती है उसे संग्रहणी कहते हैं, यह (संग्रहणी रोग) ग्रहणी की अपेक्षा अधिक भयदायक होता है परन्तु हम यहांपर दोनों की भिन्नता का परिगणन (विचार) न कर ऐसे इलाज लिखेंगे जो कि सामान्यतया दोनों के लिये उपयोगी हैं।

कारण—जिस कारण से तीक्ष्ण मरोड़ा होता है[5] उसी कारण से संग्रहणी भी होती है, अथवा तीक्ष्ण मरोड़ा के शान्त होने (मिटने) के बाद मन्दाग्निवाले पुरुष के तथा कुपथ्य आहार और विहार करनेवाले पुरुष के पुराना मरोड़ा अर्थात् संग्रहणी रोग हो जाता है[6]।

लक्षण—पहिले कह चुके हैं कि ग्रहणी आँत कच्चे अन्न को ग्रहण कर धारण करती है तथा पके हुए को गुदा के द्वारा बाहर निकालती है, परन्तु जब उस में किसी प्रकार

१-अर्थात् उसे चिकित्साद्वारा भी न जानेवाला जान लेना चाहिये ॥

२-चरक ऋषि ने कहा है कि "जठराग्नि के रहने का स्थान तथा भोजन किये हुए अन्न का ग्रहण करने से उस को ग्रहणी कहते हैं, वह कच्चे अन्न का ग्रहण तथा पक्व का अधःपातन करती है" ॥

३-यही छठी पित्तधरा नामक कला है तथा यह आमाशय और पक्वाशय के बीच में है ॥

४-इसी लिये तो कहा गया है कि अतीसार रोग में जुलाब लेने के समान पथ्य करना चाहिये ॥

५-उस कारण का कथन पहिले किया जा चुका है ॥

६-इस में प्रत्येक दोष के कुपित करने के कारण को भी जान लेना चाहिये अर्थात् वात को कुपित करनेवाला कारण वातजन्य संग्रहणी का भी कारण है, इसी प्रकार शेष दोषों में भी जान लेना चाहिये ॥

का दोष उत्पन्न हो जाता है तब ग्रहणी वा संग्रहणी रोग हो जाता है, उक्त रोग में ग्रहणी कच्चे अन्न का ग्रहण करती है तथा कच्चे ही अन्न को निकालती है अर्थात् पेट छूट कर कच्चा ही दस्त हो जाता है[1], इस रोग में दस्त की संख्या भी नहीं रहती है[2] और न दस्त का कुछ नियम ही रहता है, क्योंकि प्रायः ऐसा देखा जाता है कि–थोड़े दिनोंतक दस्त वन्द रह कर फिर होने लगते हैं, इस के सिवाय कभी २ एकाध दस्त होता है और कभी २ वहुत दस्त होने लगते हैं।

इस रोग में मरोड़े के समान पेट में ऐंठन, आमवायु, पेट का कटना, वारंवार दस्त का होना और वंद होना, खाये हुए अन्न के पचजानेपर अथवा पचने के समय अफरे का होना तथा भोजन करने से उस अफरे की शान्ति का होना तथा वादी की गांठ की छाती के दर्द की ओर तिल्ली के रोग की शंका का होना, इत्यादि लक्षण प्रायः देखे जाते हैं।

अनेक समयों में इस रोग में पतला, सूखा, कच्चा, शब्दयुक्त (आवाज के साथ) तथा झागोंवाला दस्त होता है, शरीर सूखता जाता है अर्थात् शरीर का खून उड़ता जाता है, इसकी अन्तिम (आखिरी) अवस्था में शरीर में सूजन हो जाती है और आखिरकार इस रोग के द्वारा मनुष्य बोलता २ मर जाता है।

इस रोग के दस्त में प्रायः अनेक रंग का खून और पीप गिरा करता है[3]।

चिकित्सा—१–पुरानी संग्रहणी अतिकष्टसाध्य[4] हो जाती है अर्थात् साधारण चिकित्सा से वह कभी नहीं मिट सकती है[5], इस रोग में रोगी की जठराग्नि ऐसी खराब हो जाती है कि–उस की होजरी किसी प्रकार की भी खुराक को लेकर उसे नहीं पचा सकती है, अर्थात् उस की होजरी एक छोटे से वच्चे की होजरी से भी अति नाताकत हो जाती है, इस लिये इस रोग से युक्त मनुष्य को हलकी से हलकी[6] खुराक खानी चाहिये।

२–संग्रहणी रोग में छाछ सर्वोत्तम खुराक है, क्योंकि यह (छाछ) दवा और पथ्य दोनों का काम निकालती है, इस लिये दोषों का विचार कर भूनी हुई हींग, जीरा और सेंधा निमक डाल कर इसे पीना चाहिये, परन्तु वह छाछ थर (मलाई) निकाले हुए

१–अर्थात् इस रोग में अन्न का परिपाक नहीं होता है ॥

२–अर्थात् वेशुमार दस्त होते हैं ॥

३–इस रोग में ये सामान्य से लक्षण लिखे गये हैं इन के सिवाय–दोषविशेष के अनुसार इस रोग में भिन्न २ लक्षण भी होते हैं, जिन को वुद्धिमान् जन देख कर दोषविशेष का ज्ञान कर सकते हैं अथवा दोषों के अनुसार इस रोग के पृथक् २ लक्षण दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में वर्णित हैं वहां देख कर इस विषय का निश्चय कर लेना चाहिये ॥

४–वड़ी ही कठिनता से निवृत्त होनेयोग्य ॥

५–इस लिये इस रोग की चिकित्सा किसी अतिकुशल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये ॥

६–हलकी से हलकी अर्थात् अत्यन्त हलकी ॥

दही में चौथा हिस्सा पानी डाल कर विलोई हुई होनी चाहिये, अर्थात् दही में चौथाई हिस्से से अधिक पानी डाल कर नहीं विलोना चाहिये[1], क्योंकि गाढ़ी छाछ इस रोग में उत्तम खुराक है, अर्थात् अधिक फायदा करती है, संग्रहणीवाले रोगी के लिये अकेली छाछ ही ऊपर लिखे अनुसार उत्तम खुराक है, क्योंकि यह पोषण कर जठराग्नि को प्रबल करती है।

इस रोग से युक्त मनुष्य को चाहिये कि-किसी पूर्ण विद्वान् वैद्य की सम्मति से सब कार्य करे, किन्तु मूर्ख वैद्य के फन्दे में न पड़े[2]।

छाछ के कुछ समयतक सेवन करने के पीछे भात आदि हलकी खुराक का लेना प्रारंभ करना चाहिये तथा हलकी खुराक के लेने के समय में भी छाछ के सेवन को नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि मृत्यु के मुख में पड़े हुए तथा अस्थि (हाड़) मात्र शेष रहे हुए भी संग्रहणी के रोगी को विद्वानों की सम्मति से ली हुई छाछ अमृतरूप होकर जीवन-दान देती है, परन्तु यह स्मरण रहे कि-धीरज रखकर कई महीनोंतक अकेली छाछ ही को पीकर रोगी को रहना चाहिये, सत्य तो यह है कि-इस के सिवाय दूसरा साधन इस रोग के मिटाने के लिये किसी ग्रन्थ में नहीं देखा गया है।

इस रोग से युक्त पुरुष के लिये तक्रसेवन का गुणानुवाद जैनाचार्यरचित योगचिन्तामणि नामक वैद्यक ग्रन्थ में बहुत कुछ लिखा है[3] तथा इस के विषय में हमारा प्रत्यक्ष अनुभव भी है अर्थात् इस को हमने पथ्य और दवा के रूप में ठीक रीति से पाया है।

३-मूंग की दाल का पानी, धनियां, जीरा, सेंधा निमक और सोंठ डाल कर छाछ को पीना चाहिये।

४-ढाई मासे वेल की गिरी को छाछ में मिला कर पीना चाहिये तथा केवल छाछ की ही खुराक रखनी चाहिये।

५-**दुग्धवटी**—शुद्ध वत्सनाग चार वाल भर, अफीम चार वाल भर, लोहभस्म पांच रत्ती भर तथा अभ्रक एक मासे भर, इन सब को दूध में पीस कर दो दो रत्ती की गोलियां बनानी चाहियें तथा उन का शक्ति के अनुसार सेवन करना चाहिये, यह संग्रहणी तथा सूजन की सर्वोत्तम ओषधि है, परन्तु स्मरण रहे कि-जब तक इस दुग्धवटी का सेवन किया जावे तब तक दूध के सिवाय दूसरी खुराक नहीं खानी चाहिये।

१-अर्थात् छाछ को अधिक पानी डाल कर पतली नहीं कर देनी चाहिये ॥

२-क्योंकि पूर्ण विद्वान् वैद्य की सम्मति के अनुसार सब कार्य न करके मूर्ख वैद्य के फन्दे में फँस जाने से यह रोग अवश्य ही प्राणों का शत्रु हो जाता है अर्थात् प्राण ले कर ही छोड़ता है ॥

३-तथा अन्य ग्रन्थों में भी इस के विषय में बहुत कुछ कहा गया है अर्थात् इस के विषय में यहांतक कहा गया है कि जैसे स्वर्गलोक में देवताओं के लिये सुखकारी अमृत है उसी प्रकार इस संसार में अमृत के समान सुखकारी छाछ है, इस में बड़ी भारी एक विशेषता यह है कि इस के सेवन से दग्ध हुए दोष फिर नहीं उठते (उभड़ते) हैं ॥

विशेषसूचना—अतीसार रोग में लिखे अनुसार इस रोग में भी अधिक स्नान नहीं करना चाहिये, अधिक जल नहीं पीना चाहिये, स्निग्ध (चिकना) अधिक खान पान नहीं करना चाहिये, जागरण नहीं करना चाहिये, वहुत परिश्रम (महनत) नहीं करना चाहिये तथा स्वच्छ (साफ़) हवा का सेवन करते रहना चाहिये, इस रोग के लिये सामुद्रिक पवन (दरियाव की हवा) अथवा यात्रासम्बंधी हवा अधिक फ़ायदेमन्द है[1] ॥

कृमि, चूरणिया, गिंडोला (वर्म्स) का वर्णन ॥

विवेचन—कृमियों के गिरने से शरीर में जो २ विकार उत्पन्न होते हैं यद्यपि वे अति भयंकर हैं परन्तु प्रायः मनुष्य इस रोग को साधारण समझते हैं, सो यह उन की वड़ी भूल है, देखो ! देशी वैद्यक शास्त्र में तथा डाक्टरी चिकित्सा में इस रोग का वहुत कुछ निर्णय किया है अर्थात् इस के विषय में वहां वहुत सी सूक्ष्म (वारीक) वातें वतलाई गई हैं, जिन का जान लेना मनुष्यमात्र को अत्यावश्यक (वहुत जरूरी) है, यद्यपि उन सव वातों का विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहांपर हमें भी आवश्यक है परन्तु ग्रन्थ के वढ़ जाने के भय से उन को विस्तारपूर्वक न वतला कर संक्षेप से ही उन का वर्णन करते हैं।

भेद—कृमि की मुख्यतया दो जाति हैं-वाहर की और भीतर की, उन में से वाहर की कृमि ये हैं-जुँए, लीख और चर्मजुँए, इत्यादि, और भीतर की कृमि ताँतू आदि हैं[2]।

इन कृमियों में से कुछ तो कफ में, कुछ खून में और कुछ मल में उत्पन्न होती हैं।

कारण—वाहर की कृमि शरीर तथा कपड़े के मैलेपन अर्थात् गलीजपन से होती हैं[3] और भीतर की कृमि अजीर्ण में खानेवाले के, मीठे तथा खट्टे पदार्थों के खानेवाले के, पतले पदार्थों के खानेवाले के[4], आटा, गुड़ और मीठा मिले हुए पदार्थ के खानेवाले के, दिन में सोनेवाले के, परस्पर विरुद्ध अन्न पान के खानेवाले के, वहुत वनस्पति की खुराक के खानेवाले के तथा वहुत मेवा आदि के खानेवाले के प्रकट होती हैं।

प्रायः ऐसा भी होता है कि-कृमियों के अण्डे खुराक के साथ में पेट में चले जाते हैं तथा आँतों में उन का पोषण होने से उन की वृद्धि होती रहती है[5]।

१-ग्रहणी के आधीन जो रोग हैं उन की अजीर्ण के समान चिकित्सा करनी चाहिये, इस (ग्रहणी) रोग में लंघन करना, दीपनकर्त्ता औषधों का देना तथा अतीसार रोग में जो चिकित्सायें कही गई हैं उन का प्रयोग करना लाभदायक है, दोषों का आम के सहित होना वा आम से रहित होना जिस प्रकार अतीसार रोग में कह दिया गया है उसी प्रकार इस में भी जान लेना चाहिये, यदि दोष आम के सहित हों तो अतीसार रोग के समान ही आम का पाचन करना चाहिये, पेया आदि हलके अन्न को खाना चाहिये तथा पञ्चकोल आदि को उपयोग में लाना चाहिये ॥

२-ताँतू कृमि गोल, चपटी तथा २० से ३० फीटतक लम्बी होती हैं ॥

३-अर्थात् वाहरी कृमि वाहरी मल (पसीना आदि) से उत्पन्न होती हैं ॥

४-पतले पदार्थों के अर्थात् कढ़ी, पना और श्रीखण्ड आदि पदार्थों के खानेवाले के ॥

५-अर्थात् यह भीतरी कृमियों का वाह्य कारण है ॥

लक्षण—बाहर के जुँए तथा लीखें यद्यपि प्रत्यक्ष ही दीखते हैं तथापि चमड़ीपर ददोड़े, फोड़े, फुनसी, खुजली और गड़गूमड़ का होना उन की सत्ता (विद्यमानता) के प्रत्यक्ष चिह्न हैं[1]।

अब पृथक् २ कारणों से उत्पन्न होनेवाली कृमियों के लक्षणों को लिखते हैं:—

१–कफ से उत्पन्न हुई कृमियों में[2] कुछ तो चमड़े की मोटी डोरी के समान, कुछ अलसिये के समान, कुछ अन्न के अंकुर के समान, कुछ बारीक और लम्बी तथा कुछ छोटी २ होती हैं।

इन के सिवाय कुछ सफेद और लाल झाँईवाली भी कृमि होती हैं, जिन की सात जातियां हैं[3]–इन के शरीर में होने से जीका मचलाना, मुँह में से लार का गिरना, अन्न का न पचना, अरुचि, मूर्छा, उलटी, बुखार, पेट में अफरा, खांसी, छींक और श्लेष्म[4], ये लक्षण होते हैं।

२–खून से उत्पन्न होनेवाली कृमि छः प्रकार की होती हैं[5], और वे इस प्रकार सूक्ष्म होती हैं कि–सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से ही उन को देख सकते हैं, इन कृमियों से कुष्ठ आदि अर्थात् चमड़ी के रोग उत्पन्न होते हैं।

३–विष्ठा अर्थात् दस्त से उत्पन्न होनेवाली कृमि गोल, महीन, मोटी, सफेद, पीले, काले तथा अधिक काले रंग की भी होती हैं, ये कृमि पांच प्रकार की होती हैं[6]–जब कृमि होजरी के सम्मुख जाती है तब दस्त, गांठ, मल का अवरोध (रुकना), शरीर में दुर्बलता, वर्ण का फीकापन, रोंगटे खड़े होना, मन्दाग्नि तथा बैठक में खुजली, इत्यादि चिह्न होते हैं।

कृमि विशेषकर बच्चों के उत्पन्न होती है. उस दशा में उन की भूख या तो बिलकुल ही जाती रहती है वा सब दिन भूख ही भूख बनी रहती है।

१–अर्थात् कोठपिटिका (फुंसी), खुजली और गलगण्डादि से उन की विद्यमानता का ठीक निश्चय हो जाता है, क्योंकि कोठपिटिका आदि कृमियों से ही उत्पन्न होती हैं ॥

२–उड़द, गुड़, दूध, दही और सिरका, इन पदार्थों का सेवन करने से कफजन्य कृमि प्रकट होती हैं तथा ये कृमियां आमाशय में प्रकट होकर तथा बढ़कर सब देह में विचरती हैं ॥

३–वे सात जातियां ये हैं–अन्त्रादा (आँतों को खानेवाली), उदरावेष्टा (पेटमें लिपटी रहनेवाली), हृदयादा (हृदय को खानेवाली), महागुद, चुरव (चिनूना), दर्भकुसुमा (डाभ अर्थात् कुश के फूल के समान) और सुगन्धा ॥

४–श्लेष्म अर्थात् पीनस रोग ॥

५–केशादा, लोमविध्वंसा, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस और मातर, ये छः जातियां रक्तज कृमियों की हैं ॥

६–विष्ठासे उत्पन्न हुई कृमियों की–ककेरुक, मकेरुक, सौसुरादा, मलना और लेलिहा, ये पांच जातियां हैं ॥

इन के सिवाय-पानी की अधिक प्यास, नाक का घिसना, पेट में दर्द, मुख में दुर्गन्धि, वमन, बेचैनी, अनिद्रा (नींद का न आना), गुदा में कांटे, दस्त का पतला आना, कभी दस्त में और कभी मुख के द्वारा कृमियों का गिरना, खुराक की अल्पता (कमी), बकना, नींद में दाँतों का पीसना, चौंक उठना, हिचकी और खैंचातान, इत्यादि लक्षण भी इस रोग में होते हैं ।

इस रोग में कभी २ ऐसा होता है कि-लक्षणों का ठीक परिज्ञान न होने से वैद्य वा डाक्टर भी इस रोग का निश्चय नहीं कर सकते हैं ।

जब यह रोग प्रबल हो जाता है तब हैज़ा, मिरगी और क्षिप्तचित्तता (दीवानापन) इत्यादि रोग भी इसी से उत्पन्न हो जाते हैं[1] ।

चिकित्सा—१-यदि कृमि गोल हों तो इन के दूर करने के लिये सैंटोनाईन[2] सादी और अच्छी चिकित्सा है, इस के देने की विधि यह है कि एक से पांच ग्रेन तक सैंटोनाईन को मिश्री के साथ में रात को देना चाहिये[3] तथा प्रातःकाल थोड़ा सा अंडी का तेल पिलाना चाहिये, ऐसा करने से दस्त के द्वारा कृमियां निकल जावेंगी, यदि पेट में अधिक कृमियों की शंका हो तो एक दो दिन के बाद फिर भी इसी प्रकार करना चाहिये, ऐसा करने से सब कृमियां निकल जावेंगी ।

ऊपर कही हुई चिकित्सा से बच्चे की दो तीन दिन में ५० से १०० तक कृमियां निकल जाती हैं ।

बहुत से लोग यह समझते हैं कि-जब कृमि की कोथली (थैली) निकल जाती है तब बच्चा मर जाता है, परन्तु यह उन का मिथ्या भ्रम है[4] ।

१-यदि सैंटोनाईन न मिल सके तो उस के बदले (एवज़) में बाज़ार में जो लोझेन्लीस अर्थात् गोल चपटी टिकियां बिकती हैं[5] उन्हें देना चाहिये, क्योंकि उन में भी सैंटोनाईन के साथ बूरा वा दूसरा मीठा पदार्थ मिला रहता है, इन में एक सुभीता यह भी है कि बच्चे इन्हें मिठाई समझ कर शीघ्र ही खा भी लेते हैं ।

१-अर्थात् हैज़ा और मिरगी आदि इस रोग के उपद्रव हैं ॥

२-यह एक सफेद, साफ तथा कडुए स्वादवाली वस्तु होती है तथा अँग्रेज़ी औषधालयों में प्रायः सर्वत्र मिलती है ॥

३-रात को देने से दवा का असर रातभर में खूब हो जाता है अर्थात् कृमियां अपने स्थान को छोड़ देती हैं तथा निःसत्व सी हो जाती हैं तथा प्रातःकाल अण्डी के तेल का जुलाब देने से सब कृमियां शौच के मार्ग से निकल जाती हैं और अग्नि प्रदीप्त होती है ॥

४-क्योंकि कृमियों की कोथली के निकलने से और बच्चे के मरने से क्या सम्बन्ध है ॥

५-ये प्रायः सफेद रंग की होती हैं तथा सौदागर लोगों के पास बिका करती हैं ॥

२-टरपेंटाइन कृमि को गिराती है इस लिये इस की चार ड्राम मात्रा को चार ड्राम अंडी के तेल, चार ड्राम गोंद के पानी और एक औंस सोए के पानी को मिला कर पिलाना चाहिये ।

३-अनार की जड़ की छाल एक रुपये भर लेकर तथा उस का चूर्ण कर उस में से आधा प्रातःकाल तथा आधा शाम को बूरा के साथ मिला कर फंकी बनाकर लेना चाहिये ।

४-वायविड़ंग[1] दो वाल, निसोत के छाल का चूर्ण एक वाल और कपीला एक वाल, इन सब औषधों को एक औंस उकलते (उबलते) हुए जल में पाव घंटे (१५ मिनट) तक भिगा कर उस का नितरा हुआ पानी लेकर दो २ चमसे भर तीन २ घंटे के बाद दिन में दो तीन वार लेना चाहिये, इस से कृमि निकल जाती हैं, परन्तु स्मरण रहे कि बुखार में यह दवा नहीं लेनी चाहिये[2] ।

५-यदि पेट में चपटी कृमि हों तो पहिले जुलाब देना चाहिये, पीछे क्यालोमेल[3] देना चाहिये तथा फिर जुलाब देना चाहिये ।

६-मेलफर[4] के तेल की ३० वा ४० बूंदें सोंठ के जल में देनी चाहियें और चार घंटे के पीछे अंडी का तेल अथवा जुलफे का जुलाब देना चाहिये[5] ।

७-यदि तांतू के समान कृमि हों तो क्यालोमेल तथा सेंटोनाइन के देने से वे निकल जाती हैं, परन्तु ये कृमियां वारंवार हो जाती हैं, इस लिये निमक के पानी की, कपासियों[6] के पानी की, अथवा लोहे के अर्क[7] में पानी मिला कर उस की पिचकारी गुदा में मारनी चाहिये, ऐसा करने से कृमि धुल कर निकल जाती हैं ।

८-आध सेर निमक को मीठे जल में गला कर तथा उसमें से तीन वा चार औंस लेकर उस की पिचकारी गुदा में मारनी चाहिये, इस से सब कृमियां निकल जाती हैं ।

९-पिचकारी के लिये इस के सिवाय-चूने का पानी भी मुफीद (फायदेमन्द) है, अथवा टिंकचर आफ स्टील की पिचकारी मारनी चाहिये, यदि टिंकचर आफ स्टील न मिले तो इस के बदले (एवज़) में सिताब के पत्तों को वफा[8] कर अथवा उन्हें पीस कर पानी निकाल लेना चाहिये तथा इस पानी की पिचकारी मारनी चाहिये, यह भी

१-केवल (अकेली) वायविडंग ही कृमि रोग का बहुत अच्छा इलाज है, अर्थात् इस ही के सेवन से सब कृमियां मिट जाती हैं ॥

२-बुखार में इस दवा के देने से वमन आदि की संभावना रहती है ॥

३-यह एक अंग्रेज़ी ओषधि है ॥

४-मेलफर नामक अंग्रेज़ी ओषधि है यह अस्पतालों में सर्वत्र मिलती है ॥

५-इस से सब कृमियां निकल पड़ती हैं ॥

६-कपासियों अर्थात् बिनौलों के पानी की ॥

७-लोहे का अर्क अस्पतालों में बहुत मिलता है ॥

८-बफाकर अर्थात् उबालकर ॥

बहुत फायदा करती है, परन्तु पिचकारी सदा मारनी चाहिये, और तीन चार दिन के बाद जुलाब देते रहना चाहिये।

१०–पलासपापड़े की बुरकी (चूर्ण) पाव तोला (चार आने भर) और बायविडंग पाव तोला, इन दोनों को छाछ में पिला कर दूसरे दिन जुलाव देना चाहिये।

११–वायविड़ंग के क्वाथ में उसी (वायविड़ंग) का चूर्ण डाल कर पिलाना चाहिये, अथवा उसे शहद में चटाना चाहिये।

१२–पलासपापड़े को जल में पीस कर तथा उस में शहद डाल कर पिलाना चाहिये।

१३–नींव के पत्तों का बफाया हुआ रस शहद मिला कर पिलाना चाहिये[3]।

१४–कृमियों के निकल जाने के पीछे बच्चे की तन्दुरुस्ती को सुधारने के लिये टिंकचर आफ स्टील की दश बूंदों को एक औंस जल में मिला कर कुछ दिनों तक पिलाते रहना चाहिये[4]।

विशेषसूचना—इस रोग में तिल का तेल, तीखे और कड़ुए पदार्थ, निमक, गोमूत्र (गाय की पेशाव), शहद, हींग, अजवायन, नींबू, लहसुन और कफनाशक (कफ को नष्ट करने वाले) तथा रक्तशोधक (खून को साफ करने वाले) पदार्थ पथ्य हैं, तथा दूध, मांस, घी, दही, पत्तों का शाक, खट्टा तथा मीठा रस और आटे के पदार्थ, ये सब पदार्थ कुपथ्य अर्थात् कृमियों को बढ़ाने वाले हैं, यदि कृमिवाले बच्चे को रोटी देना हो तो आटे में निमक डाल कर तवे पर तेल से तल कर देनी चाहिये, क्योंकि यह उस के लिये लाभदायक (फायदेमन्द) है ॥

आधाशीशी[5] का वर्णन ॥

कारण—आधाशीशी का दर्द प्रायः भौंओं में विशेष रहता है तथा यह (आधाशीशी का) दर्द मलेरिया की विषैली हवा से उत्पन्न होता है और ज्वर के समान नियत समय पर शिर में प्रारम्भ होता है[6], इस रोग में आधे दिनतक प्रायः शिर में दर्द अधिक रहता है[7], पीछे धीरे २ कम होता जाता है अर्थात् सायंकाल को बिलकुल बंद

१–पलासपापड़े की बुरकी अर्थात् ढाक के बीजों का चूर्ण ॥

२–वायविडंग डालकर औटाये हुए जल में वायविडंग का ही बघार देकर तैयार कर लेना चाहिये, इस के पीने से कृमिरोग और कृमिरोगजन्य सब रोग दूर हो जाते हैं ॥

३–धतूरे के पत्तों का रस भी शहद डाल कर पीने से कृमिरोग नष्ट हो जाता है ॥

४–क्योंकि टिंक्चर आफ स्टील शक्तिप्रद (ताकत देनेवाली) ओषधि है ॥

५–ग्यारह प्रकार के मस्तक रोगों (मस्तक सम्बंधी रोगों) में से यह आधाशीशी नामक एक भेद है, इस को संस्कृत में अर्धावभेदक कहते हैं, इस रोग में प्रायः आधे शिर में महाकठिन दर्द होता है ॥

६–नियत समय पर इस का प्रारंभ होता है तथा नियत समय पर ही इस की पीड़ा मिटती है ॥

७–अर्थात् ज्यों २ सूर्य चढ़ता है त्यों २ यह दर्द बढ़ता जाता है तथा ज्यों २ सूर्य ढलता है त्यों २ यह दर्द भी कम होता जाता है ॥

हो जाता है, परन्तु किसी २ के यह दर्द सब दिन रहता है तथा किसी २ समय अधिक हो जाता है।

कभी २ यह आधाशीशी का रोग अजीर्ण से भी हो जाता है तथा वारंवार गर्भ के रहने से, बहुत दिनों तक बच्चे को दूध पिलाने से तथा ऋतुधर्म में अधिक खून के जाने से कमज़ोर (नाताकत) स्त्रियों के भी यह रोग हो जाता है।

लक्षण—इस रोग में रोगी को अनेक कष्ट रहते हैं अर्थात् रोगी प्रातःकाल से ही शिर का दर्द लिये हुए उठता है, उस से कुछ भी खाया नहीं जाता है, शिर धड़कता है, बोलना चालना अच्छा नहीं लगता है, चेहरा फीका रहता है, आंख के किनारे संकुचित होते हैं, प्रकाश का सहन नहीं होता है, पुस्तक आदि देखा नहीं जाता है तथा शिर गर्म रहता है।

चिकित्सा—१-यह रोग शीतल उपचारों से प्रायः शान्त हो जाता है, इस लिये यथाशक्य (जहां तक हो सके) शीतल उपचार ही करने चाहियें।

२-पहिले कह चुके हैं कि-यह रोग मलेरिया की विषैली हवा से उत्पन्न होता है, इस लिये इस रोग में क्विनाइन का सेवन लाभदायक (फायदेमन्द) है[1], क्विनाइन की पांच ग्रेन की मात्रा तीन २ घंटे के बाद देनी चाहिये तथा यदि दस्त की कब्ज़ी हो तो जुलाब देना चाहिये।

३-होजरी, लीवर[2] तथा आँतों में कुछ विकार हो तो दस्त को साफ लाने वाली[3] तथा पुष्टिकारक दवा देनी चाहिये।

४-वर्त्तमान समय में बाल्यविवाह (छोटी अवस्था में शादी) के कारण स्त्रियों के प्रायः प्रदर रोग हो जाता है[4] तथा उस से उन का शरीर निर्बल (नाताक़त) हो जाता है और उसी निर्बलता के कारण प्रायः उन के यह आधाशीशी का रोग भी हो जाता है[5], इस लिये स्त्रियों के इस रोग की चिकित्सा करने से पूर्व यथाशक्य उन की निर्बलता को मिटाना चाहिये, क्योंकि निर्बलता के मिटने से यह रोग स्वयं ही शान्त हो जावेगा।

५-पहिले कह चुके हैं कि-यह रोग शीतल उपचारों से शान्त होता है, इस लिये इस का शीतल ही इलाज करना चाहिये, क्योंकि शीतल इलाज इस रोग में शीघ्र ही फायदा करता है।

१-क्योंकि क्विनाइन में मलेरिया की विषैली हवा के तथा उस से उत्पन्न हुए ज्वर आदि रोगों के दमन करने (दबा देने) की शक्ति है॥

२-लीवर अर्थात् यकृत्, जिसे भाषा में कलेजा कहते हैं॥

३-क्योंकि इस रोग में दस्त के साफ आते रहने से जल्दी फायदा होता है॥

४-क्योंकि प्रदर रोग का मुख्य कारण योग्य अवस्था के पहुंचने से पूर्व ही पुरुषसङ्गम करना है॥

५-क्योंकि आधाशीशी का एक कारण निर्बलता भी है॥

६-लवेंडर अथवा कोलन वाटर में दो भाग पानी मिला कर तथा उस में कपड़े को भिगा कर शिर पर रखना चाहिये, गुलावजल अथवा गुलावजल के साथ चन्दन को घिस कर अथवा उस में सांभर के सींग को घिस कर लगाना चाहिये।

७-अमोनिया अर्थात् नौसादर और चूने को सुँघाना चाहिये तथा पैरों को गर्म जल में रखना और शिर को दवाना चाहिये।

८-भौंओं पर दो जोंकें लगानी चाहियें।

९-इस रोगी को नकछीकनी सूँघनी चाहिये तथा सूर्योदय (सूर्य निकलने) के पहिले तुलसी और धतूरे के पत्तों का रस सूँघना चाहिये।

१०-घी में पीसे हुए सेंधे निमक को मिला कर उसे दिन में पांच सात वार सूंघना चाहिये, इस से आधाशीशी का दर्द अवश्य जाता रहता है।

११-इस रोग में ताज़ी जलेवी तथा ताज़ा खोवा (मावा) खाना चाहिये।

१२-नींव पर की गिलोय का हिम पीने से भी इस रोग में वहुत फायदा होता है।

उपदंश (गर्मी), चाँदी, टांकी, का वर्णन ॥

चाँदी का रोग वहुधा मनुष्य के वेश्यागमन (रंडीवाजी के करने) से होता है, तात्पर्य (मतलव) यह है कि-स्वाभाविक अर्थात् कुदरती नियम के अनुसार न चल कर उस का भंग करने से वुरे कार्य की यह जन्म भर के लिये सज़ा मिल जाती है।

जिस प्रकार यह रोग पुरुष के होता है उसी प्रकार स्त्री के भी होता है।

चाँदी एक प्रकार का चेपी रोग है, अर्थात् चाँदी की रसी (पीप) का चेप यदि किसी के लग जावे वा लगाया जावे तो उस के भी चाँदी उत्पन्न हो जाती है।

पहिले चाँदी और सुज़ाख, इन दोनों रोगों को एक ही समझा जाता था परन्तु अव यह वात नहीं मानी जाती है, अर्थात् वुद्धिमानों ने अव यह निश्चय किया है कि-चाँदी और सुज़ाख, ये दोनों अलग २ रोग हैं, क्योंकि सुज़ाख के चेप से सुज़ाख ही उत्पन्न होता है और चाँदी के चेप से चाँदी ही उत्पन्न होती है[५], इस लिये इन दोनों को

१-इस के सुँघाने से मगज़ में से विकृत (विकारयुक्त) जल नासिका के द्वारा निकल जाता है, अतः यह रोग मिट जाता है ॥

२-पैरों को गर्म जल में रखने से पानी की गर्मी नाड़ी के द्वारा मगज़ में पहुँच कर वायु का शमन कर देती है, जिस से रोगी को फायदा पहुँचता है ॥

३-क्योंकि जोंकों के लगाने से वे (जोंकें) भीतरी विकार को चूस लेती हैं, जिस से रोग मिट जाता है ॥

४-ऐसा करने से मगज़ में शक्ति के पहुँचने से यह रोग मिट जाता है ॥

५-और चाँदी तथा सुज़ाख के स्वरूप में तथा लक्षणों में वहुत भेद है ॥

अलग २ ही मानना ठीक है, तात्पर्य यह है कि वास्तव में ये दो प्रकार के रोग अनाचार (बदचलनी) से होते हैं।

चाँदी दो प्रकार की होती है—मृदु और कठिन, इन में से मृदु चाँदी उसे कहते हैं कि जो इन्द्रिय के जिस भाग में होती है उसी जगह अपना असर करती है अर्थात् उस भाग के सिवाय शरीर के दूसरे भागपर उस का कुछ भी असर नहीं मालूम होता है[1], हां इस में यह बात तो अवश्य होती है कि—जिस जगहपर यह चाँदी हुई हो वहां से इस की रसी लेकर यदि उसी आदमी के शरीरपर दूसरी जगह लगाई जावे तो उस जगहपर भी वैसी ही चाँदी पड़ जाती है।

दूसरे प्रकार की कठिन (कड़ी वा सख्त) चाँदी वह होती है जिस का असर सब शरीर के ऊपर मालूम होता है[2], इस में यह बड़ी भारी विशेषता (खासियत) है कि इस (दूसरे प्रकार की) चाँदी का चेप लेकर यदि उसी आदमी के शरीरपर दूसरी जगह लगाया जावे तो उस जगहपर उस का कुछ भी असर नहीं होता है[3], इस कठिन चाँदी को तीक्ष्ण गर्मी अर्थात् उपदंश का भयंकर रोग समझना चाहिये, क्योंकि इस के होने से मनुष्य के शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है, परन्तु नरम चाँदी में विशेष हानि की सम्भावना नहीं रहती है, इस के सिवाय नरम चाँदी के साथ यदि बदगांठ होती है तो वह प्रायः पकती है और फूटती है परन्तु कठिन—चाँदी के साथ जो बदगाँठ होती है वह पकती नहीं है, किन्तु बहुत दिनोंतक कड़ी और सूजी हुई रहती है, इस प्रकार से ये दो तरह की चाँदी भिन्न २ होती हैं और इन का परिणाम (फल) भी भिन्न २ होता है, इस लिये यह बहुत आवश्यक (जरूरी) बात है कि—इन दोनों को अच्छे प्रकार पहिचान कर इन की योग्य (उचित) चिकित्सा करनी चाहिये[4]।

नरम टांकी (सॉफ्ट शांकर)[5]—यह रोग प्रायः स्त्री के साथ सम्भोग करते समय इन्द्रिय के भाग के छिल जाने से तथा पूर्वोक्त (पहिले कहे हुए) रोग के चेप के लगने से होता है, यह चाँदी प्रायः दूसरे ही दिन अपना दिखाव देती है (दीख पड़ती है) अथवा पांच सात दिन के भीतर इस का उद्भव (उत्पत्ति) होता है।

यह (टांकी) फूल (सुपारी अर्थात् इन्द्रिय के अग्रिम भाग) के ऊपर पिछले गड्ढे में

१—अर्थात् यह शरीर के अन्य भागों में नहीं फूटती है ॥

२—अर्थात् इस चाँदी के असर से सब शरीरपर कुछ न कुछ विकार (फुंसी, ददोड़े, चकत्ते और चाँदी आदि) अवश्य होता है ॥

३—अर्थात् इस की रसी लगाने से दूसरे स्थानपर चाँदी नहीं पड़ती है ॥

४—क्योंकि यह कौन से प्रकार की चाँदी है इस बात का निश्चय कियेविना चिकित्सा करने से न केवल चिकित्सा ही व्यर्थ जाती है प्रत्युत (किन्तु) उलटी हानि हो जाती है ॥

५—साफ्ट अर्थात् मुलायम वा नरम ॥

चमड़ीपर होती है, इस रोग में यह भी होता है कि आसपास चेप के लगने से एक में से दो चार चाँदियां पड़ जाती हैं, चाँदी गोल आकार (शकल) की तथा कुछ गहरी होती है, उस के नीचे का तथा किनारे का भाग नरम होता है, उस की सपाटी के ऊपर सफेद मरा हुआ (निर्जीव) मांस होता है तथा उस में से पुष्कल (बहुतसी) रसी निकलती है।

कभी २ ऐसा भी होता है कि–चमड़ी फूल के ऊपर चढ़ी रहती है[1] और फूलपर सूजन के हो जाने से चमड़ी नीचे को नहीं उतर सकती है परन्तु कई बार चमड़ी के नीचे को उतर जाने के पीछे चाँदी की रसी भीतर रह जाती है इस लिये भीतर का भाग तथा चमड़ी सूज जाती है और चमड़ी सुपारी के ऊपर नहीं चढ़ती है, ऐसे समय में भीतर की चाँदी का जो कुछ हाल होता है उस को नज़र से नहीं देख सकते हैं।

कभी २ सुपारी के भीतर मूत्रमार्ग में (पेशाब के रास्ते में) चाँदी पड़ जाती है तथा कभी २ यह चाँदी ज़ब ज़ोर में होती है[2], उस समय आसपास की जगह खजती जाती है[3] तथा वह फैलती जाती है, उस को प्रसरयुक्त[4] टांकी (फाजेडीना) कहते हैं, इस चाँदी के साथ बदगांठ भी होती है तथा वह पककर फूटती है, जिस जगह बद होती है उस जगह गड्ढा पड़ जाता है और वह जल्दी अच्छा भी नहीं होता है[5], कभी २ इस चाँदी का इतना जोर होता है कि इन्द्रिय का बहुत सा भाग एका एक (अचानक) सड़ कर गिर जाता है, इस प्रकार कभी २ तो सम्पूर्ण इन्द्रिय का ही नाश हो जाता है, उस के साथ रोगी को ज्वर भी आ जाता है तथा बहुत दिनोंतक उसे अतिकष्ट उठाना पड़ता है, इस को सड़नेवाली चाँदी (स्लफींग) कहते हैं, ऐसी प्रसरयुक्त और सड़नेवाली टांकी प्रायः निर्बल (कमजोर) और दुःखप्रद (दुःख देनेवाली) स्थिति (हालत) के मनुष्य के होती है।

कभी २ ऐसा भी होता है कि–नरम[6] अथवा सादी चाँदी मूल से तो नरम होती है परन्तु पीछे कहीं २ किन्हीं २ दूसरे क्षोभक (क्षोभ अर्थात् जोश दिलानेवाले) कारणों से[7] कठिन हो जाती है तथा कहीं २ नरम और कठिन दोनों प्रकार की चाँदी साथ में ही एक ही स्थान में होती है, किन्हीं पुरुषों के इन्द्रिय के ऊपर सादी फुंसी और चाँदी होती

१–अर्थात् फूल का भाग खुला रह जाता है॥

२–अर्थात् तीक्ष्ण वा वेगयुक्त होती है॥

३–खजती जाती है अर्थात् निकम्मी पड़ती जाती है॥

४–प्रसरयुक्त अर्थात् फैलनेवाली॥

५–अर्थात् वह गड्ढा बहुत कठिनता से बहुत समय में तथा अनेक यत्नों के करनेपर मिटता है॥

६–नरम अर्थात् मन्द वेगवाली॥

७–क्षोभक कारणों से अर्थात् उस में वेग वा तीक्ष्णता को उत्पन्न करनेवाले कारणों से॥

है, उस का निश्चय करने में अर्थात् यह फुंसी वा चाँदी गर्मी की है वा नहीं, इस बात के निर्णय करने में बहुत कठिनता (दिक्कत वा मुश्किल) होती है ।

चिकित्सा—१-प्रथम जब सादी चाँदी हो उस समय उस को नाइट्रिक एसिड से जला देना चाहिये, अर्थात् एसिड की दो बूँदें उस के ऊपर डाल देनी चाहियें, अथवा रुई को एसिड में भिगा कर लगा देना चाहिये, परन्तु एसिड के लगाते समय इस बात का अवश्य खयाल रखना चाहिये कि-एसिड चाँदी के सिवाय दूसरी जगह न लगने पावे, यदि नाइट्रिक एसिड के लगाने से जलन मालूम पड़े तो उसपर पानी की धारा देनी (डालनी) चाहिये, ऐसा करने से विशेष एसिड (आवश्यकता से अधिक एसिड का भाग) जल जावेगा और जलन बंद हो जावेगी ।

२-यदि समयपर नाइट्रिक एसिड न मिले तो उस के बदले (एवज) में सिल्वर तथा पोटास कास्टिक लगाना चाहिये ।

३-इस रीति से जिस जगह चांदी हुई हो उस जगह को जला कर उस के ऊपर एक दिन पोल्टिस लगानी चाहिये कि जिस से जला हुआ भाग अलग होकर नीचे लाल जमीन दीखने लगे ।

४-यदि किसी जगह सफेद भाग हो और वह अच्छा न होता हो तो पहिले थोड़ा सा मोरथोथा लगाना चाहिये, पीछे उस के अंकुरों के आने के लिये इस नीचे लिखे हुए पानी में कपड़े को भिगा कर लगाना चाहिये-जिंकसलफास दश ग्रेन, टिंक्चर लवांडर कम्पाउँड दो ड्राम तथा पानी चार औंस, इन सब को मिला लेना चाहिये, यदि इस से आराम न हो तो ब्लाकवाश में कपड़े की चींट (धज्जी वा लीरी) को भिगा कर लपेटना चाहिये ।

५-इस प्रकार की चाँदियों को अच्छा करने के लिये आयडोफार्म अति उत्तम दवा है, उस को चाँदीपर बुरका कर ऊपर से पट्टी को लपेट कर बांध देना चाहिये ।

६-यदि चाँदी सुपारी के छिद्र में अथवा मणी के बीच में हो तो उस के बीच में हमेशा कपड़ा रखना चाहिये, क्योंकि ऐसा न करने से उस में से निकलती हुई रसी के दूसरी जगह लग जाने से विशेष टांकी के पड़ जाने की सम्भावना रहती है ।

१-नाइट्रिक एसिड एक प्रकार का तेज़ाब होता है ॥

२-क्योंकि चाँदी के सिवाय दूसरी जगहपर एसिड के गिरने से वह जगह भी जल जावेगी ॥

३-अर्थात् पोल्टिस के द्वारा वह जली हुई चमड़ी पोल्टिस के साथ ही उतर जावेगी तथा उस के उतरने से नीचे लाल ज़मीन दीखने लगेगी ॥

४-ऐसा करने से अन्दर से घाव भर जाता है तथा निर्जीव चमड़ी अलग हो जाती है ॥

५-कि जिस से चाँदी के स्थान का स्पर्श दूसरे स्थान से न होने पावे ॥

७-यदि फूल चमड़ी से ढका हुआ हो और भीतर की चाँदी न दीखती हो तो वोए-सीक लोशन के पानी की चमड़ी और फूल के बीच में पिचकारी लगानी चाहिये ।

८-यदि प्रसरयुक्त चाँदी हो तो उसपर भी कास्टिक लगा कर पीछे उसपर पोल्टिस बांधनी चाहिये कि जिस से उस के ऊपर का मृत (मरा हुआ अर्थात् निर्जीव) मांस अलग हो जावे ।

९-इन ऊपर कही हुई दवाइयों में से चाहे किसी दवा का प्रयोग किया जावे परन्तु उस के साथ में रोगी को शक्तिप्रद (ताकत देनेवाली) दवा अवश्य देते रहना चाहिये कि जिस से उस की शक्ति क्षीण (नष्ट) न होने पावे, शक्ति बनी रहने के लिये टार्ट्रेट आफ आयर्न बहुत अच्छी दवा है, इस लिये पांच से दश ग्रेनतक इस दवा को पानी के साथ दिनभर में तीन बार देते रहना चाहिये ।

१०-यदि चमड़ी का भाग सड़ जावे तो प्रथम उसपर पोल्टिस बाँध कर सड़े हुए भाग को अलग कर देना चाहिये तथा उस के अलग हो जाने के पीछे ऊपर लिखी हुई दवाइयों में से किसी एक दवा को लगाना चाहिये ।

११-यदि इन दवाइयों में से किसी दवा से फायदा न हो तो रेड प्रेसीपीटेट का मल्हम, कार्बोलिक तेल, अथवा वोएसिक मल्हम लगाना चाहिये ।

वद—टांकी के होने से एकतरफ अथवा दोनोंतरफ जाँघ के मूल में जो मोटी गांठ हो जाती है उस को वद कहते हैं, नरम टांकी के साथ जो वद होती है वह बहुधा पकेविना नहीं रहती है अर्थात् वह अवश्य पकती है तथा उस का दर्द भी बहुत होता है परन्तु कभी २ ऐसा भी होता है कि एक ही गांठ न होकर कई गांठें होकर पक जाती हैं तथा जांघ के मूल में गड्ढा पड़ जाता है जिस से रोगी बहुत दिनोंतक चल फिर नहीं सकता है ।

यह भी स्मरण रहे कि-इन्द्रिय के ऊपर जिस तरफ चाँदी होती है उसी तरफ वद भी होती है और बीच में अथवा दोनों तरफ यदि चाँदी होती है तो दोनों तरफ वद उठती है और वह पक जाती है तथा उस के साथ ज्वर आदि चिह्न भी मालूम होते हैं ।

पहिले कह चुके हैं कि कठिन चाँदी के साथ जो वद होती है वह प्रायः पकती नहीं है, इसी कारण उस में दर्द भी अधिक नहीं होता है ।

१-क्योंकि काष्टिक के लगाने से चाँदी का स्थान जल जावेगा, पीछे उसपर पोल्टिस बाँधने से वह जला हुआ भाग अर्थात् निर्जीव मांस अलग हो जावेगा और नीचे से साफ जगह निकल आवेगी ॥

२-क्योंकि शक्ति के नष्ट हो जाने से इस रोग का वेग बढ़ता है ॥

३-क्योंकि पोल्टिस को लगाकर सड़े हुए मांस के अलग किये विना दवा का उपयोग करने से उस (दवा) का असर भीतरतक नहीं पहुँच सकता है किन्तु उस सड़े हुए मांस के बीच में आ जाने से दवा का असर अन्दर पहुँचने से रुक जाता है ॥

चाँदी के साथ में जो वद होती है उस के होने का कारण यही है कि वद उस क्षत (चाँदी) का ही विष है और टांकी के होने का मूल कारण प्रत्येक व्यक्ति का विशिष्ट विष है, यह विष शोषण नलियों के मार्ग से वंक्षण (अंड कोश) के भीतरी पिण्ड में पहुँचता है, उस विष के पहुँचने से उस भागका शोथ हो जाता है और वही शोथ वड़ी गांठ के रूप में हो जाता है।

कठिन चाँदी का विष रुधिर के मार्ग से सब शरीर में फैल जाता है परन्तु मृदु (नरम) चाँदी का विष केवल उक्त पिण्ड तक ही पहुँचता है अर्थात् सब शरीर में नहीं फैलता है।

चिकित्सा—१—वद के प्रारंभ में रोगी को चलने फिरने का निषेध करना चाहिये, अर्थात् उसे अधिक चलने फिरने नहीं देना चाहिये, गर्म पानी का सेक करना चाहिये तथा उस पर वेलाडोना, आयोडीन टिंकचर, अथवा लीनीमेंट लगाना चाहिये तथा आवश्यकता के अनुसार जोंकें लगानी चाहियें।

२—नींव के पत्तों को वफाकर बांधना चाहिये, अथवा सिन्दूर तथा रेवतचीनी का शीरा बांधना चाहिये।

३—चूने और गुड़ को पानी में वांट कर (पीसकर) उस का लेप करना चाहिये।

४—जव वद पकनेपर आवे तव उसपर वारंवार अलसी की पोल्टिस वांधनी चाहिये, पीछे उस को शस्त्र से फोड़ देना चाहिये, अथवा उस के शिखर (ऊपरी भाग) को कास्टिक पोटास लगा कर फोड़ देना चाहिये तथा फूटने के बाद उस के ऊपर मल्हम-पट्टी लगानी चाहिये।

५—कभी २ ऐसा भी होता है कि—उस का मोटा तथा गहरा क्षत पड़ जाता है और उस पर चमड़ी की मोटी कोर लटक जाती है परन्तु उस में दर्द नहीं होता है, जब कभी ऐसा हो तो उस चमड़ी की मोटी कोर को निकाल डालना चाहिये तथा उस पर व्यालोमेल और आयोडोफार्म वुरकाना चाहिये तथा रेड प्रेसी पीटेट का मल्हम लगाना चाहिये अथवा रसकपूर का पानी लगाना चाहिये।

६—कठिन चाँदी के साथ मूढ वद होती है अर्थात् वह न तो पकती है और न वह अधिक दर्द करती है, वह वद इन ऊपर कहे हुए उपचारों (उपायों) से अच्छी नहीं हो

१—प्रत्येक व्यक्ति का विशिष्ट विष अर्थात् जुदी २ तासीरवाले हर एक पुरुष वा स्त्री का विशेष प्रकार का विष अर्थात् चेपी रोग को उत्पन्न करनेवाला एक ख़ास प्रकार का जहरीला असर ॥

२—क्योंकि चलने फिरने से वद की गांठ जोर पकड़ती है और जोर पकड़ लेनेपर अर्थात् कठिन रूप धारण कर लेनेपर उस का अच्छा होना दुस्तर हो जाता है ॥

३—अलसी की पोल्टिस के वांधने से वह अच्छी तरह से पक जाती है और खूब पक जाने के बाद शस्त्र आदि से फोड़ देने से उस का भीतरी सब मवाद (रसी) निकल जाता है तथा दर्द कम पड़ जाता है ॥

सकती है किन्तु वह तो उपदंश (गर्मी) के शारीरिक (शरीरसम्बन्धी) उपायों के साथ दूर हो सकती है ॥

कठिन तथा मृदु चाँदी के भेदों का वर्णन ॥

संख्या॥	मृदु चाँदी के भेद ॥	संख्या॥	कठिन चाँदी के भेद ॥
१	मलीन मैथुन करने के पीछे एक दो दिन में अथवा एक सप्ताह (हफ्ते) में दीखती है।	१	मलीन मैथुन करने के पीछे एक से लेकर तीन अठवाड़ों में दीख पड़ती है।
२	प्रारंभ में छोल अथवा चीरा होकर पीछे क्षत का रूप धारण करता है।	२	प्रारम्भ में फुनसी होकर फिर वह फूट कर क्षत (घाव) पड़ जाता है।
३	दवाकर देखने से तलभाग में नरम लगती है।	३	क्षत प्रारंभ से ही तलभाग में कठिन होता है।
४	क्षत की कोर तथा सपाटी वैठी हुई होती है, उसपर मृत मांस का थर होता है और उस में से तीव्र और गाढ़ा पीप निकलता है।	४	क्षत छोटा होता है, कोर बाहर को निकलती हुई होती है तथा सपाटी लाल होती है और उस में से पतली रसी निकलती है।
५	वहुधा एक में वहुत से क्षत होते हैं।	५	वहुधा एक ही क्षत होता है।
६	क्षत का चेप उसी मनुष्य के शरीर-पर दूसरी जिस २ जगह लग जाता है वहां २ वैसा ही मृदु क्षत[1] पड़ जाता है।	६	क्षत का चेप उसी मनुष्य के शरीर-पर दूसरी जिस २ जगह लग जाता है वहां २ दूसरा कठिन क्षत[3] नहीं होता है।
७	एक अथवा दोनों वंक्षणों[2] में वद होती है तथा वह प्रायः पकती है।	७	एक तरफ अथवा दोनों तरफ वद होती है उस में दर्द कम होता है और वह प्रायः पकती नहीं है।
८	इस क्षत में विशेष पीड़ा और शोथ होता है तथा प्रसर (फैलाव) करने-वाले और सड़नेवाले क्षत का उद्भव (उत्पत्ति) होता है और उस के सूखने में विलम्ब लगता है।	८	इस क्षत में पीड़ा तथा शोथ नहीं होता है तथा इस में प्रसर (फैलाव) करनेवाला और सड़नेवाला क्षत क्वचित् (कहीं २) ही पैदा होता है और वह जल्दी ही सूख जाता है।

१–मृदु क्षत अर्थात् नरम चाँदी ॥

२–वंक्षणों अर्थात् अण्डकोशों में अथवा उन के अति समीपवर्त्ती भागों में ॥

३–कठिन क्षत अर्थात् तीक्ष्ण चाँदी ॥

९ इस क्षत का असर स्थानिक है अर्थात् उसी जगहपर इस का असर होता है किन्तु वद के स्थान के सिवाय शरीर-पर दूसरी जगह असर नहीं होता है॥	९ इस क्षत के होने के पीछे थोड़े समय में इस का दूसरा चिह्न शरीर के ऊपर मालूम होने लगता है ॥

इस रीति से दोनों प्रकार की चाँदियों के भिन्न २ चिह्न ऊपर के कोष्ठ से मालूम हो सकते हैं और इन चिह्नों से वहुधा इन दोनों का निश्चय होना सुगम है[1] परन्तु कभी २ जब क्षत की दुर्दशा होने के पीछे ये चिह्न देखने में आते हैं तब उन का निर्णय होना कठिन पड़ जाता है[2] ।

कभी २ किसी दशा में शिश्न[3] के ऊपर कठिन और नरम दोनों प्रकार की चाँदियां साथ में ही होती हैं और कभी २ ऐसा होता है कि द्वितीय चिह्न के समय के आने से पूर्व चाँदी के भेद का निश्चय नहीं हो सकता है[4] ॥

कठिन टांकी (हॉर्ड[5] शांकर)—कठिन टांकी के होने के पीछे शरीर के दूसरे भागोंपर गर्मी का असर मालूम होने लगता है[6], जिस प्रकार नरम टांकी स्त्रीसंसर्ग के होने के पीछे शीघ्र ही एक वा दो दिन में दीखने लगती है उस प्रकार यह कठिन टांकी नहीं दीखती है किन्तु इस में तो यह क्रम होता है कि वहुधा इस में चार पांच दिन में अथवा एक अठवाड़े से लेकर तीन अठवाडों के भीतर एक वारीक[7] फुंसी होती है और वह फूट जाती है तथा उस की चाँदी पड़ जाती है, इस चांदी में से प्रायः गाढ़ा पीप नहीं निकलता है किन्तु पानी के समान थोड़ी सी रसी आती है, इस टांकी का मुख्य गुण यह है कि–इस को दवा कर देखने से इस का तलभाग कठिन मालूम होता है[8], कठिन इस तलभाग के द्वारा ही यह निश्चय, कर लिया जाता है कि गर्मी के विषने शरीर में प्रवेश कर लिया है[9], यह टांकी वहुधा एक ही होती है तथा इस के साथ में एक अथवा

१–अर्थात् ऊपर लिखे हुए पृथक् २ चिन्हों से दोनों प्रकार की चाँदी सहज में ही पहिचान ली जाती है ॥

२–क्योंकि क्षत के विगड़ जाने के वाद मिश्रितवत् हो जाने के कारण चिह्नों का ठीक पता नहीं लगता है ॥

३–शिश्न अर्थात् सुखेन्द्रिय (लिङ्ग) ॥

४–अर्थात् यह नहीं मालूम होता है कि यह कौन से प्रकार की चाँदी है ॥

५–हार्ड अर्थात् कठिन वा सख्त ॥

६–अर्थात् शरीर के अन्य भागोंपर भी गर्मी का कुछ न कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है ॥

७–वारीक अर्थात् वहुत छोटीसी ॥

८–अर्थात् चाँदी के नीचे का भाग सख्त प्रतीत होता है ॥

९–क्योंकि उस तलभाग के कठिन होने से यह निश्चय हो जाता है कि इसका उभाड़ (वेगपूर्वक उठना) कठिनता के साथ उठनेवाला है

दोनों वंक्षणों में वद हो जाती है अर्थात् एक अथवा दो मोटी गांठें हो जाती हैं परन्तु उस में दर्द थोड़ा होता है और वह पकती नहीं है, परन्तु यदि वद होने के पीछे वहुत चला फिरा जावे अथवा पैरों से किसी दूसरे प्रकार का परिश्रम करना पड़े तो कदाचित् यह गांठ भी पक जाती है[1] ।

चिकित्सा—१–इस चाँदी के ऊपर आयोडोफार्म, क्यालोमेल, रसकपूर का पानी-अथवा लाल मल्हम चुपड़ना चाहिये, ऐसा करने से टांकी शीघ्र ही मिट जावेगी, यद्यपि इस टांकी के मिटाने में विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता है[2] परन्तु इस टांकी से जो शरीरपर गर्मी हो जाती है तथा खून में विगाड़ हो जाता है उस का यथोचित (ठीक २) उपाय करने की वहुत ही आवश्यकता पड़ती है अर्थात् उस के लिये विशेष परिश्रम करना पड़ता है[3] ।

२–रसकपूर, मुरदासींग, कत्था, शंखजीरा और माजूफल, इन प्रत्येक का एक एक तोला, त्रिफले की राख दो तोले तथा धोया हुआ घृत[4] दश तोले, इन सब दवाइयों को मिला कर चाँदी तथा उपदंश के दूसरे किसी क्षत पर लगाने से वह मिट जाता है ।

३–त्रिफले की राख को घृत में मिला कर तथा उस में थोड़ा सा मोरथोथा पीस कर मिला कर चाँदी पर लगाना चाहिये ।

४–ऊपर कहे हुए दोनों नुसखों में से चाहे जिस को काम में लाना चाहिये परन्तु यह स्मरण रहे कि—पहिले त्रिफले के तथा नींव के पत्तों के जल से चाँदी को धो कर फिर उस पर दवा को लगाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से जल्दी आराम होता है ॥

गर्मी द्वितीयोपदंश (सीफीलीस) का वर्णन ॥

कठिन चाँदी के दीखने के पीछे वहुत समय के वाद शरीर के कई भागों पर जिस का असर मालूम होता है उस को गर्मी कहते हैं ।

यद्यपि यह रोग मुख्यतया (खासकर) व्यभिचार से ही होता है परन्तु कभी २ यह किसी दूसरे कारण से भी हो जाता है, जैसे–इसका चेप लग जाने से भी यह रोग हो जाता है, क्योंकि प्रायः देखागया है कि—गर्मीवाले रोगी के शरीरपर किसी भाग के काटने आदि का काम करते हुए किसी २ डाक्टर के भी जखम होगया है और उस के

१–तात्पर्य यह है कि वह गाँठ विना कारण नहीं पकती है ॥

२–क्योंकि यह मृदु होती है ॥

३–उस रक्तविकार आदि की चिकित्सा किसी कुशल वैद्य वा डाक्टर से करानी चाहिये ॥

४–घृत के धोने का नियम प्रायः सौ वार का है, हां फिर यह भी है कि जितनी ही वार अधिक धोया जावे उतना ही वह लाभदायक होता है ॥

चेप के प्रविष्ट (दाखिल) हो जाने से उस जखम के स्थान में टांकी पड़गई है और पीछे से उस के शरीर में भी गर्मी फूट निकली है, यह तो बहुत से लोगों ने देखा ही होगा कि-शीतला का टीका लगाते समय उस की गर्मी का चेप एक बालक से दूसरे बालक के लग जाता है, इस से सिद्ध है कि-यदि गर्मीवाला लड़का नीरोग धाय का भी दूध पीवे तो उस धाय के भी गर्मीका रोग हो जाता है तथा गर्मीवाली धाय हो और लड़का नीरोग भी हो तो भी उस धाय का दूध पीने से उस लड़के के भी गर्मीका रोग हो जाता है, तात्पर्य यह है कि-इस रीति से इस गर्मी देवी की प्रसादी एक दूसरे के द्वारा बँटती है[1] ।

गर्मी का रोग प्रायः वारसा में जाता है[2], इस तरह-व्यभिचार, रोगी के रुधिर के रस का चेप और वारसा से यह रोग होता है[3] ।

यद्यपि यह वात तो निर्विवाद[4] है कि कठिन चाँदी के होने के पीछे शरीर की गर्मी प्रकट होती है परन्तु कई एक डाक्टरों के देखने में यह भी आता है कि टांकी के नरम हो जाने तक अर्थात् टांकी के होने के पीछे उस के मिटने तक उस के आस पास और तलभाग में कुछ भी कठिनता न मालूम देने पर भी उस नरम टांकी के होने के पीछे कभी २ शरीर पर गर्मी प्रकट होने लगती है ।

कठिन चाँदी की यह तासीर है कि जब से वह टांकी उत्पन्न होती है उसी समय से उस का तल भाग तथा कोर (किनारे का भाग) कठिन होती है, इस के समान दूसरा कोई भी घाव नहीं होता है अर्थात् सब ही घाव प्रथम से ही नरम होते हैं, हां यह दूसरी बात है कि-दूसरे घावों को छेंड़ने से वे कदाचित् कुछ कठिन हो जावें परन्तु मूल से ही (प्रारंभ से ही) वे कठिन नहीं होते हैं ॥

इस दो प्रकार की (मृदु और कठिन) चाँदी के सिवाय एक प्रकार की चाँदी और भी होती है जिस में उक्त दोनों प्रकार की चाँदियों का गुण मिश्रित (मिला हुआ) होता है[5], अर्थात् यह तीसरे प्रकार की चाँदी व्यभिचार के पीछे शीघ्र ही दिखलाई देती है और उस में से रसी निकलती है तथा थोड़े दिनों के बाद वह कठिन हो जाती है और आखिरकार शरीर पर गर्मी दिखलाई देने लगती है ॥

कई वार तो इस मिश्रित (मृदु और कठिन[6]) टांकी के चिह्न स्पष्ट (साफ) होते हैं

१-तात्पर्य यह है कि यह रोग सङ्क्रामक है, इस लिये संसर्ग मात्र से ही एक से दूसरे में जाता है ॥
२-अर्थात् यह रोग गर्भ में भी पहुँच कर बालक की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हो जाता है ॥
३-तात्पर्य यह है कि उक्त व्यभिचार आदि तीन कारण इस रोग की उत्पत्ति के हैं ॥
४-निर्विवाद अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा अनुभव से सिद्ध ॥
५-अर्थात् इस तीसरे प्रकार की चाँदी में दोनों प्रकार की चाँदी के चिह्न मिले हुए होते हैं ॥
६-मृदु और कठिन अर्थात् उभयस्वरूप ॥

और उन के द्वारा यह बात सहज में ही मालूम हो सकती है कि उसका आखिरी परिणाम कैसा होगा[1], ऐसी दशा में परीक्षा करनेवाले वैद्यजन रोगी को अपना स्पष्ट विचार प्रकट कर सकते हैं[2], परन्तु कभी २ इस के परिवर्त्तन (फेरफार) को समझना अच्छे २ परीक्षकों (परीक्षा करने वालों) को भी कठिन हो जाता है, ऐसी दशा में पीछे से गर्मी के निकलने वा न निकलने के विषय में भी ठीक २ निर्णय नहीं हो सकता है, तात्पर्य यह है कि इस मिश्रित टांकी का ठीक २ निर्णय कर लेना बहुत ही बुद्धिमत्ता (अक्लमन्दी) तथा पूरे अनुभव का कार्य है, क्योंकि देखो! यदि गर्मी निकलेगी इस बात का निश्चय पहिले ही से ठीक २ हो जावे तो उस का उपाय जितनी जल्दी हो उतना ही रोगी को विशेष लाभकारी (फायदेमन्द) हो सकता है।

कठिन टांकी के होने के पीछे चार से लेकर छःसप्ताह (हफ्ते) के पीछे अथवा आठ सप्ताह के पीछे शरीर पर द्वितीय उपदंश का असर मालूम होने लगता है, गर्मी के प्रारंभ से लेकर अन्त तक जो २ लक्षण मालूम होते हैं उन के प्रायः तीन विभाग किये गये हैं[3]— इन तीनों विभागों में से पहिले विभाग में केवल आरंभ में जो टांकी उत्पन्न होती है तथा उस के साथ जो वद होती है इस का समावेश होता है[4], इस को प्राथमिक उपदंश[5], कठिन चाँदी अथवा क्षत कहते हैं।

दूसरे विभाग में टांकी के होने के पीछे जो दो तीन मास के अन्दर शरीर की त्वचा (चमड़ी) और मुख आदि में छाले हो जाते हैं, आँख; सन्धिस्थान (जोड़ों की जगह) तथा हाड़ों में दर्द होने लगता है और वह (दर्द) दो चार अथवा कई वर्ष तक बना रहता है, इस सर्व विषय का समावेश होता है[6] इस को सार्वदैहिक (सब शरीर में होनेवाला) अथवा द्वितीयोपदंश[7] कहते हैं।

तीसरे विभाग में उन चिह्नों का समावेश होता है कि जो चिह्न सर्व गर्मी के रोग वालों के प्रकट नहीं होते हैं किन्तु किन्हीं २ के ही प्रकट होते हैं तथा उन का असर प्रायः छाती और पेट के भीतरी अवयवों पर ही होता है, बहुत से लोग इस तीसरे विभाग के चिह्नों को दूसरे ही विभाग में गिन लेते हैं अर्थात् वे लोग दो ही विभागों में उपदंश रोग का समावेश करते हैं[8]।

१–क्योंकि इस के स्पष्ट चिह्नों के द्वारा उस पहिले कही हुई दोनों प्रकार की (मृदु और कठिन) चाँदी के परिणाम के अनुभव से इस का भी परिणाम जान लिया जाता है ॥

२–अर्थात् वैद्यजन रोगी को भी इस रोग का भावी परिणाम बतला सकते हैं ॥

३–तीन विभाग किये गये हैं अर्थात् तीन दर्जे बाँधे गये हैं ॥

४–अर्थात् टाँकी की उत्पत्ति और वद का होना प्रथम दर्जा है ॥

५–प्राथमिक उपदंश अर्थात् पूर्वस्वरूप से युक्त उपदंश ॥

६–अर्थात् उत्पत्ति से लेकर तीन मास तक की सर्व व्यवस्था दूसरा दर्जा है ॥

७–द्वितीयोपदंश अर्थात् दूसरे स्वरूप से युक्त उपदंश ॥

८–अर्थात् वे उपदंश के दो ही दर्जे मानते हैं ॥

जब द्वितीयोपदंश के चिह्नों का प्रारंभ होता है उस समय बहुधा टांकी तो यद्यपि मुर्झाई हुई होती है तथापि उस स्थान में कुछ भाग कठिन अवश्य होता है, यह भी सम्भव है कि-रोगी पूर्व के चिह्नों को भूल जाता होगा परन्तु बहुत शीघ्र (थोड़े ही समय में) अंग में थोड़ा बहुत ज्वर आजाता है, गला आ गया हो[1] ऐसा प्रतीत (मालूम) होने लगता है तथा उस में थोड़ा बहुत दर्द भी मालूम होता है, यदि मुख को खोल कर देखा जावे तो गले का द्वार, पड़त, जीभ तथा गले का पिछला भाग कुछ सूजा हुआ तथा लाल रंग का मालूम होता है, तात्पर्य यह है कि-बहुधा इसी क्रम से दूसरे विभाग के चिह्नों का प्रारंभ होता है[2], परन्तु कभी २ ऐसा भी होता है कि ज्वर थोड़ा सा आता है तथा गला भी थोड़ा ही आता है, उस दशा में रोगी उस पर कुछ ध्यान भी नहीं देता है[3] परन्तु इस के पश्चात् अर्थात् कुछ आगे बढ़ कर उपदंश का विभिन्न (विचित्र) प्रकार का दर्द उत्पन्न हो जाता है और जिस का कोई भी ठीक क्रम नहीं होता है[4] अर्थात् किसी के पहिले आँख का दर्द उत्पन्न होता है, किसी की सन्धियां जकड़ जाती हैं, किसी के हाड़ों में दर्द उत्पन्न हो जाता है तथा किसी को पहिले त्वचा की गर्मी मालूम होती है इत्यादि, इस के सिवाय इस विभाग[5] के चिह्न बहुधा दोनों तर्फ[6] समान ही देखे जाते हैं, जैसे कि-दोनों हथेलियों में चट्टे हो जाती हैं, अथवा दोनों तरफ के हाड़ तथा सन्धियां एक साथ ऊपर को उठ जाती हैं।

यह गर्मी का रोग शरीर के किसी विशेष भाग का रोग नहीं है किन्तु यह रोग रक्त (खून) के विकार (विगाड़) से उत्पन्न होता है, इस लिये शरीर के हरएक भाग में इस का असर होता है, फिर देखो! जिस को यह रोग हो चुकता है वह आदमी बहुधा निर्बल फीका और तेजहीन हो जाता है इस का कारण भी ऊपर कहा हुआ[7] ही जानना चाहिये।

इस रोग में जैसी टांकी प्रथम होती है उसी के परिमाण के अनुसार शरीर की गर्मी प्रकट होती है, इस लिये जिस रोगी के पहिले ही टांकी मोटी, बहुत कठिन तथा प्रसर

१-गला आ गया हो अर्थात् गले में छाले पड़ गये हों ॥

२-अर्थात् दूसरे दर्जे के चिह्नों का उद्भव ज्वरादि पूर्वक होता है ॥

३-अर्थात् रोगी को इस बात का ध्यान नहीं होता है कि आगे बढ़ कर दूसरे दर्जे के चिह्न मेरे शरीर-पर पूर्णतया आक्रमण करेंगे ॥

४-अर्थात् ज्वरादिका क्रम जो ऊपर लिखा है वह ठीक रीति से नहीं होता है अर्थात् उस में व्यतिक्रम हो जाता है ॥

५-इस विभाग के अर्थात् दूसरे दर्जे के ॥

६-दोनों तरफ अर्थात् शरीर के दाहिने और बायें तरफ ॥

७-अर्थात् खून में विगाड़ हो जाने से इस रोग के चले जानेपर भी मनुष्य में बल, तेज और कान्ति आदि गुण उत्पन्न नहीं होते हैं ॥

युक्त (फैलती हुई) मालूम होती है उस रोगी के पीछे से गर्मी के चिह्न भी वेग के साथ में उठते हैं। (प्रश्न) जिस आदमी के एक वार उपदंश का रोग हो जाता है वह रोग पीछे समूल (मूल के साथ) जाता है अथवा नहीं जाता है[1] ? (उत्तर) निस्सन्देह यह एक महत्त्व (दीर्घदर्शिता) का प्रश्न है, इस का उत्तर केवल यही है कि यदि मूल (मुख्य) टांकी साधारण वर्ग की हुई हों तथा उस का उपाय अच्छे प्रकार से और शीघ्र ही किया जावे तथा आदमी भी दृढ़ शरीर का हो तो इस रोग के समूल नष्ट हो जाने का सम्भव होता है, परन्तु बहुत से लोगों का तो यह रोग अन्तसमय तक भी पीछा नहीं छोड़ता है, इस का कारण केवल-रोग का कठिन होना, शीघ्र और योग्य उपाय का न होना तथा शरीर की दुर्बलता ही समझना चाहिये, यद्यपि औषध, उपाय तथा परहेज़ से रहने से यह रोग कम हो जाता है तथा कुछ कालतक दीख भी नहीं पड़ता है तथापि जिस प्रकार बिल्ली चूहे की ताक (घात) लगाये हुए बैठी रहती है उसी प्रकार एक वार हो जाने के पीछे यह रोग भी आदमी के शरीरपर घात लगाये ही रहता है अर्थात् इस का कोई न कोई लक्षण अनेक समयों में दिखाई दिया करता है और जब किसी कारण से शरीर में निर्बलता बढ़ जाती है त्यों ही यह रोग अपना जोर दिखलता है। (प्रश्न) आप पहिले यह कह चुके हैं कि यह रोग चेप से होता है तथा वारसा में जाता है, परन्तु इस में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस रोगवाले आदमी को स्त्रीसंग करना चाहिये वा नहीं करना चाहिये[2] ? (उत्तर) जबतक टांकी हो तबतक तो कदापि स्त्रीसंग नहीं करना चाहिये, किन्तु जब यह रोग योग्य उपचारों (उपायों) के द्वारा शान्त हो जावे तब (रोग की शान्ति के पीछे) स्त्रीसंग करने में हानि नहीं है[3], इस के सिवाय इस बात का भी स्मरण रखना चाहिये कि-बहुधा ऐसा भी होता है कि स्त्री अथवा पुरुष को जब यह रोग होता है और उन के संयोग से गर्भ रहता है तब वह गर्भ पूर्ण अवस्था को प्राप्त नहीं होता है किन्तु चार वा पांच महीने में उस का पात (पतन) हो जाता है, इस लिये

१-क्योंकि बहुतों के मुख से यह सुना है कि यह रोग मूलसहित कभी नहीं जाता है परन्तु बहुत से मनुष्यों को रोग हो चुकने के बाद भी बिलकुल नीरोग के समान देखा है अतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है, क्योंकि इस विषय में सन्देह है ॥

२-क्योंकि यदि वह पुरुष कारणविशेष के विना ऋतुकाल में भी स्वस्त्रीसंग न करे तो उसे दोष लगता है (देखो मनु आदि ग्रन्थों को) और यदि स्त्रीसंग करे तो चेप के द्वारा स्त्री के भी इस रोग के हो जाने की सम्भावना है, क्योंकि आप भी प्रथम कह चुके हैं कि-यह रोग समूल तो किसी ही का जाता है ॥

३-तात्पर्य यह है कि रोगदशा में स्त्रीसंग कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से दोनों को ही हानि पहुँचती है किन्तु जब योग्य चिकित्सा आदि उपायों से रोग बिलकुल शान्त हो जावे अर्थात् चाँदी आदि कुछ भी विकार न रहे उस समय स्त्रीसंग करना चाहिये, ऐसी दशा में स्त्री के इस रोग के संक्रमण की सम्भावना प्रायः नहीं रहती है, क्योंकि रसी निकलने आदि की दशा में उस का चेप लगने से इस रोग की उत्पत्ति का पूरा निश्चय होता है अन्यथा नहीं ॥

यह बहुत ही आवश्यक (जरूरी) बात है कि जिस स्त्री अथवा जिस पुरुष के यह रोग हो उस को चाहिये कि प्रथम अच्छे प्रकार से इस रोग की चिकित्सा करा ले, पीछे संयोग करे, क्योंकि ऐसा करने से संयोगद्वारा स्थित हुए गर्भ में हानि नहीं पहुँचती है।

(प्रश्न) जिस पुरुष के उपदंश रोग हो चुका है वह पुरुष यदि विवाह करने की सम्मति मांगे तो उसे विवाह करने की सम्मति देनी चाहिये अथवा नहीं देनी चाहिये ? **(उत्तर)** इस विषय में सम्मति देने से पूर्व कई एक बातें विचारणीय (विचार करने- योग्य) हैं, क्योंकि देखो ! प्रथम तो उपदंश की व्याधि एक वार होने के पीछे शरीर में से समूल नष्ट होती है अथवा नहीं होती है इस विषय में यद्यपि पूरा सन्देह रहता है तथापि योग्य चिकित्सा करने के बाद उपदंश रोग के शान्त होने के पीछे एक दो वर्ष- तक उस की प्रतीक्षा करनी चाहिये, यदि उक्त समयतक यह व्याधि न दीख पड़े तो विवाह करने में कोई भी हानि प्रतीत नहीं होती है, दूसरे—अन्य विषों के समान उप- दंश का भी विष समय पाकर अर्थात् बहुत दिन व्यतीत हो जाने से जीर्ण और बलहीन (कमजोर) होजाता है, इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि जिन को पहिले यह रोग हो चुका था पीछे योग्य उपायों के द्वारा शान्त हो जाने पर तथा फिर बहुत समय तक दिख- लाई न देने पर जिन स्त्री पुरुषों ने विवाह किया उन जोड़ों की सन्तति बहुधा तन्दुरुस्त दीख पड़ती है, यही विषय जूनागढ़ के एल्. एम्. त्रिभुवनदास जैन डाक्टरने भी लिखा है।

गर्मी से जो २ रोग होते हैं वे प्रायः त्वचा (चमड़ी), मुख, हाड़, साँधे, आँख, नख और केश में दिखलाई देते हैं, उन का वर्णन संक्षेप से किया जाता है:—

१–त्वचा के ऊपर बहुधा लाल ताँबे के रँग के समान चकत्ते देखने में आते हैं, ये (चकत्ते) ग़ोल होते हैं तथा छोटे चकत्ते तो दुअन्नी से भी छोटे और बड़े चकत्ते रुपये से भी कुछ विशेष बड़े होते हैं, ये प्रायः शरीर की सम्पूर्ण त्वचा पर होते हैं अर्थात् पेट, छाती, पैर और हाथ इत्यादि सब अवयववों पर दीख पड़ते हैं, परन्तु कभी २ ये चकत्ते केवल दोनों हथेलियों में और पैरों के तलवों में ही मालूम होते हैं, कभी २ ऐसा भी होता है कि–इन चकत्तों के साथ में त्वचा के छाले अथवा खोल भी निकल जाते हैं, यह उपदंश का एक खास चिह्न है, कभी २ गर्मी के फफोले भी हो जाते हैं उन को पूयपि- टिका तथा रजःपिटिका कहते हैं, मनुष्य की निर्बल दशा में तो ये भी पक कर बड़ी २ चांदी के रूप में हो जाते हैं अथवा सूख जाने के बाद उन्हीं पर बड़े २ खरोंट जम जाते हैं, इस प्रकार के काले खरोंट कभी २ पैरों के ऊपर देखने में आते हैं।

इन के सिवाय उपदंश के कारण खुजली और गुमड़े भी हो जाते हैं, तात्पर्य यह है कि–त्वचा के जितने साधारण[1] रोग होते हैं उन्हीं के किसी न किसी रूप में उपदंश का भी

१–साधारण अर्थात् कुष्ठ आदि विशेष रोगों को छोड़ कर ॥

रोग प्रकट होता है, इस रोग से त्वचा के ऊपर छोटी वड़ी सब प्रकार की पिटिकायें (फुंसियें) भी हो जाती हैं।

उपदंश सम्बंधी त्वग्रोग (त्वचा का रोग) ताम्रवर्ण (ताँबे के रंग के समान रँगवाला) तथा गोलाकार (गोल शकल का) होता है और वह शरीर के दोनों तरफ[1] प्रायः समान (एक सा) ही होता है तथा उस के मिट जाने के पीछे उस के काले दाग पड़ कर रह जाते हैं[2]।

२–इस रोग के कारण कभी २ केश (वाल) भी निःसत्त्व (निर्वल) होकर गिर पड़ते हैं[3], अर्थात् मूंछ दाढ़ी और मस्तक पर से केश विलकुल जाते रहते हैं।

३–नख का भाग पक कर उस में से रसी निकला करती है, नख निकल जाता है और उस स्थान में चाँदी पड़ जाती है।

४–पहिले कह चुके हैं कि गर्मी के प्रारम्भ में मुख आता है[4] (मुखपाक हो जाता है) तथा उस के साथ में अथवा पीछे से गले के भीतर चाँदे पड़ जाते हैं, मसूड़े सूज जाते हैं, जीभ; ओष्ठ (ओठ वा होठ) तथा मुख के किसी भाग में चाँदे हो जाते हैं और उन पर वड़ी २ पिटिकायें भी हो जातीहैं, इन के सिवाय लारींक्ष अर्थात् स्वर (आवाज) की नली सूज जाती है अथवा उस के ऊपर चाँदियां पड़ जाती हैं, गर्मी के कारण जब ये ऊपर लिखे हुए मुख सम्बंधी रोग हो जाते हैं उस समय रोग के भयंकर चिह्न समझे जाते हैं, क्योंकि इन रोगों के होने से श्वास लेने का मार्ग सँकुचित (सँकड़ा) हो जाता है[5] तथा कभी २ नाक भी भीतर से सड़ जाती है, उस का पड़दा फूट जाता है और वह वाहर से भी झर झर के[6] गिरने लगती है, तालु में छिद्र (छेद) होकर नाक में मार्ग हो जाता है कि जिस से खाते समय ही खुराक और पीते समय ही पानी नाक में होकर निकल जाता है[7] तथा जीभ और उस का पड़त भी झर झर के गिर जाता है।

५–हाड़ों पर का पड़त सूज जाता है, उस पर मोटा टेकरा हो जाता है तथा उस में या तो स्वयं ही (अपने आप ही) वहुत दर्द होता है अथवा केवल दवाने से वह दर्द करता है और उस में रात्रि के समय विशेष वेदना (अधिक पीड़ा) होती है कि जिस

१–दोनों तरफ अर्थात् दाहिनी और वाईं ओर ॥

२–अर्थात् उस के कारण पड़े हुए काले दाग नहीं मिटते हैं ॥

३–तात्पर्य यह है कि रोग के सवव से पूर्व के वाल निःसत्व हो कर गिर जाते हैं और पीछे जो निकलते हैं वे भी निर्वल होने के कारण वढ़ने से पूर्व ही गिर जाते हैं ॥

४–मुख आता है अर्थात् मुख में छाले आदि पड़ जाते हैं ॥

५–क्योंकि श्वास के मार्ग के वहुत से स्थान को उक्त रोग घेर लेते हैं ॥

६–अर्थात् निःसत्वता के द्वारा थोड़े २ भाग से गिरने लगती है ॥

७–अर्थात् खान पान उसी समय (तालु में पहुँचते ही) नाक के मार्ग से वाहर निकल जाता है ॥

से रोगी की निद्रा (नींद) में भंग (विघ्न) पड़ता है[1], पैरों के हाड़ों पर, हाथ के हाड़ों-पर तथा डोस की हाँसड़ी के हाड़ों पर इस प्रकार के टेकरे विशेष देखने में आते हैं, इस के सिवाय पँसुली और खोपड़ी के ऊपर भी ऐसे टेकरे हो जाते हैं तथा हाड़ का भीतरी भाग भी सड़ने लगता है जिस से वह हाड़ गल कर आखिरकार मृत्यु हो जाती है।

६-कभी २ सन्धिवायु के समान[2] पहिले से ही साँधे (जोड़ों के स्थान) जकड़ जाते हैं और विशेषकर बड़े साँधे जकड़ जाते हैं जिस से रोगी को हाथ पैरों का हिलाना डुलाना भी अति कठिन हो जाता है, कभी २ छोटी अंगुलियों के तथा पैरों के भी साँधे जकड़ जाते हैं तथा सूज जाते हैं और कमर में भी बादी भर जाती है, यद्यपि साँधे थोड़े ही दिनों में अच्छे हो जाते हैं तथापि वे बहुत समय तक रोगी को कष्ट पहुँचाते रहते हैं।

७-कभी २ शरीर के किसी दूसरे स्थान में दिखलाई देने के पूर्व आँख दुखनी आती है तथा कभी २ आँख का दर्द पीछे से उठता है, आँख में कनीनिका (भाँफन) का वरम (शोथ) हो जाता है, कनीनिका के सूज जाने पर उस के ऊपर लींफ (लस) नाम का रस उत्पन्न हो जाता है जिस से कनीनिका चिपक जाती है और कीकी विस्तृत नहीं होती है, आँख लाल हो जाती है तथा उस में और मस्तक (माथे) में अतिशय वेदना (बहुत ही पीड़ा) होती है, इस लिये रोगी को रात्रि में निद्रा का आना कठिन हो जाता है, केवल इतना ही नहीं किन्तु यदि ठीक समय पर आँख की सँभाल (खबरगीरी) न की जावे तो आँख निकम्मी हो जाती है और दृष्टि का समूल नाश हो जाता है।

तीसरे विभाग के चिह्न कुछ जनों के होते हैं तथा कुछ जनों के नहीं होते हैं[3] परन्तु जिन लोगों के ये (तीसरे विभाग के) चिह्न होते हैं उन के ये चिह्न या तो कई वर्षों-तक क्रम २ से (एक के पीछे दूसरा इस क्रम से) हुआ करते हैं अथवा वारंवार एक ही प्रकार का चिह्न होता रहता है अर्थात् एक ही दर्द उठता रहता है[4], इस विभाग के चिह्नों का प्रारंभ थोड़े बहुत वर्षों के पीछे होता है तथा जब रोगी की तबियत बहुत ही अशक्त हो जाती है उस समय उन का ज़ोर विशेष मालूम पड़ता है।

लीफ नामक जो रस उत्पन्न होता है उस रस का स्राव (झराव) होकर कई अवयवों में गाँठें बँध जाती हैं तथा यह परिवर्तन (फेरफार) कलेजा, फेफसा, मगज़ और दूसरे

१-अर्थात् रोगी को पीड़ा के कारण आराम पूर्वक नींद नहीं आती है ॥

२-सन्धिवायु के समान अर्थात् जिस प्रकार सन्धिवायु रोग में साँधे जकड़ जाते हैं उसी प्रकार ॥

३-जैसा कि पहिले लिख चुके हैं ॥

४-अर्थात् तीसरे दर्जे के चिह्न जिस मनुष्य के होते हैं उस के वे सब चिह्न एक चिर समय तक बारी २ से उत्पन्न होते रहते हैं अथवा उन चिह्नों में का कोई सा एक ही चिह्न वार २ उठता है अर्थात् उठ-कर शान्त हो जाता है और फिर उठता है ॥

कई एक भागों में होता है तथा इस परिवर्तन से भी बहुत हानि पहुँचती है अर्थात् यदि यह परिवर्तन फेफसे में होता है तो उस के कारण क्षयरोग की उत्पत्ति हो जाती है, यदि मगज़ में होता है तो उस के कारण मस्तकशूल (माथे में दर्द), वाय, उन्मत्तता (दीवानापन) और लकवा आदि अनेक भयंकर रोगों का उदय हो जाता है, कभी २ हाड़ों के सड़ने का प्रारम्भ होता है-अर्थात् पैरों के, हाथों के तथा मस्तक के हाड़ ऊपर से सड़ने लगते हैं, नाक भी सड़ कर झरने लगती है, इस से कभी २ हाड़ों में इतना बड़ा विगाड़ हो जाता है कि— उस अवयव को कटवाना पड़ता है[1], आँख के दर्पण में उपदंश के कारण होनेवाले परिवर्तन (फेरफार) से दृष्टि का नाश हो जाता है तथा उपदंश के कारण वृषणों (अंडकोशों) की वृद्धि भी हो जाती है, जिस को उपदंशीय वृषण-वृद्धि[2] कहते हैं ।

चिकित्सा—१-उपदंश रोग की मुख्य (खास) दवा पारा है इस लिये पारे से युक्त किसी औषधि को युक्ति के साथ देने से उपदंश का रोग कम हो जाता है तथा मिट भी जाता है ।

२-पारे से उतर कर (दूसरे दर्जे पर) आयोडाइड आफ पोटाश्यम नामक अंग्रेज़ी दवा है, अर्थात् यह दवा भी इस रोग में बहुत उपयोगी (फायदेमंद) है, यद्यपि इस रोग को समूल (जड़ से) नष्ट करने की शक्ति इस (दवा) में नहीं है तथापि अधिकांश में यह इस रोग को हटाती है[3] तथा शरीर में शान्ति को उत्पन्न करती है ।

३-इन दो दवाइयों के सिवाय[4] जिन दवाइयों से लोहू सुधरे, जठराग्नि (पेट की अग्नि) प्रदीप्त (प्रज्वलित अर्थात् तेज़) हो तथा शरीर का सुधार हो ऐसी दवाइयां इस रोग पर अच्छा असर करती हैं, जैसे कि—सारसापरेला और नाइट्रो म्यूरियाटक एसिड इत्यादि ।

४-इन ऊपर कही हुई दवाइयों को कब देना चाहिये, कैसे देना चाहिये तथा कितने दिनों तक देना चाहिये, इत्यादि बातों का निश्चय योग्य वैद्यों वा डाक्टरों को रोगी की स्थिति (हालत) को जाँच कर स्वयं (खुद) ही कर लेना चाहिये[5] ।

५-पारे की साधारण तथा वर्तमान में मिल सकने वाली दवाइयां रसकपूर, क्यालोमेल, चाक, पारे का मिश्रण तथा पारे का मरहम हैं ।

१-यदि उस अवयव को न कटवाया जावे तो वह विकृत अवयव दूसरे अवयव को भी विगाड़ देता है ॥

२-अर्थात् उपदंश से हुई वृषणों की वृद्धि ॥

३-अर्थात् यह दवा उस के वेग को अवश्य कम कर देती है ॥

४-इन दो दवाइयों के सिवाय अर्थात् पारा और आयोडाइड आफ पोटाश्यम के सिवाय ॥

५-क्योंकि देश, काल, प्रकृति और स्थिति के अनुसार मात्रा, विधि, अनुपान और समय आदि बातों में परिवर्तन करना पड़ता है ॥

६–पारा देने से यद्यपि मुँह आता है (मुखपाक हो जाता है) तथापि उस में कोई हानि नहीं है[1], क्योंकि वास्तव में बहुत से रोगों में औषध सेवन से मुखपाक हो ही जाता है, परन्तु उस से हानि नहीं होती है, क्योंकि— स्थितिभेद से वह मुखपाक भी रोग के दूर होने में सहायक रूप होता है, इसी लिये देशी वैद्यजन गर्मी आदि रोगों में जान बूझ कर मुखपाक करनेवाली औषधि देते हैं तथा उपदंश की शान्ति हो जाने पर मुखपाक को निवृत्त करने (मिटाने)वाली दवा दे देते हैं, यद्यपि पारे की दवा के देने से अधिक मुखपाक हो जाने से शरीर में प्रायः एक बड़ी खराबी हो जाती है जिस को प्रायः बहुत से लोग जानते होंगे कि— कभी २ मुखपाक के अधिक हो जाने से बहुत से रोगियों की मृत्यु तक हो जाती है, सिर्फ यही कारण है कि— वर्त्तमान में इस मुखपाक का लोगों में तिरस्कार (अनादर) देखा जाता है परन्तु इस हानि का कारण हम तो यही कह सकते हैं कि बहुत से वैद्यजन औषधि के द्वारा मुखपाक को तो वेग के साथ उत्पन्न कर देते हैं परन्तु उस के हटाने के (शान्त करने के) नियम को नहीं जानते हैं[2], बस ऐसी दशा में मुखपाक से हानि होनी ही चाहिये, क्योंकि मुखपाक की निवृत्ति के न होने से रोगी कुछ खा भी नहीं सकता है, उसे कठिन परहेज़ ही परहेज़ करना पड़ता है, उस के दाँत हिलने लगते हैं तथा दाँत गिर भी जाते हैं और मुखपाक के कारण बहुत से हाड़ भी सड़ जाते हैं, कभी २ जीभ सूज कर तथा मोटी हो कर बाहर आ जाती है तथा भीतर से श्वास (साँस) का अवरोध (रुकावट) हो कर रोगी की मृत्यु हो जाती है, इस लिये अज्ञान वैद्य को औषधि के द्वारा अतिशय (बहुत अधिक) मुखपाक कभी नहीं उत्पन्न करना चाहिये किन्तु केवल साधारणतया आवश्यकता पड़ने पर मुखपाक को उत्पन्न करना चाहिये. जिस को लोग फूल मुखपाक कहते हैं[3], फूल मुखपाक प्रायः उसे कहते हैं कि जिस में थोड़ी सी थूक में विशेपता होती है. तात्पर्य यह है कि— दाँतों के मसूड़ों पर जिस का थोड़ा सा ही असर हो बस उतना ही पारा देना चाहिये, इस से विशेष पारा देने की कोई आवश्यकता नहीं है[4], परन्तु इस विषय में यह खयाल रखना चाहिये कि पारे को केवल उतना देना चाहिये कि— जितना पारा लोहू पर अपना असर पहुँचा सके ।

बहुत से मूर्ख वैद्य तथा दूसरे लोग यह समझते हैं कि— मुख में से जितना थूक

१–किन्तु प्रकृति और स्थिति के भेद से मुख का आना तो उक्त रोग की निवृत्ति में सहायक माना जाता है, यदि चिकित्सा उसी ढँग पर की जा रही हो तो ॥

२–अर्थात् मुखपाक को विधिपूर्वक उत्पन्न करना तथा उस की निवृत्ति करना उन्हें ठीक रीति से मालूम नहीं होता है ॥

३–फूल मुखपाक अर्थात् हलका (नरम वा मृदु) मुखपाक ॥

४–क्योंकि विशेष पारे का देना परिणाम में भी हानिकारक (नुक्सान करनेवाला) होता है ॥

अधिक निकले उतना ही विशेष फायदा होता है, क्योंकि थूक के द्वारा गर्मी निकल जाती है, परन्तु उनका ऐसा समझना बहुत ही भूल की बात है, क्योंकि लाभ तब विशेष होता है जब कि पारे से मुखपाक तो कम हो अर्थात् थूक में थोड़ी सी विशेषता (अधिकता) हो परन्तु वह बहुत दिनों तक बनी रहे[1], किन्तु मुखपाक विशेष (अधिक) हो और वह थोड़े ही दिनों तक रहे उस से बहुत कम फायदा होता है।

बहुधा यह भी देखा गया है कि—मुखपाक के विना उत्पन्न किये भी युक्ति से दिया हुआ पारा पूरा २ (पूरे तौर से) फायदा करता है, इस लिये अधिक मुखपाक के होने से अर्थात् अधिक थूक के बहने ही से लाभ होता है यह विचार बिलकुल ही भ्रमयुक्त (वहम से भरा हुआ) है।

७—डाक्टर हचिनसन की यह सम्मति (राय) है कि— पारे की दवा को एक दो मास तक थोड़ी २ बराबर जारी रखना चाहिये, क्योंकि उन का यह कथन है कि— "उपदंश पर पारद (पारे) को जल्दी देओ, बहुत दिनोंतक उस का देना जारी रक्खो और मुखपाक को उत्पन्न मत करो[2]" इत्यादि।

८—गर्मीवाले रोगी को पारा देने की चार रीतियां हैं— उन में से प्रथम रीति यह है कि— मुख के द्वारा पारा पेट में दिया (पहुँचाया) जाता है, दूसरी रीति यह है कि— पारे का धुआँ अथवा भाफ दी जाती है, तीसरी रीति यह है कि— पारे की दवा न तो पेट में खानी पड़ती है और न उसका धुआँ वा भाफ ही लेनी पड़ती है किन्तु केवल पारा जाँघ के मूल में तथा काँख में लगाया जाता है और चौथी रीति यह है कि— सप्ताह (हफ्ते) में तीन वार त्वचा (चमड़ी) में पिचकारी लगाई जाती है।

इस प्रकार पहिले जब गर्मी के दूसरे विभाग के चिह्न[3] मालूम हों तब अथवा उस के कुछ पहिले इन चारों रीतियों में से किसी रीति से यदि युक्ति के साथ पारे की दवा का सेवन कराया जावे तो उपदंश के लिये इस के समान दूसरी कोई दवा नहीं है, परन्तु पारे सम्बंधी दवा किसी कुशल (चतुर) वैद्य वा डाक्टर से ही लेनी चाहिये अर्थात् मूर्ख वैद्यों से यह दवा कभी नहीं लेनी चाहिये[4]। (**प्रश्न**) सर्व साधारण को यह बात कैसे मालूम हो सकती है कि— यह कुशल वैद्य है अथवा मूर्ख वैद्य है? (**उत्तर**) जिस प्रकार सर्व साधारण लोग सोने, चाँदी, जवाहिरात तथा दूसरी भी अनेक वस्तुओं की

१—थूक में थोड़ी विशेषता होकर बहुत दिनोंतक बनी रहने से बड़ा लाभ होता है अर्थात् रोगी को खाने पीने आदि की तकलीफ भी नहीं होती है तथा काम भी बन जाता है॥

२—ऐसा करने से रोगी को विशेष कष्ट न होकर फायदा हो जाता है॥

३—दूसरे विभाग (दूसरे दर्जे) के चिह्न ज्वर आदि, जिन को पहिले लिख चुके हैं॥

४—क्योंकि मूर्ख वैद्यों से पारे की दवा के लेने से कभी २ महा भयङ्कर (बड़ा खतरनाक) परिणाम हो जाता है॥

परीक्षा करते हैं अथवा दूसरे किसी के द्वारा उन की परीक्षा करा लेते हैं[1] उसी प्रकार कुशल तथा मूर्ख वैद्य की परीक्षा का भी कर लेना वा दूसरे से करा लेना सर्वसाधारण को अत्यावश्यक (बहुत जरूरी) है, परन्तु महान् शोक का विषय है कि–वर्त्तमान में सर्वसाधारण और गरीब लोग तो क्या किन्तु बड़े २ श्रीमान् लोग भी इस विषय में कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं, इसी का यह फल है कि–कुशल अथवा मूर्ख वैद्य की परीक्षा का करनेवाला शायद ही सौ में से एकाध मिलता है, इस लिये सर्वसाधारण से हमारा यही निवेदन है कि–दूध को मथ (विलो) कर घृत निकालने के समान जो हमने इस ग्रन्थ के इसी अध्याय के प्रारम्भ में वैद्यकविद्या का सार लिखा है उस को अवकाश (फुर्सत) के समय में पाठकगण दूसरी व्यर्थ (फिजूल) गप्पों में तथा नाना प्रकार के कल्पित किस्से कहानियों की पुस्तकों के पढ़ने में अपने अमूल्य (वेशकीमती) समय को न गँवा कर यदि विचारा करें तो उन को अनेक प्रकार का लाभ हो सकता है तथा इस के प्रभाव से उन में कुशल तथा मूर्ख वैद्य की परीक्षा करने की शक्ति भी उत्पन्न हो सकती है[2]।

अब ऊपर कही हुई चिकित्साओं के सिवाय–जो अंग्रेजी तथा देशी दवाइयां इस रोगपर पूर्ण लाभ करती हैं उन्हें लिखते हैं:—

१–पोटास आयोडाइड १५ ग्रेन, लीकर हाइड्रार चीरी परक्लारीड २ ड्राम, एक्स्ट्राक्ट सारसापरीला ३ ड्राम और चिरायते की चाय ३ औंस, इन सब औषधों को मिला कर उस के तीन भाग करने चाहिये तथा उन में से एक भाग को सवेरे, एक भाग को मध्याह्न में (दोपहर को) और एक भाग को शाम को पीना चाहिये, यह दवा अति उत्तम है अर्थात् गर्मी के सर्व रोगों में अति उपयोगी (फायदेमन्द) मानी गई है, इस दवा में जो पोटास आयोडाइड की १५ ग्रेन की मात्रा लिखी है उस के स्थान में एक हफ्ते के बाद २० ग्रेन की मात्रा कर देनी चाहिये अर्थात् एक हफ्ते के बाद उक्त दवा २० ग्रेन डालना चाहिये तथा दूसरे हफ्ते में २५ ग्रेन तक बढ़ा देना चाहिये, इस दवा को प्रारंभ करते ही यद्यपि तीन दिन तक श्लेष्म (कफ अर्थात् जुकाम) हो जाता है परन्तु वह पीछे आप ही दो चार दिन में बन्द हो जाता है, इस लिये श्लेष्म के हो जाने से डरना नहीं चाहिये तथा दवा को बराबर लेते रहना चाहिये और इस दवा का सेवन दो महीने तक करना चाहिये, यदि किसी कारण से इस का दो महीने तक सेवन न बन

१–सब ही जानते हैं कि कोई भी मनुष्य विना परीक्षा किये अथवा विना परीक्षा कराये सोने चाँदी आदि को नहीं लेता है, क्योंकि उसे धोखा हो जाने का भय बना रहता है ॥

२–क्योंकि हमने इस ग्रन्थ में शारीरिक विद्या के सार गृहस्थों को लाभ देने वाले अच्छे प्रकार से लिख दिये हैं तथा प्रसंगवशात् वैद्यादि की परीक्षा आदि के भी अनेक विषय लिख दिये हैं, जब यह बात है तो इस ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ कर साधारण जन भी कुशल और मूर्ख वैद्य की परीक्षा क्यों नहीं कर सकते हैं ॥

सके तो चार हफ्ते तक तो इस का सेवन अवश्य ही करना चाहिये, इस दवा के समान अंग्रेजी दवाइयों में गर्मी पर फायदा करने वाली दूसरी कोई दवा नहीं है, इस दवा का सेवन करने के समय दूध भात तथा मिश्री का खाना बहुत ही फायदेमंद है अर्थात् इस दवा का यह पूरा पथ्य है, यदि यह न बन सके तो दूसरे दर्जे पर इस का यह पथ्य है कि-सेंधानमक डाल कर तथा बीज निकाली हुई जयपुर की थोड़ी सी लाल मिर्च डाल कर बनाई हुई मूँग की दाल फुलके तथा भात को खाना चाहिये, किन्तु इन के सिवाय दूसरी खुराक को नहीं खाना चाहिये तथा इस पथ्य (परहेज) को गर्मी की प्रत्येक दवा के सेवन में समझना चाहिये[1]।

२-पोटास आयोडाइड १२ ग्रेन, लीक्वीड एक्स्ट्राक आफ् सारसापरेला २ ड्राम, इन दोनों को मिलाकर $\frac{1}{3}$ भाग (तीसरा हिस्सा) दिन में तीन वार देना चाहिये।

३-उसवा मगरबी दो तोले, पित्तपापड़ा छः मासे, काशनी छः मासे, चन्दन का चूरा ६ मासे तथा पुटास आयोडाइड छः ग्रेन, इन में से प्रथम चार औषधियों को आध पाव उबलते हुए गर्म पानी में एक घंटे तक चीनी वा काच के वर्तन में भिगोवें, फिर छान कर उस में पुटास आयोडाइड मिलावें और दिन में तीन वार सेवन करें, यह दवा एक दिन के लिये समझनी चाहिये तथा इस दवा का एक महीने तक सेवन करना चाहिये।

४-मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीम की छाल, गिलोय, कुड़ और वच, इन सब औषधों को एक एक तोले लेकर उस के दो भाग करने चाहिये तथा उस में से एक भाग का प्रतिदिन क्वाथ बना कर पीना चाहिये।

५-उपलसरी, जेठीमधु (मधुयष्टि अर्थात् मौलेठी), गिलोय और सोनामुखी (सनाय), इन सब को एक एक तोले लेकर तथा इन का क्वाथ बना कर प्रतिदिन पीना चाहिये, यदि इस के पीने से दस्त विशेष हों तो सोनामुखी को कम डालना चाहिये।

६-**उपदंश गजकेशरी अर्क**[2]—यह अर्क यथा नाम तथा गुण है,[3] अर्थात् यह अर्क उपदंश रोग पर पूर्ण (पूरा) फायदा करता है, जो लोग अनेक दवाइयों को खाकर

१-ऊपर लिखी हुई चारों औषधों को मिलाकर तैयार की हुई यह दवा हमारे औषधालय में सर्वदा उपस्थित रहती है तथा चार सप्ताह (हफ्ते) तक पीने योग्य उक्त दवा के दाम १०) रुपये हैं, पोष्टेज (डाकव्यय) पृथक् है, जिन को आवश्यकता हो वे द्रव्य भेज कर अथवा वेल्यूपेविल के द्वारा मंगा सकते हैं॥

२-यह अर्क शुद्ध वनस्पतियों से बना कर तैयार किया जाता है, जो मंगाना चाहें हमारे औषधालय से द्रव्य भेज कर अथवा वी. पी. द्वारा मँगा सकते हैं, इस के सेवन की विधि आदि का पत्र (पर्चा) दवा के साथ में भेजा जाता है, एक सप्ताह (हफ्ते) तक पीने लायक दवा की शीशी का मूल्य ३) रुपये हैं, पोष्टेज (डाकव्यय) पृथक् लगता है॥

३-अर्थात् यह अर्क उपदंशरूपी गज (हाथी) के लिये केशरी (सिंह) के समान है॥

निराश (नाउम्मेद) हो गये हों उन को चाहिये कि इस अर्क का अवश्य सेवन करें, क्योंकि उपदंश की सब व्याधियों को यह अर्क अवश्य मिटाता है[1] ।

७–**उपदंशविध्वंसिनीगुटिका**[2]—यह गुटिका भी उपदंश रोग पर बहुत ही फायदा करती है, इस लिये इस का सेवन करना चाहिये[3] ॥

बाल उपदंश का वर्णन ॥

पहिले कह चुके हैं कि–गर्मी का रोग वारसा में उत्पन्न होता है, इस लिये कुछ वर्षों-तक उपदंश का वारसा में उतरना सम्भव रहता है, परन्तु उस का ठीक निश्चय नहीं हो सकता है तथापि पहिले उपदंश होने के पीछे वर्ष वा छः महीने में गर्भ पर उस का असर होना विशेष संभव होता है, इस के पीछे यद्यपि ज्यों २ गर्मी पुरानी होती जाती है और उस का जोर कम पड़ता जाता है तथा दूसरे दर्जे में से तीसरे दर्जे में पहुँचती है त्यों २ कम हानि होने का सम्भव होता जाता है तथापि बहुत से ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि कई वर्षों के व्यतीत हो जाने के पीछे भी ऊपर लिखे अनुसार गर्मी वारसा में उतरती है, पिता के गर्मी होनेपर चाहे माता के गर्मी न भी हो तो भी उस के बच्चेको गर्मी होती है और बच्चे के द्वारा वह गर्मी माता के लग जाना भी सम्भव होता है तथा माता के गर्मी होने से बच्चे को भी उपदंश हो जाता है ।

बच्चे का जन्म होने के पीछे यदि माता के उपदंश होवे तो दूध पिलाने से भी बच्चे के उपदंश हो जाता है, उपदंश से युक्त बच्चा यदि नीरोग धाय का दूध पीवे तो उस धाय के भी उपदंश के हो जाने का सम्भव होता है तथा स्तन का जो भाग बच्चे के मुख में जाता है यदि उस के ऊपर फाट हो तो उसी मार्ग से इस रोग के चेप के फैलने का विशेष सम्भव होता है ।

बालउपदंश तीन प्रकार से प्रकट होता है, जिस का विवरण इस प्रकार है:—

१–कभी २ गर्भावस्था में प्रकट होता है जिस से बहुत सी स्त्रियों के गर्भ का पात (पतन अर्थात् गिरना) हो जाता है ।

२–कभी २ गर्भ का पात न होकर तथा पूरे महीनों में बच्चे के उत्पन्न हो जाने पर जन्म के होते ही बच्चे के अंग पर उपदंश के चिन्ह मालूम होते हैं ।

१–यह अर्क सहस्रों वार उपदंश के रोगियों पर परीक्षा कर के अनुभवसिद्ध ठहराया गया है अर्थात् इस से अवश्य ही फायदा होता है ॥

२–अर्थात् उपदंश का नाश करनेवाली गोली ॥

३–ये गुटिकायें भी ख़ास हमारी बनाई हुई हमारे औषधालय में उपस्थित रहती हैं, जिन को आवश्यकता हो वे मंगा सकते हैं, मूल्य एक डिब्बी (जिस में ३२ गोलियां रहती हैं) का केवल १) रुपया है, पोष्टेज ग्राहकों को पृथक् देना पड़ता है, इन के सेवन की विधि आदि का पत्र दवा के साथ में ही ग्राहकों की सेवा में भेजा जाता है ॥

३–कभी २ बच्चे के जन्मसमय में उस के शरीरपर कुछ भी चिन्ह न होकर भी थोड़े ही अठवाड़ों में, महीनों में अथवा कुछ वर्षों के पीछे उस के शरीर में उपदंश प्रकट होता है[1]।

लक्षण (चिह्न)—उपदंश रोग से युक्त माता पिता से उत्पन्न हुआ बालक जन्म से ही दुर्बल, गले हुए हाथ पैरों वाला तथा मुर्दार सा होता है[2] और उस की त्वचा (चमड़ी) में सल पड़े हुए होते हैं, उस की नाक श्लेष्म के समान (मानों नाक में श्लेष्म अर्थात् जुकाम भरा है इस प्रकार) बोला करती है और पीछे नितम्ब (शरीर के मध्य भाग) पर तथा पैरों पर गर्मी के लाल २ चकत्ते निकलते हैं, मुखपाक हो जाता है तथा ओष्ठ (ओठ वा होठ) पर चाँदे पड़ जाते हैं।

इस प्रकार के (उपदंश रोग से युक्त) बालक के जो दाँत निकलते हैं उन में से आगे के ऊपरले (ऊपर के) दो चार दाँत चमत्कारिक (चमत्कार से युक्त) होते हैं, वे वूंठे होते हैं, उन के बीच में मार्ग होता है और वे शीघ्र ही गिर जाते हैं, किन्तु जो स्थिर (कायम) रहने वाले दाँत निकलते हैं वे भी वैसे ही होते हैं तथा उन के ऊपर एक गड्ढा होता है।

चिकित्सा—१–पहिले कह चुके हैं कि–पारा गर्मी के रोग पर मुख्य औषधि है, इस लिये वारसा[3] की गर्मी पर भी उस का पूरा असर होता है अर्थात् उस का फायदा शीघ्र ही मालूम पड़ जाता है, गर्मी के कारण यदि किसी स्त्री के गर्भ का पात हुआ करता हो और उस को पारे की दवा देकर मुखपाक कराया जावे तो फिर गर्भ के ठहर कर बढ़ने में कुछ भी अड़चल नहीं होती है[4] तथा उस के गर्भ से जो सन्तति उत्पन्न होती है उस के भी गर्मी नहीं होती है[5], यदि बालक का जन्म होने के पीछे थोड़े दिनों में उस के शरीर पर गर्मी दीख पड़े[6] तो उस बालक की माता को किसी कुशल वैद्य से पारे की दवा दिलानी चाहिये[7], अथवा यदि बालक कुछ बड़ा हो गया हो तो उस के

१–तात्पर्य यह है कि उपदंश का असर तो बालक के शरीर में पहिले ही से रहता है वह कुछ ही अठवाड़ों में, महीनों में अथवा वर्षों में अपने उद्भव (प्रकट) होने की कारण सामग्री को पाकर प्रकट हो जाता है॥

२–क्योंकि माता पिता के द्वारा पहुँचा हुआ इस रोग का असर गर्भ ही में बालक को दुर्बल आदि ऊपर कहे हुए लक्षणोंवाला बना देता है॥

३–वारसा का स्वरूप पहिले लिख चुके हैं॥

४–अर्थात् पारे की दवा के देने से स्त्री के गर्भ का पात नहीं होता है तथा वह गर्भ नियमानुसार पेट में बढ़ता चला जाता है॥

५–क्योंकि पारे की दवा के देने से माता ही में गर्मी का विकार शान्त हो जाता है अतः वह बालक के शरीर पर असर कैसे कर सकता है॥

६–अर्थात् पारे की दवा देने पर भी माता की गर्मी ठीक रीति से शान्त न होवे और बालक पर भी उस का असर पहुँच जावे॥

७–कि जिस से आगे को माता की गर्मी का असर बालक पर पड़ कर उस के लिये भयकारी न हो॥

पारे का मल्हम लगाना चाहिये, ऐसा करने से गर्मी मिट जावेगी, मल्हम के लगाने की रीति यह है कि-कपड़े की चींट पर पारे के मल्हम को चुपड़ कर उस चींट को बच्चे के पैरों पर अथवा पीठ पर बांध देना चाहिये, यह कार्य जब तक उपदंश न मिट जावे तब तक करते रहना चाहिये, इस से बहुत फायदा होता है क्योंकि-मल्हम के भीतर का पारा शरीर में जाकर उपदंश को मिटाता है, पारे की औषधि से जिस प्रकार बड़ी अवस्था वाले पुरुष के सहज में ही मुख पाक हो जाता है उस प्रकार बालक के नहीं होता है ।

एक यह बात भी अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये कि-उपदंश वाले बच्चे को माता के दूध के पिलाने के बदले (एवज़ में) गाय आदि का दूध पिला कर पालना अच्छा है ।

पथ्यापथ्य—इस रोग में दूध, भात, मिश्री, मूंग, गेहूं और संधानिमक, इत्यादि साधारण खुराक का खाना तथा शुद्ध (साफ) वायु का सेवन करना पथ्य है और गर्म पदार्थ, मद्य (दारू), बहुत मिर्चें, तेल, गुड़, खटाई, धूप में फिरना, अधिक परिश्रम करना तथा मैथुन इत्यादि अपथ्य हैं[1] ।

विशेष सूचना—वर्तमान समय में गर्मी देवी की प्रसादी से बचने वाले थोड़े ही पुण्यवान् पुरुष दृष्टिगत होते हैं[2] (देखे जाते हैं), इस के सिवाय प्रायः यह भी देखा जाता है कि-बहुत से लोग इस रोग के होने पर इसे छिपाये रखते हैं[3] तथा बहुत से भाग्यवानों (धनवानों) के लड़के माता पिता के लिहाज़ वा डर से भी इस रोग को छिपाये रखते हैं परन्तु यह तो निश्चय ही है कि थोड़े ही दिनों में उन को मैदान में अवश्य आना ही पड़ता है (रोग को प्रकट करना ही पड़ता है वा यों समझिये कि रोग प्रकट हो ही जाता है) इस लिये इस रोग को कभी छिपाना नहीं चाहिये, क्योंकि इस रोग को छिपा कर रखने से बहुत हानि पहुँचती है[4] तथा यह रोग कभी छिपा भी नहीं रह सकता है, इस लिये इस का छिपाना बिलकुल व्यर्थ है, अतः (इस लिये) इस रोग के होते ही उस को छिपाना नहीं चाहिये किन्तु उस का उचित उपाय करना चाहिये ।

ज्यों ही यह रोग उत्पन्न हो त्यों ही सब से प्रथम त्रिफले (हरड़ बहेड़ा और आँवला) के जुलाब का लेना प्रारंभ कर देना चाहिये तथा यह जुलाब तीन दिन तक लेना चाहिये, जुलाब के दिनों में खिचड़ी के सिवाय और कुछ भी नहीं खाना चाहिये, हाँ रँधती (पकती) हुई खिचड़ी में थोड़ासा घृत (घी) डाल सकते हैं ।

१-इन के सिवाय-मूत्र के वेग को रोकना, दिन में सोना, भारी अन्न का खाना तथा छाछ का पीना, ये कार्य भी इस रोग से युक्त पुरुष के लिये अपथ्य अर्थात् हानिकारक हैं ॥

२-अर्थात् इस रोग से बचे हुए थोड़े ही पुरुष देखे जाते हैं ॥

३-अर्थात् लज्जा के कारण प्रकट नहीं करते हैं ॥

४-क्योंकि शीघ्र ही प्रकट हो कर इस की चिकित्सा हो जाना अच्छा है, पीछे यह कष्टसाध्य हो जाता है ॥

जुलाब के ले चुकने के पीछे ऊपर लिखे अनुसार इलाज करना चाहिये, अथवा किसी अच्छे वैद्य वा डाक्टर से इलाज कराना चाहिये, परन्तु मूर्ख वैद्यों से रसकपूर तथा हींगलू आदि दवा कभी नहीं लेनी चाहिये[1] ।

यदि कुछ दिनों तक दवा का योग न मिल सके तो उस के यत्न में लगना चाहिये परन्तु ऊपर लिखे पथ्यानुसार खुराक को जारी रखने में भूल नहीं करना चाहिये[2] ।

जो मनुष्य इस रोग से मुक्ति (छुटकारा) पाने के बाद पुनः (फिर) कुकर्म (बुरे काम) करते हैं अर्थात् ठोकर खाकर भी नहीं चेतते हैं उन को पञ्चाख्यानी गधा ही समझना चाहिये ।

प्रमेह अर्थात् सुजाख (गनोरिया) का वर्णन ॥

सुजाख का रोग यद्यपि स्त्री तथा पुरुष दोनों के होता है परन्तु पुरुष की अपेक्षा स्त्री के इस का दर्द कम मालूम होता है, इस का कारण केवल यही है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री का मूत्रमार्ग बड़ा होता है, इस के सिवाय प्रायः यह भी देखा जाता है कि स्त्री की अपेक्षा यह रोग पुरुष के विशेष होता है ।

कारण—यह रोग व्यभिचार करने से उत्पन्न होता है तथा वेश्या और ढावे वाली स्त्रियां ही इस रोग का मूल (मुख्य) कारण होती हैं, तात्पर्य यह है कि व्यभिचार के हेतु (लिये) जिस स्थान में बहुत से स्त्री पुरुषों का आगमन तथा परिचय (मुलाकात) होता है वहीं से इस रोग की उत्पत्ति की विशेष सम्भावना होती है ।

१-क्योंकि मूर्ख वैद्य अपनी अज्ञानता से रसकपूर और हींगलू आदि दवा तो रोगी को दे देते हैं परन्तु न तो वे उस के देने के विधान को ही जानते हैं और न अनूपान तथा पथ्य आदि को समझते हैं, इस लिये रोगी को उक्त दवाओं को मूर्ख वैद्य से लेने में परिणाम में बड़ी भारी हानि पहुँचती है, अतः उक्त दवाओं को मूर्ख वैद्यों से भूलकर भी नहीं लेना चाहिये ॥

२-क्योंकि पथ्य का वर्त्ताव दवा से भी अधिक फायदा करता है, (प्रश्न) यदि पथ्य का सेवन दवा से भी अधिक फायदा करता है तो फिर दवा के लेने की क्या आवश्यकता है, केवल पथ्य का ही सेवन कर लेना चाहिये ? (उत्तर) वेशक ! पथ्य का सेवन दवा से भी अधिक फायदा करता है, परन्तु पथ्य सेवन के समय में दवा के लेने की केवल इतने अंश में आवश्यकता होती है कि रोग शीघ्र ही मिट जावे (क्योंकि दो सहायक मिल कर वैरी को जल्दी ही जीत लेते हैं) यों तो दवा को न लेकर भी केवल पथ्य का सेवन किया जावे तो भी रोग अवश्य मिट जावेगा परन्तु देर लगेगी, इस के विरुद्ध यदि केवल दवा का ही सेवन किया जावे और पथ्य का वर्त्ताव न किया जावे तो कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है (इस विषय में पहिले लिख चुके हैं), तात्पर्य यह है कि पथ्य का सेवन मुख्य और दवा का लेना गौण साधन है ॥

३-इस कलिकाल में वेश्याओं के समान यह एक नया व्यभिचार का ढँग चला है अर्थात् कलकत्ता और बम्बई आदि अनेक बड़े २ नगरों में कुट्टिनी (व्यभिचार की दलाली करनेवाली) स्त्री के मकान में आकर गृहस्थों की स्त्रियां और व्यभिचारी पुरुष कुकर्म करते हैं ॥

इस के सिवाय रजस्वला स्त्री के साथ मैथुन करने से तथा जिस स्त्री के प्रदर का रोग हो अर्थात् किसी प्रकार की भी धातु जाती हो अथवा जिस के योनिमार्ग में वा कमल में किसी प्रकार की कोई व्याधि हो उस स्त्री के साथ भी संयोग करने से यह रोग हो जाता है।

परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि–जिन के यह रोग हो जाता है उन में से प्रायः बहुत से लोग विषय सम्बंध में की हुई अपनी भूल को स्वीकार नहीं करते हैं किन्तु वे यही कहते हैं कि गर्म चीज़ के खाने में आ जाने के हेतु अथवा धूप में चलने से हमारे यह रोग हो गया है, परन्तु यह उन की भूल है, क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष कार्य के द्वारा कारण का ठीक निश्चय कर लेते हैं, देखो! यह निश्चित बात है कि तीक्ष्ण तथा गर्म चीज़ के खाने आदि कारणों से सुजाख़ हो ही नहीं सकता है, क्योंकि सुज़ाख़ मूत्रमार्ग का खास वरम (शोथ) है तथा वह चेप के लगने ही से होता है, देखो! यदि सुज़ाख का चेप एक आदमी का लेकर दूसरे के लगा दिया जावे तो उस के भी यह रोग हुए विना नहीं रहता है अर्थात् अवश्य ही हो जाता है, क्योंकि सुज़ाख का गुण ही चेपी है,

यदि किसी दूसरे साधारण ज़खम की रसी को लेकर लगाया जावे तो वैसा असर नहीं होगा, क्योंकि साधारण ज़खम की रसी में सुज़ाख के चेप के समान गुण ही नहीं होता है।

गर्मी की चाँदी और सुज़ाख ये दोनों जुदे २ रोग हैं क्योंकि चाँदी के चेप से चाँदी ही होती है और सुज़ाख के चेप से सुजाख ही होता है परन्तु शरीर की खराबी करने में (शरीर को हानि पहुँचाने में) ये दोनों रोग भाई वहिन हैं अर्थात् चाँदी वहिन और सुज़ाख भाई है।

सुज़ाख के सिवाय–मूत्र मार्ग के साधारण शोथ के हेतु शिश्न में से भी रसी के समान पदार्थ निकलता है।

यह रोग हथरस, बहुत मिर्चें, मसाला और मद्य आदि के उपयोग से (सेवन से) होता है, परन्तु इस को ठीक सुज़ाख नहीं समझना चाहिये।

१–सृष्टि के नियमों से विपरीत (सन्तान के लिये ऋतुसमय में अपनी भार्या के समागम में व्यय न करके) आनन्दकारक असर को उत्पन्न करने के लिये उत्पत्त्यवयव (शिश्न) को हाथ से संघर्षित (रगड़) कर वीर्यपात करने को हथरस कहते हैं तथा इस को अंग्रेज़ी में माष्टर बेशन, सेल्फ एब्यूज़, सेल्फ पोल्यूशन, हेल्थडिष्ट्राइँग और डेथ डिलीग प्रेक्तिस भी कहते हैं, शास्त्रीय सिद्धान्त और मानुषी कर्तव्य का विचार करने पर यही निश्चित होता है कि इस संसार में ब्रह्मचर्य ही एक ऐसा पदार्थ है जो कि मनुष्य को उस के कर्तव्य का सीधा मार्ग बतला देता है जिस मार्ग पर चल कर मनुष्य दोनों लोकों के सुखों को सहज में ही प्राप्त कर सकता है तथा ब्रह्मचर्य का भंग करना ठीक उस के विपरीत है अर्थात् यही (ब्रह्मचर्य का भङ्ग) मनुष्य का सर्वनाश कर देता है, क्योंकि यह (ब्रह्मचर्य का भङ्ग करना) मनुष्य जाति

लक्षण—स्त्री गमन के होने के पश्चात् एक से लेकर पांच दिन के भीतर सुज़ाख का चिह्न प्रकट होता है, प्रथम इन्द्रिय के पूर्व भाग पर खाज (खुजली) चलती है, उस (इन्द्रिय) का मुख सूज कर लाल हो जाता है और कुछ खुल जाता है तथा उस को दबाने से भीतर से रसी का बूँद निकलता है, उस के पीछे रसी अधिक निकलती

के लिये सब पापों का स्थान और सब दुर्गुणों का एक आश्रय है अर्थात् इसी से सब पाप और सब दुर्गुण उत्पन्न होते हैं, इस की भयङ्करता का विचार कर यही कहना पड़ता है कि-यह पाप सब पापों का राजा है, देखो! दूसरी सब खराबियों को अर्थात्-चोरी, लुच्चाई, ठगाई, खून, बदमाशी, अफीम; भांग; गाँजा और तमाखू आदि हानिकारक पदार्थों के व्यसन, सब रोग और फूटकर निकलने वाली भयंकर चेपी महामारियों को इकट्ठा कर तराजू के एक पालने (पलड़े) में रक्खा जावे और दूसरे पालने में हाथ के द्वारा ब्रह्मचर्य भङ्ग की खराबी को रक्खा जावे तथा पीछे दोनों की तुलना (मुकाबिला) की जावे तो इस एक ही खराबी का पालना दूसरी सब खराबियों के पालने की अपेक्षा अधिक नीचा जावेगा, यद्यपि स्त्री पुरुषों के अयोग्य व्यवहार के द्वारा उत्पन्न हुए भी ब्रह्मचर्यभङ्ग से अनेक खराबियां होती हैं परन्तु उन सब खराबियों की अपेक्षा भी अपने हाथ से किये हुए ब्रह्मचर्यभङ्ग से तो जो बड़ी २ खराबियां होती हैं उन का स्मरण करके तो हृदय फटता है, देखो! यह बात बिलकुल ही सत्य है कि मनुष्य जाति में पुरुषत्व (पराक्रम) के नाशरूपी महाखराबी, वीर्य सम्बंधी अनेक खराबियां और उन से उत्पन्न हुई अनेक अनीतियों का इसी से जन्म होता है, क्योंकि मन की निर्बलता से सब पाप और सब दुर्गुण उत्पन्न होते हैं और मन की निर्बलता को जन्म देनेवाला यही निकृष्ट शारीरिक पाप (ब्रह्मचर्य का भङ्ग अर्थात् माष्टर बेशन) है, सत्य तो यह है कि इस के समान दूसरा कोई भी पाप संसार में नहीं देखा जाता है, यह पाप वर्त्तमान समय में बहुत कुछ फैला हुआ है, इस पर भी आश्चर्य और दुःख की बात तो यह है कि लोग इस पाप से होनेवाले अनर्थों को जान कर भी इस पाप के आचरण से उत्पन्न हुई खराबियों के देखने से पहिले नहीं चेतते हैं अर्थात् अनभिज्ञ (अनजान) के समान हो कर अँधेरे ही में पड़े रहते हैं और अपने होनहार सन्तान को इस से बचाने का उद्योग नहीं करते हैं, तात्पर्य यह है कि-एक जवान लड़का इस पापाचरण से जब तक अपने शरीर की दुर्दशा नहीं कर लेता है तब तक उस के माता पिता सोते ही रहते हैं, परन्तु जब यह पापाचरण जवान मनुष्यों पर पूरे तौर से आक्रमण (हमला) कर लेता है और उन की भविष्यत् की सर्व आशाओं को तोड़ डालता है तब हाय २ करते हैं, यदि वाचकवृन्द गम्भीर भाव से विचार कर देखेंगे तो उन को मालूम हो जावेगा कि इस गुप्त पापाचरण से मनुष्यजाति की जैसी २ अवनति और कुदशा होती है वैसी अवनति और कुदशा ऊपर कही हुई चोरी जारी आदि सब खराबियों से भी (चाहें वे सब इकट्ठी ही क्यों न हों) कदापि नहीं हो सकती है, यह बात भी प्रकट ही है कि दूसरे सब दुराचरणों से उत्पन्न हुई वा होती हुई खराबियां शीघ्र ही विदित हो जाती हैं और स्नेही तथा सहवासी गुणी जन उन से मनुष्य को शीघ्र ही बचा लेते हैं परन्तु यह गुप्त दुराचरण तो अति प्रच्छन्न रीति से अपनी पूरी मार देकर तथा अनेक खराबियों को उत्पन्न कर प्रकट होता है, (इस पर भी आश्चर्य तो यह है कि प्रकट होने पर भी अनुभवी वैद्य वा डाक्टर ही इस को पहिचान सकते हैं) और पीछे इस पापाचरण से उत्पन्न हुई खराबी और हानियों से बचने का समय नहीं रहता है अर्थात् व्याधि असाध्य हो जाती है।'

है, यह रसी पीले रंग की तथा गाढ़ी होती है, किसी २ के रसी का थोड़ा दाग पड़ता है और किसी २ के अत्यन्त रसी निकलती है अर्थात् धार के समान गिरती है, पेशाव मन्द धार के साथ में थोड़ी २ कई वार उतरती है और उस के उतरने के समय वहुत

अपने हाथ से ब्रह्मचर्य के भङ्ग करने को एक अति खराव और महा दुःखदायक व्याधि समझना चाहिये, इस व्याधि के लक्षण इस रोग से युक्त पुरुष में इस प्रकार पाये जाते हैं—शरीर दुर्वल हो जाता है, स्वभाव चिढ़ने वाला तथा चेहरा फीका और चिन्ता युक्त रहता है, मुखाकृति विगड़ी हुई दीन तथा खिन्न होती है, आँखें वैठ जाती हैं, मुख लम्बा सा प्रतीत होता है, तथा दृष्टि नीचे को रहती है, इस पाप का करनेवाला जन इस प्रकार भयभीत और चिन्तातुर दीख पड़ता है कि मानो उसका पापाचरण दूसरे को ज्ञात हो जावेगा, उस का स्वभाव डरपोक वन जाता है और उस की छाती (कलेजा या दिल) वहुत ही असाहसी (नाहिम्मत) हो जाती है. यहां तक कि वह एक साधारण कारण से भी भड़क उठता है, उसे नींद कम आती है और स्वप्न वहुत आते हैं, उस के हाथ पैर वहुधा ठंढे होते हैं (शरीर की शक्ति के नष्ट हो जाने का यह एक खास चिह्न है), यदि इस कुटेव का शीघ्र ही अवरोध (रुकावट) कर शरीर के सुधारने का योग्य उपाय न किया जावे तो शरीर का प्रतिदिन क्षय होता जाता है, नसें खिंचने लगती हैं, नसें तन जाती हैं और संकुचित हो जाती हैं तथा तान और आँचकी का रोग उत्पन्न हो जाता है, वहुधा इस खरावी से अपस्मार अर्थात् मृगी का असाध्य रोग हो जाता है, हिष्टीरिया का भूत भी उस के शरीर में घुसे विना नहीं रहता है (अवश्य घुस जाता है) उस के घुस जाने से वेचारा जवान मनुष्य आधे पागल के समान अथवा सर्वथा ही उन्मादी (पागल) वन जाता है. ऊपर कही हुई खरावियों के सिवाय दूसरी भी छोटी २ गुप्त खरावियां होती हैं जिन को रोगी स्वयं ही समझ सकता है तथा प्रायः लज्जा के कारण उन को वह दूसरों से नहीं कह सकता है और यदि कहता भी है तो उन के मूल कारण को गुप्त ही रखता है और विशेष कर माता पिता आदि वड़े जनों को तो इन सव खरावियों से अनभिज्ञ ही रखता है, इन गुप्त खरावियों का कुछ वर्णन इस प्रकार है कि—स्मरणशक्ति कम हो जाती है, तन्दुरुस्ती में अव्यवस्था (गड़वड़) हो जाती है, स्वभाव में एकदम परिवर्तन (फेरफार) हो जाता है, चपलता कम हो जाती है, काम काज में आलस्य और निरुत्साह रहता है, मन ऐसा अव्यवस्थित और अस्थिर वन जाता है कि उस से कोई काम नियम के साथ तथा निश्चयपूर्वक नहीं हो सकता है, मगज़ सम्वन्धी सव कार्य निर्वल पड़ जाते हैं, पेशाव करते समय उस के कुछ दर्द होता है अथवा पेशाव की हाजत वारंवार हुआ करती है, मूत्रस्थान का मुख लाल रंग का हो जाता है, वीर्य का स्राव वारं वार हुआ करता है, साधारण कारण के होने पर भी वह अधीर, भीरु और साहसहीन हो जाता है, वीर्य पानी के समान झरता है, वीर्यपात के साथ सनक सी हुआ करती है, कोथली में दर्द हुआ करता है तथा उस में भार अधिक प्रतीत होता है और स्वप्न में वारं वार वीर्यपात होता है, कुछ समय के वाद धातुस्राव सम्वन्धी अनेक भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिन से शरीर विलकुल निकम्मा हो जाता है, इस प्रकार शरीर के निकम्मे पड़ जाने से यह वेचारा मन्दभाग्य मनुष्य धीरे २ पुरुषत्व से हीन हो जाता है, इसी प्रकार जो कोई स्त्री ऐसे दुराचरण में पड़ जाती है तो उस में से स्त्रीत्व के सव सद्गुण नष्ट हो जाते हैं तथा उस का स्त्रीत्व धर्म भी नाश को प्राप्त हो जाता है ।

जलन होती है तथा चिनग भी होती है इस लिये इसे चिनगिया सुज़ाख़ कहते हैं, इस के साथ में शरीर में बुखार भी आ जाता है, इन्द्रिय भरी हुई तथा कठिन जेवड़ी (रस्सी) के समान हो जाती है तथा मन को अत्यन्त विकलता (वेचैनी) प्राप्त होती

शरीर के सम्पूर्ण वाँधों के वँध जाने के पहिले जो वालक इस कुटेव में पड़ जाता है उस का शरीर पूर्ण वृद्धि और विकाश को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि इस कुटेव के कारण शरीर की वृद्धि और उस के विकाश में अवरोध (रुकावट) हो जाता है, उस की हड्डियां और नसें झलकने लगती हैं, आँखें वैठ जाती हैं और उन के आस पास काला कुँडाला सा हो जाता है, आँख का तेज कम हो जाता है, दृष्टि निर्वल तथा कम हो जाती है, चेहरे पर फुंसियां उठ कर फूटा करती हैं, वाल झर पड़ते हैं, माथे में टाल (टाट़) पड़ जाती है तथा उस में दर्द होता रहता है, पृष्ठवंश (पीठका वांस) तथा कमर में शूल (दर्द) होता है, सहारे के विना सीधा वैठा नहीं जाता है, प्रातःकाल विछौने पर से उठने को जी नहीं चाहता है तथा किसी काम में लगने की इच्छा नहीं होती है इत्यादि। सत्य तो यह है कि अस्वाभाविक रीति से ब्रह्मचर्य के भंग करने रूप पाप की ये सव खरावियां नहीं किन्तु उस से वचने के लिये ये सव शिक्षायें हैं, क्योंकि सृष्टि के नियम से विरुद्ध होने से सृष्टि इस पाप की शिक्षाओं (सज़ाओं) को दिये विना नहीं रहती है, हम को निश्चास है कि दूसरे किसी शारीरिक पाप के लिये सृष्टि के नियम की आवश्यक शिक्षाओं में ऐसी कठिन शिक्षाओं का उल्लेख़ नहीं किया गया होगा और चूंकि इस पापाचरण के लिये इतनी शिक्षायें कहीं गई हैं, इस से निश्चय होता है कि-यह पाप वड़ा भारी है, इस महापाप को विचार कर यही कहना पड़ता है कि-इस पापाचरण की शिक्षा (सज़ा) इतने से ही नहीं पर्याप्त (काफी) होती है, ऐसी दशा में सृष्टि के नियम को अति कठिन कहा जावे वा इस पाप को अति वड़ा कहा जावे किन्तु सृष्टि का नियम तो पुकार कर कह रहा है कि इस पापाचरण की शिक्षा (सज़ा) पापाचरण करनेवाले को ही केवल नहीं मिलती है किन्तु पापाचरण करनेवाले के लड़कों को भी थोड़ी बहुत भोगनी आवश्यक है, प्रथम तो प्रायः इस पाप का आचरण करने वालों के सन्तान उत्पन्न ही नहीं होती हैं, यदि दैवयोग से उस नराधम को सन्तान प्राप्त होती हैं तो वह सन्तान भी थोड़ी बहुत मा वाप के इस पापाचरण की प्रसादी को लेकर ही उत्पन्न होती हैं, इस में सन्देह नहीं है, इस लेख से हमारा प्रयोजन तरुण वयवालों को भड़काने का नहीं है किन्तु इन सव सत्य वातों को दिखला कर उन को इस पापाचरण से रोकने का है तथा इस पापाचरण में पड़े हुओं को उस से निकालने का है, इस के अतिरिक्त इस लेख से हमारा यह भी प्रयोजन है कि-योग्य माता पिता पहिले ही से इस पापाचरण से अपने वालकों को वचाने के लिये पूरा प्रयत्न करें और ऐसे पापाचरण वाले लोगों के भी जो सन्तान होवें तो उन को भी उन की अच्छी तरह से देख रेख और सम्भाल रखनी चाहिये क्योंकि मा वाप के रोगों की प्रसादी लेकर जो लड़के उत्पन्न होते हैं उस प्रसादी की कुटेव भी उन में अवश्य होती है, इसी नियम से इस पापाचरण वालों के जो लड़के होते हैं उन में भी इस (हाथ से वीर्यपात करनेरूप) कुटेव का सञ्चार रहता है, इस लिये जिन मा वापों ने अपनी अज्ञानावस्था में जो २ भूलें की हैं तथा उन का जो २ फल पाया है उन सव वातों से विज्ञ होकर और उस विषय के अपने अनुभव को ध्यान में लाकर अपनी सन्तति को ऐसी कुटेव में न पड़ने देने के लिये प्रतिक्षण उस पर दृष्टि रखनी चाहिये और इस कुटेव की खरावियों को अपनी सन्तति को युक्ति के द्वारा वतला देना चाहिये।

है, कभी २ इन्द्रिय में से लोहू भी गिरता है, कभी २ इस रोग में रात्रि के समय इन्द्रिय जागृत (चैतन्य) होती है और उस समय बांकी (टेढ़ी) होकर रहती है तथा उस के कारण रोगी के असह्य (न सहने योग्य अर्थात् बहुत ही) पीड़ा होती है, कभी २

प्रिय वाचक सज्जनो! आप ने देखा होगा कि जिस लड़के में नौ दश वर्ष की अवस्था में अति चपलता थी, जो बुद्धिमान् था, जिस के कपोलों (गालों) पर सुर्खी थी, तथा चेहरे पर तेज और कांति थी वही लड़का विना विवाह आदि किसी हेतु के कुछ समय के बाद मलीन वदन तथा और का और हो गया है, इस का क्या कारण है? इस का कारण यही पापाचरण की विभूति है, क्योंकि यह पाप गढ़ि के नियम से ही गुप्त न रह कर उस के चेहरे आदि अङ्गों पर झलक जाता है।

बहुत से व्यभिचारी और दुराचारी जन संसार को दिखाने के लिये अनेक कपट वेष में रहकर अपने को ब्रह्मचारी प्रसिद्ध करते हैं तथा भोले और अज्ञान लोग भी उन के कपट वेष को न समझ कर उन्हें ब्रह्मचारी ही समझने लगते हैं, परन्तु पाठक वर्ग! आप इस बात का निश्चय रक्खें कि ब्रह्मचारी पुरुष का चेहरा ही उस के ब्रह्मचर्य की गवाही दे देता है, बस लोग जिन को उन के व्यवहार से ब्रह्मचारी समझते हैं, यदि उन का चेहरा ब्रह्मचर्य की गवाही न दे तो आप उन्हें ब्रह्मचारी कभी न समझें। (प्रश्न) आप ने अपने इस ग्रन्थ में इस प्रकार की ये बातें क्यों लिखी हैं, क्योंकि दूसरों के दोषों को प्रकट करना हम ठीक नहीं समझते हैं, इस के सिवाय एक यह भी बात है कि यह संसार विचित्र है, इस में सब ही प्रकार के मनुष्य होते हैं अर्थात् शिष्टाचारी (श्रेष्ठ आचार वाले) भी होते हैं तथा दुराचारी भी होते हैं, क्योंकि संसार की माया ही बड़ी विचित्र है, इस संसार में सब एक से नहीं हो सकते हैं और ऐसा होने से ही एक को हानि तथा दूसरे को लाभ पहुँचता है, जैसे देखो! इस कार्य (हाथ से वीर्यपात) के करनेवाले जो मनुष्य हैं उन को जब कुछ हानि पहुँचती है तब वैद्यों को लाभ पहुँचता है, भला सोचने की बात है कि-यदि सब ही सद्वर्त्ताव के द्वारा धर्मात्मा और नीरोग बन जावें तो बेचारे विद्वान् किस को उपदेश दें तथा वैद्य वा डाक्टर किस की चिकित्सा करें, तात्पर्य यह है कि इस संसारचक्र में सदा से ही विचित्रता चली आई है और ऐसी ही चली जावेगी, इस लिये विद्वान् को किसी के छिद्रों (दोषों) को प्रकाशित (ज़ाहिर) नहीं करना चाहिये। (उत्तर) वाह जी वाह! यह तुम्हारा प्रश्न तुम्हारे अन्तःकरण की विज्ञता का ठीक परिचय देता है, बड़े शोक और आश्चर्य की बात है कि तुम को ऐसा प्रश्न करने में तनिक भी लज्जा नहीं आई और तुम ने ज़रा भी मानुषी बुद्धि का आश्रय नहीं लिया! हमने इस ग्रन्थ में जो इस प्रकार की बातें लिखी हैं उन से हमारा प्रयोजन दूसरे के दोषों के प्रकट करने का नहीं है किन्तु सर्व साधारण को दुर्गुणों के दोष और हानियों को दिखाकर उन से बचाने और चेताने का है, देखो! इस कुटेव के कारण हज़ारों का सत्यानाश हो गया है तथा होता जाता है, अतः हमने इस के स्वरूप को दिखाकर जो इस की हानियों का वर्णन कर इस से बचने के लिये उपदेश किया तो इस में क्या बुरा किया, देखो! प्राणियों को भूल और दोष से बचाना हमारा क्या किन्तु मनुष्यमात्र का यही कर्त्तव्य है, रही संसार की विचित्रता की बात, कि यह संसार विचित्र है-इस में सब ही प्रकार के मनुष्य होते हैं अर्थात् शिष्टाचारी भी होते हैं और दुराचारी भी होते हैं इत्यादि, सो बेशक यह ठीक है, परन्तु तुम ने कभी इस बात का भी विचार किया है कि मनुष्य दुराचारी क्यों होते हैं, इस के कारण को यदि विचार कर देखोगे तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि मनुष्यों के दुराचारी होने में कारण केवल कुसंस्कार ही है, बस उसी कुसंस्कार

वृषण (अण्डकोष) सूज कर मोटे हो जाते हैं और उन में अत्यन्त पीड़ा होती है, पेशाब के बाहर आने का जो लम्बा मार्ग है उस के किसी भाग में सुजाख होता है, जब अगले भाग ही में यह रोग होता है तब रसी थोड़ी आती है तथा ज्यों २ अन्दर के

को हटाना तथा भावी सन्तान को उस से बचाना हमारा अभीष्ट है, हमारा ही क्या, किन्तु सर्व सज्जनों और महात्माओं का वही अभीष्ट है और होना ही चाहिये, क्योंकि विज्ञान पाकर जो अपने भूले हुए भाई को कुमार्ग से नहीं हटाता है वह मनुष्य नहीं किन्तु साक्षात् पशु है, अब जो तुम ने हानि लाभ की बातें कही कि एक की हानि से दूसरे का लाभ होता है इत्यादि, सो तुह्मारा यह कथन बिलकुल अज्ञानता और बालकपन का है, देखो! सज्जन वे हैं जो कि दूसरे की हानि के विना अपना लाभ चाहते हैं, किन्तु जो परहानि के द्वारा अपना लाभ चाहते हैं वे नराधम (नीच मनुष्य) हैं, देखो! जो योग्य वैद्य और डाक्टर हैं वे पात्रापात्र (योग्यायोग्य) का विचार कर रोगी से द्रव्य का ग्रहण करते हैं, किन्तु जो (वैद्य और डाक्टर) यह चाहते हैं कि मनुष्यगण बुरी आदतों में पड़ कर खूब दुःख भोगें और हम खूब उन का घर लूटें, उन्हें साक्षात् राक्षस कहना चाहिये, देखो! संसार का यह व्यवहार है कि-एक का काम करके दूसरा अपना निर्वाह करता है, बस इस प्रथा के अनुकूल वर्त्ताव करनेवाले को दोषास्पद (दोष का स्थान) नहीं कहा जा सकता है, अतः वैद्य रोगी का काम करके अर्थात् रोग से मुक्त करके उस की योग्यतानुसार द्रव्य लेवें तो इस में कोई अन्यथा (अनुचित) बात नहीं है, परन्तु उन की मानसिक वृत्ति स्वार्थतत्पर और निकृष्ट नहीं होनी चाहिये, क्योंकि मानसिक वृत्ति को स्वार्थ में तत्पर तथा निकृष्ट कर दूसरों को हानि पहुँचा कर जो स्वार्थसिद्धि चाहते हैं वे नराधम और परापकारी समझे जाते हैं और उन का उक्त व्यवहार सृष्टिनियम के विरुद्ध माना जाता है तथा उस का रोकना अत्यावश्यक समझा गया है, यदि उस का रोकना तुम आवश्यक नहीं समझते हो तथा निकृष्ट मानसिक वृत्ति से एक को हानि पहुँचा कर भी दूसरे के लाभ होने को उत्तम समझते हो तो अपने घर में घुसते हुए चोर को क्यों ललकारते हो? क्योंकि तुह्मारा धन ले जाने के द्वारा एक की हानि और एक का लाभ होना तुह्मारा अभीष्ट ही है, यदि तुह्मारा सिद्धान्त मान लिया जावे तब तो संसार में चोरी जारी आदि अनेक कुत्सिताचार होने लगेंगे और राजशासन आदि की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, महा खेद का विषय है कि-व्याह शादियों में रण्डियों का नचाना, उन को द्रव्य देना, उस द्रव्य को बुरे मार्ग में लगवाना, बच्चों के संस्कारों का विगाड़ना, रण्डियों के साथ में (मुकाबिले में) घर की स्त्रियों से गालियाँ गवा कर उन के संस्कारों का विगाड़ना, आतिशबाज़ी और नाच तमाशों में हज़ारों रुपयों को फूँक देना, बाल्यावस्था में सन्तानों का विवाह कर उन के अपक्व (कच्चे) वीर्य के नाश के लिये प्रेरणा करना तथा अनेक प्रकार के बुरे व्यसनों में फँसते हुए सन्तानों को न रोकना, इत्यादि महा हानिकारक बातों को तो तुम अच्छा और ठीक समझते हो और उन को करते हुए तुह्में तनिक भी लज्जा नहीं आती है किन्तु हमने जो अपना कर्त्तव्य समझ कर लाभदायक (फायदेमन्द) शिक्षाप्रद (शिक्षा अर्थात् नसीहत देने वाली) तथा जगत् कल्याणकारी बातें लिखी हैं उन को तुम ठीक नहीं समझते हो, वाह जी वाह! धन्य है तुह्मारी बुद्धि! ऐसी २ बुद्धि और विचार रखने वाले तुह्मीं लोगों से तो इस पवित्र आर्यावर्त्त देश का सत्यानाश हो गया है और होता जाता है, देखो! बुद्धिमानों का तो यही परम (मुख्य) कर्त्तव्य है कि जो बुद्धिमान् जन गृहस्थों को लाभ पहुँचाने वाले तथा शिक्षाप्रद उत्तम २

(पिछले अर्थात् भीतरी) भाग में यह रोग होता है त्यों २ रसी विशेष निकलती है और वेसणी (बैठक) के भाग में भार (बोझ) सा प्रतीत (मालूम) होता है और पीड़ा विशेष होती है, कभी २ शिश्न के अंदर भी चाँदी पड़ जाती है और उस में से रसी निकलती है परन्तु उसे सुज़ाख का रोग नहीं समझना चाहिये, चाँदी प्रायः आगे ही होती है और वह मुख पर ही दीखती है, परन्तु जब भीतरी भाग में होती है तब इन्द्रिय का भाग कठिन और गीला सा प्रतीत (मालूम) होता है।

सुज़ाख के ऊपर कहे हुए ये कठिन चिह्न दश से पन्द्रह दिन तक रह कर मन्द (नरम) पड़ जाते हैं, रसी कम और पतली हो जाती है तथा पीली के बदले (स्थान में) सफेद रंगकी आने लगती है, जलन और चिनग कम हो जाती है तथा आखिरकार बिलकुल बन्द हो जाती है, तात्पर्य यह है कि-दो तीन हफ्ते में रसी बिलकुल बंद होकर सुजाख मिट जाता है, परन्तु जब सफेद रसीका थोड़ा २ भाग कई महीनों तक निकलता रहता है तब उस को प्राचीन प्रमेह (पुराना सुजाख) कहते हैं, इस पुराने सुजाख का मिटना बहुत कठिन (मुश्किल) हो जाता है अर्थात् दो चार मास तक इस के छिद्र (छेद) बंद रहते हैं, लेकिन जब कुछ गर्म पदार्थ खाने में आ जाता है तब ही वह फिर मालूम पड़ने लगता है अर्थात् पुनः सुजाख हो जाता है, सुजाख के पुराने हो जाने से शीघ्र ही उस में से मूत्रकृच्छ अर्थात् मूत्रगांठ उत्पन्न हो जाती है और वह इतना कष्ट देती है कि रोगी और वैद्य उस के कारण हैरान हो जाते हैं तथा यह निश्चित (निश्चय की हुई) बात है कि पुराने सुजाख से प्रायः मूत्रकृच्छ हो ही जाता है।

कभी २ सुजाख के साथ वद भी हो जाती है तथा कभी २ सुजाख के कारण इन्द्रिय के ऊपर मस्सा भी हो जाता है, इन्द्रिय का फूल सूज जाता है और उस के बाहर चांदे

लेखों को प्रकाशित (ज़ाहिर) करें उन के उक्त लेखों को पढ़ें और उन्हें विचारें तथा यदि वे लेख अपने हितकारक मालूम पड़ें तो उन का स्वयं अङ्गीकार कर अपने दूसरे भाइयों को उन (लेखों) का उपदेश देकर उन को सन्मार्ग (अच्छे रास्ते) में लाने की चेष्टा करें तथा यदि वे लेख अपने को हितकारी प्रतीत (मालूम) न हों तो उन्हें अपनी ही बुद्धि से अहितकारी न ठहराकर दूसरे बुद्धिमान् विवेकशील (विचारशाली) और दूरदर्शी जनों के साथ उन के विषय में विचार कर उन की सत्यता असत्यता तथा हितकारिता और अहितकारिता के विषय में निर्धार (निश्चय) करें, क्योंकि सत्यासत्य आदि का विचार करना ही मानुषी बुद्धि का फल है।

यद्यपि इस विषय में हमें और भी बहुत कुछ लिखना था परन्तु ग्रन्थ के अधिक बढ़ जाने के कारण अब कुछ नहीं लिखते हैं, हमें आशा है कि-हमारी इस संक्षिप्त (मुख्तसिर) सूचना से ही बुद्धिमान् जन तत्त्व को समझ कर कल्याणकारी (सुखदायक) मार्ग का अवलम्बन कर (सहारा लेकर) इस दुःखोदधि (दुःखसागर) संसार के पार पहुँचेंगे ॥

(चकत्ते) पड़ जाते हैं, मूत्राशय अथवा वृषण का वरम (शोथ) हो जाता है और कभी २ पेशाव भी रुक जाता है ।

यद्यपि सुजाख शरीर के केवल इन्द्रिय भाग का रोग है तथापि तमाम शरीर में उस के दूसरे भी चिह्न उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे-शरीर के किसी भाग का फूट निकलना, सन्धियों में दर्द होना, पृष्ठवंश (पीठ के बांस) में वायु का भरना तथा आँखों में दर्द होना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि-सुजाख के कारण शरीर के विभिन्न भागों में भी अनेक रोग प्रायः हो जाते हैं ।

चिकित्सा—१-सुजाख का प्रारंभ होने पर यदि उस में शोथ (सूजन) अधिक हो तथा असह्य (न सहने योग्य) वेदना (पीड़ा) होती हो तो वेसणी के ऊपर थोड़ी सी जोंकें लगवा देनी चाहियें, परन्तु यदि अधिक शोथ और विशेष वेदना न हो तो केवल गर्म पानी का सेक करना चाहिये ।

२-इन्द्रिय को गर्म पानी में भिगोये हुए कपड़े से लपेट लेना चाहिये ।

३-रोगी को कमर तक कुछ गर्म (सहन हो सके ऐसे गर्म) पानी में दश से लेकर वीस मिनट तक वैठाये रखना चाहिये तथा यदि आवश्यक हो तो दिन में कई वार भी इस कार्य को करना चाहिये ।

४-पेशाव तथा दस्त को लानेवाली औषधियों का सेवन करना चाहिये ।

५-इस रोग में पेशाव के अम्ल होने के कारण जलन होती है इस लिये आलकली तथा सोडा पोटास आदि क्षार (खार) देना चाहिये ।

६-इस में पानी अधिक पीना चाहिये तथा एक भाग दूध और एक भाग पानी मिला कर धीरे २ पीते रहना चाहिये ।

७-अलसी की चाय वनवा कर पीनी चाहिये तथा जौ का पानी उकाल (उवाल) कर पीना चाहिये, परन्तु आवश्यकता हो तो उस पानी में थोड़ा सा सोडा भी मिला लेना चाहिये ।

८-गोखुरू, ईशवगोल, तुकमालम्वा, वीदाना, वहुफली तथा मौलेठी, इन में से चाहे जिस पदार्थ का पानी पीने से पेशाव की वेदना (पीड़ा) कम हो जाती है ।

९-सव से प्रथम इस रोग में यह औषधि देनी चाहिये कि-लाइकर आमोनी एसेटे-टिस दो औंस, एसेटेट आफ़ पोटास नव्वे (९०) ग्रेन, गोंद का पानी एक औंस तथा कपूर का पानी तीन औंस, इन सव दवाओं को मिला कर (चौथाई) भाग दिन में चार वार देना चाहिये, परन्तु स्मरण रहे कि उक्त दवा का जो प्रथम भाग (पहिला चौथाई हिस्सा) दिया जावे उस के साथ दस्त लाने के लिये या तो चार ड्राम विलायती निमक मिला देना चाहिये अथवा समय तथा प्रकृति के अनुसार दूसरी किसी औषधि को

मिला देना चाहिये, अर्थात् गुलाब की कली का, सोनामुखी (सनाय) का तथा एक वा डेढ़ औंस ऐपसम साल्ट का एक जुलाब देना चाहिये ।

१०–यदि ऊपर लिखी दवा से फायदा न हो तो लाइकर पोटास ६० मिनिम, सोराखार १ ड्राम, टिंकचर आफ हायोसाइम २ ड्राम तथा चूनेका पानी ४ औंस, इन सब को मिला कर $\frac{1}{8}$ भाग दिन में चार वार देना चाहिये ।

११–पाषाणभेद, धनिया, धमासा, गोखुरू, किरमाला (अमलतास) तथा गुड़, इन सब को प्रत्येक को आधे २ तोले लेकर तथा सब को एक सेर पानी में भिगो कर छान लेना चाहिये, पीछे दिन में दो तीन वार में वह पानी पिला देना चाहिये ।

१२–चावलों का धोवन एक सेर, केसू के फूल एक तोला, दाख (मुनक्का) एक तोला तथा त्रिफले का चूर्ण एक तोला, इन सब औषधों को चावलों के धोवन में दो घण्टे तक भिगो कर तथा कुचल कर उन के पानी को छान लेना चाहिये और वही जल सवेरे और शाम को पिलाना चाहिये ।

१३–बहुफली ३ ड्राम और सोडा ३० ग्रेन, इन दोनों औषधियों को मिला कर तीन पुड़ियां बना लेनी चाहिये तथा दिन में तीन वार (सवेरे, दुपहर और शाम को) एक एक पुड़िया देनी चाहिये ।

विशेष वक्तव्य—ऊपर लिखी हुई अंग्रेजी तथा देशी दवा यदि मिल सके तो थोड़े दिनों तक उस का सेवन कर उस के फल को देखना चाहिये परन्तु उस के साथ साधारण खुराक को खाना चाहिये, मद्य, मिर्चे, मसाला, हींग और तेल आदि गर्म पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये ।

देशी वैद्यक शास्त्र ने यद्यपि सुजाख में दूध के पीने का निषेध किया है परन्तु डाक्टर त्रिभुवनदास की सम्मति है कि–इस रोग में दूध के सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है, इस परस्पर विरोध का विचार कर इस विषय में परीक्षा (जाँच) की गई तो विदित (मालूम) हुआ कि दूध के सेवन से यद्यपि और कुछ विगाड़ तो नहीं होता है परन्तु सुजाख के मिटने में देरी लगती है (सुजाख बहुत दिनों में अच्छा होता है) ।

जब सुजाख के कठिन चिह्न मन्द (कम) पड़ जावें तब नीचे लिखी हुई दवा तथा पिचकारी का उपयोग करना चाहिये, परन्तु तब तक उक्त दवाइयों को काम में नहीं लाना चाहिये ।

बहुत से अज्ञान (मूर्ख) वैद्य सुजाख का प्रारंभ होते ही पिचकारी लगवाते हैं, सो यह ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से लाभ होने के बदले प्रायः हानि ही देखी जाती है इस लिये एक वा दो हफ्ते के बाद जब सुजाख हलका पड़ जावे अर्थात् जलन कम हो जावे और रसी थोड़ी सफेद तथा पतली आने लगे तब पेट में लेने के लिये (खाने के लिये) तथा पिचकारी के लगाने के लिये नीचे लिखी हुई दवाइयों को काम में लाना चाहिये ।

ऊपर कहे हुए कार्य के लिये-कोपेवा, कबावचीनी और चन्दन का तेल, ये मुख्य पदार्थ हैं, इस लिये इन को उपयोग में लाना चाहिये।

१४-आइल कोपेवा ४ ड्राम, आइल क्युवव २ ड्राम, म्युसिलेज अकासिया २ औंस, आइलसिनेमान १५ बूँद और पानी १५ औंस, पहिले पानी के सिवाय चारों औषधियों को मिला कर पीछे उस में पानी मिलावें तथा दिन में तीन वार खाना खाने के पीछे एक एक औंस पीवें, इस दवा के थोड़े दिनों तक पीने से रसी (मवाद) का आना बंद हो जावेगा।

१५-यदि ऊपर लिखी हुई दवा से रसी का आना बंद न हो तो कबावचीनी की बूकी (बुरकी) ½ से ¾ तोला तथा कोपेवा वालसाम ४० से ६० मिनिम, इन दोनों को एकत्र करके (मिला कर) उस के दो भाग कर लेने चाहियें तथा एक भाग सवेरे और एक भाग शाम को घृत, मिश्री, अथवा शहद के साथ चाटना चाहिये।

अथवा केवल (अकेली) कबावचीनी की बूकी (बुरकी अथवा चूर्ण) दो दुअन्नीभर दिन में तीन वार घृत तथा मिश्री के साथ खाने से भी फायदा होता है।

इस के सिवाय-चन्दन का तेल भी सुजाख पर वहुत अच्छा असर करता है तथा वह अंग्रेजी वालसाम कोपेवा के समान गुणकारी (फायदेमन्द) समझा जाता है।

१६-लीकर पोटास ३ ड्राम, सन्दल (चन्दन) का तेल ३ ड्राम, टिंकचर आरेनशियाई १ औंस तथा पानी १६ औंस, पहिले पानी के सिवाय शेष तीनों औषधियों को मिला कर पीछे पानी को मिलाना चाहिये तथा दिन में तीन वार खाना खाने के पीछे इसे एक एक औंस पीना चाहिये।

१७-दश से वीस मिनिम (बूँद) तक चन्दन के तेल को मिश्री में, अथवा वतासे में डाल कर सवेरे और शाम को अर्थात् दिन में दो वार कुछ दिन तक लेना चाहिये, यह (चन्दन का तेल) वहुत अच्छा असर करता है।

१८-पिचकारी—जिस समय ऊपर कही हुई दवाइयां ली जाती हैं उस समय इन के साथ इन्द्रिय के भीतर पिचकारी के लगाने का भी क्रम अवश्य होना चाहिये, क्योंकि-ऐसा होने से विशेष फायदा होता है।

पिचकारी के लगाने की साधारण रीति यही है कि-काच की पिचकारी को दवा के पानी से भर कर उस (पिचकारी) के मुख को इन्द्रिय में डाल देना चाहिये तथा एक हाथ से इन्द्रिय को और दूसरे हाथ से पिचकारी को दवाना चाहिये, जब पिचकारी खाली होजावे (पिचकारी का पानी इन्द्रिय के भीतर चला जावे) तब उस को शीघ्र ही वाहर निकाल लेना चाहिये और दवा को थोड़ी देर तक भीतर ही रहने देना चाहिये अर्थात् इन्द्रिय को थोड़ी देर तक दवाये रहना चाहिये कि जिस से दवा वाहर न निकल

सके, थोड़ी देर के बाद हाथ को छोड़ देना चाहिये (हाथ को अलग कर लेना चाहिये अर्थात् हाथ से इन्द्रिय को छोड़ देना चाहिये) कि जिस से दवा का पानी गर्म होकर बाहर निकल जावे।

पिचकारी के लगाने के उपयोग (काम) में आने वाली दवाइयां नीचे लिखी जाती हैं:—

१९–सलफोकार बोलेट आफ जिंक २० ग्रेन तथा टपकाया हुआ (फिल्टर आदि क्रिया से शुद्ध किया हुआ) पानी ४ औंस, इन दोनों को मिला कर ऊपर लिखे अनुसार पिचकारी लगाना चाहिये।

२०–लेड वाटर ३० से ४० मिनिम, जस्त का फूल १ से ४ ग्रेन, अच्छा मोरथोथा १ से ३ ग्रेन तथा पानी ५ औंस, इन सब को मिला कर ऊपर कही हुई रीति के अनुसार पिचकारी लगाना चाहिये।

२१–कारबोलिक एसिड २० ग्रेन तथा पानी ५ औंस, इन को मिलाकर दिन में चार वा पांच वार पिचकारी लगाना चाहिये।

२२–पुटासीपरमेंगनस २ ग्रेन को ४ औंस पानी में मिला कर दिन में तीन पिचकारी लगाना चाहिये।

२३–नींबू के पत्ते, इमली के पत्ते, नींब के पत्ते और मेंहदी के पत्ते, प्रत्येक दो दो तोले, इन सब को आध सेर पानी में औंटा कर दिन में तीन वार उस पानी की पिचकारी लगाना चाहिये।

२४–मोरथोथा ३ रत्ती, रसोत १ मासा, अफीम १ मासा, सफेदा काशगरी १ मासा, गेरू ६ मासे, बबूल का गोंद १ तोला, कलमी शोरा ३ रत्ती तथा माजूफल १ मासा, पहिले गोंद को १५ तोले पानी में घोंटना (खरल करना) चाहिये, पीछे उस में रसोत डाल कर घोंटना चाहिये, इस के बाद सब औषधियों को महीन पीस कर उसी में मिला देना चाहिये तथा उसे छान कर दिन में तीन वार पिचकारी लगाना चाहिये।

विशेष वक्तव्य—ऊपर लिखी हुई दवाइयों को अनुक्रम से (क्रम २ से) काम में लाना चाहिये अर्थात् जो दवाई प्रथम लिखी है उस की पहिले परीक्षा कर लेनी चाहिये, यदि उस से फायदा न हो तो उस के पीछे एक एक का अनुभव करना चाहिये अर्थात् पांच दिन तक एक दवा को काम में लाना चाहिये, यदि उस से फायदा न मालूम हो तो दूसरी दवा का उपयोग करना चाहिये।

उक्त दवाओं में जो पानी का सम्मेल (मिलाना) लिखा है. उस (पानी) के बदले (एवज) में गुलाब जल भी डाल सकते हैं।

पिचकारी के लिये एक समय के लिये जल का परिमाण एक औंस अर्थात् २॥) रुपयेभर है, दिन में दो तीन वार पिचकारी लगाना चाहिये, यह भी स्मरण रहे कि–पहिले

गर्म पानी की पिचकारी को लगाकर फिर दवा की पिचकारी के लगाने से जल्दी फायदा होता है, पुराने सुजाख के लिये तो पिचकारी का लगाना अत्यावश्यक समझा गया है ॥

स्त्री के सुजाख का वर्णन ॥

पुरुष के समान स्त्री के भी सुजाख होता है अर्थात् सुजाख वाले पुरुष के साथ व्यभिचार करने के वाद पांच सात दिन के भीतर स्त्री के यह रोग प्रकट हो जाता है।

इस की उत्पत्ति के पूर्व ये चिह्न दीख पड़ते हैं कि-प्रथम अचानक पेडू में दर्द होता है, वमन (उलटी) होता, है, पेट में दर्द होता है, अन्न अच्छा नहीं लगता है, किसी २ के ज्वर भी हो जाता है, दस्त साफ नहीं होता है तथा किसी २ के पेशाव जलती हुई उतरती है इत्यादि, ये चिह्न पांच सात दिन तक रह कर शान्त हो (मिट) जाते हैं तथा इन के शान्त हो जाने पर स्त्री को यद्यपि विशेष तकलीफ नहीं मालूम होती है परन्तु जो कोई पुरुष उस के पास जाता है (उस से संसर्ग करता है) उस को इस रोग की प्रसादी के मिलने का द्वार खुला रहता है।

स्त्री के जो सुजाख होता है वह प्रदर से उपलक्षित होता है (जानलिया जाता है)।

सुजाख प्रथम स्त्री की योनि में होता है और वह पीछे वढ़ जाता है अर्थात् वढ़ते २ वह मूत्रमार्ग तक पहुँचता है, इस लिये जिस प्रकार पुरुष के प्रथम से ही कठिन चिह्न होते हैं उस प्रकार स्त्री के नहीं होते हैं, क्योंकि स्त्री का मूत्रमार्ग पुरुष की अपेक्षा वड़ा होता है, इसी लिये इस रोग में स्त्रीको कोपेवा तथा चन्दन का तेल इत्यादि दवा की विशेष आवश्यकता नहीं होती है किन्तु उस के लिये तो इतना ही करना काफी होता है कि उस को प्रथम त्रिफले का जुलाव तीन दिन तक देना चाहिये, फिर महीना वा वीस दिन तक साधारण खुराक देनी चाहिये तथा पिचकारी लगाना चाहिये, क्योंकि स्त्री के लिये पिचकारी की चिकित्सा विशेष फायदेमन्द होती हैं।

देशी वैद्य इस रोग में स्त्री को प्रायः वंग भी दिया करते हैं।

सूचना—इस वर्तमान समय में चारों तरफ दृष्टि फैला कर देखने से विदित होता है कि इस दुष्ट सुजाख रोग से वर्त्तमान में कोई ही पुण्यवान् पुरुष वचे हैं नहीं तो प्रायः यह रोग सब ही को थोड़ा वहुत कष्ट पहुँचाता है।

इस रोग के होने से भी गर्मी के रोग के समान खून में विकार (विगाड़) हो जाता है, इस लिये खून को साफ करनेवाली दवा का महीने वा वीस दिन तक अवश्य सेवन करना चाहिये।

यह रोग भी गर्मी के समान वारसा में उतरता है अर्थात् यह रोग यदि माता पिता के हो तो पुत्र के भी हो ज़ाता है।

इस दुष्ट रोग से अनेक (कई) दूसरे भी भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु उन सब का अधिक वर्णन यहां पर ग्रन्थ के बढ़जाने के भय से नहीं कर सकते हैं ।

बहुत से अज्ञान (मूर्ख) लोग इस रोग के विद्यमान (मौजूद) होने पर भी स्त्रीसंगम करते हैं जिस से उन को तथा उन के साथ संगम करने वाली स्त्रियों को बड़ी भारी हानि पहुँचती है, इस लिये इस रोग के समय में स्त्रीसंगम कदापि (कभी) नहीं करना चाहिये ।

बहुत से लोग इस रोग के महाकष्ट को भोग कर के भी पुनः उसी मार्ग पर चलते हैं, यह उन की परम अज्ञानता (बड़ी मूर्खता) है और उन के समान मूर्ख कोई नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वे मानो अपने ही हाथ से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं और उन के इस व्यवहार से परिणाम में जो उन को हानि पहुँचती है उसे वे ही जान सकते हैं, इस लिये इस रोग के होने के समय में कदापि स्त्रीसंगम नहीं करना चाहिये ॥

कास (खांसी) रोग का वर्णन ॥

कारण—नाक और मुख में धूल तथा धुआँ के जाने से, प्रतिदिन रूक्ष (रूखे) अन्न और अधिक व्यायाम के सेवन से, आहार के कुपथ्य से, मल और मूत्र के रोकने से तथा छींक के रोकने से प्राणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर तथा दुष्ट उदान वायु से मिल कर कास (खाँसी) को उत्पन्न करती है ।

भेद—कास रोग के पाँच भेद हैं-वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, क्षत (घाव) जन्य और क्षयजन्य, इन पाँचों में से क्रम से पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर बलवान् होता है ।

लक्षण—वात के कास रोग में प्रायः हृदय, कनपटी, मस्तक; उदर और पसवाड़े में शूल (पीड़ा) होता है, मुँह उतर जाता है, बल (शक्ति); स्वर (आवाज) और पराक्रम क्षीण हो जाता है, वारंवार तथा सूखी खांसी उठती है और स्वरभेद हो जाता है (आवाज बदल सी जाती है) ।

पित्त के कास रोग में प्रायः हृदय में दाह (जलन), ज्वर, मुख का सूखना तथा कडुआ रहना, प्यास का लगना, पीले रंग के तथा कड़ुए वमन का होना, शरीर के रंग का पीला हो जाना तथा सब देह में दाह का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं ।

कफ के कास रोग में कफ से मुख का लिप्त (लिसा) रहना, अन्न में अरुचि, शरीर का भारी रहना, कण्ठ में खाज (खुजली) का चलना, वारंवार खांसी का उठना, तथा थूँकने के समय कफ की गाँठ गिरना, इत्यादि लक्षण होते हैं ।

क्षत (घाव) के कास रोग में प्रथम सूखी खाँसी का होना, पीछे रुधिर से युक्त थूक का गिरना, कण्ठ में पीड़ा का होना, हृदय में सुई के चुभने के समान पीड़ा का होना, दोनों पसवाड़ों में शूल का होना, सन्धियों में पीड़ा, ज्वर, श्वास, प्यास तथा स्वर भेद का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं ।

यह क्षतजन्य कास रोग बहुत स्त्रीसंग करने से, भार के उठाने से, बहुत मार्ग चलने से, कुश्ती करने से तथा दौड़ते हुए हाथी और घोड़े आदि के रोकने से उत्पन्न होता है. अर्थात् इन उक्त कारणों से रूक्ष पुरुष का हृदय फट जाता है तथा वायु कुपित होकर खांसी को उत्पन्न कर देता है।

क्षय के कास रोग में शरीर की क्षीणता, शूल, ज्वर, दाह और मोह का होना, सूखी खांसी का उठना, रुधिर मांस और शरीर का सूख जाना तथा थूक में रुधिर और कफ-संयुक्त पीप का आना, इत्यादि लक्षण होते हैं।

यह क्षयजन्य कास रोग कुपथ्य और विषमाशन के करने से, अतिमैथुन से; मल और मूत्र आदि वेगों के रोकने से, अति दीनता से तथा अति शोक से, अग्नि के मन्द हो जाने से उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—१–वायु से उत्पन्न हुई खांसी में–बथुआ, मकोय, कच्ची मूली और चौपतिया का शाक खाना चाहिये, तैल आदि स्नेह, दूध, ईख का रस, गुड़ के पदार्थ, दही, कांजी, खट्टे फल, खट्टे मीठे पदार्थ और नमकीन पदार्थ, इन का सेवन करना चाहिये।

अथवा–दश मूल की यवागू का सेवन करना चाहिये, क्योंकि–यह यवागू श्वास खांसी और हिचकी को शीघ्र ही दूर करती है तथा यह दीपन (अग्नि को प्रदीप्त करने वाली) और वृष्य (बलदायक) भी है।

२–पित्त से उत्पन्न हुई खांसी में–छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, दाख, कपूर, सुगन्धवाला, सोंठ और पीपल का क्वाथ बना कर तथा उस में शहद और मिश्री डाल कर पीना चाहिये।

३–कफ से उत्पन्न हुई खांसी में–पीपल, कायफल, सोंठ, काकड़ासिंगी, भारंगी, काली मिर्च, कलौंजी, कटेरी, सम्हालू, अजवायन, चित्रक और अडूसा, इन के क्वाथ में पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये।

४–क्षत से उत्पन्न हुई खांसी में–ईख, कमल, इक्षुवालिका (ईख का भेद), कमल की डंडी, नील कमल, सफेद चन्दन, महुआ, पीपल, दाख, लाख, काकड़ासिंगी और सतावर, इन सब को समान भाग ले, वंशलोचन दो भाग तथा सब से चौगुनी मिश्री मिलावे, पीछे इस में शहद और मक्खन मिला कर प्रकृति के अनुसार इस की यथोचित मात्रा का सेवन करे।

५–क्षय से उत्पन्न हुई खांसी में–लोह के चूर्ण में अडूसे के रस की अनेक भावनायें दे कर तथा उस में शहद मिश्री और मक्खन मिला कर उस का सेवन करना चाहिये।

६–बेर के पत्ते को मनशिल से लपेट कर उस लेप को धूप में सुखा लेना चाहिये,

पीछे उस के धुएँ का पान (धूम्रपान) कराना चाहिये, इस से सब प्रकार की खांसी मिट जाती है।

७–कटेरी की छाल और पीपल के चूर्ण को शहद के साथ में चाटने से सब प्रकार की खांसी दूर होती है।

८–प्रथम बहेड़े को घृत में सान कर तथा गोबर से लपेट कर पुटपाक कर लेना चाहिये, पीछे इस के छोटे २ टुकड़े कर मुख में रखना चाहिये, इस से सब प्रकार की खांसी अवश्य ही दूर हो जाती है।

९–चित्रक की जड़ और छाल तथा पीपल, इन का चूर्ण कर शहद में चाटना चाहिये, इस से खांसी, श्वास और हिचकी दूर हो जाती हैं।

१०–नागरमोथा, पीपल, दाख तथा पका हुआ कटेरी का फल, इन के चूर्ण को घृत और शहद में मिला कर चाटना चाहिये, इस के सेवन से क्षयजन्य खांसी दूर हो जाती है।

११–लौंग, जायफल और पीपल, ये प्रत्येक दो २ तोले, काली मिर्च चार तोले, तथा सोंठ सोलह तोले, इन सब को वारीक पीस कर उस में सब चूर्ण के बराबर मिश्री को पीस कर मिलाना चाहिये तथा इस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से खांसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गोला, श्वास, मन्दाग्नि और संग्रहणी आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

अरुचि रोग का वर्णन ॥

भेद (प्रकार)–अरुचि रोग आठ प्रकार का होता है–वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य, शोकजन्य, भयजन्य, अतिलोभजन्य और अतिक्रोधजन्य।

कारण—यह अरुचि का रोग प्रायः मन को क्लेश देने वाले अन्न रूप और गन्ध आदि कारणों से उत्पन्न होता है, परन्तु सुश्रुत आदि कई आचार्यों ने वात, पित्त, कफ, सन्निपात तथा मन का सन्ताप, ये पांच ही कारण इस रोग के माने हैं, अतएव उन्हों ने इस रोग के कारण के आश्रय से पांच ही भेद भी माने हैं।

लक्षण—वातजन्य अरुचि में–दाँतों का खट्टा होना तथा मुख का कषेला होना, ये दो लक्षण होते हैं।

पित्तजन्य अरुचि में–मुख–कड़ुआ, खट्टा, गर्म, विरस और दुर्गन्ध युक्त रहता है।

कफजन्य अरुचि में–मुख–खारा, मीठा, पिच्छल, भारी और शीतल रहता है तथा आँतें कफ से लिप्त (लिसी) रहती हैं।

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध और मन को बुरे लगनेवाले पदार्थों से उत्पन्न हुई अरुचि में–मुख का स्वाद स्वाभाविक ही रहता है अर्थात् वातजन्य आदि अरुचियों के

समान मुख का स्वाद खट्टा आदि नहीं रहता है, परन्तु शोकादि से उत्पन्न अरुचि में केवल भोजन पर ही अनिच्छा होती है ।

सन्निपातजन्य अरुचि में-अन्न पर रुचि का न होना तथा मुख में अनेक रसों का प्रतीत होना, इत्यादि चिह्न होते हैं ।

चिकित्सा—१-भोजन के प्रथम सेंधा निमक मिला कर अदरख को खाना चाहिये, इस के खाने से अन्न पर रुचि, अग्नि का दीपन तथा जीभ और कण्ठ की शुद्धि होती है ।

२-अदरख के रस में शहद डाल कर पीने से अरुचि, श्वास, खांसी, जुखाम और कफ का नाश होता है ।

३-पकी हुई इमली और सफेद बूरा, इन दोनों को शीतल जल में मिला कर छान लेना चाहिये, फिर उस में छोटी इलायची, कपूर और काली मिर्च का चूर्ण डाल कर पानक तैयार करना चाहिये, इस पानक के कुरलों को वारंवार मुख में रखना चाहिये, इस से अरुचि और पित्त का नाश होता है ।

४-राई, भुना हुआ जीरा, भुनी हुई हींग, सोंठ, सेंधा निमक और गाय का दही, इन सब को छान कर इस का सेवन करना चाहिये, यह तत्काल रुचि को उत्पन्न करती है तथा जठराग्नि को बढ़ाती है ।

५-इमली, गुड़ का जल, दालचीनी, छोटी इलायची और काली मिर्च, इन सब को मिला कर मुख में कवल को रखना चाहिये, इस से अरुचि शीघ्र ही दूर हो जाती है ।

६-यवानी खाण्डव—अजवायन, इमली, सोंठ, अमलवेत, अनार और खट्टे वेर, ये सब प्रत्येक एक एक तोला, धनिया, संचर निमक, जीरा और दालचीनी, प्रत्येक छः २ मासे, पीपल १०० नग, काली मिर्च २०० नग और सफेद बूरा १६ तोले, इन सब को एकत्र कर चूर्ण बना लेना चाहिये तथा इस में से थोड़े से चूर्ण को क्रम २ से गले के नीचे उतारना चाहिये, इस के सेवन से हृदय की पीड़ा, पसवाड़े का दर्द, विबंध, अफरा, खांसी, श्वास, संग्रहणी और ववासीर दूर होती है, मुख और जीभ की शुद्धि तथा अन्न पर रुचि होती है ।

७-अनारदाना दो पल, सफेद बूरा तीन पल, दालचीनी, पत्रज और छोटी इलायची, ये सब मिला कर एक पल, इन सब का चूर्ण कर सेवन करने से अरुचि का नाश होता है, जठराग्नि का दीपन और अन्न का पाचन, होता है एवं पीनस, खांसी तथा ज्वर का नाश होता है ॥

छर्दि रोग का वर्णन ॥

अपने वेग से मुख को पूरण कर तथा सन्धि पीड़ा के द्वारा सब अंगों में दर्द को उत्पन्न कर दोषों का जो मुख में आना है उस को छर्दि कहते हैं ।

लक्षण—वायु की छर्दि में-हृदय और पसवाड़ों में पीड़ा, मुखशोष (मुख का सूखना), मस्तक और नाभि में शूल, खांसी, स्वर भेद (आवाज़ का बदल जाना), सुई चुभने के समान पीड़ा, डकार का शब्द, प्रबल वमन में झाग का आना, ठहर २ कर वमन का होना तथा थोड़ा होना, वमन के रंग का काला होना, कँपले और पतले वमन का होना तथा वमन के वेग से अधिक क्लेश का होना, इत्यादि चिह्न होते हैं ।

पित्त की छर्दि में-मूर्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक तालु और नेत्रों में पीड़ा, अँधेरे और चक्कर का आना, और पीले; हरे; कड़ुए; गर्म; दाहयुक्त तथा धूम्रवर्ण वमन का होना, ये चिह्न होते हैं ।

कफ की छर्दि में-तन्द्रा (ऊँघ), मुख में मीठा पन, कफ का गिरना, सन्तोष (अन्न में अरुचि), निद्रा, चित्त का न लगना, शरीर का भारी होना तथा चिकने; गाढ़े; मीठे और सफेद कफ के वमन का होना, ये चिह्न होते हैं ।

सन्निपात अर्थात् त्रिदोष की छर्दि में-शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास और मोह के साथ उलटी होती है तथा वह उलटी खारी; खट्टी; नीली; संघट्ट (गाढ़ी); गर्म और लाल होती है ।

आगन्तुज छर्दि में-यथायोग्य दोषों के अनुसार अपने २ लक्षण होते हैं[1] ।

कृमि की छर्दि में-शूल तथा खाली उलटी[2] होती है, एवं इस रोग में कृमि रोग और हृदय रोग के समान सब लक्षण होते हैं ।

छर्दि के उपद्रव—खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, अचेतनता (बेहोशी), हृदय रोग तथा नेत्रों के सामने अँधेरे का आना, ये सब उपद्रव प्रायः छर्दि रोग में होते हैं ।

कारण—अत्यन्त पतले; चिकने; अप्रिय तथा खार से युक्त पदार्थों का सेवन करने से, कुसमय भोजन करने से, अधिक भोजन करने से, बीभत्स पदार्थों के देखने से, गरिष्ठ (भारी) पदार्थों के खाने से, श्रम; भय; उद्वेग; अजीर्ण; और कृमिदोष से गर्भिणी स्त्री की गर्भ सम्बंधी पीड़ा से तथा वारंवार भोजन करने से तीनों दोष कुपित हो कर बल पूर्वक मुख का आच्छादन कर लेते हैं तथा अंगों में पीड़ा को उत्पन्न कर मुख के द्वारा पेट में पहुँचे हुए भोजन को बाहर निकालते हैं ।

१-जो कि पहिले पृथक् २ लिख चुके हैं ॥

२-खाली उलटी होती है अर्थात् उबकियाँ आकर रह जाती हैं ॥

चिकित्सा—१–आमाशय (होजरी) के उत्क्लेश के होने से छर्दि होती है, इस लिये इस रोग में प्रथम लंघन करना चाहिये ।

२–यदि इस रोग में दोषों की प्रवलता हो तो कफपित्तनाशक विरेचन (जुलाव) लेना चाहिये ।

३–वातजन्य छर्दि रोग में जल को दूध में मिला कर औंटाना चाहिये, जब जल जल कर केवल दूध शेष रह जावे तब उसे पीना चाहिये ।

४–भूमिआँवले के यूष में घी और सेंधे निमक को मिला कर पीना चाहिये ।

५–गिलोय, त्रिफला, नीम की छाल और पटोलपत्र के क्काथ में शहद मिला कर पीने से छर्दि दूर हो जाती है ।

६–छोटी हरड़ के चूर्ण में शहद को मिला कर चाटने से दस्त के द्वारा दोषों के निकल जाने से शीघ्र ही छर्दि मिट जाती है ।

७–वायविड़ंग, त्रिफला और सोंठ, इन के चूर्ण को शहद में मिला कर चाटना चाहिये ।

८–वायविड़ंग, केवटी, मोथा और सोंठ, इन के चूर्ण का सेवन करने से कफ की छर्दि मिट जाती है ।

९–आँवले, खील और मिश्री, ये सब एक पल लेकर तथा पीस कर पाव भर जल में छान लेना चाहिये, पीछे उस में एक पल शहद को डाल कर पुनः कपड़े से छान लेना चाहिये, पीछे इस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से त्रिदोष से उत्पन्न हुई छर्दि शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ।

१०–गिलोय के हिम[1] में शहद डाल कर पीने से त्रिदोष की कठिन छर्दि भी मिट जाती है ।

११–पित्तपापड़े के क्काथ में शहद डाल कर पीने से पित्त की छर्दि मिट जाती है ।

१२–**एलादि चूर्ण**—इलायची, लौंग, नागकेशर, बेर[2] की गुठली, खील[3], प्रियङ्गु, मोथा, चन्दन और पीपल, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर तथा इन का चूर्ण कर मिश्री और शहद को मिला कर उसे चाटना चाहिये इस से कफ, वायु और पित्त की छर्दि मिट जाती है ।

१३–सूखे हुए पीपल के वक्कल (छाल) को लेकर तथा उस को जला कर राख कर लेना चाहिये, उस राख को किसी पात्र में जल डाल कर घोल देना चाहिये, थोड़ी देर में उस के नितरे हुए जल को लेकर छान लेना चाहिये, इस जल के पीने से छर्दि और अरुचि शीघ्र ही मिट जाती है ॥

१–हिम की विधि औषधप्रयोग वर्णन नामक प्रकरण में पहिले लिख चुके हैं ॥

२–बेर की अर्थात् झड़बेरी के बेर की ॥

३–भूने हुए धान (जिन में से चावल निकलते हैं) ॥

स्त्रीरोग (प्रदर) का वर्णन ॥

कारण—परस्पर विरुद्ध पदार्थ, मद्य, अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन करना), अजीर्ण, गर्भपात, अति मैथुन, अति चलना फिरना, अति शोक और उपवासादि के द्वारा शरीर का कृश होना, भार का ले जाना, लकड़ी आदि का लगना तथा दिन में सोना, इन कारणों से वात, पित्त, कफ और सन्निपात का चार प्रकार का प्रदर रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—सब प्रकार के प्रदरों में अंगों का टूटना तथा हाथ पैरों में पीड़ा होती है।

वातजन्य प्रदर—रूखा, लाल, झागों से मिला हुआ, मांस तथा सफेद पानी के समान थोड़ा २ बहता है तथा इस में तोद (सुई के चुभाने के समान पीड़ा) और आक्षेपक वायु की पीड़ा होती है।

पित्तजन्य प्रदर—कुछ पीला, नीला, काला, लाल तथा गर्म होता है, इस में पित्त के दाह से चमचमाहट युक्त पीड़ा होती है तथा प्रदर का वेग अधिक होता है।

कफजन्य प्रदर—आम रस (कच्चे रस) से युक्त, सेमर के गोंद के समान चिकना, कुछ पीला तथा मांस के धुले हुए जल के समान गिरता है, इस को श्वेत प्रदर कहते हैं।

सन्निपातजन्य प्रदर का रंग शहद, घी, हरताल और मज्जा के समान होता है तथा उस में मृत शरीर के गन्ध के समान गन्ध आती है, यह सन्निपातजन्य प्रदर रोग असाध्य होता है।

अति प्रदर के उपद्रव—प्रदर के अत्यंत गिरने से-दुर्बलता, श्रम, मूर्छा, मद, तृषा (प्यास), दाह (जलन), प्रलाप (बकना), पाण्डुरोग, तन्द्रा (झींट) और वातजन्य आक्षेपक आदि रोग हो जाते हैं।

असाध्य प्रदर के लक्षण—जिस के प्रदर के रुधिर का स्राव निरन्तर होता हो; तृषा; दाह और ज्वर हो, जो दुर्बल हो तथा जिस का रुधिर क्षीण हो गया हो उस स्त्री का यह रोग असाध्य माना जाता है।

चिकित्सा—१-दही चार तोले, काला निमक एक मासा, जीरा दो मासे, मौलेठी दो मासे, नीला कमल दो मासे और शहद चार मासे, इन को इकट्ठा पीस कर खाने से वातजन्य प्रदर शांत हो जाता है।

२—मौलेठी एक तोला और मिश्री एक तोला, इन दोनों को चावलों के जल में, पीस कर पीने से रक्तप्रदर मिट जाता है।

३-अथवा—खिरेटी[1] की जड़ का चूर्ण कर मिश्री और शहद के साथ खाने से रक्तप्रदर दूर हो जाता है।

४-अथवा—किसी पवित्र स्थान से व्याघ्रनखी[2] औषधिकी उत्तर की तरफ की जड़ को

१-इसे संस्कृत में बला कहते हैं॥

२-इसे भाषा में बघनखी कहते हैं, यह एक प्रकार की रूखड़ी होती है॥

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उखाड़ कर उसे कमर में बाँधने से रक्तप्रदर अवश्य मिट जाता है।

५—रसोत और चौलाई की जड़ को बारीक पीस कर चावलों के जल में इसे तथा शहद को मिला कर पीने से त्रिदोष जन्य प्रदर नष्ट हो जाता है।

६—अशोक वृक्ष की चार तोले छाल को बत्तीस पल जलमें औटावे, जब आठ पल शेष रहे तब उस में उतना ही (आठ पल) दूध मिला कर उसे पुनः औटावे, जब केवल दूध शेष रह जावे तब उसे उतार कर शीतल करे, इस में से चार पल दूध प्रातःकाल पीना चाहिये, अथवा जठराग्नि का बलाबल विचार न्यूनाधिक मात्रा का सेवन करे, इस से अति कठिन भी रक्तप्रदर शीघ्र ही दूर हो जाता है।

७—कुश की जड़ को चावलों के धोवन में पीस कर तीन दिन तक पीने से प्रदर रोग शान्त हो जाता है।

८—दारुहलदी, रसोत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, बेलगिरी, लाल चन्दन और कमोदिनी के फूल, इन के क्काथ को शहद डाल कर पीना चाहिये, इस के पीने से सब प्रकार का प्रदर अर्थात् लाल सफेद और पीड़ा युक्त भी शान्त हो जाता है॥

राजयक्ष्मा रोग का वर्णन ॥

कारण—अधोवायु तथा मल और मूत्रादि वेगों के रोकने से, क्षीणता को उत्पन्न करने वाले मैथुन; लंघन और ईर्ष्या आदि के अतिसेवन से, बलवान् के साथ युद्ध करने से तथा विषम भोजन से सन्निपातजन्य यह राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण—कन्धे और पसवाड़ों में पीड़ा, हाथ पैरों में जलन और सब अंगों में ज्वर, ये तीन लक्षण इस रोग में अवश्य होते हैं, इस प्रकार के यक्ष्मा को त्रिरूप यक्ष्मा कहते हैं।

अन्न में अरुचि, ज्वर, श्वास, खांसी, रुधिर का निकलना और स्वरभंग[1], ये छः लक्षण जिस यक्ष्मा में होते हैं उस को षड्रूप राजयक्ष्मा कहते हैं।

वायु की अधिकता वाले यक्ष्मा में-स्वरभेद, शूल, कन्धे और पसवाड़ों का सूखना, ये लक्षण होते हैं।

पित्त की अधिकता वाले यक्ष्मा में-ज्वर, दाह, अतीसार और थूक के साथ में रुधिर का गिरना, ये लक्षण होते हैं।

कफ की अधिकता वाले यक्ष्मा में-मस्तक का कफ से भरा रहना, भोजन पर अरुचि, खांसी और कण्ठ का बिगड़ना, ये लक्षण होते हैं।

सन्निपातजन्य राजयक्ष्मा में-सब दोषों के मिश्रित[2] लक्षण होते हैं।

१-स्वरभङ्ग अर्थात् आवाज़ का टूट जाना, अर्थात् बैठ जाना ॥

२-मिश्रित अर्थात् मिले हुए ॥

साध्यासाध्यविचार—जो यक्ष्मा रोग उक्त ग्यारह लक्षणों से युक्त हो, अथवा छः लक्षणों से वा तीन लक्षणों (ज्वर खांसी और रुधिर का गिरना इन तीन लक्षणों) से युक्त हो उस को असाध्य समझना चाहिये ।

हां इस में इतनी विशेषता अवश्य है कि–उक्त तीनों प्रकार का (ग्यारह लक्षणों वाला, छः लक्षणों वाला तथा तीन लक्षणों वाला) यक्ष्मा मांस और रुधिर से क्षीण मनुष्य का असाध्य तथा बलवान् पुरुष का कष्टसाध्य समझा जाता है ।

इस के सिवाय–जिस यक्ष्मा रोग में रोगी अत्यन्त भोजन करने पर भी क्षीण होता जावे, अतीसार होते हों, सब अंग सूज गये हों तथा रोगी का पेट सूज गया हो वह यक्ष्मा भी असाध्य समझा जाता है ।

चिकित्सा—१–जिस रोगी के दोष अत्यन्त बढ़ रहे हों तथा जो रोगी, बलवान् हो ऐसे यक्ष्मा रोगवाले के प्रथम वमन और विरेचन आदि पांच कर्म करने चाहियें,

---

१–असाध्य अर्थात् चिकित्सा से भी न मिटने वाला ॥

२–कष्टसाध्य अर्थात् मुश्किल से मिटने वाला ॥

३–वमन, विरेचन, अनुवासन, निरूहन और नावन (नस्य), ये पांच कर्म कहाते हैं, इन में से वस्ति आदि का कुछ कथन पूर्व कर चुके हैं तथापि यहां पर इन पाँचों कर्मों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं, सब से पहिला कर्म वमन अर्थात् उलटी कराना है, इस की यह विधि है कि–शरद् ऋतु, वर्षा ऋतु और वसन्त ऋतु में वमन कराना चाहिये । **वमन के योग्य प्राणी**—बलवान्, जिस के कफ भरा हो, हृल्लासादि कफ के रोगों से जो पीड़ित हो, जिन को वमन कराना हित हो तथा जो धीर चित्त वाला हो, इन सब को वमन कराना चाहिये, **वमन के योग्य रोग**—विषदोष, दूधसम्बंधी बालरोग, मन्दाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृदयरोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, अपची, खांसी, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, मृगी, ज्वर, उन्माद, रक्तातीसार, नाक तालु और ओष्ठका पकना, कान का बहना, अधिजिह्व, गलशुण्डी, अतीसार, पित्तकफज रोग, मेदोरोग और अरुचि, इन रोगों में वमन कराना चाहिये, **वमन कराना निषेध**—तिमिररोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी, कृश, अत्यन्त वृद्ध, गर्भवती स्त्री, अत्यन्त स्थूल, उरःक्षत आदि घाव वाला, मद्य से पीड़ित, बालक, रूक्ष, निरूहण वस्ति जिस के की गई हो, उदावर्त तथा ऊर्ध्व रक्त पित्त वाला और केवल वातजन्य रोग युक्त, इन को वमन बड़ी कठिनता से होता है, इस लिये इन सब को और पाण्डुरोगी, कृमिरोगी, पढने से जिस का कण्ठ बैठ गया हो, अजीर्ण से व्यथित और जो विष के विकार से दुःखित है, इन सब को वमन कराना चाहिये, जो कफ से व्याप्त हैं, इन को महुए का काढ़ा पिला कर वमन कराना चाहिये, यदि सुकुमार, कृश, बालक, वृद्ध और वमन से डरने वालों को वमन कराना हो तो यवागू , दूध, छाछ, वा दही आदि पदार्थ पिला कर वमन कराना चाहिये, वमन कराने का यह नियम है कि जिस को वमन कराना हो उस को जो पदार्थ अनुकूल न हो अर्थात् अरुचिकारी हो तथा कफकारी हो ऐसे पदार्थ को खिला कर प्रथम दोषों को उत्क्लेशित (निकलने के सम्मुख) कर दे, फिर स्नेहन और स्वेदन कर के वमन करावे, क्योंकि ऐसा करने से वमन ठीक हो जाता है, सब

परन्तु क्षीण और दुर्बल रोगी के उक्त पञ्च कर्म नहीं करने चाहिये, क्योंकि क्षीण और दुर्बल रोगी उक्त पंच कर्मों के करने से शीघ्र ही मर जाता है, क्योंकि क्षीण पुरुष के शरीर में उक्त पांचों कर्म विष के समान असर करते हैं, देखो! आचार्यों ने कहा है कि- "राजयक्ष्मा वाले रोगी का बल मल के आधीन है और जीवन शुक्र के आधीन है" इस लिये यक्ष्मा वाले रोगी के मल और वीर्य की रक्षा सावधानी के साथ करनी चाहिये।

वमनकारी पदार्थों में सेंधानिमक और शहद हितकारी हैं, वमन में वीभत्स (जो न रुचे ऐसी) औषधि देनी चाहिये तथा विरेचन में रुचिकारी औषधि देनी चाहिये, काढ़े की ४ पल औषधों को चार सेर जल में औटावे, जब दो सेर जल शेष रहे तब उतार कर तथा छान कर वमन के लिये रोगी को देवें। **मात्रा**—वमन के लिये पीने योग्य क्वाथ की आठ सेर की मात्रा बड़ी है, छः सेर की मध्यम है और तीन सेर की मात्रा हीन होती है, परन्तु वमन, विरेचन और रुधिर के निकालने में १३॥ पल अर्थात् ५४ तोले का सेर माना गया है। **कल्क वा चूर्णादि की मात्रा**—वमनादि में कल्क चूर्ण और अवलेह की उत्तम मात्रा बारह तोले की है, आठ तोले की मध्यम तथा चार तोले की अधम मात्रा है। **वमन में वेग**—वमन में आठ वेगों के पीछे पित्त का निकलना उत्तम है, छः वेगों के पीछे पित्त का निकलना मध्यम है तथा चार वेगों के पीछे पित्त का निकलना अधम है, कफ को चरपरे तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थों-से दूर करे, पित्त को स्वादिष्ट और शीतल पदार्थों से तथा वात मिश्रित कफ को स्वादिष्ट, नमकीन, खट्टे और गर्म मिले पदार्थों से दूर करे, कफ की अधिकता में पीपल, मैनफल और सेंधानिमक, इन के चूर्ण को गर्म जल के साथ पीवे, पित्त की अधिकता में पटोलपत्र, अडूसा और नीम के चूर्ण को शीतल जल के साथ पीवे तथा कफ युक्त वात की पीड़ा में मैनफल के चूर्ण की फकी ले कर ऊपर से दूध पीवे, अजीर्ण रोग में गर्म जल के साथ सेंधेनिमक के चूर्ण को खाकर वमन करे, जब वमन कर्त्ता औषध को पी चुके तब ऊँचे आसन (मेज़ वा कुर्सी) पर बैठ कर कण्ठ को अण्ड के पत्ते की नाल से वारंवार खुजला कर वमन करे। **वमन ठीक न होने के अवगुण**—मुख से पानी का बहना, हृदय का रुकना, देह में चकत्तों का पड़ जाना तथा सब देह में खुजली का चलना, ये सब वमन के ठीक रीति से न होने से उत्पन्न होते हैं। **अत्यन्त वमन के उपद्रव**—अत्यन्त वमन के होने से प्यास, हिचकी, डकार, बेहोशी, जीभ का निकलना, आँख का फटना, मुख का खुला रह जाना, रुधिर की वमन का होना, वारं वार थूक का आना और कण्ठ में पीड़ा का होना, ये अति वमन के उपद्रव हैं। **अति वमन का यत्न**—यदि वमन अत्यन्त होते होवें तो साधारण जुलाब देना चाहिये, यदि जीभ भीतर चली गई हो तो स्निग्ध खट्टे खारे रस से युक्त घी और दूध के कुल्ले करने चाहियें तथा उस प्राणी के आगे बैठ कर दूसरे लोगों को नींबू आदि खट्टे फलों को चूसना चाहिये, यदि जीभ बाहर निकल पड़ी हो तो तिल वा दाख के कल्क से लेपित कर जिह्वा का भीतर प्रवेश कर दे, यदि अति वमन से आँख फट कर निकल पड़ी हो तो घृत चुपड़ कर धीरे २ भीतर को दबावे, यदि जावड़ा फटे का फटा (खुला ही) रह गया हो तो स्वेदन कर्म करे, नस्य देवे तथा कफ वात हरणकर्त्ता यत्न करे, यदि अति वमन से रुधिर गिरने लगे तो रक्तपित्त पर लिखी हुई चिकित्सा को करे, यदि अति वमन से तृषा आदि उपद्रव हो गये हों तो आँवला, रसोत, खस, खील, चन्दन और नेत्रवाला को जल में मथ कर (मन्थ तैयार कर) उस में घी; शहद और खांड़ डाल कर पिलावे।

२–कोह की छाल, खिरेटी और कौंच के बीज, इन का चूर्ण कर तथा उस में शहद, घी और मिश्री मिला कर दूध के साथ पीना चाहिये, इसके पीने से राज यक्ष्मा तथा खांसी शीघ्र ही मिट जाती है।

३–शहद, सुवर्ण मक्षिका (सोना माखी) की भस्म, वायविड़ंग, शिलाजीत, लोह की भस्म, घी और हरड़, इन सब को मिला कर सेवन करने से घोर भी यक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है, परन्तु इस औषधि के सेवन के समय पूरे पथ्य से रहना चाहिये।

उत्तम वमन के लक्षण—हृदय, कण्ठ और मस्तक का शुद्ध होना, जठराग्नि की प्रबलता, देह में हलका पन तथा कफ पित्त का नष्ट होना, ये उत्तम वमन के लक्षण हैं। **वमन में पथ्यापथ्य**—दीप्ताग्नि-वाले वमनकर्त्ता प्राणी को तीसरे पहर मूंग, साठीचावल, शालिचावल तथा हृदय को प्रिय यूष आदि पदार्थ को खाना चाहिये, अजीर्णकारी पदार्थ का भोजन, शीतल जल का पीना, व्यायाम, मैथुन, तेल की मालिस और क्रोध का करना, इन सब का एक दिन तक त्याग करना चाहिये ॥

दूसरा कर्म विरेचन है–इस की यह विधि है कि–प्रथम स्नेह, स्वेदन और वमन करा के फिर विरेचन (जुलाव) देना चाहिये, किन्तु वमन कराये विना विरेचन कभी नहीं देना चाहिये, क्योंकि वमन कराये विना विरेचन को दे देने से रोगी का कफ नीचे को आ कर ग्रहणी (पाचकाग्नि) को ढांक देता है कि जिस से मन्दाग्नि, देह का गौरव और प्रवाहिका आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, अथवा प्रथम पाचन द्रव्य से आम और कफ को पका कर फिर विरेचन देना चाहिये, शुद्ध देह वाले को शरद ऋतु और वसन्त ऋतु में विरेचन कराना चाहिये, हां यदि कुशल वैद्य विरेचन देने के विना रोगी का प्राण संकट देखे तो ऋतु के नियम का त्याग कर अन्य ऋतु में भी विरेचन करा देना चाहिये, पित्त के रोग, आमवात, उदररोग, अफरा और कोष्ठ की अशुद्धि, इन में विरेचन कराना अत्यावश्यक होता है, क्योंकि देखो! जो वात और पित्तादि दोष लंघन और पाचनादि कर्मों से जीत लिये जाते हैं वे समय पा कर कदाचित् फिर भी कुपित हो सकते हैं परन्तु वमन और विरेचन आदि संशोधनों से जो दोष शुद्ध हो जाते हैं वे फिर कभी कुपित नहीं होते हैं। **विरेचन का निषेध**—बालक, वृद्ध, अत्यन्त स्निग्ध, घाव से क्षीण, भयभीत, थका हुआ, प्यासा, अत्यन्त स्थूल, गर्भिणी स्त्री, नवीन ज्वर वाला, तत्काल की प्रसूता स्त्री, मन्दाग्नि वाला, मद से उन्मत्त, जिस के बाण आदि शल्य लग रहा हो तथा जिस ने प्रथम स्नेह और स्वेद न किया हो (घृत पान वा मुंजिस का सेवन न किया हो), इन को विरेचन नहीं देना चाहिये। **विरेचन देने योग्य**—जीर्ण ज्वरवाला, विष से व्याकुल, वातरोगी, भगंदरवाला, बवासीर; पण्डुरोग तथा उदर रोग वाला, गांठ के रोग वाला, हृदय रोगी, अरुचि से पीड़ित, योनिरोग वाली स्त्री, प्रमेहरोगी, गोले का रोगी, प्लीहरोगी, व्रण से पीड़ित, विद्रधिरोगी, वमन का रोगी, विस्फोट; विषूचिका और कुष्ठ रोग वाला, कान; नाक; मस्तक; मुख; गुदा और लिंग में जिस के रोग हो प्लीहा सूजन और नेत्ररोग से युक्त, कृमिरोगी, क्षार के भक्षण और वादी से दुःखित, शूलरोगी तथा मूत्राघात से दुःखित, ये सब प्राणी विरेचन के योग्य होते हैं, अत्यन्त पित्त प्रकृति वाले का कोठा मृदु (नरम) होता है, अत्यन्त कफ वाले का मध्यम और अत्यन्त वादी वाले का कोठा क्रूर होता है (यह वादी वाला पुरुष दुर्विरेच्य होता है अर्थात् इस को दस्त कराना कठिन पड़ता है), इस लिये मृदु कोठे वाले को नरम मात्रा, मध्यम कोठे वाले को मध्यम और क्रूर कोठे वाले को

४-मिश्री, घी और शहद, इन को मिला कर सेवन करना चाहिये तथा इस के ऊपर दूध पीना चाहिये, इस के सेवन से यक्ष्मा का नाश तथा शरीर में पुष्टि होती है ।

५-**सितोपलादि चूर्ण**—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायची के बीज २ तोले और दालचीनी १ तोले, इन सब का चूर्ण कर शहद और घी मिला कर चाटना चाहिये, इस के सेवन से राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, ज्वर, पसवाड़े का शूल, मन्दाग्नि, जिह्वा की विरसता, अरुचि, हाथ पैरों का दाह, और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त, ये सब रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं ।

तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये, (मृदु, मध्यम और तीव्र औषधों से मृदु, मध्यम और तीव्र मात्रायें कहलाती हैं) नरम कोठे वाले प्राणी को दाख, दूध और अण्डी के तेल आदि से विरेचन होता है, मध्यम कोठे वाले को निसोत, कुटकी और अमलतास से विरेचन होता है और क्रूर कोठे वाले को थूहर का दूध, चोक, दन्ती और जमालगोटे आदि से विरेचन होता है । **विरेचन के वेग**—तीस वेग के पीछे आम का निकलना उत्तम, वीस वेग के पीछे मध्यम और दश वेग के पीछे अधम होता है । **विरेचन की मात्रा**—आठ तोले की उत्तम, चार तोले की मध्यम और दो तोले की अधम मात्रा मानी जाती है, परन्तु यह परिणाम क्वाथादि की औषधि की मात्रा का है, विरेचन के लिये कल्क; मोदक और चूर्ण की मात्रा एक तोले की ही है, इन का सेवन शहद, घी और अवलेह के साथ करना चाहिये, मात्रा का यह साधारण नियम कहा गया है इस लिये मात्रा एक तोले से लेकर दो तोले पर्यन्त बुद्धिमान् वैद्य रोगी के बलाबल का विचार कर दे सकता है । **दोषानुसार विरेचन**—पित्त के रोग में निसोत के चूर्ण को द्राक्षादि क्वाथ के साथ में, कफ के रोगों में सोंठ, मिर्च और पीपल के चूर्ण को त्रिफला के काढ़े और गोमूत्र के साथ में, वायु के रोगों में निसोत, सेंधानिमक और सोंठ के चूर्ण को खट्टे पदार्थों के साथ में देना चाहिये, अण्डी के तेल को दुगुने गाय के दूध में मिला कर पीने से शीघ्र ही विरेचन होता है, परन्तु अण्डी का तेल स्वच्छ होना चाहिये । **ऋतु के अनुसार विरेचन**—वर्षा ऋतु में निसोत, इन्द्रजौं, पीपल और सोंठ के चूर्ण में दाख का रस तथा शहद डाल कर लेना चाहिये, शरद् ऋतु में निसोत, धमासा, नागरमोथा, खांड़, नेत्रवाला, चन्दन, दाख का रस और मौलेठी, इन सब को शीतल जल में पीस कर तथा छान कर (विना औटाये ही) पीना चाहिये, शिशिर और वसन्त ऋतु में पीपल, सोंठ, सेंधानिमक, सारिवा और निसोत का चूर्ण शहद में मिला कर खाना चाहिये । **अभयादि मोदक**—विरेचन के लिये अभयादि मोदक भी उत्तम पदार्थ है, इस का विधान वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये, यह विरेचन के लिये तो उत्तम है ही, किन्तु विरेचन के सिवाय यह विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, खांसी, भगन्दर तथा वातजन्य पीठ; पसवाड़ा; जांघ और उदर की पीड़ा को भी दूर करता है । **विरेचन में नियम**—विरेचनकारक औषधि को पी कर शीतल जल से नेत्रों को छिड़कना चाहिये तथा सुगन्धि (अतर आदि) को सूँघ कर पान खाना चाहिये, हवा में नहीं बैठना चाहिये तथा दस्त के वेग को रोकना नहीं चाहिये, इन के सिवाय नींद का लेना तथा शीतल जलस्पर्श का त्याग करना चाहिये, वारं वार गर्म जल को वा सौंफ आदि के अर्क को पीना चाहिये, जैसे वमनकारक औषधि के लेने से कफ, पी हुई औषधि, पित्त और वात निकलते हैं उसी प्रकार विरेचन की औषधि के लेने से मल, पित्त, पी हुई औषधि और कफ निकलते हैं । **उत्तम विरे-**

६-**जातीफलादि चूर्ण**—जायफल, वायविडंग, चित्रक, तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन, सोंठ, लौंग, छोटी इलायची के बीज, भीमसेनी कपूर, हरड़, आमला, काली मिर्च, पीपल और वंशलोचन, ये प्रत्येक तीन २ तोले, चतुर्जा तक की चारों ओषधियों के तीन तोले तथा भांग सात पल, इन सब का चूर्ण करके सब चूर्ण के समान मिश्री मिलानी चाहिये, इस के सेवन से क्षय, खांसी, श्वास, संग्रहणी, अरुचि, जुखाम और मन्दाग्नि, ये सब रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं ।

चन न होने के लक्षण—जिस को उत्तम प्रकार से विरेचन न हुआ हो उस की नाभि में पीड़ा युक्त कठोरता, कोख में दर्द, मल और अधोवायु का रुकना, देह में खुजली का चलना, चकत्तों का उठना, देह का गौरव, दाह, अरुचि, अफरा और वमन का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं, ऐसी दशा में पाचन ओषधि दे कर स्नेहन करना चाहिये, जब मल पक जावे और स्निग्ध हो जावे तब पुनः जुलाब देना चाहिये, ऐसा करने से जुलाब न होने के उपद्रव मिट कर तथा अग्नि प्रदीप्त हो कर शरीर हलका हो जाता है । **अधिक विरेचन होने के उपद्रव**—अधिक विरेचन होने से मूर्च्छा, गुदभ्रंश (काछ का निकलना), पेट में दर्द, आम का अधिक गिरना तथा दस्त में रुधिर और चर्बी आदि का निकलना, इत्यादि उपद्रव होते हैं, ऐसी दशा में रोगी के शरीर पर शीघ्र ही शीतल जल छिड़कना चाहिये, चावलों के धोवन में शहद डाल कर पिलाना चाहिये, हलका सा वमन कराना चाहिये, आमकी छालके कल्क को दही और जौं की कांजी में पीस कर नाभि पर लेप करने से दस्तों का घोर उपद्रव भी मिट जाता है, जौंओं का सौवीर, शालि चावल, साठी चावल, बकरी का दूध, शीतल पदार्थ तथा ग्राही पदार्थ, इत्यादि पदार्थ अधिक दस्तों के होने को बंद कर देते है । **उत्तम विरेचन होने के लक्षण**—शरीर का हलका पन, मन में प्रसन्नता, तथा अधोवायु का अनुकूल चलना, ये सब उत्तम विरेचन के लक्षण हैं । **विरेचन के गुण**—इन्द्रियों में बल का होना, बुद्धि में स्वच्छता, जठराग्नि का दीपन तथा रसादि धातु और अवस्था का स्थिर होना, ये सब विरेचन के गुण हैं । **विरेचन में पथ्यापथ्य**—अत्यंत हवा में बैठना, शीतल जल का स्पर्श, तेल की मालिश, अजीर्ण कारी भोजन, व्यायामादि परिश्रम और मैथुन, ये सब विरेचन में अपथ्य हैं तथा शालि और साठी चावल, मूंग आदि का यवागू, ये सब पदार्थ विरेचन में पथ्य अर्थात् हितकारक हैं ॥

तीसरा कर्म अनुवासन है-यह वस्ति (गुदा में पिचकारी लगाने) का प्रथम भेद है, तात्पर्य यह है कि तैल आदि स्नेहों से जो पिचकारी लगाते हैं उस को अनुवासन वस्ति कहते हैं, इसी का एक भेद मात्रा वस्ति है, मात्रा वस्ति में घृत आदि की मात्रा आठ तोले की अथवा चार तोले की ली जाती है । **अनुवासन वस्ति के अधिकारी**—रूक्ष देह वाला, तीक्ष्णाग्नि वाला तथा केवल वातरोग वाला, ये सब इस वस्ति के अधिकारी हैं । **अनुवासन वस्ति के अनधिकारी**—कुष्ठरोगी, प्रमेहरोगी, अत्यन्त स्थूल शरीर वाला तथा उदररोगी, ये सब इस वस्ति के अनधिकारी हैं, इन के सिवाय अजीर्णरोगी, उन्माद वाला, तृषा से व्याकुल, शोथरोगी, मूर्छित, अरुचि युक्त, भयभीत, श्वासरोगी तथा कास और क्षयरोग से युक्त, इन को न तो यह (अनुवासन) वस्ति देनी चाहिये और न निरूहण वस्ति (जिस का वर्णन आगे किया जावेगा) देनी चाहिये । **वस्ति का विधान**—वस्ति देने को नेत्र (नली) सुवर्ण आदि धातु की, वृक्ष की, बांस की, नरसल की, हाथीदाँत की, सींग के अग्रभाग की, अथवा स्फटिक आदि मणियों की बनानी

७-अडूसे का रस एक सेर, सफेद चीनी आधसेर, पीपल आठ तोले और घी आठ तोले, इन सब को मन्दाग्नि से पका कर अवलेह (चटनी) बना लेना चाहिये; इस के शीतल हो जाने पर ३२ तोले शहद मिलाना चाहिये, इस का सेवन करने से राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, पसवाड़े का शूल, हृदय का शूल, रक्तपित्त और ज्वर, ये सब रोग शीघ्र ही मिट जाते हैं।

८-बकरी का घी चार सेर, बकरी की मेंगनियों का रस चार सेर, बकरी का मूत्र चार सेर, बकरी का दूध चार सेर तथा बकरी का दही चार सेर, इन सब को एकत्र पका

चाहिये, एक वर्ष से लेकर छः वर्ष तक के बालक के लिये छः अंगुल के, छः वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक के लिये आठ अंगुल के तथा बारह वर्ष से अधिक अवस्था वाले के लिये बारह अंगुल के लम्बे वस्ति के नेत्र बनाने चाहियें, छः अंगुल की नली में मूंग के दाने के समान, आठ अंगुल की नली में मटर के समान तथा बारह अंगुल की नली में बेर की गुठली के समान छिद्र रक्खे, नली चिकनी तथा गाय की पूंछ के समान (जड़ में मोटी और आगे क्रम २ से पतली) होनी चाहिये, नली मूल में रोगी के अंगूठे के समान मोटी होनी चाहिये और कनिष्ठिका के समान स्थूल होनी चाहिये तथा गोल मुख की होनी चाहिये, नली के तीन भागों को छोड़ कर चतुर्थ भाग रूप मूल में गाय के कान के समान दो कर्णिकायें बनानी चाहियें तथा उन्हीं कर्णिकाओं में चर्म की कोथली (थैली) को दो बन्धनों से खूब मजबूत बांध देना चाहिये, वह वस्ति लाल वा कपैले रंग से रंगी हुई, चिकनी और दृढ़ होनी चाहिये, यदि घाव में पिचकारी मारनी हो तो उस की नली आठ अंगुल की मूंग के समान छिद्र वाली और गीध के पांख की नली के समान मोटी होनी चाहिये। **वस्ती के गुण**—वस्ति का उत्तम प्रकार से सेवन करने से शरीर की पुष्टि, वर्ण की उत्तमता, बल की वृद्धि, आरोग्यता और आयु की वृद्धि होती है। **ऋतु के अनुसार वस्ति**—शीत काल और वसन्त ऋतु में दिन में स्नेह वस्ति देना चाहिये तथा ग्रीष्म वर्षा और शरद ऋतु में स्नेह वस्ति रात्रि में देना चाहिये। **वस्ति विधि**—रोगी को बहुत चिकना न हो ऐसा भोजन करा के यह वस्ति देनी चाहिये किन्तु बहुत चिकना भोजन कराके वस्ति नहीं देनी चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दो प्रकार से (भोजन में और वस्ति में) स्नेह का उपयोग होने से मद और मूर्छा रोग उत्पन्न होते हैं तथा अत्यन्त रूक्ष पदार्थ खिला कर वस्ति के देने से बल और वर्ण का नाश होता है, अतः अल्पस्निग्ध पदार्थों को खिला कर वस्ति करनी चाहिये। **वस्ति की मात्रा**—यदि वस्ति हीन मात्रा से दी जावे तो यथोचित कार्य को नहीं करती है, यदि अधिक मात्रा से दी जावे तो अफरा, कृमि और अतीसार को उत्पन्न करती है इस लिये वस्ति न्यूनाधिक मात्रा से नहीं देनी चाहिये, अनुवासन वस्ति में स्नेह की छः पल की मात्रा उत्तम, तीन पल की मध्यम और डेढ़ पल की मात्रा अधम मानी गई है, स्नेह में जो सोंफ और सेंधे नमक का चूर्ण डाला जावे उस की मात्रा छः मासे की उत्तम, चार मासे की मध्यम और दो मासे की हीन है। **वस्ति का समय**—विरेचन देने के बाद ७ दिन के पीछे जब देह में बल आ जावे तब अनुवासन वस्ति देनी चाहिये। **वस्ति देने की रीति**—रोगी के खूब तेल की मालिश कराके धीरे २ गर्म जल से बफारा दिला कर तथा भोजन कराके कुछ इधर उधर घुमा कर तथा मल मूत्र और अधोवायु का त्याग करा के स्नेह वस्ति देनी चाहिये, इस की रीति यह है कि-रोगी को बायें करवट सुला के बाईं

कर उस में एक सेर जवाखार का चूर्ण डालना चाहिये, इस घृत के सेवन से राजयक्ष्मा, खांसी और श्वास, ये रोग नष्ट हो जाते हैं ।

९–वासा के जड़ की छाल १२॥ सेर तथा जल ६४ सेर, इन को औटावे, जब १६ सेर जल शेष रहे तब इस में १२॥ सेर मिश्री मिला कर पाक करे, जब गाढ़ा हो जावे तब उस में त्रिकुटा, दालचीनी, पत्रज, इलायची, कायफल, मोथा, कुष्ठ (कूट), जीरा, पीपरामूल, कवीला, चव्य, वंशलोचन, कुटकी, गजपीपल, तालीसपत्र और धनियां, ये सब दो २ तोले मिलावे, सब के एक जीव हो जाने पर उतार ले तथा शीतल होने पर

जांघ को फैला कर और दाहिनी जांघ को सकोड़ कर चिकनी गुदा में पिचकारी की नली को रक्खे, उस नली में वस्ति के मुख को सूत से बाँध कर बायें हाथ में ले कर दाहिने हाथ से मध्यम वेग से धीर चित्त होकर दवावे, जिस समय वस्ति की जावे उस समय रोगी जंभाई खांसी तथा छींकना आदि न करे; पिचकारी के दावने का काल तीस मात्रा पर्यन्त है, जब स्नेह सब शरीर में पहुँच जावे तब सौ वाक् पर्यन्त चित्त लेटा रहे (वाक् और मात्रा का परिमाण अपने घोंटू पर हाथ को फेर कर चुटकी बजाने जितना माना गया है, अथवा आँख वन्द कर फिर खोलना जितना है, अथवा गुरु अक्षर के उच्चारण काल के समान है) फिर सब देह को फैला देना चाहिये कि जिस से स्नेह का असर सब शरीर में फैल जावे, फिर रोगी के पैर के तलवों को तीन वार ठोंकना चाहिये, फिर इस की शय्या को उठा कर कूले और कमर को तीन वार ठोंकना चाहिये, फिर पैरों की तरफ से शय्या को तीन २ वार ऊँची करना चाहिये, इस प्रकार सब विधि के होने के पश्चात् रोगी को यथेष्ट सोना चाहिये, जिस रोगी के पिचकारी का तेल विना किसी उपद्रव के अधोवायु और मल के साथ गुदा से निकले उस के वस्ति का ठीक लगना जानना चाहिये, फिर पहिले का भोजन पच जाने पर और तेल के निकल आने पर दीप्ताग्नि वाले रोगी को सायंकाल में हलका अन्न भोजन के लिये देना चाहिये, दूसरे दिन स्नेह के विकार के दूर करने के लिये गर्म जल पिलाना चाहिये, अथवा धनियां और सोंठ का काढ़ा पिलाना चाहिये इस, प्रकार से छः सात आठ अथवा नौ अनुवासन वस्तियां देनी चाहिये, (इन के वाद अन्त में निरूहण वस्ति देनी चाहिये) । **वस्ति के गुण**—पहिली वस्ति से मूत्राशय और पेडू चिकने होते हैं, दूसरी वस्ति से मस्तक का पवन शान्त होता है, तीसरी वस्ति से वल और वर्ण की वृद्धि होती है, चौथी और पाँचवीं वस्ति से रस और रुधिर स्निग्ध होते हैं, छठी वस्ति से मांस स्निग्ध होता है, सातवीं वस्ति से मेद स्निग्ध होता है, आठवीं और नवीं वस्ति से क्रम से मांस और मज्जा स्निग्ध होते हैं, इस प्रकार अठारह वस्तियों तक लगाने से शुक्र तक के यावन्मात्र विकार दूर होते हैं, जो पुरुष अठारह दिन तक अठारह वस्तियों का सेवन कर लेवे वह हाथी के समान वलवान्, घोड़े के समान वेगवान् और देवों के समान कान्ति वाला हो जाता है, रूक्ष तथा अधिक वायु वाले मनुष्य को तो प्रति दिन ही वस्ति का सेवन करना चाहिये तथा अन्य मनुष्यों को जठराग्नि में वाधा न पहुँचे इस लिये तीसरे २ दिन वस्ति का सेवन करना चाहिये, रूक्ष शरीर वाले मनुष्यों को अल्प मात्रा भी अनुवासन वस्ति दी जावे तो वहुत दिनों तक भी कुछ हर्ज नहीं है किन्तु स्निग्ध मनुष्यों को थोड़ी मात्रा की निरूहण वस्ति दी जावे तो वह उन के अनुकूल होती है, अथवा जिस मनुष्य के वस्ति

इस में एक सेर शहद मिलावे, पीछे इस को औटा कर शीतल किये हुए जल के साथ अग्नि का बलाबल विचार कर लेवे, इस के सेवन से राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, क्षतक्षय, वातजन्य तथा पित्तजन्य श्वास, हृदय का शूल, पसवाड़े का शूल, वमन, अरुचि और ज्वर, ये सब रोग शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं ।

१०–**जीवन्त्यादिघृत**—घृत चार सेर, जल सोलह सेर, कल्क के लिये जीवन्ती, मौलेठी, दारव, त्रिफला, इन्द्रजौं, कचूर, कूठ, कटेरी, गोखुरू, खिरेटी, नील कमल, भूँय

देने के पीछे तत्काल ही केवल स्नेह पीछा निकले उस के बहुत थोड़ी मात्रा की वस्ति देनी चाहिये, क्योंकि स्निग्ध शरीर में दिया हुआ स्नेह स्थिर नहीं रहता है । **वस्ति के ठीक न होने के अवगुण**—वस्ति से यथोचित शुद्धि न होने से (विष्ठा के साथ तेल के पीछा न निकलने से) अंगों की शिथिलता, पेट का फूलना, शूल, श्वास तथा पक्वाशय में भारीपन, इत्यादि अवगुण होते हैं, ऐसी दशा में रोगी को तीक्ष्ण औषधों की तीक्ष्ण निरूहण वस्ति देनी चाहिये, अथवा वस्त्रादि की मोटी वत्ती बना कर उस में औषधों को भर कर अथवा औषधों को लगा कर गुदा में उस का प्रवेश करना चाहिये, ऐसा करने से अधोवायु का अनुलोमन (अनुकूल गमन) हो कर मल के सहित स्नेह बाहर निकल जावेगा, ऐसी दशा में विरेचन का देना भी लाभकारी होता है तथा तीक्ष्ण नस्य का देना भी उत्तम होता है, अनुवासन वस्ति देने पर यदि स्नेह बाहर न निकलने पर भी किसी प्रकार का उपद्रव न करे तो समझ लेना चाहिये कि शरीर के रूक्ष होने से वस्ति का सब स्नेह उस के शरीर में काम में आ गया है, ऐसी दशा में उपाय कर स्नेह के निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है, वस्ति देने पर यदि स्नेह एक दिन रात्रि में भी पीछा न निकले तो शोधन के उपायों से उसे बाहर निकालना चाहिये, परन्तु स्नेह के निकालने के लिये दूसरी वार स्नेह वस्ति नहीं देनी चाहिये । **अनुवासन तैल**—गिलोय, एरंड, कञ्जा, भारंगी, अडूसा, सौंधिया तृण, सतावर, कटसरैया और कौवा ठोड़ी, ये सब चार २ तोले, जौं, उड़द, अलसी, बेर की गुठली और कुलथी, ये सब आठ २ तोले लेवे, इन सब को चार द्रोण (धौन) जल में औटावे, जब एक द्रोण जल शेष रहे तब इस में चार २ रुपये भर सब जीवनीयगण की औषधों के साथ एक आढक तेल को परिपक्व करे, इस तेल का उपयोग करने से सब वातसम्बंधी रोग दूर होते हैं, वस्ति क्रिया में कुछ भी विपरीतता होने से चौहत्तर प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, ऐसी दशा जब कभी हो जावे तो सुश्रुत में कहे अनुसार नलिका आदि सामग्रियों से चिकित्सा करनी चाहिये, इस वस्ति कर्म में पथ्यापथ्य स्नेह पान के समान सब कुछ करना चाहिये ॥

चौथा कर्म निरूहण है–यह वस्ति का दूसरा भेद है–तात्पर्य यह है कि–काढ़े, दूध और तैल आदि की पिचकारी लगाने को निरूहण वस्ति कहते हैं, इस वस्ति के पृथक् २ औषधियों के सम्मेल से अनेक भेद होते हैं तथा इसी कारण से उन भेदों के पृथक् २ नाम भी रक्खे गये हैं, इस निरूहण वस्ति का दूसरा नाम आस्थापन वस्ति भी है, इस नाम के रखने का हेतु यह है कि–इस वस्ति से दोषों और धातुओं का अपने २ स्थान पर स्थापन होता है । **निरूहण वस्तिकी मात्रा**—इस वस्ति की सवा प्रस्थ की मात्रा उत्तम, एक प्रस्थ की मात्रा मध्यम और तीन कुड़व (तीन पाव) की मात्रा अधम मानी गई है । **निरूहण वस्ति के अनधिकारी**—अत्यन्त स्निग्ध शरीर वाला, जिस के दोष परिपक्व कर न निकाले गये हों, उरःक्षत वाला,

आवला, त्रायमाण, जवासा और पीपल, ये सब मिला कर एक सेर लेवे, सब को मिला कर घी बनावे, इस घृत का, सेवन करने से ग्यारहों प्रकार का राजयक्ष्मा रोग शीघ्र ही मिट जाता है।

११–जो पुरुष अति मैथुन के कारण शोष रोग से पीड़ित हो उस को घी तथा उस की प्रकृति के अनुकूल मधुर और हृदय को हितकारी पदार्थ देने चाहियें।

कृश, अफरा वाला, छर्दि, हिचकी, ववासीर, खांसी, श्वास तथा गुदारोग से युक्त, सूजन, अतीसार तथा विषूचिका रोग वाला, कुष्ठरोगी, गर्भिणी स्त्री, मधुप्रमेही और जलोदर रोग वाला, इन सब को निरूहण वस्ति नहीं देनी चाहिये। **निरूहणवस्ति के अधिकारी**—वातसम्बंधी रोग, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्छा तथा तृषारोग से युक्त, उदररोगी, अफरा, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, अण्डवृद्धि, रक्तप्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और छाती के रोग से युक्त, इन सब को विधिपूर्वक निरूहण वस्ति देनी चाहिये। **निरूहण वस्ति की विधि वा समय**—जो रोगी मल, मूत्र और अधोवायु के वेग का त्याग कर चुका हो, स्नेहन और बफारा ले चुका हो तथा जिस ने भोजन न किया हो, इन सब के मध्याह्न के समय घर के भीतर निरूहण वस्ति करनी चाहिये, इस वस्ति के देने के पश्चात् पिचकारी को गुदा से बाहर निकाल लेना चाहिये तथा रोगी को दो घड़ी तक ऊकरूँ ही बैठे रहना चाहिये, क्योंकि दो घड़ी के भीतर ही स्नेह वस्ति बाहर निकल आती है, यदि दो घडी में भी वस्ति का तेल बाहर न निकले तो जवाखार, गोमूत्र, नींबू का रस और सैंधानमक, इन की पिचकारी रूप शोधन से वस्ति के तेल को बाहर निकाल देना चाहिये। **वस्ति के ठीक होने के लक्षण**—जिस रोगी के क्रम से मल, पित्त, कफ और वायु निकलें तथा शरीर हलका हो जावे उस के वस्ति का ठीक लगाना जानना चाहिये। **वस्ति के ठीक न होने के लक्षण**—जिस मनुष्य के थोड़े २ वेग से पिचकारी बाहर निकले, मल और पवन थोड़े २ निकलें, मूर्च्छा आवे, पीड़ा हो, भारीपन तथा अरुचि हो, उस के वस्ति का ठीक न लगाना जानना चाहिये, क्योंकि दी हुई औषधि का निकल जाना, मन में प्रसन्नता का होना, स्निग्धता का होना तथा व्याधि का घटना, ये सब लक्षण दोनों वस्तियों के ठीक लगने के हैं। **वस्ति का नियम**—वस्ति कर्म के जानने वाले वैद्य को इस प्रकार वस्ति देनी चाहिये कि—यदि प्रथम वस्ति ठीक लग जावे तो दूसरी, तीसरी तथा चौथी वार भी वस्ति देनी चाहिये, यदि वादी का रोग हो तो निरूह वस्ति देनी चाहिये, पित्त का रोग हो तो दूध के साथ दो निरूह वस्तियां देनी चाहियें, कफ का रोग हो तो कषैले, चरपरे और गोमूत्रादि पदार्थों को गर्म करके उन की तीन निरूह वस्तियां देनी चाहियें तथा जो मनुष्य त्रिदोष से घिर रहा हो उस को क्रम से दूध और मूंग के रस की वस्तियां देनी चाहियें, यह निरूहण वस्ति भोजन के पश्चात् करनी चाहिये तथा सुकुमार, वृद्ध और बालक के कोमल वस्ति करनी चाहिये, क्यों कि इन के तीक्ष्ण वस्ति करने से इन के बल और आयु का नाश होता है। **वस्तियों का क्रम**—प्रथम उत्क्लेशन वस्ति, फिर दोषहर वस्ति और फिर संशमनीय वस्ति देनी चाहिये, यही वस्ति देने का क्रम है। **उत्क्लेशन वस्ति**—अंडी के बीज, महुआ, बेलगिरी, पीपल, सैंधानिमक, बच तथा हवुषा (पलासी फल) का कल्क, इन की वस्ति को उत्क्लेशन कहते हैं अर्थात् इस वस्ति से दोष पक कर तथा अपने २ स्थानों से छूट कर निकलने को तैयार हो जाते हैं। **दोषहर वस्ति**—शतावर, महुआ, बेलगिरी, इन्द्रजौ और काँजी, इन में गोमूत्र को मिला कर जो वस्ति

१२–शोक के कारण जिस के शोष उत्पन्न हुआ हो उस रोगी को चित्त को प्रसन्नता देनेवाले मीठे, चिकने, शीतल, दीपन और हलके पदार्थ देने चाहियें तथा जिन कारणों से शोक उत्पन्न हुआ हो उन की निवृत्ति करनी चाहिये ।

१३–अधिक व्यायाम (कसरत) के कारण जिस के शोष उत्पन्न हुआ हो उस रोगी को घृत आदि स्निग्ध (चिकने) पदार्थ देने चाहियें तथा शीतल और कफवर्धक (कफ को बढ़ाने वाले) पदार्थों से उस की चिकित्सा करनी चाहिये ।

दी जाती है इसे दोपहर वस्ति कहते हैं, क्योंकि इस से वात आदि दोषों का हरण होता है। **शमनवस्ति**—प्रियंगु, महुआ, नागरमोथा और रसोत, इन को दूध में पीस कर जो वस्ति दी जाती है इसे शमनवस्ति कहते हैं, क्योंकि इस से दोषों का शमन (शान्ति) होता है। **लेखनवस्ति**—त्रिफले का क्काथ, गोमूत्र, शहद, जवाखार तथा ऊषकादि गण की सब ओषधियों को डाल कर जो वस्ति दी जाती है उसे लेखनवस्ति कहते हैं। **बृंहणवस्ति**—बृंहण औषधों का काढ़ा करके उस में मधुर पदार्थों का कल्क और घी मिला कर जो वस्ति दी जाती है उसे बृंहण वस्ति कहते हैं, क्योंकि इस वस्ति से रस और रक्त आदि की वृद्धि होती है। **पिच्छलवस्ति**—बेर, नारंगी, लसोड़े तथा सेमर के फूलों के अङ्कुर, इन को दूध में पका कर तथा उस में शहद मिला कर जो वस्ति दी जाती है उसे पिच्छलवस्ति कहते हैं, इस की मात्रा १२ पल की है। **निरूहवस्ति**—प्रथम एक तोले सेंधे निमक को डाल कर फिर १६ तोले शहद को मिला कर खूब पीसे, फिर इस में २४ रुपये भर स्नेह डाले, सब को एकत्र कर स्नेह को खूब मिला देवे, फिर इस में ८ रुपये भर कल्क को मिला कर सब को घोट कर एकजीव करले, फिर ३२ रुपये भर क्काथ और अन्त में १६ रुपये भर योग्य चूर्ण को डाल कर सब का मर्दन कर वस्ति के उपयोग में लावे, इसे निरूहवस्ति कहते हैं, इस प्रकार की की हुई वस्ति की मात्रा तौल में १५ प्रसृति की होती है, इस में विशेषता यह भी है कि–वादी के रोग में चार पल शहद और छः पल स्नेह डालना चाहिये, पित्त के रोग में चार पल शहद और तीन पल स्नेह डालना चाहिये तथा कफ के विकार में छः पल शहद और चार पल स्नेह डालना चाहिये। **मधुतैलकवस्ति**—आठ पल अंडी की जड़ का क्काथ कर के उस में चार पल शहद, चार पल तेल, दो तोले सोंफ और दो तोले सेंधे निमक को डाल कर सब को रई से मथ लेवे, पीछे इसे वस्ति के उपयोग में लावे, इसे मधुतैलकवस्ति कहते हैं, इस वस्ति के सेवन से बल की वृद्धि, वर्ण की उत्तमता, मैथुनशक्ति की वृद्धि, अग्नि का दीप्त होना, धातु का पुष्ट होना तथा मेद; गांठ; कृमि; प्लीह; मल और उदावर्त्तका नाश, इत्यादि गुण होते हैं। **यापनवस्ति**—शहद, घी, दूध और तेल, ये सब आठ २ रुपये भर ले, इस में एक तोले हाऊबेर तथा एक तोले सेंधे निमक को डाल कर घोटे, जब एकजीव हो जावे तब इसे वस्ति के उपयोग में लावे, इसे यापन वस्ति कहते हैं, इस वस्ति से पाचन होता है तथा दस्त साफ आता है। **युक्तरथवस्ति**—अंडी की जड़ का क्काथ कर के उस में, शहद, तेल, सेंधा निमक, बच और पीपल को डालकर वस्ति के उपयोग में लावे, इसे युक्तरथ वस्ति कहते हैं। **सिद्धवस्ति**—पंचमूल के क्काथ में तेल, पीपल, सेंधा निमक तथा मौलेठी को डाल कर वस्ति के उपयोग में लावे, इसे सिद्ध वस्ति कहते हैं। **वस्तिकर्म में पथ्यापथ्य**—गर्म जल से स्नान करना, दिन में न सोना तथा अजीर्णकर्त्ता पदार्थों का न खाना, ये सब कार्य पथ्य हैं, इस वस्तिकर्म में शेष पथ्यापथ्य स्नेहनवस्ति के

१४–अधिक मार्ग में चलने से जिस के शोप रोग उत्पन्न हुआ हो उस को धैर्य देना चाहिये, बैठालना चाहिये, दिन में सुलाना चाहिये तथा शीतल; मधुर और बृंहण (पुष्टि-करने अर्थात् धातु आदि को बढ़ाने वाले) पदार्थ देने चाहियें।

१५–व्रण (घाव) के कारण जिस के शोप उत्पन्न हुआ हो उस रोगी की चिकित्सा स्निग्ध (चिकने), अग्निदीपनकर्ता, स्वादिष्ठ (जायकेदार), शीतल, कुछ खटाईवाले तथा व्रणनाशक पदार्थों से करनी चाहिये।

समान जानना चाहिये, इस वस्ति का एक भेद उत्तरवस्ति (लिङ्ग तथा योनि में पिचकारी लगाना) भी है, जिस का वर्णन यहां अनावश्यक समझ कर नहीं किया जाता है, उस का विषय आवश्यकतानुसार दूसरे वैद्यक ग्रन्थों में देख लेना चाहिये॥

पाँचवां कर्म नावन (नस्य) देना है, तात्पर्य यह है कि–जो ओषधि नासिका से ग्रहण की जाती है उसे नावन वा नस्य कहते हैं, इस कर्म के नावन और नस्यकर्म, ये दो नाम हैं, इन को नस्यकर्म इसलिये कहते हैं कि इस से नासिका की चिकित्सा होती है, नस्यकर्म के दो भेद हैं–रेचन और स्नेहन, इन में से जिस कर्म से भीतरी पदार्थों को कम किया जावे उसे रेचन कहते हैं तथा जिस कर्म से भीतरी पदार्थों की वृद्धि की जावे उसे स्नेहन कहते हैं। **समयानुसार नस्य के गुण**—प्रातःकाल की नस्य कफ को दूर करती है, मध्याह्न की नस्य पित्त को और सायंकाल की नस्य वादी को नष्ट करती है, नस्य को प्रातः दिन में लेना चाहिये परन्तु यदि घोर रोग हो तो रात्रि में भी ले लेना चाहिये। **नस्य का निषेध**—भोजन के पीछे तत्काल, जिस दिन बादल हो उस दिन, लंघन के दिन, नवीन जुलाब के समय में, गर्भवती स्त्री, विषरोगी, अजीर्णरोगी, जिस को वस्ति दी गई हो, जिसने स्नेह जल वा आसव पिया हो, क्रोधी, शोकाकुल, प्यासा, वृद्ध, बालक, मल मूत्र के वेग का रोकने वाला, परिश्रमी और जो स्नान करना चाहता है, इन सब को नस्य लेना निषिद्ध है। **नस्य की अवस्था**—जब तक बालक आठ वर्ष का न हो जावे तब तक उसे नस्य नहीं देना चाहिये तथा अस्सी वर्ष के पीछे भी नस्य नहीं देना चाहिये। **रेचननस्य की विधि**—तीक्ष्ण तैल से, अथवा तीक्ष्ण औषधों से पके हुए तैलों से, क्वाथों से, अथवा तीक्ष्ण रसों से रेचन नस्य लेनी चाहिये, यह नस्य नासिका के दोनों छिद्रों में लेनी चाहिये तथा प्रत्येक छिद्र में आठ २ बूँद डालना चाहिये, यह उत्तम मात्रा है, छः २ बूँदों की मध्यम मात्रा है और चार २ बूँदों की अधम मात्रा है। **नस्य में औषधों की मात्रा का परिमाण**—नस्यकर्म में तीक्ष्ण औषध रत्ती भर लेना चाहिये, हींग एक जौ भर, सेंधा निमक छः रत्ती, दूध चार शाण, पानी तीन रुपये भर तथा मधुर द्रव्य एक रुपये भर लेना चाहिये। **रेचननस्य के भेद**—रेचननस्य के अवपीड़न और प्रधमन, ये दो भेद हैं–यदि नस्य देकर मस्तक को खाली करना हो तो योग्य रीति से इन दोनों भेदों का प्रयोग करना चाहिये, जिस के साथ में तीक्ष्ण पदार्थों को मिलाया हो उन का कल्क करके रस निचोड़ लेना, इस को अवपीड़न कहते हैं और छः अंगुलवाली दो मुख की नली में ४८ रत्ती तीक्ष्ण चूर्ण भरकर मुख की फूँक देकर उस चूर्ण को नाक में चढ़ा देना, इस को प्रधमन कहते हैं। **नस्यों के योग्य रोग**—हँसली के ऊपर के रोगों में, कफ के स्वरभंग में, अरुचि, प्रतिश्याय, मस्तकशूल, पीनस, सूजन, मृगी और कुष्टरोग में रेचननस्य देना चाहिये, डरनेवाले, स्त्री, कृश मनुष्य और बालक को स्नेहननस्य देना चाहिये, गले के रोग,

१६-**महाचन्दनादि तैल**—तिली का तैल चार सेर, क्वाथ के लिये लाल चन्दन, शालपर्णी, छोटी कटेरी, वड़ी कटेरी, गोखुरू, मुद्गपर्णी, विदारीकन्द, असगन्ध, माषपर्णी, आँवले, सिरस की छाल, पद्माख, खस, सरलकाष्ठ, नागकेशर, प्रसारणी, मूर्वा, फूलप्रियंगु, कमलगट्टा, नेत्रवाला, खिरेटी, कंगही, कमल की नाल और भसीड़े, ये सब

सन्निपात, निद्रा, विषम ज्वर, मन के विकार और कृमिरोग में अवपीड़न नस्य देना चाहिये तथा अत्यन्त कुपित दोषवाले रोगों में और जिन में संज्ञा नष्ट हो गई हो ऐसे रोगों में प्रधमननस्य देना चाहिये। **विरेचननस्य**—सोंठ के चूर्ण को तथा गुड़ को मिलाकर अथवा सेंधे निमक और पीपल को पानी में पीसकर नस्य देने से नाक, मस्तक, कान, नेत्र, गर्दन, ठोड़ी और गले के रोग तथा भुजा और पीठ के रोग नष्ट होते हैं, महुए का सत, वच, पीपल, काली मिर्च और सेंधा निमक, इन को थोड़े गर्म जल में पीसकर नस्य देने से मृगी, उन्माद, सन्निपात, अपतन्त्रक और वायु की मूर्छा, ये सब दूर होते हैं, सेंधानिमक, सफेद मिर्च (सहजने के बीज), सरसों और कूठ, इन को बकरे के मूत्र में बारीक पीस कर नस्य देने से तन्द्रा दूर होती है, काली मिर्च, वच और कायफल के चूर्ण को रोहू मछली के पित्ते की भावना देकर नली से प्रधमननस्य देना चाहिये। **बृंहणनस्य के भेद**—बृंहणनस्य के मर्श और प्रतिमर्श, ये दो भेद हैं, इन में से शाण से जो स्नेहन नस्य दी जाती है उसे मर्श कहते हैं, (तर्जनी अङ्गुलि की आठ बूँदों की मात्रा को शाण कहते हैं) इस मर्श नस्य में आठ शाण की तर्पणी मात्रा प्रत्येक नथुने में देना उत्तम मात्रा है, चार शाण की मध्यम और एक शाण की मात्रा अधम है, प्रत्येक नथुने में मात्रा की दो २ बूँदों के डालने को प्रतिमर्श कहते हैं, दोषों का बलावल विचार कर एक दिन में दो वार, वा तीन वार, अथवा एक दिन के अन्तर से, अथवा दो दिन के अन्तर से मर्श नस्य देनी चाहिये, अथवा तीन; पाँच वा सात दिन तक निरन्तर इस नस्य का उपयोग करना चाहिये, परन्तु उस में यह सावधानता रखनी चाहिये कि रोगी को छींक आदि की व्याकुलता न होने पावे, मर्श नस्य देने से समय पर स्थान से भ्रष्ट हो कर दोष कुपित हो कर मस्तक के मर्म स्थान से विरेचित होने लगता है कि जिस से मस्तक में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, अथवा दोषों के क्षीण होने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं, यदि दोष के उत्क्लेश (स्थान से भ्रष्ट) होने से रोग उत्पन्न हो तो वमनरूप शोधन का उपयोग करना चाहिये और यदि मेद आदि का क्षय होने से रोग उत्पन्न हो तो पूर्वोक्त स्नेह के द्वारा उन्हीं क्षीण दोषों को पुष्ट करे, मस्तक नाक और नेत्र के रोग, सूर्यावर्त्त, आधाशीशी, दाँत के रोग, निर्बलता, गर्दन भुजा और कन्धा के रोग, मुखशोष, कर्णनाद, वातपित्तसम्बंधी रोग, विना समय के वालों का श्वेत होना तथा वाल और डाढ़ी मूँछ का झर २ कर गिरना, इन सब रोगों में स्नेहों से अथवा मधुर पदार्थों के रसों से स्नेहननस्य को देना चाहिये। **बृंहणनस्य की विधि**—खांड़ के साथ केशर को दूध में पीस कर पीछे घी में सेंक कर नस्य देने से वातरक्त की पीड़ा शान्त होती है, भौंह; कपाल; नेत्र; मस्तक और कान के रोग, सूर्यावर्त्त और आधाशीशी, इन रोगों का भी नाश होता है, यदि स्नेहननस्य देना हो तो अणुतैल (इस की विधि सुश्रुत में देखो), नारायण तैल, माषादि तैल, अथवा योग्य औषधों से परिपक्व किये हुए घृत से देना चाहिये, यदि कफयुक्त वादी का दर्द हो तो तैल की और यदि केवल वादी का ही दर्द हो तो मज्जा की नस्य देनी चाहिये, पित्त का दर्द हो तो सर्वदा घी की नस्य देनी चाहिये, उड़द, कौंच के बीज,

मिलाके ५० टके भर लेवे तथा खिरेटी ५० टके भर लेवे, पाक के वास्ते जल १६ सेर लेवे, जब जल चार सेर बाकी रहे तब बकरी का दूध, सतावर का रस, लाख का रस, कांजी और दही का जल, प्रत्येक चार २ सेर ले तथा प्रत्येक के पाक के लिये जल १६ सेर लेवे, जब चार सेर रह जावे तब उसे छान ले, फिर पृथक् २ क्काथ और कल्क के

रास्ना, अंड की जड़, वला, रोहिष तृण और आसगन्ध, इन का क्काथ करके तथा इस में हींग और सेंधे- निमक को डालकर कुछ गर्म क्काथ की नस्य के देने से कम्पयुक्त पक्षाघात (अर्धांग), अर्दित वात (लकवा), गर्दन का रह जाना और अपवाहुक (हाथों का रह जाना) रोग दूर हो जाता है, मर्श और प्रतिमर्शनामक वृंहण नस्य के दो भेद कह चुके हैं, उन में से प्रतिमर्श नस्य के १४ समय माने गये हैं, जो कि ये हैं—प्रातःकाल, दाँतन करने के वाद, घर से वाहर निकलते समय, व्यायाम के वाद, मार्ग चल कर आने के पश्चात्, मैथुन के पश्चात्, मलत्याग के पीछे, मूत्र करने के पीछे, अञ्जन आँजने (लगाने) के पीछे, कवल विधि के पीछे, भोजन के पीछे, दिन में सोने के पीछे, वमन के पीछे और सायंकाल में, प्रतिमर्श नस्य के ठीक होने की यह पहिचान है कि-थोड़ी ही छींक आने से यदि नाक का स्नेह मुख में आ जावे तो जान लेना चाहिये कि प्रतिमर्श नस्य उत्तम रीति से हो गई है, नाक से मुख में आये हुए पदार्थ को निगलना नहीं चाहिये किन्तु उसे थूक देना चाहिये। **प्रतिमर्श नस्य के अधिकारी**—क्षीण मनुष्य, तृषारोगी, मुखशोषरोगी, वालक और वृद्ध, इन को प्रतिमर्श नस्य हितकारी है। **प्रतिमर्श नस्य के गुण**—प्रतिमर्श नस्य के उपयोग से हँसली के ऊपर के रोग कदापि नहीं होते हैं तथा देह में गुलजट नहीं पड़ते हैं तथा वालों का श्वेत होना मिटता है, इन के सिवाय-इस नस्य से इन्द्रियों की शक्ति वढ़ती है, वहेड़ा, नीम, कँभारी, हरड़, लसोड़े और मालकांगनी, इन में से एक एक पदार्थ की नस्य लेने का अभ्यास रखने से अवश्य श्वेत वाल काले हो जाते हैं। **नस्य की विधि**—दाँतन करने के पश्चात्, मल और मूत्रादि का त्याग करने के पीछे धूमपान द्वारा कपाल तथा गले में खेदित कर रोगी को पवन और धूल से रहित स्थान में चित (सीधा) लेटा देना चाहिये तथा उस के मस्तक को कुछ लटकता रखना चाहिये, हाथ पैरों को पसार देना तथा नेत्रों को वस्त्र से ढाँक देना चाहिये पीछे नाक की अनी को ऊँची करके नस्य देनी चाहिये अर्थात् सोने चाँदी आदि की चमची से, वा सीप से, वा किसी यन्त्र की युक्ति से, वा कपड़े से, अथवा रुई से, वीच में धार न टूटने पावे इस रीति से कुछ २ गर्म नस्य नाक में डाल देनी चाहिये, जिस समय नाक में नस्य डाली जावे उस समय रोगी को चाहिये कि माथे को न हिलावे, क्रोध न करे, वोले नहीं, छींके नहीं और हँसे नहीं, क्योंकि माथे के हिलाने आदि से स्नेह वाहर को आ जाता है अर्थात् भीतर नहीं पहुँचता है और ऐसा होने से खाँसी, सरेकमा, मस्तकपीड़ा और नेत्रपीड़ा उत्पन्न हो जाती है, नस्य को शृंगाटक (नाक की भीतरी हड्डी) में पहुँचने पर्यन्त स्थिर रखना चाहिये अर्थात् निगल नहीं जाना चाहिये, पीछे बैठ कर मुख में आये हुए द्रव को थूँक देना चाहिये, नस्य के देने के पश्चात् मन में सन्ताप न करे, धूल उड़ने के स्थान में न जावे, क्रोध न करे, दश वा पन्द्रह मिनट तक न सोवे, किन्तु सीधा पड़ा रहे, रेचननस्य से मस्तक के खाली होने के पश्चात् धूम्रपान तथा कवलग्रहण हितकारी होता है, नस्य के द्वारा मस्तक की ठीक २ शुद्धि हो जाने से शरीर का हलका होना, मल का साफ उतरना, नाड़ियों के दर्द का नाश, व्याधि का नाश और चित्त तथा इन्द्रियों की प्रसन्नता, इत्यादि लक्षण होते हैं ॥

लिये-सफेद चन्दन, अगर, कंकोल, नख, छारछवीला, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, कमलगट्टा, हलदी, दारुहल्दी, सारिवा, काली सारिवा, लाल कमल, छड़, कूठ, त्रिफला, फालसे, मूर्वा, गठिवन, नलिका, देवदारु, सरलकाष्ठ, पद्माख, खस, धाय के फूल, वेलगिरी, रसोत, मोथा, सिलारस, सुगन्धवाला, बच, मजीठ, लोध, सोंफ, जीवन्ती, प्रियंगु, कचूर, इलायची, केसर, खटासी, कमल की केशर, रास्ना, जावित्री, सोंठ और धनिया, ये सब प्रत्येक दो २ तोले लेवे, इस तैल का पाक करे, पाक हो जाने के पश्चात् इस में केशर, कस्तूरी और कपूर थोडे २ मिलाकर उत्तम पात्र में भर के इस तेल को रख छोड़े, इस तेल का मर्दन करने से वातपित्तजन्य सब रोग दूर होते हैं, धातुओं की वृद्धि होती है, घोर राजयक्ष्मा; रक्तपित्त और उरःक्षत रोग का नाश होता है तथा सब प्रकार के क्षीण पुरुषों की क्षीणता को यह तेल शीघ्र ही दूर करता है ।

१७-यदि रोगी के उरःक्षत (हृदय में घाव) हो गया हो तो उसे खिरेटी, असगन्ध, अरनी, सतावर और पुनर्नवा, इन का चूर्ण कर दूध के साथ नित्य पिलाना चाहिये ।

१८-अथवा—छोटी इलायची, पत्रज और दालचीनी, प्रत्येक छः २ मासे, पीपल दो तोले, मिश्री, मौलेठी, छुहारे और दाख, प्रत्येक चार २ तोले, इन सब का चूर्ण कर शहद के साथ दो २ तोले की गोलियां बनाकर नित्य एक गोली का सेवन करना चाहिये, इस से उरःक्षत, ज्वर, खांसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, मद, प्यास, शोष, पसवाड़े का शूल, अरुचि, तिल्ली, आढ्यवात, रक्तपित्त और स्वरभेद, ये सब रोग दूर हो जाते हैं तथा यह एलादि गुटिका वृष्य और इन्द्रियों को तृप्त करने वाली है ॥

आमवात[1] रोग का वर्णन ॥

कारण—परस्पर विरुद्ध आहार और विरुद्ध विहार (जैसे भोजन करके शीघ्र ही दण्ड कसरत आदि का करना), मन्दाग्नि का होना, निकम्मा बैठे रहना, तथा स्निग्ध (चिकने) पदार्थों को खाकर दण्ड कसरत करना, इत्यादि कारणों से आम (कच्चा रस) वायु से प्रेरित होकर कफ के आमाशय आदि स्थानों में जाकर तथा वहां कफ से अत्यन्त ही अपक्क होकर वह आम धमनी नाड़ियों में प्राप्त हो कर तथा वात पित्त और कफ से दूषित होकर रसवाहिका नाड़ियों के[2] छिद्रों में सञ्चार करता है तथा उन के छिद्रों को बन्द कर भारी कर देता है तथा अग्नि को मन्द और हृदय को अत्यन्त निर्बल कर देता है, यह आमसंज्ञक रोग अति दारुण तथा सब रोगों का स्थान माना जाता है ।

लक्षण—भोजन किये हुए पदार्थ के अजीर्ण से जो रस उत्पन्न होता है वह क्रम२से इकट्ठा होकर आम कहलाता है, यह आम रस शिर और सब अंगों में पीड़ा को उत्पन्न करता है ।

१-आमवात अर्थात् आम के सहित वायु ॥

२-रसवाहिका नाड़ियों के अर्थात् जिन में रस का प्रवाह होता है उन नाड़ियों के ॥

इस रोग के सामान्य लक्षण ये हैं कि-जब वात और कफ दोनों एक ही समय में कुपित हो कर पीड़ा के साथ त्रिकस्थान[1] और सन्धियों में प्रवेश करते हैं कि जिस से इस प्राणी का शरीर स्तम्भित (जकड़ा हुआ सा) हो जाता है, इसी रोग को आमवात कहते हैं।

कई आचार्यों ने यह भी कहा है कि-आमवात में अंगों का टूटना, अरुचि, प्यास, आलस्य, शरीर का भारी रहना, ज्वर, अन्न का न पचना और देह में शून्यता, ये सब लक्षण होते हैं।

परन्तु जब आमवात अत्यन्त बढ़ जाता है तब उस में बड़ी भयंकरता होती है अर्थात् वृद्धि की दशा में यह रोग दूसरे सब रोगों की अपेक्षा अधिक कष्टदायक होता है, बढ़े हुए आमवात में-हाथ; पैर; मस्तक; घोंटू; त्रिकस्थान; जानु और जंघा, इन की सन्धियों में पीड़ा युक्त[2] सूजन होती है, जिस २ स्थान में वह आम रस पहुँचता है वहाँ २ बिच्छू के डंक के लगने के समान पीड़ा होती है।

इस रोग में-मन्दाग्नि, मुख से पानी का गिरना, अरुचि, देह का भारी रहना, उत्साह का नाश, मुख में विरसता[3], दाह, अधिक मूत्र का उतरना, कूख में कठिनता, शूल, दिन में निद्रा का आना, रात्रि में निद्रा का न आना, प्यास, वमन, भ्रम (चक्कर), मूर्छा (बेहोशी), हृदय में क्लेश का मालूम होना, मल का अवरोध (रुकना), जड़ता, आँतों का गूँजना, अफरा तथा वातजन्य (वायु से उत्पन्न होनेवाले) कलापखंज आदि अनेक उपद्रवों का होना, इत्यादि लक्षण होते हैं।

इन के सिवाय-वादी से उत्पन्न हुए आमवात में-शूल होता है, पित्त से उत्पन्न हुए आमवात में-दाह और रक्तवर्णता (लाल रंग का होना) होती है तथा कफ से उत्पन्न हुए आमवात में-देह की आर्द्रता (गीला रहना) होती है तथा अत्यन्त खाज (खुजली) चलती है।

साध्यासाध्य विचार—एक दोष का आमवात रोग साध्य (चिकित्सा से शीघ्र ही दूर होने योग्य), दो दोषों का आमवात रोग याप्य (उत्तम और शीघ्र चिकित्सा करने से दूर होने योग्य परन्तु उत्तम और शीघ्र चिकित्सा न करने से न मिटने योग्य अर्थात् कष्टसाध्य) तथा तीनों दोषों का आमवात असाध्य (चिकित्साद्वारा भी न मिटने योग्य) होता है।

चिकित्सा—१-आमवात रोग में-लंघन करना अति उत्तम चिकित्सा है[4]।

१-दोनों कूलों तथा पीठ की जोड़वाली हड्डी के स्थान को त्रिकस्थान कहते हैं ॥

२-पीड़ायुक्त अर्थात् दर्द के साथ ॥

३-विरसता अर्थात् फीकापन ॥

४-क्योंकि लङ्घन करने से आम अर्थात् कच्चे रस का तथा दोषों का पाचन हो जाता है ॥

२–लंघन के सिवाय–स्वेदन करना (पसीने लाना), अग्नि को प्रदीप्त करनेवाले कडुए पदार्थों का खाना, जुलाव लेना, तैल आदि की मालिश[1] कराना और वस्तिकर्म करना (गुदा में पिचकारी लगाना) हितकारक है।

३–इस रोग में–बालू की पोटली बना कर उसे अग्नि में तपाकर रूक्ष स्वेद करना चाहिये तथा स्नेहरहित उपनाह (लेप) भी करना चाहिये[2]।

४–आमवात से व्याप्त और प्यास से पीड़ित (दुःखित) रोगी को पञ्चकोल[3] को डाल कर सिद्ध (तैयार) किया हुआ जल पीना चाहिये।

५–सूखी मूली का यूष, अथवा लघु पञ्चमूल[4] का यूष, अथवा पञ्चमूल[5] का रस, अथवा सोंठ का चूर्ण डाल कर कांजी लेना चाहिये।

६–सौवीर नामक कांजी में बैंगन को उबाल कर अथवा कडुए फलों को उबाल कर लेना चाहिये।

७–बथुए का शाक तथा अरिष्ट, सांठ (गदहपूर्ना), परवल, गोखुरू, वरना और करेले, इन का शाक लेना चाहिये।

८–जौं, कोदों, पुराने साठी और शालि चावल, छाछ के साथ सिद्ध किया हुआ कुलथी का यूप, मटर, और चना, ये सब पदार्थ आमवात रोगी के लिये हितकारक हैं।

९–चित्रक, कुटकी, हरड़, सोंठ, अतीस और गिलोय, इन का चूर्ण गर्म जल के साथ लेने से आमवात रोग नष्ट होता है।

१०–कचूर, सोंठ, हरड़, वच, देवदारु और अतीस, इन औषधों का क्वाथ पीने से तथा रूखा भोजन करने से आमवात रोग दूर होता है।

११–इस प्राणी के देह में विचरते हुए आमवातरूपी मस्त गजराज के मारने के लिये एक अंडी का तैल ही सिंह के समान है, अर्थात् अकेला अंडी का तैल ही इस रोग को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

१२–आमवात के रोगी को अंडी के तेल को हरड़ का चूर्ण मिला कर पीना चाहिये।

१३–अमलतास के कोमल पत्तों को सरसों के तेल में भून कर भात में मिला कर खाने से इस रोग में बहुत लाभ होता है।

१–तैल की मालिश वातशामक अर्थात् वायु को शान्त करनेवाली है॥

२–रूक्ष स्वेद अर्थात् शुष्क वस्तु के द्वारा पसीने लाने से और स्नेहरहित (विना चिकनाहटके) लेप करने से भीतरी आम रस की स्निग्धता मिट कर उस का वेग शान्त होता है॥

३–पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ, इन पाँचों का प्रत्येक का एक एक कोल (आठ २ मासे) लेना, इस को पञ्चकोल कहते हैं॥

४–शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखुरू, इन पांचों को लघु पञ्चमूल कहते हैं॥

५–बेल, गम्भारी, पाडर, अरनी और स्योनाक, इन पाँचों वृक्षों की जड़ को पञ्चमूल वा बृहत्पञ्चमूल कहते हैं॥

१४–सोंठ और गोखुरू का क्वाथ प्रातःकाल पीने से आमवात और कमर का शूल (दर्द) शीघ्र ही मिट जाता है।

१५–इस रोग में यदि कटिशूल (कमर में दर्द) विशेष होता हो तो सोंठ और गिलोय के क्वाथ (काढ़े) में पीपल का चूर्ण डाल कर पीना चाहिये।

१६–शुद्ध (साफ) अंडी के वीजों को पीस कर दूध में डाल कर खीर बनावे तथा इस का सेवन करे, इस के खाने से कमर का दर्द अति शीघ्र मिट जाता है अर्थात् कमर के दर्द में यह परमौषधि[1] है।

१७–**सङ्कर स्वेद**—कपास के विनौले, कुलथी, तिल, जौं, लाल एरण्ड की जड़, अलसी, पुनर्नवा और शण (सन) के वीज, इन सब को (यदि ये सब पदार्थ न मिलें तो जो २ मिल सकें उन्हीं को लेना चाहिये) लेकर कूट कर तथा काँजी में भिगा कर दो पोटलियां बनानी चाहियें, फिर प्रज्वलित[2] चूल्हे पर कांजी से भरी हुई हांडी को रख कर उस पर एक छेदवाले सकोरे को ढाँक दे तथा उस की सन्धि[3] को वंद कर दे तथा सकोरे पर दोनों पोटलियों को रख दे, उन में से जो एक पोटली गर्म हो जावे उस से पहुँचे के नीच के भाग में, पेट, शिर, कूले, हाथ, पैर, अँगुलि, एड़ी, कन्धे और कमर, इन सब अंगों में सेक करे तथा जिन २ स्थानों में दर्द हो वहां २ सेक करे, इस पोटली के शीतल हो जाने पर उसे सकोरे पर रख दे तथा दूसरी गर्म पोटली को उठाकर सेंक करे[4], इस प्रकार करने से सामवात (आम के सहित वादी) की पीड़ा शीघ्र ही शान्त हो जाती है।

१८–**महारास्नादि क्वाथ**—रास्ना, अंड[5] की जड़, अडूसा, धमासा, कचूर, देवदारु, खिरेटी, नागरमोथा, सोंठ, अतीस, हरड़, गोखुरू, अमलतास, कलौंजी, धनियां, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधायरा, शतावर, वच, पियावांसा, चव्य, तथा दोनों (छोटी वड़ी) कटेरी, ये सब समान भाग लेवे परन्तु रास्ना की मात्रा तिगुनी लेवे, इन सब का अष्टावशेष (जल का आठवां हिस्सा शेष रखकर) काढ़ा बना कर तथा उस में सोंठ का चूर्ण डाल कर पीवे, इस के सेवन से वादी के सब दोष, सामरोग[6], पक्षाँघात[7], अर्दित,

---

१–परमौषधि अर्थात् सब से उत्तम ओषधि ॥

२–प्रज्वलित अर्थात् खूब जलते हुए ॥

३–सन्धि अर्थात् सँध वा छेद ॥

४–तात्पर्य यह है कि गर्म पोटली से सेंक करता जावे तथा ठंढी हुई पोटली को गर्म करने के लिये सकोरे पर रखता जावे ॥

५–अण्ड अर्थात् एरण्ड वा अण्डी का वृक्ष ॥

६–सामरोग अर्थात् आम (आँव) के सहित रोग ॥

७–पक्षाघात आदि सब वातरोग हैं ॥

कम्प, कुब्ज, सन्धिगत वात, जानु जंघा तथा हाड़ों की पीड़ा, गृध्रसी, हनुग्रह, ऊरुस्तम्भ, वातरक्त, विश्वाची, क्रोष्टुशीर्षक, हृदय के रोग, बवासीर, योनि और शुक्र के रोग तथा स्त्री के वंध्यापन के रोग, ये सब नष्ट होते हैं, यह क्वाथ स्त्रियों को गर्भप्रदान करने में भी अद्वितीय (अपूर्व) है।

१९-**रास्नापञ्चक**—रास्ना, गिलोय, अंड की जड़, देवदारु और सोंठ, ये सब औषध मिलाकर एक तोला लेवे, इस का पावभर जल में क्वाथ चढ़ावे, जब एक छटांक जल शेष रहे तब इसे उतार कर छान कर पीवे, इस के पीने से सन्धिगत वात, अस्थिगत वात, मज्जाश्रित वात तथा सर्वांगगत आमवात, ये सब रोग शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

२०-**रास्नासप्तक**—रास्ना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अंड की जड़ और पुनर्नवा, ये सब मिला कर एक तोला लेकर पावभर जल में क्वाथ करे, जब छटांक भर जल शेष रहे तब उतार कर तथा उस में छः मासे सोंठ का चूर्ण डाल कर पीवे, इस क्वाथ के पीने से जंघा, ऊरु, पसवाड़ा, त्रिक और पीठ की पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जाती है।

२१-इस रोग में-दशमूल के क्वाथ में पीपल के चूर्ण को डालकर पीना चाहिये।

२२-हरड़ और सोंठ, अथवा गिलोय और सोंठ का सेवन करने से लाभ होता है।

२३-चित्रक, इन्द्रजौं, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड़, इन का चूर्ण गर्म जल के साथ पीने से आमाशय से उठा हुआ वातरोग शान्त हो जाता है।

२४-अजमोद, काली मिर्च, पीपल, वायविड़ंग, देवदारु, चित्रक, सतावर, सेंधा निमक और पीपरामूल, ये सब प्रत्येक चार २ तोले, सोंठ दश पल, विधायरे के वीज दश पल और हरड़ पांच, पल, इन सब को मिलाकर चूर्ण कर लेना चाहिये, पीछे सब औषधों के समान गुड़ मिला कर गोलियां बना लेनां चाहिये अर्थात् प्रथम गुड़ में थोड़ा सा जल डाल कर अग्निपर रखना चाहिये जब वह पतला हो जावे तब उस में चूर्ण डालकर गोलियां बाँध लेनी चाहियें, इन गोलियों के सेवन से आमवात के सब रोग, विषूचिका (हैजा), प्रतूनी, हृद्रोग, गृध्रसी, कमर; वस्ती और गुदा की फूटन, हड्डी और जङ्घा की फूटन, सूजन, देहसन्धि के रोग और वातजन्य सब रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, ये गोलियाँ क्षुधा को लगानेवाली, आरोग्यकर्ता, यौवन को स्थिर करनेवाली, वली और पलित (बालों की श्वेतता) का नाश करनेवाली तथा अन्य भी अनेक गुणों की करनेवाली हैं।

१-अर्थात् मिश्रित सातों पदार्थों की मात्रा एक तोला लेकर ॥

२-गुड़ के योग के विना यदि केवल यह चूर्ण ही गर्म जल के साथ छः मासे लिया जावे तो भी बहुत गुण करता है ॥

२५–आमवातरोग में–पथ्यादि गूगुल[1] तथा योगराज गूगुल का सेवन करना अति गुणकारक माना गया है ।

२६–**शुण्ठीखण्ड** (सोंठपाक)–सतवी[2] सोंठ ३२ तोले, गाय का घी पावभर, दूध चार सेर, चीनी खांड़ २०० तोले (ढाई सेर), सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, पत्रज और इलायची, ये सब प्रत्येक चार २ तोले लेना चाहिये, प्रथम सोंठ के चूर्ण को घृत में सान कर दूध में पका कर खोवा (मावा) कर लेना चाहिये, फिर खांड़ की चासनी कर उस में इस खोवे को डाल कर तथा मिलाकर चूल्हे से नीचे उतार लेना चाहिये, पीछे उस में त्रिकुटा[3] और त्रिजातक[4] का चूर्ण डालकर पाक जमा देना चाहिये, पीछे इस में से एक टकेभर अथवा अग्नि के बलाबल का विचार कर उचित मात्रा का सेवन करना चाहिये, इस के सेवन से आमवात रोग नष्ट होता है, धातु (रस और रक्त आदि) पुष्ट होते हैं, शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है, आयु और ओज की वृद्धि होती है तथा वलियों का पड़ना तथा बालों का श्वेत होना मिटता है ।

२७–**मेथी पाक**—दानामेथी आठ टकेभर (आठ पल) और सोंठ आठ टके भर, इन दोनों को कूट कर कपड़छान चूर्ण कर लेना चाहिये, इस चूर्ण को आठ टके भर घी में सान कर आठ सेर दूध में डाल के खोवा बनाना चाहिये, फिर आठ सेर खांड़ की चासनी में इस खोवे को डाल कर मिला देना चाहिये, परन्तु चासनी को कुछ नरम रखना चाहिये, पीछे चूल्हे पर से नीचे उतार कर उस में काली मिर्च, पीपल, सोंठ, पीपरामूल, चित्रक, अजवायन, जीरा, धनियां, कलौंजी, सोंफ, जायफल, कचूर, दालचीनी, तेजपात और भद्रमोथा, इन सब को प्रत्येक को एक एक टका भर लेकर कपड़छान चूर्ण कर उस पाक की चासनी में मिला देना चाहिये तथा टका २ भर की कतली अथवा लड्डू बना लेने चाहियें, इन को अग्नि के बलाबल का विचार कर खाना चाहिये, इन के सेवन से आमवात, वादी के सब रोग, विषम ज्वर, पाण्डुरोग, कामला, उन्माद (हिष्टीरिया), अपस्मार (मृगी रोग), प्रमेह, वातरक्त, अम्लपित्त, रक्तपित्त, शीतपित्त, मस्तकपीड़ा, नेत्ररोग और प्रदर, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं, देह में पुष्टता होती है तथा बल और वीर्य की वृद्धि होती है ।

१–पथ्यादि गूगुल वातरोग के अन्तर्गत गृध्रसी रोग की चिकित्सा में तथा योगराज गूगुल सामान्य वातव्याधि की चिकित्सा में भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में लिखा है, वहां इस के बनाने और सेवन करने आदि की विधि देख लेनी चाहिये ॥

२–जिस के भीतर कूजट नहीं निकलता है अर्थात् जिसे पीसने से केवल चूर्ण ही चूर्ण निकलता है उसे सतवा सोंठ कहते हैं ॥

३–त्रिकुटा अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपल ॥

४–त्रिजातक अर्थात् दालचीनी, बड़ी इलायची और तेजपात, इस को त्रिसुगन्धि भी कहते हैं ॥

२८-लहसुन १०० टकेभर, काले तिल पावभर, हींग, त्रिकुटा[1], सज्जीखार, जवाखार पांचों निमक[2], सोंफ, हलदी, कूठ, पीपरामूल, चित्रक, अजमोदा, अजवायन और धनिया, ये सब प्रत्येक एक एक टकाभर लेकर इन का चूर्ण कर लेना चाहिये तथा इस चूर्ण को घी के पात्र में भर के रख देना चाहिये, १६ दिन बीत जाने के बाद उस में आध सेर कडुआ तेल[3] मिला देना चाहिये तथा आधसेर कांजी मिला देना चाहिये, फिर इस में से एक तोले भर नित्य खाना चाहिये तथा इस के ऊपर से जल पीना चाहिये, इस के सेवन से आमवात, रक्तवात, सर्वांगवात[4], एकांगवात, अपस्मार[5], मन्दाग्नि, श्वास, खांसी, विष, उन्माद, वातभग्न और शूल, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

२९-लहसुन का रस एक तोला तथा गाय का घी एक तोला, इन दोनों को मिला कर पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

३०-सामान्य वातव्याधि की चिकित्सा में जो ग्रन्थान्तरों में रसोनाष्टक औषध लिखा है वह भी इस रोग में अत्यन्त हितकारक है।

३१-**लेप**—सोंफ, वच, सोंठ, गोखुरू, वरना की छाल, पुनर्नवा, देवदारु, कचूर, गोरखमुंडी, प्रसारणी[6], अरनी और मैनफल, इन सब औषधों को कांजी अथवा सिरके में वारीक पीस कर गर्म २ लेप करना चाहिये, इस से आमवात नष्ट होता है।

३२-कलहींस, केवुँक[7] की जड़, सहजना और वर्मई[8] की मिट्टी, इन सब को गोमूत्र में पीसकर गाढ़ा २ लेप करने से आमवात रोग मिट जाता है।

३३-चित्रक, कुटकी, पाढ, इन्द्रजौं, अतीस, गिलोय, देवदारु, बच, मोथा, सोंठ और हरड़, इन ओषधियों का क्वाथ पीने से आमवात रोग शान्त हो जाता है।

३४-कचूर, सोंठ, हरड़, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय, इन ओषधियों का क्वाथ आम को पचाता है परन्तु इस क्वाथ के पीने के समय रूखा भोजन करना चाहिये।

३५-पुनर्नवा, कटेरी, मरुआ, मूर्वा और सहजना, ये सब ओषधियां क्रम से एक, दो, तीन, चार तथा पांच भाग लेनी चाहियें तथा इन का क्वाथ बना कर पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात रोग शान्त हो जाता है।

१-त्रिकुटा अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपल ॥

२-पाँचों निमक अर्थात् सेंधानिमक, सौवर्चलनिमक, कालानिमक, सामुद्रनिमक और औद्भिदनिमक ॥

३-कडुआ तेल अर्थात् सरसों का तेल ॥

४-सर्वांगवात अर्थात् सब अंगों की वादी और एकाङ्गवात अर्थात् किसी एक अंग की वादी ॥

५-अपस्मार अर्थात् मृगीरोग ॥

६-इसे भाषा में पसरन कहते हैं, यह एक प्रसर जाति की (फैलनेवाली) वनस्पति होती है ॥

७-इसे हिन्दी में केउआँ भी कहते हैं ॥

८-वमई को संस्कृत में वल्मीक कहते हैं, यह एक मिट्टी का ढीला होता है जिसे पुत्तिका (कीटविशेष) इकट्ठा करती है, इसे भाषा में वमौटा भी कहते हैं ॥

३६–आमवात से पीड़ित रोगी को दूध के साथ अंडी का तेल पिला कर रेचन (जुलाब) कराना चाहिये।

३७–गोमूत्र के साथ में सोंठ, हरड़ और गूगुल को पीने से यह रोग मिट जाता है।

३८–सोंठ, हरड़ और गिलोय, इन के गर्म २ क्वाथ को गूगुल डाल कर पीने से कमर, जांघ, ऊरु और पीठ की पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जाती है।

३९–**हिंग्वादि चूर्ण**—हींग, चव्य, विड निमक, सोंठ, पीपल, जीरा और पुहकर-मूल, ये सब ओषधियां क्रम से अधिक भाग लेनी चाहियें[1], इन का चूर्ण गर्म जल के साथ लेने से आमवात और उस के विकार[2] दूर हो जाते हैं।

४०–**पिप्पल्यादि चूर्ण**—पीपल, पीपलामूल, सेंधा निमक, काला जीरा, चव्य, चित्रक, तालीसपत्र और नागकेशर, ये सब प्रत्येक दो २ पल, काला निमक ५ पल, काली मिर्च, जीरा और सोंठ, प्रत्येक एक एक पल, अनारदाना पाव भर और अम-लवेत दो पल, सब को कूट कर चूर्ण बना लेना चाहिये, इस का गर्म जल के साथ सेवन करने से अग्नि प्रदीप्त होती है, बवासीर, ग्रहणी, गोला, उदररोग, भगन्दर, कृमिरोग, खुजली और अरुचि, इन सब का नाश होता है।

४१–**पथ्यादि चूर्ण**—हरड़, सोंठ और अजवायन, इन तीनों को समान भाग लेकर चूर्ण करना चाहिये, इस चूर्ण को छाछ, गर्म जल, अथवा कांजी के साथ पीने से आमवात, सूजन, मन्दाग्नि, पीनस, खांसी, हृदयरोग, स्वरभेद[3] और अरुचि, इन सब रोगों का नाश होता है।

४२–**रसोनादि क्वाथ**—लहसुन, सोंठ और निर्गुण्डी, इन का क्वाथ आम को शीघ्र ही नष्ट करता है, यह सर्वोत्तम ओषधि है।

४३–**शठ्यादि क्वाथ**—शठी (कचूर) और सोंठ, इन के कल्क को सांठ के क्वाथ में मिलाकर सात दिन तक पीना चाहिये, इस के पीने से आमवात रोग का नाश हो जाता है।

४४–**पुनर्नवादि चूर्ण**—पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, सतावर, विधायरा, कचूर और गोरखमुण्डी[4], इन का चूर्ण बना कर कांजी से पीना चाहिये, इस के पीने से आमाशय

१–अर्थात् हींग एक भाग, चव्य दो भाग, विडनिमक तीन भाग, सोंठ चार भाग, पीपल पांच भाग, जीरा छः भाग और पुहकरमूल सात भाग लेना चाहिये ॥

२–उस के विकार अर्थात् आमवात के शोथ और शूल आदि विकार ॥

३–स्वरभेद अर्थात् आवाज़ का बदलना ॥

४–इस को मुण्डी, महामुण्डी तथा छोटी बड़ी गोरखमुण्डी भी कहते हैं, यह प्रसरजाति की लकड़ी होती है, यह काली ज़मीन तथा जलप्राय स्थान में बहुत होती है ॥

(होजरी) की वादी दूर होती है तथा गर्म जल के साथ लेने से आमवात और गृध्रसी रोग दूर हो जाते हैं।

४५-घी, तेल, गुड़, सिरका और सोंठ, इन पांचों को मिला कर पीने से तत्काल देह की तृप्ति होती है तथा कमर की पीड़ा दूर होती है, निराम (आमरहित) कमर की पीड़ा को दूर करनेवाला इस के समान दूसरा कोई प्रयोग नहीं है[२]।

४६-सिरस के बक्कल को गाय के मूत्र में भिगा देना चाहिये, सात दिन के बाद निकाल कर हींग, वच, सोंफ और सेंधा निमक, इन को पीस कर पुटपाक करके उस का सेवन करना चाहिये, इस का सेवन करने से दारुण (घोर) कमर की पीड़ा, आमवृद्धि, मेदवृद्धि के सब रोग तथा वादी के सब रोग दूर हो जाते हैं।

४७-**अमृतादि चूर्ण**—गिलोय, सोंठ, गोखुरू, गोरखमुंडी और वरना[३] की छाल, इन के चूर्ण को दही के जल अथवा कांजी के साथ लेने से सामवात (आम के सहित वादी) का शीघ्र ही नाश होता है।

४८-**अलम्बुषादि चूर्ण**—अलम्बुषा (लजालू का भेद), गोखुरू, त्रिफला, सोंठ और गिलोय, ये सब क्रम से अधिक भाग लेकर[४] चूर्ण करे तथा इन सब के बराबर निसोत का चूर्ण मिलावे, इस में से एक तोले चूर्ण को छाछ का जल, छाछ, कांजी, अथवा गर्म जल के साथ लेने से आमवात, सूजन के सहित वातरक्त, त्रिक; जाँनु[५]; ऊरु और सन्धियों की पीड़ा, ज्वर और अरुचि, ये सब रोग मिट जाते हैं तथा यह अलम्बुषादि चूर्ण सर्व-रोगों का नाशक है।

४९-अलम्बुषा, गोखुरू, वरना की जड़, गिलोय और सोंठ, इन सब ओषधियों को समान भाग लेकर इन का चूर्ण करे, इस में से एक तोले चूर्ण को कांजी के साथ लेने से आमवात की पीड़ा अति शीघ्र दूर हो जाती है अर्थात् आमवात की वृद्धि में यह चूर्ण अमृत के समान गुणकारी (फायदेमन्द) है।

५०-**दूसरा अलम्बुषादि चूर्ण**—अलम्बुषा, गोखुरू, गिलोय, विधायरा, पीपल, निसोत, नागरमोथा, वरना की छाल, साँठ[६], त्रिफला[७] और सोंठ, इन सब ओषधियों को

१-यह रोग वातजन्य है ॥

२-अर्थात् आमरहित (विना आम की) यानी केवल वादी की पीड़ा शीघ्र ही इस प्रयोग से दूर हो जाती है ॥

३-वरना को संस्कृत में वरुण तथा वरण भी कहते हैं ॥

४-क्रम से अधिक भाग लेकर अर्थात् अलम्बुषा एक भाग, गोखुरू दो भाग, त्रिफला तीन भाग, सोंठ चार भाग और गिलोय पाँच भाग लेकर ॥

५-जानु अर्थात् घुटने ॥

६-सांठ अर्थात् लाल पुनर्नवा, इस (पुनर्नवा) के बहुत से भेद हैं, जैसे-श्वेत पुनर्नवा, इसे हिन्दी में विषखपरा कहते हैं तथा नीली पुनर्नवा, इसे हिन्दी में नीली सांठ कहते हैं, इत्यादि ॥

७-त्रिफला अर्थात् हरड़, बहेड़ा और आँवला, ये तीनों समान भाग वा क्रम से अधिक भाग ॥

समान भाग लेकर चूर्ण बना लेना चाहिये, इस में से एक तोले चूर्ण को दही का जल, कांजी, छाछ अथवा दूध के साथ लेना चाहिये, इस का सेवन करने से आमवात, सूजन और सन्धिवात, ये रोग शान्त हो जाते हैं ।

५१-**वैश्वानर चूर्ण**—सेंधा निमक दो तोले, अजवायन दो तोले, अजमोद तीन तोले, सोंठ पांच तोले और हरड़ बारह तोले, इन सब ओषधियों का बारीक चूर्ण कर के उसे दही का जल, छाछ, कांजी, घी और गर्म जल, इन में से चाहें जिस पदार्थ के साथ लेना चाहिये, इस के सेवन से आमवात, गुल्म[1], हृदय और वस्ती[2] के रोग, तिल्ली, गांठ, शूल, अफरा, गुदा के रोग, विबंध[3] और उदर के सब रोग शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं तथा अधोवायु (अपानवायु) का अनुलोमन (नीचे को गमन) होता है ।

५२-**असीतकादि चूर्ण**—कोयल, पीपल, गिलोय, निसोत, बाराहीकन्द, गजकर्ण (साल का भेद) और सोंठ, इन सब ओषधियों को समान भाग लेकर चूर्ण करे तथा इस चूर्ण को गर्म जल, मांड़, यूष, छाछ और दही का जल, इन में से किसी एक के साथ लेवे, इस के सेवन से अपबाहुक[4], गृध्रसी, खञ्जवात, विश्वाची, तूनी, प्रतूनी, जंघा के रोग, आमवात, अर्दित (लकवा), वातरक्त, कमर की पीड़ा, गुल्म (गोला), गुदा के रोग, प्रकोष्ठ[5] के रोग, पाण्डुरोग, सूजन तथा ऊरुस्तम्भ[6], ये सब रोग मिट जाते हैं ।

५३-**शुण्ठीधान्यकघृत**—सोंठ का चूर्ण छः टके भर (छः पल) तथा धनिया दो टके भर, इन में चौगुना जल डाल कर एक सेर घी को परिपक्क करना (पकाना) चाहिये, यह घृत वातकफ के रोगों को दूर करता है, अग्नि को बढ़ाता है तथा बवासीर, श्वास और खांसी को नष्ट कर बल और वर्ण को उत्पन्न करता है ।

५४-**शुण्ठीघृत**—पुष्टता के लिये यदि बनाना हो तो दूध, दही, गोमूत्र और गोबर के रस के साथ घी को पकाना चाहिये तथा यदि अग्निदीपन के लिये बनाना हो तो छाछ के साथ घी को पकाना चाहिये, इस घी को सोंठ का कल्क डाल कर तथा चौगुनी कांजी को डाल कर सिद्ध[7] करना चाँहिये, यह घृत अग्निकारक तथा आमवात-हरणकर्ता है ।

५५-**दूसरा शुण्ठीघृत**—सोंठ के क्वाथ और कल्क से एक सेर घृत और चार

१-गुल्म अर्थात् गोले का रोग ॥

२-नाभि के नीचले भाग को वस्तिस्थान कहते हैं ॥

३-विबंध अर्थात् मल और मूत्रादि का रुकना ॥

४-अपबाहुक आदि सब वातजन्य रोग हैं ॥

५-प्रकोष्ठ के रोग अर्थात् कोठे के रोग ॥

६-ऊरुस्तम्भ अर्थात् जंघाओं का रह जाना ॥

७-घृत तथा तैल को सिद्ध करने की विधि पहिले औषधप्रयोगवर्णन नामक प्रकरण में लिख चुके हैं ॥

सेर जल से अथवा केवल उक्त क्वाथ और कल्क से ही घृत को सिद्ध करना चाहिये, यह शुण्ठीघृत वातकफ को शान्त करता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा कमर की पीड़ा और आम को नष्ट करता है ।

५६-**कांजिकादिघृत**—हींग, त्रिकुटा[1], चव्य और सेंधा निमक, इन सब को प्रत्येक को चार २ तोले लेवे तथा कल्क कर इस में एक सेर घृत और चार सेर कांजी को डाल कर पचावे, यह कांजिकघृत[2] उदररोग, शूल, विबन्ध, अफरा, आमवात, कमर की पीड़ा और ग्रहणी को दूर करता है तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है ।

५७-**शृङ्गवेरादिघृत**—अदरख, जवाखार, पीपल और पीपरामूल, इन को चार २ तोले लेकर कल्क करे, इस में एक सेर घृत को तथा चार सेर कांजी को डाल कर पकावे, यह घृत विबन्ध, अफरा, शूल, आमवात, कमर की पीड़ा और ग्रहणी को दूर करता है तथा नष्ट हुई अग्नि को पुनः उत्पन्न करता है[3] ।

५८-**प्रसारणीलेह**—प्रसारणी[4] (खीप) के चार सेर क्वाथ में एक सेर घृत डाल कर तथा सोंठ, मिर्च, पीपल और पीपरामूल, इन को चार २ तोले लेकर तथा कल्क बना कर उस में डाल कर घृत को सिद्ध करे, यह घृत आमवात रोग को दूर कर देता है ।

५९-**प्रसारणीतैल**—प्रसारणी के रस में अंडी के तेल को सिद्ध कर लेना चाहिये तथा इस तेल को पीना चाहिये, यह तेल सब दोषों को तथा कफ के रोगों को शीघ्र ही नष्ट कर देता है ।

६०-**द्विपञ्चमूल्यादितैल**—दशमूल[5] का गोंद, फल, दही और खट्टी कांजी, इन के साथ तेल को पकाकर सिद्ध कर लेना चाहिये, यह तैल कमर की पीड़ा, ऊरुओं की पीड़ा, कफवात के रोग और बालग्रह, इन को दूर करता है तथा इस तेल की वस्ति करने से (पिचकारी लगाने से) अग्नि प्रदीप्त होती है ।

६१-**आमवातारिरस**—पारा एक तोला, गन्धक दो तोले, हरड़ तीन तोले, आँवला चार तोले, बहेड़े पांच तोले, चीते (चित्रक) की छाल छः तोले और गूगुल सात तोले, इन सब का उत्तम चूर्ण करे, इस में अंडी का तेल मिलाकर पीवे, इस से आमवात रोग शान्त हो जाता है, परन्तु इस ओषधि के ऊपर दूध का पीना तथा मूंग के पदार्थों का खाना वर्जित (मना) है ।

१-त्रिकुटा अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपल, इसे त्रिकटु भी कहते हैं ॥

२-काँजी में सिद्ध होने के कारण इस घृत को काञ्जिक घृत कहते हैं ॥

३-अर्थात् अग्नि की मन्दता को मिटाता है ॥

४-इसे पसरन भी कहते हैं जैसा कि पहिले लिख चुके हैं ॥

५-बेल, गँभारी, पाडर, अरनी और स्योनाक, यह बृहत्पञ्चमूल तथा शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखुरू, यह लघुपञ्चमूल, ये दोनों मिलकर दशमूल कहा जाता है ॥

पथ्यापथ्य—इस रोग में दही, गुड़, दूध, पोई का साग, उड़द तथा पिसा हुआ अन्न (चून और मैदा आदि), इन पदार्थों को त्याग देना चाहिये अर्थात् ये पदार्थ इस रोग में अपथ्य हैं, इन के सिवाय जो पदार्थ अभिष्यन्दी (देह के छिद्रों को बन्द करनेवाले), भारी तथा मलाई के समान गिलगिले हैं उन सब का भी त्याग कर देना चाहिये ॥

उन्माद अर्थात् हिष्टीरिया (Hysteria) रोग का वर्णन ॥

लक्षण—यद्यपि इस रोग के लक्षण विविध प्रकार के (अनेक तरह के) होते हैं अर्थात् ऐसे बहुत थोड़े ही रोग होंगे कि जिन के चिह्न इस (हिष्टीरिया रोग) में न होते हों तथापि इस का मुख्य चिह्न खैंचतान है।

१-यह हिष्टीरियारूपी भूत स्त्रियों में ही प्रायः देखा जाता है अर्थात् स्त्रियों के ही यह रोग प्रायः होता है, बहुत से भोले लोगों ने इस रोग के यथार्थ (असली) स्वरूप को न समझ कर इसे भूत वा भूतनी मान रक्खा है, अर्थात् वर्त्तमान में यह देखा जाता है कि-जब यह रोग स्त्रियों के होता है तथा इन के हँसना और रोना आदि लक्षणों को जब स्त्रियां प्रकट करती हैं उस समय हमारे भोले श्रीमान् लोग तथा साधारण जन रोग और उस के हेतु को न जान कर भूत आदि की बाधा ही समझ लेते हैं तथा डोरा डांडा, यन्त्र, मन्त्र और झाड़ा झपाटा आदि करने कराने में कुछ भी बाकी नहीं रखते हैं, ऐसे समय को पाकर ठग लोग भी उन को अपने पंजे में फँसा कर अपना मतलब साधने में कुछ भी बाकी नहीं रखते हैं, इस प्रकार यन्त्र, मन्त्र, डोराडांडा और झाड़ा झपाटा आदि करते कराते उन को वर्षों बीत जाते हैं, सैकड़ों और हज़ारों रुपये खर्च हो जाते हैं, परन्तु रोगी को कुछ भी लाभ नहीं होता है अर्थात् वह हिष्टीरियारूपी भूत ज्यों का त्यों ही बना रहता है, आखिरकार परिणाम (नतीजा) यह होता है कि-रोगी के सब कुटुम्बी जन हाथ मल मल कर पछताते हैं और बहुत समय के हो जाने से वह रोग प्रबलरूप धारण कर लेता है और रोगी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

प्रिय वाचकवृन्द! अब तो चेतो और अविद्या का शरण छोड़कर विद्या देवी की उपासना करो, अर्थात् भूत प्रेत आदि के भ्रम (वहम) को तथा मावज्याँ जी और भैरूँ जी आदि के दोष को एवं कामण टूमण आदि के वहमों को छोड़ो, देखो! इन्हीं वहमों ने इस गृहस्थाश्रम का सत्यानाश कर दिया है और करते जाते हैं, इस लिये सज्जनों और बुद्धिमानों को इन वहमों को स्वयं त्याग देना चाहिये तथा प्रति नगर (हर शहर) और प्रति ग्राम (हर गाँव) में इन वहमों से बचने का उपदेश भी लोगों को करना चाहिये कि जिस से ये वहम सर्वत्र ही दूर हो जावें। **प्रश्न**—आप ने भूत प्रेत आदि के विषय में केवल भ्रम (वहम) मात्र बतलाया, सो क्या आप भी अंग्रेज़ी पढ़ने पढ़ानेवाले लोगों के समान पूर्वाचार्यों के वचनों को मिथ्या ठहराते हो? **उत्तर**—प्रिय बन्धुओ! हम पूर्वाचार्यों के वचनों को कभी मिथ्या नहीं ठहरा सकते हैं और न उन के वचनों का खण्डन कर सकते हैं, क्योंकि उन के वचनों का मानना तथा उसी के अनुसार चलना, हम सब लोगों का परम धर्म है, जो लोग उन के वचनों को नहीं मानते तथा उन के वचनों का खण्डन करते हैं सो यह उन लोगों की महाभूल है, क्योंकि वे (पूर्वाचार्य)

यह खैंचतान निद्रावस्था (नींद की हालत) और एकाकी (अकेले) होने के समय में नहीं होती है किन्तु जब रोगी के पास दूसरे लोग होते हैं तब ही होती है तथा एकाएक (अचानक) न होकर धीरे २ होती हुई मालूम पड़ती है, रोगी पहिले हँसता है, बकता है, पीछे इसके भरता है और उस समय उस के गोला भी ऊपर को चढ़ जाता है, खैंचतान के समय यद्यपि असावधानता मालूम होती है परन्तु वह प्रायः अन्त में मिट जाती है।

महात्मा, परोपकारी (दूसरों का उपकार करनेवाले) और सत्यवादी (सत्य बोलनेवाले) थे तथा उन का वचन इस भव (लोक) और पर भव (दूसरा लोक) दोनों में हितकारी (भलाई करनेवाला) है, इसी लिये हम ने भी इस ग्रन्थ में उन्हीं महात्माओं के वचनों को अनेक शास्त्रों से लेकर संग्रहीत (इकट्ठा) किया है, किन्तु जिन लोगों ने उक्त महात्माओं के वचनों को नहीं माना, वे अविद्या के उपासक समझे गये और उसी के प्रसाद से वे धर्म को अधर्म, सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, शुद्ध को अशुद्ध, अशुद्ध को शुद्ध, जड़ को चेतन, चेतन को जड़ तथा अधर्म को धर्म समझने लगे, बस उन्हीं लोगों के प्रताप से आज इस पवित्र गृहस्थाश्रम की यह दुर्दशा हो रही है और होती जाती है तथा इस आश्रम की यह दुर्दशा होने से इस के आश्रयीभूत (सहारा लेनेवाले) शेष तीनों आश्रमों की दुर्दशा होने में आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि-"जैसा आहार, वैसा उद्गार" बस-हमारे इस पूर्वोक्त (पहिले कहे हुए) वचन पर थोड़ा सा ध्यान दो तो हमारे कथन का आशय (मतलब) तुम्हें अच्छे प्रकार से मालूम हो जावेगा।

(प्रश्न) आपने भूत प्रेत आदि का केवल वहम बतलाया है, सो क्या भूत प्रेत आदि है ही नहीं?

(उत्तर) हमारा यह कथन नहीं है कि-भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ ही नहीं है, क्योंकि हम सब ही लोग शास्त्रानुसार स्वर्ग और नरक आदि सब व्यवहारों के माननेवाले हैं अतः हम भूत प्रेत आदि भी सब कुछ मानते हैं, क्योंकि जीवविचार आदि ग्रन्थों में व्यन्तर के आठ भेद कहे हैं-पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग और गन्धर्व, इस लिये हम उन सब को यथावत् (ज्यों का त्यों) मानते हैं, इस लिये हमारा कथन यह नहीं है कि भूत प्रेत आदि कोई पदार्थ नहीं है किन्तु हमारे कहने का मतलब यह है कि-गृहस्थ लोग रोग के समय में जो भूत प्रेत आदि के वहम में फँस जाते हैं सो यह उन की मूर्खता है, क्योंकि-देखो! ऊपर लिखे हुए जो पिशाच आदि देव हैं वे प्रत्येक मनुष्य के शरीर में नहीं आते हैं, हां यह दूसरी बात है कि-पूर्व भव (पूर्व जन्म) का कोई वैरानुबन्ध (वैर का सम्बंध) हो जाने से ऐसा हो जावे (किसी के शरीर में पिशाचादि प्रवेश करे) परन्तु इस बात की तो परीक्षा भी हो सकती है अर्थात् शरीर में पिशाचादि का प्रवेश है वा नहीं है इस बात की परीक्षा को तुम सहज में थोड़ी देर में ही कर सकते हो, देखो! जब किसी के शरीर में तुम को भूत प्रेत आदि की सम्भावना हो तो तुम किसी छोटी सी चीज़ को हाथ की मुट्ठी में बन्द करके उस से पूछो कि हमारी मुट्ठी में क्या चीज़ है? यदि वह उस चीज़ को ठीक २ बतला दे तो पुनः भी दो तीन बार दूसरी २ चीज़ों को लेकर पूँछो, जब कई बार ठीक २ सब वस्तुओं को बतला दे तो बेशक शरीर में भूत प्रेत आदि का प्रवेश समझना चाहिये, यही परीक्षा भैरूँ जी तथा मावड्याँ जी आदि के भोपों पर (जिन पर भैरूँ जी आदि की छाया का आना माना जाता है) भी हो सकती है, अर्थात् वे (भोपे) भी यदि वस्तु को ठीक २ बतला देवें तो अलबत्तह उक्त देवों की छाया उन के शरीर में समझनी चाहिये, परन्तु यदि मुट्ठी की चीज़ को न बतला सकें तो

कभी २ खैंचतान थोड़ी और कभी २ अधिक होती है, रोगी अपने हाथ पैरों को फेंकता है तथा पछाड़ें मारता है, रोगी के दाँत बँध जाते हैं परन्तु प्रायः जीभ नहीं अकड़ती है और न मुख से फेन गिरता है; रोगी का दम घुटता है, वह अपने वालों को तोड़ता है, कपड़ों को फाड़ता है तथा लड़ना प्रारम्भ करता है ।

ऊपर कहे हुए दोनों को झूंठा समझना चाहिये । (प्रश्न) महाशय ! हम ने आप की बतलाई हुई परीक्षा को तो कभी नहीं किया, क्योंकि यह बात आजतक हम को मालूम ही नहीं थी, परन्तु हम ने भूतनी को निकालते तो अपनी आँखों से (प्रत्यक्ष) देखा है, वह आप से कहता हूँ, सुनिये—मेरी स्त्री के शरीर में महीने में दो तीन बार भूतनी आया करती थी, मैं ने बहुत से झाड़ा झपाटा करने वालों से झाड़े झपाटे आदि करवाये तथा उन के कहने के अनुसार बहुत सा द्रव्य भी खर्च किया, परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ, आखिरकार झाड़ा देनेवाला एक उस्ताद मिला, उस ने मुझ से कहा कि-"मैं तुम को आँखों से भूतिनी को दिखला दूँगा तथा उसे निकाल दूँगा परन्तु तुम से एक सौ एक रुपये लूंगा" मैं ने उस की बात को स्वीकार कर लिया, पीछे मंगलवार के दिन शाम को वह मेरे पास आया और मुझ से फुलस्केप कागज़ का आधा शीट (तख्ता) मंगवाया और उस (कागज़) को मन्त्र कर मेरी स्त्री के हाथ में उसे दिया और लोबान की धूप देता रहा, पीछे मन्त्र पढ़ कर सात कंकड़ीं उस ने मारीं और मेरी स्त्री से कहा कि-"देखो ! इस में तुम्हें कुछ दीखता है" मेरी स्त्री ने लज्जा के कारण जब कुछ नहीं कहा तब मैं ने उस कागज़ को देखा तो उस में साक्षात् भूतनी का चेहरा मुझ को दीख पड़ा, तब मुझ को विश्वास हो गया और भूतनी निकल गई, पीछे उस के कहने के अनुसार मैं ने उसे एक सौ एक रुपये दे दिये, जाते समय उस ने एक यन्त्र भी बना कर मेरी स्त्री के बँधवा दिया और वह चला गया, उस के चले जाने के बाद एक महीने तक मेरी स्त्री अच्छी रही परन्तु फिर पूर्ववत् (पहिले के समान) हो गई, यह मैं ने अपनी आँखों से देखा है, अब यदि कोई इस को झूंठ कहे तो भला मैं कैसे मानूं ? (उत्तर) तुम ने जो आँखों से देखा है उस को झूंठ कौन कह सकता है, परन्तु तुम को मालूम नहीं है कि-ठगनेवाले लोग ऐसी २ चालाकियां किया करते हैं जो कि साधारण लोगों की समझ में कभी नहीं आ सकती हैं और उन की वैसी ही चालाकियों से तुम्हारे जैसे भोले लोग ठगे जाते हैं, देखो ! तुम लोगों से यदि कोई विद्योन्नति (विद्या की वृद्धि) आदि उत्तम काम के लिये पांच रुपये भी मांगे तो तुम कभी नहीं दे सकते हो, परन्तु उन धूर्त पाखण्डियों को खुशी के साथ सैकड़ों रुपये दे देते हो, बस इसी का नाम अविद्या का प्रसाद (अज्ञान की कृपा) है, तुम कहते हो कि उस झाड़ा देनेवाले उस्ताद ने हम को कागज़ में भूतनी का चेहरा साक्षात् दिखला दिया, सो प्रथम तो हम तुम से यही पूँछते हैं कि-तुम ने उस कागज़ में लिखे हुए चेहरे को देखकर यह कैसे निश्चय कर लिया कि यह भूतनी का चेहरा है, क्योंकि तुम ने पहिले तो कभी भूतनी को देखा ही नहीं था, (यह नियम की बात है कि पहिले साक्षात् देखे हुए मूर्तिमान् पदार्थ के चित्र को देखकर भी वह पदार्थ जाना जाता है) बस विना भूतिनी को देखे कागज़ में लिखे हुए चित्र को देख कर भूतिनी के चेहरे का निश्चय कर लेना तुम्हारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है ? (प्रश्न) हम ने माना कि-कागज़ में भूतनी का चेहरा भले ही न हो परन्तु विना लिखे वह चेहरा उस कागज़ में आ गया, यह उस की पूरी उस्तादी नहीं तो और क्या है ? जब कि विना लिखे उस की विद्या के बल से वह चेहरा

जब खैंचतान बन्द होने को होती है उस समय जृम्भा (जँभाइयाँ वा उवासियाँ) अथवा डकारें आती हैं, इस समय भी रोगी रोता है, हँसता है अथवा पागलपन को प्रकट (जाहिर) करता है तथा वारंवार पेशाव करने के लिये जाता है और पेशाव उतरती भी बहुत है।

कागज़ में आ गया इस से यह ठीक निश्चय होता है कि वह विद्या में पूरा उस्ताद था और जब उस की उस्तादी का निश्चय हो गया तो उस के कथनानुसार कागज़ में भूतनी के चेहरे का भी विश्वास करना ही पड़ता है। (उत्तर) उस ने जो तुम को कागज़ में साक्षात् चेहरा दिखला दिया वह उस का विद्या का वल नहीं किन्तु केवल उस की चालाकी थी, तुम उस चालाकी को जो विद्या का वल समझते हो यह तुम्हारी विलकुल अज्ञानता तथा पदार्थविद्यानभिज्ञता (पदार्थविद्या को न जानना) है, देखो! विना लिखे कागज़ में चित्र का दिखला देना यह कोई आश्चर्य की वात नहीं है, क्योंकि पदार्थविद्या के द्वारा अनेक प्रकार के अद्भुत (विचित्र) कार्य दिखलाये जा सकते हैं, उन के यथार्थ तत्त्व को न समझ कर भूत प्रेत आदि का निश्चय कर लेना अत्यन्त मूर्खता है, इन के सिवाय इस वात का जान लेना भी आवश्यक (ज़रूरी) है कि उन्माद आदि कई रोगों का विशेष सम्बंध मन के साथ है, इस लिये कभी २ वे महीने दो महीने तक नहीं भी होते हैं तथा कभी २ जब मन और तरफ को झुक जाता है अथवा मन की आशा पूर्ण हो जाती है तव विलकुल ही देखने में नहीं आते हैं।

उन्माद रोग में रोना वकना आदि लक्षण मन के सम्बंध से होते हैं परन्तु मूर्ख जन उन्हें देख कर भूत और भूतनी को समझ लेते हैं, यह भ्रम वर्त्तमान में प्रायः देखा जाता है, इस का हेतु केवल कुसंस्कार (बुरा संस्कार) ही है, देखो! जब कोई छोटा वालक रोता है तब उस की माता कहती है कि-"हौआ आया" इस को सुन कर वालक चुप हो जाता है, वस उस वालक के हृदय में उसी हौए का संस्कार जम जाता है और वह आजन्म (जन्मभर) नहीं निकलता है, प्रिय वाचकवृन्द! विचारो तो सही कि वह हौआ क्या चीज़ है, कुछ भी नहीं, परन्तु उस अभावरूप हौए का भी बुरा असर वालक के कोमल हृदय पर कैसा पड़ता है कि वह जन्मभर नहीं जाता है, देखो! हमारे देशी भाइयों में से बहुत से लोग रात्रि के समय में दूसरे ग्राम में वा किसी दूसरी जगह अकेले जाने में डरते हैं, इस का क्या कारण है, केवल यही कारण है कि-अज्ञान माता ने वालकपन में उन के हृदय में हौआ का भय और उस का बुरा संस्कार स्थापित कर दिया है।

यह कुसंस्कार विद्या से रहित मारवाड़ आदि अनेक देशों में तो अधिक देखा ही जाता है परन्तु गुजरात आदि जो कि पठित देश कहलाते हैं वे भी इस के भी दो पैर आगे वढ़े हुए हैं, इस का कारण स्त्रीवर्ग की अज्ञानता के सिवाय और कुछ नहीं है।

यद्यपि इस विषय में यहां पर हम को अनेक अद्भुत वातें भी लिखनी थीं कि जिन से गृहस्थों और भोले लोगों का सव भ्रम दूर हो जाता तथा पदार्थविज्ञानसम्वंधी कुछ चमत्कार भी उन्हें विदित हो जाते परन्तु ग्रन्थ के अधिक वढ़ जाने के भय से उन सव वातों को यहां नहीं लिख सकते हैं, किन्तु सूचना मात्र प्रसंगवशात् यहां पर वतला देना आवश्यक (ज़रूरी) था, इस लिये कुछ वतला दिया गया, उन सव अद्भुत वातों का वर्णन अन्यत्र प्रसंगानुसार किया जाकर पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जावेगा, आशा है कि समझदार पुरुष हमारे इतने ही लेख से तत्त्व का विचार कर मिथ्या भ्रम (झूठे वहम) को दूर कर धूर्त्त और पाखण्डी लोगों के पंजे में न फँस कर लाभ उठावेंगे॥

खैंचतान के सिवाय–इस रोग में अनेक प्रकार का मनोविकार भी हुआ करता है अर्थात् रोगी किसी समय तो अति आनन्द को प्रकट करता है, किसी समय अति उदास हो जाता है, कभी २ अति आनन्ददशा में से भी एकदम उदासी को पहुँच जाता है अर्थात् हँसते २ रोने लगता है, डसके भरता है तथा लड़ाई करने लगता है; इसी प्रकार कभी २ उदासी की दशा में से भी एकदम आनन्द को प्राप्त हो जाता है अर्थात् रोते २ हँसने लगता है।

रोगी का चित्त इस बात का उत्सुक (चाहवाला) रहता है कि–लोग मेरी तरफ ध्यान देकर दया को प्रकट करें तथा जब ऐसा किया जाता है तब वह अपने पागलपन को और भी अधिक प्रकट करने लगता है।

इस रोग में स्पर्शसम्बन्धी भी कई एक चिह्न प्रकट होते हैं, जैसे–मस्तक, कोड़ और छाती आदि स्थानों में चसके चलते हैं, अथवा शूल होता है, उस समय रोगी का स्पर्श का ज्ञान बढ़ जाता है अर्थात् थोड़ा सा भी स्पर्श होने पर रोगी को अधिक मालूम होता है और वह स्पर्श उस को इतना असह्य (न सहने के योग्य) मालूम होता है कि–रोगी किसी को हाथ भी नहीं लगाने देता है, परन्तु यदि उस (रोगी) के लक्ष्य (ध्यान) को दूसरे किसी विषय में लगा कर (दूसरी तरफ ले जाकर) उक्त स्थानों में स्पर्श किया जावे तो उस को कुछ भी नहीं मालूम होता है, तात्पर्य यही है कि–इस रोग में वास्तविक (असली) विकार की अपेक्षा मनोविकार विशेष होता है, नाक, कान, आँख और जीभ, इन इन्द्रियों के कई प्रकार के विकार मालूम होते हैं अर्थात् कानों में घोंघाट (घों २ की आवाज) होता है, आँखों में विचित्र दर्शन प्रतीत (मालूम) होते हैं, जीभ में विचित्र स्वाद तथा नाक में विचित्र गन्ध प्रतीत होते हैं, पेट अर्थात् पेड़ू में से गोला ऊपर को चढ़ता है तथा वह छाती और गले में जाकर ठहरता है जिस से ऐसा प्रतीत होता है कि रोगी को अधिक व्याकुलता हो रही है तथा वह उस (गोले) को निकलवाने के लिये प्रयत्न कराना चाहता है, कभी २ स्पर्श का ज्ञान बढ़ने के बदले (एवज में) उस (स्पर्श) का ज्ञान न्यून (कम) हो जाता है, अथवा केवल शून्यता (शरीर की सुन्नता) सी प्रतीत होने लगती है अर्थात् शरीर के किसी २ भाग में स्पर्श का ज्ञान ही नहीं होता है।

इस रोग में गतिसम्बन्धी भी अनेक विकार होते हैं, जैसे–कभी २ गति का विनाश हो जाता है, अकेली दाँती लग जाती है, एक अथवा दोनों हाथ पैर खिंचते हैं, खिंचने के समय कभी २ स्नायु रह जाते हैं और अर्धांग (आधे अंग का रह जाना) अथवा ऊरुस्तम्भ (ऊरुओं का रुकना अर्थात् बँध जाना) हो जाता है, एक वा दोनों हाथ पैर रह जाते हैं, अथवा तमाम शरीर रह जाता है और रोगी को शय्या (चारपाई) का आश्रय (सहारा) लेना पड़ता है, कभी २ आवाज बैठ जाती है और रोगी से बिलकुल ही नहीं बोला जाता है।

इस रोग में कभी २ स्त्री का पेट बड़ा हो जाता है और उस को गर्भ का भ्रम होने लगता है, परन्तु पेट तथा योनि के द्वारा गर्भ के न होने का ठीक निश्चय करने से उस का उक्त भ्रम दूर हो जाता है, गर्भ के न रहने का निश्चय क्लोरोफार्म के सुँघाने से अथवा बिजुली के लगाने से पेट के शीघ्र बैठ जाने के द्वारा हो सकता है।

इस रोग से युक्त स्त्रियों में प्रायः अजीर्ण, वमन (उलटी), अम्लपित्त, डकार, दस्त की कब्जी, चूंक, गोला, खांसी, दम, अधिक आर्तव का होना, आर्तव का न होना, पीड़ा से युक्त आर्तव का होना और मूत्र का न्यूनाधिक होना, ये लक्षण पाये जाते हैं, इन के सिवाय पेशाब में गर्मी आदि विचित्र प्रकार के चिह्न भी होते हैं।

रोगी के यथार्थ वर्णन से[1] तथा इस रोग के चिह्नों के समुदाय (समूह) का ठीक मिलान करने से यद्यपि इस रोग का ठीक २ निश्चय हो सकता है परन्तु तथापि कभी २ यह अवश्य (जरूर) सन्देह (शक) होता है कि रोग हिष्टीरिया के सदृश (समान) है अथवा वास्तविक है अर्थात् कभी २ रोग की परीक्षा (जाँच) का करना अति कठिन (बहुत मुश्किल) हो जाता है, परन्तु जो बुद्धिमान् (अक्लमन्द अर्थात् चतुर) और अनुभवी (तजुर्बेकार) वैद्य हैं वे इस रोग की खैंचतान को वायुजन्य आदि रोग के द्वारा ठीक २ पहिचान लेते हैं।

कारण—इस रोग का वास्तविक (असली) कारण कोई भी नहीं मिलता है, क्योंकि इस (रोग) के कारण विविधरूप (अनेक प्रकार के) और अनेक हैं।

स्त्रीजाति में यह रोग विशेष (प्रायः) देखा जाता है[3] तथा पुरुष जाति में क्वचित् ही दीख पड़ता है।

इस के सिवाय-पन्द्रह बीस वर्ष की अवस्थावाली, विधवा तथा वन्ध्या (वांझ) स्त्रियों के वर्ग में यह रोग विशेष देखने में आता है।

स्पर्शविकार, गतिविकार, मनोविकार[4], गर्भाशय तथा दिमाग की व्याधि[5], मन की चिन्ता, खेद, भय, शोक, विवाहसम्बंधी सन्ताप (दुःख), अजीर्ण (कब्जी), हथरस (हाथ के द्वारा वीर्य का निकालना), मन का अधिक श्रम (परिश्रम), अति विषयसेवन तथा मन को किसी प्रकार का धक्का पहुँचना, इत्यादि अनेक कारणों से यह रोग हो जाता है।

१-यथार्थ वर्णन से अर्थात् सत्य २ हाल के कह देने से ॥

२-वास्तविक अर्थात् असली ॥

३-क्योंकि इस रोग की उत्पत्ति रजोविकार से प्रायः होती है, अर्थात् रज में विकार होने से वा मासिक-धर्म (रजोदर्शन) में रज की तथा समय की न्यूनाधिकता होने से यह रोग उत्पन्न होता है ॥

४-स्पर्शविकार और गतिविकार की अपेक्षा मनोविकार प्रधान कारण है ॥

५-वास्तव में तो दिमाग की व्याधि, मन की चिन्ता, खेद, भय, शोक और विवाहसम्बंधी सन्ताप का समावेश मनोविकार में ही हो सकता है परन्तु स्पष्टता के हेतु इन कारणों को पृथक् कह दिया गया है ॥

चिकित्सा—इस रोग की खैंचतान के लिये किसी विशेष (ख़ास) प्रयत्न (कोशिश) करने की आवश्यकता (जरूरत) नहीं है, क्योंकि वह (खैंचतान) इस रोग का ऊपरी चिह्न है ।

इस रोग की निवृत्ति का सब से अच्छा उपाय यही है कि जिस औषध आदि से शरीर को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे तथा मन को स्वस्थता (आराम वा तहदिली) प्राप्त हो सके उसी को उपयोग (व्यवहार) में लाना चाहिये ।

इस के सिवाय-रोगी के शरीर की विशेष (खास तौर से) सम्भाल रखनी चाहिये, ठंढे पानी के छींटे मुख पर लगाना चाहिये, अमोनिया सुँघाना चाहिये तथा बिजुली लगानी चाहिये, यदि रोगी की दाँती बँध जावे तो नाक और मुख को कुछ मिनटों तक बन्द कर देना चाहिये, त्वचा (चमड़ी) में पिचकारी लगानी चाहिये तथा राई लगानी चाहिये और रोगी को पानी पिलाना चाहिये ।

इस रोग के होने का जो कोई कारण विदित (मालूम) हो उस का शीघ्र ही योग्य उपाय करना चाहिये अर्थात् उस कारण की निवृत्ति करनी चाहिये, मन को वश में रखना चाहिये तथा रोगी को हिम्मत और उत्साह दिलाना चाहिये, उस के मन को काम काज में लगाये रखना चाहिये ।

किन्हीं २ का यह रोग विवाह करने से अथवा बच्चे के जन्मने से जाता रहता है, उस का कारण यही है कि-काम काज में प्रवृत्ति और मन की वृत्ति के बदलने से ऐसा होता है ।

इन के सिवाय-इस रोग में प्रायः वे इलाज उपयोगी होते हैं कि जिन से रोगी का शरीर सुधरे और उस को शक्ति प्राप्त हो तथा शारीरिक (शरीर का) और मानसिक (मन का) व्यायाम भी इस रोग में अधिक लाभदायक (फायदेमन्द) माने गये हैं ।

यह चतुर्थ अध्याय का प्रकीर्ण रोगवर्णन नामक पन्द्रहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

इति श्री जैन श्वेताम्बर धर्मोपदेशक, यतिप्राणाचार्य, विवेकलब्धिशिष्य,
शीलसौभाग्य-निर्मितः, जैनसम्प्रदाय शिक्षायाः,
चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चम अध्याय ॥

मङ्गलाचरण ॥

वर्धमान के चरणयुग[1], नित वन्दों कर[2] जोर ॥
ओस वाल वंशावली, प्रकट करूँ चहुँ ओर ॥ १ ॥
श्री सरस्वति देवो सुमति[3], अविरल[4] वाणि अथाह[5] ॥
ओसवाल उपमा इला[6], सकल कला साराह[7] ॥ २ ॥
दान वीर सब जगत में, धनयुत[8] गुण गम्भीर ॥
राजवंश चढ़ती कला, जस सुरधुनि[9] को नीर[10] ॥ ३ ॥
सकल बारहों न्यात[11] में, धनयुत राज कुमार ॥
शूर वीर मछराल है, जानै सब संसार ॥ ४ ॥

प्रथम प्रकरण—ओसवाल वंशोत्पत्ति वर्णन ॥

ओसवाल वंशोत्पत्ति का इतिहास[12] ॥

चतुर्दश (चौदह) पूर्वधारी, श्रुतकेवली, अनेक लब्धिसंयुत, सकल गुणों के आगार, विद्या और मन्त्रादि के चमत्कार के भण्डार, शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय, एवं समस्त

१–चरणयुग अर्थात् दोनों चरण ॥ २–हाथ ॥ ३–अच्छी बुद्धि ॥ ४–निरन्तर ठहरने वाली ॥ ५–वेपरिमाण ॥ ६–पृथिवी ॥ ७–सकल कला साराह अर्थात् सब कलाओं में प्रशंसनीय ॥ ८–ऐश्वर्ययुक्त ॥ ९–गङ्गा ॥ १०–जल ॥ ११–जाति ॥

१२–विदित हो कि जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरि जी महाराज ने ओसियाँ नगरी में राजा आदि १८ जाति के राजपूतों को जैनधर्म का ग्रहण कराके उन का "माहाजन" (जो कि 'महाजन' अर्थात् 'वड़े जन' का अपभ्रंश है) वंश तथा १८ गोत्र स्थापित किये थे, इस के पश्चात् जिस समय खँडेला नगर में प्रथम समस्त बारह न्यातें एकत्रित हुई थीं उस समय जिस २ नगर से जिस २ वंशवाले प्रतिनिधिरूप में (प्रतिनिधि बन कर) आये थे उन का नाम उसी नगर के नाम से स्थापित किया गया था, ओसियाँ नगर से माहाजन वंश वाले प्रतिनिधि वन कर गये थे अतः उन का नाम ओसवाल स्थापित किया गया, बस उसी समय से माहाजन वंश का दूसरा नाम 'ओसवाल' प्रसिद्ध हुआ, वर्त्तमान में इस ही (ओसवाल ही) नाम का विशेष व्यवहार होता है (माहाजन नाम तो लुप्तप्राय हो रहा है, तात्पर्य यह है कि–इस नाम का उपयोग किन्हीं विरले तथा प्राचीन स्थानों में ही होता है, जैसे–जैसलमेर आदि कुछ प्राचीन स्थानों

आचार्यगुणों से परिपूर्ण, उपकेशगच्छीय जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरि जी महाराज पाँच सौ साधुओं के साथ विहार करते हुए श्री आबू जी अचलगढ़ पर पधारे थे, उन का यह नियम था कि वे (उक्त सूरि जी महाराज) मासक्षमण से पारणा किया करते थे, उन की ऐसी कठिन तपस्या को देख कर अचलगढ़ की अधिष्ठात्री अम्बा देवी प्रसन्न होकर श्री गुरु महाराज की भक्त हो गई, अतः जब उक्त महाराज ने वहाँ से गुजरात की तरफ विहार करने का विचार किया तब अम्बा देवी ने हाथ जोड़ कर उन से प्रार्थना की कि-"हे परम गुरो ! आप मरुधर (मारवाड़) देश की तरफ विहार कीजिये, क्योंकि आप के उधर पधारने से दयामूल धर्म (जिनधर्म) का उद्योत होगा" देवी की इस प्रार्थना को सुन कर उक्त आचार्य महाराज ने उपयोग देकर देखा तो उन को देवी का उक्त वचन ठीक मालूम हुआ, तब महाराज ने अपने साथ के पाँच सौ मुनियों (साधुओं) को धर्मोपदेश देने के लिये गुजरात की तरफ विचरने की आज्ञा दी तथा आप एक शिष्य को साथ में रख कर ग्रामानुग्राम (एक ग्राम से दूसरे ग्राम में) विहार करते हुए ओसियाँ पट्टन में आये तथा नगर के बाहर किसी देवालय में ध्यानारूढ होकर श्रीजी ने मासकल्प

में अब तक 'माहाजन, नाम का ही व्यवहार होता है, जैसलमेर में "माहाजनसर" नामक एक कुआ है जिस को बने हुए अनुमान सात सौ वर्ष हुए हैं) इस लिये हम ने भी इतिहासलेखन में तथा अन्यत्र भी इसी नाम का उल्लेख किया है।

बहुत से लोग माहाजनवंशवालों (ओसवालों) को वणियाँ वा वाणियाँ (वैश्य) कहा करते हैं, यह उन की बड़ी भूल है, क्योंकि उक्त वंशवाले जैन क्षत्रिय (जिनधर्मानुयायी राजपूत) हैं, इस लिये इन को वैश्य समझना महाभ्रम है।

हमारे बहुत से भोलेभाले ओसवाल भ्राता भी दूसरों के कथन से अपनी वैश्य जाति सुन अपने को वैश्य ही समझने लगे हैं, यह उन की अज्ञता है, उन को चाहिये कि-दूसरों के कथन से अपने को वैश्य कदापि न समझें, किन्तु ऊपर लिखे अनुसार अपने को जैनक्षत्रिय मानें।

हमने श्रीमान् मान्यवर सेठ श्री चाँदमल जी ढड्ढा (बीकानेर) से सुना है कि-बनारसनिवासी राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने मनुष्यसंख्या के परिगणन (मर्दुमशुमारी की गिनती) में अपने को जैनक्षत्रिय लिखाया है, हमें यह सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई, क्योंकि बुद्धिमान् का यही धर्म है कि-अपने प्राचीन वंश क्रम को ठीक रीति से समझ कर तदनुकूल ही अपने को माने और प्रकट करे ॥

१-इस नगरी के बसने का कारण यह है कि-श्रीमाल नगर (जिस को अब भीनमाल कहते हैं) का राजा पँवार वंशी भीमसेन का पुत्र श्रीपुञ्ज था, उस का पुत्र उत्पल (ऊपलदे) कुमार और उहड़ मन्त्री, ये दोनों जन अठारह हज़ार कुटुम्ब के सहित किसी कारण से दूसरा नगर बसाने के लिये श्रीमाल नगर से निकले थे और वर्त्तमान में जिस स्थान पर जोधपुर बसा है उस से पन्द्रह कोश के फासले पर उत्तर दिशा में लाखों मनुष्यों की बस्तीरूप उपकेशपट्टण (ओसियाँ) नामक नगर बसाया था, यह नगर थोड़े ही समय में अच्छी शोभा से युक्त (रौनकदार) हो गया, तेईसवें तीर्थङ्कर श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के छठे

का प्रारम्भ किया, आचार्य महाराज का शिष्य अपने वास्ते आहार लाने के लिये सदा ओसियाँ पट्टन में गोचरी जाता था परन्तु जैन साधुओं के लेने योग्य शुद्ध आहार उसे किसी जगह भी नहीं मिलता था, क्योंकि उस नगरी में राजा आदि सब लोग नास्तिक मतानुयायी अर्थात् वाममार्गी (कूँड़ा पन्थी) देवी के उपासक तथा चामुण्डा (साचिया देवी) के भक्त थे इस लिये दयाधर्म (जैनधर्म) के अनुसार साधु आदि को आहारादि के देने की विधि को वे लोग नहीं जानते थे।

पाटधारी श्री रत्नप्रभसूरि महाराज वीर संवत् ७० (महावीर स्वामी के निर्वाण से ७० वर्ष पीछे) अर्थात् विक्रम संवत् से ४०० (चार सौ) वर्ष पहिले विहार करते हुए जब ओसियाँ पधारे थे उस समय यह नगर गढ़, मठ, धन, धान्य, वस्त्र और सर्व प्रकार के पण्य द्रव्यादि (व्यापार करने योग्य वस्तुओं आदि) के व्यापार से परिपूर्ण (भरपूर) था॥

१-कपाली, भस्म लगानेवाले, जोगी, नाथ, कौलिक और ब्राह्म आदि, इन को वाममार्गी और नास्तिक कहते हैं, इन के मत का नाम नास्तिक मत वा चार्वाक मत है, ये लोग स्वर्ग, नरक, जीव, पुण्य और पाप आदि कुछ भी नहीं मानते हैं, किन्तु केवल चातुर्भौतिक देह मानते हैं अर्थात् उन का यह मत है कि-चार भूतों से ही मद्यशक्ति के समान (जैसे मद्य के प्रत्येक पदार्थ में मादक शक्ति नहीं है परन्तु सब के मिलने से मादक शक्ति उत्पन्न हो जाती है इस प्रकार) चैतन्य उत्पन्न होता है तथा पानी के बुलबुले के समान शरीर ही जीवरूप है (अर्थात् जैसे पानी में उत्पन्न हुआ बुलबुला पानी से भिन्न नहीं है किन्तु पानीरूप ही है इसी प्रकार शरीर में उत्पन्न हुआ जीव शरीर से भिन्न नहीं है किन्तु शरीररूप ही है), इस मत के अनुयायी जन मद्य और मांस का सेवन करते हैं तथा माता बहिन और कन्या आदि अगम्य (न गमन करने योग्य) भी स्त्रियों के साथ गमन करते हैं, ये नास्तिक वाममार्गी लोग प्रतिवर्ष एक दिन एक नियत स्थान में सब मिल कर इकट्ठे होते हैं तथा वहाँ स्त्रियों को नग्न करके उन की योनि की पूजा करते हैं, इन लोगों के मत में कामसेवन के सिवाय दूसरा कोई धर्म नहीं है अर्थात् ये लोग कामसेवन को ही परम धर्म मानते हैं, इस मत में तीन चार फिरके हैं-यदि किसी को इस मत की उत्पत्ति के वर्णन के देखने की इच्छा हो तो शीलतरङ्गिणीनामक ग्रन्थ में देख लेना चाहिये, व्यभिचार प्रधान होने के कारण यह मत संसार में पूर्व समय में बहुत फैल गया था परन्तु विद्या के संसर्ग से वर्त्तमान में इस मत का पूर्व समय के अनुसार प्रचार नहीं है तथापि राजपूताना, पञ्जाब, बंगाल और गुजरात आदि कई देशों में अब भी इस का थोड़ा बहुत प्रचार है, पाठकगण इस मत की अधमता को इसी से जान सकते हैं कि-इस मत में सम्मिलित होने के बाद अपने मुख से कोई भी मनुष्य यह नहीं कहता है कि-मैं वाममार्ग में हूँ, राजपूताने के बीकानेर नगर में भी पचीस वर्ष पहिले तक उत्तम जातिवाले भी बहुत से लोग गुप्त रीति से इस मत में सम्मिलित होते थे परन्तु जब से लोगों को कुछ २ ज्ञान हुआ है तब से वहाँ इस मत के फन्दे से लोग निकलने लगे, अब भी वहाँ शूद्र वर्णों में इस मत का अधिक प्रचार है परन्तु उत्तम वर्ण के भी थोड़े बहुत लोग इस में गुप्ततया फँसे हुए हैं, जिन की पोल किसी २ समय उन की गफलत से खुल जाती है, इस का कारण यह है कि-मरनेवाले के पीछे यदि उस का पुत्रादि कोई कुटुम्बी उस की गद्दी पर न बैठे तो वह (मृत पुरुष) व्यन्तरपन में अनेक उपद्रव करने लगता है, संवत् १९६३ के माघ

निदान दोनों गुरु और चेलों का मासक्षमण तप पूरा हो गया तथा कल्प के पूरे हो जाने से उक्त महाराज ज्योंही विहार करने के लिये उद्यत हुए त्योंही नगरी की अधिष्ठात्री सचियाय देवी ने अवधि ज्ञान से देख कर यह विचारा कि–हाय! बड़े ही खेद की बात है कि–ऐसे मुनि महात्मा इस पाँच लाख मनुष्यों की बस्ती में से एक महीने के भूखे इस नगरी से विदा होते हैं, यह विचार कर उक्त (साचियाय) देवी गुरुजी के पास आकर तथा वन्दन और नमन आदि शिष्टाचार करके सन्मुख खड़ी हुई और गुरुजी से कहा कि–"हे महाराज! कुछ चमत्कार हो तो दिखलाओ" देवी के इस वचन को सुन कर गुरुजी ने कहा कि "हे देवि! कारण के विना साधुजन लब्धि को नहीं फोरते हैं" इस पर पुनः देवी ने आचार्य से कहा कि–"हे महाराज! धर्म के लिये मुनि जन लब्धि को फोरते ही हैं, इस में कोई दोष नहीं है, इस सब विषय को आप जानते ही हो अतः मैं विशेष आप से क्या कहूँ, यदि आप यहाँ लब्धि को फोरेंगे तो यहाँ दयामूल धर्म फैलेगा जिस से सब को बड़ा भारी लाभ होगा" देवी के वचन को सुन कर सूरि महाराज ने उस पर उपयोग दिया तो उन्हें देवी का कथन ठीक मालूम हुआ, निदान लब्धि का फोरना उचित जान महाराज ने देवी से रुई की एक पोनी मँगवाई और उस का एक पोनिया सर्प (साँप) बन गया तथा उस सर्प ने भरी सभा में जाकर राजा उपलदे पँवार के राजकुमार महीपाल को काटा, सर्प के काटते ही राजकुमार मूर्छित होकर पृथ्वीशायी हो गया, सर्प के विष की निवृत्ति के लिये राजा ने मन्त्र यन्त्र तन्त्र और ओषधि आदि अनेक उपचार करवाये परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ, अब क्याथा-तमाम रनिवास तथा ओसियाँ नगरी में हाहाकार मच गया, एकलौते कुमार की यह दशा देख

महीने की बात है कि–उक्त (बीकानेर) नगर में बोथरों की गुवाड़ में दिन को चारों दिशाओं से आ आ कर पत्थर गिरते थे तथा उन को देखने के लिये सैकड़ों मनुष्य जमा हो जाते थे, इस प्रकार तीन दिन तक पत्थर गिरते रहे, हम ने भी उक्त गुवाड़ में जाकर अपनी आँखों से गिरते हुए पत्थरों को देखा था, इस मत का अधिक वर्णन यहां पर अनावश्यक समझ कर नहीं लिखते हैं किन्तु प्रसङ्गवशात् वाचकवृन्द को इस मत का कुछ रहस्य ज्ञात (मालूम) हो जावे इस लिये दिग्दर्शन मात्र (बहुत ही थोड़ा सा) इस का वर्णन कर दिया गया है, इस के विषय में हम अपनी ओर से इतना ही कहना पर्याप्त (काफी) समझते हैं कि–यद्यपि संसार में अनेक निकृष्ट (खराब) मत प्रचरित हो गये हैं तथापि इस कूण्डापन्थ मत के समान दूसरा कोई भी निकृष्ट मत नहीं है, देखिये! आप चाहे किसी मतवाले से पूछिये परन्तु वह व्यभिचार को कभी धर्म नहीं कहेगा परन्तु इस मत के लोग व्यभिचार को ही धर्म मानते हैं इस लिये जो लोग इस मत में फँसे हुए हैं उन को इसे अवश्य छोड़ देना चाहिये, क्योंकि मनुष्यजन्म बहुत कठिनता से प्राप्त होता है, इस लिये इसे व्यर्थ में न गँवा कर इस के लक्ष्य पर ध्यान देना चाहिये अर्थात् परम यत्न और पुरुषार्थ से सन्मार्ग का आश्रय लेकर मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों फलों को प्राप्त करना चाहिये कि जिस से इस जीवात्मा को उभयलोक में सुख और शान्ति प्राप्त हो॥

राजा के हृदय में जो शोक ने बसेरा किया भला उस का तो कहना ही क्या है ! एकमात्र आँखों के तारे राजकुमार की यह दशा होने पर भला राजवंश में अन्न जल किस को अच्छा लगता है और जब राजवंश ही निराहार होकर सन्तप्त हो रहा है तब नगरीवासी स्वामिभक्त प्रजाजन अपनी उदरदरी को कैसे भर सकते हैं ? निदान भूखे प्यासे और शोक से सन्तप्त सब ही लोग इधर उधर दौड़ने लगे, यन्त्र मन्त्रादिवेत्ता अनेक जन ढूँढ़ २ कर उपचारादि के लिये बुलाये गये परन्तु कुछ न हुआ, होता कैसे कहीं मायिक (माया से बने हुए) सर्प का भी उपचार हो सकता है ? लाचार होकर राजा आदि सर्व परिवारजन तथा नागरिक जन निराश हो गये और कुमार को मरा हुआ जान कर श्मशानभूमि में जलाने के लिये लेकर प्रस्थित (रवाना) हुए, जब कुमार की लाश को लिये हुए राजा आदि सब लोग नगर के द्वार पर पहुँचे उस समय रत्नप्रभ सूरि जी का शिष्य आकर उन से बोला कि–"यदि तुम हमारे गुरुजी का कहना स्वीकार करो तो वे इस मृत कुमार को जीवित कर सकते हैं" यह सुन कर वे सब लोग बोले कि–"यह कुमार किसी प्रकार जीवित हो जाना चाहिये, तुम्हारे गुरु की जो कुछ आज्ञा होगी वह अवश्य ही हम सब लोगों के शिरोधार्य होगी" (सत्य है–गरजी और दर्दी सब कुछ स्वीकार करते हैं) निदान शिष्य के कथनानुसार राजा आदि सब लोग कुमार की लाश को गुरुजी के पास ले गये, उस समय सूरिजी ने राजा से कहा कि–"यदि तुम अपने कुटुम्बसहित मिथ्यात्व धर्म का त्याग कर सर्वज्ञ के कहे हुए दयामूल धर्म का ग्रहण करो तो हम कुमार को जीवित कर सकते हैं" राजा आदि सब लोगों ने गुरु जी का कहना हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया, फिर क्या था-वही पोनिया सर्प आया और कुमार का सम्पूर्ण विष खींच कर चला गया, कुमार आलस्य में भरा हुआ तथा जँभाइयों को लेता हुआ निद्रा से उठे हुए पुरुष के समान उठ खड़ा हुआ और चारों ओर देख कर कहने लगा कि–"तुम सब लोग मुझे इस जङ्गल में क्यों लाये" कुमार के इस वचन को सुन कर राजा आदि सब लोगों के नेत्रों में प्रेमाश्रु (प्रेम के आँसू) बहने लगे तथा हर्ष और आनन्द की तरङ्गें हृदय में उमड़ने लगीं, उपलदे राजा ने इस कौतुक से विस्मित और आनन्दित होकर तथा सूरि जी को परम चमत्कारी महात्मा जान कर अपने मुकुट को उतार कर उन के चरणों में रख दिया और कहा कि–"हे परम गुरो ! यह सर्व राज्य, कोठार, भण्डार, वरु मेरे प्राण तक सब कुछ आपके अर्पण है, दयानिधे ! इस मेरे सर्व राज्य को लेकर मुझे अपने ऋण से मुक्त कीजिये" राजा के ऐसे विनीत (विनययुक्त) वचनों को सुन कर सूरि जी बोले कि–"हे नरेन्द्र ! जब हम ने अपने पिता के ही राज्य को छोड़ दिया तो अब हम नरकादि दुःखप्रद राज्य को लेकर क्या करेंगे ? इस लिये हम को राज्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं है किन्तु–हमें प्रयोजन केवल श्रीवीतराग भगवान् के

कहे हुए धर्म से है, अतः तुम्हें श्रद्धालु देख हम यही चाहते हैं कि–तुम भी श्रीवीतराग भगवान् के कहे हुए सम्यक्त्वयुक्त दयामूल धर्म को सुनो और परीक्षा करके उस का ग्रहण करो कि–जिस से तुम्हारा इस भव और पर भव में कल्याण हो तथा तुम्हारी सन्तति भी सदा के लिये सुखी हो, क्योंकि कहा है कि—

बुद्धेः फलं तत्त्वविचारणं च, देहस्य सारो व्रतधारणञ्च ॥
अर्थस्य सारः किल पात्रदानं, वाचः फलं प्रीतिकरं नराणाम् ॥ १ ॥

अर्थात् बुद्धि के पाने का फल–तत्त्वों[1] का विचार करना है, मनुष्य शरीर के पाने का सार (फल) व्रत का (पच्चक्खाण आदि नियम का) धारण करना है, धन (लक्ष्मी) के पाने का सार सुपात्रों को दान देना है तथा वचन के पाने का फल सब से प्रीति करना है" ॥ १ ॥

"हे नरेन्द्र !, नीतिशास्त्र में कहा गया है कि:—

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते । निर्घर्षणच्छेदनतापताडनैः ॥
तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते । श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणैः" ॥ १ ॥

"अर्थात्–कसौटी पर घिसने से, छेनी से काटने से, अग्नि में तपाने से और हथौड़े के द्वारा कूटने से, इन चार प्रकारों से जैसे सोने की परीक्षा की जाती है उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग धर्म की भी परीक्षा चार प्रकार से करते हैं अर्थात् श्रुत (शास्त्र के वचन) से, शील से, तप से तथा दया से" ॥ १ ॥

"इन में से श्रुत अर्थात् शास्त्र के वचन से धर्म की इस प्रकार परीक्षा[2] होती है कि जो धर्म शास्त्रीय (शास्त्र के) वचनों से विरुद्ध न हो किन्तु शास्त्रीय वचनों से समर्थित (पुष्ट किया हुआ) हो उस धर्म का ग्रहण करना चाहिये और ऐसा धर्म केवल श्री वीतरागकथित है इस लिये उसी का ग्रहण करना चाहिये, हे राजन् ! मैं इस बात को किसी पक्षपात से नहीं करता हूँ किन्तु यह बात बिलकुल सत्य है, तुम समझ सकते हो कि जब हम ने संसार को छोड़ दिया तब हमें पक्षपात से क्या प्रयोजन है ? हे राजन् ! आप निश्चय जानो कि–न तो वीतराग महावीर स्वामी पर मेरा कुछ पक्षपात है (कि महावीर स्वामी ने जो कुछ कहा है वही मानना चाहिये और दूसरे का कथन नहीं मानना चाहिये) और न कपिल आदि अन्य ऋषियों पर मेरा द्वेष है (कि कपिल आदि का वचन नहीं मानना चाहिये) किन्तु हमारा यह सिद्धान्त है कि जिस का वचन शास्त्र और युक्ति से अविरुद्ध (अप्रतिकूल अर्थात् अनुकूल) हो उसी का ग्रहण करना चाहिये[3]" ॥ १ ॥

१–जीव और अजीव आदि नौ तत्त्व हैं ॥

२–वचन के द्वारा धर्म की परीक्षा का सिद्धान्त न्यायशास्त्र से जाना जा सकता है ॥

३–यही समस्त बुद्धिमानों का भी सिद्धान्त है ॥

"धर्म की दूसरी परीक्षा शील के द्वारा की जाती है-शील[1] नाम आचार का है, वह (शील) द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है-इन में से ऊपर की शुद्धि को द्रव्यशील कहते हैं तथा पाँचों इन्द्रियों के और क्रोध आदि कषायों के जीतने को भावशील कहते हैं, अतः जिस धर्म में उक्त दोनों प्रकार का शील कहा गया हो वही माननीय है।

"धर्म की तीसरी परीक्षा तप के द्वारा की जाती है-वह (तप) मुख्यतया बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है, इस लिये जिस धर्म में दोनों प्रकार का तप कहा गया हो वही मन्तव्य है"।

"धर्म की चौथी परीक्षा दया के द्वारा की जाती है-अर्थात् जिस में एकेन्द्रिय जीव से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक जीवों पर दया करने का उपदेश हो वही धर्म माननीय है"।

"हे नरेन्द्र! इस प्रकार बुद्धिमान् जन उक्त चारों प्रकारों से परीक्षा करके धर्म का अङ्गीकार (स्वीकार) करते हैं"।

"श्री वीतराग सर्वज्ञ ने उस धर्म के दो भेद कहे हैं-साधुधर्म और श्रावकधर्म, इन में से साधुधर्म उसे कहते हैं कि-संसार का त्यागी साधु अपने सर्वविरतिरूप पञ्च महाव्रतरूपी कर्त्तव्यों का पूरा वर्त्ताव करे"।

"उन में से प्रथम महाव्रत यह है कि-सब प्रकार के अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल किसी जीव को एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक को न तो स्वयं मन वचन काय से मारे, न मरावे और न मरते को भला जाने"।

"दूसरा महाव्रत यह है कि-मन वचन और काय से न तो स्वयं झूंठ बोले, न बोलावे और न बोलते हुए को भला जाने"।

"तीसरा महाव्रत यह है कि-मन वचन और काय से न तो स्वयं चोरी करे, न करावे और न करते हुए को भला जाने"।

"चौथा महाव्रत यह है कि-मन वचन और काय से न तो स्वयं मैथुन का सेवन करे, न मैथुन का सेवन करावे और न मैथुन का सेवन करते हुए को भला जाने"।

"तथा पाँचवाँ महाव्रत यह है कि-मन वचन और काय से न तो स्वयं धर्मोपकरण के सिवाय परिग्रह को रक्खे न उक्त परिग्रह को रखावे और न रखते हुए को भला जाने"।

"इन पाँच महाव्रतों के सिवाय रात्रिभोजनविरमण नामक छठा व्रत[2] है अर्थात् मन

१-"शीलं स्वभावे सद्वृत्ते" इत्यमरः ॥

२-विचार कर देखा जावे तो इस व्रत का समावेश ऊपर लिखे व्रतों में ही हो सकता है अर्थात् यह व्रत उक्त व्रतों के अन्तर्गत ही है ॥

वचन और काय से न तो स्वयं रात्रि में भोजन करे, न रात्रि में भोजन करावे और न रात्रि में भोजन करते हुए को भला जाने"

"इन व्रतों के सिवाय साधु को उचित है कि-भूख और प्यास आदि बाईस परीषहों को जीते, सत्रह प्रकार के संयम का पालन करे तथा चरणसत्तरी और करणसत्तरी के गुणों से युक्त हो, भावितात्मा होकर श्री वीतराग की आज्ञानुसार चल कर मोक्षमार्ग का साधन करे, इस प्रकार अपने कर्तव्य में तत्पर जो साधु (मुनिराज) हैं वे ही संसार-सागर से स्वयं तरनेवाले तथा दूसरों को तारनेवाले और परम गुरु होते हैं, उन में भी उत्सर्गनय, अपवादनय, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार चल कर संयम के निर्वाह करनेवाले तथा ओघा, मुँहपत्ती, चोलपट्टा, चद्दर, पाँगरणी, लोवड़ी, दण्ड और पात्र के रखनेवाले श्वेताम्बरी शुद्ध धर्म के उपदेशक यति को गुरु समझना चाहिये, इस प्रकार के गुरुओं के भी गुणस्थान के आश्रय से, नियण्ठे के योग से और काल के प्रभाव से समयानुसार उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य, ये तीन दर्जे होते हैं"[1]।

"दूसरा श्रावकधर्म अर्थात् गृहस्थधर्म है-इस धर्म का पालन करनेवाले गृहस्थ कोई तो सम्यक्त्वी होते हैं जो कि नव तत्त्वों पर याथातथ्यरूप से श्रद्धा रखते हैं, पाप को पाप समझते हैं, पुण्य को पुण्य समझते हैं और कुगुरु कुदेव तथा कुधर्म को नहीं मानते हैं किन्तु सुगुरु सुदेव और सुधर्म को मानते हैं अर्थात् अठारह प्रकार के दूषणों से रहित श्री वीतराग देव को देव मानते हैं और पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त गुरुओं को अपना गुरु मानते हैं तथा सर्वज्ञ के कहे हुए दयामूल धर्म को मानते हैं (ये सम्यक्त्वी श्रावक के लक्षण हैं), ये पहिले दर्जे के श्रावक हैं, इन के कृष्ण वासुदेव तथा श्रेणिक राजा के समान व्रत और प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) किसी वस्तु का त्याग नहीं होता है"[2]।

"दूसरे दर्जे के श्रावक वे हैं जो कि सम्यक्त्व से युक्त बारह व्रतों का पालन करते हैं, वे बारह व्रत ये हैं-स्थूल प्राणातिपात, स्थूलमृषावाद, स्थूलअदत्तादान, स्थूलमैथुन, स्थूलपरिग्रह, दिशापरिमाण, भोगोपभोग व्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक व्रत, देशावकाशी व्रत, पौषधोपवास व्रत तथा अतिथिसंविभाग व्रत"।

"हे राजेन्द्र! इन बारह व्रतों का सारांश संक्षेप से तुम को सुनाते हैं ध्यानपूर्वक सुनो—पूर्वोक्त साधु के लिये तो बीस विश्वा दया है अर्थात् उक्त साधु लोग बीस विश्वा दया का पालन करते हैं परन्तु गृहस्थ से तो केवल सवा विश्वा ही दया का पालन करना बन सकता है, देखो"—

१-प्रमादी और अप्रमादी आदि ॥

२-यह चौथे गुणठाणे के आश्रय से पहिले दर्जे के सम्यक्त्वी को श्रावक कहा है, पांचवें गुणठाणेवाले सम्यक्त्वयुक्त अनुव्रती होते हैं ॥

"गाथा—जीवा सुहुमा थूला, संकप्पा आरंभा भवे दुविहा ॥
सवराह निरवराह, साविक्खा चेव निरविक्खा ॥ १ ॥

अर्थ—जगत् में दो प्रकार के जीव हैं-एक स्थावर और दूसरे त्रस, इन में से स्थावरों के पुनः दो भेद हैं-सूक्ष्म और बादर, उन में से जो सूक्ष्म जीव हैं उन की तो हिंसा होती ही नहीं है, क्योंकि अति सूक्ष्म जीवों के शरीर में बाह्य (बाहरी) शस्त्र (हथियार) आदि का घाव नहीं लगता है[1] परन्तु यहाँ पर सूक्ष्म शब्द स्थावर जीव पृथ्वी, पानी, अग्नि, पवन और वनस्पति रूप जो बादर पाँच स्थावर हैं उन का वाचक है, दूसरे स्थूल जीव हैं वे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय माने जाते हैं, इन दो भेदों में सर्व जीव आ जाते हैं"।

"साधु इन सब जीवों की त्रिकरण शुद्धि (मन वचन और काय की शुद्धि) से रक्षा करता है, इस लिये साधु के बीस विश्वा दया है परन्तु गृहस्थ (श्रावक) से पाँच स्थावर की दया नहीं पाली जा सकती है, क्योंकि सचित्त आहार आदि के करने से उसे अवश्य हिंसा होती है, इस लिये उस की दश विश्वा दया तो इस से दूर हो जाती है, अब रही दश विश्वा अर्थात् एक त्रस जीवों की दया रही, सो उन त्रस जीवों में भी दो भेद होते हैं-संकल्पसंहनन (सङ्कल्प अर्थात् इरादे से मारना) और आरम्भसंहनन (आरम्भ अर्थात् कार्य के द्वारा मारना), इन में से श्रावक को आरम्भहिंसा का त्याग नहीं है किन्तु सङ्कल्पहिंसा का त्याग है, हां यह ठीक है कि आरम्भहिंसा में उस के लिये भी यत्न अवश्य है परन्तु त्याग नहीं है, क्योंकि आरम्भहिंसा तो श्रावक से हुए विना नहीं रहती है, इस लिये उस शेष दश विश्वा दया में से पाँच विश्वा दया आरम्भहिंसा के कारण जाती रही, अब शेष पाँच विश्वा दया रही अर्थात् सङ्कल्प के द्वारा त्रस जीव की हिंसा का त्याग रहा, अब इस में भी दो भेद होते हैं-सापराधसंहनन और निरपराधसंहनन, इन में से निरपराधसंहनन गृहस्थ को नहीं करना चाहिये अर्थात् जो निरपराधी जीव हैं उन को नहीं मारना चाहिये, शेष सापराधसंहनन में उसे यतना रखने का अधिकार है अर्थात् अपराधी जीवों के मारने में यत्नमात्र है, इस से सिद्ध हुआ कि अपराधी जीवों की दया श्रावक से सदा और सर्वथा नहीं पाली जा सकती है क्योंकि जब चोर घर में घुस कर तथा चोरी करके चीज को लिये जाता हो उस समय उसे मारे कूटे विना कैसे काम चल सकता है, एवं कोई पुरुष जब अपनी स्त्री के साथ अनाचार करता हो तब उसे देख कर दण्ड दिये विना कैसे काम चल सकता है, इसी प्रकार जब कोई श्रावक राजा हो अथवा राजा का मन्त्री हो और जब वह (मन्त्रित्व दशा में) राजा के आदेश

१—क्योंकि शस्त्रों की धार से भी वे जीव सूक्ष्म होते हैं इस लिये शस्त्रों की धार का उन पर असर नहीं होता है ॥

(कथन) से भी युद्ध करने को जावे तब चाहे श्रावक प्रथम शस्त्र को न भी चलावे परन्तु जब शत्रु उस पर शस्त्र को चलावे अथवा उसे मारने को आवे उस समय उस श्रावक को भी शत्रु को भी मारना ही पड़ता है, इसी प्रकार जब कोई सिंहादि हिंस्र (हिंसक) जन्तु श्रावक को मारने को आवे तब उस को भी मारना ही पड़ता है, ऐसी दशा में संकल्प से भी हिंसा का त्याग नहीं हो सकता है, इस लिये उस शेष पाँच विश्वा दया में से भी आधी जाती रही, अब केवल ढाई विश्वा ही दया रह गई अर्थात् केवल यह नियम रहा कि–जो निरपराधी त्रस मात्र जीव दृष्टिगोचर हो उसे न मारूँ, अब इस में भी दो भेद होते हैं–सापेक्ष और निरपेक्ष, इन में से भी सापेक्ष निरपराधी जीव की दया श्रावक से नहीं पाली जा सकती है, क्योंकि जब श्रावक घोड़े, बैल, रथ और गाड़ी आदि सवारी पर चढ़ता है तब उस घोड़े आदि को हाँकते समय उस के चाबुक आदि मारना पड़ता है, यद्यपि उन घोड़े और बैल आदिकों ने उस का कुछ अपराध नहीं किया है क्योंकि वे

१–हमारे बहुत से आज कल के भोले श्रावक कह बैठते हैं कि श्रावक को कभी युद्ध नहीं करना चाहिये परन्तु उन का यह कथन बिलकुल बेसमझी का है क्योंकि जैनशास्त्र में बहुत से स्थानों में श्रावकों का युद्ध करना लिखा है, देखो ! श्री निरावलिका सूत्र तथा श्री भगवती सूत्र में कहा है कि–वरणाग नट नामक बारह व्रतधारी जैन क्षत्रिय ने छठ के पारणे के समय लड़ाई के बिगुल को सुन कर शस्त्र धारण कर स्वदेशसेवा के लिये युद्ध में जाकर अपना पराक्रम दिखलाया, अन्त में एक तीर के छाती में लगने से अपनी मृत्यु को समीप जान कर सन्थारा किया (यह वर्णन ऊपर कहे हुए दोनों सूत्रों में मौजूद है), देखो ! उक्त जैन क्षत्रिय ने अपना सांसारिक कर्त्तव्य भी पूरा किया और धार्मिक कर्त्तव्य को भी पूरा किया, उस के विषय में पुनः सूत्रकार साक्षी देता है कि वह उक्त व्यवहार से देवलोक को गया, इस के सिवाय उक्त सूत्रों में यह भी वर्णन है कि श्री महावीर स्वामी के भक्त और बारहव्रतधारी श्रावक चेटा राजा ने कूणिक राजा के साथ बारह युद्ध किये और उन में से एक ही युद्ध में १,८०,००,००० (एक करोड़ अस्सी लाख) मनुष्य मरे, इसी प्रकार बहुत से प्रमाण इस विषय में बतलाये जा सकते हैं, तात्पर्य यह है कि स्वदेशरक्षा के लिये युद्ध करने में जैन शास्त्र में कोई निषेध नहीं है, विचार करने से यह बात अच्छे प्रकार मालूम हो सकती है कि–स्वदेशरक्षा के लिये लड़ता हुआ व्रतधारी श्रावक हिंसा करने के हेतु से नहीं लड़ता है किन्तु हिंसकों को दूर रखने के लिये लड़ता है तथा अपराधी को शिक्षा देने (दण्ड देने) के लिये लड़ता है, इस लिये श्रावक का पहिला (प्राणातिपात) व्रत उस को इस विषय में नहीं रोक सकता है (देखो बारह व्रतों में से पहिले व्रत के आगार), पाठकगण ! हमारे इस कथन से यह न समझ लीजिये कि श्रावक को युद्ध में जाने में कोई दोष नहीं है किन्तु हमारे कथन का प्रयोजन यह है कि कारणविशेष से तथा धर्म के अनुकूल युद्ध में जाने से श्रावक के पहिले व्रत का भंग नहीं होता है, इस विषय में जैनागम की ही अनेक साक्षियां हैं, जिस का कुछ वर्णन ऊपर कर ही चुके हैं, ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से यहां पर इस विषय में विशेष नहीं लिखना चाहते हैं, क्योंकि विचारशील पाठकों के लिये प्रमाणसहित थोड़ा ही लिखना पर्याप्त (काफी) और उपयोगी होता है ॥

बेचारे तो उस को पीठ पर चढ़ाये हुए ले जा रहे हैं और वह प्रथम तो उन की पीठ पर चढ़ रहा है दूसरे यह नहीं समझता है कि इस बेचारे जीव की चलने की शक्ति है वा नहीं है, जब वे जीव धीरे २ चलते हैं वा नहीं चलते हैं तब वह अज्ञान के उदय से उन को गालियाँ देता है तथा मारता भी है, तात्पर्य यह है कि—इस दशा में यह निरपराधी जीवों को भी दुःख देता है, इसी प्रकार अपने शरीर में अथवा अपने पुत्र पुत्री नाती तथा गोत्र आदि के मस्तक वा कर्ण (कान) आदि अवयवों में अथवा अपने मुख के दाँतों में जब कीड़े पड़ जाते हैं तब उन के दूर करने के लिये उन (कीड़ों) की जगह में उसे ओषधि लगानी पड़ती है, यद्यपि यह तो निश्चय ही है कि—इन जीवों ने उस श्रावक का कुछ भी अपराध नहीं किया है, क्योंकि वे बेचारे तो अपने कर्मों के वश इस योनि में उत्पन्न हुए हैं कुछ श्रावक का बुरा करने वा उसे हानि पहुँचाने की भावना से उत्पन्न नहीं हुए हैं, परन्तु श्रावक को उन्हें मारना पड़ता है, तात्पर्य यह है कि इन की हिंसा भी श्रावक से त्यागी नहीं जा सकती है, इस लिये ढाई विश्वों में से आधी दया फिर चली गई, अब केवल सवा विश्वा दया शेष रही, बस इस सवा विश्वा दया को भी शुद्ध श्रावक ही पाल सकता है अर्थात् संकल्प से निरपराधी त्रस जीवों को विना कारण न मारूँ इस प्रतिज्ञा का यथाशक्ति पालन कर सकता है, हां यह श्रावक का अवश्य कर्त्तव्य है कि—वह जान बूझ कर ध्वंसता को न करे, मन में सदा इस भावना को रक्खे कि मुझ से किसी जीव की हिंसा न हो जावे, तात्पर्य यह है कि—इस क्रम से स्थूल प्राणातिपात व्रत का श्रावक को पालन करना चाहिये, हे नरेन्द्र ! यह व्रत मूलरूप है तथा इस के अनेक भेद और भेदान्तर हैं जो कि अन्य ग्रन्थों से जाने जा सकते हैं, इस के सिवाय बाकी के जितने व्रत हैं वे सब इसी व्रत के पुष्प फल पत्र और शाखारूप हैं" इत्यादि ।

इस प्रकार श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज के मुख से अमृत के समान उपदेश को सुन कर राजा उपलदे पँवार को प्रतिबोध हुआ और वह अपने पूर्व ग्रहण किये हुए महामिथ्यात्वरूप तथा नरकपात के हेतुभूत देव्युपासकत्वरूपी स्वमत को छोड़ कर सत्य तथा दया से युक्त धर्म पर आ ठहरा और हाथ जोड़ कर श्री आचार्य महाराज से कहने लगा कि—'हे परम गुरो ! इस में कोई सन्देह नहीं है कि—यह दयामूल धर्म इस भव और परभव दोनों में कल्याणकारी है परन्तु क्या किया जावे मैं ने अबतक अपनी अज्ञानता के उदय से व्यभिचारप्रधान असत्य मत का ग्रहण कर रक्खा था परन्तु हाँ अब मुझे उस की निःसारता तथा दयामूल धर्म की उत्तमता अच्छे प्रकार से मालूम हो गई है, अब मेरी आप से यह प्रार्थना है कि—इस नगर में उस मत के जो अध्यक्ष लोग हैं उन के साथ आप शास्त्रार्थ करें, यह तो मुझे निश्चय ही है कि शास्त्रार्थ में आप जीतेंगे क्योंकि सत्य धर्म के आगे असत्य मत कैसे ठहर सकता है ? बस इस का परिणाम यह होगा कि मेरे

कुटुम्बी और सगे सम्बंधी आदि सब लोग प्रेम के साथ इस दयामूल धर्म का ग्रहण करेंगे" राजा के इस वचन को सुन कर श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज बोले कि-"निस्सन्देह (बेशक) वे लोग आवें हम उन के साथ शास्त्रार्थ करेंगे, क्योंकि हे नरेन्द्र! संसार में ऐसा कोई मत नहीं है जो कि दयामूल अर्थात् अहिंसाप्रधान इस जिनधर्म को शास्त्रार्थ के द्वारा हटा सके, उस में भी भला व्यभिचारप्रधान यह कूण्डापन्थी मत तो कोई चीज ही नहीं है, यह मत तो अहिंसाप्रधान धर्मरूपी सूर्य के सामने खद्योतवत् (जुगुनू के समान) है, फिर भला यह मत उस धर्म के आगे कब ठहर सकता है अर्थात् कभी नहीं ठहर सकता है, निस्सन्देह उक्त मतावलम्बी आवें हम उन के साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं" गुरुजी के इस वचन को सुन कर राजा ने अपने कुटुम्बी और सगे सम्बन्धियों से कहा कि-"जाकर अपने गुरु को बुला लाओ" राजा की आज्ञा पाकर दश बीस मुख्य २ मनुष्य गये और अपने मत के नेता से कहा कि-"जैनाचार्य अपने मत को व्यभिचार प्रधान तथा बहुत ही बुरा बतलाते हैं और अहिंसामूल धर्म को सब से उत्तम बतला कर उसी का स्थापन करते हैं, इस लिये आप कृपा कर उन से शास्त्रार्थ करने के लिये शीघ्र ही चलिये" उन लोगों के इस वाक्य को सुन कर मद्यपान किये हुए तथा उस के नशे में उन्मत्त उस मत का नेता श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज के पास आया परन्तु पाठकगण जान सकते हैं कि-सूर्य के सामने अन्धकार कैसे ठहर सकता है? बस दयामूल धर्मरूपी सूर्य के सामने उस का अज्ञानतिमिर (अज्ञानरूपी अँधेरा) दूर हो गया अर्थात् वह शास्त्रार्थ में हार गया तथा परम लज्जित हुआ, सत्य है कि-उल्लू का जोर रात्रि में ही रहता है किन्तु जब सूर्योदय होता है तब वह नेत्रों से भी नहीं देख सकता है, अब क्या था-श्रीरत्नप्रभ सूरि का उपदेश और ज्ञानरूपी सूर्य का उदय ओसियाँपट्टन में हो गया और वहाँ का अज्ञानरूपी सब अन्धकार दूर हो गया अर्थात् उसी समय राजा उपलदे पँवार ने हाथ जोड़ कर सम्यक्त्वसहित श्रावक के बारह व्रतों का ग्रहण किया और

१-इन मतों के खण्डन के ग्रन्थ श्रीहेमाचार्य जी महाराज तथा श्रीहरिभद्र सूरि जी के बनाये हुए संस्कृत में अनेक हैं परन्तु केवल भाषा जानने वालों के लिये वे ग्रन्थ उपकारी नहीं हैं, अतः भाषा जानने-वालों को यदि उक्त विषय देखना हो तो श्रीचिदानन्दजी मुनिकृत स्याद्वादानुभव रत्नाकर नामक ग्रन्थ को देखना चाहिये, जिस का कुछ वर्णन हम इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में नोट में कर चुके हैं, क्योंकि यह ग्रन्थ भाषामात्र जानने वालों के लिये बहुत ही उपयोगी है ॥

२-राजा उपलदे पँवार ने दयामूल धर्म के ग्रहण करने के बाद श्रीमहावीर स्वामी का मन्दिर ओसियाँ में बनवाया था और उस की प्रतिष्ठा श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज ने ही करवाई थी, वह मन्दिर अब भी ओसियाँ में विद्यमान (मौजूद) है परन्तु बहुत समय बीत जाने के कारण वह मन्दिर चिरकाल से अत्यन्त जीर्ण हो रहा था तथा ओसियाँ में श्रावकों के घरों के न होने से पूजा आदि का भी प्रबन्ध यथोचित नहीं था, अतः फलोधी (मारवाड़) निवासी गोलेच्छागोत्रभूषण श्रीमान् श्रीफूलचन्द जी महाशय ने उस के

छत्तीस कुली राजपूतों ने तत्काल ही दयामूल धर्म का अङ्गीकार किया, उस छत्तीस कुली में से जो २ राजन्य कुल वाले थे उन सब का नाम इस प्राचीन छप्पय छन्द से जाना जा सकता है:—

छप्पय—वर्द्धमान तणें पछै वरष वावन पद लीयो।
श्री रतन प्रभ सूरि नाम तासु सत गुरु व्रत दीयो॥
भीनमाल सुँ ऊठिया जाय ओसियाँ वसाणा।
क्षत्रि हुआ शाख अठारा उठै ओसवाल कहाणा॥
इक लाख चौरासी सहस घर राजकुली प्रतिबोधिया।
श्री रतन प्रभ ओस्याँ नगर ओसवाल जिण दिन किया॥ १॥

जीर्णोद्धार में अत्यन्त प्रयास (परिश्रम) किया है अर्थात् अनुमान से पाँच सात हज़ार रुपये अपनी तरफ से लगाये हैं तथा अपने परिचित श्रीमानों से कह सुन कर अनुमान से पचास हज़ार रुपये उक्त महोदय ने अन्य भी लगवाये हैं, तात्पर्य यह है कि-उक्त महोदय के प्रशंसनीय उद्योग से उक्त कार्य में करीव साठ हज़ार रुपये लग चुके हैं तथा वहाँ का सर्व प्रवन्ध भी उक्त महोदय ने प्रशंसा के योग्य कर दिया है इस शुभ कार्य के, लिये उक्त महोदय को जितना धन्यवाद दिया जावे वह थोड़ा है क्योंकि मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाना वहुत ही पुण्यस्वरूप कार्य है, देखो! जैनशास्त्रकारों ने नवीन मन्दिर के बनवाने की अपेक्षा प्राचीन मन्दिर के जीर्णोद्धार का आठगुणा फल कहा है (यथा च-नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं भवेत्॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते॥ १॥ इस का अर्थ स्पष्ट ही है) परन्तु महाशोक का विषय है कि-वर्त्तमान काल के श्रीमान् लोग अपने नाम की प्रसिद्धि के लिये नगर में जिनालयों के होते हुए भी नवीन जिनालयों को वनवाते हैं परन्तु प्राचीन जिनालयों के उद्धार की तरफ विलकुल ध्यान नहीं देते हैं, इस का कारण केवल यही विचार में आता है कि-उन का उद्धार करवाने से उन के नाम की प्रसिद्धि नहीं होती है-वलिहारी है ऐसे विचार और वुद्धि की! हम से पुनः यह कहे विना नहीं रहा जाता है कि-धन्य है श्रीमान् श्रीफूलचन्द जी गोलेच्छा को कि जिन्हों ने व्यर्थ नामवरी की ओर तनिक भी ध्यान न देकर सच्चे सुयश तथा अखण्ड धर्म के उपार्जन के लिये ओसियाँ में श्रीमहावीर स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करा के "ओसवाल वंशोत्पत्तिस्थान" को देदीप्यमान किया।

हम श्रीमान् श्रीमानमल जी कोचर महोदय को भी इस प्रसंग में धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते हैं कि-जिन्हों ने नाज़िम तथा तहसीलदार के पद पर स्थित होने के समय वीकानेरराज्यान्तर्गत सर्दारशहर, लूणकरणसर, काल, भादरा तथा सूरतगढ़ आदि स्थानों में अत्यन्त परिश्रम कर अनेक जिनालयों का जीर्णोद्धार करवा कर सच्चे पुण्य का उपार्जन किया॥

१-वहुत से लोग ओसवाल वंश के स्थापित होने का संवत् वीया २ वाइसा २२ कहते हैं, सो इस छन्द से वीया वाइसा संवत् गलत है, क्योंकि श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ७० वर्ष पीछे ओसवालवंश की स्थापना हुई है, जिस को प्रमाणसहित लिख ही चुके हैं॥

प्रथम साख पँवार सेस सीसौद सिँगाला ।
रणथम्भा राठोड़ वंस चंवाल वचाला ॥
दैया भाटी सौनगए कछावा धनगौड़ कहीजै ।
जादम झाला जिंद लाज मरजाद लहीजै ॥
खरदरा पाट औ पेखरा लेणाँ पटा जला खरा ।
एक दिवस इता माहाजन हुवा सूर वडा भिडसाखरा ॥ २ ॥

उस समय श्रीरत्नप्रभ सूरि महाराज ने ऊपर कहे हुए राजपूतों की शाखाओं का माहाजन वंश और अठारह गोत्र स्थापित किये थे जो कि निम्नलिखित हैं:—१–तातहड़ गोत्र । २–वाफणा गोत्र । ३–कर्णाट गोत्र । ४–वलहरा गोत्र । ५–मोराक्ष गोत्र । ६–कूलहट गोत्र । ७–विरहट गोत्र । ८–श्रीश्रीमाल गोत्र । ९–श्रेष्ठिगोत्र । १०–सुचिंती गोत्र । ११–आईचणांग गोत्र । १२–भूरि (भटेवरा) गोत्र । १३–भाद्रगोत्र । १४–चीचट गोत्र । १५–कुंभट गोत्र । १६–डिंडू गोत्र । १७–कनोज गोत्र । १८–लघु-श्रेष्ठि गोत्र ॥

इस प्रकार ओसिया नगरी में माहाजन वंश और उक्त १८ गोत्रों का स्थापन कर श्री सूरि जी महाराज विहार कर गये और इस के पश्चात् दश वर्ष के पीछे पुनः लक्खी-जङ्गल नामक नगर में सूरि जी महाराज विहार करते हुए पधारे और उन्हों ने राज-पूतों के दश हजार घरों को प्रतिबोध देकर उन का माहाजन वंश और सुघड़ादि वहुत से गोत्र स्थापित किये ।

प्रिय वाचक वृन्द ! इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सब से प्रथम माहाजन वंश की स्थापना जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरि जी महाराज ने की, उस के पीछे विक्रम संवत् सोलह सौ तक वहुत से जैनाचार्यों ने राजपूत, महेश्वरी वैश्य और ब्राह्मण जातिवालों को प्रति-वोध देकर (अर्थात् ऊपर कहे हुए माहाजन वंश का विस्तार कर) उन के माहाजन वंश और अनेक गोत्रों का स्थापन किया है जिस का प्रामाणिक इतिहास अत्यन्त खोज करने पर जो कुछ हम को प्राप्त हुआ है उस को हम सब के जानने के लिये लिखते हैं ।

१– माहाजन महिमा का कवित्त ॥

महाजन जहाँ होत तहाँ हट्टी वाजार सार माहाजन जहाँ होत तहाँ नाज व्याज गल्ला है ।
महाजन जहाँ होत तहाँ लेन देन विधि विव्हार माहाजन जहाँ होत तहाँ सव ही का भल्ला है ॥
महाजन जहाँ होत तहाँ लाखन को फेर फार माहाजन जहाँ होत तहाँ हल्लन पै हल्ला है ।
माहाजन जहाँ होत तहाँ लक्ष्मी प्रकाश करे माहाजन नहिं होत तहाँ रहवो विन सल्ला है ॥ १ ॥

प्रथम संख्या—संचेती (सचंती) गोत्र ॥

विक्रम संवत् १०२६ (एक हज़ार छव्वीस) में जैनाचार्य श्री वर्धमानसूरि जी महाराज ने सोनीगरा चौहान वोहित्थ कुमार को प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और संचेती गोत्र स्थापित किया।

अजमेरनिवासी संचेतीगोत्रभूषण सेठ श्री वृद्धिचन्द्र जी ने खरतरगच्छीय उपाध्याय श्री रामचन्द्र जी गणी (जो कि लश्कर में वड़े नामी विद्वान् और पट् शास्त्र के ज्ञाता हो गये हैं) महाराज से भगवतीसूत्र सुना और तदनन्तर शेत्रुञ्जय का सङ्घ निकाला, कुछ समय के बाद शेत्रुञ्जय गिरनार और आबू आदि की यात्रा करते हुए मरुस्थलदेशस्थ (मारवाड़ देश में स्थित) फलोधी पार्श्वनाथ नामक स्थान में आये, उस समय फलवर्धी पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर के चारों ओर कांटों की वाड़ का पड़कोटा था, उक्त विद्वद्वर्य उपाध्याय जी महाराज ने धर्मोपदेश के समय यह कहा कि—"वृद्धिचन्द्र! लक्ष्मी लगा कर उस का लाभ लेने का यह स्थान है" इस वचन को सुन कर सेठ वृद्धिचन्द्रजी ने फलवर्धी पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवा दिया और उस के चारों तरफ पक्का संगीन पड़कोटा भी वनवा दिया जो कि अब भी मौजूद है ॥

१—तदा त्रयोदश सुरत्राण छत्रोद्दालक चन्द्रावती नगरी स्थापक पोरवाड़ ज्ञातीय श्री विमल मन्त्रिणा श्री अर्बुदाचले ऋषभदेवप्रासादः कारितः।

..........तत्राद्यापि विमल वसही इति प्रसिद्धिरस्ति। ततः श्रीवर्धमानसूरिः संवत् १०८८ मध्ये प्रतिष्ठां कृत्वा प्रान्तेऽनशनं गृहीत्वा स्वर्गं गतः ॥

२—इस तीर्थ पर वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष आसौज वदि नवमी और दशमी को हुआ करता है, उस समय साधारणतया (आम तौर पर) समस्त देशों के और विशेषतया (ख़ास तौर पर) राजपूताना और मारवाड़ के यात्री जन अनुमान दश पन्द्रह सहस्र इकट्ठे होते हैं, हम ने सब से प्रथम संवत् १९५८ के वैशाख मास में मुर्शिदावाद (अजीमगञ्ज) से वीकानेर को जाते समय इस स्थान की यात्रा की थी, दर्शन के समय गुरुदत्ताम्नाय से अनुमान पन्द्रह मिनट तक हम ने ध्यान किया था, उस समय इस तीर्थ का जो चमत्कार हम ने देखा तथा उस से हम को जो आनन्द प्राप्त हुआ उस का हम वर्णन नहीं कर सकते हैं, उस के पश्चात् चित्त में यह अभिलाषा वरावर वनी रही कि किसी समय वार्षिकोत्सव पर अवश्य चलना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से एक पन्थ दो काज होंगे परन्तु कार्यवश वह अभिलाषा वहुत समय के पश्चात् पूर्ण हुई अर्थात् संवत् १९६३ में वार्षिकोत्सव पर हमारा वहां गमन हुआ, वहाँ जाकर यद्यपि हमें अनेक प्रकार के आनन्द प्राप्त हुए परन्तु उन में से कुछ आनन्दों का तो वर्णन किये विना लेखनी नहीं मानती है अतः वर्णन करना ही पड़ता है, प्रथम तो वहाँ जोधपुरनिवासी श्री कानमल जी पटवा के मुख से नवपदपूजा का गाना सुन कर हमें अतीव आनन्द प्राप्त हुआ, दूसरे उसी कार्य में पूजा के समय जोधपुरनिवासी विद्वद्वर्य उपाध्याय श्री जुहारमल जी गणी वीच २ में अनेक जगहों पर पूजा का अर्थ कर रहे थे (जो कि गुरुगमशैली से अर्थ की धारणा करने की वांछा रखनेवाले तथा भव्य जीवों के सुनने

द्वितीय संख्या–वरढिया (वरदिया) गोत्र ॥

धारा नगरी में वहाँ के राजा भोज के परलोक हो जाने के बाद उक्त नगरी का राज्य जिस समय तँवरों को उन की बहादुरी के कारण प्राप्त हुआ उस समय भोजवंशज (भोज की औलाद वाले) लोग इस प्रकार थे:—

योग्य था) उसे भी सुन कर हमें अकथनीय आनन्द प्राप्त हुआ, तीसरे–रात्रि के समय देवदर्शन करके श्रीमान् श्री फूलचन्द जी गोलच्छा के साथ "श्री फलोधी तीर्थोन्नति सभा" के उत्सव में गये, उस समय जो आनन्द हम को प्राप्त हुआ वह अद्यापि (अब भी) नहीं भूला जाता है, उस समय सभा में जयपुरनिवासी श्री जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस के जनरल सेक्रेटरी श्री गुलाबचन्द जी ढड्डा एम. ए. विद्योन्नति के विषय में अपना भाषणामृत वर्षा कर लोगों के हृदयांबुजों (हृदयकमलों) को विकसित कर रहे थे, हम ने पहिले पहिल उक्त महाशय का भाषण यहीं सुना था, दशमी के दिन प्रातःकाल हमारी उक्त महोदय (श्रीमान् श्री गुलाबचन्द जी ढड्डा) से मुलाकात हुई और उन के साथ अनेक विषयों में बहुत देर तक वार्त्तालाप होता रहा, उन की गम्भीरता और सौजन्य को देख कर हमें अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ, अन्त में उक्त महाशय ने हम से कहा कि–"आज रात्रि को जीर्णपुस्तकोद्धार आदि विषयों में भाषण होंगे, अतः आप भी किसी विषय में अवश्य भाषण करें" अस्तु हम ने भी उक्त महोदय के अनुरोध से जीर्णपुस्तकोद्धार विषय में भाषण करना स्वीकार कर लिया, निदान रात्रि में करीब नौ बजे पर उक्त विषय में हम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मेज़ के समीप खड़े हो कर उक्त सभा में वर्त्तमान प्रचलित रीति आदि का उद्बोध कर भाषण किया, दूसरे दिन जब उक्त महोदय से हमारी बातचीत हुई उस समय उन्हों ने हम से कहा कि–"यदि आप कान्फ्रेंस की तरफ से राजपूताने में उपदेश करें तो उम्मेद है कि बहुत सी बातों का सुधार हो अर्थात् राजपूताने के लोग भी कुछ सचेत होकर कर्त्तव्य में तत्पर हों" इस के उत्तर में हम ने कहा कि–"ऐसे उत्तम कार्यों के करने में तो हम स्वयं तत्पर रहते हैं अर्थात् यथाशक्य कुछ न कुछ उपदेश करते ही हैं, क्योंकि हम लोगों का कर्त्तव्य ही यही है परन्तु सभा की तरफ से अभी इस कार्य के करने में हमें लाचारी है, क्योंकि इस में कई एक कारण हैं–प्रथम तो–हमारा शरीर कुछ अस्वस्थ रहता है, दूसरे–वर्त्तमान में ओसवालवंशोत्पत्ति के इतिहास के लिखने में समस्त कालयापन होता है, इत्यादि कई कारणों से इस शुभ कार्य की अस्वीकृति की क्षमा ही प्रदान करावें" इत्यादि बातें होती रहीं, इस के पश्चात् हम एकादशी को बीकानेर चले गये, वहां पहुँचने के बाद थोड़े ही दिनों में अजमेर से श्री जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस की तरफ से पुनः एक पत्र हमें प्राप्त हुआ, जिस की नकल ज्यों की त्यों निम्नलिखित है:—

॥ श्री जैन (श्वेताम्बर) कोन्फरन्स—

अजमेर—

ता० १५ अक्टूबर''''''१९०६.

॥ गुरां जी महाराज श्री १००८ श्री श्रीपालचंद्र जी की सेवा में—धनराज कांस्टिया–लि–वंदना मालुम होवे–आप को सुखसाता को पत्र नहीं सो दिरावें–और फलोधी में आप को भाषण वडो मनोरंजन हुवो राजपूताना मारवाड़ में आप जैसे गुणवान पुरुष विद्यमान हैं जिस्की हम को बड़ी खुशी है—आप देशाटन करके जगह ब जगह धर्म की बहुत उन्नति की—अठी की तरफ भी आप जैसे महात्माओं को

१–निहंगपाल । २–तालणपाल ३–तेजपाल । ४–तिहुअणपाल (त्रिभुवनपाल) । ५–अनंगपाल । ६–पोतपाल । ७–गोपाल । ८–लक्ष्मणपाल । ९–मदनपाल । १०–कुमारपाल । ११–कीर्तिपाल । १२–जयतपाल, इत्यादि ।

वे सब राजकुमार उक्त नगरी को छोड़ कर जब से मथुरा में आ रहे तब से वे माथुर कहलाये, कुछ वर्षों के बीतने के बाद गोपाल और लक्ष्मणपाल, ये दोनों भाई केकेई ग्राम में जा बसे, संवत् १०३७ (एक हजार सैंतीस) में जैनाचार्य श्री वर्द्धमानसूरि जी महाराज मथुरा की यात्रा करके विहार करते हुए उक्त (केकेई) ग्राम में पधारे, उस समय लक्ष्मणपाल ने आचार्य महाराज की बहुत ही भक्ति की और उन के धर्मोपदेश को सुनकर दयामूल धर्म का अङ्गीकार किया, एक दिन व्याख्यान में शेत्रुञ्जय तीर्थ का माहात्म्य आया उस को सुन कर लक्ष्मणपाल के मन में संघ निकाल कर शेत्रुञ्जय की यात्रा करने की इच्छा हुई और थोड़े ही दिनों में संघ निकाल कर उन्होंने उक्त तीर्थयात्रा की तथा कई आवश्यक स्थानों में लाखों रुपये धर्मकार्य में लगाये, जैनाचार्य श्री वर्द्धमानसूरि जी महाराज ने लक्ष्मणपाल के सद्भाव को देख उन्हें संघपति का पद दिया, यात्रा करके जब केकेई ग्राम में वापिस आ गये तब एक दिन लक्ष्मणपाल ने गुरु महाराज से यह प्रार्थना की कि–"हे परम गुरो ! धर्म की तथा आप की सत्कृपा (बदौलत) से मुझे सब प्रकार का आनन्द है परन्तु मेरे कोई सन्तति नहीं है, इस लिये मेरा हृदय सदा शून्यवत् रहता है" इस बात को सुन कर गुरुजी ने स्वरोदय (योगविद्या) के ज्ञानबल से कहा कि–"तुम इस बात की चिन्ता मत करो, तुम्हारे तीन पुत्र होंगे और उन से तुम्हारे कुल की वृद्धि होगी" कुछ दिनों के बाद आचार्य महाराज अन्यत्र विहार कर गये

विचरवो बहुत जरूरी है—बडा २ शहरा में तथा प्रतिष्ठा होवे तथा मेला होवे जठे–कानफ्रेन्स सूं आप को जावणों हो सके या किस तरह जिस्का समाचार लिखावें–क्योंकि उपदेशक गुजराती आये जिन्की जबान इस तरफ के लोगों के कम समझ में आती है–आप की जबान में इच्छी तरह समझ सकते हैं–और आप इस तरफ के देश काल से वाकिफकार हैं–सो आप का फिरना हो सके तो पीछा कृपा कर जबाब लिखें–और खर्च क्या महावार होगा–और आप की शरीर की तंदुरुस्ती तो ठीक होगी समाचार लिखावें–बीकानेर में भी जैनक्लब कायम हुवा है–सारा हालात वहां का शिवबख्श जी साहब कोचर आप को वाकिफ करेंगे–बीकानेर में भी बहुत सी वातों का सुधारा की जरूरत है सो वणें तो कोशीश करसी–कृपादृष्टी है वैसी बनी रहै—

आप का सेवक,
धनराज कांसटिया–
–सुपर वाईझर–

यद्यपि हमारे पास उक्त पत्र आया तथापि पूर्वोक्त कारणों से हम उक्त कार्य को स्वीकार नहीं कर सके ॥

१–एक स्थान में श्रीवर्द्धमान सूरि के बदले में श्रीनेमचन्द्र सूरि का नाम देखा गया है ॥

और उन के कथनानुकूल लक्ष्मणपाल के क्रम से (एक के पीछे एक) तीन लड़के उत्पन्न हुए, जिन का नाम लक्ष्मणपाल ने यशोधर, नारायण और महीचन्द रक्खा, जब ये तीनों पुत्र यौवनावस्था को प्राप्त हुए तब लक्ष्मणपाल ने इन सब का विवाह कर दिया, उन में से नारायण की स्त्री के जब गर्भस्थिति हुई तब प्रथम जापा (प्रसूत) कराने के लिये नारायण की स्त्री को उस के पीहरवाले ले गये, वहाँ जाने के बाद यथासमय उस के एक जोड़ा उत्पन्न हुआ, जिस में एक तो लड़की थी और दूसरा सर्पाकृति (साँप की शकल-वाला) लड़का उत्पन्न हुआ था, कुछ महीनों के बाद जब नारायण की स्त्री पीहर से सुस-राल में आई तब उस जोड़े को देखकर लक्ष्मणपाल आदि सब लोग अत्यन्त चकित हुए तथा लक्ष्मणपाल ने अनेक लोगों से उस सर्पाकृति बालक के उत्पन्न होने का कारण पूछा परन्तु किसी ने ठीक २ उस का उत्तर नहीं दिया (अर्थात् किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ कहा), इस लिये लक्ष्मणपाल के मन में किसी के कहने का ठीक तौर से विश्वास नहीं हुआ, निदान वह बात उस समय यों ही रही, अब सर्पाकृति बालक का हाल सुनिये कि–वह शीत ऋतु के कारण सदा चूल्हे के पास आकर सोने लगा, एक दिन भवितव्यता के वश क्या हुआ कि वह सर्पाकृति बालक तो चूल्हे की राख में सो रहा था और उस की बहिन ने चार घड़ी के तड़के उठ कर उसी चूल्हे में अग्नि जला दी, उस अग्नि से जल-कर वह सर्पाकृति बालक मर गया और मर कर व्यन्तर हुआ, तब वह व्यन्तर नाग के रूप में वहाँ आकर अपनी बहिन को बहुत धिक्कारने लगा तथा कहने लगा कि–"जब तक मैं इस व्यन्तरपन में रहूंगा तब तक लक्ष्मणपाल के वंश में लड़कियां कभी सुखी नहीं रहेंगी अर्थात् शरीर में कुछ न कुछ तकलीफ सदा ही बनी रहा करेगी" इस प्रसंग को सुनकर वहाँ बहुत से लोग एकत्रित (जमा) हो गये और परस्पर अनेक प्रकार की बातें करने लगे, थोड़ी देर के बाद उन में से एक मनुष्य ने जिस की कमर में दर्द हो गया था इस व्यन्तर से कहा कि–"यदि तू देवता है तो मेरी कमर के दर्द को दूर कर दे" तब उस नागरूप व्यन्तर ने उस मनुष्य से कहा कि–"इस लक्ष्मणपाल के घर की दीवाल (भीत) का तू स्पर्श कर, तेरी पीड़ा चली जावेगी" निदान उस रोगी ने लक्ष्मण-पाल के मकान की दीवाल का स्पर्श किया और दीवाल का स्पर्श करते ही उस की पीड़ा चली गई, इस प्रत्यक्ष चमत्कार को देख कर लक्ष्मणपाल ने विचारा कि यह नागरूप में कब तक रहेगा अर्थात् यह तो वास्तव में व्यन्तर है, अभी अदृश्य हो जावेगा, इस लिये इस से वह वचन ले लेना चाहिये कि जिस से लोगों का उपकार हो, यह विचार कर लक्ष्मणपाल ने उस नागरूप व्यन्तर से कहा कि–"हे नागदेव! हमारी सन्तति (औलाद) को कुछ वर देओ कि जिस से तुम्हारी कीर्त्ति इस संसार में बनी रहे" लक्ष्मणपाल की बात को सुन कर नागदेव ने उन से कहा कि–"वर दिया" "वह वर यही है कि–तुम्हारी

सन्तति (औलाद) का तथा तुम्हारे मकान की दीवाल का जो स्पर्श करेगा उस की कमर में चिणक से उत्पन्न हुई पीड़ा दूर हो जावेगी और तुम्हारे गोत्र में सर्प का उपद्रव नहीं होगा" बस तब ही से 'वरदिया[1], नामक गोत्र विख्यात हुआ, उस समय उस की बहिन को अपने भाई के मारने के कारण अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ और उस ने शोकवश अपने प्राणों का त्याग कर दिया और वह मरकर व्यन्तरी हुई तथा उस ने प्रत्यक्ष होकर अपना नाम भूवाल प्रकट किया तथा अपने गोत्रवालों से अपनी पूजा कराने की स्वीकृति ले ली; तब से यह वरढियों की कुलदेवी कहलाने लगी, इस गोत्र में यह बात अब तक भी सुनने में आती है कि नाग व्यन्तर ने वर दिया ॥

तीसरी संख्या—कुकुड़ चोपड़ा. गणधर चोपड़ा गोत्र ॥

खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिन अभयदेवसूरि जी महाराज के शिष्य तथा वाचनाचार्यपद में स्थित श्री जिनवल्लभसूरि जी महाराज विक्रम संवत् ११५२ (एक हजार एक सौ बावन) में विचरते हुए मण्डोर नामक स्थान में पधारे, उस समय मण्डोर का राजा नानुदे पड़िहार था, जिस का पुत्र धवलचन्द गलित कुष्ठ से महादुःखी हो रहा था, उक्त सूरि जी महाराज का आगमन सुन कर राजा ने उन से प्रार्थना की कि—"हे परम गुरो! हमारे कुमार के इस कुष्ठ रोग को अच्छा करो" राजा की इस प्रार्थना को सुन कर उक्त आचार्य महाराज ने कुकड़ी गाय का घी राजा से मँगवाया और उस को मन्त्रित कर राजकुमार के शरीर पर चुपड़ाया, तीन दिन तक शरीर पर घी के चुपड़े जाने से राजकुमार का शरीर कंचन के समान विशुद्ध हो गया, तब गुरु जी महाराज के इस प्रभाव को देखकर सब कुटुम्ब के सहित राजा नानुदे पड़िहार ने दयामूल धर्म का ग्रहण किया तथा गुरुजी महाराज ने उस का महाजन वंश और कुकुड़ चोपड़ा गोत्र स्थापित किया, राजा नानुदे पड़िहार का मन्त्री था उस ने भी प्रतिबोध पाकर दयामूल जैनधर्म का ग्रहण किया और गुरु जी महाराज ने उस का माहाजन वंश और गणधर चोपड़ा गोत्र स्थापित किया।

राजकुमार धवलचन्दजी से पाँचवीं पीढ़ी में दीपचन्द जी हुए, जिन का विवाह ओसवाल महाजन की पुत्री से हुआ था, यहाँ तक (उन के समय तक) राजपूतों से सम्बंध होता था, दीपचन्द जी से ग्यारहवीं पीढ़ी में सोनपाल जी हुए, जिन्हों ने संघ निकाल कर शेत्रुञ्जय की यात्रा की, सोनपाल जी के पोता ठाकरसी जी बड़े बुद्धिमान् तथा चतुर हुए, जिन को राव चुंडे जी राठौर ने अपना कोठार सुपुर्द किया था, उसी

१—"वर दिया" गोत्र का अपभ्रंश "वरढ़िया" हो गया है ॥

२—इस गोत्र वाले लोग बालोतरा तथा पञ्चभद्रा आदि मारवाड़ के स्थानों में हैं ॥

दिन से प्रजा ठाकरसी जी को कोठारी जी के नाम से पुकारने लगी, इन्हीं से कोठारी नख हुआ अर्थात् ठाकरसी जी की औलादवाले लोग कोठारी कहलाने लगे, कुकुड़ चोपड़ा गोत्र की ये (नीचे लिखी हुई) चार शाखायें हुई:—

१–कोठारी। २–बुबकिया। ३–धूपिया। ४–जोगिया ॥

इन में से बुबकिया आदि तीन शाखा वाले लोगों के कुटुम्ब में बजने वाले गहनों के पहिरने की खास मनाई की गई है परन्तु यह मनाई क्यों की गई है अर्थात् इस (मनाई) का क्या कारण है इस बात का ठीक २ पता नहीं लगा है ॥

चौथी संख्या–धाड़ीवाल गोत्र ॥

गुजरात देश में डींडो जी नामक एक खीची राजपूत धाड़ा मारता था, उस को विक्रम संवत् ११५५ (एक हजार एक सौ पचपन) में वाचनाचार्य पद पर स्थित श्री जिन वल्लभसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और धाड़ीवाल गोत्र स्थापित किया, डींडों जी की सातवीं पीढी में शांवल जी हुए, जिन्हों ने राज के कोठार का काम किया था, इस लिये उन की औलादवाले लोग कोठारी कहलाने लगे, सेढो जी धाड़ीवाल जोधपुर की रियासत के तिँवरी गांव में आकर बसे थे, उन के शिर पर टाँट थी इस लिये गाँववाले लोग सेढो जी को टाँटिया २ कह कर पुकारने लगे, अत एव उन की औलादवाले लोग भी टाँटिया कहलाने लगे ॥

पाँचवीं संख्या–लालाणी, बाँठिया, बिरमेचा, हरखावत, साह और मल्लावत गोत्र ॥

विक्रम संवत् ११६७ (एक हजार एक सौ सड़सठ) में पँवार राजपूत लालसिंह को खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनवल्लभसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और लालाणी गोत्र स्थापित किया, लालसिंह के सात पुत्र थे जिन में से बड़ा पुत्र बहुत बंठ अर्थात् जोरावर था, उसी से बाँठिया गोत्र कहलाया, इसी प्रकार दूसरे चार पुत्रों के नाम से उन के भी परिवार वाले लोग बिरमेचा, हरखावत, साह और मल्लावत कहलाने लगे ॥

सूचना—युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी (जो कि बड़े दादा जी के नाम से जैनसंघ में प्रसिद्ध हैं) महाराज ने विक्रम संवत् ११७० (एक हजार एक सौ सत्तर) से लेकर विक्रम संवत् १२१० (एक हजार दो सौ दश) तक में राजपूत, महेश्वरी वैश्य और ब्राह्मण वर्णवालों को प्रतिबोध देकर सवा लाख श्रावक बनाये थे, इस के

१–इन का जन्म विक्रम संवत् ११३२ में, दीक्षा ११४१ में, आचार्यपद ११६९ में और देवलोक १२११ में आषाढ़ सुदि ११ के दिन अजमेर नगर में हुआ ॥

प्रमाणरूप बहुत से प्राचीन लेख देखने में आये हैं परन्तु एक प्राचीन गुरुदेव के स्तोत्र[1] में यह भी लिखा है कि–प्रतिबोध देकर एक लाख तीस हजार श्रावक बनाये गये थे, उक्त श्रावकसंघ में यद्यपि ऊपर लिखे हुए तीनों ही वर्ण थे परन्तु उन में राजपूत विशेष थे, उन को अनेक स्थलों में प्रतिबोध देकर उन का जो माहाजन वंश और अनेक गोत्र स्थापित किये गये थे उन में से जिन २ गोत्रों का इतिहास प्राप्त हुआ उन को अब लिखते हैं ॥

छठी संख्या–चोरड़िया, भटनेरा, चौधरी, सावणसुखा, गोलेच्छा, बुच्चा, पारख और गद्दहिया गोत्र ॥

चन्देरी के राजा खरहत्थसिंह रांठोर ने विक्रम संवत् ११७० (एक हजार एक सौ सत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज के उपदेश से दयामूल जैनधर्म का ग्रहण किया था, उक्त राजा (खरहत्थ सिंह) के चार पुत्र थे—१–अम्बदेव। २–नींबदेव। ३–भेंसासाह और ४–आसू। इन में से प्रथम अम्बदेव की औलादवाले लोग चोर बेरड़िया (चोरड़िया) कहलाये।

चोर बेरड़ियों में से नीचे लिखे अनुसार पुनः शाखायें हुईं:—

१–तेजाणी। २–धन्नाणी। ३–पोपाणी। ४–मोलाणी। ५–गल्लाणी। ६–देवसयाणी। ७–नाणी। ८–श्रवणी। ९–सद्दाणी। १०–कक्कड़। ११–मक्कड़। १२–भक्कड़ १३–लुटंकण। १४–संसारा। १५–कोबेरा। १६–भटारकिया। १७–पीतलिया।

दूसरे नींबदेव की औलादवाले लोग भटनेरा चौधरी कहलाये।

तीसरे भेंसासाह के पाँच स्त्रियाँ थीं उन पाँचों के पाँच पुत्र हुए थे—

१–कुँवर जी। २–गेलो जी। ३–बुच्चो जी। ४–पासू जी और ५–सेलहत्थ जी।

इन में से प्रथम कुँवर जी की औलादवाले लोग साहसुखा (सावणसुखा) कहलाये।

१–वड वड्डे गामें ठाम ठामें भूपती प्रतिबोधिया ॥ इग लक्खि ऊपर सहस तीसा कलू में श्रावक किया ॥ परचा देखाड्या रोग झाड्या लोक पायल संतए ॥ जिणदत्त सूरि सूरीस सद गुरु सेवतां सुख सन्तए ॥२१॥

२–कनोज में आसथान जी राठौर ने युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज से कहा था कि–"राठौर आज से लेकर जैनधर्म को न पालनेवाले भी खरतरगच्छवालों को अपना गुरु मानेंगे" आसथान जी के ऊपर उक्त महाराज ने जब उपकार किया था उस समय के प्राचीन दोहे बहुत से हैं–जो कि उपाध्याय श्री मोहन लाल जी गणी के द्वारा हम को प्राप्त हुए हैं, जिन में से इस एक दोहे को तो प्रायः बहुत से लोग जानते भी हैं—

दोहा—गुरु खरतर प्रोहित सेवड़, रोहिड़ियो वारट्ठ ॥
घर को मंगत दे दड़ो, राठोड़ां कुल भट्ठ ॥ १ ॥

दूसरे गेलो जी की औलादवाले लोग गोलवच्छा (गोलेच्छा) कहलाये।

तीसरे वुचो जी की औलादवाले लोग वुचा कहलाये।

चौथे पासू जी की औलादवाले लोग पारख कहलाये।

पारख कहलाने का हेतु यह है कि–आहड़ नगर में राजा चन्द्रसेन की सभा में किसी समय अन्य देश का निवासी एक जौहरी हीरा वेंचने के लिये लाया और राजा को उस हीरे को दिखलाया, राजा ने उसे देख कर अपने नगर के जौहरियों को परीक्षा के लिये वुलवा कर उस हीरे को दिखलाया, उस हीरे को देख कर नगर के सव जौहरियों ने उस हीरे की वड़ी तारीफ की, दैवयोग से उसी समय किसी कारण से पासू जी का भी राजसभा में आगमन हुआ, राजा चन्द्रसेन ने उस हीरे को पासू जी को दिखलाया और पूछा कि–"यह हीरा कैसा है ?" पासू जी उस हीरे को अच्छी तरह देख कर वोले कि–"पृथ्वीनाथ ! यदि इस हीरे में एक अवगुण न होता तो यह हीरा वास्तव में प्रशंसनीय (तारीफ के लायक) था, परन्तु इस में एक अवगुण है इस लिये आप के पास रहने योग्य यह हीरा नहीं है" राजा ने उन से पूछा कि–"इस में क्या अवगुण है" पासू जी ने कहा कि–"पृथ्वीनाथ! यह हीरा जिस के पास रहता है उस के स्त्री नहीं ठहरती है, यदि मेरी वात में आप को कुछ सन्देह हो तो इस जौहरी से आप दर्यात्फ कर लें" राजा ने उस जौहरी से पूछा कि–"पासू जी जो कहते हैं क्या वह वात ठीक है ?" जौहरी ने अत्यन्त खुश होकर कहा कि–"पृथ्वीनाथ ! निस्सन्देह पासू जी आप के नगर में एक नामी जौहरी हैं, मैं वहुत दूर २ तक घूमा हूँ परन्तु इन के समान कोई जौहरी मेरे देखने में नहीं आया है, इन का कहना विलकुल सत्य है क्योंकि जव यह हीरा मेरे पास आया था उस के थोड़े ही दिनों के वाद मेरी स्त्री गुजर गई थी, उस के मरने के वाद मैं ने दूसरा विवाह किया परन्तु वह स्त्री भी नहीं रही, अव मेरा विचार है कि–मैं अपना तीसरा विवाह इस हीरे को निकाल कर (वेंच कर) करूंगा" जौहरी के सत्यभाषण पर राजा वहुत खुश हुआ और उस को ईनाम देकर विदा किया, उस के जाने के वाद राजा चन्द्रसेन ने भरी सभा में पासू जी से कहा कि–"वाह! पारख जी वाह ! आप ने खूव ही परीक्षा की" वस उसी दिन से राजा पासू जी को पारख जी के नाम से पुकारने लगा, फिर क्या था यथा राजा तथा प्रजा अर्थात् नगरवासी भी उन्हें पारख जी कह कर पुकारने लगे।

पाँचवें सेलहत्थ जीकी औलादवाले लोग गदहिया कहलाये ॥

१–यह भी सुनने में आया है कि गद्दा साह (भैंसा साह के भाई) की औलाद वाले लोग गदहिया कहलाये ॥

भैंसा साह ने गुजरात देश में गुजरातियों की जो लाँग छुड़वाई उस का वर्णन ॥

भैंसा साह कोट्यधिपति तथा बड़ा नामी साहूकार था, एक समय भैंसा साह की मातुःश्री लक्ष्मीबाई २५ घोड़ों, ५ रथों, १० गाड़ियों और ५ ऊँटों को साथ लेकर सिद्धगिरि की यात्रा को रवाना हुईं, परन्तु दैवयोग से वे द्रव्य की सन्दूक (पेटी) को साथ में लेना भूल गईं, जब पाटन नगर में (जो कि रास्ते में था) मुकाम किया तब वहाँ द्रव्य की सन्दूक की याद आई और उस के लिये अनेक विचार करने पड़े, आखिरकार लक्ष्मीबाई ने अपने ठाकुर (राजपूत) को भेज कर पाटन नगर के चार बड़े २ व्यवहारियों को बुलवाया, उन के बुलाने से गर्धभसाह आदि चार सेठ आये, तब लक्ष्मीबाई ने उन से द्रव्य (रुपये) उधार देने के लिये कहा, लक्ष्मीबाई के कथन को सुन कर गर्धभसाह ने पूछा कि–"तुम कौन हो और कहाँ की रहने वाली हो" इस के उत्तर में लक्ष्मीबाई ने कहा कि "मैं भैंसे की माता हूँ" लक्ष्मीबाई की इस बात को सुन कर गर्धभसाह ने उन डोकरी लक्ष्मीबाई से हँसी की अर्थात् यह कहा कि–"भैंसा तो हमारे यहाँ पानी की पखाल लाता है" इस प्रकार लक्ष्मीबाई का उपहास (दिल्लगी) करके वे गर्धभसाह आदि चारों व्यापारी चले गये, इधर लक्ष्मीबाई ने एक पत्र में उक्त सब हाल लिखकर एक ऊँटवाले अपने सवार को उस पत्र को देकर अपने पुत्र के पास भेजा, सवार बहुत ही शीघ्र गया और उस पत्र को अपने मालिक भैंसा साह को दिया, भैंसा साह उस पत्र को पढ़ कर उसी समय बहुत सा द्रव्य अपने साथ में लेकर रवाने हुआ और पाटन नगर में पहुँच कर इधर तो स्वयं गर्धभसाह आदि उस नगर के व्यापारियों से तेल लेना शुरू किया और उधर जगह २ पर अपने गुमाश्तों को भेज कर सब गुजरात का तेल खरीद करवा लिया तथा तेल की नदी चलवा दी, आखिरकार गर्धभसाह आदि माल को हाजिर नहीं कर सके अर्थात् वादे पर तेल नहीं दे सके और अत्यन्त लज्जित होकर सब व्यापारियों को इकट्ठा कर लक्ष्मीबाई के पास जा कर उन के पैरों पर गिर कर बोले कि "हे माता! हमारी प्रतिष्ठा अब आप के हाथ में है" लक्ष्मीबाई अति कृपालु थीं अतः उन्हों ने अपने पुत्र भैंसे साह को समझा दिया और उन्हें क्षमा करने के लिये कह दिया, माता के कथन को भैंसे साह ने स्वीकार कर लिया और अपने गुमाश्तों को आज्ञा दी कि यादगार के लिये इन सब की एक लाँग खुलवा ली जावे और इन्हें माफी दी जावे, निदान ऐसा ही हुआ कि–भैंसा साह के गुमाश्तों ने स्मरण के लिये उन सब गुज-

१–इन का निवासस्थान माँडवगढ़ था, जिस के मकानों का खँडहर अब तक विद्यमान है, कहते हैं कि–इन के रहने के मकान में कस्तूरी और अम्बर आदि सुगन्धित द्रव्य पोते जाते थे, इन के पास लक्ष्मी इतनी थी कि–जिस का पारावार (ओर छोर) नहीं था, भैंसा साह और गदा साह नामक ये दो भाई थे ॥

रातियों की धोती की एक लाँग खुलवा कर सब को माफी दी और वे सब अपने २ घर गये, वहां पर भैंसे साह को रुपारेलें विरुद मिला ॥

सातवीं संख्या–भण्डशाली, भूरा गोत्र ॥

श्री लोद्रवापुर पट्टन (जो कि जैसलमेर से पाँच कोस पर है) के भाटी राजपूत सागर रावल के श्रीधर और राजधर नामक दो राजकुमार थे, उन दोनों को विक्रम संवत् ११७३ (एक हजार एक सौ तेहत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उन का माहाजन वंश और भण्डशाली गोत्र स्थापित किया, भण्डशाली गोत्र में थिरु साह नामक एक बड़ा भाग्यशाली पुरुष हो गया है, इस के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि–यह घी का रोजगार करता था, किसी समय इस ने रुपासियाँ गाँव की रहने वाली घी बेचने के लिये आई हुई एक स्त्री से चित्रावेल की एँडुरी (इंढोणी) किसी चतुराई से ले ली थी, उसी एँडुरी के प्रभाव से थिरु साह के पास बहुत सा द्रव्य हो गया था, इस के पश्चात् थिरु साह ने लोद्रवपुर पट्टन में सहस्रफण पार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया, फिर ज्ञानभण्डार स्थापित किया, इत्यादि, तात्पर्य यह है कि उस ने सात क्षेत्रों में बहुत सा द्रव्य खर्च कियाँ, भण्डशाली गोत्रवाले लोग लोद्रवपुर पट्टन से उठ कर और २ देशों में जा बसे, ये ही भण्डशाली जैसलमेर में काछवा कहलाते हैं।

एक भण्डशाली जोधपुर में आकर रहा और राज्य की तरफ से उसे काम मिला अतः वह राज्य का काम करने लगा, इस के बाद उस की औलादवाले लोग महाजनी पेशा

१–रुपारेल नामक एक जानवर होता है वह जिस के पास रहता है उस के पास अखूट (अविचल) द्रव्य होता है ॥

२–भण्डशाल में वासक्षेप दिया था इस लिये इन का भण्डशाली गोत्र स्थापित किया, इसी नाम का अपभ्रंश पीछे से भणशाली (भण्डाशाली) हो गया है ॥

३–यह स्त्री जाति की जाटिनी थी और यह घी बेंचने के लिये रुपासियाँ गाँव से लोद्रवापुर पट्टन को चली थी, इस ने रास्ते में जंगल में से एक हरी लता (वेल) को उखाड़ कर उस की एँडुरी बनाई थी और उस पर घी की हाँड़ी रख कर यह थिरु साह की दूकान पर आई; थिरु साह ने इस का घी खरीद किया और हाँड़ी में से घी निकालने लगा, जब घी निकालते २ बहुत देर हो गई और उस हाँड़ी में से घी निकलता ही गया तब थिरु साह को सन्देह हुआ और उस ने विचारा कि–इस हाँड़ी में इतना घी कैसे निकलता जाता है, जब उस ने एँडुरी पर से हाँड़ी को उठा कर देखा तो उस में घी नहीं दीखा, बस वह समझ गया कि यह एँडुरी का ही प्रभाव है, यह समझ कर उस ने मन में विचारा कि–इस एँडुरी को किसी प्रकार लेना चाहिये, यह विचार कर थिरु साह ने कौड़ियाँ लगी हुई एक सुन्दर एँडुरी उस जाटिनी को दी और उस चित्रावेल की एँडुरी को उठा कर अपनी दूकान में रख लिया ॥

४–इस ने एक जिनालय आगरे में भी बनवाया था जो कि अब तक मौजूद है ॥

करने लगे, जोधपुर नगर में कुल ओसवालों के चौधरी ये ही हैं, अर्थात् न्यात (जाति) सम्बन्धी काम इन की सम्मति के विना नहीं होता है, ये लड़के के शिर पर नौ वर्ष तक चोटी को नहीं रखते हैं, पीछे रखते हैं, इन में जो चोरी दासोत कहलाते हैं वे ब्राह्मणों को और हिजड़ों को व्याह में नहीं बुलाते हैं, जोधपुर में भोजकों (सेवकों) से विवाह करवाते हैं।

एक भण्डशाली बीकानेर की रियासत में देशनोक गाँव में जा बसा था वह देखने में अत्यन्त भूरा था, इस लिये गाँववाले सब लोग उस को भूरा २ कह कर पुकारने लगे, इस लिये उस की औलादवाले लोग भी भूरा कहलाने लगे।

ये सब (ऊपर कहे हुए) राय भण्डशाली कहलाते हैं, किन्तु जो खड भणशाली कहलाते हैं वे जाति के सोलंखी राजपूत थे, इस के सिवाय खडभणशालियों का विशेष वर्णन नहीं प्राप्त हुआ ॥

आठवीं संख्या—आयरिया, लूणावत गोत्र ॥

सिन्ध देश में एक हजार ग्रामों के भाटी राजपूत राजा अभय सिंह को विक्रम संवत् ११७५ (एक हजार एक सौ पचहत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर माहाजन वंश और आयरिया गोत्र स्थापित किया, इस की औलाद में लूणे नामक एक बुद्धिमान् तथा भाग्यशाली पुरुष हुआ, उस की औलादवाले लोग लूणावत कहलाने लगे, लूणे ने सिद्धाचल जी का संघ निकाला और लाखों रुपये धर्मकार्य में खर्च किये, कोल्ह ग्राम में कावेली खोड़ियार चारणी नामक हरखू ने लूणे को वर दिया था इस लिये लूणावत लोग खोड़ियार हरखू को पूजते हैं, ये लोग बहुत पीढ़ियों तक बहलवे ग्राम में रहते रहे, पीछे जैसलमेर में इन की जाति का विस्तार होकर मारवाड़ में हुआ ॥

नवीं संख्या—बहूफणा, नाहटा गोत्र ॥

धारा नगरी का राजा पृथ्वीधर पँवार राजपूत था, उस की सोलहवीं पीढ़ी में जोवन और सच्चू, ये दो राजपुत्र हुए थे, ये दोनों भाई किसी कारण धारा नगरी से निकल कर और जांगलू को फतह कर वहीं अपना राज्य स्थापित कर सुख से रहने लगे थे, विक्रम संवत् ११७७ (एक हजार एक सौ सतहत्तर) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज ने जोवन और सच्चू (दोनों भाइयों) को प्रतिबोध देकर उन का माहाजन वंश और बहूफणागोत्र[1] स्थापित किया।

इन्हीं की औलादवाले लोग युद्ध में नहीं हटे थे इस लिये वे नाहटा कहलाये।

1—बहूफणा नाम का अपभ्रंश बाफणा हो गया है ॥

इस के पश्चात् लखनौ के नवाब ने इन को राजा का पद प्रदान किया था जिस से राजा बच्छराज जी के घरानेवाले लोग भी राजा कहलाने लगे थे।

ऊपर कहे हुए गोत्रवालों में से एक बुद्धिमान् पुरुष ने फतहपुर के नवाब को अपनी चतुराई का अच्छा परिचय दिया था, जिस से नवाब ने प्रसन्न होकर कहा था कि-"यह रायजादा है" तब से नगरवासी लोग भी उसे रायजादा कहने लगे और उस की औलादवाले लोग भी रायजादा कहलाये, इस प्रकार ऊपर कहे हुए गोत्र का निरन्तर विस्तार होता रहा और उस की नीचे लिखी हुई १७ शाखायें हुई:—१–बाफणा। २–नाहटा। ३–रायजादा। ४–घुल्ल। ५–घोरवाड़। ६–हुंडिया। ७–जांगड़ा। ८–सोमलिया। ९–वाहंतिया। १०–वसाह। ११–मींठड़िया। १२–बाघमार। १३–भाभू। १४–घतूरिया। १५–मगदिया। १६–पटवा (जैसलमेरवाला) १७–नानगाणी॥

दशवीं संख्या–रतनपुरा, कटारिया गोत्र॥

विक्रम संवत् १०२१ (एक हजार इक्कीस) में सोनगरा चौहान राजपूत रतनसिंह ने रतनपुरनामक नगर बसाया, जिस के पाँचवें पाट पर विक्रम संवत् ११८१ (एक हजार एक सौ इक्यासी) में अक्षय तृतीया के दिन धनपाल राजसिंहासन पर बैठा, एक दिन राजा धनपाल शिकार करने के लिये जंगल में गया और सुध न रहने से बहुत दूर चला गया परन्तु कोई भी शिकार उस के हाथ न लगी, आखिरकार वह निराश होकर वापिस लौटा, लौटते समय रास्ते में एक रमणीक तालाब दीख पड़ा, वहां वह घोड़े को एक वृक्ष के नीचे बाँध कर तालाब के किनारे बैठ गया, थोड़ी देर में उस को एक काला सर्प थोड़ी ही दूर पर दीख पड़ा और जोश में आकर ज्यों ही राजा ने उस के सामने एक पत्थर फेंका त्यों ही वह सर्प अत्यन्त गुस्से में भर गया और उस ने राजा धनपाल को शीघ्र ही काट खाया, काटते ही सर्प का विष चढ़ गया और राजा मूर्छित (बेहोश) होकर गिर गया, दैवयोग से उसी अवसर में वहां शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय तथा अनेक विद्याओं के निधि युगप्रधान जैनाचार्य श्रीजिनदत्त सूरि जी महाराज अनेक साधुओं के सङ्ग विहार करते हुए आ निकले और मार्ग में मृततुल्य पड़े हुए मनुष्य को देख कर आचार्य महाराज खड़े हो गये और एक शिष्य से कहा कि-"इस के समीप जाकर देखो कि-इसे क्या हुआ है" शिष्य ने देख कर विनय के साथ कहा कि-"हे महाराज! मालूम होता है कि-इस को सर्प ने काटा है" इस बात को सुन कर परोपकारी दयानिधि आचार्य महाराज उस के पास अपनी कमली बिछा कर बैठ गये और दृष्टिपाश विद्या के द्वारा उस पर अपना ओघा फिराने लगे, थोड़ी ही देर में धनपाल चैतन्य होकर उठ बैठा और अपने पास महाप्रतापी आचार्य महाराज को बैठा हुआ देख कर उस ने शीघ्र ही खड़े होकर उन को नमन और वन्दन किया तथा गुरु महाराज ने उस से धर्मलाभ कहा, उस समय राजा धनपाल

ने गुरु जी से अपने नगर में पधारने की अत्यन्त विनति की अतः आचार्य महाराज रत्न-पुर नगर में पधारे, वहाँ पहुँच कर राजा ने हाथ जोड़कर कहा कि-"मैं अपने इस राज्य को आप के अर्पण करता हूँ, आप कृपया इसे स्वीकार कर मेरे मनोवांछित को पूर्ण कीजिये" यह सुन कर गुरुजी ने कहा कि-"राज्य हमारे काम का नहीं है, इस लिये हम इस को लेकर क्या करें, हम तो यही चाहते हैं कि-तुम दयामूल जैनधर्म का ग्रहण करो कि जिस से तुम्हारा इस भव और पर भव में कल्याण हो" गुरु महाराज के इस निर्लोभ वचन को सुन कर धनपाल अत्यन्त प्रसन्न हुआ और महाराज से हाथ जोड़ कर बोला-कि-"हे दयासागर! आप चतुर्मास में यहाँ विराज कर मेरे मनोवांछित को पूर्ण कीजिये" निदान राजा के अत्यन्त आग्रह से गुरु महाराज ने वहीं चतुर्मास किया और राजा धनपाल को प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और रत्नपुरा गोत्र स्थापित किया, इस नगर में आचार्य महाराज के धर्मोपदेश से २४ खांप चौहान राजपूतों ने और वहुत से महेश्वरियों ने प्रतिबोध प्राप्त किया, जिन का गुरुदेव ने माहाजन वंश और मालू आदि अनेक गोत्र स्थापित किये, इस के पश्चात् रत्नपुरा गोत्र की दश शाखायें हुईं जो कि निम्नलिखित हैं:—

१-रत्नपुरा। २-कटारिया। ३-कोचेटा। ४-नराण गोता। ५-सापद्राह। ६-भला-णिया। ७-साँभरिया। ८-रामसेन्या। ९-बलाई। १०-बोहरा।

रत्नपुरा गोत्र में से कटारिया शाखा के होने का यह हेतु है कि-राजा धनपाल रत्न-पुरा की औलाद में झाँझणसिंह नामक एक बड़ा प्रतापी पुरुष हुआ, जिस को सुलतान ने अपना मन्त्री बनाया, झाँझणसिंह ने रियासत का इन्तिजाम बहुत अच्छा किया इस लिये उस की नेकनामी चारों तरफ फैल गई, कुछ समय के बाद सुलतान की आज्ञा लेकर झाँझणसिंह कार्त्तिक की पूर्णिमा की यात्रा करने के लिये शत्रुञ्जय को वंश वहाँ पर इस की गुजरात के पटणीसाह अबीरचंद के साथ (जो कि वहाँ प पहुँचा था) प्रभु की आरति उतारने की बोली पर बदाबदी हुई, उस सम बहादुर मुँहते झाँझणसिंह ने मालवे का महसूल ९२ (बानवे) लाख (जो ि के इजारह में आता था) देकर प्रभुजी की आरती उतारी, यह देख प चकित हो गया और उसे अपना साधर्मी कह कर धन्यवाद दिया, झाँझणसिं देश से रवाना हो कर मार्ग में दान पुण्य करता हुआ वापिस आया और द नु-

१—१-हाड़ा। २-देवड़ा। ३-सोनगरा। ४-मालडीचा। ५-कूदणेचा। ६-बेद हम ने ८-चीवा। ९-काच। १०-खीची। ११-विहल। १२-संभटा। १३-मेलवाल हाथी-१५-माल्हण। १६-पावेचा। १७-कांघलेचा। १८-रापड़िया। १९-दुदणेच। २०-न र्म का २२-राकसिया। २३-वाघेटा। २४-साचोरा॥ भाई जिन

२-मालू जाति के राठी महेश्वरी थे॥

सुलतान से सलाम की, सुलतान उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसे उस का पूर्व काम सौंप दिया, एक दिन हलकारे ने सुलतान से झाँझणसिंह की चुगली खाई अर्थात् यह कहा कि–"हजूर सलामत! झाँझणसिंह ऐसा जबरदस्त है कि उस ने अपने पीर के लिये करोड़ों रुपये खजाने के खर्च कर दिये और आप को उस की खबर तक नहीं दी" हलकारे की इस बात को सुन कर सुलतान बहुत गुस्से में आगया और झाँझणसिंह को उसी समय दर्बार में बुलवाया, झाँझणसिंह को इस बात की खबर पहिले ही से हो गई थी इस लिये वह अपने पेट में कटारी मार कर तथा ऊपर से पेटी बाँध कर दर्बार में हाजिर हुआ और सुलतान को सलाम कर अपना सब हाल कहा और यह भी कहा कि–"हजूर! आप की बोलवाला पीर के आगे मैं कर आया हूँ" इस बात को सुन कर सुलतान बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु कमरपेटी के खोलने पर झाँझणसिंह की जान निकल गई, बस यहीं से कटारिया शाखा प्रकट हुई अर्थात् झाँझणसिंह की औलाद वाले लोग कटारिया कहलाये, कुछ समय के बाद इन की औलाद का निवास माँडवगढ़ में हुआ, किसी कारण से मुसलमानों ने इन लोगों को पकड़ा और बाईस हजार रुपये का दण्ड किया, उस समय जगरूप जी यति (जो कि खरतरभट्टारकगच्छीय थे) ने मुसलमानों को कुछ चमत्कार दिखला कर कटारियों पर जो बाईस हजार रुपये का दण्ड मुसलमानों ने किया था वह छुड़वा दिया, रतपुरा गोत्रवाले एक पुरुष ने बलाइयों (ढेढ जाति के लोगों) के साथ लेन देन का व्यापार किया था वहीं से बलाई शाखा हुई अर्थात् उस की औलादवाले लोग बलाई कहलाने लगे ॥

ग्यारहवीं संख्या–रांका, काला, सेठिया गोत्र ॥

[illegible] ही बह र में राजपूत जाति के काकू और पाताक नामक दो भाई थे, विक्रमसंवत् ११८५ (ग्यारह हजार एक सौ पचासी) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज विहार करते हुए इस नगर में पधारे, महाराज के धर्मोपदेश से काकू को प्रतिबोध प्राप्त हुआ, पाताक ने गुरु जी से कहा कि–"महाराज! द्रव्य तो मेरे पास बहुत है परन्तु सन्तान कोई नहीं है, इस लिये मेरा चित्त सदा दुःखित रहता है" यह सुन कर गुरु महाराज ने कहा कि–"तू दयामूल धर्म का ग्रहण कर तेरे पुत्र होवेंगे" इस वचन पर श्रद्धा रख कर पाताक ने दयामूल धर्म का ग्रहण किया तथा आचार्य महाराज अन्यत्र विहार कर गये, काकू बहुत दुर्बल शरीर का था इस लिये लोग उसे राँका नाम से पुकारने लगे, पाताक के दो पुत्र हुए जिन का नाम काला और बांका था, इन में से राँका को नगर सेठ का पद मिला, राँका सेठ की औलादवाले लोग राँका और सेठिया कहलाये, पाताक के प्रथम पुत्र काला की औलादवाले लोग काला और बोंक कहलाये तथा बांका की औलादवाले लोग बाका गोरा और दक कहलाये, बस इन का वर्णन यही निम्नलिखित है:—

१–राँका। २–सेठिया। ३–काला। ४–बोंक। ५–बाँका। ६–गोरा। ७–दक ॥

बारहवीं संख्या–राखेचाह, पूगलिया गोत्र ॥

पूगल का राजा भाटी राजपूत सोनपाल था तथा उस का पुत्र केलणदे नामक था, उस के शरीर में कोढ़ का रोग हुआ, राजा सोनपाल ने पुत्र के रोग के मिटाने के लिये अनेक यत्न किये परन्तु वह रोग नहीं मिटा, विक्रमसंवत् ११८७ (एक हजार एक सौ सतासी) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्त सूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ पधारे, राजा सोनपाल वहुत से आदमियों को साथ लेकर आचार्य महाराज के पास गया और नमन वन्दन आदि शिष्टाचार कर बैठ गया तथा गुरु जी से हाथ जोड़ कर बोला कि–"महाराज! मेरे एक ही पुत्र है और उस के कोढ़ रोग हो गया है, मैं ने उस के मिटने के लिये वहुत से उपाय भी किये परन्तु वह नहीं मिटा, अब मैं आप की शरण में आया हूँ, यदि आप कृपा करें तो अवश्य मेरा पुत्र नीरोग हो सकता है, यह मुझ को दृढ़ विश्वास है" राजा के इस वचन को सुन कर गुरु जी ने कहा कि–"तुम इस भव और पर भव में कल्याण करने वाले दयामूल धर्म का ग्रहण करो, उस के ग्रहण करने से तुम को सव सुख मिलेंगे" राजा सोनपाल ने गुरु जी के वचन को आदरपूर्वक स्वीकार किया, तव गुरु जी ने कहा कि–"तुम अपने पुत्र को यहाँ ले आओ और गाय का ताजा घी भी लेते आओ" गुरु जी के वचन को सुन कर राजा सोनपाल ने शीघ्र ही गाय का ताजा घी मँगवाया और पुत्र को लाकर हाजिर किया, गुरु महाराज ने वह घृत केलणदे के शरीर पर लगवाया और उस पर दो घंटे तक स्वयं दृष्टिपाश किया, इस प्रकार तीन दिन तक ऐसा ही किया, चौथे दिन केलणदे कुमार का शरीर कञ्चन के समान हो गया, राजा सोनपाल अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उस के मन में अत्यन्त भक्ति और श्रद्धा की चाँह को देख कर आचार्य महाराज ने वासक्षेप देने के समय उस का माहाजन वंश और राखेचाह गोत्र स्थापित किया।

राखेचाह गोत्रवालों में से कुछ लोग पूगल से उठ कर अन्यत्र जाकर वसे तथा उन को लोग पूगलिया कहने लगे, वस तव से ही वे पूगलिया कहलाये ॥

तेरहवीं संख्या–लूणिया गोत्र ॥

सिन्ध देश के मुलतान नगर में मुँधड़ा जाति का महेश्वरी हाथीशाह राजा का देश दीवान था, हाथीशाह ने राज्य[1] का प्रबंध अच्छा किया तथा प्रजा के साथ नीति के अनु-

---

१–एक जगह इस का नाम धींगड़मल्ल लिखा हुआ देखने में आया है तथा दो चार वृद्धों से हम ने यह भी सुना है कि मुँधड़ा जाति के महेश्वरी धींगड़मल्ल और हाथीशाह दो भाई थे, उन में से हाथीशाह ने पुत्र को सर्प के काटने के [illegible] में श्री जिनदत्त जी सूरि के कथन से दयामूल धर्म का ग्रहण किया था, इत्यादि, इस के सिवाय लूणिया गोत्र की तीन वंशावलियाँ भी हमारे देखने में आईं जिन में प्रायः लेख तुल्य है अर्थात् तीनों का लेख परस्पर में ठीक मिलता है ॥

सार वर्ताव किया, इस लिये राजा और प्रजा उस पर बहुत खुश हुए, कुछ समय के बाद हाथीशाह के पुत्र उत्पन्न हुआ और उस ने दसोटन का उत्सव बड़ी धूमधाम से किया तथा पुत्र का नाम नक्षत्र के अनुसार लूणा रक्खा, जब वह पाँच वर्ष का हो गया तब दीवान ने उस को विद्या का पढ़ाना प्रारंभ किया, बुद्धि के तीक्ष्ण होने से लूणा ने विद्या तथा कलाकुशलता में अच्छी निपुणता प्राप्त की, जब लूणा की अवस्था बीस वर्ष की हुई तब दीवान हाथीशाह ने उस का विवाह बड़ी धूमधाम से किया, एक दिन का प्रसंग है कि–रात्रि के समय लूणा और उस की स्त्री पलँग पर सो रहे थे कि इतने में दैववश सोते हुए ही लूणा को साँप ने काट खाया, इस बात की खबर लूणा के पिता को प्रातःकाल हुई, तब उस ने झाड़ा झपटा और ओषधि आदि बहुत से उपाय करवाये परन्तु कुछ भी फायदा नहीं हुआ, विष के वेग से लूणा बेहोश हो गया तथा इस समाचार को पाकर नगर में चारों ओर हाहाकार मच गया, सब उपायों के निष्फल होने से दीवान भी निराश हो गया अर्थात् उस ने पुत्र के जीवन की आशा छोड़ दी तथा लूणा की स्त्री सती होने को तैयार हो गई, उसी दिन अर्थात् विक्रमसंवत् ११९२ (एक हजार एक सौ बानवे) के अक्षयतृतीया के दिन युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ पधारे, उन का आगमन सुन कर दीवान हाथीशाह आचार्य महाराज के पास गया और नमन वन्दन आदि करके अपने पुत्र का सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा यह भी कहा कि–"यदि मेरा जीवनाधार कुलदीपक प्यारा पुत्र जीवित हो जावे तो मैं लाखों रुपयों की जवाहिरात आप को भेंट करूँगा और आप जो कुछ आज्ञा प्रदान करेंगे वही मैं स्वीकार करूँगा" उस के इस वचन को सुन कर आचार्य महाराज ने कहा कि–"हम त्यागी हैं, इस लिये द्रव्य लेकर हम क्या करेंगे, हाँ यदि तुम अपने कुटुम्ब के सहित दयामूल धर्म का ग्रहण करो तो तुम्हारा पुत्र जीवित हो सकता है" जब हाथीशाह ने इस बात को स्वीकार कर लिया तब आचार्य महाराज ने चारों तरफ पड़दे डलवा कर जैसे रात्रि के समय लूणा और उस की स्त्री पलँग पर सोते हुए थे उसी प्रकार सुलवा दिया और ऐसी शक्ति फिराई कि वही सर्प आकर उपस्थित हो गया, तब आचार्य महाराज ने उस सर्प से कहा कि–"इस का सम्पूर्ण विष खींच ले" यह सुनते ही सर्प पलँग पर चढ़ गया और विष का चूसना प्रारम्भ कर दिया, इस प्रकार कुछ देर में सम्पूर्ण विष को खींच कर वह सर्प चला गया और लूणा सचेत हो गया, नगर में राग रंग होने और आनन्द बाजन बजने लगे तथा दीवान हाथीशाह ने उसी समय बहुत कुछ दान पुण्य कर कुटुम्बसहित दयामूल धर्म का ग्रहण किया, आचार्य महाराज ने उस का माहाजन वंश और लूणिया गोत्र स्थापित किया।

सूचना—प्रिय वाचकवृन्द ! पहिले लिख चुके हैं कि–दादा साहब युगप्रधान जैना-

चार्य श्री जिनदत्त सूरि महाराज ने सवा लाख श्रावकों को प्रतिबोध दिया था अर्थात् उन का माहाजन वंश और अनेक गोत्र स्थापित किये थे, उन में से जिन २ का प्रामाणिक वर्णन हम को प्राप्त हुआ उन गोत्रों का वर्णन हम ने कर दिया है, अब इस के आगे खरतरगच्छीय तथा दूसरे गच्छाधिपति जैनाचार्यों के प्रतिबोधित गोत्रों का जो वर्णन हम को प्राप्त हुआ है उस को लिखते हैं:—

चौदहवीं संख्या—साँखला, सुराणा गोत्र ॥

विक्रमसंवत् १२०५ (एक हजार दो सौ पाँच) में पँवार राजपूत जगदेव को पूर्ण तल्लगच्छीय कलिकाल सर्वज्ञ जैनाचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर जैनी श्रावक किया था, जगदेव के सूर जी और साँवल जी नामक दो पुत्र थे, इन में से सूर जी की औलादवाले लोग सुराणा कहलाये और साँवल जी की औलादवाले लोग साँखला कहलाये ॥

पन्द्रहवीं संख्या—आघरिया गोत्र ॥

सिन्ध देश का राजा गोसलसिंह भाटी राजपूत था तथा उस का परिवार करीब पन्द्रह सौ घर का था, विक्रमसंवत् १२१४ (एक हजार दो सौ चौदह) में उन सब को नरमणि मण्डित भालस्थल खोड़िया क्षेत्रपालसेवित खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और आघरिया गोत्र स्थापित किया ॥

१–इन का जन्म विक्रमसंवत् ११४५ के कार्तिक सुदि १५ को हुआ, ११५४ में दीक्षा हुई, ११६६ में सूरि पद हुआ तथा १२२९ में स्वर्गवास हुआ, ये जैनाचार्य बड़े प्रतापी हुए हैं, इन्हों ने अपने जीवन में साढ़े तीन करोड़ श्लोकों की रचना की थी अर्थात् संस्कृत और प्राकृत भाषा में व्याकरण, कोश, काव्य, छन्द, योग और न्याय आदि के अनेक ग्रन्थ बनाये थे, न केवल इतना ही किन्तु इन्हों ने अपनी विद्वत्ता के बल से अठारह देशों के राजा कुमारपाल को जैनी बना कर जैन मत की बड़ी उन्नति की थी तथा पाटन नगर में पुस्तकों का एक बड़ा भारी भण्डार स्थापित किया था, इन के गुणों से प्रसन्न होकर न केवल एतद्देशीय (इस देश के) जनों ने ही इन की प्रशंसा की है किन्तु विभिन्न देशों के विद्वानों ने भी इन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, देखिये! इन की प्रशंसा करते हुए यूरोपियन स्कालर डाक्टर पीटरसन साहब फरमाते हैं कि–"श्रीहेमचन्द्राचार्य जी की विद्वत्ता की स्तुति ज़बान से नहीं हो सकती है" इत्यादि, इन का विशेष वर्णन देखना हो तो प्रबन्धचिन्तामणि आदि ग्रन्थों में देख लेना चाहिये ॥

२–इन का जन्म विक्रमसंवत् ११९१ के भाद्रपद सुदि ८ के दिन हुआ, १२११ में वैशाख सुदि ५ को ये सूरि पद पर बैठे तथा १२२३ में भाद्रपद वदि १४ को दिल्ली में इन का स्वर्गवास हुआ, इन को दादा साहिब श्री जिन दत्त सूरि जी महाराज ने अपने हाथ से संवत् १२११ में वैशाख सुदि ५ के दिन विक्रमपुर नगर में (विक्रमपुर से बीकानेर को नहीं समझना चाहिये किन्तु यह विक्रमपुर दूसरा नगर था)

सोलहवीं संख्या—दूगड़, सूगड़ गोत्र ॥

पाली नगर में सोमचन्द्र नामक खीची राजपूत राज्याधिकारी था, किसी कारण से वह राजा के क्षोभ से वहाँ से भाग कर जङ्गल देश के मध्यवर्त्ती जांगलू नगर में आकर बस गया, सोमचन्द्र की ग्यारहवीं पीढ़ी में सूरसिंह नामक एक बड़ा नामी शूरवीर हुआ, सूरसिंह के दो पुत्र थे जिन में से एक का नाम दूगड़ और दूसरे का नाम सूगड़ था, इन दोनों भाइयों ने जांगलू को छोड़ कर मेवाड़ देश में आघाट गाँव को जा दाबा तथा वहीं रहने लगे, वहाँ तमाम गाँववाले लोगों को नाहरसिंह वीर बड़ी तकलीफ देता था, उस (तकलीफ) के दूर करने के लिये ग्रामनिवासियों ने अनेक भोपे आदि को बुलाया तथा उन्हों ने आकर अपने २ अनेक इल्म दिखलाये परन्तु कुछ भी उपद्रव शान्त न हुआ और वे (भोपे आदि) हार २ कर चले गये, विक्रमसंवत् १२१७ (एक हजार दो सौ सत्रह) में युगप्रधान जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी महाराज के पट्ट प्रभाकर नरमणिमण्डित भालस्थल खोड़िया क्षेत्रपाल सेवित जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ (आघाट ग्राम में) पधारे, उन की महिमा को सुनकर दूगड़ और सूगड़ दोनों भाई आचार्य महाराज के पास आये और नमन वन्दन आदि शिष्टाचार कर बैठ गये तथा महाराज से अपना सब दुःख प्रकट कर उस के मिटाने के लिये अत्यन्त आग्रह करने लगे, उन के अत्यन्त आग्रह से कृपालु आचार्य महाराज ने पद्मावती जया और विजया देवियों के प्रभाव से नारसिंह वीर को वश में कर लिया, ऐसा होने से गाँव का सब उपद्रव शान्त हो गया, महाराज की इस अपूर्व शक्ति को देख कर

आचार्य पद पर स्थापित किया था तथा नन्दी (पाट) का महोत्सव रासल ने किया था, ये दोनों (गुरु चेला) आचार्य महाप्रतापी हुए थे, यहाँ तक कि देवलोक होने के बाद भी इन्हों ने अनेक चमत्कार दिखलाये थे और वर्त्तमान में भी ये अपने भक्तों को प्रत्यक्ष चमत्कार दिखला रहे हैं, इन की महिमा का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि—ऐसा कोई भी प्राचीन जैन वस्ती वाला नगर नहीं है जिस में इन के चरणों का स्थापन न किया गया हो अर्थात् सब ही प्राचीन नगरों में, मन्दिरों और बगीचों में इन के चरण विराजमान हैं और दादा जी के नाम से विख्यात हैं, जब श्रीजिनचन्द्रसूरि जी महाराज का दिल्ली में स्वर्गवास हुआ था तब श्रावकों ने उन की रत्थी को दिल्ली के माणिक चौक में विसाई लेने के लिये रक्खी थी, उस समय यह चमत्कार हुआ कि वहाँ से रत्थी नहीं उठी, इस चमत्कार को देख कर बादशाह ने वहीं पर दाग देने का हुक्म दे दिया तब श्रीसङ्घ ने वहीं पर उन को दाग दे दिया, पुरानी दिल्ली में वहाँ पर अभी तक उन के चरण मौजूद हैं, यदि इन का विशेष वर्णन देखना हो तो उपाध्याय श्री क्षमा कल्याण जी गणी (जो कि गत शताब्दी में महान् विद्वान् हो गये हैं और जिन्हों ने मूल श्रीपालचरित्र पर संस्कृतटीका बनाई है तथा आत्मप्रबोध आदि अनेक ग्रन्थ संस्कृत में रचे हैं) के बनाये हुए कोटिकगच्छ गुर्वावलि नामक संस्कृतग्रन्थ में देख लेना चाहिये ॥

दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए और बहुत सा द्रव्य लाकर आचार्य महाराज के सामने रख कर भेंट करने लगे, तब महाराज ने कहा कि–"यह हमारे काम का नहीं है, अतः हम इसे नहीं लेंगे, तुम दयामूल धर्म के उपदेश को सुनो तथा उस का ग्रहण करो कि जिस से तुम्हारा उभय लोक में कल्याण हो" महाराज के इस वचन को सुन कर दोनों भाइयों ने दयामूल जैनधर्म का ग्रहण किया तथा आचार्य महाराज थोड़े दिनों के बाद वहाँ से अन्यत्र विहार कर गये, बस उसी धर्म के प्रभाव से दूगड़ और सूगड़ दोनों भाइयों का परिवार बहुत बढ़ा (क्यों न बढ़े–'यतो धर्मस्ततो जयः' क्या यह वाक्य अन्यथा हो सकता है) तथा बड़े भाई दूगड़ की औलादवाले लोग दूगड़ और छोटे भाई सूगड़ की औलादवाले लोग सूगड़ कहलाने लगे ॥

सत्रहवीं संख्या–मोहीवाल, आलावत, पालावत, दूधेड़िया गोत्र ॥

विक्रमसंवत् १२२१ (एक हजार दो सौ इक्कीस) में मोहीग्रामाधीश पँवार राजपूत नारायण को नरमणि मण्डित भालस्थल खोडिया क्षेत्रपाल सेवित जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज ने प्रतिबोध देकर उस का माहाजन वंश और मोहीवाल गोत्र स्थापित किया, नारायण के सोलह पुत्र थे अतः मोहीवाल गोत्र में से निम्नलिखित सोलह शाखायें हुईः—

१–मोहीवाल । २–आलावत । ३–पालावत । ४–दूधेड़िया । ५–गोय । ६–थरावत । ७–खुड़धा । ८–टौडरवाल । ९–माधोटिया । १०–बंभी । ११–गिड़िया । १२–गोढ़वाड्या । १३–पटवा । १४–वीरीवत । १५–गांग । १६–गौध ॥

अठारहवीं संख्या–बोथरा (बोहित्थरा), फोफलिया बच्छावतादि ९ खाँपें ॥

श्री जालोर महादुर्गाधिप देवड़ावंशीय महाराजा श्री सामन्त सी जी थे तथा उन के दो रानियाँ थीं, जिन के सगर, वीरमदे और कान्हड़नामक तीन पुत्र और ऊमा नामक एक पुत्री थी, सामन्त सी जी के पाट पर स्थित होकर उन का दूसरा पुत्र वीरमदे जालोराधिप हुआ तथा सगर नामक बड़ा पुत्र देलवाड़े में आकर वहाँ का स्वामी हुआ, इस का कारण यह था कि सगर की माता देलवाड़े के झाला जात राना भीमसिंह की पुत्री थी और वह किसी कारण से अपने पुत्र सगर को लेकर अपने पीहर में जाकर (पिता के यहाँ) रही थी अतः सगर अपने नाना के घर में ही बड़ा हुआ था, जब सगर युवावस्था

१–दोहा–गिरि अठार आबू धणी, गढ़ जालोर दुरंग ॥ तिहाँ सामन्त सी देवड़ो, अमली मांण अभंग ॥ १ ॥

२–यह पिङ्गल राजा को व्याही गई थी ॥

को प्राप्त हुआ उस समय सगर का नाना भीमसिंह (जो कि अपुत्र था) मृत्यु को प्राप्त हो गया तथा मरने के समय वह सगर को अपने पाट पर स्थापित कर देने का प्रबंध कर गया, बस इसी लिये सगर १४० ग्रामों के सहित देवलवाड़े का राजा हुआ और उसी दिन से वह राना कहलाने लगा, उस का श्रेष्ठ तपस्तेज चारों ओर फैल गया, उस समय चित्तौड़ के राना रतन सी पर मालवपति मुहम्मद बादशाह की फौज चढ़ आई तब राना रतन सी ने सगर को शूरवीर जान कर उस से अपनी सहायता करने के लिये कहला भेजा, उन की खबर को पाते ही सगर चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से युक्त) सेना को सजवा कर राना रतनसी की सहायता में पहुँच गया और मुहम्मद बादशाह से युद्ध किया, बादशाह उस के आगे न ठहर सका अर्थात् हार कर भाग गया, तब मालव देश को सगर ने अपने कब्जे में कर लिया तथा आन और दुहाई को फेर कर मालवे का मालिक हो गया, कुछ समय के बाद गुजरात के मालिक बहिलीम जात अहमद बादशाह ने राना सगर से यह कहला भेजा कि-"तू मुझ को सलामी दे और हमारी नौकरी को मञ्जूर कर नहीं तो मालव देश को मैं तुझ से छीन लूंगा" सगर ने इस बात को स्वीकार नहीं किया, इस का परिणाम यह हुआ कि-सगर और बादशाह में परस्पर घोर युद्ध हुआ, आखिरकार बादशाह हार कर भाग गया और सगर ने सब गुजरात को अपने आधीन कर लिया अर्थात् राना सगर मालव और गुजरात देश का मालिक हो गया, कुछ समय के बाद पुनः किसी कारण से गोरी बादशाह और राना रतन सी में परस्पर में विरोध उत्पन्न हो गया और बादशाह चित्तौड़ पर चढ़ आया, उस समय राना जी ने शूरवीर सगर को बुलाया और सगर ने आकर उन दोनों का आपस में मेल करा दिया तथा बादशाह से दण्ड लेकर उस ने मालव और गुजरात देश को पुनः बादशाह को वापिस दे दिया, उस समय राना जी ने सगर की इस बुद्धिमत्ता को देख कर उसे मन्त्रीश्वर का पद दिया और वह (सगर) देवलवाड़े में रहने लगा तथा उस ने अपनी बुद्धिमत्ता से कई एक शूरवीरता के काम कर दिखलाये।

सगर के बोहित्थ, गङ्गदास और जयसिंह नामक तीन पुत्र थे, इन में से सगर के पाट पर उस का बोहित्थ[1] नामक ज्येष्ठ पुत्र मन्त्रीश्वर होकर देवलवाड़े में रहने लगा, यह भी अपने पिता के समान बड़ा शूरवीर तथा बुद्धिमान् था।

बोहित्थ की भार्या बहरंगदे थी, जिस के श्रीकरण, जेसो, जयमल्ल, नान्हा, भीमसिंह, पद्मसिंह, सोम जी और पुण्यपाल नामक आठ पुत्र थे और पद्मा बाई नामक एक पुत्री थी, इन में से सब से बड़े श्रीकरण के समधर, वीरदास, हरिदास और ऊधण नामक चार पुत्र हुए।

१-बोहित्थ ने चित्तौड़ के राना रायमल की सहायता में उपस्थित हो कर बादशाह से युद्ध किया था तथा उसे भगा दिया था परन्तु उस युद्ध में ग्यारह सौ सोनहरी बंध से काम आया था ॥

यह (श्रीकरण) बड़ा शूरवीर था, इस ने अपनी भुजाओं के बल से मच्छेन्द्रगढ़ को फतह किया था, एक समय का प्रसंग है कि-बादशाह का खजाना कहीं को जा रहा था उस को राना श्रीकरण ने लूट लिया, जब इस बात की खबर बादशाह को पहुँची तब उस ने अपनी फौज को लड़ने के लिये मच्छेंद्रगढ़ पर भेज दिया, राना श्रीकरण बादशाह की उस फौज से खूब ही लड़ा परन्तु आखिरकार वह अपना शूरवीरत्व दिखला कर उसी युद्ध में काम आया, राना के काम आ जाने से इधर तो बादशाह की फौज ने मच्छेन्द्रगढ़ पर अपना कब्जा कर लिया उधर राना श्रीकरण को काम आया हुआ सुन कर राना की स्त्री रतनादे कुछ द्रव्य (जितना साथ में चल सका) और समधर आदि चारों पुत्रों को लेकर अपने पीहर (खेड़ीपुर) को चली गई और वहीं रहने लगी तथा अपने पुत्रों को अनेक प्रकार की कला और विद्या को सिखला कर निपुण कर दिया, विक्रमसंवत् १३२३ (एक हजार तीन सौ तेईस) के आषाढ़ वदि २ पुष्य नक्षत्र गुरुवार को खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनेश्वर सूरि जी महाराज विहार करते हुए वहाँ (खेड़ीपुर में) पधारे, नगर में प्रवेश करने के समय महाराज को बहुत उत्तम शकुन हुआ, उस को देख कर सूरिजी ने अपने साथ के साधुओं से कहा कि-"इस नगर में अवश्य जिनधर्म का उद्योत होगा" चौमासा अति समीप था इस लिये आचार्य महाराज उसी खेड़ीपुर में ठहर गये और वहीं चौमासे भर रहे, एक दिन रात्रि में पद्मावती देवी ने गुरु से कहा कि-"प्रातःकाल बोहित्थ के पोते चार राजकुमार व्याख्यान के समय आवेंगे और प्रतिबोध को प्राप्त होंगे" निदान ऐसा ही हुआ कि उस के दूसरे दिन प्रातःकाल जब आचार्य महाराज दया के विषय में धर्मोपदेश कर रहे थे उसी समय समधर आदि चारों राजपुत्र वहाँ आये और नमन वन्दन आदि शिष्टाचार कर धर्मोपदेश को सुनने लगे तथा उसी के प्रभाव से प्रतिबोध को प्राप्त हुए अर्थात् आचार्य महाराज से उन्हों ने शास्त्रोक्त विधि से श्रावक के बारह व्रतों का ग्रहण किया तथा आचार्य महाराज ने उन का माहाजन वंश और बोहित्थरा[1] गोत्र स्थापित किया, इस के पश्चात् उन्हों ने धर्मकार्यों में द्रव्य लगाना शुरू किया तथा उक्त चारों भाई संघ निकाल कर और आचार्य महाराज को साथ लेकर सिद्धिगिरि की यात्रा को गये तथा मार्ग में प्रतिस्थान में उन्हों ने साधर्मी भाइयों को एक मोहर और सुपारियों से भरा हुआ एक थाल लाहन में दिया, इस से लोग इन को फोफलिया कहने लगे, बस तब ही से बोहित्थरा गोत्र में से फोफलिया शाखा प्रकट हुई, इस यात्रा में उन्हों ने एक करोड़ द्रव्य लगाया, जब लौट कर घर पर आये तब सब ने मिल कर समधर को संघपति का पद दिया।

समधर के तेजपाल नामक एक पुत्र था, पिता समधर स्वयं विद्वान् था अतः उसने

१-इसी नाम का अपभ्रंश बोथरा हुआ है ॥

अपने पुत्र तेजपाल को भी छः वर्ष की अवस्था से ही विद्या का पढ़ाना शुरू किया और नीति के कथन के अनुसार दश वर्ष तक उस से विद्याभ्यास में उत्तम परिश्रम करवाया, तेजपाल की बुद्धि बहुत ही तेज थी अतः वह विद्या में खूब निपुण हो गया तथा पिता के सामने ही गृहस्थाश्रम का सब काम करने लगा, उस की बुद्धि को देख कर बड़े २ नामी रईस चकित होने लगे और अनेक तरह की बातें करने लगे अर्थात् कोई कहता था कि–"जिस के माता पिता विद्वान् हैं उन की सन्तति विद्वान् क्यों न हो" और कोई कहता था कि–"तेजपाल के पिता ने अपने लोगों के समान पुत्र का लाड़ नहीं किया किन्तु उस ने पुत्र को विद्या सिखला कर उसे सुशोभित करना ही परम लाड़ समझा" इत्यादि, तात्पर्य यह है कि–तेजपाल की बुद्धि की चतुराई को देख कर रईस लोग उस के विषय में अनेक प्रकार की बातें करने लगे, दैवयोग से समधर देवलोक को प्राप्त हो गया, उस समय तेजपाल की अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष के थी, पाठकगण समझ सकते हैं कि–विद्यासहित बुद्धि और द्रव्य, ये दोनों एक जगह पर हों तो फिर कहना ही क्या है अर्थात् सोना और सुगन्ध इसी का नाम है, अस्तु तेजपाल ने गुजरात के राजा को बहुत सा द्रव्य देकर देश को मुकाते ले लिया अर्थात् वह पाटन का मालिक बन गया और उस ने विक्रमसंवत् १३७७ (एक हजार तीन सौ सतहत्तर) में ज्येष्ठ वदि एकादशी के दिन तीन लाख रुपये लगा कर दादा साहिब जैनाचार्य श्री जिनकुशल सूरि जी महाराज का नन्दी (पाट) महोत्सव पाटन नगर में किया तथा उक्त महाराज को साथ में लेकर शेत्रुञ्जय का संघ निकाला और बहुत सा द्रव्य शुभ मार्ग में लगाया, पीछे सब संघ ने मिल कर माला पहिना कर तेजपाल को संघपति का पद दिया, तेजपाल ने भी सोने की एक मोहर, एक थाली और पाँच सेर का एक लड्डू प्रतिगृह में लावण बाँटा, इस प्रकार यह अनेक शुभ कार्यों को करता रहा और अन्त में अपने पुत्र वील्हा जी को घर का भार सौंप कर अनशन कर स्वर्ग को प्राप्त हुआ, तात्पर्य यह है कि तेजपाल की मृत्यु के पश्चात् उस के पाट पर उस का पुत्र वील्हा जी बैठा।

१–इन का जन्म छाजेड़ गोत्र में विक्रमसंवत् १३३० में हुआ, संवत् १३४७ में दीक्षा हुई तथा संवत् १३७७ में ये पाटन में सूरिपद पर विराजे, ये भी जैनाचार्य बड़े प्रतापी हो गये हैं, इन्हों ने अनेक सङ्घों का उपकार किया है, संवत् १३८९ में फागुन वदि ३० (अमावास्या) के दिन ये देराउर नगर में आठ दिनों तक अनशन कर स्वर्ग को प्राप्त हुए थे, इन्हों ने स्वर्गप्राप्ति के बाद भी अपने अनेक भक्तों को दर्शन दिया तथा अब भी ये भक्तजनों के हाजराहजूर (काम पड़ने पर शीघ्र ही उपस्थित होकर सहायता देने वाले) हैं, इन के चरण प्रायः सब नगरों में दादाजी के नाम से मन्दिरों तथा बगीचों में विराजमान हैं तथा प्रति सोमवार तथा पूर्णमासी को लोग उन का दर्शन करने के लिये जाते हैं ॥

२–शेत्रुञ्जय पर आचार्य महाराज ने मानतुंग नामक खरतर वसी के मन्दिर में सत्ताईस अंगुल के परिमाण में श्री आदिनाथ बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी ॥

वील्हा जी के कडूवा और धरण नामक दो पुत्र हुए, वील्हा जी ने भी अपने पिता (तेजपाल) के समान अनेक धर्मकृत्य किये।

वील्हा जी की मृत्यु के पश्चात् उन के पाट पर उन का बड़ा पुत्र कडूवा बैठा, इस का नाम तो अलबत्ता कड़वा था परन्तु वास्तव में यह परिणाम में अमृत के समान मीठा निकला।

किसी समय का प्रसंग है कि-यह मेवाड़देशस्थ चित्तौड़गढ़ को देखने के लिये गया, उस का आगमन सुन कर चित्तौड़ के राना जी ने उस का बहुत सम्मान किया, थोड़े दिनों के बाद माँडवगढ़ का बादशाह किसी कारण से फौज लेकर चित्तौड़गढ़ पर चढ़ आया, इस बात को जान कर सब लोग अत्यन्त व्याकुल होने लगे, उस समय राना जी ने कडूवा जी से कहा कि-"पहिले भी तुम्हारे पुरुषाओं ने हमारे पुरुषाओं के अनेक बड़े २ काम सुधारे हैं इस लिये अपने पूर्वजों का अनुकरण कर आप भी इस समय हमारे इस काम को सुधारो" यह सुन कर कडूवा जी ने बादशाह के पास जा कर अपनी बुद्धिमत्ता से उसे समझा कर परस्पर में मेल करा दिया और बादशाह की सेना को वापिस लौटा दिया, इस बात से नगरवासी जन बहुत प्रसन्न हुए और राना जी ने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर बहुत से घोड़े आदि ईनाम में देकर कडूवा जी को अपना मन्त्रीश्वर (प्रधान मन्त्री) बना दिया, उक्त पद को पाकर कडूवा जी ने अपने सद्वर्त्ताव से वहाँ उत्तम यश प्राप्त किया, कुछ दिनों के बाद कडूवा जी राना जी की आज्ञा लेकर अणहिल पत्तन में गये, वहां भी गुजरात के राजा ने इन का बड़ा सम्मान किया तथा इन के गुणों से तुष्ट होकर पाटन इन्हें सौंप दिया, कडूवा जी ने अपने कर्त्तव्य को विचार सात क्षेत्रों में बहुत सा द्रव्य लगाया, गुजरात देश में जीवहिंसा को बन्द करवा दिया तथा विक्रम संवत् १४३२ (एक हजार चार सौ बत्तीस) के फागुन वदि छठ के दिन खरतरगच्छाधिपति जैनाचार्य श्री जिनराज सूरि जी महाराज का नन्दी (पाट) महोत्सव सवा लाख रुपये लगा कर किया, इस के सिवाय इन्हों ने शेत्रुञ्जय का संघ भी निकाला और मार्ग में एक मोहर, एक थाल और पाँच सेर का एक मगदिया लड्डू, इन का घर दीठ लावण अपने साधर्मी भाइयों को बाँटा, ऐसा करने से गुजरात भर में उन की अत्यन्त कीर्त्ति फैल गई, सात क्षेत्रों में भी बहुत सा द्रव्य लगाया, तात्पर्य यह है कि इन्हों ने यथाशक्ति जिनशासन का अच्छा उद्योत किया, अन्त में अनशन आराधन कर ये स्वर्गवास को प्राप्त हुए।

कडूवा जी से चौथी पीढ़ी में जेसल जी हुए, उन के बच्छराज, देवराज और हंस-

---

१-श्री शेत्रुञ्जय गिरनार का संघ निकाला तथा मार्ग में एक मोहर, एक थाल और पाँच सेर का एक मगदिया लड्डू, इन की लावण प्रतिगृह में साधर्मी भाइयों को बाँटी तथा सात क्षेत्रों में भी बहुत सा द्रव्य लगाया॥

राज नामक तीन पुत्र हुए, इन में से ज्येष्ठ पुत्र बच्छराज जी अपने भाइयों को साथ लेकर मण्डोवर नगर में राव श्री रिड़मल जी के पास जा रहे और राव रिड़मल जी बच्छराज जी की बुद्धि के अद्भुत चमत्कार को देख कर उन्हें अपना मन्त्री नियत कर लिया, बस बच्छराज जी भी मन्त्री बन कर उसी दिन से राजकार्य के सब व्यवहार को यथोचित रीति से करने लगे।

कुछ समय के बाद चित्तौड़ के राना कुम्भकरण में तथा राव रिड़मल जी के पुत्र जोधा- जी में किसी कारण से आपस में वैर बँध गया, उस के पीछे राव रिड़मल जी और मन्त्री बच्छराज जी राना कुम्भकरण के पास चित्तौड़ में मिलने के लिये गये, यद्यपि वहां जाने से इन दोनों से राना जी मिले झुले तो सही परन्तु उन (राना जी) के मन में कपट था इस लिये उन्हों ने छल कर के राव रिड़मल जी को धोखा देकर मार डाला, मन्त्री बच्छराज इस सर्व व्यवहार को जान कर छलबल से वहाँ से निकल कर मण्डोर में आ गये।

राव रिड़मल जी की मृत्यु हो जाने से उन के पुत्र जोधा जी उन के पाटनसीन हुए और उन्हों ने मन्त्री बच्छराज को सम्मान देकर पूर्ववत् ही उन्हें मन्त्री रख कर राजकाज सौंप दिया, जोधा जी ने अपनी वीरता के कारण पूर्व वैर के हेतु राना के देश को उजाड़ कर दिया और अन्त में राना को भी अपने वश में कर लिया, राव जोधा जी के जो नवे- रंग दे रानी थी उस रत्नगर्भा की कोख से विक्रम (वीका जी) और वीदा नामक दो पुत्र- रत्न हुए तथा दूसरी रानी जसमादे नामक हाड़ी थी, उस के नीवा, सूजा और सातल नामक तीन पुत्र हुए, बीका जी छोटी अवस्था में ही बड़े चञ्चल और बुद्धिमान् थे इस लिये उन के पराक्रम तेज और बुद्धि को देख कर हाड़ी रानी ने मन में यह विचार कर कि बीका की विद्यमानता में हमारे पुत्र को राज नहीं मिलेगा, अनेक युक्तियों से राव जोधा जी को वश में कर उन के कान भर दिये, राव जोधा जी बड़े बुद्धिमान् थे अतः उन्हों ने थोड़े ही में रानी के अभिप्राय को अच्छे प्रकार से मन में समझ लिया, एक दिन दर्बार में भाई बेटे और सर्दार उपस्थित थे, इतने ही में कुँवर बीका जी भी अन्दर से आ गये और मुजरा कर अपने काका कान्धल जी के पास बैठ गये, दर्बार में राज्यनीति के विषय में अनेक बातें होने लगीं, उस समय अवसर पाकर राव जोधा जी ने यह कहा

१-बच्छावतों के कुल के इतिहास का एक रास बना हुआ है जो कि बीकानेर के बड़े उपाश्रय (उपासरे) में महिमाभक्ति ज्ञानभण्डार में विद्यमान है, उसी के अनुसार यह लेख लिखा गया है, इस के सिवाय-मारवाड़ी भाषा में लिखा हुआ एक लेख भी इसी विषय का बीकानेरनिवासी उपाध्याय श्री पण्डित मोहनलाल जी गणी ने बम्बई में हम को प्रदान किया था, वह लेख भी पूर्वोक्त रास से प्रायः मिलता हुआ ही है, इस लेख के प्राप्त होने से हम को उक्त विषय की और भी दृढ़ता हो गई, अतः हम उक्त महोदय को इस कृपा का अन्तःकरण से धन्यवाद देते हैं ॥

२-यह जांगलू के सांखलों की पुत्री थी ॥

कि-"जो अपनी भुजा के बल से पृथ्वी को लेकर उस का भोग करे वही संसार में सुपुत्र कहलाता है, किन्तु पिता का राज्य पाकर उस का भोग करने से संसार में पुत्र की कीर्ति नहीं होती है" भरी सभा में कहे हुए पिता के उक्त वचन कुँवर बीका जी के हृदय में सुनते ही अंकित हो गये, सत्य है-प्रभावशाली पुरुष किसी की अवहेलना को कभी नहीं सह सकता है, बस वही दशा कुँवर बीका जी की हुई, बस फिर अपने काका कान्धलजी तथा मन्त्री वच्छराज आदि कतिपय स्नेही जनों को साथ चलने के लिये तैयार कर और पिता की आज्ञा लेकर वे जोधपुर से रवाना हुए, शाम को मण्डोर में पहुँचे और वहाँ गोरे भैरव जी का दर्शन कर प्रार्थना की कि-"महाराज! अब आप का दर्शन आप के हुक्म से होगा" इस प्रकार प्रार्थना कर रात भर मण्डोर में रहे और ज्यों ही गज़रदम उठे त्यों ही भैरव जी की मूर्ति बहली में मिली, उस मूर्ति को देखते ही साथवाले बोले कि-"लोगो रे! जीतो, हम आप के साथ चलेंगे और आप का राज्य बढ़ेगा" बीका जी भैरव जी की उस मूर्त्ति को लेकर शीघ्र ही वहाँ से रवाना हुए और काँउनी ग्राम के भोमियों को वश में कर वहाँ अपनी आन दुहाई फेर दी तथा वहीं एक उत्तम जगह को देख कर तालाब के ऊपर गोरे जी की मूर्त्ति को स्थापित कर आप भी स्थित हो गये, यहीं पर राव बीका जी महाराज का राज्याभिषेक हुआ, इस के पीछे अर्थात् संवत् १५४१ (एक हजार पाँच सौ इकतालीस) में राव बीका जी ने राती घाटी पर

१-राव बीका जी महाराज का जीवनचरित्र मुंशी देवीप्रसाद जी कायस्थ मुंसिफ जोधपुर ने संवत् १९५० में छपवाया है, उस में उन्हों ने इस बात को इस प्रकार से लिखा है कि-"एक दिन जोधा जी दरबार में बैठे थे, भाई बेटे और सब सरदार हाजिर थे, कुँवर बीका जी भी अंदर से आये और मुजरा कर के अपने काका कांधल जी के पास बैठ गये और कानों में उन से कुछ बातें करने लगे, जोधा जी ने यह देख कर कहा कि-आज चचा भतीजे में क्या कानाफूंसी हो रही है, क्या कोई नया मुल्क फतेह करने की सलाह है यह सुनते ही कांधल जी ने उठ कर मुजरा किया और कहा कि-मेरी शरम तो जब ही रहेगी कि जब कोई नया मुल्क फतह करूंगा—जब बीका जी और कांधल जी ने जाने की तयारी की तो मण्डला जी और बीदा जी वगेरा राव जी के भाई बेटों ने भी राव जी से अरज की कि हम बीका जी को आप की जगह समझते हैं सो हम भी उन के साथ जावेंगे, राव जी ने कहा अच्छा और इतने राजवी बीका जी के साथ हुये—

१-काका कांधल जी।	६-भाई जोगायत जी।	११-कोठारी चोथमल।
२- ,, रुपा जी।	७- ,, बीदा जी।	१२-बच्छावत वरसिंघ।
३- ,, मांडण जी।	८-सांखला नापा जी।	१३-प्रोयत बीकमसी।
४- ,, मंडला जी।	९-पड़िहार बेला जी।	१४-साहूकार राठी साला जी"।
५- ,, नाथू जी।	१०-बेद लाला लाखण जी।	

२-परन्तु मुंशी देवीप्रसादजी ने संवत् १५४२ लिखा है ॥

किला बना कर एक नगर वसा दिया और उस का नाम वीकानेर रक्खा, राव वीका जी महाराज का यश सुन कर उक्त नगर में ओसवाल और महेश्वरी वैश्य आदि बड़े २ धनाढ्य साहूकार आ २ कर वसने लगे, इस प्रकार उक्त नगर में राव वीका जी महाराज के पुण्यप्रभाव से दिनों दिन आवादी वढ़ती गई ।

मन्त्री वच्छराज ने भी वीकानेर के पास वच्छासर नामक एक ग्राम वसाया, कुछ काल के पश्चात् मन्त्री वच्छराज जी को शेत्रुञ्जय की यात्रा करने का मनोरथ उत्पन्न हुआ, अतः उन्हों ने संघ निकाल कर शेत्रुञ्जय और गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा की, मार्ग में साधर्मी भाइयों को प्रतिगृह में एक मोहर, एक थाल और एक लड्डू का लावण वाँटा तथा संघपति की पदवी प्राप्त की और फिर आनन्द के साथ वीकानेर में वापिस आ गये ।

वच्छराज मन्त्री के--करमसी, वरसिंह, रत्ती और नरसिंह नामक चार पुत्र हुए और वच्छराज के छोटे भाई देवराज के--देसू, तेजा और भूण नामक तीन पुत्र हुए ।

राव श्री लूणकरण जी महाराज ने वच्छावत करम सी को अपना मन्त्री वनाया, मुहते करमसी ने अपने नाम से करमसीसर नामक ग्राम वसाया, फिर वहुत से स्थानों का संघ वुला कर तथा वहुत सा द्रव्य खर्च कर खरतरगच्छाचार्य श्री जिनहंस सूरि महाराज का पाट महोत्सव किया, एवं विक्रमसंवत् १५७० में वीकानेर नगर में नेमिनाथ स्वामी का एक वड़ा मन्दिर वनवाया जो कि धर्मस्तम्भरूप अभी तक मौजूद है, इस के सिवाय इन्हों ने तीर्थयात्रा के लिये संघ निकाला तथा शेत्रुञ्जय गिरनार और आबू आदि तीर्थों की यात्रा की तथा मार्ग में एक मोहर, एक थाल और एक लड्डू का प्रतिगृह में साधर्मी भाइयों को लावण वाँटा और आनंद के साथ वीकानेर आ गये ।

राव श्री लूणकरण जी के--पाटनशीन राव श्री जैतसी जी हुए, इन्हों ने मुहते करमसी के छोटे भाई वरसिंह को अपना मन्त्री नियत किया ।

वरसिंह के मेघराज, नगराज, अमरसी, भोजराज, डुंगरसी और हरराज नामक छः पुत्र हुए । इन के द्वितीय पुत्र नगराज के संग्रामसिंह नामक पुत्र हुआ और संग्रामसिंह के कर्मचन्द नामक पुत्र हुआ ।

वरसिंह के काल को प्राप्त होने से राव श्री जैतसी जी ने उन के स्थानपर उन के द्वितीय पुत्र नगराज को नियत किया ।

१--राज्यमन्त्री वच्छराज की औलादवाले लोग वच्छावत कहलाये ॥

२--दसू जी की औलादवाले लोग दसवाणी कहलाये ॥

३--यह नारनौल के लोदी हाजीखान के साथ युद्ध कर उसी युद्ध में काम आया ॥

४--डुंगरसी की औलादवाले लोग डुंगराणी कहलाये ॥

५--एक लेख में ऐसा भी लिखा है कि अमरसी जी के पुत्र संग्रामसिंह जी हुए ॥

मन्त्री नगराज को चाँपानेर के वादशाह मुंदफर की सेवा में किसी कारण से रहना पड़ा और उन्हों ने वादशाह को अपनी चतुराई से खुश करके अपने मालिक की पूरी सेवा वजाई तथा वादशाह की आज्ञा लेकर उन्हों ने श्री शेत्रुञ्जय की यात्रा की और वहाँ भण्डार की गड़वड़ को देख कर शेत्रुञ्जय गढ़ की कूँची अपने हाथ में ले ली, मार्ग में एक रुपया, एक थाल और पाँच सेर का एक लड्डू, इन का प्रतिगृह में साधर्मी भाइयों को प्रतिस्थान में लावण वाँटते हुए तथा गिरनार और आवू तीर्थ को भेंट करते हुए ये वीकानेर में आ गये।

संवत् १५८२ में जव कि दुर्भिक्ष पड़ा उस समय इन्हों ने शत्रुकार (सदावर्त्त) दिया, जिस में तीन लाख पिरोजों का व्यय किया।

एक दिन इन के मन में शयन करने के समय देरावर नगर में जाकर दादा जी श्री जिनकुशल सूरि जी महाराज के दर्शन करने की अभिलाषा हुई परन्तु मन में यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि देरावर का मार्ग वहुत कठिन है, पीने के लिये जलतक भी साथ में लेना पड़ेगा, साथ में संघ के रहने से साधर्मी भाई भी होंगे, उन को किसी प्रकार की तकलीफ होना ठीक नहीं है, इस लिये सव प्रवंध उत्तम होना चाहिये, इत्यादि अनेक विचार मन में होते रहे, पीछे निद्रा आ गई, पिछली रात्रि में स्वप्न में श्री गुरुदेव का दर्शन हुआ तथा यह आवाज़ हुई कि–"हमारा स्तम्भ गड़ाले में करा के वहाँ की यात्रा कर, तेरी यात्रा मान लेंगे" आहा! देखो भक्त जनों की मनोकामना किस प्रकार पूर्ण होती है, वास्तव में नीतिशास्त्र का यह वचन विलकुल सत्य है कि–"नहीं देव पाषाण में, दारु मृत्तिका माँहि ॥ देव भाव माँही वसै, भावमूल सव माँहि" ॥ १ ॥ अर्थात् न तो देव पत्थर में है, न लकड़ी और मिट्टी में है, किन्तु देव केवल अपने भाव में है, तात्पर्य यह है कि–जिस देवपर अपना सच्चा भाव होगा वैसा ही फल वह देव अपनी शक्ति के अनुसार दे सकेगा, इस लिये सव में भाव ही मूल (कारण) समझना चाहिये, निदान मुहते नगराज ने स्वप्न के वाक्य के अनुसार स्तम्भ कराया और विक्रम संवत् १५८३ में यात्रा की, उन की यात्रा के समाचार को सुन कर गुरुदेव का दर्शन करने के लिये वहुत दूर २ के यात्री जन आने लगे और उन की वह यात्रा सानन्द पूरी हुई।

कुछ काल के पश्चात् इन्हों ने अपने नाम से नगासर नामक ग्राम वसाया।

राव श्री कल्याणमल जी महाराज ने मन्त्री नगराज के पुत्र संग्रामसिंह को अपना राज्यमन्त्री नियत किया, संग्रामसिंह ने खरतरगच्छाचार्य श्री जिनमाणिक्य सूरि महाराज को साथ में लेकर शेत्रुञ्जय आदि तीर्थों की यात्रा के लिये संघ निकाला तथा शेत्रुञ्जय, गिरनार और आवू आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए तथा मार्ग में प्रतिगृह में साधर्मी भाइयों को एक रुपया, एक थाल और एक लड्डू, इन का लावण वाँटते हुए चित्तौड़गढ़

में आये, वहाँ राना श्री उदयसिंह जी ने इन का बहुत मान सम्मान किया, वहाँ से रवाना हो कर जगह २ सम्मान पाते हुए ये आनन्द के साथ बीकानेर में आ गये, इन के सब व्यवहार से राव श्री कल्याणमल जी महाराज इनपर बड़े प्रसन्न हुए।

इन (मुहता संग्रामसिंह जी) के कर्मचन्द नामक एक बड़ा बुद्धिमान् पुत्र हुवा, जिस को बीकानेर महाराज श्री रायसिंह जी ने अपना मन्त्री नियत किया।

राज्यमन्त्री बच्छावत कर्मचन्द मुहते ने क्रिया के उद्धारी अर्थात् त्यागी वैरागी खरतरगच्छाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज के आगमन की बधाई को सुनानेवाले याचकों को बहुत सा द्रव्यप्रदान किया और बड़े ठाठ से महाराज को बीकानेर में लाये, उन के रहने के लिये अपने घोड़ों की घुड़शाल जो कि नवीन बनवा कर तैयार करवाई थी प्रदान की अर्थात् उस में महाराज को ठहराया और विनति कर संवत् १६२५ का चतुर्मास करवाया, उन से विधिपूर्वक भगवतीसूत्र को सुना, चतुर्मास के बाद आचार्य महाराज गुजरात की तरफ विहार कर गये।

कुछ दिनों के बाद कारणवश बीकानेरमहाराज की तरफ से मन्त्री कर्मचन्द का अकबर बादशाह के पास लाहौर नगर में जाना हुआ, वहीं का प्रसंग है कि-एक दिन जब आनन्द में बैठे हुए अनेक लोगों का वार्तालाप हो रहा था उस समय अकबर बादशाह ने राज्यमन्त्री कर्मचन्द से पूछा कि-"इस वख्त अवलिया काजी जैन में कौन है" इस के उत्तर में कर्मचन्द ने कहा कि-जैनाचार्य श्री जिनचन्द्र सूरि हैं, जो कि इस समय गुजरात देश में धर्मोपदेश करते हुए विचरते हैं" इस बात को सुन कर बादशाह ने आचार्य महाराज के पधारने के लिये लाहौर नगर में अपने आदमियों को भेज कर उन से बहुत आग्रह किया, अतः उक्त आचार्य महाराज विहार करते हुए कुछ समय में लाहौर नगर में पधारे, महाराज के वहाँ पधारने से जिनधर्म का जो कुछ उद्योत हुआ उस का वर्णन हम विस्तार के भय से यहां पर नहीं लिख सकते हैं, वहाँ का हाल पाठकों को उपाध्याय श्री समयसुन्दर जी गणी (जो कि बड़े नामी विद्वान् हो गये हैं) के बनाये हुए प्राचीन स्तोत्र आदि से विदित हो सकता है।

१-नव हाथी दीने नरेस मद सों मतवाले॥ नवे गाम बगसीस लोक आवे नित हाले॥ १॥ ऐराकी सो पांच सुतो जग सगलो जाणे॥ सवा कोड़ को दान मल्ल कवि राय बखाणे॥ २॥ कोई राव न राणा करि सके संग्रामनन्दन तें किया॥ श्री युगप्रधान के नाम सुं ज करमचंद इतना दिया॥ ३॥

२-यह स्थान उस दिन से बड़े उपासरे के नाम से विख्यात है जो कि अब भी बीकानेर में रांगड़ी के चौक में मौजूद है और बड़ा माननीय स्थान है, इस में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का एक जैन पुस्तकालय भी है जो कि देखने के योग्य है॥

३-पाठकों को उक्त विषय का कुछ बोध हो जावे इस लिये उक्त स्तोत्र यहाँ पर लिखे देते हैं, देखिये-एजु संतन की मुख वाणि सुणी जिनचंद मुणिंद महन्त जती। तप जप्प करै गुरु गुज्जर में प्रतिबोधत है भवि कू सुमती॥ तब ही चित चाहन चूंप भई समयसुन्दर के गुरु गच्छपती। पठाय पतिसाह

कर्मचन्द बच्छावत ने बीकानेर में जातिसम्बंधी भी अनेक रीति रिवाजों में संशोधन किया, वर्तमान में जो उक्त नगर में ओसवालों में चार टके की लावण बाँटने की प्रथा जारी है उस का नियम भी किसी कारण से इन्हीं (कर्मचन्द) ने बाँधा था।

मुसलमान समखाँ को जब सिरोही देश को लूटा था उस समय अनुमान हज़ार वा ग्यारह सौ जिनप्रतिमायें भी सर्व धातु की मिली थीं, जिन को कर्मचन्द बच्छावत ने लाकर बीकानेर में श्री चिन्तामणि स्वामी के मन्दिर में तलघर में भण्डार करके रख दिया था जो कि अब भी वहाँ मौजूद हैं और उपद्रवादि के समय में भण्डार से संघ की तरफ से इन प्रतिमाओं को निकाल कर अष्टाही महोत्सव किया जाता है तथा अन्त में जलयात्रा की जाती है, ऐसा करने से उपद्रवादि अवश्य शान्त हो जाता है, इस विषय का अनुभव प्रायः हो चुका है और यह बात वहाँ के लोगों में प्रसिद्ध भी है।

कर्मचंद बच्छावत ने उक्त (बीकानेर) नगर में पर्यूषण आदि सब पर्वों में कारू जनों (लुहार, सूँथार और भड़भूँजे आदि) से सब कामों का कराना बंद करा दिया था तथा उन के लागे भी लगवा दिये थे और जीवहिंसा को बंद करवा दिया था।

पैंतीस की साल में जब दुर्भिक्ष (काल) पड़ा था उस समय कर्मचन्द ने बहुत से

अजव्व कों छाप वोलाए गुरु गच्छ राज गती॥ १ ॥ ए जु गुज्जर तें गुरुराज चले विच में चोमास जालोर रहे। मेदिनी तट मंडाण कियो गुरु नागोर आदर मान लहे॥ मारवाड रिणी गुरु वन्द कों तरसै सरसै विच वेग वहे। हरख्यो संघ लाहोर आय गुरु पतिसाह अकव्वर पांव ग्रहे॥ २ ॥ ए जू साह अकव्वर वव्वर के गुरु सूरत देखत ही हरखे। हम जोग जती सिध साध व्रती सब ही षट दरशन के निरखे॥ (तीसरी गाथा के उत्तरार्ध का प्रथम पाद ऊपरली पढ़त में न होने से नहीं लिख सके हैं)। तप जप्प दया धर्म धारण को जग कोइ नहीं इन के सरखे॥ ३ ॥ गुरु अम्मृत वाणि सुणी सुलतान ऐसा पतिसाह हुकम्म दिया। सव आलम माँहि अमार पलाय वोलाय गुरू फुरमाण दिया॥ जग जीव दया धर्म दाखिन तें जिनशासन में जु सोभाग लिया। समे सुंदर के गुणवंत गुरू दग देखत हरषित होत हिया॥ ४ ॥ ए जु श्री जी गुरु धर्म ध्यान मिलै सुलतान सलेम अरज्ज करी। गुरु जीव प्रेम चाहत है चित अन्तर प्रति प्रतीति धरी॥ कर्मचंद बुलाय दियो फुरमाण छोड़ाय खंभाइत की मछरी। समे सुंदर के सब लोकन में जु खरतर गच्छ की ख्यांत खरी॥ ५ ॥ ए जु श्री जिनदत्त चरित्र सुणी पतिसाह भए गुरु राजी ये रे। उमराव सबे कर जोड़ खरे पभणे आपणे मुख हाजी ये रे॥ जुग प्रधान का ए गुरु कूं गिगड दुं गिगड दुं धुं धुं वाजीये रे। समय सुंदर के गुरु मान गुरू पतिसाह अकव्वर गाजीये रे॥ ६ ॥ ए जु ग्यान विज्ञान कला गुण देख मेरा मन रींझीये जू। हमाउ को नंदन एम अखै मानसिंह पटोधर कीजीए जू॥ पतिसाह हजूर थप्यो संघ सूरि मंडाण मंत्री सर वींजीएजू। जिण चंद गुरू जिण सिंह गुरू चंद सूर ज्यूं प्रतापी ए जू॥ ७ ॥ ए जू रीहड वंश विभूषण हंस खरतर गच्छ समुद्र ससी। प्रतप्यो जिण माणिक सूरि के [illegible] प्रभाकर ज्यूं प्रणमूं उलसी॥ मन शुद्ध अकव्वर मानत है जग जाणत है परतीत इसी। जिण चंद मुणिंद चिरं प्रतपो समें सुंदर देत असीस इसी॥ ८ ॥ इति गुरुदेवाष्टकं सम्पूर्णम्॥

लोगों का प्रतिपालन किया था और अपने साधर्मी भाइयों को बारह महीनों (साल भर) तक अन्न दिया था तथा वृष्टि होने पर सब को मार्गव्यय तथा खेती आदि करने के लिये द्रव्य दे दे कर उन को अपने २ स्थान पर पहुँचा दिया था, सत्य है कि सच्चा साधर्मिवात्सल्य यही है।

विदित हो कि ओसवालों के गोत्रों के इतिहासों की वहियाँ महात्मों लोगों के पास थीं और वे लोग यजमानों से बहुत कुछ द्रव्य पाते थे (जैसे कि वर्तमान में भाट लोग यजमानों से द्रव्य पाते हैं), परन्तु न मालूम कि उन पर कर्मचंद की क्यों कड़ी दृष्टि हुई जो उन्हों ने छल करके उन सब (महात्मा लोगों) को सूचना दी कि-"आप सब लोग पधारें क्योंकि मुझ को ओसवालों के गोत्रों का वर्णन सुनने की अत्यन्त अभिलाषा है, आप लोगों के पधारने से मेरी उक्त अभिलाषा पूर्ण होगी मैं इस कृपा के बदले में आप लोगों का द्रव्यादि से यथायोग्य सत्कार करूँगा" बस इस वचन को सुन कर सब महात्मा आ गये और इधर तो उन को कर्मचन्द ने भोजन करने के लिये बिठला दिया, उधर उन के नौकरों ने सब वहियों को लेकर कुए में डाल दिया, क्यों-कि कर्मचंद ने अपने नौकरों को पहिले ही से ऐसा करने के लिये आज्ञा दे रक्खी थी, इस बात पर यद्यपि महात्मा लोग अप्रसन्न तो बहुत हुए परन्तु विचारे कर ही क्या सकते थे, क्योंकि कर्मचंद के प्रभाव के आगे उन का क्या वश चल सकता था, इस लिये वे सब लाचार हो कर मन ही मन में दुःशाप देते हुए चले गये, कर्मचंद भी उन की चेष्टा को देख कर उन से बहुत अप्रसन्न हुए, मानो उन के क्रोधानल में और भी घृत की आहुति दी, अस्तु-किसी विद्वान् ने सत्य ही कहा है कि-"न निर्मितः केन न चापि दृष्टः। श्रुतोऽपि नो हेममयः कुरङ्गः॥ तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य। विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" ॥ १ ॥ अर्थात् सुवर्ण के हरिण को न तो किसी ने कभी बनाया है और न उसे कभी किसी ने देखा वा सुना ही है (अर्थात् सुवर्ण के मृग का होना सर्वथा असम्भव है) परन्तु तो भी रामचन्द्र जी को उस के लेने की अभिलाषा हुई (कि वे उसे पकड़ने के लिये उस के पीछे दौड़े) इस से सिद्ध होता है कि-विनाशकाल के आने पर मनुष्य की बुद्धि भी विपरीत हो जाती है ॥ १ ॥ बस यही वाक्य कर्मचन्द में भी चरितार्थ हुआ, देखो! जब तक इन के पूर्व पुण्य की प्रबलता रही तब तक तो इन्हों ने उस के प्रभाव से अठारह रजवाड़ों में मान पाया तथा इन की बुद्धिमत्ता पर प्रसन्न होकर बीकानेर महाराज श्री रायसिंह जी साहब से मांग कर बादशाह अकबर ने इन को अपने पास रक्खा, परन्तु जब विनाशकाल उपस्थित हुआ तब इन की बुद्धि भी विपरीत हो

१-ये महात्मा लोग खरतर गच्छ के थे, इन की यजमानी पूर्ववत् अब भी विद्यमान है, इसी प्रकार से अन्यान्य गच्छों के महात्माओं के पास भी तत्सम्बंधी गच्छवालों की वंशावलियाँ हैं यह हम ने सुना है॥

गई अर्थात् उधर तो इन्हों ने ओसवालों के इतिहासों की वहियों को कुए में डलवा दिया (यह कार्य इन्हों ने हमारी समझ में वहुत ही वुरा किया) और इधर ये बीकानेर महाराज श्री रायसिंह जी साहव के भी किसी कारण से अप्रीति के पात्र वन गये, इस कार्य का परिणाम इन के लिये वहुत ही वुरा हुआ अर्थात् इन की सम्पूर्ण विभूति नष्ट हो गई, उक्त कार्य के फलरूप मतिभ्रंश से इन्हों ने अपने गृह में स्थित तमाम कुटुम्ब को क्षण भर में तलवार से काट डाला, (केवल इन के लड़के की स्त्री वच गई, क्योंकि वह गर्भवती होने के कारण अपने पीहर में थी) तथा अन्त में तलवार से अपना भी शिर काट डाला और दुर्दशा के साथ मृत्यु को प्राप्त हुए, तात्पर्य यह है कि–इन के दुष्कृत्य से इन के घराने का वुरी तरह से नाश हुआ, सत्य है कि–वुरे कार्य का फल वुरा ही होता है, इन के पुत्र की स्त्री (जो कि ऊपर लिखे अनुसार वच गई थी) के कालान्तर में पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस की सन्तति (औलाद) वर्तमान में उदयपुर तथा माँडवगढ़ में निवास करती है, ऐसा सुनने में आया है ॥

वोहित्थरा गोत्र की निम्नलिखित शाखायें हुईं:—

१–वोहित्थरा । २–फोफलिया । ३–वच्छावत । ४–दसवाणी । ५–डुंगराणी । ६–मुकीम । ७–साह । ८–रताणी । ९–जैणावत ॥

उन्नीसवीं संख्या–गैलड़ा गोत्र ॥

विक्रम संवत् १५५२ (एक हज़ार पाँच सौ वावन) में गहलोत राजपूत गिरधर को जैनाचार्य श्री जिनहंस सूरि जी महाराज ने प्रतिवोध दे कर उस का ओसवाल वंश और गैलड़ा गोत्र स्थापित किया था, इस गोत्र में जगत्सेठ[3] एक बड़े नामी पुरुष हुए तथा

१–अप्रीति के पात्र वनने का इन (कर्मचंद जी) से कौन सा कार्य हुआ था, इस वात का वर्णन हम को प्राप्त नहीं हुआ, इस लिये उसे यहाँ नहीं लिख सके हैं, वच्छावतों की वंशावलीविषयक जिस लेख का उल्लेख प्रथम नोट में कर चुके हैं उस में केवल कर्मचंद जी के पिता संग्रामसिंह जी तक का वर्णन है अर्थात् कर्मचंद जी का वर्णन उस में कुछ नहीं है ॥

२–एक वृद्ध महात्मा से यह भी सुनने में आया है कि–गैलड़ा राजपूत तो गहलोत हैं और प्रतिवोध के समय आचार्य महाराज ने उक्त नाम स्थापित नहीं किया था किन्तु प्रतिवोध के प्राप्त करने के वाद उन में गैलाई (पागलपन) मौजूद थी अतः उन के गोत्र का गैलड़ा नाम पड़ा ॥

३–प्रथम तो ये ग़रीवी हालत में थे तथा नागौर में रहते थे परन्तु ये पायचन्द गच्छ के एक यति जी की अत्यन्त सेवा करते थे, वे यति जी ज्योतिष् आदि विद्याओं के पूर्ण विद्वान् थे, एक दिन रात्रि में तारामण्डल को देख कर यति जी ने उन से कहा कि–"यह वहुत ही उत्तम समय है, यदि इस समय में कोई पुरुष पूर्व दिशा में परदेश को गमन करे तो उसे राज्य की प्राप्ति हो" इस वात को सुनते ही ये वहाँ से उसी समय निकले परन्तु नागौर से थोड़ी दूर पर ही इन्हों ने रास्ते में फण निकाले हुए एक बड़े भारी काले सर्प को देखा, उस को देख कर ये भयभीत हो कर वापिस लौट आये और यति जी से सव वृत्तान्त

उन्हीं के कुटुम्ब में बनारसवाले राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द भी बड़े विद्वान् हुए, जिन पर प्रसन्न हो कर श्रीमती गवर्नमेंट ने उन्हें उक्त उपाधि दी थी ॥

बीसवीं संख्या—लोढा गोत्र ॥

महाराज पृथ्वीराज चौहान के राज्य में लाखन सिंह नामक चौहान अजमेर का सूबेदार था, उस के कोई पुत्र नहीं था, लाखन सिंह ने एक जैनाचार्य की बहुत कुछ सेवा भक्ति की और आचार्य महाराज से पुत्रविषयक अपनी कामना प्रकट की, जैनाचार्य ने कहा कि—"यदि तू दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करे तो तेरे पुत्र हो सकता है" लाखन सिंह ने ऊपरी मन से इस बात का स्वीकार कर लिया परन्तु मन में दगा रक्खा अर्थात् मन में यह विचार किया कि—पुत्र के हो जाने के बाद दयामूल जैन धर्म को छोड़ दूँगा, निदान लाखन सिंह के पुत्र तो हुआ परन्तु वह विना हाथ पैरों का केवल मांस के लोदे (लोंदे) के समान उत्पन्न हुआ, उस को देख कर लाखन सिंह ने समझ लिया कि मैं ने जो मन में छल रक्खा था उसी का यह फल है, यह विचार वह शीघ्र ही आचार्य महाराज के पास जा कर उन के चरणों में गिर पड़ा और अपनी सब दगाबाज़ी को प्रकट कर दिया तब आचार्य महाराज ने कहा कि—"फिर ऐसी दगाबाज़ी करोगे" लाखन सिंह ने हाथ जोड़ कर कहा कि"—महाराज ! अब कभी ऐसा न करूँगा" तब सूरि महाराज ने कहा कि—"इस को तो वस्त्र में लपेट कर बर्गद (बड़) की थोथ (खोह) में रख दो और हम से मन्त्रे हुए पानी को ले जा कर उस के ऊपर तीन दिन तक उस पानी के छींटे लगाओ, ऐसा करने से अब की बार भी तुम्हारे पुत्र होगा, परन्तु देखो ! यदि दयामूल धर्म में दृढ़ रहोगे तो तुम इस भव और पर भव में सुख को पाओगे" इस प्रकार उपदेश दे-

---

कह सुनाया, उस को सुन कर यति जी ने कहा कि—"अरे ! सर्प देखा तो क्या हुआ ? तू अब भी चला जा, यद्यपि अब जाने से तू राजा तो नहीं होगा परन्तु हाँ लक्ष्मी तेरे चरणों में लोटेगी और तू जगत्सेठ के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा" यह सुनते ही ये वहाँ से चल दिये और यति जी के कथन के अनुसार ही सब बात हुई अर्थात् इन को खूब ही लक्ष्मी प्राप्त हुई और ये जगत्सेठ कहलाये, इन का विशेप वर्णन यहाँ पर लेख के बढ़ने के भय से नहीं कर सकते हैं किन्तु इन के विषय में इतना ही लिखना काफी है कि—लक्ष्मी इन के लिये जङ्गल और पानी के बीच में भी हाज़िर खड़ी रहती थी, इन का स्थान मुर्शिदाबाद में पूर्व काल में बड़ा ही सुन्दर बना हुआ था, परन्तु अब उस को भागीरथी ने गिरा दिया है, अब उन के स्थान पर गोद आये हुए पुत्र हैं और वे भी जगत्सेठ के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन का कायदा भी समयानुसार अब भी कुछ कम नहीं है उन के दो पुत्ररत्न हैं उन की बुद्धि और तेज को देख कर आशा की जाती है कि वे भी अपने बड़ों की कीर्त्तिरूप वृक्ष का सिञ्चन कर अवश्य अपने नाम को प्रदीप्त करेंगे, क्योंकि अपने सत्पूर्वजों के गुणों का अनुसरण करना ही सुपुत्रों का परम कर्त्तव्य है ॥

१—इस गोत्र की उत्पत्ति के दो लेख हमारे देखने में आये हैं तथा एक दन्तकथा भी सुनने में आई है परन्तु संवत् और प्रतिबोध देने वाले जैनाचार्य का नाम नहीं देखने में आया है ॥

कर आचार्य महाराज ने लाखन सिंह को दयामूल जैन धर्म का अङ्गीकार करवाया और उस का ओसवाल वंश तथा लोढा गोत्र स्थापित किया।

महाराज के कथनानुसार लाखन सिंह के पुनः पुत्र उत्पन्न हुआ और उस का परिवार बहुत बढ़ा अर्थात् दिल्ली, अजमेर नागौर और जोधपुर आदि स्थानों में उस का परिवार फैल कर आबाद हुआ।

लोढों के गोत्र में दो प्रकार की मातायें मानी गईं अर्थात् एक तो वड़ की पाटी बना कर उस पाटी को ही माता समझ कर पूजने लगे और कई एक वड़लाई माता को पूजने लगे।

लोढा गोत्र में पुनः निम्नलिखित खाँपें हुईः—

१–टोडर[1] मलोत। २–छज मलोत। ३–रतन पालोत। ४–भाव सिन्धोत॥

सूचना—ऊपर लिख चुके हैं कि–लोढों की कुलदेवी वड़लाई माता मानी गई है, अतः जो लोढे नागौर में रहते हैं उन की स्त्रियों के लिये तो यह बहुत ही आवश्यक बात मानी गई है कि–सन्तान के उत्पन्न होने के पीछे वे जा कर पहिले माता के दर्शन करें फिर कहीं दूसरी जगह को जाने के लिये घर से निकलें, इन के सिवाय जो लोढे बाहर रहते हैं वे तो बड़ी लड़की का और प्रत्येक लड़के का झडूला वहाँ जा कर उतारते हैं तथा काली बकरी और भैंस को न तो खरीदते हैं और न घर में रखते हैं, ये लोग चाक को भी व्याह में नहीं पूजते हैं, जोधपुर नगर में लोढों को राव का खिताब है, कुछ वर्षों से इन लोगों में से कुछ लोग दयामूल जैन धर्म को छोड़ कर वैष्णव भी हो गये हैं॥

ओसवालों के १४४४ गोत्र कहे जाने का कारण॥

लगभग १६०० संवत् में इस बात को जानने के लिये कि ओसवालों के गोत्रों की कितनी संख्या है एक सेवक (भोजक) ने परिश्रम करना शुरू किया तथा बहुत अर्से में उसने १४४३ (एक हजार चार सौ तेतालीस) गोत्रों को लिख कर संग्रहीत किया, उस समय उस ने अपनी समझ के अनुसार यह भी विचार लिया कि अब कोई भी गोत्र बाकी नहीं रहा है, ऐसा विचार कर वह अपने घर लौट आया और देशाटन का सब हाल अपनी स्त्री से कह सुनाया, तब उस की स्त्री ने कहा कि–"तुम ने मेरे पीहरवाले ओसवालों की खांप लिखी है" यह सुन कर सेवक ने चौंक कर अपनी स्त्री से पूछा कि–"उन लोगों की क्या खांप है" स्त्री ने कहा कि "डोसी" है, यह सुन कर सेवक ने कहा

१–टोडर मल और छजमल को दिल्ली के बादशाह ने शाह की पदवी दी थी अतः सब ही लोढे शाह कहलाते हैं॥

कि–"फिर भी कोई होसी" इस प्रकार कह कर उक्त खाँप को भी लिख लिया, बस तब ही से ओसवालों के १४४४ गोत्र कहे जाते हैं ॥

सूचना—हमारी समझ में ऊपर लिखा हुआ लेख केवल दन्तकथारूप प्रतीत होता है, अतः इस विषय में हम तो पाठकगणों से यही कह सकते हैं कि–ओसवालों के १४४४ गोत्र कहने की केवल एक प्रथामात्र चल पड़ी है, क्योंकि वे सब मूल गोत्र नहीं हैं किन्तु एक एक मूल गोत्र में से पीछे से शाखायें तथा प्रतिशाखायें निकली हैं, वे सब ही मिला कर १४४४ संख्या समझनी चाहिये, उन्हीं को शाखा, खांप, नख और ओलखाण इत्यादि नामों से भी कह सकते हैं, अतः जिन शाखाओं के प्रचरित होने का हाल मिला है उन को हम आगे "शाखा गोत्र" इस नाम से लिखेंगे, क्योंकि खांपें तो व्यापार आदि अनेक कारणों से होती गई हैं अर्थात् राज का काम करने से, किसी नगर से उठ कर अन्यत्र जा कर वसने से, व्यापार धन्धा करने से और लौकिक प्रथा आदि अनेक कारणों से बहुत सी खांपें हुई हैं, उन के कुछ उदाहरण भी यहाँ लिखते हैं–देखिये ! राज के खजाने का काम करने से लोगों को सब लोग खजांची कहने लगे तथा उन की औलादवाले लोग भी खजांची कहलाये, राज के कोठार का काम करने से लोगों को सब लोग कोठारी कहने लगे और उन की औलादवाले लोग भी कोठारी कहलाये, राज में लिखने का काम करने से कोचरों को फलोधी मारवाड़ में सब लोग 'कानूंगा कहने लगे (वे अब 'कानुँगा' कहलाते हैं) छाजेड़ों को बीकानेर में निरखी का खिताब है तथा वेगाणियों को भी निरखी तथा मुसरफ का खिताब मिला अतः वे उक्त नामों से ही पुकारे जाते हैं, इसी प्रकार बांठियों में से हरखा जी की औलादवाले लोग हरखावत कहलाये, ऐसे ही बोथरों के गोत्रवाले लोग बीकानेर में मुकीम और साह भी कहलाते हैं, राखेचा गोत्रवाले कुछ घर पूगल को छोड़ कर अन्यत्र जा

१–इस ग्रन्थ की दूसरी आवृत्ति में इस बात का अच्छे प्रकार से खुलासा कर दिया जावेगा कि–कौन २ से मूल गोत्रों की कौन २ सी शाखायें तथा प्रतिशाखायें हैं, इस लिये सब ओसवाल पाठकगणों को उचित है कि–अपनी जाति के इस अच्छे कार्य में अवश्य सहायता प्रदान करें, सहायता हम केवल इतनी ही चाहते हैं कि वे अपने २ मूल गोत्र और उस की शाखा आदि का जो कुछ हाल उन्हें याद हो उस सब को लिख कर हमारे विवेकलब्धि शीलसौभाग्य पुस्तकादि कार्यालय (बीकानेर) में भेज देवें तथा जो २ बात जब २ इस विषय की विदित होवे तब २ उसे भी कृपा कर भेजते रहें, उक्त विषय का लेख भेजते समय उन को उस की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता आदि का कुछ भी खयाल नहीं करना चाहिये अर्थात् दन्तकथा, प्राचीन लेख तथा भाटों के पास की वंशावलि का लेख इत्यादि जो कुछ मिले उसे भेज देना चाहिये, परन्तु हाँ साथ में उस का नाम अवश्य लिख देना चाहिये, हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दे कर यदि सुज्ञ ओसवाल महोदय इस विषय में सहायता करेंगे तो थोड़े ही समय में ओसवालों के सम्पूर्ण गोत्रों का इतिहास पूर्ण रीति से तैयार हो जावेगा ॥

वसे थे अतः उन को सब लोग पूगलिया कहने लगे, वेगवाणी गोत्र का एक पुरुष मकसूदावाद में गया था उस के शरीर पर रोम (बाल) बहुत थे अतः वहाँ वाले लोग उस को "रुँवाल जी" कह कर पुकारने लगे, इसी लिये उस की औलादवाले लोग भी रुँवाल कहलाये, बहूफणा गोत्रवाले एक पुरुष ने पटवे का काम किया था अतः उस की औलादवाले लोग पटवा कहलाये, फलोधी में झावक गोत्र का एक पुरुष शरीर में बहुत दुबला था इस लिये सब लोग उस को मड़िया २ कह कर पुकारते थे इस लिये अब उस की औलादवाले लोग वहाँ मड़िया कहलाते हैं, इस रीति से ओसवालों में बलाई चण्डालिया और बंभी ये भी नख हैं, ये (नख) किसी नीच जाति के हेतु से नहीं प्रसिद्ध हुए हैं-किन्तु बात केवल इतनी थी कि इन लोगों का उक्त नीच जातिवालों के साथ व्यापार (रोज़गार) चलता था, अतः लोगों ने इन्हें वैसा २ ही नाम दे दिया था, उन की औलादवाले लोग भी ऊपर कहे हुए उदाहरणों के अनुसार उन्हीं खापों के नाम से प्रसिद्ध हो गये, तात्पर्य यह है कि-ऊपर लिखे अनुसार अनेक कारणों से ओसवाल वंश में से अनेक शाखायें और प्रतिशाखायें निकलती गईं ।

ओसवालों में बलाई और चण्डालिया आदि खांपों के नाम सुन कर बहुत से अक्ल के अन्धे कह बैठते हैं कि-जैनाचार्यों ने नीच जातिवालों को भी ओसवाल वंश में शामिल कर दिया है, सो यह केवल उन की मूर्खता है, क्योंकि ओसवाल वंश में सोलह आने में से पन्द्रह आने तो राजपूत (क्षत्रियवंश) हैं, बाकी महेश्वरी वैश्य और ब्राह्मण हैं अर्थात् प्रायः इन तीन ही जातियों के लोग ओसवाल बने हैं, इस बात को अभी तक लिखे हुए ओसवाल वंशोत्पत्ति के खुलासा हाल को पढ़ कर ही बुद्धिमान् अच्छे प्रकार से समझ सकते हैं[1] ।

पहिले लिख चुके हैं कि-एक सेवक ने अत्यन्त परिश्रम कर ओसवालों के १४४४ गोत्र लिखे थे, उन सब के नामों का अन्वेषण करने में यद्यपि हम ने बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु वे नहीं मिले, किन्तु पाठकगण जानते ही हैं कि-उद्यम और खोज के करने से यदि सर्वथा नहीं तो कुछ न कुछ सफलता तो अवश्य ही होती है, क्योंकि यह

१-गुजरात देश में कुमारपाल राजा के समय में अर्थात् विक्रम संवत् बारह सौ में पूर्णतिलक गच्छीय जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जी महाराज ने श्रीमालियों को प्रतिबोध दे कर जैनधर्मी श्रावक बनाया था जो कि गुजरात देश में वर्त्तमान में दशे श्रीमाली और बीसे श्रीमाली, इन दो नामों से पुकारे जाते हैं तथा जैनी श्रावक कहलाते हैं, इन के सिवाय उक्त देश में छीपे और भावसार भी जैन धर्म का पालन करते हैं और वे भी उक्त जैनाचार्य से ही प्रतिबोध को प्राप्त हुए हैं, उन में से यद्यपि कुछ लोग वैष्णव भी हो गये हैं परन्तु विशेष जैनी हैं, उक्त देश में जो श्रीमाली तथा भावसार आदि जैनी हैं उन के साथ ओसवालों का कन्या का देना लेना आदि व्यवहार तो नहीं होता है, परन्तु जैन धर्म का पालन करने से उन को ओसवाल वंशवाले जन साधर्मी भाई अलबत्ता समझते हैं ॥

एक स्वाभाविक नियम है, बस इसी नियम के अनुसार हमारे परम मित्र यतिवर्य पण्डित श्रीयुत श्री अनूपचन्द्र जी मुनि महोदय के स्थापित किये हुए हस्तलिखित पुस्तकालय में ओसवालों के गोत्रों के वर्णन का एक छन्द हमें प्राप्त हुआ उस छन्द में करीब ६०० (छः सौ) गोत्रों के नाम हैं–छन्दोरचयिता (छन्द के बनाने वाले) ने मूलगोत्र, शाखा तथा प्रतिशाखा, इन सब को एक में ही मिला दिया है और सब को गोत्र के ही नाम से लिखा है कि–जिस से उक्त गोत्र आदि बातों के ठीक २ जानने में भ्रम का रहना सम्भव है, अतः हम उक्त छन्द में कहे हुए गोत्रों की नामावलि को छाँट कर पाठकों के जानने के लिये अकारादि क्रम से लिखते हैं:—

सं०। गोत्रों के नाम।	सं०। गोत्रों के नाम।	सं० गोत्रों के नाम।	सं० गोत्रों के नाम॥
अ			
१ अभड़	१४ आवगोत	२७ कनिया	४० कवाड़िया
२ अखुभ	१५ आसी	२८ कनोजा	४१ काकलिया
३ असोचिया	१६ आभू	२९ करणारी	४२ काकरेचा
४ अमी	१७ आखा	३० करहेडी	४३ काँवसा
आ	इ		
५ आईचणांग	१८ इलड़िया	३१ कड़िया	४४ काग
	उ		
६ आकाशमार्गी	१९ उनकण्ठ	३२ कठोतिया	४५ काँकरिया
७ आँचलिया	२० उर	३३ कठफोड़	४६ कासतवाल
	ओ		
८ आछा	२१ ओसतवाल	३४ कहा	४७ काजल
९ आथरिया	२२ ओदीचा	३५ कसाण	४८ काटेलवडा
	क		
१० आमदेव	२३ कउक	३६ कठ	४९ कात्रेड़िया
११ आलझाड़ा	२४ कटारिया	३७ कठाल	५० कांधाल
१२ आलावत	२५ कठियार	३८ कनक	५१ कापड़
१३ अवड़	२६ कणोर	३९ कक्कड़	५२ काँचिया

१–इन महोदय की कृपा से उक्त छन्द की प्राप्ति के द्वारा जो हम को गोत्रविज्ञान में सहायता मिली है, उस का हम उक्त महोदय को अन्तःकरण से धन्यवाद देते हैं, इन के सिवाय उपाध्याय पण्डित श्रीयुत श्री रामलाल जी गणी और यतिवर्य पण्डित श्रीयुत श्री अबीरचन्द जी मुनि महोदय (जो कि वृद्ध और जैनसिद्धान्त के अच्छे ज्ञाता हैं) ने भी ओसवालवंशावलि के सङ्ग्रह करने में हम को सहायता प्रदान की है अतः हम उक्त सज्जनों को भी धन्यवाद देते हैं ॥

५३ कानरेला
५४ काला
५५ काउ
५६ काविया
५७ किराड़
५८ कुम्भज
५९ कुंकुंरोल
६० कुंकुम
६१ कुणन
६२ कुंड
६३ कुम्भट
६४ कुचोर्या
६५ कुवुद्धि
६६ कुलवन्त
६७ कुक्कुड़
६८ कुलहट
६९ कूकड़ा
७० कूमद
७१ कूहड़
७२ केड़
७३ केराणी
७४ केलवाल
७५ कोचर
७६ कोठारी
७७ कोठेचा
७८ कोवेड़ा
७९ कोल्या
८० कोलर
८१ कंठीर

ख

८२ खगाणी
८३ खड़भणशाली
८४ खटवड़
८५ खाटेड़
८६ खाटोड़ा
८७ खारीवाल
८८ खाव्या
८९ खिलची
९० खीचिया
९१ खीची
९२ खीमसरा
९३ खुड़धा
९४ खेचा
९५ खेड़िया
९६ खेत्तरपाल
९७ खेतसी
९८ खेमासरिया
९९ खेमानंदी
१०० खैरवाल
१०१ खुतड़ा

ग

१०२ गणधर
१०३ गटागट
१०४ गट्टा
१०५ गढवाणी
१०६ गलुंडक
१०७ गदैया
१०८ गंधिया
१०९ गहलड़ा
११० गहलोत
१११ गांग
११२ गाँधी
११३ गाँची
११४ गाय
११५ गावड़िया
११६ गिडिया
११७ गिणा
११८ गिरमेर
११९ गुणहंडिया
१२० गुवाल
१२१ गुलगुलिया
१२२ गूगलिया
१२३ गूँदेचा
१२४ गूजडिया
१२५ गेमावत
१२६ गेरा
१२७ गोवरिया
१२८ गोढा
१२९ गोठी
१३० गोसल
१३१ गोलेच्छा
१३२ गोहीलाण
१३३ गोखरू
१३४ गोध
१३५ गोलेचा

घ

१३६ घाँघरोल
१३७ घिया
१३८ घोखा
१३९ घंघवाल

च

१४० चतुर
१४१ चवा
१४२ चम
१४३ चामड़
१४४ चाल
१४५ चितोड़ा
१४६ चित्रवाल
१४७ चीचट
१४८ चीचँड़
१४९ चीपट
१५० चीपड़
१५१ चुंखड़
१५२ चोधरी
१५३ चोल
१५४ चोपड़ा
१५५ चोरड़िया
१५६ चौहाण
१५७ चंचल
१५८ चंडालिया

छ

१५९ छछोहा
१६० छजलाणी
१६१ छाजेड़
१६२ छागा
१६३ छाँटा
१६४ छाडोरिया
१६५ छीलिया
१६६ छेर
१६७ छैल
१६८ छोहरिया
१६९ छोगाला

ज

१७० जड़िया

१७१ जणिया
१७२ जग
१७३ जम्मड़
१७४ जसेरा
१७५ जल
१७६ जनारात
१७७ जलावत
१७८ जक्षगोता
१७९ जावक
१८० जालोरी
१८१ जाँघड़ा
१८२ जाँगी
१८३ जागा
१८४ जालाणी
१८५ जीत
१८६ जीजाणी
१८७ जीरावला
१८८ जुगलिया
१८९ जेलमी
१९० जोगनेरा
१९१ जोधपुरा
१९२ जोगड़
१९३ जंडू

झ

१९४ झवक
१९५ झावक
१९६ झाँबड़
१९७ झाँबावत
१९८ झाँबरपाल
१९९ झोटा
२०० झंड

ट

२०१ टाटिया
२०२ टापरिया
२०३ टहुलिया
२०४ टागी
२०५ टूँकलिया
२०६ टोडरवाल्या
२०७ टंच
२०८ टंक

ठ

२०९ ठगाणा
२१० ठाकुर
२११ ठावा
२१२ ठंठवाल
२१३ ठंठेर

ड

२१४ डफरिया
२१५ डागा
२१६ डाँगी
२१७ डावा
२१८ डाकलिया
२१९ डाकूपालिया
२२० डीडू
२२१ डुँगरिया
२२२ डूँगरोल
२२३ डूँगरेवाल
२२४ डोडिया
२२५ डोलण
२२६ डोठा
२२७ डोसी
२२८ डावरिया

ढ

२२९ ढड्ढा
२३० ढाबरिया
२३१ ढिल्लीवाल
२३२ ढेढिया
२३३ ढेलड़िया

त

२३४ तलेरा
२३५ तवाह
२३६ ताल
२३७ ताँण
२३८ तालड़
२३९ तातेड़
२४० तिरपेक्रिया
२४१ तिलखाणा
२४२ तिरणाल
२४३ तिलेरा
२४४ तुलावत
२४५ तूंगा
२४६ तेलया
२४७ तेलडिया
२४८ तोडरवाल

थ

२४९ थटेरा
२५० थाँभलेचा
२५१ थारावत
२५२ थिरावाल
२५३ थोरवाल

द

२५४ दक्क
२५५ दरड़
२५६ दट्टा
२५७ दरगेड़ा
२५८ दाउ
२५९ दिल्लीवाल
२६० दीपग
२६१ दुग्ग
२६२ दुटाहा
२६३ दूगड़
२६४ दूणीवाल
२६५ दूधेड़िया
२६६ देवानन्दी
२६७ देशवाल
२६८ देवड़ा
२६९ देहरा
२७० देशलहरा

ध

२७१ धनपाल
२७२ धर
२७३ धम्माणी
२७४ धरा
२७५ धम्मल
२७६ धन
२७७ धनडाय
२७८ धनचा
२७९ धाकड़
२८० धाड़ीवाल
२८१ धाँगी
२८२ धिया
२८३ धींगा
२८४ धूँधिया
२८५ धूपिया

२८६ धोखिर्या
२८७ धोल

न

२८८ नवलक्खा
२८९ नपावलिया
२९० नलवाह्या
२९१ नखत
२९२ नरायण
२९३ नगगोत
२९४ नखित्रेत
२९५ नक्षत्रगोता
२९६ नरसिंघ
२९७ नागपुरा
२९८ नाडोलिया
२९९ नाणवट
३०० नाँदेचा
३०१ नारिया
३०२ नाहटा
३०३ नागोरी
३०४ नावरिया
३०५ नावटी
३०६ नावेड़ा
३०७ नाहर
३०८ निधी
३०९ निंब्रेड़ा
३१० नीमाणी
३११ नीसटा
३१२ नेणसर
३१३ नेर

प

३१४ पगारिया
३१५ पँमार
३१६ परजा
३१७ पहु
३१८ पल्लीवाल
३१९ पठाण
३२० पटोल
३२१ पड़गतिया
३२२ पटणी
३२३ पदमावत
३२४ पटवा
३२५ पटविद्या
३२६ पड़ियार
३२७ पडाइया
३२८ परधाला
३२९ पापड़िया
३३० पामेचा
३३१ पालड़ेचा
३३२ पाहणिया
३३३ पाँचा
३३४ पारख
३३५ पालावत
३३६ पीपलिया
३३७ पीतलिया
३३८ पीपाड़ा
३३९ पूनमिया
३४० पूगलिया
३४१ पुहाड़
३४२ पूराणी
३४३ पोकरवाल
३४४ पोकरणा
३४५ प्रोचाल

फ

३४६ फलसा
३४७ फलोधिया
३४८ फाल
३४९ फूलफगर
३५० फोकटिया
३५१ फोफलिया

ब

३५२ बच्छावत
३५३ बड़गोता
३५४ बड़लोया
३५५ बड़ोल
३५६ बणभट
३५७ बरड़ेचा
३५८ बरड़िया
३५९ बरवत
३६० बराड़
३६१ बडेर
३६२ बलदेवा
३६३ बट
३६४ बलड़
३६५ बहुबोल
३६६ बलहरी
३६७ बलाही
३६८ बवाल
३६९ बवेल
३७० बण
३७१ बधाणी
३७२ बघेरवाल
३७३ बब्बर
३७४ बद्धड़
३७५ बढाला
३७६ बड़ला
३७७ बाँका
३७८ बागरेचा
३७९ बाघमार
३८० बाँगाणी
३८१ बानेता
३८२ बातड़िया
३८३ बाफणा
३८४ बादरिया
३८५ बादवार
३८६ बामाणी
३८७ बालड़
३८८ बालंवा
३८९ बावेला
३९० बाहरिया
३९१ बाँवलिया
३९२ बिदामिया
३९३ बिनसट
३९४ बिनायक
३९५ बिरमेचा
३९६ बिनय
३९७ बिरदाल
३९८ बिशाल
३९९ बिरहट
४०० बीराणी
४०१ बीरावत
४०२ बुरड़
४०३ बुच्चा
४०४ बूबकिया
४०५ बूड़

४०६ बेगड़
४०७ बेताल
४०८ बेगाणी
४०९ बेलीम
४१० बेहड़
४११ बैदमूता
४१२ बोकड़िया
४१३ बोपीचा
४१४ बोरधिया
४१५ बोरुदिया
४१६ बोहित्थरा
४१७ बोरोचा
४१८ बोहरा
४१९ बाँठिया
४२० बंका
४२१ बंभ
४२२ बंबोई
४२३ बंगाल

भ

४२४ भक्कड़
४२५ भगलिया
४२६ भटेवरा
४२७ भड़कतिया
४२८ भड़गोता
४२९ भरवाल
४३० भयाणा
४३१ भडासर
४३२ भरथाण
४३३ भद्रा
४३४ भल्लड़िया
४३५ भवालिया
४३६ भागू
४३७ भादर
४३८ भाभू भांडावत
४३९ भाणेश
४४० भाडंगा
४४१ भाँभठ
४४२ भीनमाल
४४३ भीर
४४४ भुगड़ी
४४५ भूरटिया
४४६ भूरी
४४७ भूरा
४४८ भूतड़ा
४४९ भूतेड़िया
४५० भूषण
४५१ भोर
४५२ भोल
४५३ भोगर
४५४ भोरड़िया
४५५ भंडसाली
४५६ भंडारी

म

४५७ मकुयाण
४५८ मगदिया
४५९ मथाणा
४६० महेला
४६१ मणहरा
४६२ मण हाड़िया
४६३ मरड़िया
४६४ मसरा
४६५ महाभद्र
४६६ महेच
४६७ मल्ल
४६८ मन्न
४६९ मट्टा
४७० मट्टड़
४७१ माल्ल
४७२ मालक्स
४७३ मालनेसा
४७४ मारु
४७५ माँडलेचा
४७६ मालविया
४७७ माँडोता
४७८ माधोटिया
४७९ मिन्नी
४८० मिछेला
४८१ मिण
४८२ मीठड़िया
४८३ मुखतरपाल
४८४ मुहाणाणी
४८५ मुणोत
४८६ मूँधड़ा
४८७ मुँहिमवाल
४८८ मुत्थड़
४८९ मुहिलाण
४९० मुंगरोल
४९१ मूलमेरा
४९२ मेड़तवाल
४९३ मेहुँ
४९४ मैराण
४९५ मोगरा
४९६ मोरच
४९७ मोहनाणी
४९८ मोदी
४९९ मोगिया
५०० मोडोत
५०१ मोहव्वा
५०२ मोहीवाल
५०३ मोतियाण
५०४ मंगलिया
५०५ मंडोचित
५०६ मंडोवरा
५०७ मंगीवाल
५०८ मंडलीक

र

५०९ रतनपुरा
५१० रतनगोता
५११ रखवाल
५१२ राय
५१३ रायजादा
५१४ रायभणशाली
५१५ राठोड़
५१६ राँका
५१७ राखेचा
५१८ रातड़िया
५१९ राव्वल
५२० रीसाँण
५२१ रूणवाल
५२२ रूप
५२३ रूपधरा
५२४ रूँघलेचा
५२५ रेहड़
५२६ रोआँ

५२७ रोटागण
५२८ रंक

ल

५२९ लघुश्रेष्ठी
५३० लक्कड़
५३१ ललवाणी
५३२ लघु खँडेलवाल
५३३ लालण
५३४ लिंगा
५३५ लीगा
५३६ लुंवक
५३७ लुंडा
५३८ लछा
५३९ लँकड़
५४० लूणावत
५४१ लूणिया
५४२ लेल
५४३ लेवा
५४४ लोढा
५४५ लोलग

श

५४६ श्रीमाल
५४७ श्रीश्रीमाल

स

५४८ समधड़िया
५४९ सही
५५० सफला
५५१ सराहा
५५२ समुदरिख
५५३ सवरला
५५४ सवा
५५५ सरभेल
५५६ साँखला
५५७ साँड़
५५८ साहिवगोत
५५९ साँडेला
५६० साहिला
५६१ सावणसुखा
५६२ साँवरा
५६३ सांगाणी
५६४ साहलेचा
५६५ साचोरा
५६६ साचा
५६७ सिणगार
५६८ सियाल
५६९ सीखा
५७० सीचाँ-सींगी
५७१ सीसोदिया
५७२ सीरोहिया
५७३ सुंदर
५७४ सुराणा
५७५ सुधेचा
५७६ सूर
५७७ सूधा
५७८ सूरिया
५७९ सूरपुरा
५८० सुरहा
५८१ स्थूल
५८२ सूकाली
५८३ सूँडाल
५८४ सेठिया
५८५ सेठियापावर
५८६ सोनी
५८७ सोनीगरा
५८८ सोलंखी
५८९ सोजतिया
५९० सोभावत
५९१ सोठिल
५९२ सोजन
५९३ संखलेचा
५९४ संचेती
५९५ संड
५९६ संखवाल

ह

५९७ हगुड़िया
५९८ हरसोरा
५९९ हड़िया
६०० हरण
६०१ हिरण
६०२ हुव्वड़
६०३ हुड़िया
६०४ हेमपुरा
६०५ हेम
६०६ हीडाउ
६०७ हींगड
६०८ हंडिया
६०९ हंस

शाखागोत्रों[१] का संक्षिप्त इतिहास ॥

१-ढाकलिया—पूर्व समय में सोढा राजपूत थे जो कि दयामूल जैन धर्म ग्रहण किये हुए थे, कालान्तर में ये लोग राज का काम करते २ किसी कारण से रात भाग निकले परन्तु पकड़े जा कर वापिस लाये गये, अतः ये लोग ढाकलिया कहलाये क्योंकि पकड़ कर लाये जाने के समय ये लोग ढके हुए लाये गये थे।

२-कोचर-इन लोगों के वडेरे का नाम कोचर इस कारण से हुआ था कि उस के जन्म समय पर कोचरी पक्षी (जिस की बोली से मारवाड़ में शकुन लिया करते हैं) बोला था।

१-इन (शाखागोत्रों) को मारवाड़ में खाँप, नख और शाख आदि नामों से कहते हैं तथा कच्छ देश के निवासी ओसवाल इन को "ओलख" कहते हैं, मारवाड़ से उठ कर ओसवाल लोग कच्छ देश में जा वसे थे, इस वात को क़रीव तीन सौ वा चार सौ वर्ष हुए हैं॥

३-चामड़-पूर्व काल में धांधल राठौड़ थे तथा दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद ये लोग खाल का व्यापार करने लगे थे इस लिये ये चामड़ कहलाये ।

४-वागरेचा-पूर्व समय में सोनगरा चौहान थे तथा जालोर में दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद वे वागरे गाँव में रहने लगे थे इस लिये वे वागरेच कहलाये परन्तु कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि-बाघ के मारने से उन की जात वाघरेचा हुई ।

५-बेदमूता-पूर्व काल में ये पँवार राजपूत थे, ओसियाँ में दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद इन के किसी पूर्वज (बड़ेरे) ने दिल्ली के बादशाह की आँख का इलाज किया था जिस से इन को बेद का खिताब मिला था, बीकानेर में राजा की तरफ से इन को राव तथा महाराव की पदवी भी मिली थी, असल में ये बीदावतों के कामदार थे इस लिये इन्हें मोहता पदवी भी मिली थी, बस दोनों (बेद और मोहता) पदवियों के मिलने से ये लोग बेदमूता कहलाने लगे ।

६-लूकड़-पहिले ये चौहान राजपूत थे, दयामूल जैन धर्म का ग्रहण करने के पीछे इन के एक पूर्वज (बड़ेरे) को एक जती (यति) ने सन्दूक में छिपा कर उसी राजा के आदमियों से बचाया था कि जिस राजा की वह नौकरी करता था, चूंकि छिपाने को लुकाना भी कहते हैं इस लिये उस का और उस की औलाद का नाम लूकड़ हो गया ।

७-मिन्नी-(मिन्निया)-पहिले ये चौहान राजपूत थे, दया मूल जैन धर्म का ग्रहण करने के बाद इन का एक पूर्वज (बड़ेरा) (जिस के पास में धन माल था) किसी गाँव को जा रहा था परन्तु रास्ते में उसे लुटेरे मिल गये और उन्हों ने उस से कहा कि-"सेठ! राम राम" सेठ ने कहा कि-"कूड़ी बात"[1] फिर लुटेरों ने कहा कि-"सेठ! अच्छे हो" सेठ ने फिर जबाव दिया कि-"कूड़ी बात" इस प्रकार लुटेरों ने दस बीस बातें पूंछी परन्तु सेठ उसी (कूड़ी बात) शब्द को कहता रहा, आखिरकार लुटेरों ने कहा कि-"तेरे पास जो माल और गहना आदि सामान है वह सब दे दे" तब सेठ बोला कि-"हाँ आ साँची बात, म्हूं तो लैण दैण रोही धंधो करां छां, थे म्हाँ ने खत लिख दो और ले लो"[2] लुटेरों ने विचारा कि-यह सेठ भोला है, खत लिखने में अपना क्या हर्ज है, अपने को कौन सा देना पड़ेगा, यह सोच कर उन्हों ने सेठ के कहने के अनुसार खत लिख दिया, सेठ ने भी इच्छा के अनुसार अपने माल से चौगुने माल का खत लिखवा लिया और लुटेरों से कहा कि-"इस खत में साख घलवा दो"[3] लुटेरों ने कहा कि-"यहां पर

१-"कूड़ी बात" अर्थात् यह झूठी बात है ॥

२-अर्थात् यह सच्ची बात है, हम तो लेने देने का ही धन्धा करते हैं, तुम हम को खत लिख दो और हमारा सब सामान ले लो ॥

३-"साख घलवा दो" अर्थात् किसी की साक्षी (गवाही) डलवा दो ॥

किस की साख डलवावें, यहाँ तो कोई नहीं है, हाँ यह एक लोंकड़ी तो खड़ी है तुम कहो तो इस की साख डलवा दें" सेठ ने कहा कि–"अच्छा इसी की साख डलवा दो" बस लुटेरों ने लोंकड़ी की साख लिख दी और सेठ ने गहना आदि जो कुछ सामान अपने पास में था वह सब अपने हाथ से लुटेरों को दे दिया तथा कागज लेकर वहाँ से चला आया, दो तीन वर्ष बीतने के बाद वे ही लुटेरे किसी साहूकार का माल लूट कर उसी नगर में बेंचने के लिये आये और सेठ ने ज्यों ही उन को बाजार में देखा त्यों ही पहिचान कर उन का हाथ पकड़ लिया और कहा कि–"व्याजसमेत हमारे रुपये लाओ" लुटेरे बोले कि–"हम तो तुम को पहिचानते भी नहीं हैं, हमने तुम से रुपये कब लिये थे?" लुटेरों की इस बात को सुन कर सेठ जोर में आ गया, क्योंकि वह जानता था कि–यहाँ तो बाजार है, यहाँ ये मेरा क्या कर सकते हैं, (किसी कवि ने यह दोहा सत्य ही कहा है कि–'जंगल जाट न छेड़िये, हाटाँ बीच किराड़ ॥ रंगड़ कदे न छेड़िये, मारे पटक पछाड़, ॥ १ ॥) निदान दोनों में खूब ही हुज्जत (तकरार) होने लगी और इन की हुज्जत को सुन कर बहुत से साहूकार आकर इकट्ठे हो गये तथा सेठ का पक्ष करके वे सब लुटेरों को हाकिम के पास ले गये, हाकिम ने सेठ से रुपयों के मांगने का सबूत पूछा, इधर देरी ही क्या थी–शीघ्र ही सेठ ने उन (लुटेरों) के हाथ की लिखी हुई चिट्ठी दिखला दी, तब हाकिम ने लुटेरों से पूछा कि–"सच २ कहो यह क्या बात है" तब लुटेरों ने कहा कि–"साहब ! सेठ ने यह चिट्ठी तो आप को दिखला दी परन्तु इस (सेठ) से यह पूछा जावे कि इस बात का साक्षी (साखी वा गवाह) कौन है?" लुटेरों की बात को सुनते ही (हाकिम के पूछने से पहिले ही) सेठ बोल उठा कि–"मिन्नी" यह सुन कर लुटेरे बोले कि–"हाकिम साहब ! वाणियो झूठो है, सो लोंकड़ी ने मिन्नी कहे छे[2]" यह सुन कर हाकिम ने उस खत को उठा कर देखा, उस में लोंकड़ी[1] की साख लिखी हुई थी, बस हाकिम ने समझ लिया कि–बनिया सच्चा है, परन्तु उपहास के तौर पर हाकिम ने सेठ से धमका कर कहा कि–"अरे! लोंकड़ी को मिन्नी कहता है" सेठ ने कहा कि–"मिन्नी और लोंकड़ी में के फरक है[3]? मिन्नी २ सात बार मिन्नी" अस्तु, हाकिम ने उन लुटेरों से कागज़ में लिखे अनुसार सब रुपये सेठ को दिलवा दिये, बस उसी दिन से सब लोग सेठ को 'मिन्नी, कहने लगे और उस की औलाद वाले भी मिन्नी कहलाये ।

८–**सिंगी**–पहिले ये जाति के नन्दवाणे ब्राह्मण थे और सिरोही के ढेलड़ी ग्राम में

१–लोंकड़ी को मारवाड़ी बोली में जंगली मिन्नी (बिल्ली) कहते हैं ॥

२–"लोंकड़ी ने मिन्नी कहे छे" अर्थात् लोंकड़ी को मिन्नी बतलाता है ॥

३–"के फरक है" अर्थात् क्या भेद है ॥

रहते थे, इसी से इन को सब लोग ढेलड़िया[1] वोहरा कहने लगे थे, इन में सोनपाल नामक एक वोहरा बड़ा आदमी था, उस को दैववश सर्प ने काट खाया था तथा एक जती (यति) ने उसे अच्छा किया था इसी लिये उस ने दयामूल जैन धर्म का ग्रहण किया था, उस के बहुत काल के पीछे उस ने शत्रुञ्जय की यात्रा करने के लिये अपने खर्च से संघ निकाला था तथा यात्रा में ही उस के पुत्र उत्पन्न हुआ था, संघ ने मिल कर उसे संघवी[2] (संघपति) का पद दिया था अतः उस की औलादवाले लोग सिंगी कहलाये[3], क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि–संघवी का अपभ्रंस सिंगी हो गया है, इन (सिंगियों) के भी–महेवावत, गढावत, भीमराजोत और मूलचन्दोत आदि कई फिरके हैं ॥

ओसवाल जाति का गौरव ॥

प्रिय पाठकगण! इस जाति के विषय में आप से विशेष क्या कहें! यह वही जाति है जो कि–कुछ समय पूर्व अपने धर्म, विद्या, एकता और परस्पर प्रीति[4]भाव आदि सद्गुणों के बल से उन्नति के शिखर पर विराजमान थी, इस जाति का विशेष प्रशंसनीय गुण यह था कि–जैसे यह धर्मकार्यों में कटिवद्ध थी वैसे ही सांसारिक धनोपार्जन आदि कामों में भी कटिवद्ध थी, तात्पर्य यह है कि–जिस प्रकार यह पारमार्थिक कामों में संलग्न थी उसी प्रकार लौकिक कार्यों में भी कुछ कम न थी अर्थात् अपने–'अहिंसा

१–"ढेलड़िया" अर्थात् ढेलड़ी के निवासी ॥

२–गुजरात और कच्छ आदि देशों में संघवी गोत्र अन्य प्रकार से भी अनेकविध (कई तरह का) माना जाता है ॥

३–ये सिंगी (संघवी) जोधपुर आदि मारवाड़ वाले समझने चाहियें ॥

४–प्रीति के तीन भेद हैं–भक्ति, आदर और स्नेह, इन में से भक्ति उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अपनी अपेक्षा पद में श्रेष्ठ हो, सद्गुणों के द्वारा मान्य हो और विद्या तथा जाति में बड़ा हो, उस की सेवा करनी चाहिये तथा उस पर श्रद्धाभाव रखना चाहिये, क्योंकि वही भक्ति का पात्र है, सत्य पूछो तो यह गुण सब गुणों से उत्कृष्ट है, क्योंकि–यही सब गुणों की प्राप्ति का मूल कारण है अर्थात् इस के होने से ही मनुष्य को सब गुण प्राप्त हो सकते हैं, इस की गति ऊर्ध्वगामिनी है, प्रीति का दूसरा भेद आदर है–आदर उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अवस्था, द्रव्य, विद्या और जाति आदि गुणों में अपने समान हो उस के साथ योग्य प्रतिष्ठापूर्वक वर्त्ताव करना चाहिये, इस (आदर) की गति समतलवाहिनी है तथा प्रीति का तीसरा भेद स्नेह है–स्नेह उसे कहते हैं कि–जो पुरुष अवस्था, द्रव्य, विद्या और बुद्धि के सम्बंध में अपने से छोटा हो उस के हित को विचार कर उस की वृद्धि का उपाय करना चाहिये, इस (स्नेह) का प्रवाह जलस्रोत के समान अधोगामी है, बस प्रीति के ये ही तीनों प्रकार हैं, क्योंकि उक्त तीनों बातों के ज्ञान के विना वास्तव में प्रीति नहीं हो सकती है–इस लिये इन तीनों भेदों के स्वरूप को जान कर यथायोग्य इन के वर्त्ताव का ध्यान रखना आवश्यक है ॥

परमो धर्मः, रूप सदुपदेश के अनुसार यह सत्यतापूर्वक व्यापार कर अगणित द्रव्य को प्राप्त करती थी और अपनी सत्यता के कारण ही इस ने 'शाह, इन दो अक्षरों की अनुपम उपाधि को प्राप्त किया था जो कि अब तक मारवाड़ तथा राजपूताना आदि प्रान्तों में इस के नाम को देदीप्यमान कर रही है, सच तो यह है कि-या तो शाह या बादशाह, ये दो ही नाम गौरवान्वित मालूम होते हैं।

इस के अतिरिक्त-इतिहासों के देखने से विदित होता है कि-राजपूताना आदि के प्रायः सब ही रजवाड़ों में राजों और महाराजों के समक्ष में इसी जाति के लोग देश-दीवान रह चुके हैं और उन्हों ने अनेक धर्म और देशहित के कार्य करके अतुलित यश को प्राप्त किया है, कहाँ तक लिखें-इतना ही लिखना काफी समझते हैं कि-यह जाति पूर्व समय में सर्वगुणागार, विद्या आदि में नागर तथा द्रव्यादि का भण्डार थी, परन्तु शोक का विषय है कि-वर्त्तमान में इस जाति में उक्त बातें केवल नाममात्र ही दीख पड़ती हैं, इस का मुख्य कारण यही है कि-इस जाति में अविद्या इस प्रकार घुस गई है कि-जिस के निकृष्ट प्रभाव से यह जाति कृत्य को अकृत्य, शुभ को अशुभ, बुद्धि को निर्बुद्धि तथा सत्य को असत्य आदि समझने लगी है, इस विषय में यदि विस्तार-पूर्वक लिखा जावे तो निस्संदेह एक बड़ा ग्रन्थ बन जावे, इस लिये इस विषय में यहाँ विशेष न लिख कर इतना ही लिखना काफी समझते हैं कि-वर्त्तमान में यह जाति अपने कर्तव्य को सर्वथा भूल गई है इसलिये यह अधोदशा को प्राप्त हो गई है तथा होती जाती है, यद्यपि वर्त्तमान में भी इस जाति में समयानुसार श्रीमान् जन कुछ कम नहीं हैं अर्थात् अब भी श्रीमान् जन बहुत हैं और उन की तारीफ-घोर निद्रा में पड़े हुए सब आर्यावर्त्त के भार को उठानेवाले भूतपूर्व बड़े लाट श्रीमान् कर्जन स्वयं कर चुके हैं परन्तु केवल द्रव्य के ही होने से क्या हो सकता है जब तक कि उस का बुद्धिपूर्वक सदुपयोग न किया जावे, देखिये! हमारे मारवाड़ी ओसवाल भ्राता अपनी अज्ञानता के कारण अनेक अच्छे २ व्यापारों की तरफ कुछ भी ध्यान न दे कर सट्टे नामक जुए में रात दिन जुटे (संलग्न) रहते हैं और अपने भोलेपन से वा यों कहिये कि-स्वार्थ में अन्धे हो कर जुए को ही अपना व्यापार समझ रहे हैं, तब कहिये कि-इस जाति की उन्नति की क्या आशा हो सकती है ? क्योंकि सब शास्त्रकारों ने जुए को सात महाव्यसनों का राजा कहा है तथा पर भव में इस से नरकादि दुःख का प्राप्त होना बतलाया है, अब सोचने की बात है कि-जब यह जुआ पर भव के भी सुख का नाशक है तो इस भव में भी इस से सुख और कीर्ति कैसे प्राप्त हो सकती है, क्योंकि सत्कर्त्तव्य वही माना गया है जो कि उभय लोक के सुख का साधक है।

इस दुर्व्यसन में हमारे ओसवाल भ्राता ही पड़े हैं यह बात नहीं है, किन्तु वर्त्तमान में

प्रायः मारवाड़ी वैश्य (महेश्वरी और अगरवाल आदि) भी सब ही इस दुर्व्यसन में निमग्न हैं, हा! विचार कर देखने से यह कितने शोक का विषय प्रतीत होता है इसी लिये तो कहा जाता है कि–वर्तमान में वैश्य जाति में अविद्या पूर्णरूप से घुस रही है, देखिये! पास में द्रव्य के होते हुए भी इन (वैश्य जनों) को अपने पूर्वजों के प्राचीन व्यवहार (व्यापारादि) तथा वर्तमान काल के अनेक व्यापार बुद्धि को निर्बुद्धि-रूप में करने वाली अविद्या के निकृष्ट प्रभाव से नहीं सूझ पड़ते हैं अर्थात् सट्टे के सिवाय इन्हें और कोई व्यापार ही नहीं सूझता है! भला सोचने की बात है कि–सट्टे का करने वाला पुरुष साहूकार वा शाह कभी कहला सकता है? कभी नहीं, इन को निश्चयपूर्वक यह समझ लेना चाहिये कि इस दुर्व्यसन से उन्हें हानि के सिवाय और कुछ भी लाभ नहीं हो सकता है, यद्यपि यह बात भी क्वचित् देखने में आती है कि–किन्हीं लोगों के पास इस से भी द्रव्य आ जाता है परन्तु उस से क्या हुआ? क्योंकि वह द्रव्य तो उन के पास से शीघ्र ही चला जाता है (जुए से द्रव्यपात्र हुआ आज तक कहीं कोई भी सुना वा देखा नहीं गया है), इस के सिवाय यह भी विचारने की बात है कि–इस काम से एक को घाटा लग कर (हानि पहुँच कर) दूसरे को द्रव्य प्राप्त होता है अतः वह द्रव्य विशुद्ध (निष्पाप वा दोषरहित) नहीं हो सकता है, इसी लिये तो (दोषयुक्त होने ही से तो) वह द्रव्य जिन के पास ठहरता भी है वह कालान्तर में औसर आदि व्यर्थ कामों में ही खर्च होता है, इस का प्रमाण प्रत्यक्ष ही देख लीजिये कि–आज तक सट्टे से पाया हुआ किसी का भी द्रव्य विद्यालय, औषधालय, धर्मशाला और सदाव्रत आदि शुभ कर्मों में लगा हुआ नहीं दीखता है, सत्य है कि–पाप का पैसा शुभ कार्य में कैसे लग सकता है, क्योंकि उस के तो पास आने से ही मनुष्य की बुद्धि मलीन हो जाती है, बस बुद्धि के मलीन हो जाने से वह पैसा शुभ कार्यों में व्यय न हो कर बुरे मार्ग से ही जाता है।

अभी थोड़े ही दिनों की बात है कि–ता. ८ जनवरी बुधवार सन् १९०८ ई. को संयुक्त प्रान्त (यूनाइटेड प्राविन्सेज़) के छोटे लाट साहब आगरे में फ्रीगंज का बुनियादी पत्थर रखने के महोत्सव में पधारे थे तथा वहाँ आगरे के तमाम व्यापारी सज्जन भी उपस्थित थे, उस समय श्रीमान् छोटे लाट साहब ने अपनी सुयोग्य वक्तृता में फ्रीगंज बनने के और यमुना जी के नये पुल के लाभों को दिखला कर आगरे के व्यापारियों को वहाँ के व्यापार के बढ़ाने के लिये कहा था, उक्त महोदय की वक्तृता को अविकल न लिख कर पाठकों के ज्ञानार्थ हम उस का सारमात्र लिखते हैं, पाठकगण उसे देख कर समझ सकेंगे कि–उक्त साहब बहादुर ने अपनी वक्तृता में व्यापारियों को कैसी उत्तम शिक्षा दी थी, वक्तृता का सारांश यही था कि "ईमानदारी और सच्चा लेन देन

करना ही व्यापार में सफलता का देने वाला है, आगरे के निवासी तीन प्रकार के जुए में लगे हुए हैं, यह अच्छी बात नहीं है-क्योंकि यह आगरे के व्यापार की उन्नति का बाधक है, इस लिये नाज का जुआ, चाँदी का जुआ और अफीम का सट्टा तुम लोगों को छोड़ना चाहिये, इन जुओं से जितनी जल्दी जितना धन आता है वह उतनी ही जल्दी उन्हीं से नष्ट भी हो जाता है, इस लिये इस बुराई को छोड़ देना चाहिये, यदि ऐसा न किया जावेगा तो सर्कार को इन के रोकने का कानून बनाना पड़ेगा, इस लिये अच्छा हो कि लोग अपने आप ही अपने भले के लिये इन जुओं को छोड़ दें, स्मरण रहे कि-सर्कार को इन की रोक का कानून बनाना कुछ कठिन है परन्तु असम्भव नहीं है, फ्रीगंज की भविष्यत् उन्नति व्यापारियों को ऐसे दोषों को छोड़ कर सच्चे व्यापार में मन लगाने पर ही निर्भर है" इत्यादि, इस प्रकार अति सुन्दर उपदेश देकर श्रीमान् लाट साहब ने चमचमाती (चमकती) हुई कन्नी और बसूली से चूना लगाया और पत्थर रखने की रीति पूरी की गई, अब सेठ साहूकारों और व्यापारियों को इस विषय पर ध्यान देना चाहिये कि-श्रीमान् लाट साहब ने जुआ न खेलने के लिये जो उपदेश किया है वह वास्तव में कितना हितकारी है, सत्य तो यह है कि-यह उपदेश न केवल व्यापारियों और मारवाड़ियों के लिये ही हितकारक है बरन सम्पूर्ण भारतवासियों के लिये यह उन्नति का परम मूल है, इस लिये हम भी प्रसंगवश अपने जुआ खेलने वाले भाइयों से प्रार्थना करते हैं कि-अँग्रेज़ जातिरत्न श्रीमान् छोटे लाट साहब के उक्त सदुपदेश को अपनी हृदयपटरी पर लिख लो, नहीं तो पीछे अवश्य पछताना पड़ेगा, देखो! लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है कि-"जो न माने बड़ों की सीख, वह ठिकरा ले मांगे भीख" देखो! सब ही को विदित है कि-तुम ने अपने गुरु, शास्त्रों तथा पूर्वजों के उपदेश की ओर से अपना ध्यान पृथक् कर लिया है, इसी लिये तुम्हारी जाति का वर्त्तमान में उपहास हो रहा है परन्तु निश्चय रक्खो कि-यदि तुम अब भी न चेतोगे तो तुम्हें राज्यनियम इस विषय से लाचार कर पृथक् करेगा, इस लिये समस्त मारवाड़ी और व्यापारी सज्जनों को उचित है कि-इस दुर्व्यसन का त्याग कर सच्चे व्यापार को करें, हे प्यारे मारवाड़ियो और व्यापारियो! आप लोग व्यापार में उन्नति करना चाहें तो आप लोगों के लिये कुछ भी कठिन बात नहीं है, क्योंकि यह तो आप लोगों का परम्परा का ही व्यवहार है, देखो! यदि आप लोग एक एक हजार का भी शेयर नियत कर आपस में बेंचे (ले लेवें) तो आप लोग बात की बात में दो चार करोड़ रुपये इकट्ठे कर सकते हैं और इतने धन से एक ऐसा उत्तम कार्यालय (कारखाना) खुल सकता है कि जिस से देश के अनेक कष्ट दूर हो सकते हैं, यदि आप लोग इस बात से डरें और कहें कि-हम लोग कलों और कारखानों के काम को नहीं जानते हैं,

तो यह आप लोगों का भय और कथन व्यर्थ है, क्योंकि भर्तृहरि जी ने कहा है कि-"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" अर्थात् सब गुण कञ्चन (सोने) का आश्रय लेते हैं, इसी प्रकार नीतिशास्त्र में भी कहा गया है कि-"न हि तद्विद्यते किञ्चित, यदर्थेन न सिध्यति" अर्थात् संसार में ऐसा कोई काम नहीं है जो कि धन से सिद्ध न हो सकता हो, तात्पर्य यही है कि-धन से प्रत्येक पुरुष सब ही कुछ कर सकता है, देखो! यदि आप लोग कलों और कारखानों के काम को नहीं जानते हैं तो द्रव्य का व्यय करके अनेक देशों के उत्तमोत्तम कारीगरों को बुला कर तथा उन्हें स्वाधीन रख कर आप कारखानों का काम अच्छे प्रकार से चला सकते हैं।

अब अन्त में पुनः एक बार आप लोगों से यही कहना है कि-हे प्रिय मित्रो! अब शीघ्र ही चेतो, अज्ञान निद्रा को छोड़ कर स्वजाति के सद्गुणों की वृद्धि करो और देश के कल्याणरूप श्रेष्ठ व्यापार की उन्नति कर उभय लोक के सुख को प्राप्त करो ॥

यह पञ्चम अध्याय का ओसवाल वंशोत्पत्तिवर्णन नामक प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥

द्वितीय प्रकरण—पोरवाल वंशोत्पत्तिवर्णन ॥

पोरवाल वंशोत्पत्ति का इतिहास ॥

पद्मावती नगरी (जो कि आबू के नीचे वसी थी) में जैनाचार्य ने प्रतिबोध देकर लोगों को जैनधर्मी बना कर उन का पोरवाल वंश स्थापित किया था।

दो एक लेख हमारे देखने में ऐसे भी आये हैं जिन में पोरवालों को प्रतिबोध देनेवाला जैनाचार्य श्रीहरिभद्र सूरि जी महाराज को लिखा है, परन्तु यह बात बिलकुल

१-ये (पोरवाल) जन दक्षिण मारवाड़ (गोढ़वाड़) और गुजरात में अधिक हैं, इन लोगों का ओसवालों के साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं होता है, किन्तु केवल भोजनव्यवहार होता है, इन का एक फिरका जाँघड़ानामक है, उस में २४ गोत्र हैं तथा उस में जैनी और वैष्णव दोनों धर्म वाले हैं, इन का रहना बहुत करके चम्बल नदी की छाया में रामपुरा, मन्दसौर, मालवा तथा हुलकर सिंध के राज्य में है अर्थात् उक्त स्थानों में वैष्णव पोरवालों के क़रीब तीन हज़ार घर वसते हैं, इन के सिवाय बाक़ी के जैनधर्मधारी पोरवाल जाँघड़े हैं जो कि मेदपुर और उज्जैन आदि में निवास करते हैं, ऊपर कह चुके हैं कि-जाँघड़ा फिरके वाले पोरवालों के २४ गोत्र हैं, उन २४ गोत्रों के नाम ये हैं—१-चौधरी। २-काला। ३-धनघड़। ४-रतनावत। ५-धन्यौत्या। ६-मजावर्या। ७-डबकरा। ८-भादल्या। ९-कामल्या। १०-सेठ्या। ११-ऊधिया। १२-वँखण्ड। १३-भूत। १४-फरक्या। १५-लभेपर्या। १६-मंडावर्या। १७-मुनियां। १८-घाँट्या। १९-गलिया। २०-भेसौटा। २१-नवेपर्या। २२-दानगड़। २३-महता। २४-खरड्या ॥

गलत सिद्ध होती है, क्योंकि श्री हरिभद्र सूरि जी महाराज का स्वर्गवास विक्रम संवत् ५८५ (पाँच सौ पचासी) में हुआ था और यह बात बहुत से ग्रन्थों से निर्भ्रम सिद्ध हो चुकी है, इस के अतिरिक्त-उपाध्याय श्री समयसुन्दर जी महाराजकृत शेत्रुञ्जय रास में तथा श्री वीरविजय जी महाराज कृत ९९ प्रकार की पूजा में सोलह उद्धार शेत्रुञ्जय का वर्णन किया है, उस में विक्रम संवत् १०८ में तेरहवाँ उद्धार जावड़ नामक पोरवाल का लिखा है, इस से सिद्ध होता है कि-विक्रम संवत् १०८ से पहिले ही किसी जैनाचार्य ने पोरवालों को प्रतिबोध देकर उक्त नगरी में उन्हें जैनी बनाया था।

सूचना-इस पोरवाल वंश में-विमलशाह, धन्नाशाह, वस्तुपाल और तेजपाल आदि अनेक पुरुष धर्मज्ञ और अनर्गल लक्ष्मीवान् हो गये हैं, जिन का नाम इस संसार में स्वर्णाक्षरों (सुनहरी अक्षरों) में इतिहासों में संलिखित है, इन्हीं का संक्षिप्त वर्णन पाठकों के ज्ञानार्थ हम यहाँ लिखते हैं:—

पोरवाल ज्ञातिभूषण विमलशाह मन्त्री का वर्णन ॥

गुजेरात के महाराज भीमदेव ने विमलशाह को अपनी तरफ से अपना प्रधान अधिकारी अर्थात् दण्डपति नियत कर आबू पर भेजा था, यहाँ पर उक्त मन्त्री जी ने अपनी

१-इन्हों ने मुल्क गोढवाड़ में श्री आदिनाथ स्वामी का एक मनोहर मन्दिर बनवाया था (जो कि सादरी से तीन कोश पर अभी राणकपुर नाम से प्रसिद्ध है), इस मन्दिर की उत्तमता यहाँ तक प्रसिद्ध है कि-रचना में इस के समान दूसरा मन्दिर नहीं माना जाता है, कहते हैं कि-इस के बनवाने में ९९ लाख स्वर्ण मोहर का खर्च हुआ था, यह बात श्री समयसुन्दर जी उपाध्याय ने लिखी है ॥

२-आबू और चन्द्रावती के राजकुटुम्बजन अणहिलवाड़ा पट्टन के महाराज के माण्डलिक थे, इन का इतिहास इस प्रकार है कि-यह वंश चालुक्य वंश का था, इस वंश में नीचे लिखे हुए लोगों ने इस प्रकार राज्य किया था कि-मूलराज ने ईखी सन् ९४२ से ९९६ पर्यन्त, चामुण्ड ने ईखी सन् ९९६ से १०१० तक, वल्लभ ने ६ महीने तक, दुर्लभ ने ईखी सन् १०१० से १०२२ तक (यह जैनधर्मी था), भीमदेव ने ईखी सन् १०२२ से १०६२ तक, इस की बरकरारी में धनराज आबू पर राज्य करता था तथा भीमदेव गुजरात देश पर राज्यशासन करता था, उस समय मालवे में धारा नगर में भोजराज गद्दी पर था, आबू के राजा धनराजने अणहिल पट्टन के राजवंश का पक्ष छोड़ कर राजा भोज का पक्ष किया था, इसी लिये भीमदेव ने अपनी तरफ से विमलशाह को अपना प्रधान अधिकारी अर्थात् दण्डपति नियत कर आबू पर भेजा था और उसी समय में विमलशाह ने श्री आदिनाथ का देवालय बनवाया था, भीमदेव ने धार पर भी आक्रमण किया था और इन्हीं की बरकरारी में गज़नी के महमूद ने सोमनाथ (महादेव) का मन्दिर लूटा था, इस के पीछे गुजरात का राज्य कर्ण ने ईखी सन् १०६३ से १०९३ तक किया, जयसिंह अथवा सिद्धराज ने ईखी सन् १०९३ से ११४३ तक राज्य किया (यह जयसिंह चालुक्य वंश में एक बड़ा तेजस्वी और धुरन्धर पुरुष हो गया है), इस के पीछे कुमारपाल ने ईखी सन् ११४४ से ११७३ तक राज्य किया (इस ने जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र जी सूरि से जैन धर्म का ग्रहण किया था, उस

योग्यतानुसार राज्यसत्ता का अच्छा प्रबंध किया था कि जिस से सब लोग उन से प्रसन्न थे, इस के अतिरिक्त उन के सद्व्यवहार से श्री अम्बादेवी भी साक्षात् होकर उन पर प्रसन्न हुई थी और उसी के प्रभाव से मन्त्री जी ने आबू पर श्री आदिनाथ स्वामी के मन्दिर को बनवाना विचारा परन्तु ऐसा करने में उन्हें जगह के लिये कुछ दिक्कत उठानी पड़ी, तब मन्त्री जी ने कुछ सोच समझ कर प्रथम तो अपनी सामर्थ्य को दिखला कर ज़मीन को कब्जे में किया, पीछे अपनी उदारता को दिखलाने के लिये उस ज़मीन पर रुपये बिछा दिये और वे रुपये ज़मीन के मालिक को दे दिये, इस के पश्चात् देशान्तरों से नामी कारीगरों को बुलवा कर संगमरमर पत्थर (श्वेत पाषाण) से अपनी इच्छा के अनुसार एक अति सुन्दर अनुपम कारीगरी से युक्त मन्दिर[1] बनवाया, जब वह मन्दिर बन कर तैयार हो गया तब उक्त मन्त्री जी ने अपने गुरु बृहत्खरतरगच्छीय जैनाचार्य श्री वर्द्धमान सूरि जी महाराज के हाथ से विक्रम संवत् १०८८ में उस की प्रतिष्ठा करवाई।

इस के अतिरिक्त–अनेक धर्मकार्यों में मन्त्री विमलशाह ने बहुत सा द्रव्य लगाया, जिस की गणना (गिनती) करना अति कठिन है, धन्य है ऐसे धर्मज्ञ श्रावकों को जो कि लक्ष्मी को पाकर उस का सदुपयोग कर अपने नाम को अचल करते हैं ॥

समय चन्द्रावती और आबू पर यशोधवल परमार राज्य करता था), इस के पीछे अजयपाल ने ईस्वी सन् ११७३ से ११७६ तक राज्य किया, इस के पीछे दूसरे मूलराज ने ईस्वी सन् ११७६ से ११७८ तक राज्य किया, इस के पीछे भोला भीमदेव ने ईस्वी सन् १२१७ से १२४१ तक राज्य किया (इस की अमलदारी में आबू पर कोटपाल और धारावल राज्य करते थे, कोटपाल के जुलेच नामक एक पुत्र और इच्छिनी कुमारी नामक एक कन्या थी अर्थात् दो सन्तान थे, इच्छिनी कुमारी अत्यन्त सुन्दरी थी अतः भीमदेव ने कोटपाल से उस कुमारी के देने के लिये कहला भेजा परन्तु कोटपाल ने इच्छिनी कुमारी को अजमेर के चौहान राजा वेशुलदेव को देने का पहिले ही से ठहराव कर लिया था इस लिये कोटपाल ने भीमदेव से कुमारी के देने के लिये इनकार किया, उस इनकार को सुनते ही भीमदेव ने एक बड़े सैन्य को साथ में लेकर कोटपाल पर चढ़ाई की और आबूगढ़ के आगे दोनों में खूब ही युद्ध हुआ, आखिर कार उस युद्ध में कोटपाल हार गया परन्तु उस के पीछे भीमदेव को शहाबुद्दीन गोरी का सामना करना पड़ा और उसी में उस का नाश हो गया), इस के पीछे त्रिभुवन ने ईस्वी सन् १२४१ से १२४४ तक राज्य किया (यह ही चालुक्य वंश में आखिरी पुरुष था), इस के पीछे दूसरे भीमदेव के अधिकारी वीर धवल ने वाघेला वंश को आकर जमाया, इस ने गुजरात का राज्य किया और अपनी राजधानी को अणहिल वाड़ा पट्टन में न करके धोलेरे में की, इस वंश के विशालदेव, अर्जुन और सारंग, इन तीनों ने राज्य किया और इसी की बरकरारी में आबू पर प्रसिद्ध देवालय के निर्मापक (बनवाने वाले) पोरवाल ज्ञातिभूषण वस्तुपाल और तेजपाल का पड़ाव हुआ ॥

१–इस मन्दिर की सुन्दरता का वर्णन हम यहाँ पर क्या करें, क्योंकि इस का पूरा स्वरूप तो वहाँ जा कर देखने से ही मालूम हो सकता है ॥

पोरवाल ज्ञातिभूषण नररत्न वस्तुपाल और तेजपाल का वर्णन ॥

वीर धवल वाधेला के राज्यसमय में वस्तुपाल और तेजपाल, इन दोनों भाइयों का बड़ा मान था, वस्तुपाल की पत्नी का नाम ललिता देवी था और तेजपाल की पत्नी का नाम अनुपमा था ।

वस्तुपाल ने गिरनार पर्वत पर जो श्री नेमिनाथ भगवान् का देवालय वनवाया था वह ललिता देवी का स्मारकरूप (स्मरण का चिह्नरूप) वनवाया था ।

किसी समय तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि-अपने पास में अपार सम्पत्ति है उस का क्या करना चाहिये, इस बात पर खूब विचार कर उस ने यह निश्चय किया कि-आबूराज पर सब सम्पत्ति को रख देना ठीक है, यह निश्चय कर उस ने सव सम्पत्ति को रख कर उस का अचल नाम रखने के लिये अपने पति और जेठ से अपना विचार प्रकट किया, उन्हों ने भी इस कार्य को श्रेष्ठ समझ कर उस के विचार का अनुमोदन किया और उस के विचार के अनुसार आबूराज

१-इन्हीं के समय में दशा और वीसा, ये दो तड़ पड़े हैं, जिन का वर्णन लेख के वढ़ जाने के भय से यहाँ पर नहीं कर सकते हैं ॥

२-इन की वंशावलि का क्रम इस प्रकार है कि:—
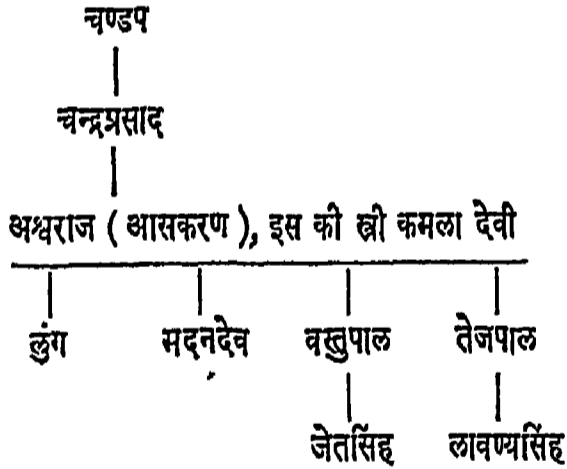
३-वम्बई इलाके के उत्तर में आखिरी टॉचपर सिरोही संस्थान में अरवली के पश्चिम में करीव सात माइल पर अरवली की घाटी के सामने यह पर्वत है, इस का आकार बहुत लम्बा और चौड़ा है अर्थात् इस की लम्बाई तलहटी से २० माइल है, ऊपर का घाटमाथा १४ माइल है, शिखा २ माइल है, इस की दिशा ईशान और नैर्ऋत्य है, यह पहाड़ बहुत ही प्राचीन है, यह वात इस के स्वरूप के देखने से ही जान ली जाती है, इस के पत्थर वर्तुलाकार (गोलाकार) हो कर सुँवाले (चिकने) हो गये हैं, इस स्थिति का हेतु यही है कि-इस के ऊपर वहुत कालपर्यन्त वायु और वर्षा आदि पञ्च महाभूतों के परमाणुओं का परिणमन हुआ है, यह भूगर्भशास्त्रवेत्ताओं का मत है, यह पहाड़ समुद्र की सपाटी से घाटमाथा तक ४००० फुट है और पाया से ३००० फुट है तथा इस के सर्वोन्तिम ऊँचे शिखर ५६५३ फुट हैं उन्हीं को गुरु शिखर कहते हैं, ईस्वी सन् १८२२ में-राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासलेखक **कर्नल टाड साहव** यहाँ (आवूराज) पर आये थे तथा यहाँ के मन्दिरों को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हो कर उन की बहुत

पर प्रथम से ही विमलशाह के बनवाये हुए श्री आदिनाथ स्वामी के भव्य देवालय के समीप में ही संगमरमर पत्थर का एक सुन्दर देवालय बनवाया तथा उस में श्री नेमिनाथ भगवान् की मूर्ति स्थापित की।

उक्त दोनों देवालय केवल संगमरमर पाषाण के बने हुए हैं और उन में प्राचीन आर्य लोगों की शिल्पकला के रूप में रत्न भरे हुए हैं, इस शिल्पकला के रत्नभण्डार को देखने से यह बात स्पष्ट मालूम हो जाती है कि-हिन्दुस्थान में किसी समय में शिल्पकला कैसी पूर्णावस्था को पहुँची हुई थी।

इन मन्दिरों के बनने से वहाँ की शोभा अकथनीय हो गई है, क्योंकि-प्रथम तो आबू ही एक रमणीक पर्वत है, दूसरे-ये सुन्दर देवालय उस पर बन गये हैं, फिर भला शोभा की क्या सीमा हो सकती है? सच है-"सोना और सुगन्ध" इसी का नाम है।

तारीफ की थी, देखिये! यहाँ के जैन मन्दिरों के विषय में उन के कथन का सार यह है—"यह बात निर्विवाद है कि-इस भारतवर्ष के सर्व देवालयों में ये आबू पर के देवालय विशेष भव्य हैं और ताज-महल के सिवाय इन के साथ मुकाबिला करने वाली दूसरी कोई भी इमारत नहीं है, धनाढ्य भक्तों में से एक के खड़े किये हुए आनन्ददर्शक तथा अभिमान योग्य इस कीर्तिस्तम्भ की अनहद सुन्दरता का वर्णन करने में कलम अशक्त है" इत्यादि, पाठकगण जानते ही हैं कि-कर्नल टाड साहब ने राजपूताने का इतिहास बहुत सुयोग्य रीति से लिखा है तथा उन का लेख प्रायः सब को मान्य है, क्योंकि-जो कुछ उन्हों ने लिखा है वह सब प्रमाणसहित लिखा है, इसी लिये एक कवि ने उन के विषय में यह दोहा कहा है—**"टाड समा साहिब विना, क्षत्रिय यश क्षय थात ॥ फार्बस सम साहिब विना, नहिँ उधरत गुजरात" ॥ १ ॥** अर्थात् यदि टाड साहब न लिखते तो क्षत्रियों के यश का नाश हो जाता तथा फार्बस साहब न लिखते तो गुजरात का उद्धार नहीं होता ॥ १ ॥ तात्पर्य यह है कि-राजपूताने के इतिहास को कर्नल टाड साहब ने और गुजरात के राजाओं के इतिहास को मि० फार्बस साहब ने बहुत परिश्रम करके लिखा है ॥

१-इस पवित्र और रमणीक स्थान की यात्रा हम ने संवत् १९५८ के कार्तिक कृष्ण ७ को की थी तथा दीपमालिका (दिवाली) तक यहाँ ठहरे थे, इस यात्रा में मकसूदाबादनिवासी राय बहादुर श्रीमान् श्री मेघराज जी कोठारी के ज्येष्ठ पुत्र श्री रखाल बाबू स्वर्गवासी की धर्मपत्नी श्राविका सुन्नु कुमारी और उन के मामा बच्छावत श्री गोविन्दचन्द जी तथा नौकर चाकरों सहित कुल सात आदमी थे, (इन की अधिक विनती होने से हमें भी यात्रासंगम करना पड़ा था), इस यात्रा के करने में आबू, शत्रुञ्जय, गिरनार, भोयंणी और राणपुर आदि पञ्चतीर्थी की यात्रा भी बड़े आनन्द के साथ हुई थी, इस यात्रा में जो इस (आबू) स्थान की अनेक बातों का अनुभव हमें हुआ उन में से कुछ बातों का वर्णन हम पाठकों के ज्ञानार्थ यहाँ लिखते हैं:—

आबू पर वर्त्तमान वस्ती—आबू पर वर्त्तमान में वस्ती अच्छी है, यहाँ पर सिरोही महाराज का एक अधिकारी रहता है और वह देलवाड़ा (जिस जगह पर उक्त मन्दिर बना हुआ है उस को इसी 'देलवाड़ा' नाम से कहते हैं) को जाते हुए यात्रियों से कर (महसूल) वसूल करता है, परन्तु साधु, यती,

उक्त देवालय के बनवाने में द्रव्य के व्यय के विषय में एक ऐसी दन्तकथा है कि-शिल्पकार अपने हथियार (औज़ार) से जितने पत्थर कोरणी को खोद कर रोज़ निकालते थे उन्हीं (पत्थरों) के वरावर तौल कर उन को रोज़ मजूरी के रुपये दिये जाते थे, यह क्रम वरावर देवालय के बन चुकने तक होता रहा था।

दूसरी एक कथा यह भी है कि-दुष्काल (दुर्भिक्ष वा अकाल) के कारण आबू पर बहुत से मजदूर लोग इकट्ठे हो गये थे, बस उन्हीं को सहायता पहुँचाने के लिये यह देवालय बनवाया गया था।

और ब्राह्मण आदि को कर नहीं देना पड़ता है, यहाँ की और यहाँ के अधिकार में आये हुए ऊरिया आदि ग्रामों की उत्पत्ति की सर्व व्यवस्था उक्त अधिकारी ही करता है, इस के सिवाय-यहाँ पर बहुत से सर्कारी नौकरों, व्यापारियों और दूसरे भी कुछ रहवासियों (रईसों) की वस्ती है, यहाँ का बाज़ार भी नामी है, वर्त्तमान में राजपूताना आदि के एजेंट गवर्नर जनरल के निवास का यह मुख्य स्थान है इस लिये यहाँ पर राजपूताना के राजों महाराजों ने भी अपने २ बँगले बनवा लिये हैं और वहाँ वे लोग प्रायः उष्ण ऋतु में हवा खाने के लिये जाकर ठहरते हैं, इस के अतिरिक्त उन (राजों महाराजों) के दर्बारी वकील लोग वहाँ रहते हैं, अर्वाचीन सुधार के अनुकूल सर्व साधन राज्य की ओर से प्रजा के ऐश आराम के लिये वहाँ उपस्थित किये गये हैं जैसे-म्यूनीसिपालिटी, प्रशस्त मार्ग और रोशनी का सुप्रबन्ध आदि, यूरोपियन लोगों का भोजनालय (होटल), पोष्ट आफिस और सरत का मैदान, इत्यादि इमारतें इस स्थल की शोभारूप हैं।

आबू पर जाने की सुगमता—खरैड़ी नामक स्टेशन पर उतरने के बाद उस के पास में ही मुर्शिदाबादनिवासी श्रीमान् श्रीबुध सिंह जी रायबहादुर दुधेड़िया के बनवाये हुए जैन मन्दिर और धर्मशाला हैं, इस लिये यदि आवश्यकता हो तो धर्मशाला में ठहर जाना चाहिये नहीं तो सवारी कर आबू पर चले जाना चाहिये, आबू पर डाक के पहुँचाने के लिये और वहाँ पहुँचाने को सवारी का प्रबंध करने के लिये एक भाड़ेदार रहता है उस के पास ताँगे आदि भाड़े पर मिल सकते हैं, आबू पर जाने का मार्ग उत्तम है तथा उस की लम्बाई सत्रह माइल की है, ताँगे में तीन मनुष्य बैठ सकते हैं और प्रति मनुष्य ४) रुपये भाड़ा लगता है अर्थात् पूरे ताँगे का किराया १२) रुपये लगते हैं, अन्य सवारी की अपेक्षा ताँगे में जाने से आराम भी रहता है, आबू पर पहुँचने में ढाई तीन घण्टे लगते हैं, वहाँ भाड़ेदार (ठेके वाले) का आफिस है और घोड़ा गाड़ी का तबेला भी है, आबू पर सब से उत्तम और प्रेक्षणीय (देखने के योग्य) पदार्थ जैन देवालय है, वह भाड़ेदार के स्थान से डेढ़ माइल की दूरी पर है, वहाँ तक जाने के लिये बैल की और घोड़े की गाड़ी मिलती है, देलवाड़े में देवालय के बाहर यात्रियों के उतरने के लिये स्थान बने हुए हैं, यहाँ पर बनिये की एक दूकान भी है जिस में आटा दाल आदि सब सामान मूल्य से मिल सकता है, देलवाड़ा से थोड़ी दूर परमार जाति के ग़रीब लोग रहते हैं जो कि मज़दूरी आदि काम काज करते हैं और दही दूध आदि भी बेंचते हैं, देवालय के पास एक बावड़ी है उस का पानी अच्छा है, यहाँ पर भी एक भाड़ेदार घोड़ों को रखता है इस लिये कहीं जाने के लिये घोड़ा भाड़े पर मिल सकता है, इस से अचलेश्वर, गोमुख, नखी तालाव और पर्वत के प्रेक्षणीय दूसरे स्थानों पर जाने के लिये तथा सैर करने को जाने के लिये बहुत आराम है, उष्ण ऋतु में आबू पर बड़ी बहार रहती है इसी लिये बड़े लोग प्रायः उष्ण ऋतु को वहीं व्यतीत करते हैं॥

इसी रीति से इस के विषय में बहुत सी बातें प्रचलित हैं जिन का वर्णन अनावश्यक समझ कर नहीं करते हैं, खैर-देवालय के बनने का कारण चाहे कोई ही क्यों न हो किन्तु असल में सारांश तो यही है कि-इस देवालय के बनवाने में अनुपमा और लीलावती की धर्मबुद्धि ही मुख्य कारणभूत समझनी चाहिये, क्योंकि-निस्सीम धर्मबुद्धि और निष्काम भक्ति के विना ऐसे महत् कार्य का कराना अति कठिन है, देखो! आबू सरीखे दुर्गम मार्ग पर तीन हज़ार फुट ऊँची संगमरमर पत्थर की ऐसी मनोहर इमारत का उठवाना क्या असामान्य औदार्य का दर्शक नहीं है? सब ही जानते हैं कि-आबू के पहाड़ में संगमरमर पत्थर की खान नहीं है किन्तु मन्दिर में लगा हुआ सब ही पत्थर आबू के नीचे से करीब पच्चीस माइल की दूरी से जरीवा की खान में से लाया गया था (यह पत्थर अम्बा भवानी के डूँगर के समीप वखर प्रान्त में मिलता है) परन्तु कैसे लाया गया, कौन से मार्ग से लाया गया, लाने के समय क्या २ परिश्रम उठाना पड़ा और कितने द्रव्य का खर्च हुआ, इस की तर्कना करना अति कठिन ही नहीं किन्तु अशक्यवत् प्रतीत होती है, देखो! वर्तमान में तो आबू पर गाड़ी आदि के जाने के लिये एक प्रशस्त मार्ग बना दिया गया है परन्तु पहिले (देवालय के बनने के समय) तो आबू पर चढ़ने का मार्ग अति दुर्गम था अर्थात् पूर्व समय में मार्ग में गहन झाड़ी थी तथा अघोरी जैसी क्रूर जाति का सञ्चार आदि था, भला सोचने की बात है कि-इन सब कठिनाइयों के उपस्थित होने के समय में इस देवालय की स्थापना जिन पुरुषों ने करवाई थी उन में धर्म के दृढ़ निश्चय और उस में स्थिर भक्ति के होने में सन्देह ही क्या है।

वस्तुपाल और तेजपाल ने इस देवालय के अतिरिक्त भी देवालय, प्रतिमा, शिवालय उपाश्रय (उपासरे), विद्याशाला, स्तूप, मस्जिद, कुआ, तालाब, बावड़ी, सदाव्रत और पुस्तकालय की स्थापना आदि अनेक शुभ कार्य किये थे, जिन का वर्णन हम कहाँ तक करें बुद्धिमान् पुरुष ऊपर के ही कुछ वर्णन से उन की धर्मबुद्धि और लक्ष्मीपात्रता का अनुमान कर सकते हैं।

इन (वस्तुपाल और तेजपाल) को उदाहरणरूप में आगे रखने से यह बात भी स्पष्ट मालूम हो सकती है कि-पूर्व काल में इस आर्यावर्त्त देश में बड़े २ परोपकारी धर्मात्मा तथा कुबेर के समान धनाढ्य गृहस्थ जन हो चुके हैं, आहा! ऐसे ही पुरुषरत्नों से यह रत्नगर्भा वसुन्धरा शोभायमान होती है और ऐसे ही नररत्नों की सत्कीर्ति और नाम सदा कायम रहता है, देखो! शुभ कार्यों के करने वाले वे वस्तुपाल और तेजपाल इस संसार से चले जा चुके हैं, उन के गृहस्थान आदि के भी कोई चिह्न इस समय ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते हैं, परन्तु उक्त महोदयों के नामाङ्कित कार्यों से इस भारतभूमि

के इतिहास में उन का नाम सोने के अक्षरों में अङ्कित होकर देदीप्यमान हो रहा है और सदा ऐसा ही रहेगा, बस इन्हीं सब बातों को सोच कर मनुष्य को यथाशक्ति शुभ कार्यों को करके उन्हीं के द्वारा अपने नाम को सदा के लिये स्थिर कर इस संसार से प्रयाण करना चाहिये कि-जिस से इस संसार में उस के नाम का स्मरण कर सब लोग उस के गुणों का कीर्त्तन करते रहें और परलोक में उस को अक्षय सुख का लाभ हो ॥

यह पञ्चम अध्याय का पोरवाल वंशोत्पत्तिवर्णन नामक दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

तीसरा प्रकरण-खंडेलवाल जातिवर्णन ॥

खंडेल वाल (सिरावगी) जाति के ८४ गोत्रों के होने का संक्षिप्त इतिहास ॥

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ६०९ (छः सौ नौ) वर्ष के पश्चात् दिगम्बर मत की उत्पत्ति सहस्रमल्ल साधु से हुई, इस मत में कुमदचन्द्रनामक एक मुनि बड़ा पण्डित हुआ, उस ने सनातन जैन धर्म से चौरासी बोलों का मुख्य फर्क इस मत में डाला, इस के अनन्तर कुछ वर्ष वीतने पर इस मत की नींव का पाया जिनसेनाचार्य से दृढ़ हुआ, जिस का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है कि-खंडेला नगर में सूर्यवंशी चौहान खंडेलगिरि राज्य करता था, उस समय अपराजित मुनि के सिँगाड़े में से जिनसेनाचार्य ५०० (पाँच सौ) मुनियों के परिवार से युक्त विचरते हुए इस (खंडेला) नगर के उद्यान में आकर ठहरे, उक्त नगर की अमलदारी में ८४ गाँव लगते थे, दैववश कुछ दिनों से सम्पूर्ण राजधानी में महामारी और विषूचिका रोग अत्यन्त फैल रहा था

१-यह मत सनातन जैनश्वेताम्बर धर्म में से ही निकला है, इस मत के आचार्यों तथा साधुओं ने नग्न रहना पसन्द किया था, वर्त्तमान में इस मत के साधु और साध्वी नहीं हैं अतः श्रावकों से ही धर्मोपदेश आदि का काम चलता है, इस मत में जो ८४ बोलों का फर्क डाला गया है उन में मुख्य ये पाँच बातें हैं— १-केवली आहार नहीं करे, २-वस्त्र में केवल ज्ञान नहीं है, ३-स्त्री को मोक्ष नहीं होता है, ४-जैनमत के दिगम्बर आम्नाय के सिवाय दूसरे को मोक्ष नहीं होता है, ५-सब द्रव्यों में काल द्रव्य मुख्य है, इन बोलों के विषय में जैनाचार्यों के बनाये हुए संस्कृत में खण्डन मण्डन के बहुत से ग्रन्थ मौजूद हैं परन्तु केवल भाषा जानने वालों को यदि उक्त विषय देखना हो तो विद्यासागर न्यायरत्न मुनि श्री शान्तिविजय जी का बनाया हुआ मानवधर्मसंहिता नामक ग्रन्थ तथा स्वर्गवासी खरतरगच्छीय मुनि श्री चिदानन्द जी का बनाया हुआ स्याद्वादानुभवरत्नाकर नामक ग्रन्थ (जिस के विषय में इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में हम लिख चुके हैं) देखना चाहिये ॥

कि–जिस से हज़ारों आदमी मर चुके थे और मर रहे थे, रोग के प्रकोप को देख कर वहाँ का राजा बहुत ही भयातुर हो गया और अपने गुरु ब्राह्मणों तथा ऋषियों को बुलाकर सब से उक्त उपद्रव की शान्ति का उपाय पूछा, राजा के पूछने पर उक्त धर्म-गुरुओं ने कहा कि–"हे राजन्! नरमेध यज्ञ को करो, उस के करने से शान्ति होगी" उन के वचन को सुन कर राजा ने शीघ्र ही नरमेध यज्ञ की तैयारी करवाई और यज्ञ में होमने के लिये एक मनुष्य के लाने की आज्ञा दी, संयोगवश राजा के नौकर मनुष्य को ढूँढ़ते हुए श्मशान में पहुँचे, उस समय वहाँ एक दिगम्बर मुनि ध्यान लगाये हुए खड़े थे, बस उन को देखते ही राजा के नौकर उन्हें पकड़ कर यज्ञशाला में ले गये, यज्ञ की विधि कराने वालों ने उस मुनि को स्नान करा के वस्त्राभूषण पहिरा कर राजा के हाथ से तिलक करा कर हाथ में सङ्कल्प दे कर तथा वेद का मन्त्र पढ़ कर हवनकुण्ड में स्वाहा कर दिया, परन्तु ऐसा करने पर भी उपद्रव शान्त न हुआ किन्तु उस दिन से उलटा असंख्यातगुणा क्लेश और उपद्रव होने लगा तथा उक्त रोगों के सिवाय अग्निदाह, अनावृष्टि और प्रचण्ड हवा (आँधी) आदि अनेक कष्टों से प्रजा को अत्यन्त पीड़ा होने लगी और प्रजाजन अत्यन्त व्याकुल होकर राजा के पास जा २ कर अपना २ कष्ट सुनाने लगे, राजा भी उस समय चिन्ता के मारे विह्वल हो कर मूर्छागत (बेहोश) हो गया, मूर्छा के होते ही राजा को स्वप्न आया और स्वप्न में उस ने पूर्वोक्त (दिगम्बर मत के) मुनि को देखा, जब मूर्छा दूर हुई और राजा के नेत्र खुल गये तब राजा पुनः उपद्रवों की शान्ति का विचार करने लगा और थोड़ी देर के पीछे अपने अमीर उमरावों को साथ लेकर वह नगर के बाहर निकला, बाहर जाकर उस ने उद्यान में ५०० दिगम्बर मुनिराजों को ध्यानारूढ देखा, उन्हें देखते ही राजा के हृदय में विस्मय उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र ही उन के चरणों में गिरा और रुदन करता हुआ बोला कि–"हे महाराज! आप कृपा कर मेरे देश में शान्ति करो" राजा के इस विनीत (विनययुक्त) वचन को सुन कर जिनसेनाचार्य बोले कि–"हे राजन्! तू दयाधर्म की वृद्धि कर" राजा बोला कि–"हे महाराज! मेरे देश में यह उपद्रव क्यों हो रहा है" तब दिगम्बरा-चार्य ने कहा कि–"हे राजन्! तू और तेरी प्रजा मिथ्यात्व से अन्धे हो कर जीवहिंसा करने लगे हैं तथा मांससेवन और मदिरापान कर अनेक पापाचरण किये गये हैं, उन्हीं के कारण तेरे देश भर में महामारी फैली थी और उस के विशेष बढ़ने का हेतु यह है कि–तू ने शान्ति के बहाने से नरमेध यज्ञ में मुनि का होम कर सर्व प्रजा को कष्ट में डाल दिया, बस इसी कारण ये सब दूसरे भी अनेक उपद्रव फैल रहे हैं, तुझे यह भी स्मरण रहे कि–वर्तमान में जो जीवहिंसा से अनेक उपद्रव हो रहे हैं यह तो एक सामान्य बात है, इस की विशेषता तो तुझे भवान्तर (परलोक) में विदित होगी अर्थात् भवान्तर में

तू बहुत दुःख पावेगा, क्योंकि–जीवहिंसा का फल केवल दुर्गति ही है" मुनि के इस वचन को सुन कर राजा ने अपने किये हुए पाप का पश्चात्ताप किया तथा मुनि से सत्य धर्म को पूछा, तब दिगम्बराचार्य बोले कि–"हे राजन्! जहाँ पाप है वहाँ धर्म कहाँ से हो सकता है? देख! जैसा तुझे अपना जीव प्यारा है वैसा ही सब जीवों को भी अपना २ जीव प्यारा है, इस लिये अपने जीव के समान सब के जीव को प्रिय समझना चाहिये, पञ्च महाव्रतरूप यतिधर्म तथा सम्यक्त्वसहित बारह व्रत-रूप गृहस्थधर्म ही इस भव और पर भव में सुखदायक है, इस लिये यदि तुझे रुचे तो उस (दयामय जैन धर्म) का अङ्गीकार कर और सुपात्रों तथा दीन दुःखियों को दान दे, सत्य वचन को बोल, परनिन्दा तथा विकथा को छोड़ और जिनराज की द्रव्य तथा भाव से पूजा कर" आचार्य के मुख से इस उपदेश को सुन कर राजा जिनधर्म के मर्म को समझ गया और उस ने शीघ्र ही जिनराज की शान्तिक पूजा करवाई, जिस से शीघ्र ही उपद्रव शान्त हो गया, बस राजा ने उसी समय चौरासी गोत्रों सहित (८२ उमराव और एक आप खुद, इस प्रकार ८४) जैन धर्म का अङ्गीकार किया, ऊपर कहे हुए ८४ गाँवों में से ८२ गाँव राजपूतों के थे और दो गाँव सोनारों के थे, ये ही लोग चौरासी गोत्रवाले सिरावगी कहलाये, यह भी स्मरण रहे कि–इन के गाँवों के नाम से ही इन के गोत्र स्थापित किये गये थे, इन में से राजा का गोत्र साह नियत हुआ था और बाकी के गोत्रों का नाम पृथक् २ रक्खा गया था जिन सब का वर्णन क्रमानुसार निम्नलिखित है:—

संख्या	गोत्र		वंश		गांव		कुलदेवी	
१	साह	गोत्र	चौहान	राजपूत	खँडेलो	गाँव	चक्रेश्वरी	देवी
२	पाटणी	„	तंवर	„	पाढणी	„	आमा	„
३	पापड़ीवाल	„	चौहान	„	पापड़ी	„	चक्रेश्वरी	„
४	दोसा	„	राठौड़	„	दौसा	„	जमाय	„
५	सेठी	„	सोम	„	सेठाणियो	„	चक्रेश्वरी	„
६	भौसा	„	चौहान	„	भौसाणी	„	नांदणी	„
७	गोधा	„	गोधड़	„	गोधाणी	„	मातणी	„
८	चाँदूवाड़	„	चँदेला	„	चंदूवाड़	„	मातणी	„
९	मोठ्या	„	ठीमर	„	मोठ्या	„	औरल	„
१०	अजमेरा	„	गौड़	„	अजमेर्यो	„	नाँदणी	„
११	दरड़ौद्या	„	चौहान	„	दरड़ौद	„	चक्रेश्वरी	„
१२	गदइया	„	चौहान	„	गदयौ	„	चक्रेश्वरी	„

संख्या	गोत्र		वंश		गांव		कुलदेवी	
१३	पाहाड्या	,,	चौहान	,,	पाहाड़ी	,,	चक्रेश्वरी	,,
१४	भूँच	,,	सूर्यवंशी	,,	भूँछड़	,,	आमण	,,
१५	वज	,,	हेम	,,	वजाणी	,,	आमण	,,
१६	वज्जमहाराया	,,	हेम	,,	वजमासी	,,	मोहणी	,,
१७	राऊका	,,	सोम	,,	रालोली	,,	औरल	,,
१८	पाटौद्या	,,	तँवर	,,	पाटोदी	,,	पद्मावती	,,
१९	गगवाल	,,	कछावा	,,	गगवाणी	,,	जमवाय	,,
२०	पाघड़ा	,,	चौहान	,,	पादणी	,,	चक्रेश्वरी	,,
२१	सौनी	,,	सोलंखी	,,	सोहनी	,,	आमण	,,
२२	विलाला	,,	ठीमर सोम	,,	विलाला	,,	औरल	,,
२३	विरलाला	,,	कुरुवंशी	,,	छोटी विलाली	,,	सोतल	,,
२४	विन्यायक्या	,,	गहलौत	,,	विन्यायकी	,,	वेथी	,,
२५	वांकीवाल	,,	मोहिल	,,	वाँकली	,,	जीणी	,,
२६	कासलावाल	,,	मोहिल	,,	काँसली	,,	जीणी	,,
२७	पापला	,,	सोढा	,,	पापली	,,	आमण	,,
२८	सौगाणी	,,	सूर्यवंशी	,,	सौगाणी	,,	कन्हाड़ी	,,
२९	जाँझड्या	,,	कछावा	,,	जाँझरी	,,	जमवाय	,,
३०	कटार्या	,,	कछावा	,,	कटार्या	,,	जमवाय	,,
३१	वैद	,,	सोरड़ी	,,	वदवासा	,,	आमणी	,,
३२	टोंग्या	,,	पँवार	,,	टोंगाणी	,,	पावडी	,,
३३	बोहोरा	,,	सोढा	,,	बोहोरी	,,	सोतली	,,
३४	काला	,,	कुरुवंशी	,,	कुलवाड़ी	,,	सोहणी	,,
३५	छावड़्या	,,	चौहान	,,	छावड़्या	,,	औरल	,,
३६	लोंग्या	,,	सूर्यवंशी	,,	लगाणी	,,	आमणी	,,
३७	लुहाड़्या	,,	मोरठ्या	,,	लुहाड़्या	,,	लोसिल	,,
३८	भँडसाली	,,	सोलखी	,,	भँडसाली	,,	आमणी	,,
३९	दगड़ावत	,,	सोलंखी	,,	दरड़ौदा	,,	आमणी	,,
४०	चौधरी	,,	तँवर	,,	चौधत्या	,,	पद्मावती	,,
४१	पौटल्या	,,	गहलौत	,,	पौटला	,,	पद्मावती	,,
४२	गींदौड़्या	,,	सोढा	,,	गिन्हौड़ी	,,	श्रीदेवी	,,

संख्या	गोत्र		वंश		गांव		कुलदेवी	
४३	साखूण्या	,,	सौढा	,,	साखूणी	,,	सिरवराय	,,
४४	अनैपड़्या	,,	चँदेला	,,	अनैपड़ी	,,	मातणी	,,
४५	निगौत्या	,,	गौड़	,,	नागौती	,,	नाँदणी	,,
४६	पँगुल्या	,,	चौहान	,,	पाँगुल्यो	,,	चक्रेश्वरी	,,
४७	भूलाण्या	,,	चौहान	,,	भूलाणी	,,	चक्रेश्वरी	,,
४८	पीतल्या	,,	चौहान	,,	पीतल्यो	,,	चक्रेश्वरी	,,
४९	बनमाली	,,	चौहान	,,	वनमाल	,,	चक्रेश्वरी	,,
५०	अरड़क	,,	चौहान	,,	अरड़क	,,	चक्रेश्वरी	,,
५१	रावल्या	,,	ठीमरसौम	,,	रावल्यौ	,,	औटल	,,
५२	मौदी	,,	ठीमरसौम	,,	मौदहसी	,,	लौरल	,,
५३	कौकणराज्या	,,	कुरुवंशी	,,	कौकणराज्या	,,	सौनल	,,
५४	जुगराज्या	,,	कुरुवंशी	,,	जुगराज्या	,,	सौनल	,,
५५	मूलराज्या	,,	कुरुवंशी	,,	मूलराज्या	,,	सौनल	,,
५६	छहड़्या	,,	कुरुवंशी	,,	छाहड़्या	,,	सौनल	,,
५७	दुकड़ा	,,	दुजाल	,,	दुकड़ा	,,	हेमा	,,
५८	गौती	,,	दुजाल	,,	गौतड़ा	,,	हेमा	,,
५९	कुलमाण्या	,,	दुजाल	,,	कुलभाणी	,,	हेमा	,,
६०	वौरखंड्या	,,	दुजाल	,,	वौरखंडी	,,	हेमा	,,
६१	सरपत्या	,,	मौहिल	,,	सरपती	,,	जीणदेवी	,,
६२	चिरड़क्या	,,	चौहान	,,	चिरड़की	,,	चक्रेश्वरी	,,
६३	निगर्द्या	,,	गौड़	,,	निरगद	,,	नाँदणी	,,
६४	निरपौल्या	,,	गौड़	,,	निरपाल	,,	नाँदणी	,,
६५	सरवड़्या	,,	गौड़	,,	सरवड़्या	,,	नाँदणी	,,
६६	कड़वड़ा	,,	गौड़	,,	कड़वगरी	,,	चक्रेश्वरी	,,
६७	साँभर्या	,,	चौहान	,,	साँभर्यो	,,	जाणिधयाड़ा	,,
६८	हलद्या	,,	मौहिल	,,	हरलौद	,,	चौथी	,,
६९	सौमगसा	,,	गहलौत	,,	सौमद	,,	सिखराय	,,
७०	बंवा	,,	सौढा	,,	बंवाली	,,	चक्रेश्वरी	,,
७१	चौवाण्या	,,	चौहान	,,	चौवरत्या	,,	सिखराय	,,
७२	राजहंस	,,	सौढा	,,	राजहंस	,,		

संख्या	गोत्र		वंश		गांव		कुलदेवी	
७३	अहंकार्या	,,	सौढा	,,	अहंकर	,,	सिखण्य	,,
७४	भूसावड़्या	,,	कुरुवंशी	,,	भसवड़्या	,,	सौनल	,,
७५	मौलसरा	,,	सौढा	,,	मौलसर	,,	सिखराय	,,
७६	भाँगड़ा	,,	खीमर	,,	भाँगड़	,,	औरल	,,
७७	लौहड़्या	,,	मौरठा	,,	लौहट	,,	लौसलधिया	,,
७८	खेत्रपाल्या	,,	दुजाल	,,	खेत्रपाल्यौ	,,	हेमा	,,
७९	राजभद्र	,,	साँखला	,,	राजभदरा	,,	सरस्वती	,,
८०	भुँवाल्या	,,	कछावा	,,	भुँवाल	,,	जमवाय	,,
८१	जलवाण्या	,,	कछावा	,,	जलवाणी	,,	जमवाय	,,
८२	वेदाल्या	,,	ठीमर	,,	वनवौड़ा	,,	औरल	,,
८३	लठीवाल	,,	सौढा	,,	लटवाड़ा	,,	श्रीदेवी	,,
८४	निरपाल्या	,,	सोरटा	,,	निपती	,,	अमाणी	,,

यह पञ्चम अध्याय का खँडेलवाल जातिवर्णन नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

चौथा प्रकरण—माहेश्वरी वंशोत्पत्ति वर्णन ॥

माहेश्वरी वंशोत्पत्ति का संक्षिप्त इतिहास ॥

खँडेला नगर में सूर्यवंशी चौहान जाति का राजा खड़गलसेन राज्य करता था, उस के कोई पुत्र नहीं था इस लिये राजा के सहित सम्पूर्ण राजधानी चिन्ता में निमग्न थी, किसी समय राजा ने ब्राह्मणों को अति आदर के साथ अपने यहाँ बुलाया तथा अत्यन्त प्रीति के साथ उन को वहुत सा द्रव्य प्रदान किया, तव ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर राजा को वर दिया कि—"हे राजन्! तेरा मनोवांछित सिद्ध होगा" राजा बोला कि—"हे महाराज! मुझे तो केवल एक पुत्र की वाञ्छा है" तव ब्राह्मणों ने कहा कि—"हे राजन्! तू शिवशक्ति की सेवा कर ऐसा करने से शिव जी के वर और हम-लोगों के आशीर्वाद से तेरे बड़ा बुद्धिमान् और वलवान् पुत्र होगा, परन्तु वह सोलह

१–यह माहेश्वरी वैश्यों की उत्पत्ति का इतिहास खास उन के भाटों के पास जो लिखा हुआ है उसी के अनुसार हम ने लिखा है, यह इतिहास भाटों का वनाया हुआ है अथवा वास्तविकरूप (जो कुछ हुआ था उसी का वर्णनरूप) है, इस वात का विचार लेख को देख कर बुद्धिमान् स्वयं ही कर सकेंगे, हम ने तो उक्त वैश्यों की उत्पत्ति कैसे मानी जाती है इस वात का सव को ज्ञान होने के लिये इस विषय का वर्णन कर दिया है ॥

वर्ष तक उत्तर दिशा को न जावे, सूर्यकुण्ड में स्नान न करे और ब्राह्मणों से द्वेष न करे तो वह साम्राज्य (चक्रवर्त्तिराज्य) का भोग करेगा, अन्यथा (नहीं तो) इसी देह से पुनर्जन्म को प्राप्त हो जावेगा" उन के वचन को सुन कर राजा ने उन्हें वचन दिया (प्रतिज्ञा की) कि-"हे महराज! आप के कथनानुसार वह सोलह वर्ष तक न तो उत्तर दिशा को पैर देगा, न सूर्यकुण्ड में स्नान करेगा और न ब्राह्मणों से द्वेष करेगा" राजा के इस वचन को सुन कर ब्राह्मणों ने पुण्याहवाचन को पढ़ कर आशीर्वाद देकर अक्षत (चावल) दिया और राजा ने उन्हें द्रव्य तथा पृथ्वी देकर धनपूरित करके विदा किया, ब्राह्मण भी अति तुष्ट होकर वर को देते हुए विदा हुए, उन के विदा के समय राजा ने पुनः प्रार्थना कर कहा कि-"हे महाराज! आप का वर मुझे सिद्ध हो" सर्व भूदेव (ब्राह्मण) भी 'तथास्तु' कह कर अपने २ स्थान को गये, राजा के २४ रानियां थीं, उन में से चाँपावती रानी के गर्भाधान होकर राजा के पुत्र उत्पन्न हुआ, पुत्र का जन्म सुनते ही चारों तरफ से वधाइयाँ आने लगीं, नामस्थापन के समय उस का नाम सुजन कुँवर रक्खा गया, बुद्धि के तीक्ष्ण होने से वह वारह वर्ष की अवस्था में ही घोड़े की सवारी और शस्त्रविद्या आदि चौदह विद्याओं को पढ़ कर उन में प्रवीण हो गया, हृदय में भक्ति और श्रद्धा के होने से वह ब्राह्मणों और याचकों को नाना प्रकार के दान और मनोवांछित दक्षिणा आदि देने लगा, उस के सद्व्यवहार को देख कर राजा वहुत प्रसन्न हुआ, किसी समय एक बौद्ध[1] जैन साधु राजकुमार से मिला और उस ने राजकुमार को अहिंसा का उपदेश देकर जैनधर्म का उपदेश दिया इस लिये उस उपदेश के प्रभाव से राजकुमार की बुद्धि शिवमत से हट कर जैन मत में प्रवृत्त हो गई और वह ब्राह्मणों से यज्ञसम्बन्धी हिंसा का वर्णन और उस का खण्डन करने लगा, आखिरकार उस ने अपनी राजधानी की तीनों दिशाओं में फिर कर सब जगह जीवहिंसा को वंद कर दिया, केवल एक उत्तर दिशा वाकी रह गई, क्योंकि-उत्तर दिशा में जाने से राजा ने पहिले ही से उसे मना कर रक्खा था, जब राजकुमार ने अपनी राजधानी की तीनों दिशाओं में एकदम जीवहिंसा को वंद कर दिया और नरमेध, अश्वमेध तथा गोमेध आदि सब यज्ञ वंद किये गये तब ब्राह्मणों और ऋषिजनों ने उत्तर दिशा में जाकर यज्ञ का करना शुरू किया, जब इस वात की चर्चा राजकुमार के कानों तक पहुँची तब वह वड़ा क्रुद्ध हुआ परन्तु पिता ने उत्तर दिशा में जाने का निषेध कर रक्खा था अतः वह

१-यह वात तो अंग्रेज़ों ने भी इतिहासों में वतला दी है कि-बौद्ध और जैनधर्म एक नहीं हैं किन्तु अलग २ हैं परन्तु अफसोस है कि-इस देश के अन्य मतावलम्बी विद्वान् भी इस वात में भूल खाते हैं अर्थात् वे बौद्ध और जैन धर्म को एक ही मानते हैं, जब विद्वानों की यह व्यवस्था है तो वेचारे भाट बौद्ध और जैनधर्म को एक लिखें इस में आश्चर्य ही क्या है ॥

उधर जाने में सङ्कोच करता था, परन्तु प्रारब्धरेखा तो बड़ी प्रबल होती है, बस उसे ने अपना ज़ोर किया और राजकुमार की उमरावों के सहित बुद्धि पलट गई, फिर क्या था- ये सब शीघ्र ही उत्तर दिशा में चले गये और वहाँ पहुँच कर संयोगवश सूर्यकुण्ड पर ही खड़े हुए; वहाँ इन्हों ने देखा कि-छः ऋषीश्वरों (पाराशर और गौतम आदि) ने यज्ञारम्भ कर कुण्ड, मण्डप, ध्वजा और कलश आदि का स्थापन कर रक्खा है और वे वेदध्वनिसहित यज्ञ कर रहे हैं, इस कार्यवाही को देख, वेदध्वनि का श्रवण कर और यज्ञशाला के मण्डप की रचना को देख कर राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मन में विचारने लगा कि-देखो! मुझ को तो यहाँ आने से राजा ने मना कर दिया और यहाँ पर छिपा कर यज्ञारम्भ कराया है, राजा की यह चतुराई मुझे आज मालूम हुई, यह विचार कर राजकुमार अपने साथ के उमरावों से बोला कि-"ब्राह्मणों को पकड़ लो और सम्पूर्ण यज्ञसामग्री को छीन कर नष्ट कर डालो, राजकुमार का यह वचन ज्यों ही ब्राह्मणों और ऋषियों के कर्णगोचर हुआ त्यों ही उन्हों ने समझा कि राक्षस आन पड़े हैं, बस उन्हों ने तेजी में आकर राजकुमार को न पहिचान कर किन्तु उन्हें राक्षस ही जान कर घोर शाप दे दिया कि-"हे निर्बुद्धियो! तुम लोग पाषाणवत् जड़ हो जाओ" शाप के देते ही बहत्तर उमराव और एक राजपुत्र घोड़ों के सहित पाषाणवत् जड़बुद्धि हो गये अर्थात् उन की चलने फिरने देखने और बोलने आदि की सब शक्ति मिट गई और वे मोहनिद्रा में निमग्न हो गये, इस बात को जब राजा और नगर के लोगों ने सुना तो शीघ्र ही वहाँ आकर उपस्थित हो गये और उन्हों ने कुमार तथा उमरावों को शाप के कारण पाषाणवत् जड़बुद्धि देखा, बस उन्हें ऐसी दशा में देख कर राजा का अन्तःकरण विह्वल हो गया और उस ने उसी दुःख से अपने प्राणों को तज दिया, उस समय राजा के साथ में रानियाँ भी आई थीं, जिन में से सोलह रानियाँ तो सती हो गईं और शेष रानियाँ ब्राह्मणों और ऋषियों के शरणागत हुईं, ऐसा होते ही आस पास के रजवाड़े वालों ने उस का राज्य दबा लिया, तब राजकुमार की स्त्री उन्हीं बहत्तर उमरावों की स्त्रियों को साथ लेकर रुदन करती हुई वहाँ आई और ब्राह्मणों तथा ऋषियों के चरणों में गिर पड़ी, उन के दुःख को देख कर ऋषियों ने शिव जी का अष्टाक्षरी मन्त्र देकर उन्हें एक गुफा बतला दी और यह वर दिया कि-तुम्हारे पति महादेव पार्वती के वर से शुद्धबुद्धि हो जावेंगे, तब तो वे सब स्त्रियाँ वहाँ बैठ कर शिवजी का स्मरण करने लगीं, कुछ काल के पीछे पार्वती जी के सहित शिव जी वहाँ आये, उस समय पार्वती जी ने महादेव जी से पूछा कि-यह क्या व्यवस्था है? तब शिव जी ने उन के पूर्व इतिहास का वर्णन कर उसे पार्वती जी को सुनाया, जब राजा के कुँवर की रानी और बहत्तर उमरावों की ठकुरानियों को यह मालूम हुआ कि-सचमुच पार्वती जी के

सहित शिव जी पधारे हैं, तब वे सब स्त्रियाँ आ कर पार्वती जी के चरणों का स्पर्श करने लगीं, उन की श्रद्धा को देख कर पार्वती जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि-"तुम सौभाग्यवती धनवती तथा पुत्रवती हो कर अपने २ पतियों के सुख को देखो और तुम्हारे पति चिरञ्जीव रहें" पार्वती जी के इस वर को सुन कर रानियाँ हाथ जोड़ कर कहने लगीं कि-"हे मातः! आप समझ कर वर देओ, देखो! यहाँ तो हमारे पतियों की यह दशा हो रही है" उन के वचन को सुन कर पार्वती जी ने महादेव जी से प्रार्थना कर कहा कि-"महाराज! इन के शाप का मोचन करो" पार्वती जी की प्रार्थना को सुनते ही शिव जी ने उन सब की मोहनिद्रा को दूर कर उन्हें चैतन्य कर दिया, बस वे सब सुभट जाग पड़े, परन्तु उन्हों ने मोहवश शिव जी को ही घेर लिया तथा सुजन कुँवर पार्वती जी के रूप को देख कर मोहित हो गया, यह जान कर पार्वती जी ने उसे शाप दिया कि-"अरे मँगते! तू माँग खा" बस वह तो जागते ही याचक हो कर माँगने लगा, इस के पीछे वे बहत्तरों उमराव बोले कि-"हे महाराज! हमारे घर में अब राज्य तो रहा नहीं है, अब हम क्या करें? तब शिव जी ने कहा कि-"तुम क्षत्रियत्व तथा शस्त्र को छोड़ कर वैश्य पद का ग्रहण करो" शिव जी के वचन को सब उमरावों ने अङ्गीकृत किया परन्तु हाथों की जड़ता के न मिटने से वे हाथों से शस्त्र का त्याग न कर सके, तब शिव जी ने कहा कि-"तुम सब इस सूर्यकुण्ड में स्नान करो, ऐसा करने से तुम्हारे हाथों की जड़ता मिट कर शस्त्र छूट जावेंगे" निदान ऐसा ही हुआ कि सूर्यकुण्ड में स्नान करते ही उन के हाथों की जड़ता मिट गई और हाथों से शस्त्र छूट गये, तब उन्हों ने तलवार की तो लेखनी, भालों की डंडी और ढालों की तराजू बना कर वणिज् पद (वैश्य पद) का ग्रहण किया, जब ब्राह्मणों को यह खबर हुई कि-हमारे दिये हुए शाप का मोचन कर शिव जी ने उन सब को वैश्य बना दिया है, तब तो वे (ब्राह्मण) वहाँ आ कर शिव जी से प्रार्थना कर कहने लगे कि "हे महाराज! इन्हों ने हमारे यज्ञ का विध्वंस किया था अतः हम ने इन्हें शाप दिया था, सो आप ने हमारे दिये हुए शाप का तो मोचन कर दिया और इन्हें वर दे दिया, अब कृपया यह बतलाइये कि-हमारा यज्ञ किस प्रकार सम्पूर्ण होगा?" ब्राह्मणों के इस वचन को सुन कर शिव जी ने कहा कि-"अभी तो इन के पास देने के लिये कुछ नहीं है परन्तु जब २ इन के घर में मङ्गलोत्सव होगा तब २ ये तुम को श्रद्धानुकूल यथाशक्य द्रव्य देते रहेंगे, इस लिये अब तुम भी इन को धर्म में चलाने की इच्छा करो" इस प्रकार वर दे कर इधर तो शिव जी अपने लोक को सिधारे, उधर वे बहत्तर उमराव छःवों ऋषियों के चरणों में गिर पड़े और शिष्य बनने के लिये उन से प्रार्थना करने लगे, उन की प्रार्थना

को सुन कर ऋषियों ने भी उन की बात को स्वीकृत किया, इस लिये एक एक ऋषि के बारह २ शिष्य हो गये, बस वे ही अब यजमान कहलाते हैं।

कुछ दिन पीछे वे सब खंडेला को छोड़ कर डीडवाणा में आ बसे और चूँकि वे बहत्तर खाँपों के उमराव थे इस लिये वे बहत्तर खाँप के डीडू महेश्वरी कहलाने लगे, कालान्तर में (कुछ काल के पीछे) इन्हीं बहत्तर खाँपों की वृद्धि (बढ़ती) हो गई अर्थात् वे अनेक मुल्कों में फैल गये, वर्तमान में इन की सब खाँपें करीब ७५० हैं, यद्यपि उन सब खाँपों के नाम हमारे पास विद्यमान (मौजूद) हैं तथापि विस्तार के भय से उन्हें यहाँ नहीं लिखते हैं।

महेश्वरी वैश्यों में भी यद्यपि बड़े २ श्रीमान् हैं परन्तु शोक का विषय है कि-विद्या इन लोगों में भी बहुत कम देखी जाती है, विशेष कर मारवाड़ में तो हमारे ओसवाल बन्धु और महेश्वरी बहुत ही कम विद्वान् देखने में आते हैं, विद्या के न होने से इन का धन भी व्यर्थ कामों में बहुत उठता है परन्तु विद्यावृद्धि आदि शुभ कार्यों में ये लोग कुछ भी खर्च नहीं करते हैं, इस लिये हम अपने मारवाड़निवासी महेश्वरी सज्जनों से भी प्रार्थना करते हैं कि-प्रथम तो-उन को विद्या की वृद्धि करने के लिये कुछ न कुछ अवश्य प्रबन्ध करना चाहिये, दूसरे-अपने पूर्वजों (बड़ेरों वा पुरुषाओं) के व्यवहार की तरफ ध्यान देकर औसर और विवाह आदि में व्यर्थव्यय (फिज़ूलखर्ची) को बन्द कर देना चाहिये, तीसरे-कन्याविक्रय, बालविवाह, वृद्धविवाह तथा विवाह में गालियों का गाना आदि कुरीतियों को बिलकुल उठा देना चाहिये, चौथे-परिणाम में क्लेश देने वाले तथा निन्दनीय व्यापारों को छोड़ कर शुभ वाणिज्य तथा कला कौशल के प्रचार की ओर ध्यान देना चाहिये कि जिस से उन की लक्ष्मी की वृद्धि हो और देश की भी हितसिद्धि हो, पाँचवें-सांसारिक पदार्थ और उन की तृष्णा को बन्धन का हेतु जान कर उन में अतिशय आसक्ति का परित्याग करना चाहिये, छठे-द्रव्य को सांसारिक तथा पारलौकिक सुख के साधन में हेतुभूत जान कर उस का उचित रीति से तथा सन्मार्ग से ही व्यय करना चाहिये, बस आशा है कि-हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दे कर इसी के अनुसार वर्त्ताव कर हमारे महेश्वरी भ्राता सांसारिक सुख को प्राप्त कर पारलौकिक सुख के भी अधिकारी होंगे॥

यह पञ्चम अध्याय का माहेश्वरी वंशोत्पत्तिवर्णन नामक चौथा प्रकरण समाप्त हुआ॥

पाँचवाँ प्रकरण—बारह न्यात वर्णन ॥

बारह न्यातों का वर्त्ताव ॥

बारह न्यातों में जो परस्पर में वर्त्ताव है वह पाठकों को इन नीचे लिखे हुए दो दोहों से अच्छे प्रकार विदित हो सकता है:—

दोहा—खण्ड खँडेला में मिली, सब ही बारह न्यात ॥
खण्ड प्रस्थ नृप के समय, जीम्या दालरु भात ॥ १ ॥
बेटी अपनी जाति में, रोटी शामिल होय ॥
काची पाकी दूध की, भिन्न भाव नहिँ कोय[1] ॥ २ ॥

सम्पूर्ण[2] बारह न्यातों का स्थानसहित[3] विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
१	श्रीमाल	भीनमाल से	७	खंडेलवाल	खंडेला से
२	ओसवाल	ओसियाँ से	८	महेश्वरी डीडू	डीडवाणा से
३	मेड़तवाल	मेड़ता से	९	पौकरा	पौकर जी से
४	जायलवाल	जायल से	१०	टींटोड़ा	टींटोड़गढ़ से
५	वघेरवाल	वघेरा से	११	कठाड़ा	खाटू गढ़ से
६	पल्लीवाल	पाली से	१२	राजपुरा	राजपुर से

मध्यप्रदेश (मालवा) की समस्त बारह न्यातें ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्री श्रीमाल	४	ओसवाल	७	पल्लीवाल	१०	महेश्वरी डीडू
२	श्रीमाल	५	खँडेलवाल	८	पोरवाल	११	हूमड़
३	अग्रवाल	६	वघेरवाल	९	जेसवाल	१२	चौरंडियाँ

१—इन दोहों का अर्थ सुगम ही है, इस लिये नहीं लिखा है ॥

२—सब से प्रथम समस्त बारह न्यातें खँडेला नगर में एकत्रित हुई थीं, उस समय जिन २ नगरों से जो २ वैश्य आये थे वह सब विषय कोष्ठ में लिख दिया गया है, इस कोष्ठ के आगे के दो कोष्ठों में देशप्रथा के अनुसार बारह न्यातों का निदर्शन किया गया है अर्थात् जहाँ अग्रवाल नहीं आये वहाँ चित्रवाल शामिल गिने गये, इस प्रकार पीछे से जैसा २ मौका जिस २ देशवालों ने देखा वैसा ही वे करते गये, इस में असली तात्पर्य उन का यही था कि-सब वैश्यों में एकता रहे और उन्नति होती रहे किन्तु केवल पेट को भर २ कर चले जाने का उन का तात्पर्य नहीं था ॥

३—'स्थान सहित, अर्थात् जिन २ स्थानों से आ २ कर वे सब एकत्रित हुए थे (देखो संख्या २ का नोट) ॥

४—इन में श्री श्रीमाल हस्तिनापुर से, अग्रवाल अगरोहा से, पोरवाल पारेवा से, जेसवाल जैसलगढ़ से, हूमड़ सादवाड़ा से तथा चौरंडिया चावंडिया से आये थे, शेष का स्थान प्रथम लिख ही चुके हैं ॥

गौढवाड़, गुजरात तथा काठियावाड़ की समस्त बारह न्यातें ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्रीमाल	४	चित्रवाल	७	पोरवाल	१०	महेश्वरी
२	श्रीश्रीमाल	५	पल्लीवाल	८	खँडेलवाल	११	ठंठवाल
३	ओसवाल	६	वघेरवाल	९	मेड़तवाल	१२	हरसौरा

यह पञ्चम अध्याय का बारह न्यातवर्णन नामक पाँचवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

छठा प्रकरण—चौरासी न्यातवर्णन ॥

चौरासी न्यातों तथा उन के स्थानों[2] के नामों का विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
१	श्रीमाल	भीनमाल से	१४	ककस्थन	वालकूँडा से
२	श्रीश्रीमाल	हस्तिनापुर से	१५	कपोला	नग्रकोट से
३	श्रीखण्ड	श्रीनगर से	१६	काँकरिया	करौली से
४	श्रीगुरु	आभूना डौलाइ से	१७	खरवा	खेरवा से
५	श्रीगौड़	सिद्धपुर से	१८	खडायता	खँडवा से
६	अगरवाल	अगरोहा से	१९	खेमवाल	खेमानगर से
७	अजमेरा	अजमेर से	२०	खँडेलवाल	खँडेलानगर से
८	अजोधिया	अयोध्या से	२१	गँगराड़ा	गँगराड़ से
९	अडालिया	आडणपुर से	२२	गाहिलवाल	गौहिलगढ़ से
१०	अवकथवाल	आँवेर आभानगर से	२३	गौलवाल	गौलगढ़ से
११	ओसवाल	ओसियाँ नगर से	२४	गोगवार	गोगा से
१२	कठाड़ा	खाट्ट से	२५	गाँदोड़िया	गाँदोड़ देवगढ़ से
१३	कटनेरा	कटनेर से	२६	चकौड़	रणथंभचकावा गद मल्हारी से

१–इन में से चित्रवाल चित्तोड़गढ़ से, ठंठवाल…………से तथा हरसौरा हरसौर से आये थे, शेष का स्थान प्रथम लिख ही चुके हैं ॥

२–'स्थानों के, अर्थात् जिन २ स्थानों से आ २ कर एकत्रित हुए थे उन २ स्थानों के ॥

संख्या	नाम न्यात	स्थान से	संख्या	नाम न्यात	स्थान से
२७	चतुरथ	चरणपुर से	५६	वदनौरा	वदनौर से
२८	चीतौड़ा	चित्तौड़गढ़ से	५७	वरमाका	ब्रह्मपुर से
२९	चोरंडिया	चावंडिया से	५८	विदियादा	विदियाद से
३०	जायलवाल	जावल से	५९	वीगार	विलास पुरी से
३१	जालोरा	सौवनगढ़ जालौर से	६०	भवनगे	भावनगर से
३२	जैसवाल	जैसलगढ़ से	६१	भूँगडवार	भूरपुर से
३३	जम्बूसरा	जम्बू नगर से	६२	महेश्वरी	डीडवाणे से
३४	टाँटौड़ा	टाँटौड़ से	६३	मेडतवाल	मेडता से
३५	टंटौरिया	टंटेरा नगर से	६४	माथुरिया	मथुरा से
३६	ढूँसर	ढाकलपुर से	६५	मौड	सिद्धपुर पाटन से
३७	दसौरा	दसौर से	६६	मांडलिया	माँडलगढ़ से
३८	धवलकोष्टी	धौलपुर से	६७	राजपुरा	राजपुर से
३९	धाकड़	धाकगढ़ से	६८	राजिया	राजगढ़ से
४०	नारनगरेसा	नराणपुर से	६९	लवेचू	लावा नगर से
४१	नागर	नागरचाल से	७०	लाड	लाँवागढ़ से
४२	नेमा	हरिश्चन्द्र पुरी से	७१	हरसौरा	हरसौर से
४३	नरसिंघपुरा	नरसिंघपुर से	७२	हूमड़	सादवाड़ा से
४४	नवाँभरा	नवसरपुर से	७३	हलद	हलदा नगर से
४५	नागिन्द्रा	नागिन्द्र नगर से	७४	हाकरिया	हाकगढ नलवर से
४६	नाथचल्ला	सिरोही से	७५	साँभरा	साँभर से
४७	नाछेला	नाडोलाइ से	७६	सडौइया	हिंगलादगढ़ से
४८	नौटिया	नौसलगढ़ से	७७	सरेडवाल	सादड़ी से
४९	पल्लीवाल	पाली से	७८	सौरठवाल	गिरनार से
५०	परवार	पारा नगर से	७९	सेतवाल	सीतपुर से
५१	पञ्चम	पञ्चम नगर से	८०	सौहितवाल	सौहित से
५२	पौकरा	पोकरजी से	८१	सुरन्द्रा	सुरन्द्रपुर अवन्ती से
५३	पौरवार	पारेवा से	८२	सौनैया	सौनगढ़ से
५४	पौसरा	पौसर नगर से	८३	सौरंडिया	शिवगिराणा से
५५	वघेरवाल	वघेरा से	८४	....	....

गुजरात देश की चौरासी न्यातों का विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	श्रीमाली	२२	गूजरवाल	४३	दसारा	६४	माड
२	श्रीश्रीमाल	२३	गोयलवाल	४४	दोइलवाल	६५	मेहवाड़ा
३	अगरवाल	२४	नफाक	४५	पदमौरा	६६	मीहीरिया
४	अनेरवाल	२५	नरसिंघपुरा	४६	पलेवाल	६७	मँगौरा
५	आढवरजी	२६	नागर	४७	पुष्करवाल	६८	मँडाहुल
६	आरचितवाल	२७	नागेन्द्रा	४८	पञ्चमवाल	६९	मौठ
७	औरवाल	२८	नावौरा	४९	बटीवरा	७०	माँडलिया
८	औसवाल	२९	चीतौड़ा	५०	वरूरी	७१	मेडौरा
९	अंडौरा	३०	चित्रवाल	५१	बाईस	७२	लाड
१०	कंढरवाल	३१	जारौला	५२	वाग्रीवा	७३	लाडीसाका
११	कपोल	३२	जीरणवाल	५३	वावरवाल	७४	लिंगायत
१२	करवेरा	३३	जेलवाल	५४	वामणवाल	७५	वाचड़ा
१३	काकलिया	३४	जेमा	५५	बालमीवाल	७६	स्तवी
१४	काजौटीवाल	३५	जम्बू	५६	त्राहौरा	७७	सुररवाल
१५	कौरटवाल	३६	झलियारा	५७	वेड़नौरा	७८	सिरकेरा
१६	कंवौवाल	३७	ठाकरवाल	५८	भागेरवाल	७९	सौनी
१७	खड़ायता	३८	डीडू	५९	भारीजा	८०	सौजतवाल
१८	खातरवाल	३९	डींडोरिया	६०	मूँगरवाल	८१	सारचिया
१९	खीची	४०	डीसाँवाल	६१	भूँगड़ा	८२	सौहरवाल
२०	खंडेवाल	४१	तेरौड़ा	६२	मानतवाल	८३	साचौरा
२१	गसौरा	४२	तीपौरा	६३	मेड़तवाल	८४	हरसौरा

दक्षिण प्रान्त की चौरासी न्यातों का विवरण ॥

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
१	हूमड़	७	वघेरवाल	१३	मेड़तवाल	१९	नाथचल्ला
२	खँडेलवाल	८	बावरिया	१४	पल्लीवाल	२०	खरवा
३	पौरवाल	९	गैलवाड़ा	१५	गँगेरवाल	२१	सडोइया
४	अग्रवाल	१०	गौलपुरा	१६	खडायते	२२	कटनेरा
५	जेसवाल	११	श्रीमाल	१७	लवेचू	२३	काकरिया
६	परवाल	१२	ओसवाल	१८	वैस	२४	कपौला

संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात	संख्या	नाम न्यात
२५	हरसौरा	४२	सारेड़वाल	५९	खंडवरत	७६	जनौरा
२६	दसौरा	४३	माँडलिया	६०	नरसिया	७७	पहासया
२७	नाछेला	४४	अडालिया	६१	भवनगेह	७८	चकौड़
२८	टंटोर	४५	सरिन्द्र	६२	करवस्तन	७९	वहड़ा
२९	हरद	४६	माया	६३	आनंदे	८०	घँवल
३०	जालौरा	४७	अष्टवार	६४	नागौरी	८१	पवारछिया
३१	श्रीगुरु	४८	चतुरथ	६५	टकचाल	८२	बागरौरा
३२	नौटिया	४९	पञ्चम	६६	सरडिया	८३	तरौड़ा
३३	चौरडिया	५०	वपछवार	६७	कमाइया	८४	गींदोड़िया
३४	भूँगड़वाल	५१	हाकरिया	६८	पौसरा	८५	पितादी
३५	धाकड़	५२	कँदोइया	६९	भाकरिया	८६	बघेरवाल
३६	वैगारा	५३	सौनैया	७०	वदवइया	८७	बूढेला
३७	गौगवार	५४	राजिया	७१	नेमा	८८	कटनेरा
३८	लाड	५५	वडेला	७२	अस्तकी	८९	सिँगार
३९	अवकथवाल	५६	मटिया	७३	कारेगराया	९०	नरसिंघपुरा
४०	विदियादी	५७	सेतवार	७४	नराया	९१	महता
४१	ब्रह्माका	५८	चक्कचपा	७५	मौड़माँडलिया		

एतद्देशीय समस्त वैश्य जाति की पूर्वकालीन सहानुभूति का दिग्दर्शन ॥

विद्वानों को विदित हो होगा कि—पूर्व काल में इस आर्यावर्त्त देश में प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्राम में जातीय पञ्चायतें तथा ग्रामवासियों के शासन और पालन आदि विचार सम्बंधी उन के प्रतिनिधियों की व्यवस्थापक सभायें थीं, जिन के सत्प्रवन्ध (अच्छे इन्तिजाम) से किसी का कोई भी अनुचित वर्त्ताव नहीं हो सकता था, इसी कारण उस समय यह आर्यावर्त सर्वथा आनन्द मङ्गल के शिखर पर पहुँचा हुआ था।

प्रसंगवशात् यहां पर एक ऐतिहासिक वृत्तान्त का कथन करना आवश्यक समझ कर पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है,आशा है कि—उस का अवलोकन कर प्राचीन प्रथा से विज्ञ होकर पाठकगण अपने हृदयस्थल में पूर्वकालीन सद्विचारों और सद्वर्त्तावों को स्थान देंगे, देखिये—पद्मावती नगरी में एक धनाढ्य पोरवाल ने पुत्रजन्ममहोत्सव में अपने अनेक मित्रों से सम्मति लें कर एक वैश्यमहासभा को स्थापित करने का विचार

कर जगह २ निमन्त्रण भेजा, निमन्त्रण को पाकर यथासमय पर बहुत दूर २ नगरों के प्रतिनिधि आ गये और सभाकर्त्ता पोरवाल ने उन का भोजनादि से अत्यन्त सम्मान किया तथा सर्व मतानुसार उक्त सभा में यह ठहराव पास किया गया कि-जो कोई खानदानी धनाढ्य वैश्य इस सभा का उत्सव करेगा उस को इस सभा के सभासदों (मेम्बरों) में प्रविष्ट (भरती) किया जावेगा।

१-पाठकगणों को उक्त लेख को पढ़ कर विस्मित (आश्चर्य से युक्त) नहीं होना चाहिये और न यह विचार करना चाहिये कि-पूर्व समय में सभायें कब होती थीं, सभाओं की प्रथा (रिवाज) तो थोड़े समय पूर्व से प्रचलित हुई है, इत्यादि, क्योंकि सभाओं का प्रचार आधुनिक (थोड़े समय पूर्व का) नहीं किन्तु प्राचीन ही है, हां यह बात सत्य है कि-कुछ काल तक सभाओं की प्रथा बन्द रह चुकी है तथा थोड़े समय से इस का पुनः प्रचार हुआ है, इसी लिये प्राचीन काल में इस प्रथा के प्रचलित होने में कुछ पाठकों को विस्मय (आश्चर्य) उत्पन्न हो सकता है, परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है, क्योंकि-सभाओं की प्रथा प्राचीन ही है, अर्थात् प्राचीन काल में सभाओं की प्रथा का खूब प्रचार रह चुका है, उक्त विषय का पाठकों को ठीक रीति से निश्चय हो जावे इस लिये हम ता० २ नोवंबर सन् १९०६ के वेंकटेश्वर समाचार पत्र में छपे हुए (इसी आशय के) लेख को यहां पर अविकल (ज्यों का त्यों) प्रकाशित करते हैं, उस के पढ़ने से पाठकों को अच्छे प्रकार से विदित (मालूम) हो जावेगा कि-प्राचीन काल में किस प्रकार का प्रबन्ध था तथा सभाओं के द्वारा किस प्रकार से व्यवस्था होती थी, देखिये:—

"**गांवों में पञ्चायत**—सन् १८१९ ई० में एलफिनस्टन साहब ने हिन्दुस्थानवासियों के विषय में लिखा था:—

Their village Communities are almost sufficient to protect their members if all other Governments are withdrawn.

अर्थात् हिन्दुस्थानवासियों की गाँवों की पञ्चायतें इतनी दृढ़ हैं कि किसी प्रकार की गवर्नमेंट न रहने पर भी वे अपने अधीनस्थ लोगों की रक्षा करने में समर्थ हैं।

सन् १८३० ई० में सर चार्ल्स मेट्काफ महाशय ने लिखा था:—

The village Communities are little republics having nearly everything they want within themselves. They seem to last where nothing else lasts. Dynasty after dynasty tumbles down, revolution succeeds to revolution Hindu, Pathan, Moghul, Maharatta, Sikh, English are masters in turn but the village Communities remain the same. The union of the village communities each one forming a little separate State in itself has I conceive contributed more than any other cause to the preservation of the people of India through all revolutions and changes which they have suffered and it is in a high degree conducive to their happiness and to the unjoyment of great portion of freedom and independence.

इस सभास्थापन के समय में जिस २ नगर के तथा जिस २ जाति के वैश्य प्रतिनिधि आये थे उन का नाम चौरासी न्यातों के वर्णन में लिखा हुआ समझ लेना चाहिये, अर्थात् चौरासी नगरों के प्रतिनिधि यहाँ आये थे, उसी दिन से उन की चौरासी न्यातें भी कहलाती हैं, पीछे देशप्रथा से उन में अन्य २ भी नाम शामिल होते गये हैं जो कि पूर्व दो कोष्ठो में लिखे जा चुके हैं।

अर्थात् हिन्दुस्थान की गाँवों की पञ्चायतें विना राजा के छोटे २ राज्य हैं, जिन में लोगों की रक्षा के लिये प्रायः सभी वस्तुयें हैं, जहाँ अन्य सभी विषय विगड़ते दिखाई देते हैं तहाँ ये पञ्चायतें चिरस्थायी दिखाई पड़ती हैं, एक राजवंश के पीछे दूसरे राजवंश का नाश हो रहा है, राज्य में एक गड़वड़ी के पीछे दूसरी गड़वड़ी खड़ी हो रही है, कभी हिन्दू, कभी पठान, कभी मुगल, कभी मरहठा, कभी सिख, कभी अंग्रेज, एक के पीछे दूसरे राज्य के अधिकारी वन रहे हैं किंतु ग्रामों की पञ्चायतें सदैव वनी हुई हैं, ये ग्रामों की पञ्चायतें जिन में से हर एक अलग २ छोटी २ रियासत सी मुझे जँच रही हैं सव से वढ़ कर हिन्दुस्थानवासियों की रक्षा करने वाली हैं, ये ही ग्रामों की पञ्चायतें सभी गड़वड़ियों से राजेश्वरों के सभी अदल वदलों से देश के तहस नहस होते रहने पर भी प्रजा को सव दुःखों से वचा रही हैं, इन्हीं गाँवों की पञ्चायतों के स्थिर रहने से प्रजा के सुख स्वच्छन्दता में वाधा नहीं पड़ रही है तथा वह स्वाधीनता का सुख भोगने को समर्थ हो रही है।

अंग्रेज़ ऐतिहासिक एलफिनस्टन साहव और सर चार्ल्स मेट्काफ महाशय ने जिन गाँवों की पञ्चायतों को हिन्दुस्थानवासियों की सव विपदों से रक्षा का कारण जाना था, जिन को उन्हों ने हिन्दुस्थान की प्रजा के सुख और स्वच्छन्दता का एक मात्र कारण निश्चय किया था वे अव कहाँ हैं? सन् १८३० ईस्वी में भी जो गाँवों की पञ्चायतें हिन्दुस्थानवासियों की लौकिक और पारलौकिक स्थिति में कुछ भी आँच आने नहीं देती थीं वे अव क्या हो गईं? एक उन्हीं पञ्चायतों का नाश हो जाने से ही आज दिन भारतवासियों का सर्वनाश हो रहा है, घोर राष्ट्रविप्लवों के समय में भी जिन पञ्चायतों ने भारतवासियों के सर्वस्व की रक्षा की थी उन के विना इन दिनों अंग्रेजी राज्य में भारत की राष्ट्रसम्वन्धी सभी अशान्तियों के मिट जाने पर भी हमारी दशा दिन प्रतिदिन वदलती हुई, मरती हुई जाति की घोर शोचनीय दशा वन रही है, शोचने से भी शरीर रोमाञ्चित होता है कि-सन् १८५७ ईस्वी के गदर के पश्चात् जव से स्वर्गीया महाराणी विक्टोरिया ने भारतवर्ष को अपनी रियासत की शान्तिमयी छत्रछाया में मिला लिया तव से प्रथम २५ वर्षों में ५० लाख भारतवासी अन्न विना तड़फते हुए मृत्युलोक में पहुँच गये तथा दूसरे २५ वर्षों में २ करोड़ साठ लाख भारतवासी भूख के हाहाकार से संसार भर को गुँजा कर अपने जीवित भाइयों को समझा गये कि गाँवों की उन छोटी २ पञ्चायतों के विसर्जन से भारत की दुर्गति कैसी भयानक हुई है, अन्य दुर्गतियों की आलोचना करने से हृदयवालों की वाक्यशक्ति तक हर जाती है।

गाँवों की वे पञ्चायतें कैसे मिट गईं, सो कह कर आज शक्तिमान् पुरुषों का अप्रियभाजन होना नहीं है, वे पञ्चायतें क्या थीं सो भी आज पूरा २ लिखने का सुभीता नहीं है, भारतवासियों को सव विपदों से रक्षा करने वाली वे पञ्चायतें मानो एक एक वड़ी गृहस्थी थीं, एक गृहस्थी के सव समर्थ लोग जिस प्रकार अपने अधीनस्थ परिवारों के पालन पोषण तथा विपदों से तारने के लिये उद्यम और प्रयत्न करते

उस के बाद उक्त सभा किस २ समय पर तथा कितनी वार एकत्रित हुई और उस के ठहराव किस समय तक नियत रह कर काम में आते रहे, इस बात का पता लगाना यद्यपि अति कठिन बात है तथापि खोज करने पर उस का थोड़ा बहुत पता

रहते हैं वैसे ही एक पञ्चायत के सब समर्थ लोग अपनी अधीनस्थ सब गृहस्थियों की सब प्रकार रक्षा का उद्यम और प्रयत्न करते थे, आज कल के अमेरिका फ्राँस आदि विना राजा के राज्य जिस प्रकार प्रजा की इच्छा के अनुसार कुछ लोगों को अपने में से चुन कर उन्हीं के द्वारा अपने शासन पालन विचार आदि का प्रबंध करा लेते हैं उसी प्रकार वे पञ्चायतें ग्रामवासियों के प्रतिनिधियों की शासन पालन विचार आदि की व्यवस्थासभायें थीं, राजा चाहे जो कोई क्यों न होता था उसी पञ्चायत से उस को सम्पूर्ण ग्रामवासियों से मालगुजारी आदि मिल जाती थी, राज्येश्वर राजा से ग्रामवासियों का और कोई सम्बंध नहीं रहता था, पञ्चायत ही की व्यवस्था से सब लोग निज २ कर्तव्यों का पालन करते थे, पञ्चायत ही की व्यवस्था से लूले लँगड़े अपाहिजों के पालन का प्रबंध होता था, पञ्चायत ही की व्यवस्था से दुष्काल के लिये अन्न आदि का प्रबंध होता था, पञ्चायत ही की व्यवस्था से परस्पर के झगड़ों का निवटेरा होता था, पञ्चायत ही की व्यवस्था से दुष्ट दुर्मतियों का शासन होता था, पञ्चायत ही की व्यवस्था से शत्रुओं के आक्रमण की दशा में ग्रामवासियों की रक्षा का प्रबन्ध होता था।

हिन्दू राजाओं के दिनों में गाँवों की वे पञ्चायतें दृढ़ रह कर अपने उन प्रबंधों से ग्रामवासियों की रक्षा करती थीं, मुसलमान राजाओं के दिनों में पञ्चायतों की वह रक्षाकारिणी शक्ति शिथिल नहीं होने पाई थी, अंग्रेज़ी अमलदारी की पहिली दशा में भी वह शक्ति सर्वथा टूटने नहीं पाई थी किन्तु अँगरेजी अमलदारी पुष्ट होने पर गाँवों की पञ्चायतें अपनी सारी शक्ति का सर्कार के चरणों में कृष्णार्पण करने को लाचार हो कर महाकाल के महागाल में समा गई, तव से अँगरेजी सर्कार उन पञ्चायतों के सर्वथा स्थानापन्न हो कर अवश्य ही दुष्ट दुर्गतियों का कथञ्चित् शासन कर रही है, शत्रुओं के आक्रमण के भय से लोगों को सर्वथा बचा रही है, परस्पर के झगड़ों का निवटेरा भी कर रही है, किन्तु उस से झगड़ों का निवटेरा कराने में प्रायः दोनों झगड़ीलों का दिवाला निकल रहा है और पञ्चायत की अन्यान्य शक्तियों का जैसा सद्व्यवहार अँगरेज़ी सर्कार कर रही है सो तो हमारे सभी देशवासी नस नस में अनुभव कर रहे हैं।

अन्नहीनों के लिये अन्न की व्यवस्था अँगरेज़ी सर्कार नहीं कर सकती है, दुष्काल के लिये अन्न की व्यवस्था करा रखना अँग्रेज़ी सर्कार से हो नहीं सकता है, क्योंकि गाँवों के निवासी अपनी पञ्चायतों के जिस प्रकार सर्वस्व थे उस प्रकार हम भारतवासी अँग्रेजी सर्कार के सर्वस्व नहीं हो सकते, अँग्रेज़ी सर्कार का अपना देश भी है, अपने देश की, अपनी जातिवाली अन्नहीन प्रजा का पालन भी उस को करना है, उस प्रजा के पालन की लालसा लिये रह कर वह हमारी पञ्चायतों की भाँति किसी दशा में भी हमारी रक्षा नहीं कर सकती है, इसी से पंचायतों के बने रहने के दिनों की भाँति हमारी रक्षा नहीं हो रही है, हमारे जो अगणित देशवासी भूखों तड़फ २ कर मर चुके हैं उस का एक मात्र कारण हमारी गाँवों की पंचायतों की भाँति सर्कार के द्वारा हमारी रक्षा न होना ही है, सो यदि हम को जीना है तो पुनर्वार गाँवों की उन पंचायतों का निर्माण करना है, वैसी ही शक्तिशाली रक्षाकारिणी पंचायतों का निर्माण ग्राम ग्राम में पुनर्वार विना किये कदापि हमारी रक्षा नहीं होगी" ॥

लगना कुछ असंभव नहीं है, परन्तु अनावश्यक समझ कर उस विषय में हम ने कोई परिश्रम नहीं किया, क्योंकि सभासम्बंधी प्रायः वे ही प्रस्ताव हो सकते हैं जिन्हें वर्तमान में भी पाठकगण कुछ २ देखते और सुनते ही होंगे ।

अब विचार करने का स्थल यह है कि-देखो! उस समय न तो रेल थी, न तार था और न वर्त्तमान समय की भाँति मार्गप्रबंध ही था, ऐसे समय में ऐसी बृहत् (वड़ी) सभा के होने में जितना परिश्रम हुआ होगा तथा जितने द्रव्य का व्यय हुआ होगा उस का अनुमान पाठकगण स्वयं कर सकते हैं ।

अब उन के जात्युत्साह की तरफ तो ज़रा ध्यान दीजिये कि-वह (जात्युत्साह) कैसा हार्दिक और सद्भावगर्भित था कि-वे लोग जातीय सहानुभूतिरूप कल्पवृक्ष के प्रभाव से देशहित के कार्यों को किस प्रकार आनन्द से करते थे और सब लोग उन पुरुषों को किस प्रकार मान्यदृष्टि से देख रहे थे, परन्तु अफ्सोस है कि-वर्त्तमान में उक्त रीति का विलकुल ही अभाव हो गया है, वर्त्तमान में सब वैश्यों में परस्पर एकता और सहानुभूति का होना तो दूर रहा किन्तु एक जाति में तथा एक मत वालों में भी एकता नहीं है,[1] इस का कारण केवल आत्माभिमान ही है अर्थात् लोग अपने २ बड़प्पन को चाहते हैं,[2] परन्तु यह तो निश्चय ही है कि-पहिले लघु बने विना बड़प्पन नहीं मिल सकता है, क्योंकि विचार कर देखने से विदित होता है कि लघुता ही मान्य का स्थान तथा सब गुणों का अवलम्बन है,[3] इसी उद्देश्य को हृदयस्थ कर पूर्वज महज्जनों ने

१-एकता और सहानुभूति की वात तो जहाँ तहाँ रही किन्तु यह कितने शोक का विषय है कि-एक जाति और एक मतवालों में भी परस्पर विरोध और मात्सर्य देखा जाता है अर्थात् एक दूसरे के गुणोत्कर्ष को नहीं देख सकते हैं और न वृद्धि का सहन कर सकते हैं ॥

२-किसी विद्वान् ने सत्य ही कहा है कि-सर्वे यत्र प्रवक्तारः, सर्वे पण्डितमानिनः ॥ सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति, तद्वृन्दमवसीदति ॥ १ ॥ अर्थात् जिस समूह में सब ही वक्ता (दूसरों को उपदेश देने वाले) हैं अर्थात् श्रोता कोई भी वनना नहीं चाहता है), सब अपने को पण्डित समझते हैं और सब ही महत्व (बड़प्पन) को चाहते हैं वह (समूह) दुःख को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ पाठकगण समझ सकते हैं कि वर्त्तमान में ठीक यही दशा सब समूहों (सब जातिवालों तथा सब मतवालों) में हो रही है, तो कहिये सुधार की आशा कहाँ से हो सकती है ? ॥

३-स्मरण रहे कि-अपने को लघु समझना नम्रता का ही एक रूपान्तर है और नम्रता के विना किसी गुण की प्राप्ति हो ही नहीं सकती है, क्योंकि नम्रता ही मनुष्य को सब गुणों की प्राप्ति का पात्र वनाती है, जब मनुष्य नम्रता के द्वारा पात्र वन जाता है तब उस की वह पात्रता सब गुणों को खींच कर उस में स्थापित कर देती है अर्थात् पात्रता के कारण उस में सब गुण स्वयं ही आ जाते हैं, जैसा कि एक विद्वान् ने कहा है कि-नोदन्वानर्थितामेति, न चाम्भोभिर्न पूर्यते ॥ आत्मा तु पात्रतां

लघुता की अति प्रशंसा की है, देखो! अध्यात्मपुरुष श्री चिदानन्दजी महाराज ने लघुता का एक स्तवन (स्तोत्र) बनाया है उस का भावार्थ यह है कि–चन्द्र और सूर्य बड़े हैं इस लिये उन को ग्रहण लगता है परन्तु लघु तारागण को ग्रहण नहीं लगता है संसार में यह कोई भी नहीं कहता है कि–तुम्हारे माथे लागूँ किन्तु सब कोई यही कहता है कि–तुम्हारे पगे लागूँ, इस का हेतु यही है कि–चरण (पैर) दूसरे सब अंगों से लघु हैं इस लिये उन को सब नमन करते हैं, पूर्णिमा के चन्द्र को कोई नहीं देखता और न उसे नमन करता है परन्तु द्वितीया के चन्द्र को सब ही देखते और उसे नमन करते है क्योंकि वह लघु होता है, कीड़ी एक अति छोटा जन्तु है इस लिये चाहे जैसी रसवती (रसोई) तैयार की गई हो सब से पहिले उस (रसवती) का स्वाद उसी (कीड़ी) को मिलता है किन्तु किसी बड़े जीव को नहीं मिलता है, जब राजा किसी पर कड़ी दृष्टि वाला होता है तब उस के कान और नाक आदि उत्तमाङ्गों को ही कटवाता है किन्तु लघु होने से पैरों को नहीं कटवाता है, यदि बालक किसी के कानों को खींचे, मूँछों को मरोड़ देवे अथवा शिर में भी मार देवे तो भी वह मनुष्य प्रसन्न ही होता है, देखिये! यह चेष्टा कितनी अनुचित है परन्तु लघुतायुक्त बालक की चेष्टा होने से सब ही उस का सहन कर लेते हैं किन्तु किसी बड़े की इस चेष्टा को कोई भी नहीं सह सकता है, यदि कोई बड़ा पुरुष किसी के साथ इस चेष्टा को करे तो कैसा अनर्थ हो जावे, छोटे बालक को अन्तःपुर में जाने से कोई भी नहीं रोकता है यहाँ तक कि–वहाँ पहुँचे हुए बालक को अन्तःपुर की रानियाँ भी स्नेह से खिलाती हैं किन्तु बड़े हो जाने पर उसे अन्तःपुर में कोई नहीं जाने देता है, यदि वह चला जावे तो शिरश्छेद आदि कष्ट को उसे सहना पड़े, जब तक बालक छोटा होता है तब तक सब ही उस की सँभाल रखते हैं अर्थात् माता पिता और भाई आदि सब ही उस की सँभाल और निरीक्षण रखते है, उस के बाहर निकल जाने पर सब को थोड़ी ही देर में चिन्ता हो जाती है कि बच्चा अभी तक क्यों नहीं आया परन्तु जब वह बड़ा हो जाता है तब उस की कोई चिन्ता नहीं करता है, इन सब उदाहरणों से सारांश यही निकलता है कि जो कुछ सुख है वह लघुता में ही है, जब हृदय में इस (लघुता) के सत्प्रभाव को स्थान मिल जाता है उस समय सब खराबियों का मूल कारण आत्माभिमान और महत्वाकांक्षित्व

नेयः, पात्रमायान्ति सम्पदः ॥ १ ॥ अर्थात् समुद्र अर्थी (मांगनेवाला) नहीं होता है परन्तु (ऐसा होने से) वह जलों से पूरित न किया जाता हो यह बात नहीं है (जल उस को अवश्य ही पूरित करते हैं) इस से सिद्ध है कि अपने को (नम्रता आदि के द्वारा) पात्र बनाना चाहिये, पात्र के पास सम्पत्तियां स्वयं ही आ जाती हैं ॥ १ ॥ इस विषय में यद्यपि हमें बहुत कुछ लिखने की आवश्यकता थी परन्तु ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहाँ पर अब नहीं लिखते हैं ॥

(वड़प्पन की अभिलाषा) आप ही चला जाता है, देखो ! वर्त्तमान में दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपतराय और बाल गङ्गाधर तिलक आदि सद्गुणी पुरुषों को जो तमाम आर्यावर्त्त देश मान दे रहा है वह उन की लघुता (नम्रता) से प्राप्त हुए देशभक्ति आदि गुणों से ही प्राप्त हुआ समझना चाहिये।

इस विषय में विशेष क्या लिखें-क्योंकि प्राज्ञों (बुद्धिमानों) के लिये थोड़ा ही लिखना पर्याप्त (काफी) होता है, अन्त में हमारी समस्त वैश्य (महेश्वरी तथा ओसवाल आदि) सज्जनों से सविनय प्रार्थना है कि-जिस प्रकार आप के पूर्वज लोग एकत्रित हो कर एक दूसरे के साथ एकता और सहानुभूति का वर्त्ताव कर उन्नति के शिखर पर विराजमान थे उसी प्रकार आप लोग भी अपने देश जाति और कुटुम्ब की उन्नति कीजिये, देखिये! पूर्व समय में रेल आदि साधनों के न होने से अनेक कष्टों का सामना करके भी आप के पूर्वज अपने कर्तव्य से नहीं हटते थे इसी लिये उन का प्रभाव सर्वत्र फैल रहा था, जिस के उदाहरणरूप नररत्न वस्तुपाल और तेजपाल के समय में दसे और वीसे, ये दो फिरके हो चुके हैं।

प्रिय वाचकवृन्द ! क्या यह थोड़ी सी बात है कि-उस समय एक नगर से दूसरे नगर को जाने में महीनों का समय लगता था और वही व्यवस्था पत्र के जाने में भी थी तो भी वे लोग अपने उद्देश्य को पूरा ही करते थे, इस का कारण यही था कि-वे लोग अपने वचन पर ऐसे दृढ़ थे कि-मुख से कहने के बाद उन की बात पत्थर की लकीर के समान हो जाती थी, अब उस पूर्व दशा को हृदयस्थ कर वर्त्तमान दशा को सुनिये, देखिये! वर्त्तमान में-रेल, तार और पोष्ट आफिस आदि सब साधन विद्यमान हैं कि-जिन के सुभीते से मनुष्य आठ पहर में कहाँ से कहाँ को पहुँच सकता है कुछ घंटों में एक दूसरे को समाचार पहुँचा सकता है इत्यादि, परन्तु बड़े अफसोस की बात है कि-इतना सुभीता होने पर भी लोग सभा आदि में एकत्रित हो कर एक दूसरे से सहानुभूति को प्रकट कर अपने जात्युत्साह का परिचय नहीं दे सकते हैं, देखिये! आज जैनश्वेताम्बर कान्फ्रेंस को स्थापित हुए छः वर्ष से भी कुछ अधिक समय हो चुका है इतने समय में भी उस के ठहराव का प्रसार होना तो दूर रहा किन्तु हमारे बहुत से जैनी भाइयों ने तो उस सभा का नाम तक नहीं सुना है तथा अनेक लोगों ने उस का नाम और चर्चा तो सुनी है परन्तु उस के उद्देश्य और मर्म से अद्यापि अनभिज्ञ हैं, देखिये! जैनसम्बंधी समस्त समाचारपत्रसम्पादक यही पुकार रहे हैं कि-कान्फ्रेंस ने केवल लाखों रुपये इकट्ठे किये हैं, इस के सिवाय और कुछ भी नहीं किया है, इसी प्रकार से विभिन्न लोगों की इस विषय में विभिन्न सम्मतियाँ हैं, हमें उन की विभिन्न सम्मतियों में इस समय हस्तक्षेप कर सत्यासत्य का निर्णय नहीं करना है किन्तु हमारा अभीष्ट

तो यह है कि–लोग प्राचीन प्रथा को भूले हुए हैं इस लिये वे सभा आदि में कम एकत्रित होते हैं तथा उन के उद्देश्यों और मर्मों को कम समझते हैं इसी लिये वे उस ओर ध्यान भी बहुत ही कम देते हैं, रहा किसी सभा (कान्फ्रेंस आदि) का विभिन्न सम्मतियों का विषय, सो सभासम्बंधी इस प्रकार की सब बातों का विचार तो बुद्धिमान् और विद्वान् स्वयं ही कर सकते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि–प्रायः सब ही विषयों में सत्यासत्य का मिश्रण होता है, प्रचलित विचारों में विलकुल सत्य ही विषय हो और नये विचारों में विलकुल असत्य ही विषय हो ऐसा मान लेना सर्वथा भ्रमास्पद है, क्योंकि उक्त दोनों विचारों में न्यूनाधिक अंश में सत्य रहा करता है ।

देखो! बहुत से लोग तो यह कहते हैं कि–जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस पाँच वर्ष से हो रही है और उस में लाखों रुपये खर्च हो चुके हैं और उस के सम्बंध में अब भी बहुत कुछ खर्च हो रहा है परन्तु कुछ भी परिणाम नहीं निकला, बहुत से लोग यह कहते हैं कि–जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस के होने से जैन धर्म की बहुत उन्नति हुई है, अब उक्त दोनों विचारों में सत्य का अंश किस विचार में अधिक है इस का निर्णय बुद्धिमान् और विद्वान् जन कर सकते हैं ।

यह तो निश्चय ही है कि गणित तथा यूक्लिड के विषय के सिवाय दूसरे किसी विषय में निर्विवाद सिद्धान्त स्थापित नहीं हो सकता है, देखो! गणित विषयक सिद्धान्त में यह सर्वमत है कि–पाँच में दो के मिलाने से सात ही होते हैं, पाँच को चार से गुणा करने पर बीस ही होते हैं, यह सिद्धान्त ऐसा है कि इस को उलटने में ब्रह्मा भी असमर्थ है परन्तु इस प्रकार का निश्चित सिद्धान्त राज्यनीति तथा धर्म आदि विवादास्पद विषयों में माननीय हो, यह बात अति कठिन तथा असम्भववत् है, क्योंकि–मनुष्यों की प्रकृतियों में भेद होने से सम्मति में भेद होना एक स्वाभाविक बात है, इसी तत्त्व का विचार कर हमारे शास्त्रकारों ने स्याद्वाद का विषय स्थापित किया है और भिन्न २ नयों के रहस्यों को समझा कर एकान्तवाद का निरसन (खण्डन) किया है, इसी नियम के अनुसार विना किसी पक्षपात के हम यह कह सकते हैं कि–जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस को श्रीमान् श्री गुलाबचन्द जी ढड्ढा एम्. ए. ने अकथनीय परिश्रम कर प्रथम फलोधी तीर्थ में स्थापित किया था, इस सभा के स्थापित करने से उक्त महोदय का अभीष्ट केवल जात्युन्नति, देशोन्नति, विद्यावृद्धि, एकताप्रचार धर्मवृद्धि, परस्पर सहानुभूति तथा कुरीतिनिवारण आदि ही था, अब यह दूसरी बात है कि–सम्मतियों के विभिन्न होने से सभा के सत्पथ पर किसी प्रकार का अवरोध होने से सभा के उद्देश्य अब तक पूर्ण न हुए हों वा कम हुए हों, परन्तु यह विषय सभा को दोषास्पद बनाने वाला नहीं हो सकता है, पाठकगण समझ सकते हैं कि–सदुद्देश्य

से सभा को स्थापित करने वाला तो सर्वथा ही आदरणीय होता है इस लिये उक्त सच्चे वीर पुत्र को यदि सहस्रों धन्यवाद दिये जावें तो भी कम हैं, परन्तु बुद्धिमान् समझ सकते हैं कि–ऐसे बृहत् कार्य में अकेला पुरुष चाहे वह कैसा ही उत्साही और वीर क्यों न हो क्या कर सकता है? अर्थात् उसे दूसरों का आश्रय ढूँढ़ना ही पड़ता है, बस इसी नियम के अनुसार वह वालिका सभा कतिपय मिथ्याभिमानी पुरुषों को रक्षा के उद्देश्य से सौंपी गई अर्थात् प्रथम कान्फ्रेंस फलोधी में हो कर दूसरी वम्बई में हुई, उस के कार्यवाहक प्रायः प्रथम तो गुजराती जन हुए, इस पर भी "काल में अधिक मास" वाली कहावत चरितार्थ हुई अर्थात् उन को कुगुरुओं[1] ने शुद्ध मार्ग से हटा कर विपरीत मार्ग पर चला दिया, इस का परिणाम यह हुआ कि वे अपने नित्य के पाठ करने के भी परमात्मा वीर के इस उपदेश को कि–"मित्ती मे सव्व भूएसु वेर मज्झं न केण इ" अर्थात् मेरी सर्व भूतों के साथ मैत्री है, किसी के साथ मेरा वैर (शत्रुता) नहीं है, मिथ्याभिमानी और कुगुरुओं के विपरीत मार्ग पर चला देने से भूल गये[2], वा यों कहिये कि–वम्बई में जव दूसरी कान्फ्रेंस हुई उस समय एक वर्ष की वालिका सभा की वर्षगाँठ के महोत्सव पर श्री महावीर स्वामी के उक्त वचन को उन्हों ने एकदम तिलाञ्जलि दे दी[3], यद्यपि ऊपर से तो एकता २ पुकारते रहे परन्तु उन का भीतरी हाल जो कुछ था वा उस का प्रभाव अव तक जो कुछ है उस का लिखना अनावश्यक है, फिर उस का फल तो वही हुआ जो कुछ होना चाहिये था, सत्य है कि–"अवसर चूकी डूमणी, गावे आल पंपाल" प्रिय वाचकवृन्द! इस वात को आप जानते ही हैं कि–एक नगर से दूसरे नगर को जाते समय यदि कोई शुद्ध मार्ग को भूल कर उजाड़ जंगल में चला जावे तो वह फिर शुद्ध मार्ग पर तव ही आ सकता है जब कि कोई उसे कुमार्ग से हटा कर शुद्ध मार्ग को दिखला देवे, इसी नियम से हम कह सकते हैं कि–सभा के कार्यकर्त्ता भी अव सत्पथ पर तव ही आ सकते हैं जव कि कोई उन्हें सत्पथ को दिखला देवे, चूँकि सत्पथ का दिखलाने वाला केवल महज्जनोपदेश (महात्माओं का उपदेश) ही हो सकता है इस लिये यदि सभा के कार्यकर्त्ताओं को जीवनरूपी रंगशाला में शुद्ध भाव से कुछ करने की अभिलाषा हो तो उन्हें परमात्मा के उक्त वाक्य[4] को हृदय में स्थान दे कर

१–शुद्ध मार्ग पर जाते हुए पुरुष को विपरीत मार्ग पर चला देने वाले को ही वास्तव में कुगुरु समझना चाहिये, यह सव ही ग्रन्थों का एक मत है ॥

२–हमारा यह कथन कहाँ तक सत्य है, इस का विचार उक्त सभा के मर्म को जानने वाले बुद्धिमान् ही कर सकते हैं ॥

३–इस विषय को लेख के वढ़ जाने के कारण यहाँ पर नहीं लिख सकते हैं, फिर किसी समय पाठकों की सेवा में यह विषय उपस्थित किया जावेगा ॥

४–इस कथन के आशय को सूक्ष्म बुद्धि वाले पुरुष ही समझ सकते हैं किन्तु स्थूल बुद्धि वाले नहीं समझ सकते हैं ॥

अपने भीतरी नेत्र खोलने चाहियें, क्योंकि–जब तक उक्त वाक्य को हृदय में स्थान न दिया जावेगा तब तक उन्नति स्थान को पहुँचाने वाला एकतारूपी शुद्ध मार्ग हमारी समझ में स्वप्न में भी नहीं मिल सकता है, इस लिये कान्फ्रेंस के सभ्यों से तथा सम्पूर्ण आर्यावर्त्तनिवासी वैश्य जनों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि–"मेरी सब भूतों से मैत्री है, किसी के साथ मेरा वैर नहीं है" इस भगवद्वाक्य को सच्चे भाव से हृदय में अङ्कित करें कि जिस से पूर्ववत् पुनः इस आर्यावर्त्त देश की उन्नति हो कर सर्वत्र पूर्ण आनन्द मङ्गल होने लगे ॥

यह पञ्चम अध्याय का चौरासी न्यातवर्णन नामक छठा प्रकरण समाप्त हुआ ॥

सातवाँ प्रकरण—ऐतिहासिक व पदार्थविज्ञानवर्णन ॥

ऐतिहासिक तथा पदार्थविज्ञान की आवश्यकता ॥

सम्पूर्ण प्रमाणों और महज्जनों के अनुभव से यह बात भली भाँति सिद्ध हो चुकी है कि–मनुष्य के सदाचारी वा दुराचारी बनने में केवल ज्ञान और अज्ञान ही कारण होते हैं अर्थात् अन्तःकरण के सतोगुण के उद्भासक (प्रकाशित करने वाले) तथा तमोगुण के आच्छादक (ढाँकने वाले) यथेष्ट साधनों से ज्ञान की प्राप्ति होने से मनुष्य सदाचारी होता है तथा अन्तःकरण के तमोगुण के उद्भासक और सतोगुण के आच्छादक यथेष्ट साधनों से अज्ञान की प्राप्ति होने से मनुष्य दुराचारी (दुष्ट व्यवहार वाला) हो जाता है ।

प्रायः सब ही इस बात को जानते होंगे कि–मनुष्य सुसंगति में पड़ कर सुधर जाता है तथा कुसङ्गति में पड़ कर विगड़ जाता है, परन्तु कभी किसी ने इस के हेतु का भी विचार किया है कि–ऐसा क्यों होता है ? देखिये ! इस का हेतु विद्वानों ने इस प्रकार निश्चित किया है:—

अन्तःकरण की–मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये चार वृत्तियाँ हैं, इन में से मन का कार्य संकल्प और विकल्प करना है, बुद्धि का कार्य उस में हानि लाभ दिखलाना है, चित्त का कार्य किसी एक कर्त्तव्य का निश्चय करा देना है तथा अहङ्कार का कार्य अहं (मैं) पद का प्रकट करना है ।

यह भी स्मरण रहे कि अन्तःकरण सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण रूप है, अर्थात् ये तीनों गुण उस में समानावस्था में विद्यमान हैं, परन्तु इन (गुणों) में कारणसामग्री को पा कर न्यूनाधिक होने की स्वाभाविक शक्ति है ।

जब किसी मनुष्य के अन्तःकरण में किसी कारण से किसी विषय का उद्भास (प्रकाश) होता है तब सब से प्रथम वह मनोवृत्ति के द्वारा संकल्प और विकल्प करता है कि-मुझे यह कार्य करना चाहिये वा नहीं करना चाहिये, इस के पश्चात् बुद्धिवृत्ति के द्वारा उस (कर्त्तव्य वा अकर्तव्य) के हानि लाभ को सोचता है, पीछे चित्तवृत्ति के द्वारा उस (कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य) का निश्चय कर लेता है तथा पीछे अहङ्कारवृत्ति के द्वारा अभिमान प्रकट करता है कि मैं इस कार्य का कर्त्ता (करने वाला) वा अकर्त्ता (न करने वाला) हूँ।

यदि यह प्रश्न किया जावे कि-किसी विषय को देख वा सुन कर अन्तःकरण की चारों वृत्तियां क्यों क्रम से अपना २ कार्य करने लगती हैं तो इस का उत्तर यह है कि-मनुष्य को स्वकर्मानुकूल मननशक्ति (विचार करने की शक्ति) स्वभाव से ही प्राप्त हुई है, बस इसी लिये प्रत्येक विषय का विज्ञान होते ही उस मननशक्ति के द्वारा चारों वृत्तियाँ क्रम से अपना २ कार्य करने लगती हैं।

बुद्धिमान् यद्यपि इतने ही लेख से अच्छे प्रकार से समझ गये होंगे कि-मनुष्य सुसङ्गति में रह कर क्यों सुधर जाता है तथा कुसङ्गति में पड़ कर क्यों बिगड़ जाता है तथापि साधारण जनों के ज्ञानार्थ थोड़ा सा और भी लिखना आवश्यक समझते हैं, देखिये:—

यह तो सब ही जानते हैं कि-मनुष्य जब से उत्पन्न होता है तब ही से दूसरों के चरित्रों का अवलम्बन कर (सहारा ले कर) उसे अपनी जीवनयात्रा के पथ (मार्ग) को नियत करना पड़ता है, अर्थात् स्वयं (खुद) वह अपने लिये किसी मार्ग को नियत नहीं कर सकता है[1], हाँ यह दूसरी बात है कि-प्रथम किन्हीं विशेष चरित्रों (खास

१-देखिये बालक अपने माता पिता आदि के चरित्रों को देख कर प्रायः उसी ओर झुक जाते हैं अर्थात् वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं, इस से बिलकुल सिद्ध है कि-मनुष्य की जीवनयात्रा का मार्ग सर्वथा दूसरों के निदर्शन से ही नियत होता है, इस के सिवाय पाश्चात्य विद्वानों ने इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव भी कर लिया है कि-यदि मनुष्य उत्पन्न होते ही निर्जन स्थान में रक्खा जावे तो वह बिलकुल मानुषी व्यवहार से रहित तथा पशुवत् चेष्टा वाला हो जाता है, कहते हैं कि-किसी बालक को उत्पन्न होने से कुछ समय के पश्चात् एक भेड़िया उठा ले गया और उसे ले जा कर अपने भिटे में रक्खा, उस बालक को भेड़िये ने खाया नहीं किन्तु अपने बच्चे के समान उस का भी पालन पोषण करने लगा (कभी २ ऐसा होता है कि-भेड़िया छोटे बच्चों को उठा ले जाता है परन्तु उन्हें मारता नहीं है किन्तु उन का अपने बच्चों के समान पालन पोषण करने लगता है, इस प्रकार के कई एक बालक मिल चुके हैं जो कि किसी समय सिकन्दरे आदि के अनाथलयों में भी पोषण पा चुके हैं), बहुत समय के बाद देखा गया कि-वह बालक मनुष्यों की सी भाषा को न बोल कर भेड़िये के समान ही घुरघुर शब्द करता था, भेड़िये के समान ही चारों पैरों से (हाथ पैरों के सहारे) चलता था, मनुष्य को देख कर भागता वा चोट करता था तथा जीभ से चप २ कर पानी पीता था, तात्पर्य यह है कि-उस के सर्व कार्य भेड़िये के समान ही थे, इस से निर्भ्रम सिद्ध है कि-मनुष्य की जीवनयात्रा का पथ बिलकुल ही दूसरों के अवलम्बन पर नियत और निर्भर है अर्थात् जैसा वह दूसरों को करते देखता है वैसा ही स्वयं करने लगता है॥

आचरणों) के द्वारा नियत किये हुए तथा चिरकालसेवित अपने मार्ग पर गमन करता हुआ वह कालान्तर में ज्ञानविशेष के बल से उस मार्ग का परित्याग न करे, परन्तु यह बहुत दूर की बात है।

बस इसी नियम के अनुसार सत्पुरुषों की सङ्गति पा कर अर्थात् सत्पुरुषों के सदाचार को देख वा सुन कर आप भी उसी मार्ग पर मनुष्य जाने लगता है, इसी का नाम सुधरना है, इस के विरुद्ध वह कुत्सित पुरुषों की सङ्गति को पा कर अर्थात् कुत्सित पुरुषों के दुराचार को देख वा सुन कर आप भी उसी मार्ग में जाने लगता है, इसी का नाम विगड़ना है।

उक्त लेख से सर्व साधारण भी अब अच्छे प्रकार से समझ गये होंगे कि-सुसंगति तथा कुसङ्गति से मनुष्य का सुधार वा विगाड़ क्यों होता है, इस लिये अब इस विषय में लेखविस्तार की कोई आवश्यकता नहीं है।

अब ऊपर के लेख से पाठकगण अच्छे प्रकार से समझ ही गये होंगे कि-मनुष्य के सुधार वा विगाड़ का द्वार केवल दूसरों के सदाचार वा दुराचार के अवलम्बन पर निर्भर है, क्योंकि-दूसरों के व्यवहारों को देख वा सुन कर मनुष्य के अन्तःकरण की चारों वृत्तियाँ क्रम से अपने भी तद्वत् (दूसरों के समान) कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य के विषय में अपना २ कार्य करने लगती हैं।

हाँ इस विषय में इतनी विशेषता अवश्य है कि-जब दूसरे सत्पुरुषों के सदाचार का अनुकरण करते हुए मनुष्य के अन्तःकरण में सतोगुण का पूरा उद्भास हो जाता है तथा उस के द्वारा उत्कृष्ट (उत्तम) ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब उस की वृत्ति कुत्सित पुरुषों के व्यवहार की ओर नहीं झुकती है अर्थात् उस पर कुसङ्ग का प्रभाव नहीं होता है (क्योंकि सतोगुण के प्रकाश के आगे तमोगुण का अन्धकार उच्छिन्नप्राय हो जाता है) इसी प्रकार जब दूसरे कुत्सित पुरुषों के कुत्सिताचार का अनुकरण करते हुए मनुष्य के अन्तःकरण में तमोगुण का पूरा उद्भास हो जाता है तथा उस के द्वारा उत्कृष्ट अज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब उस की वृत्ति सत्पुरुषों के व्यवहार की ओर नहीं झुकती है अर्थात् सत्संग और सदुपदेश का उस पर प्रभाव नहीं होता है (क्योंकि तमोगुण की अधिकता से सतोगुण उच्छिन्नप्राय हो जाता है)।

इस कथन से सिद्ध हो गया कि-प्रारम्भ से ही मनुष्य को दूसरे सत्पुरुषों के सच्चरित्रों के देखने सुनने तथा अनुभव करने की आवश्यकता है कि जिस से वह भी उन के सच्चरित्रों का अनुकरण कर सतोगुण की वृद्धि के द्वारा उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त हो कर अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को समझ कर निरन्तर उसी मार्ग पर चला जावे और मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों फलों को प्राप्त होवे।

इस विषय में यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-दूसरे सत्पुरुषों के वार्त्तमानिक (वर्त्तमान काल के) सच्चरित्र मनुष्य पर उतना प्रभाव नहीं डाल सकते हैं जितना कि भूतकालिक (भूत काल के) डाल सकते हैं, क्योंकि वार्त्तमानिक सच्चरित्रों का फल आगामिकालभावी (भविष्यत् काल में होने वाला) है, इस लिये उस विषय में मनुष्य का आत्मा उतना विश्वस्त नहीं होता है जितना कि भूतकाल के सच्चरित्रों के फल पर विश्वस्त होता है, क्योंकि-भूतकाल के सच्चरित्रों का फल उस के प्रत्यक्ष होता है (कि अमुक पुरुष ने ऐसा सच्चरित्र किया इस लिये उसे यह शुभ फल प्राप्त हुआ) इस लिये आवश्यक हुआ कि-मनुष्य को भूतकालिक चरित्र का अनुभव होना चाहिये, इसी भूतकालिक चरित्र को ऐतिहासिक विषय कहते हैं ।

ऐतिहासिक विषय के दो भेद हैं-ऐतिहासिक वृत्त और ऐतिहासिक घटना, इन में से पूर्व भेद में पूर्वकालिक पुरुषों के जीवनचरित्रों का समावेश होता है तथा दूसरे भेद में पूर्व काल में हुई सब घटनाओं का समावेश होता है, इस लिये मनुष्य को उक्त दोनों विषयों के ग्रन्थों को अवश्य देखना चाहिये, क्योंकि इन दोनों विषयों के ग्रन्थों के अवलोकन से अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं ।

स्मरण रहे कि-जीवन के लक्ष्य के नियत करने के लिये जिस प्रकार मनुष्य को ऐतिहासिक विषय के जानने की आवश्यकता है उसी प्रकार उसे पदार्थविज्ञान की भी आवश्यकता है क्योंकि पदार्थविज्ञान के विना भी मनुष्य अनेक समयों में और अनेक स्थानों में धोखा खा जाता है और धोखे का खाना ही अपने लक्ष्य से चूकना है इसी लिये पूर्वीय विद्वानों ने इन दोनों विषयों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध माना है, अतः मनुष्य को पदार्थविज्ञान के विषय में भी यथाशक्य अवश्य परिश्रम करना चाहिये ॥

यह पञ्चम अध्याय का ऐतिहासिक व पदार्थविज्ञानवर्णन नामक सातवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

आठवाँ प्रकरण—राजनियमवर्णन ॥

राजनियमों के साथ प्रजा का सम्बन्ध ॥

धर्मशास्त्रों का कथन है कि-राजा और प्रजा का सम्बंध ठीक पिता और पुत्र के समान है, अर्थात् जिस प्रकार सुयोग्य पिता अपने पुत्र की सर्वथा रक्षा करता है उसी प्रकार राजा का धर्म है कि-वह अपनी प्रजा की रक्षा करे, एवं जिस प्रकार सुयोग्य पुत्र अपने पिता के अनेक उपकारों का विचार कर भक्त हो कर सर्वथा उस की आज्ञा का

पालन करता है उसी प्रकार प्रजा का धर्म है कि–वह अपने राजा की आज्ञा को माने अर्थात् राजा के नियत किये हुए नियमों का उल्लङ्घन न कर सर्वदा उन्हीं के अनुसार वर्त्ताव करे।

प्राचीन शास्त्रकारों ने राजभक्ति को भी एक अपूर्व गुण माना है, जिस मनुष्य में यह गुण विद्यमान होता है वह अपनी सांसारिक जीवनयात्रा को सुख से व्यतीत कर सकता है।

राजभक्ति के दो भेद हैं–प्रथम भेद तो वही है जो अभी लिख चुके हैं अर्थात् राजा के नियत किये हुए नियमों के अनुसार वर्त्ताव करना, दूसरा भेद यह है कि–समयानुसार आवश्यकता पड़ने पर यथाशक्ति तन मन धन से राजा की सहायता करना।

देखो! इतिहासों से विदित है कि–पूर्व समय में जिन लोगों ने इस सर्वोत्तम गुण राजभक्ति के दोनों भेदों का यथावत् परिपालन किया है उन की सांसारिक जीवनयात्रा किस प्रकार सुख से व्यतीत हो चुकी है और राज्य की ओर से उन्हें इस सद्गुण का परिपालन करने के हेतु कैसे २ उत्तम अधिकार जागीरें तथा उपाधियाँ प्राप्त हो चुकी हैं।

राजभक्ति का यथोचित पालन न कर यदि कोई पुरुष चाहे कि मैं अपनी जीवनयात्रा को सुख से व्यतीत करूँ तो उस की यह वात ऐसी असम्भव है जैसे कि पश्चिमीय देश को प्राप्त होने की इच्छा से पूर्व दिशा की ओर गमन करना।

जिस प्रकार एक कुटुम्ब के बाल बच्चे आदि सर्व जन अपने कुटुम्ब के अधिपति की नियत की हुई प्रणाली पर चल कर अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं तथा उस कुटुम्ब में सर्वदा सुख और शान्ति का निवास बना रहता है ठीक उसी प्रकार राजा के नियत किये हुए नियमों के अनुसार वर्त्ताव करने से समस्त प्रजाजन अपने जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत कर सकते हैं तथा उन में सर्वदा सुख और शान्ति का निवास रह सकता है, इस के विरुद्ध जब प्रजाजन राजनियमों का उल्लङ्घन कर स्वेच्छापूर्वक (अपनी मर्जी के अनुसार अर्थात् मनमाना) वर्त्ताव करते वा करने लगते हैं तब उन को एक ऐसे कुटुम्ब के समान कि जिस में सब ही किसी एक को प्रधान न मान कर और उस की आज्ञा का अनुसरण न कर स्वतन्त्रतापूर्वक वर्त्ताव करते हों तथा कोई किसी को आधीनता की न चाहता हो चारों ओर से दुःख और आपत्तियाँ घेर लेती

१–हां यह दूसरी वात है कि–राजनियमों में यदि कोई नियम प्रजा के विपरीत हो अर्थात् सौख्य और कर्त्तव्य में वाधा पहुँचाने वाला हो तो उस के विषय में एकमत हो कर राजा से निवेदन कर उस का संशोधन करवा लेना चाहिये, सुयोग्य तथा पुत्रवत् प्रजापालक राजा प्रजा के बाधक नियम को कभी नहीं रखते हैं, क्योंकि प्रजा के सुख के लिये ही तो नियमों का संगठन किया जाता है॥

हैं[1] जिस का अन्तिम परिणाम (आखिरी नतीजा) विनाश के सिवाय और कुछ भी नहीं होता है।

भला सोचने की बात है कि-जिस राज्य में हम सुख और शान्तिपूर्वक निर्भय होकर अपनी जीवन यात्रा को व्यतीत कर रहे हों उस राज्य के नियत किये हुए नियमों का पालन न करना तथा उस में स्वामिभक्ति का न दिखलाना हमारी कृतघ्नता[2] नहीं तो और क्या है?

सोचिये तो सही कि-यदि हम सब पर सुयोग्य राज्यशासनपूर्वक क्षत्रच्छाया न हो तो क्या कभी सम्भव है कि-इस संसार में एक दिन भी सुखपूर्वक हम अपना निर्वाह कर सकें[3], कभी नहीं, देखिये! राज्य तथा उस के शासनकर्त्ता जन अपने ऊपर कितनी कठिन से कठिन आपत्तियों का सहन करते हैं परन्तु अपने अधीनस्थ प्रजाजनों पर तनिक भी आँच नहीं आने देते हैं अर्थात् उन आई हुई आपत्तियों का ज़रा भी असर यथाशक्य नहीं पड़ने देते हैं[4], बस इसी लिये प्रजाजन निर्भय हो कर अपने जीवन को व्यतीत किया करते हैं।

सारांश यही है कि-राज्यशासन[5] के विना किसी दशा में किसी प्रकार से कभी किसी का सुखपूर्वक निर्वाह होना असम्भव है, जब यह व्यवस्था है तो क्या प्रत्येक पुरुष का

१-यदि इस के उदाहरणों के जानने की इच्छा हो तो इतिहासवेत्ताओं से पूछिये ॥

२-कृतघ्न की कभी शुभ गति नहीं होती है; जैसा कि-धर्मशास्त्र में कहा है कि-मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य, स्त्रीघ्नस्य गुरुघातिनः ॥ चतुर्णां वयमेतेषां, निष्कृतिं नानुशुश्रुम ॥ १ ॥ अर्थात् मित्र से द्रोह करने वाले, कृतघ्न (उपकार को न मानने वाले), स्त्रीहत्या करने वाले तथा गुरुघाती, इन चारों की निष्कृति (उद्धार वा मोक्ष) को हम ने नहीं सुना है ॥ १ ॥ तात्पर्य यह है कि उक्त चारों पापियों की कभी शुभ गति नहीं होती है ॥

३-यदि राज्यशासनपूर्वक क्षत्रच्छाया न हो तो एक दूसरे का प्राणघातक हो जावे, प्रत्येक पुरुष के सब व्यवहार उच्छिन्न (नष्ट) हो जावें और कोई भी सुखपूर्वक अपना पेट तक न भर पावे, परन्तु जब राज्यशासनपूर्वक क्षत्रच्छाया होती है अर्थात् शस्त्रविद्याविशारद राज्यशासक जब स्वाधीन प्रजा की रक्षा करते हुए सब आपत्तियों को अपने ऊपर झेलते हैं तब साधारण प्रजाजनों को यह भी ज्ञात नहीं होता है कि-किधर क्या हो रहा है अर्थात् सब निर्भय हो कर अपने २ कार्यों में लगे रहते हैं, सत्य है कि-"शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे, शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते" अर्थात् शस्त्र के द्वारा राज्य की रक्षा होने पर शास्त्रचिन्तन आदि सब कार्य होते हैं ॥

४-ऐसी दशा में विचारशील दूरदर्शी जन अपने कर्त्तव्यों का पालन किया करते हैं परन्तु अज्ञान जन पैर पसार कर नींद लिया करते हैं ॥

५-राज्यशासन चाहे पञ्चायती हो चाहे आधिराजिक हो किन्तु उस का होना आवश्यक है ॥

यह कर्त्तव्य नहीं है कि-वह सच्ची राजभक्ति को अपने हृदय में स्थान दे कर स्वामिभक्ति का परिचय देता हुआ राज्यनियमों के अनुकूल सर्वदा अपना निर्वाह करे ।

वर्त्तमान समय में हम सब प्रजाजन उस श्रीमती न्यायशीला वृटिश गवर्नमेण्ट के अधिशासन में हैं कि-जिस के न्याय, दया, सौजन्य, परोपकार, विद्योन्नति और सुखप्रचार आदि गुणों का वर्णन करने में जिह्वा और लेखनी दोनों ही असमर्थ हैं, इसलिये ऊपर लिखे अनुसार हम सब का परम कर्त्तव्य है कि-उक्त गवर्नमेंट के सच्चे स्वामिभक्त बन कर उस के नियत किये हुए सब नियमों को जान कर उन्हीं के अनुसार सर्वदा वर्त्ताव करें कि जिस से हम सब की संसारयात्रा सुखपूर्वक व्यतीत हो तथा हम सब पारलौकिक सुख के भी अधिकारी हों ।

सब ही जानते हैं कि-सच्ची स्वामिभक्ति को हृदय में स्थान देने का मुख्य हेतु प्रत्येक पुरुष का सद्भाव और उस का आत्मिक सद्विचार ही है, इस लिये इस विषय में हम केवल इस उपदेश के सिवाय और कुछ नहीं लिख सकते हैं कि-ऐसा करना (स्वामिभक्त बनना) सर्व साधारण का परम कर्त्तव्य है ।

स्मरण रहे कि-राज्यभक्ति का रखना तथा राज्यनियम के अनुसार वर्त्ताव करना (जो कि ऊपर लिखे अनुसार मनुष्य का परम धर्म है) तब ही बन सकता है जब कि मनुष्य राज्यनियम (कानून) को ठीक रीति से जानता हो, इस लिये मनुष्यमात्र को उचित है कि-वह अपने उक्त कर्त्तव्य का पालन करने के लिये राज्यनियम का विज्ञान ठीक रीति से प्राप्त करे ।

यद्यपि राज्यनियम का विषय अत्यन्त गहन है इस लिये सर्व साधारण राज्यनियम के सब अङ्गों को भली भाँति नहीं जान सकते हैं तथापि प्रयत्न करने से इस (राज्यनियम) की मुख्य २ और उपयोगी बातों का परिज्ञान तो सर्व साधारण को भी होना कोई कठिन बात नहीं है, इस लिये उपयोगी और मुख्य २ बातों को तो सर्व साधारण को अवश्य जानना चाहिये ।

यद्यपि हमारा विचार इस प्रकरण में राज्यनियम के कुछ आवश्यक विषयों के भी वर्णन करने का था परन्तु ग्रन्थ के विस्तृत हो जाने के कारण उक्त विषय का वर्णन नहीं किया है, उक्त विषय को देखने की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को ताजीरातहिन्द अर्थात् हिन्दुस्थान का दण्डसंग्रह नामक ग्रन्थ (जिस का कानून ता० १ जनवरी सन् १९६२ ई० से अब तक जारी है) देखना चाहिये ॥

यह पञ्चम अध्याय का राजनियमवर्णन नामक आठवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥

नवाँ प्रकरण—ज्योतिर्विषयवर्णन ॥

ज्योतिषूशास्त्र का संक्षिप्त वर्णन ॥

ज्योतिःशास्त्र का शब्दार्थ ग्रहों की विद्या है, इस में ग्रहों की गति और उन के परस्पर के सम्बंध को देख कर भविष्य (होने वाली) वार्त्ताओं के जानने के नियमों का वर्णन किया गया है, वास्तव में यह विद्या भी एक दिव्य चक्षुरूप है, क्योंकि—इस विद्या के ज्ञान से आगे होने वाली वातों को मनुष्य अच्छे प्रकार से जान सकता है, इस विद्या के अनुसार जन्मपत्रिकायें भी वनती हैं जिन से अच्छे वा बुरे कर्मों का फल ठीक रीति से मालूम हो सकता है, परन्तु वात केवल इतनी है कि—जन्मसमय का लग्न ठीक होना चाहिये, वर्त्तमान में अन्य विद्याओं के समान इस विद्या की भी न्यूनता अन्य देशों की अपेक्षा मारवाड़ तथा गोढ़वाड़ आदि विद्याशून्य देशों में अधिक देखी जाती है, तात्पर्य यह है कि—विद्यारहित तथा अपनी २ यजमानी में उदरपूर्त्ति (पेटभराई) करने वाले ज्योतिषी लोगों को यदि कोई देखना चाहे तो उक्त देशों में देख सकता है, इस लेख से पाठकवृन्द यह न समझें कि—उक्त देशों में ज्योतिष् विद्या के जानकर पण्डित विलकुल नहीं हैं क्योंकि उक्त देशों में भी मुख्य २ राजधानी तथा नगरों में यतिसम्प्रदाय[1] में तथा ब्राह्मण लोगों में कहीं २ अच्छे २ ज्योतिषी देखे जाते हैं; परन्तु अधिकतर तो ऊपर लिखे अनुसार ही उक्त देशों में ज्योतिषी देखने में आते हैं, इसी लिये कहा जाता है कि—उक्त देशों में अन्य विद्याओं के समान इस विद्या की भी अत्यन्त न्यूनता है।

इस विद्या को साधारणतया जानने की इच्छा रखने वालों को उचित है कि—वे प्रथम तिथि; वार; नक्षत्र; योग और कर्ण आदि वातों को कण्ठस्थ कर लेवें, क्योंकि—ऐसा करने से उन को इस विद्या में आगे वढ़ने में सुगमता पड़ेगी, इस विद्या का काम प्रत्येक गृहस्थ को प्रायः पड़ता ही रहता है, इस लिये गृहस्थ लोगों को भी उचित है कि—कार्ययोग्य (काम के लायक) इस विद्या को भी अवश्य प्राप्त कर लें कि जिस से वे इस विद्या के द्वारा अपने कार्यों के शुभाशुभ फल को विचार कर उन में प्रवृत्त हो कर सुख का सम्पादन करें।

१—देखो! जोधपुर राजधानी में ज्योतिष् विद्या, जैनागम, मन्त्रादि जैनाम्नाय तथा सुभाषितादि विषय के पूर्ण ज्ञाता महोपाध्याय श्री जुहारमल जी गणी वर्त्तमान में ८० वर्ष की अवस्था के अच्छे विद्वान् हैं, इन के पास वहुत से ब्राह्मणों के पुत्र ज्योतिष् विद्या को पढ़ कर निपुण हुए हैं तथा जोधपुर राज्य में पूर्व समय में ब्राह्मण लोगों में चण्डू जी नामक अच्छे ज्योतिषी हो चुके हैं, इन्हीं के नाम से एक पञ्चाङ्ग निकलता है जिस का वर्त्तमान में वहुत प्रचार है, इन की सन्तति में भी अच्छे २ विद्वान् तथा ज्योतिषी देखे जाते हैं॥

आगे चल कर हम ज्योतिष् की कुछ आवश्यक बातों को लिखेंगे उन में सूर्य का उदय और अस्त तथा लग्न को स्पष्ट जानने की रीति, ये दो विषय मुख्यतया गृहस्थों के लाभ के लिये लिखे जावेंगे, क्योंकि गृहस्थ लोग पुत्रादि के जन्मसमय में साधारण (कुछ पढ़े हुए) ज्योतिषियों के द्वारा जन्मसमय को बतला कर जन्मकुंडली बनवाते हैं, इस के पीछे अन्य देश के वा उसी देश के किसी विद्वान् ज्योतिषी से जन्मपत्री बनवाते हैं, इस दशा में प्रायः यह देखा जाता है कि बहुत से लोगों की जन्मपत्री का शुभाशुभ फल नहीं मिलता है तब वे लोग जन्मपत्री के बनाने वाले विद्वान् को तथा ज्योतिष् विद्या को दोष देते हैं अर्थात् इस विद्या को असत्य (झूठा) बतलाते हैं, परन्तु विचार कर देखा जावे तो इस विषय में न तो जन्मपत्र के बनाने वाले विद्वान् का दोष है और न ज्योतिष् विद्या का ही दोष है किन्तु दोष केवल जन्मसमय में ठीक लग्न न लेने का है, तात्पर्य यह है कि-यदि जन्मसमय में ठीक रीति से लग्न ले लिया जावे तथा उसी के अनुसार जन्मपत्री बनाई जावे तो उस का शुभाशुभ फल अवश्य मिल सकता है, इस में कोई भी सन्देह नहीं है, परन्तु शोक का विषय तो यह है कि-नाममात्र के ज्योतिषी लोग लग्न बनाने की क्रिया को भी तो ठीक रीति से नहीं जानते हैं फिर उन की बनाई हुई जन्मकुण्डली (टेवे) से शुभाशुभ फल कैसे विदित हो सकता है, इस लिये हम लग्न के बनाने की क्रिया का वर्णन अति सरल रीति से करेंगे ॥

सोलह तिथियों के नाम ॥

संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम
१	प्रतिपद्	पड़िवा	९	नवमी	नौमी
२	द्वितीया	द्वैज	१०	दशमी	दशवीं
३	तृतीया	तीज	११	एकादशी	ग्यारस
४	चतुर्थी	चौथ	१२	द्वादशी	बारस
५	पञ्चमी	पाँचम	१३	त्रयोदशी	तेरस
६	षष्ठी	छठ	१४	चतुर्दशी	चौदस
७	सप्तमी	सातम	१५	पूर्णिमा वा पूर्ण-मासी	पूनम वा पूरनमासी
८	अष्टमी	आठम	१६	अमावास्या	अमावस

सूचना—कृष्ण पक्ष (वदि) में पन्द्रहवीं तिथि अमावास्या कहलाती है तथा शुक्ल पक्ष (सुदि) में पन्द्रहवीं तिथि पूर्णिमा वा पूर्णमासी कहलाती है ॥

सात वारों के नाम ॥

संख्या	संस्कृत नाम	हिन्दी नाम	मुसलमानी नाम	अंग्रेज़ी नाम
१	सूर्यवार	इतवार	आइतवार	सन्डे
२	चन्द्रवार	सोमवार	पीर	मन्डे
३	भौमवार	मंगलवार	मंगल	ट्यूज़डे
४	बुधवार	बुधवार	बुध	वेड्नेस्डे
५	गुरुवार	बृहस्पतिवार	जुमेरात	थर्सडे
६	शुक्रवार	शुक्रवार	जुमा	फ्राइडे
७	शनिवार	शनिश्चर	शनीवार	सटर्डे

सूचना-सूर्यवार को आदित्यवार, सोमवार को चन्द्रवार, बृहस्पतिवार को बिहफै तथा शनिवार को शनैश्चर वा शनीचर भी कहते हैं ॥

सत्ताईस नक्षत्रों के नाम ॥

संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	अश्विनी	८	पुष्य	१५	स्वाति	२२	श्रवण
२	भरणी	९	आश्लेषा	१६	विशाखा	२३	धनिष्ठा
३	कृत्तिका	१०	मघा	१७	अनुराधा	२४	शतभिषा
४	रोहिणी	११	पूर्वाफाल्गुनी	१८	ज्येष्ठा	२५	पूर्वाभाद्रपद
५	मृगशीर्ष	१२	उत्तराफाल्गुनी	१९	मूल	२६	उत्तराभाद्रपद
६	आर्द्रा	१३	हस्त	२०	पूर्वाषाढ़ा	२७	रेवती
७	पुनर्वसु	१४	चित्रा	२१	उत्तराषाढ़ा		

सत्ताईस योगों के नाम ॥

संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम	संख्या	नाम
१	विष्कुम्भ	८	धृति	१५	वज्र	२२	साध्य
२	प्रीति	९	शूल	१६	सिद्धि	२३	शुभ
३	आयुष्मान्	१०	गण्ड	१७	व्यतीपात	२४	शुक्ल
४	सौभाग्य	११	वृद्ध	१८	वरीयान	२५	ब्रह्मा
५	शोभन	१२	ध्रुव	१९	परिघ	२६	ऐन्द्र
६	अतिगण्ड	१३	व्याघात	२०	शिव	२७	वैधृति
७	सुकर्मा	१४	हर्षण	२१	सिद्ध		

सात करणों के नाम ॥

१–बव । २–बालव । ३–कौलव । ४–तैतिल । ५–गर । ६–वणिज । और ७–विष्टि ॥

सूचना—तिथि की सम्पूर्ण घड़ियों में दो करण भोगते हैं अर्थात् यदि तिथि साठ घड़ी की हो तो एक करण दिन में तथा दूसरा करण रात्रि में वीतता है, परन्तु शुक्ल पक्ष की पड़िवा की तमाम घड़ियों के दूसरे आधे भाग से वव और वालव आदि आते हैं तथा कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की घड़ियों के दूसरे आधे भाग से सदा स्थिर करण आते हैं, जैसे देखो ! चतुर्दशी के दूसरे भाग में शकुनि, अमावास्या के पहिले भाग में चतुष्पद, दूसरे भाग में नाग और पड़िवा के पहिले भाग में किँस्तुघ्न, ये ही चार स्थिर करण कहलाते हैं ॥

करणों के बीतने का स्पष्ट विवरण ॥

शुक्ल पक्ष (सुदि) के करण ॥			कृष्ण पक्ष (वदि) के करण ॥		
तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय भाग	तिथि	प्रथम भाग	द्वितीय भाग
१	किंस्तुघ्न	वव	१	वालव	कौलव
२	बालव	कौलव	२	तैतिल	गर
३	तैतिल	गर	३	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	४	वव	वालव
५	बव	बालव	५	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	६	गर	वणिज
७	गर	वणिज	७	विष्टि	वव
८	विष्टि	बव	८	वालव	कौलव
९	बालव	कौलव	९	तैतिल	गर
१०	तैतिल	गर	१०	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	११	वव	वालव
१२	बव	बालव	१२	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	१३	गर	वणिज
१४	गर	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५ पूर्णिमा	विष्टि	बव	३० अमावस	चतुष्पद	नाग

शुभ कार्यों में निषिद्ध तिथि आदि का वर्णन ॥

जिस तिथि की वृद्धि हो वह तिथि, जिस तिथि का क्षय हो वह तिथि, परिघ योग

का पहिला आधा भाग, विष्टि, वैधृति, व्यतीपात, कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी (तेरस) से प्रतिपद् (पड़िवा) तक चार दिवस, दिन और रात्रि के बारह बजने के समय पूर्व और पीछे के दश पल, माता के ऋतुधर्म संबंधी चार दिन, पहिले गोद लिये हुए लड़के वा लड़की के विवाह आदि में उस के जन्मकाल का मास; दिवस और नक्षत्र, जेठ का मास, अधिक मास, क्षय मास, सत्ताईस योगों में विष्कुम्भ योग की पहिली तीन घड़ियाँ, व्याघात योग की पहिली नौ घड़ियाँ, शूल योग की पहिली पाँच घड़ियाँ, वज्र योग की पहिली नौ घड़ियाँ, गण्ड योग की पहिली छः घड़ियाँ, अतिगण्ड योग की पहिली छः घड़ियाँ, चौथा चन्द्रमा, आठवाँ चन्द्रमा, बारहवाँ चन्द्रमा, कालचन्द्र, गुरु तथा शुक्र का अस्त, जन्म तथा मृत्यु का सूतक[1], मनोभङ्ग तथा सिंह राशि का बृहस्पति (सिंहस्थ वर्ष), इन सब तिथि आदि का शुभ कार्य में ग्रहण नहीं करना चाहिये॥

१-सूतक विचार तथा उस में कर्त्तव्य-पुत्र का जन्म होने से दश दिन तक, पुत्री का जन्म होने से बारह दिन तक, जिस स्त्री के पुत्र हो उस (स्त्री) के लिये एक मास तक, पुत्र होते ही मर जावे तो एक दिन तक, परदेश में मृत्यु होने से एक दिन तक, घर में गाय; भैंस; घोड़ी और ऊँटिनी के व्याने से एक दिन तक, घर में इन (गाय आदि) का मरण होने से जब तक इन का मृत शरीर घर से बाहर न निकला जावे तब तक, दास दासी के पुत्र तथा पुत्री आदि का जन्म वा मरण होने से तीन दिन तक तथा गर्भ के गिरने पर जितने महीने का गर्भ गिरे उतने दिनों तक सूतक रहता है।

जिस के गृह में जन्म वा मरण का सूतक हो वह बारह दिन तक देवपूजा को न करे, उस में भी मृतकसम्बंधी सूतक में घर का मूल स्कंध (मूल काँधिया) दश दिन तक देवपूजा को न करे, इस के सिवाय शेष घर वाले तीन दिन तक देवपूजा को न करें, यदि मृतक को छुआ हो तो चौबीस प्रहर तक प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) न करे, यदि सदा का भी अखण्ड नियम हो तो समता भाव रख कर शम्वर-पने में रहे परन्तु मुख से नवकार मन्त्र का भी उच्चारण न करे, स्थापना जी के हाथ न लगावे; परन्तु यदि मृतक को न छुआ हो तो केवल आठ प्रहर तक प्रतिक्रमण (पडिक्कमण) न करे, भैंस के बच्चा होने पर पन्द्रह दिन के पीछे उस का दूध पीना कल्पता है, गाय के बच्चा होने पर भी पन्द्रह दिन के पीछे ही उस का भी दूध पीना कल्पता है तथा बकरी के बच्चा होने पर उस समय से आठ दिन के पीछे दूध पीना कल्पता है।

ऋतुमती स्त्री चार दिन तक पात्र आदि का स्पर्श न करे, चार दिन तक प्रतिक्रमण न करे तथा पाँच दिन तक देवपूजा न करे, यदि रोगादि किसी कारण से तीन दिन के उपरान्त भी किसी स्त्री के रक्त चलता हुआ दीखे तो उस का विशेष दोष नहीं माना गया है, ऋतु के पश्चात् स्त्री को उचित है कि-शुद्ध विवेक से पवित्र हो कर पाँच दिन के पीछे स्थापना पुस्तक का स्पर्श करे तथा साधु को प्रतिलाभ देवे, ऋतुमती स्त्री जो तपस्या (उपवासादि) करती है वह तो सफल होती ही है परन्तु उसे प्रतिक्रमण आदि का करना योग्य नहीं है (जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं); यह चर्चरी ग्रन्थ में कहा है, जिस घर में जन्म वा मरण का सूतक हो वहाँ बारह दिन तक साधु आहार तथा पानी को न वहरै (ले), क्योंकि-निशीथ-सूत्र के सोलहवें उद्देश्य में जन्म मरण के सूतक से युक्त घर दुर्गंछनीक कहा है॥

दिन का चौघड़िया ॥

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल

विज्ञान—ऊपर के कोष्ठ से यह समझना चाहिये कि–जिस दिन जो वार हो उस दिन उसी वार के नीचे लिखा हुआ चौघड़िया सूर्योदय के समय में बैठता है वह पहिला समझना चाहिये, पीछे उस के उतरने के बाद उस वार से छठे वार का चौघड़िया बैठता है वह दूसरा समझना चाहिये, पीछे उस के उतरने के बाद उस (छठे) वार से छठे वार का चौघड़िया बैठता है, यही क्रम आगे भी समझना चाहिये, जैसे देखो! रविवार के दिन पहिला उद्वेग नामक चौघड़िया है उस के उतरने के पीछे रवि से छठे शुक्र का चल नामक चौघड़िया बैठता है, इसी अनुक्रम से प्रत्येक वार के दिन भर का चौघड़िया जान लेना चाहिये, एक चौघड़िया डेढ़ घण्टे तक रहता है अर्थात् सवेरे के छः बजे से ले कर शाम के छः बजे तक बारह घण्टे में आठ चौघड़िये व्यतीत होते हैं, इन में से–अमृत; शुभ; लाभ और चल; ये चार चौघड़िये उत्तम तथा उद्वेग; रोग और काल; ये तीन चौघड़िये निकृष्ट हैं, इस लिये अच्छे चौघड़ियों में शुभ काम को करना चाहिये ॥

रात्रि का चौघड़िया ॥

रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ
अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग
चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ
रोग	लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत
काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल
लाभ	शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग
उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	काल
शुभ	चल	काल	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ

विज्ञान—इस कोष्ठ में ऊपर से केवल इतना ही अन्तर है कि—एक वार के पहिले चौघड़िये के उतरने के पीछे उस वार से पाँचवें वार का दूसरा चौघड़िया बैठता है, शेष सब विषय ऊपर लिखे अनुसार ही है ॥

छोटी बड़ी पनोती तथा उस के पाये का वर्णन ॥

प्रत्येक मनुष्य को अपनी जन्मराशि से जिस समय चौथा वा आठवां शनि हो उस समय से २॥ वर्ष तक की छोटी पनोती जाननी चाहिये, बारहवाँ शनि बैठे (लगे) तब से लेकर दूसरे शनि के उतरने तक बराबर ७॥ वर्ष की बड़ी पनोती होती है, उस में से बारहवें शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती मस्तक पर समझनी चाहिये, पहिले शनि के होनें तक २॥ वर्ष की पनोती छाती पर जाननी चाहिये तथा दूसरे शनि के होने तक २॥ वर्ष की पनोती पैरों पर जाननी चाहिये।

जिस दिन पनोती बैठे उस दिन यदि जन्मराशि से पहिला; छठा तथा ग्यारहवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को सोने के पाये जानना चाहिये, यदि दूसरा; पाँचवाँ तथा नवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को रूपे के पाये जावना चाहिये, यदि तीसरा; सातवाँ तथा दशवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को ताँबे के पाये जानना चाहिये तथा यदि चौथा आठवाँ और बारहवाँ चन्द्र हो तो उस पनोती को लोहे के पाये जानना चाहिये ॥

पनोती के फल तथा वर्ष और मास के पाये का वर्णन ॥

यदि पनोती सोने के पाये बैठी हो तो चिन्ता को उत्पन्न करे, यदि पनोती रूपे के पाये बैठी हो तो धन मिले, यदि पनोती ताँबे के पाये बैठी हो तो सुख और सम्पत्ति मिले तथा यदि पनोती लोहे के पाये बैठी हो तो कष्ट प्राप्त हो, इसी प्रकार जिस दिन वर्ष तथा मास बैठे उस दिन जिस राशि का चन्द्र हो उस के द्वारा ऊपर लिखे अनुसार सोने के; रूपे के तथा ताँबे के पाये पर बैठने वाले वर्ष अथवा मास का विचार कर सम्पूर्ण वर्ष का अथवा मास का फल जान लेना चाहिये, जैसे—देखो! कल्पना करो कि—संवत् १९६४ के प्रथम चैत्र शुक्ल पड़िवा के दिन मीन राशि का चन्द्र है वह (चन्द्र) मेषराशि वाले पुरुष को बारहवां होता है इस लिये ऊपर कही हुई रीति से लोहे के पाये पर वर्ष तथा मास बैठा अतः उसे कष्ट देने वाला जान लेना चाहिये, इसी रीति से दूसरी राशिवालों के लिये भी समझ लेना चाहिये ॥

चोरी गई अथवा खोई हुई वस्तु की प्राप्ति वा अप्राप्ति का वर्णन ॥

पूर्व दिशा में	दक्षिण दिशा में	पश्चिम दिशा में	उत्तर दिशा में
शीघ्र मिलेगी	तीन दिन में मिलेगी	एक मास में मिलेगी	नहीं मिलेगी
रोहिणी	मृगशीर्ष	आर्द्रा	पुनर्वसु
पुष्य	आश्लेषा	मघा	पूर्वाफाल्गुनी
उत्तरा फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाति
विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा	मूल
पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा	अभिजित्	श्रवण
धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद
रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका

विज्ञान—ऊपर के कोष्ठ से यह समझना चाहिये कि–जिस दिन वस्तु खोई गई हो अथवा चुराई गई हो (वह दिन यदि मालूम हो तो) उस दिन का नक्षत्र देखना चाहिये, यदि रोहिणी नक्षत्र हो तो ऊपर लिखे अनुसार समझ लेना चाहिये कि वह वस्तु पूर्व दिशा में गई है तथा वह शीघ्र ही मिलेगी, यदि वह दिन मालूम न हो तो जिस दिन अपने को उस वस्तु का चोरी जाना वा खोया जाना मालूम हो उस दिन का नक्षत्र देख कर ऊपर लिखे अनुसार निर्णय करना चाहिये, यदि उस दिन मृगशीर्ष नक्षत्र हो तो जान लेना चाहिये कि वस्तु दक्षिण दिशा में गई है तथा वह तीन दिन में मिलेगी, यदि उस दिन आर्द्रा नक्षत्र हो तो जानना चाहिये कि–वह वस्तु पश्चिम दिशा में गई है तथा एक महीने में मिलेगी और यदि उस दिन पुनर्वसु नक्षत्र हो तो जान लेना चाहिये कि–वह वस्तु उत्तर दिशा में गई है तथा वह नहीं मिलेगी, इसी प्रकार कोष्ठ में लिखे हुए सब नक्षत्रों के अनुसार वस्तु के विषय में निश्चय कर लेना चाहिये ॥

नाम रखने के नक्षत्रों का वर्णन ॥

संख्या	नाम नक्षत्र अक्षर	संख्या	नाम नक्षत्र अक्षर
१	अश्विनी चू, चे, चो, ला,	७	पुनर्वसु के, को, हा, ही,
२	भरणी ली, लू, ले, लो	८	पुष्य हू, हे, हो, डा,
३	कृत्तिका अ, ई, ऊ, ए,	९	आश्लेषा डी, डु, डे, डो,
४	रोहिणी ओ, बा, बी, बू,	१०	मघा म, मी, मू, मे,
५	मृगशिर वे, वो, का, की,	११	पूर्वाफाल्गुनी मो, टा, टी, टू,
६	आर्द्रा कू, घ, ङ, छ,	१२	उत्तराफाल्गुनी टे, टो, प, पी,

संख्या	नाम नक्षत्र	अक्षर	संख्या	नाम नक्षत्र	अक्षर
१३	हस्त	पु, ष, ण, ठ,	२१	उत्तराषाढ़ा	भे, भो, ज, जी,
१४	चित्रा	पे, पो, रा, री,	२२	अभिजित्[1]	जू, जे, जो, खा,
१५	स्वाती	रू, रे, रो, ता,	२३	श्रवण	खी, खु, खे, खो,
१६	विशाखा	ती, तू, ते, तो,	२४	धनिष्ठा	ग, गी, गू, गे,
१७	अनुराधा	ना, नि, नू, ने,	२५	शतभिषा	गो, सा, सी, सू,
१८	ज्येष्ठा	नो या, यी, यू,	२६	पूर्वाभाद्रपद	से, सो, द, दी,
१९	मूल	ये, यो, भ, भी,	२७	उत्तराभाद्रपद	दु, ञ, झ, थ,
२०	पूर्वाषाढ़ा	भू, ध, फ, ढ,	२८	रेवती	दे, दो, च, ची,

चन्द्रराशि का वर्णन ॥

राशि।	नक्षत्र तथा उस के पाद[2]।	राशि।	नक्षत्र तथा उस के पाद।
मेष	अश्विनी, भरणी, कृत्तिका का प्रथम पाद।	तुल	चित्रा के दो पाद, स्वाति, विशाखा के तीन पाद।
वृष	कृत्तिका के तीन पाद, रोहिणी, मृगशिर के दो पाद।	वृश्चिक	विशाखा का एक पाद, अनुराधा, ज्येष्ठा।
मिथुन	मृगशिर के दो पाद, आर्द्रा, पुनर्वसु के तीन पाद।	धन	मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा का प्रथम पाद।
कर्क	पुनर्वसु का एक पाद, पुष्य, आश्लेषा।	मकर	उत्तराषाढ़ा के तीन पाद, श्रवण, धनिष्ठा के दो पाद।
सिंह	मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी का प्रथम पाद।	कुम्भ	धनिष्ठा के दो पाद, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद के तीन पाद।
कन्या	उत्तराफाल्गुनी के तीन पाद, हस्त, चित्रा के दो पाद।	मीन	पूर्वाभाद्रपद का एक पाद, उत्तराभाद्रपद, रेवती ॥

तिथियों के भेदों का वर्णन ॥

पहिले जिन तिथियों का वर्णन कर चुके हैं उन के कुल पाँच भेद हैं–नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, अब कौन २ सी तिथियाँ किस २ भेदवाली हैं यह बात नीचे लिखे कोष्ठ से विदित हो सकती है:–

१–उत्तराषाढ़ा के चौथे भाग से लेकर श्रवण की पहिली चार घड़ी पर्यन्त अभिजित् नक्षत्र गिना जाता है, इतने समय में जिस का जन्म हुआ हो उस का अभिजित् नक्षत्र में जन्म हुआ समझना चाहिये ॥

२–स्मरण रहे कि–एक नक्षत्र के चार चरण (पाद वा पाये) होते हैं तथा चन्द्रमा दो नक्षत्र और एक पाये तक अर्थात् नौ पायों तक एक राशि में रहता है, चन्द्रमा के राशि में स्थित होने का यही क्रम बराबर जानना चाहिये ॥

संख्या।	भेद।	तिथियाँ।	संख्या।	भेद।	तिथियाँ।
१	नन्दा	पड़िवा, छठ और एकादशी।	४	रिक्ता	चौथ, नौमी और चौदस।
२	भद्रा	द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी।	५	पूर्णा	पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा।
३	जया	तृतीया, अष्टमी और तेरस।			

सूचना—यदि नन्दा तिथि को शुक्रवार हो, भद्रा तिथि को बुधवार हो, जया तिथि को मङ्गलवार हो, रिक्ता तिथि को शनिवार हो तथा पूर्णा तिथि को गुरुवार (बृहस्पतिवार) हो तो उस दिन सिद्धि योग होता है, यह (योग) सब शुभ कामों में अच्छा होता है ॥

दिशाशूल के जानने का कोष्ठ ॥

नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।
सोम और शनिवार को।	पूर्व दिशामें।	बुध तथा मङ्गलवार को।	उत्तर दिशा में।
गुरुवार को।	दक्षिण दिशा में।	रवि तथा शुक्रवार को।	पश्चिम दिशा में।

योगिनी के निवास के जानने का कोष्ठ ॥

नाम तिथि।	दिशा में।	नाम तिथि।	दिशा में।
पड़िवा और नौमी।	पूर्व दिशा में।	षष्ठी और चतुर्दशी।	पश्चिम दिशा में।
तृतीया और एकादशी।	अग्नि कोण में।	सप्तमी और पूर्णमासी।	वायव्य कोण में।
पञ्चमी और त्रयोदशी।	दक्षिण दिशा में।	द्वितीया और दशमी।	उत्तर दिशा में।
चतुर्थी और द्वादशी।	नैर्ऋत्य कोण में।	अष्टमी और अमावास्या।	ईशान कोण में।

योगिनी का फल ॥

संख्या।	तरफ।	फल।	संख्या।	तरफ।	फल।
१	दाहिनी तरफ।	धन की हानि करने वाली।	३	पीठ की तरफ।	वाँछित फल को देने वाली।
२	बाईं तरफ।	सुख देने वाली।	४	सम्मुख होने पर।	मरण तथा तकलीफ को देने वाली।

चन्द्रमा के निवास के जानने का कोष्ठ ॥

राशि।	दिशा में।	राशि।	दिशा में।
मेष और सिंह।	पूर्व दिशा में।	मिथुन, तुल और कुम्भ।	पश्चिम दिशा में।
वृष, कन्या और मकर।	दक्षिण दिशा में।	वृश्चिक, कर्क और मीन।	उत्तर दिशा में।

चन्द्रमा का फल ॥

संख्या।	तरफ।	फल।	संख्या।	तरफ।	फल।
१	सम्मुख होने पर।	अर्थ का लाभ करता है।	३	पीठ की तरफ होने पर।	प्राणों का नाश करता है।
२	दाहिनी तरफ होने पर।	सुख तथा सम्पत्ति करता है।	४	बाईं तरफ होने पर।	धन का क्षय करता है।

कालराहु के निवास के जानने का कोष्ठ[1] ॥

नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।	नाम वार।	दिशा में।
शनिवार।	पूर्व दिशा में।	गुरुवार।	दक्षिण दिशा में।	मंगलवार।	पश्चिम दिशा में।	रविवार।	उत्तर दिशा में।
शुक्रवार।	अग्निकोण में।	बुधवार।	नैर्ऋत्य कोण में।	सोमवार।	वायव्य कोण में।		

अर्कदग्धा तथा चन्द्रदग्धा तिथियों का वर्णन[2] ॥

अर्कदग्धा तिथियाँ ॥		चन्द्रदग्धा तिथियाँ ॥	
सङ्क्रान्ति।	तिथि।	चन्द्रराशि।	तिथि।
धन तथा मीन की।	द्वितीया।	वृष और कर्क राशि के चन्द्र में।	दशमी।
वृष तथा कुम्भ की।	चतुर्थी।	धन और कुम्भ राशि के चन्द्र में।	द्वितीया।
मेष तथा कर्क की।	षष्ठी।	वृश्चिक और कन्या राशि के चन्द्र में।	द्वादशी।
कन्या तथा मिथुन की।	अष्टमी।	मीन और मकर राशि के चन्द्र में।	अष्टमी।
वृश्चिक तथा सिंह की।	दशमी।	तुल और सिंह राशि के चन्द्र में।	षष्ठी।
मकर तथा तुल की।	द्वादशी।	मेष और मिथुन राशि के चन्द्र में।	चतुर्थी।

इष्ट काल साधन ॥

पहिले कह चुके हैं कि–जन्मकुंडली वा जन्मपत्री के बनाने के लिये इष्टकाल का साधन करना अत्यावश्यक होता है, क्योंकि–इस (इष्टकाल) के शुद्ध किये विना जन्म-

---

१–परदेशादि में गमन करने के समय उक्त सब बातों (दिशाशूल आदि) का देखना आवश्यक होता है, इन बातों के ज्ञानार्थ इस दोहे को कण्ठ रखना चाहिये कि–"दिशाशूल ले जावे बायें, राहु योगिनी पूठ ॥ सम्मुख लेवे चन्द्रमा, लावै लक्ष्मी लूट" ॥ १ ॥ इस के सिवाय जन्म के चन्द्रमा में परदेशगमन, तीर्थयात्रा, युद्ध, विवाह, क्षौरकर्म अर्थात् मुण्डन तथा नये घर में निवास, ये पाँच कार्य नहीं करने चाहियें ॥

२–अर्कदग्धा तथा चन्द्रदग्धा तिथियों में शुभ तथा माङ्गलिक कार्य का करना अत्यन्त निषिद्ध है ॥

पत्री का फल कभी ठीक नहीं मिल सकता है, इस लिये अब इस विषय का संक्षेप से वर्णन किया जाता है:—

घण्टा बनाने की विधि—एक घटी (घड़ी) के २४ मिनट होते हैं, इस लिये ढाई दण्ड[1] (घड़ी) का एक घण्टा (अर्थात् ६० मिनट) होता है, इस रीति से अहोरात्र (रात दिन) साठ घटी का अर्थात् चौवीस घण्टे का होता है, अब घण्टा आदि बनाने के समय इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि–जितनी घटी और पल[2] हों उन को २॥ से भाग देना चाहिये, क्योंकि–इस से घण्टा; मिनट तथा सेकिण्ड तक मालूम हो सकते हैं, जैसे–देखो! १४ घटी, २० पल तथा ४५ विपल के घण्टे बनाने हैं–तो पाँच ढाम साढ़े बारह को निकाला तो शेष (बाकी) रहा[3]–१।५०।४५, अब एक घटी के २४ मिनट हुए तथा ५० पल के–२० ढाम ५० अर्थात् २० मिनट हुए, इन में पूर्व के २४ मिनट मिलाये तो ४४ मिनट हुए तथा ४५ विपल के–१८ ढाम ४५ अर्थात् १८ सेकिण्ड हुए, इस लिये–१४ घटी २० पल तथा ४५ विपल के पूरे ५ घण्टे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए ॥

दूसरी विधि—घटी; पल तथा विपल को द्विगुण (दूना) करके ६० से चढ़ा कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे घण्टा समझो, शेष को ६० से गुणा कर के तथा पल के अङ्कों को जोड़ कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे मिनट समझो और शेष को साठ (६०) से गुणा कर के तथा विपल के अङ्कों को जोड़ कर ५ का भाग दो, जो लब्ध आवे उसे सेकिण्ड समझो, उदाहरण–१४।२०।४५ को द्विगुण (दूना) किया तो २८।४०।९० हुए, इन में से अन्तिम अङ्क ९० में ६० का भाग दिया तो लब्ध एक आया, इस एक को पल में जोड़ा तो २८।४१।३० हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध ५ आया, ये ही पाँच घण्टे हुए, शेष ३ को ६० से गुणा करके उन में ४१ जोड़े तो २२१ हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध ४४ हुए, इन्हीं को मिनट समझो, शेष एक को ६० से गुणा करके उन में ३० जोड़े तो ९०

१–स्मरण रहे कि सवाये का निशान इस प्रकार से लिखा जावेगा–१।१५, ढाई का निशान—२।३०, पौने दो का १।४५। पूरी राशि ६० है, इसी का अंश १।२।३ वा हिस्सा १५।३०।४५ जानना चाहिये ॥

२–दण्ड, नाड़ी और कला आदि संज्ञायें घटी (घड़ी) की ही हैं और पल, विघटी तथा विकला इत्यादि विपल ही की संज्ञायें हैं ॥

३–१४।२०।४५

बाकी १२२।३० अब २० में से ३० नहीं घट सकता है, इस लिये बची हुई दो घटिकाओं में से एक घटिका को ले कर उस के पल बनाये तो ६० पल हुए, इन को २० में जोड़ा तो ८० पल हुए, इन में से ३० को घटाया तो ५० बचे, इस लिये १।५०।४५ हुए, इसी प्रकार सब जगह जानना चाहिये ॥

हुए, इन में ५ का भाग दिया तो लब्ध १८ हुए, इन्हीं को सेकिण्ड समझो, बस १४ घड़ी, २० पल तथा ४५ विपल के ५ घण्टे, ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड हुए।

इसी प्रकार यदि घण्टा; मिनट और सेकिण्ड के घटी; पल और विपल बनाने हों तो घण्टा; मिनट और सेकिण्ड को ५ से गुणा कर तथा ६० से चढ़ा कर २ का भाग दो अर्थात् आधा कर दो तो घण्टा मिनट और सेकिण्ड के घटी; पल और विपल बन जावेंगे, जैसे-देखो! इन्हीं ५ घण्टे; ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड को ५ से गुणा किया तो २५।२२०।९० हुए, इन को ६० से चढ़ाया तो २८।४१।३० हुए, इन में दो का भाग दिया (आधा किया) तो १४।२०।४५ रहे अर्थात् ५ घण्टे; ४४ मिनट तथा १८ सेकिण्ड की १४ घटी; २० पल तथा ४५ विपल हुए, यह भी स्मरण रखना चाहिये कि-दो का भाग देने पर जब आधा बचता है तब उस की जगह ३० माना जाता है, जैसे कि-४१ का आधा २०॥ होगा, इस लिये वहाँ आधे के स्थान में ३० समझा जावेगा, इसी प्रकार ढाई गुणा करने में भी उक्त बात का स्मरण रखना चाहिये।

इस का एक अति सुलभ उपाय यह भी है कि-घण्टे; मिनट और सेकिण्ड की जब घटी आदि बनाना हो तो घण्टे आदि को दूना कर उस में उसी का आधा जोड़ दो, जैसे-५।४४।१८ को दूना किया तो १०।८८।३६ हुए, उन में उन्हीं का आधा २। ५२।९ जोड़े तो १२।१४०।४५ हुए, इन में ६० का भाग दिया तो १४।२०।४० हुए अर्थात् उक्त घण्टे आदि के उक्त दण्ड और पल आदि हो गये ॥

सूर्यास्त काल साधन ॥

पञ्चाङ्ग में लिखे हुए प्रतिदिन के दिनमान के प्रथम ऊपर लिखी हुई क्रिया से घण्टे; मिनट और सेकिण्ड बना लेने चाहियें, पीछे उन्हें आधा कर देना चाहिये, ऐसा करने से सूर्यास्तकाल हो जावेगा, **उदाहरण**—कल्पना करो कि-दिनमान ३१।३५ है, इन के घण्टे बनाये तो १२ घण्टे तथा ३८ मिनट हुए, इन का आधा किया तो ६।१९ हुए, बस यही सूर्यास्तकाल हुआ अर्थात् सूर्य के अस्त होने का समय ६ बज कर १९ मिनट पर सिद्ध हुआ, इसी प्रकार आवश्यकता हो तो सूर्यास्तकाल के घंटे आदि को दूना करके घटी तथा पल बन सकते हैं अर्थात् दिनमान निकल सकता है ॥

१-पहिले ९० में ६० का भाग दिया तो लब्ध एक आया, इस एक को २२० में जोड़ा तो २२१ हुए, शेष बचे हुए ३० को वैसा ही रहने दिया, अब २२१ में ६० का भाग दिया तो लब्ध ३ आये, इन ३ को २५ में जोड़ा तो २८ हुए, शेष बचे हुए ४१ को वैसा ही रहने दिया, बस २८।४१।३० हो गये ॥

सूर्योदय काल के जानने की विधि ॥

१२ में से सूर्यास्तकाल के घण्टों और मिनटों को घटा देने से सूर्योदयकाल बन जाता है, जैसे–१२ में से ६।१९ को घटाया तो ५।४१ शेष रहे अर्थात् ५ बजे के ४१ मिनट पर सूर्योदयकाल ठहरा, एवं सूर्योदयकाल के घण्टों और मिनटों को दूना कर घटी और पल बनाये तो २८।२५ हुए, बस यही रात्रिमान है, दिनमान का आधा दिनार्ध और रात्रिमान का आधा रात्रिमानार्ध (रात्र्यर्ध) होता है तथा दिनमान में रात्रिमानार्ध को जोड़ने से रात्र्यर्ध अर्थात् निशीथसमय होता है, जैसे–१५।४७।३० दिनार्ध है तथा १४।१२। ३० रात्रिमानार्ध है, इस रात्रिमानार्ध को (१४।१२।३० को) दिनमान में जोड़ा तो रात्र्यर्ध अर्थात् निशीथकाल ४५ ।४७।३० हुआ ॥

दूसरी क्रिया—६० में से दिनमान को घटा देने से रात्रिमान बनता है, दिनमान में ५ का भाग देने से सूर्यास्तकाल के घण्टे और मिनट निकलते हैं तथा रात्रिमान में ५ का भाग देने से सूर्योदयकाल बनता है, जैसे–३१।३५ में ५ का भाग दिया तो ६ लब्ध हुए, शेष बचे हुए एक को ६० से गुणा कर उस में ३५ जोड़े तथा ५ का भाग दिया तो १९ लब्ध हुए, बस यही सूर्यास्तकाल हुआ अर्थात् ६।१९ सूर्यास्तकाल ठहरा, ६० में से दिनमान ३१।३५ को घटाया तो २८।२५ रात्रिमान रहा, उस में ५ का भाग दिया तो ५।४१ हुए, बस यही सूर्योदयकाल बन गया ॥

इष्टकाल विरचन ॥

यदि सूर्योदयकाल से दो पहर के भीतर तक इष्टकाल बनाना हो तो सूर्योदयकाल को इष्टसमय के घण्टों और मिनटों में से घटा कर दण्ड और पल कर लो तो मध्याह्न के भीतर तक का इष्टकाल बन जावेगा, जैसे–कल्पना करो कि–सूर्योदय काल ६ बजे के ७ मिनट तथा ४९ सेकिण्ड पर है तो इष्टसमय १० बज के ११ मिनट तथा ३७ सेकिण्ड पर हुआ, क्योंकि–अन्तर करने से ४।३।४८ के घटी और पल आदि १०।८ ३० हुए, बस यही इष्टकाल हुआ, इसी प्रकार मध्याह्न के ऊपर जितने घण्टे आदि हुए हों उन की घटी आदि को दिनार्ध में जोड़ देने से दो पहर के ऊपर का इष्टकाल सूर्योदय से बन जावेगा ॥

सूर्यास्त के घण्टे और मिनट के उपरान्त जितने घण्टे आदि व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल आदि को दिनमान में जोड़ देने से रात्र्यर्ध तक का इष्टकाल बन जावेगा।

१–स्मरण रहे कि–२४ घण्टे का अर्थात् ६० घटी का अहोरात्र (दिनरात) होता है, घटाने की रीति इस प्रकार समझनी चाहिये—६०।० / ३१।३५ / २८ देखो। ६० में से ३१ को घटाया तो २९ रहे, अब ३५ को घटाना है परन्तु ३५ के ऊपर शून्य है अर्थात् शून्य में से ३५ घट नहीं सकता है तो २९ में से एक निकाला अर्थात् २९ की जगह २८ रक्खा तथा उस निकाले हुए एक के पल बनाये तो ६० हुए, इस में से ३५ को निकाला (घटाया) तो २५ बचे अर्थात् ६० में से ३१।३५ को घटाने से २८।२५ रहे ॥

राज्यर्ध के उपरान्त जितने घण्टे और मिनट हुए हों उन के दण्ड और पलों को राज्यर्ध में जोड़ देने से सूर्योदय तक का इष्ट बन जावेगा ॥

दूसरी विधि—सूर्योदय के उपरान्त तथा दो प्रहर के भीतर की घटी और पलों को दिनार्ध में घटा देने से इष्ट बन जाता है, अथवा सूर्योदय से लेकर जितना समय व्यतीत हुआ हो उस की घटी और पल बना कर मध्याह्नोत्तर तथा अर्ध रात्रि के भीतर तक का जितना समय हो उसे दिनार्ध में जोड़ देने से मध्य रात्रि तक का इष्ट बन जावेगा, अथवा सूर्योदय के अनन्तर जितने घण्टे व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल बना कर उन्हें ६० में से घटा देने से इष्ट बन जाता है, दिनार्ध के ऊपर के जितने घण्टे व्यतीत हुए हों उन की घटी और पल बना कर उन्हें राज्यर्ध में घटा देने से राज्यर्ध के भीतर का इष्टकाल बन जाता है ॥

लग्न जानने की रीति ॥

जिस समय का लग्न बनाना हो उस समय का प्रथम तो ऊपर लिखी हुई क्रिया से इष्ट बनाओ, फिर—उस दिन की वर्त्तमान संक्रान्ति के जितने अंश गये हों उन को पञ्चाङ्ग में देख कर लग्नसारणी में उन्हीं अंशों की पङ्क्ति में उस सङ्क्रान्ति वाले कोष्ठ की पङ्क्ति के बराबर (सामने) जो कोष्ठ हो उस कोष्ठ के अङ्कों को इष्ट में जोड़ दो और उस सारणी में फिर देखो जहाँ तुम्हारे जोड़े हुए अंक मिलें वही लग्न उस समय का जानो, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि—यदि तुम्हारे जोड़े हुए अङ्क साठ से ऊपर (अधिक) हों तो ऊपर के अङ्कों को (साठ को निकाल कर शेष अङ्कों को) कायम रक्खो अर्थात् उन अङ्कों में से साठ को निकाल डालो फिर ऊपर के जो अङ्क हों उन को सारणी में देखो, जिस राशि की पङ्क्ति में वे अङ्क मिलें उतने ही अंश पर उसी लग्न को समझो ॥

कतिपय महज्जनों की जन्मकुंडलियाँ

अब कतिपय महज्जनों की जन्मकुण्डलियाँ लिखी जाती हैं—जिन की ग्रहविशेषस्थिति को देख कर विद्वज्जन ग्रहविशेपजन्य फल का अनुभव कर सकेंगे:—

तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी की जन्मकुण्डली ॥

श्री रामचंद्र जी महाराज की जन्मकुण्डली ॥

श्रीकृष्णचन्द्र महाराज की जन्मकुण्डली ॥

कैसरेहिन्द महाराणी स्वर्गवासिनी श्री विक्टोरियो[1] की जन्मकुण्डली ॥
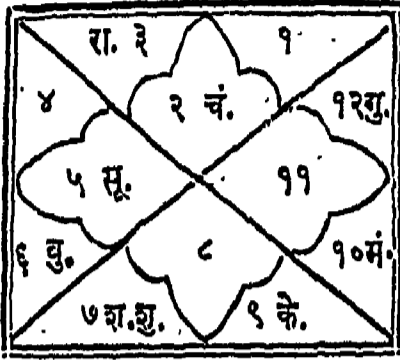
श्री हुलकर महाराज श्री सियाजीरावे[2] बहादुर इन्दोर की जन्मकुण्डली ६।१७ ॥
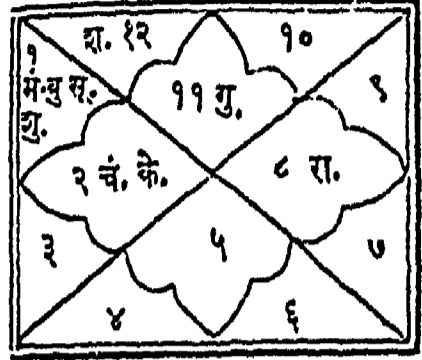
स्वर्गवासी महाराज श्री यशवन्त सिंह[3] जी बहादुर जोधपुर की जन्मकुण्डली ॥

महाराज श्री प्रतापसिंह[4] जी बहादुर ईडर की जन्मकुण्डली ॥
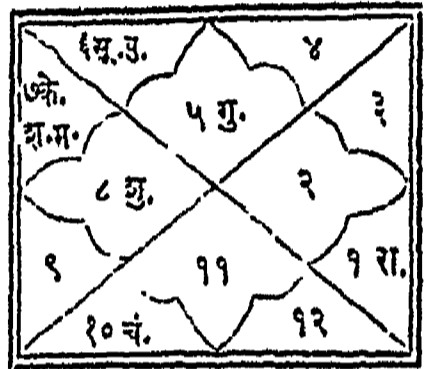
महाराज श्री सिरदारसिंह[5] जी बहादुर जोधपुर की जन्म कुण्डली ॥

सूचना—बहुत से पुरुषों की जन्मपत्री का शुभाशुभ फल प्रायः नहीं मिलता है जिस का कारण प्रथम लिख चुके हैं कि—उन में इष्टकाल ठीक रीति से नहीं लिया जाता है, इस लिये जिन जन्मपत्रिओं का फल न मिलता हो उन में इष्टकाल का गड़बड़ समझना चाहिये तथा किसी विद्वान् से उसे ठीक कराना चाहिये, किन्तु ज्योतिःशास्त्र

१—इस शाहजादी का जन्म केन्सिंगटन के राजमहल में सन् १८१९ ई. के मई मास की २४ ता. को सवेरे ४ बज के ६ मिनट तथा १६ सेकिण्ड के समय हुआ था ॥

२—संवत् १९१६ मिति कार्तिक कृष्णा १, इष्ट ५८।५ पर जन्म हुआ ॥

३—संवत् १८९४ आश्विन सुदि ९, इष्ट ५७।५८ पर जन्म हुआ ॥

४—संवत् १९०१ मिति मिगशिर वदि ५, इष्ट ३०।३१ के समय जन्म हुआ ॥

५—संवत् १९३६ मिति माघ सुदि १, बुधवार, इष्ट ३२।१० के समय जन्म हुआ ॥

पर से श्रद्धा को नहीं हटाना चाहिये, क्योंकि–ज्योतिःशास्त्र (निमित्तज्ञान) कभी मिथ्या नहीं हो सकता है, देखो! ऊपर जिन प्रसिद्ध महोदयों की जन्मकुण्डलियाँ यहाँ उद्धृत (दर्ज) की हैं उन के लग्नसमय में फर्क का होना कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता विद्वानों से इष्टकाल का संशोधन करा के उक्त कुण्डलियाँ बनावाई गई प्रतीत होती हैं और यह बात कुण्डलियों के ग्रहों वा उन के फल से ही विदित होती है, देखो! इन कुण्डलियों में जो उच्च ग्रह तथा राज्ययोग आदि पड़े हैं उन का फल सब के प्रत्यक्ष ही है, बस यह बात ज्योतिष् शास्त्र की सत्यता को स्पष्ट ही बतला रही है।

जन्मपत्रिका के फलादेश के देखने की इच्छा रखने वाले जनों को भद्रबाहुसंहिता, जन्माम्भोधि, त्रैलोक्यप्रकाश तथा भुवनप्रदीप आदि ग्रन्थ एवं बृहज्जातक, भावकुतूहल तथा लघुपाराशरी आदि ज्योतिष्शास्त्र के ग्रन्थों को देखना चाहिये, क्योंकि–उक्त ग्रन्थों में सर्व योगों तथा ग्रहों के फल का वर्णन बहुत उत्तम रीति से किया गया है।

यहाँ पर विस्तार के भय से ग्रहों के फलादेश आदि का वर्णन नहीं किया जाता है किन्तु गृहस्थों के लिये लाभदायक इस विद्या का जो अत्यावश्यक विषय था उस का संक्षेप से कथन कर दिया गया है, आशा है कि–गृहस्थ जन उस का अभ्यास कर उस से अवश्य लाभ उठावेंगे ॥

यह पञ्चम अध्याय का ज्योतिर्विषय वर्णन नामक नवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

दशवाँ प्रकरण—स्वरोदयवर्णन ॥

स्वरोदय विद्या का ज्ञान ॥

विचार कर देखने से विदित होता है कि–स्वरोदय की विद्या एक बड़ी ही पवित्र तथा आत्मा का कल्याण करने वाली विद्या है, क्योंकि–इसी के अभ्यास से पूर्वकालीन महानुभाव अपने आत्मा का कल्याण कर अविनाशी पद को प्राप्त हो चुके हैं, देखो! श्री जिनेन्द्र देव और श्री गणधर महाराज इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता (जानने वाले) थे अर्थात् वे इस विद्या के प्राणायाम आदि सब अङ्गों और उपाङ्गों को भले प्रकार से जानते थे, देखिये! जैनागम में लिखा है कि–"श्री महावीर अरिहन्त के पश्चात् चौदह पूर्व के पाठी श्री भद्रबाहु स्वामी जब हुए थे तथा उन्हों ने सूक्ष्म प्राणायाम के ध्यान का परावर्त्तन किया था उस समय समस्त सङ्घ ने मिल कर उन को विज्ञप्ति की थी" इत्यादि।

१–भद्रबाहुसंहिता आदि ग्रन्थ जैनाचार्यों के बनाये हुए हैं ॥

२–बृहज्जातक आदि ग्रन्थ अन्य (जैनाचार्यों से भिन्न) आचार्यों के बनाये हुए हैं ॥

इतिहासों के अवलोकन से विदित होता है कि–जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि जी तथा दादा साहिब श्री जिनदत्त सूरि जी आदि अनेक जैनाचार्य इस विद्या के पूरे अभ्यासी थे, इस के अतिरिक्त–थोड़ी शताब्दी के पूर्व आनन्दघन जी महाराज, चिदानन्द (कपूरचन्द) जी महाराज तथा ज्ञानसार (नारायण) जी महाराज आदि बड़े २ अध्यात्म पुरुष हो गये हैं जिन के बनाये हुए ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि–आत्मा के कल्याण के लिये पूर्व काल में साधु लोग योगाभ्यास का खूब वर्त्ताव करते थे, परन्तु अब तो कई कारणों से वह व्यवहार नहीं देखा जाता है, क्योंकि–प्रथम तो–अनेक कारणों से शरीर की शक्ति कम हो गई है, दूसरे–धर्म तथा श्रद्धा घटने लगी है, तीसरे–साधु लोग पुस्तकादि परिग्रह के इकट्ठे करने में और अपनी मानमहिमा में ही साधुत्व (साधुपन) समझने लगे हैं, चौथे–लोभ ने भी कुछ २ उन पर अपना पञ्जा फैला दिया है, कहिये अब स्वरोदयज्ञान का झगड़ा किसे अच्छा लगे! क्योंकि यह कार्य तो लोभरहित तथा आत्मज्ञानियों का है किन्तु यह कह देने में भी अत्युक्ति न होगी कि मुनियों के आत्मकल्याण का मुख्य मार्ग यही है, अब यह दूसरी बात है कि–वे (मुनि) अपने आत्मकल्याण का मार्ग छोड़ कर अज्ञान सांसारिक जनों पर अपने ढोंग के द्वारा ही अपने साधुत्व को प्रकट करें।

प्राणायाम योग की दश भूमि हैं, जिन में से पहिली भूमि (मञ्जल) स्वरोदयज्ञान ही है, इस के अभ्यास के द्वारा बड़े २ गुप्त भेदों[२] को मनुष्य सुगमतापूर्वक[३] ही जान सकते हैं तथा बहुत से रोगों की ओषधि भी कर सकते हैं।

स्वरोदय पद का शब्दार्थ श्वास का निकालना है, इसी लिये इस में केवल श्वास की पहिचान की जाती है और नाकपर हाथ के रखते ही गुप्त बातों का रहस्य चित्रवत् सामने आ जाता है तथा अनेक सिद्धियां उत्पन्न होती हैं परन्तु यह दृढ़ निश्चय है कि–इस विद्या का अभ्यास ठीक रीति से गृहस्थों से नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रथम तो–यह विषय अति कठिन है अर्थात् इस में अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, दूसरे इस विद्या के जो ग्रन्थ हैं उन में इस विषय का अति कठिनता के साथ तथा अति संक्षेप से वर्णन किया गया है जो सर्व साधारण की समझ में नहीं आ सकता है, तीसरे–इस विद्या के ठीक रीति से जानने वाले तथा दूसरों को सुगमता के साथ अभ्यास करा सकने वाले पुरुष विरले ही स्थानों में देखे जाते हैं, केवल यही कारण है कि–वर्त्तमान में इस विद्या के अभ्यास करने की इच्छा वाले पुरुष उस में प्रवृत्त हो कर लाभ होने के

१–योगाभ्यास का विशेष वर्णन देखना हो तो 'विवेकमार्त्तण्ड' 'योग रहस्य' तथा 'योगशास्त्र' आदि ग्रन्थों को देखना चाहिये ॥ २–छिपे हुए रहस्यों ॥ ३–आसानी से ॥ ४–तस्वीर के समान ॥ ५–आसानी ॥ ६–तत्पर वा लगा हुआ ॥

बदले अनेक हानियाँ कर बैठते हैं, अस्तु,–इन्हीं सब बातों को विचार कर तथा गृहस्थ जनों को भी इस विद्या का कुछ अभ्यास होना आवश्यक[1] समझ कर उन (गृहस्थों) से सिद्ध[2] हो सकने योग्य इस विद्या का कुछ विज्ञान हम इस प्रकरण में लिखते हैं, आशा है कि–गृहस्थ जन इस के अवलम्बन से इस विद्या के अभ्यास के द्वारा लाभ उठावेंगे, क्योंकि–इस विद्या का अभ्यास इस भव और पर भव के सुख को निःसन्देह प्राप्त करा सकता है॥

स्वरोदय का स्वरूप तथा आवश्यक नियम ॥

१–नासिका के भीतर से जो श्वास निकलता है उस का नाम स्वर है, उस को स्थिर चित्त के द्वारा पहिचान कर शुभाशुभ कार्यों का विचार करना चाहिये।

२–स्वर का सम्बन्ध नाड़ियों से है, यद्यपि शरीर में नाड़ियाँ बहुत हैं परन्तु उन में से २४ नाड़ियाँ प्रधान हैं तथा उन २४ नाड़ियों में से नौ नाड़ियाँ अति प्रधान हैं तथा उन नौ नाड़ियों में भी तीन नाड़ियाँ अतिशय प्रधान मानी गई हैं, जिन के नाम–इङ्गला, पिङ्गला और सुषुम्ना (सुखमना) हैं, इन का वर्णन आगे किया जावेगा।

३–स्मरण रखना चाहिये कि–भौंओं (भँवारों) के बीच में जो चक्र है वहाँ से श्वास का प्रकाश होता है और पिछली बङ्क नाल में हो कर नाभि में जा कर ठहरता है।

४–दक्षिण अर्थात् दाहिने (जीमणे) तरफ जो श्वास नाक के द्वारा निकलता है उस को इङ्गला नाड़ी वा सूर्य स्वर कहते हैं, वाम अर्थात् बायें (डावी) तरफ जो श्वास नाक के द्वारा निकलता है उस को पिङ्गला नाड़ी वा चन्द्र स्वर कहते हैं तथा दोनों तरफ (दाहिने और बायें तरफ अर्थात् उक्त दोनों नाड़ियों (दोनों स्वरों) के बीच में अर्थात् दोनों नाड़ियों के द्वारा जो स्वर[3] चलता है उस को सुखमना नाड़ी (स्वर) कहते हैं, इन में से जब बायाँ स्वर चलता हो तब चन्द्र का उदय जानना चाहिये तथा जब दाहिना स्वर चलता हो तब सूर्य का उदय जानना चाहिये।

१–जरूरी ॥ २–सफल वा पूरा ॥

३–प्रत्येक मनुष्य जब श्वास लेता है तब उस की नासिका के दोनों छेदों में से किसी एक छेद से प्रचण्डतया (तेज़ी के साथ) श्वास निकलता है तथा दूसरे छेद से मन्दतया (धीरे २) श्वास निकलता है अर्थात् दोनों छेदों में से समान श्वास नहीं निकलता है, इन में से जिस तरफ का श्वास तेज़ी के साथ अर्थात् अधिक निकलता हो उसी स्वर को चलता हुआ स्वर समझना चाहिये, दाहिने छेद में से जो वेग से श्वास निकले उसे सूर्य स्वर कहते हैं, बायें छेद में से जो अधिक श्वास निकले उसे चन्द्र स्वर कहते हैं तथा दोनों छेदों में से जो समान श्वास निकले अथवा कभी एक में से अधिक निकले और कभी दूसरे में से अधिक निकले उसे सुखमना स्वर कहते हैं, परन्तु यह (सुखमना) स्वर प्रायः उस समय में चलता है जब कि स्वर बदलना चाहता है, अच्छे नीरोग मनुष्य के दिन रात में घण्टे घण्टे भर तक चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर अदल बदल होते हुए चलते रहते हैं परन्तु रोगी मनुष्य के यह नियम नहीं रहता है अर्थात् उस के स्वर में समय की न्यूनाधिकता (कमी ज्यादती) भी हो जाती है ॥

५-शीतल और स्थिर कार्यों को चन्द्र स्वर में करना चाहिये, जैसे-नये मन्दिर का बनवाना, मन्दिर की नीवँ का खुदाना, मूर्ति की प्रतिष्ठा करना, मूल नायक की मूर्ति को स्थापित करना, मन्दिर पर दण्ड तथा कलश का चढ़ाना, उपाश्रय (उपासरा); धर्मशाला; दानशाला; विद्याशाला; पुस्तकालय; घर (मकान); हाट; महल; गढ़ और कोट का बनवाना, सङ्घ की माला का पहिराना, दान देना, दीक्षा देना, यज्ञोपवीत देना, नगर में प्रवेश करना, नये मकान में प्रवेश करना, कपड़ों और आभूषणों (गहनों) का कराना अथवा मोल लेना, नये गहने और कपड़े का पहरना, अधिकार का लेना, ओषधि का बनाना, खेती करना, बाग बगीचे का लगाना, राजा आदि बड़े पुरुषों से मित्रता करना, राज्यसिंहासन पर बैठना तथा योगाभ्यास करना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि-ये सब कार्य चन्द्र स्वर में करने चाहियें क्योंकि चन्द्र स्वर में किये हुए उक्त कार्य कल्याणकारी होते हैं।

६-क्रूर और चर कार्यों को सूर्य स्वर में करना चाहिये, जैसे-विद्या के सीखने का प्रारम्भ करना, ध्यान साधना, मन्त्र तथा देव की आराधना करना, राजा वा हाकिम को अर्जी देना, वकालत वा मुखत्यारी लेना, वैरी से मुकाबला करना, सर्प के विष तथा भूत का उतारना, रोगी को दवा देना, विघ्न का शान्त करना, कष्टी स्त्री का उपाय करना, हाथी; घोड़ा तथा सवारी (बग्घी रथ आदि) का लेना, भोजन करना, स्नान करना, स्त्री को ऋतुदान देना, नई बही को लिखना, व्यापार करना, राजा का शत्रु से लड़ाई करने को जाना, जहाज वा अग्नि बोट को दर्याव में चलाना, वैरी के मकान में पैर रखना, नदी आदि के जल में तैरना तथा किसी को रुपये उधार देना वा लेना इत्यादि, तात्पर्य यह है कि-ये सब कार्य सूर्य स्वर में करने चाहियें, क्योंकि सूर्य स्वर में किये हुए उक्त कार्य सफल होते हैं।

७-जिस समय चलता २ एक स्वर रुक कर दूसरा स्वर बदलने को होता है अर्थात् जब चन्द्र स्वर बदल कर सूर्य स्वर होने को होता है अथवा सूर्य स्वर बदल कर चन्द्र स्वर होने को होता है उस समय पाँच सात मिनट तक दोनों स्वर चलने लगते हैं, उसी को सुखमना स्वर कहते हैं, इस (सुखमना) स्वर में कोई काम नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस स्वर में किसी काम के करने से वह निष्फल होता है तथा उस से क्लेश भी उत्पन्न होता है।

१-इस में भी जल तत्त्व और पृथिवी तत्त्व का होना अति श्रेष्ठ होता है ॥

२-हाट अर्थात् दूकान ॥

३-इस में भी पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व का होना अति श्रेष्ठ होता है ॥

८–कृष्ण पक्ष (अँधेरे पक्ष) का स्वामी (मालिक) सूर्य है और शुक्ल पक्ष (उजेले पक्ष) का स्वामी चन्द्र है ।

९–कृष्ण पक्ष की प्रतिपद् (पड़िवा) को यदि प्रातःकाल सूर्य स्वर चले तो वह पक्ष बहुत आनन्द से वीतता है ।

१०–शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् के दिन यदि प्रातःकाल चन्द्र स्वर चले तो वह पक्ष भी बहुत सुख और आनन्द से वीतता है ।

११–यदि चन्द्र की तिथि में (शुक्ल पक्ष की प्रतिपद् को प्रातःकाल) सूर्य स्वर चले तो क्लेश और पीड़ा होती है तथा कुछ द्रव्य की भी हानि होती है ।

१२–सूर्य की तिथि में (कृष्ण पक्ष की प्रतिपद् को प्रातःकाल) यदि चन्द्र स्वर चले तो पीड़ा; कलह तथा राजा से किसी प्रकार का भय होता है और चित्त में चञ्चलता उत्पन्न होती है ।

१३–यदि कदाचित् उक्त दोनों पक्षों (कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष) की पड़िवा के दिन प्रातःकाल सुखमना स्वर चले तो उस मास में हानि और लाभ समान (बराबर) ही रहते हैं ।

१४–कृष्ण पक्ष की पन्द्रह तिथियों में से क्रम २ से तीन २ तिथियाँ सूर्य और चन्द्र की होती हैं, जैसे–पड़िवा, द्वितीया और तृतीया, ये तीन तिथियाँ सूर्य की हैं, चतुर्थी, पञ्चमी और षष्ठी, ये तीन तिथियाँ चन्द्र की हैं, इसी प्रकार अमावास्या तक शेष तिथियों में भी समझना चाहिये, इन में जब अपनी २ तिथियों में दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वर चलते हैं तब वे कल्याणकारी होते हैं ।

१५–शुक्ल पक्ष की पन्द्रह तिथियों में से क्रम २ से तीन २ तिथियाँ चन्द्र और सूर्य की होती हैं अर्थात् प्रतिपद्, द्वितीया और तृतीया, ये तीन तिथियाँ चन्द्र की हैं तथा चतुर्थी, पञ्चमी और षष्ठी, ये तीन तिथियाँ सूर्य की हैं, इसी प्रकार पूर्णमासी तक शेष तिथियों में भी समझना चाहिये इन में भी इन दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वरों का अपनी २ तिथियों में प्रातःकाल चलना शुभकारी होता है ।

१६–वृश्चिक, सिंह, वृष और कुम्भ, ये चार राशियाँ चन्द्र स्वर की हैं तथा ये (राशियाँ) स्थिर कार्यों में श्रेष्ठ हैं ।

१७–कर्क, मकर, तुल और मेष, ये चार राशियाँ सूर्य स्वर की हैं तथा ये (राशियाँ) चर कार्यों में श्रेष्ठ हैं ।

१८–मीन, मिथुन, धन और कन्या, ये सुखमना के द्विस्वभाव लग्न हैं, इन में कार्य के करने से हानि होती है ।

१९–उक्त बारह राशियों से बारह महीने भी जान लेने चाहियें अर्थात् ऊपर लिखी जो सङ्क्रान्ति लगे वही सूर्य; चन्द्र और सुखमना के महीने समझने चाहियें।

२०–यदि कोई मनुष्य अपने किसी कार्य के लिये प्रश्न करने को आवे तथा अपने सामने; बायें तरफ अथवा ऊपर (ऊँचा) ठहर कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि–तेरा कार्य सिद्ध होगा।

२१–यदि अपने नीचे, अपने पीछे अथवा दाहिने तरफ खड़ा रह कर कोई प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो भी कह देना चाहिये कि–तेरा कार्य सिद्ध होगा।

२२–यदि कोई दाहिने तरफ खड़ा होकर प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा लग्न; वार और तिथि का भी सब योग मिल जावे तो कह देना चाहिये कि–तेरा कार्य अवश्य सिद्ध होगा।

२३–यदि प्रश्न करने वाला दाहिनी तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो सूर्य की तिथि और वार के विना वह शून्य (खाली) दिशा का प्रश्न सिद्ध नहीं हो सकता है।

२४–यदि कोई पीछे खड़ा हो कर प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि–कार्य सिद्ध नहीं होगा।

२५–यदि कोई बाईं तरफ खड़ा हो कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चन्द्र योग स्वर के विना वह कार्यसिद्ध नहीं होगा।

२६–इसी प्रकार यदि कोई अपने सामने अथवा अपने से ऊपर (ऊँचा) खड़ा हो कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चन्द्र स्वर के सब योगों के मिले विना वह कार्य कभी सिद्ध नहीं होगा॥

स्वरों में पाँचों तत्वों की पहिचान॥

उक्त दोनों (चन्द्र और सूर्य) स्वरों में पाँच तत्त्व चलते हैं तथा उन (तत्त्वों) का रंग, परिमाण, आकार और काल भी विशेष होता है, इस लिये स्वरोदयज्ञान में इस विषय का भी जान लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि जो पुरुष इन के विज्ञान को अच्छे प्रकार से समझ लेता है उस की कही हुई बात अवश्य मिलती है, इस लिये अब इन के विषय में आवश्यक वर्णन करते हैं:—

१–मङ्गल, शनि और रवि, इन वारों का स्वामी सूर्य स्वर है तथा सोम, बुध, गुरु और शुक्र, इन वारों का स्वामी चन्द्र स्वर है॥ २–बहुत जरूरी॥

१-पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, ये पाँच तत्त्व हैं, इन में से प्रथम दो का अर्थात् पृथिवी और जल का स्वामी चन्द्र है और शेष तीनों का अर्थात् अग्नि, वायु और आकाश का स्वामी सूर्य है ।

२-पीला, सफेद, लाल, हरा और काला, ये पाँच वर्ण (रंग) क्रम से पाँचों तत्त्वों के जानने चाहियें अर्थात् पृथिवी तत्त्व का वर्ण पीला, जल तत्त्व का वर्ण सफेद, अग्नि तत्त्व का वर्ण लाल, वायु तत्त्व का वर्ण हरा और आकाश तत्त्व का वर्ण काला है ।

३-पृथिवी तत्त्व सामने चलता है तथा नासिका (नाक) से बारह अङ्गुल तक दूर जाता है और उस के स्वर के साथ समचौरस आकार होता है ।

४-जल तत्त्व नीचे की तरफ चलता है तथा नासिका से सोलह अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का चन्द्रमा के समान गोल आकार है ।

५-अग्नि तत्त्व ऊपर की तरफ चलता है तथा नासिका से चार अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का त्रिकोण आकार है ।

६-वायु तत्त्व टेढ़ा (तिरछा) चलता है तथा नासिका से आठ अङ्गुल तक दूर जाता है और उस का ध्वजा के समान आकार है ।

७-आकाश तत्त्व नासिका के भीतर ही चलता है अर्थात् दोनों स्वरों में (सुखमना स्वर में) चलता है तथा इस का आकार कोई नहीं है[२] ।

८-एक एक (प्रत्येक) स्वर ढाई घड़ी तक अर्थात् एक घण्टे तक चला करता है और उस में उक्त पाँचों तत्त्व इस रीति से रात दिन चलते हैं कि-पृथिवी तत्त्व पचास पल, जल तत्त्व चालीस पल, अग्नि तत्त्व तीस पल, वायु तत्त्व बीस पल और आकाश तत्त्व दश पल[३], इस प्रकार से तीनों नाड़ियाँ (तीनों स्वर) उक्त पाँचों तत्त्वों के साथ दिन रात (सदा) प्रकाशमान[४] रहती हैं ॥

पाँचों तत्त्वों के ज्ञान की सहज रीतियाँ ॥

१-पांच रंगों[५] की पाँच गोलियाँ तथा एक गोली विचित्र रंग की बना कर इन छवों गोलियों को अपने पास रख लेना चाहिये और जब बुद्धि में किसी तत्त्व का विचार

१-नाक पर अंगुलि के रखने से यदि श्वास बारह अंगुल तक दूर जाता हुआ ज्ञात हो तो पृथिवी तत्त्व समझना चाहिये, इसी प्रकार शेष तत्त्वों के परिमाण के विषय में समझना चाहिये ॥

२-क्योंकि आकाश शून्य पदार्थ है ॥

३-सब मिला कर १५० पल हुए, सो ही ढाई घड़ी वा एक घण्टे के १५० पल होते हैं ॥

४-'प्रकाशमान' अर्थात् प्रकाशित ॥

५-पाँच रंग वे ही समझने चाहियें जो कि-पहिले पृथिवी आदि के लिख चुके हैं अर्थात् पीला, सफेद, लाल, हरा और काला ॥

करना हो उस समय उन छःवों गोलियों में से किसी एक गोली को आँख मीच कर उठा लेना चाहिये, यदि बुद्धि में विचारा हुआ तथा गोली का रंग एक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि–तत्त्व मिलने लगा है ।

२–अथवा–किसी दूसरे पुरुष से कहना चाहिये कि–तुम किसी रंग का विचार करो, जब वह पुरुष अपने मन में किसी रंग का विचार कर ले उस समय अपने नाक के स्वर में तत्त्व को देखना चाहिये तथा अपने तत्त्व को विचार कर उस पुरुष के विचारे हुए रंग को वतलाना चाहिये कि–तुमने असुक फलाने) रंग का विचार किया था, यदि उस पुरुष का विचारा हुआ रंग ठीक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि–तत्त्व ठीक मिलता है ।

३–अथवा–काच अर्थात् दर्पण को अपने ओष्ठों (होठों) के पास लगा कर उस के ऊपर बलपूर्वक नाक का श्वास छोड़ना चाहिये, ऐसा करने से उस दर्पण पर जैसे आकार का चिह्न हो जावे उसी आकार को पहिले लिखे हुए तत्त्वों के आकार से मिलाना चाहिये, जिस तत्त्व के आकार से वह आकार मिल जावे उस समय वही तत्त्व समझना चाहिये ।

४–अथवा–दोनों अङ्गूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनी अङ्गुलियों से दोनों आँखों को और दोनों मध्यमा अङ्गुलियों से नासिका के दोनों छिद्रों को वन्द कर ले और दोनों अनामिका तथा दोनों कनिष्ठिका अङ्गुलियों से (चारों अङ्गुलियों से) ओठों को ऊपर नीचे से खूब दाब ले, यह कार्य करके एकाग्र चित्त से गुरु की वताई हुई रीति से मन को भ्रुकुटी में ले जावे, उस जगह जैसा और जिस रंग का विन्दु मालूम पड़े वही तत्त्व जानना चाहिये ।

५–ऊपर कही हुई रीतियों से मनुष्य को कुछ दिन तक तत्त्वों का साधन करना चाहिये, क्योंकि कुछ दिन के अभ्यास से मनुष्य को तत्त्वों का ज्ञान होने लगता है और तत्त्वों का ज्ञान होने से वह पुरुष कार्याकार्य और शुभाशुभ आदि होने वाले कार्यों को शीघ्र ही जान सकता है ॥

स्वरों में उदित हुए तत्त्वों के द्वारा वर्षफल जानने की रीति ॥

अभी कह चुके हैं कि–पाँचों तत्त्वों का ज्ञान हो जाने से मनुष्य होने वाले शुभाशुभ आदि सब कार्यों को जान सकता है, इसी नियम के अनुसार वह उक्त पाँचों तत्त्वों के द्वारा वर्ष में होने वाले शुभाशुभ फल को भी जान सकता है, उस के जानने की निम्नलिखित रीतियाँ हैं:–

१–जिस समय मेष की संक्रान्ति लगे उस समय श्वास को ठहरा कर स्वर में चलने वाले तत्त्व को देखना चाहिये, यदि चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान

लेना चाहिये कि–ज़माना बहुत ही श्रेष्ठ होगा अर्थात् राजा और प्रजाजन सुखी रहेंगे पशुओं के लिये घास आदि बहुत उत्पन्न होगी तथा रोग और भय आदि की शान्ति रहेगी, इत्यादि ।

२–यदि उस समय (चन्द्र स्वर में) जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि वर्सात बहुत होगी, पृथिवी पर अपरिमित अन्न होगा, प्रजा सुखी होगी, राजा और प्रजा धर्म के मार्ग पर चलेंगे, पुण्य; दान और धर्म की वृद्धि होगी तथा सब प्रकार से सुख और सम्पत्ति बढ़ेगी, इत्यादि ।

३–यदि उस समय सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–कुछ कम फल होगा ।

४–यदि उक्त समय में दोनों स्वरों में से चाहे जिस स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–वर्सात कम होगी, रोगपीड़ा अधिक होगी, दुर्भिक्ष होगा, देश उजाड़ होगा तथा प्रजा दुःखी होगी; इत्यादि ।

५–यदि उक्त समय में चाहे जिस स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–राज्य में कुछ विग्रह होगा, वर्सात थोड़ी होगी, ज़माना साधारण होगा तथा पशुओं के लिये घास और चारा भी थोड़ा होगा, इत्यादि ।

६–यदि उक्त समय में आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ेगा तथा पशुओं के लिये घास आदि भी कुछ नहीं होगा, इत्यादि ।

वर्षफल के जानने की अन्य रीति ॥

१–यदि चैत्र सुदि पड़िवा के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो यह फल समझना चाहिये कि–वर्षा बहुत होगी, ज़माना श्रेष्ठ होगा, राजा और प्रजा में सुख का सञ्चार होगा तथा किसी प्रकार का इस वर्ष में भय और उत्पात नहीं होगा, इत्यादि ।

२–यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में जल तत्त्व चलता हो तो यह फल समझना चाहिये कि–यह वर्ष अति श्रेष्ठ है अर्थात् इस वर्ष में वर्सात; अन्न और धर्म की अतिशय वृद्धि होगी तथा सब प्रकार से आनन्द रहेगा, इत्यादि ।

३–यदि उस दिन प्रातःकाल सूर्य स्वर में पृथिवी अथवा जल तत्त्व चलता हो तो मध्यम अर्थात् साधारण फल समझना चाहिये ।

४–यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर में वा सूर्य स्वर में शेष (अग्नि; वायु और आकाश) तीन तत्त्व चलते हों तो उन का वही फल समझना चाहिये जो कि पूर्व मेष सक्रान्ति के विषय में लिख चुके हैं, जैसे–देखो! यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो

तो जानना चाहिये कि–प्रजा में रोग और शोक होगा, दुर्भिक्ष पड़ेगा तथा राजा के चित्त में चैन नहीं रहेगा इत्यादि, यदि सूर्य स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो समझना चाहिये कि–राज्य में कुछ विग्रह होगा और वृष्टि थोड़ी होगी तथा यदि सूर्य स्वर में सुखमना चलता हो तो जानना चाहिये कि–अपनी ही मृत्यु होगी और छत्रभङ्ग होगा तथा कहीं २ थोड़े अन्न व घास आदि की उत्पत्ति होगी और कहीं २ बिलकुल नहीं होगी, इत्यादि ॥

वर्षफल जानने की तीसरी रीति ॥

१–यदि माघ सुदि सप्तमी को अथवा अक्षयतृतीया को प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो तो पूर्व कहे अनुसार श्रेष्ठ फल जानना चाहिये ।

२–यदि उक्त दिन प्रातःकाल अग्नि आदि तीन तत्त्व चलते हों तो पूर्व कहे अनुसार निकृष्ट फल समझना चाहिये ।

३–यदि उक्त दिन प्रातःकाल सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व चलता हो तो मध्यम फल अर्थात् साधारण फल जानना चाहिये ।

४–यदि उक्त दिन प्रातःकाल शेष तीन तत्त्व चलते हों तो उन का फल भी पूर्व कहे अनुसार जान लेना चाहिये ॥

अपने शरीर; कुटुम्ब और धन आदि के विचार की रीति ॥

१–यदि चैत्र सुदि पड़िवा के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–तीन महीने में हृदय में बहुत चिन्ता और क्लेश उत्पन्न होगा ।

२–यदि चैत्र सुदि द्वितीया के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–परदेश में जाना पड़ेगा और वहाँ अधिक दुःख भोगना पड़ेगा ।

३–यदि चैत्र सुदि तृतीया के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–शरीर में गर्मी; पित्तज्वर तथा रक्तविकार आदि का रोग होगा ।

४–यदि चैत्र सुदि चतुर्थी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–नौ महीने में मृत्यु होगी ।

५–यदि चैत्र सुदि पञ्चमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–राज्य से किसी प्रकार की तकलीफ तथा दण्ड की प्राप्ति होगी ।

६–यदि चैत्र सुदि षष्ठी (छठ) के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष के अन्दर ही भाई की मृत्यु होगी ।

७–यदि चैत्र सुदि सप्तमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष में अपनी स्त्री मर जावेगी ।

८–यदि चैत्र सुदि अष्टमी के दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिये कि–इस वर्ष में कष्ट तथा पीड़ा अधिक होगी अर्थात् भाग्ययोग से ही सुख की प्राप्ति हो सकती है, इत्यादि।

९–इन के सिवाय–यदि उक्त दिनों में प्रातःकाल चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व आदि शुभ तत्त्व चलते हों तो और भी श्रेष्ठ फल जानना चाहिये ॥

पाँच तत्वों में प्रश्न का विचार ॥

१–यदि चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो और उस समय कोई किसी कार्य के लिये प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–अवश्य कार्य सिद्ध होगा।

२–यदि चन्द्र स्वर में अग्नि तत्त्व वा वायु तत्व चलता हो अथवा आकाश तत्त्व हो और उस समय कोई किसी कार्य के लिये प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–कार्य किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होगा।

३–स्मरण रखना चाहिये कि–चन्द्र स्वर में जल तत्त्व और पृथिवी तत्व स्थिर कार्य के लिये अच्छे होते हैं परन्तु चर कार्य[1] के लिये अच्छे नहीं होते हैं और वायु तत्त्व; अग्नि तत्त्व और आकाश तत्त्व; ये तीनों चर कार्य के लिये अच्छे होते हैं; परन्तु ये भी सूर्य स्वर में अच्छे होते हैं किन्तु चन्द्र स्वर में नहीं।

४–यदि कोई पुरुष रोगिविषयक[2] प्रश्न को आकर पूछे तथा उस समय चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो और प्रश्न करने वाला भी उसी चन्द्र स्वर की तरफ ही (बाईं तरफ ही) बैठा हो तो कह देना चाहिये कि–रोगी नहीं मरेगा।

५–यदि चन्द्र स्वर बन्द हो अर्थात् सूर्य स्वर चलता हो और प्रश्न करने वाला बाईं तरफ बैठा हो तो कह देना चाहिये कि–रोगी किसी प्रकार भी नहीं जी सकता है।

६–यदि कोई पुरुष खाली दिशा[3] में आ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–रोगी नहीं बचेगा, परन्तु यदि खाली दिशा से आ कर भरी दिशा में बैठ कर (जिधर का स्वर चलता हो उधर बैठ कर) प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–रोगी अच्छा हो जावेगा।

७–यदि प्रश्न करते समय चन्द्र स्वर में जल तत्त्व वा पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में एक ही रोग है तथा यदि प्रश्न करने के समय चन्द्र स्वर में अग्नि तत्त्व आदि कोई तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में कई रोग मिश्रित (मिले हुए) हैं।

१–चर और स्थिर कार्यों का वर्णन संक्षेप से पहिले कर चुके हैं ॥

२–रोगी के विषय में ॥

३–जिधर का स्वर चलता हो उस दिशा को छोड़ कर सर्व दिशायें खाली मानी गई हैं ॥

८–यदि प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में अग्नि; वायु अथवा आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में एक ही रोग है परन्तु यदि प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व वा जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–रोगी के शरीर में कई मिश्रित (मिले हुए) रोग हैं।

९–स्मरण रखना चाहिये कि–वायु और पित्त का स्वामी सूर्य है, कफ का स्वामी चन्द्र है तथा सन्निपात का स्वामी सुखमना है।

१०–यदि कोई पुरुष चलते हुए स्वर की तरफ से आ कर उसी (चलते हुए) स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा काम अवश्य सिद्ध होगा।

११–यदि कोई पुरुष खाली स्वर की तरफ से आ कर उसी (खाली) स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होगा।

१२–यदि कोई पुरुष खाली स्वर की तरफ से आ कर चलते स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कार्य निस्सन्देह सिद्ध होगा।

१३–यदि कोई पुरुष चलते हुए स्वर की तरफ से आ कर खाली स्वर की तरफ खड़ा हो कर वा बैठ कर प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि–तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा।

१४–यदि गुरुवार को वायु तत्त्व, शनिवार को आकाश तत्त्व, बुधवार को पृथिवी तत्त्व सोमवार को जल तत्त्व तथा शुक्रवार को अग्नि तत्त्व प्रातःकाल में चले तो जान लेना चाहिये कि–शरीर में जो कोई पहिले का रोग है वह अवश्य मिट जावेगा ॥

१–इस शरीर में उदान, प्राण, व्यान, समान और अपान नामक पाँच वायु हैं, ये वायु विपरीत खान पान, ऊपरी कुपथ्य तथा विपरीत व्यवहार से कुपित होकर अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं (जिन का वर्णन चौथे अध्याय में कर चुके हैं) तथा शरीर में पाचक, भ्राजक, रञ्जक, आलोचक और साधक नामक पाँच पित्त हैं, ये पित्त चरपरे, तीखे, लवण, खटाई, मिर्च आदि गर्म चीज़ों के खाने से तथा धूप; अग्नि और मैथुन आदि विपरीत व्यवहार से कुपित होकर चालीस प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, एवं शरीर में अवलम्बन, क्लेद, रसन स्नेहन और श्लेषण नामक पाँच कफ हैं, ये कफ बहुत मीठे, बहुत चिकने, बासे तथा ठंढे अन्न आदि के खान पान से, दिन में सोना, परिश्रम न करना तथा सेज और बिछौनों पर सदा बैठे रहना आदि विपरीत व्यवहार से कुपित होकर बीस प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं, परन्तु जब विरुद्ध आहार और विहार से ये तीनों दोष कुपित हो जाते हैं तब सन्निपात रोग होकर प्राणियों की मृत्यु हो जाती है ॥

२–पूर्ण वा सफल ॥ ३–विना सन्देह के वा बेशक ॥ ४–बृहस्पतिवार ॥

स्वरों के द्वारा परदेशगमन का विचार ॥

१–जो पुरुष चन्द्र स्वर में दक्षिण और पश्चिम दिशा में परदेश को जावेगा वह परदेश से आ कर अपने घर में सुख का भोग करेगा।

२–सूर्य स्वर में पूर्व और उत्तर की तरफ परदेश को जाना शुभकारी है।

३–चन्द्र स्वर में पूर्व और उत्तर की तरफ परदेश को जाना अच्छा नहीं है।

४–सूर्य स्वर में दक्षिण और पश्चिम की तरफ परदेश के जाना अच्छा नहीं है।

५–ऊर्ध्व (ऊँची) दिशा चन्द्र स्वर की है इस लिये चन्द्र स्वर में पर्वत आदि ऊर्ध्व दिशा में जाना अच्छा है।

६–पृथिवी के तल भाग का स्वामी सूर्य है, इस लिये सूर्य स्वर में पृथिवी के तल भाग में (नीचे की तरफ) जाना अच्छा है, परन्तु सुखमना स्वर में पृथिवी के तल भाग में जाना अच्छा नहीं है ॥

परदेश में स्थित[3] मनुष्य के विषय में प्रश्नविचार ॥

१–प्रश्न करने के समय यदि स्वर[4] में जल तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–सब कामों को सिद्ध कर के वह (परदेशी) शीघ्र ही आ जावेगा।

२–यदि प्रश्न करने के समय स्वर में पृथिवी तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–वह पुरुष ठिकाने पर बैठा है और उसे किसी बात की तकलीफ नहीं है।

३–यदि प्रश्न करने के समय स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–वह पुरुष उस स्थान से दूसरे स्थान को गया है तथा उस के हृदय में चिन्ता उत्पन्न हो रही है।

४–यदि प्रश्न करने के समय स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–उस के शरीर में रोग है।

५–यदि प्रश्न करने के समय स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो प्रश्नकर्त्ता से कह देना चाहिये कि–वह पुरुष मर गया ॥

अन्य आवश्यक विषयों का विचार ॥

१–कहीं जाने के समय अथवा नीदँ से उठ कर (जाग कर) बिछौने से नीचे पैर रखने के समय यदि चन्द्र स्वर चलता हो तथा चन्द्रमा का ही वार हो तो पहिले चार पैर (कदम) बायें पैर से चलना चाहिये।

१–दूसरे देश में जाना ॥ २–कल्याणकारी ॥ ३–ठहरे हुए ॥ ४–"स्वर में, अर्थात् चाहे जिस स्वर में ॥

२–यदि सूर्य का वार हो तथा सूर्य स्वर चलता हो तो चलते समय पहिले तीन पैर (कदम) दाहिने पैर से चलना चाहिये।

३–जो मनुष्य तत्त्व को पहिचान कर अपने सब कामों को करेगा उस के सब काम अवश्य सिद्ध होंगे।

४–पश्चिम दिशा जल तत्त्वरूप है, दक्षिण दिशा पृथिवी तत्त्वरूप है, उत्तर दिशा अग्नि तत्त्वरूप है, पूर्व दिशा वायु तत्त्व रूप है तथा आकाश की स्थिर दिशा है।

५–जय, तुष्टि, पुष्टि, रति, खेलकूद और हास्य, ये छः अवस्थायें चन्द्र स्वर की हैं।

६–ज्वर, निद्रा, परिश्रम और कम्पन, ये चार अवस्थायें जब चन्द्र स्वर में वायु तत्त्व तथा अग्नि तत्त्व चलता हो उस समय शरीर में होती हैं।

७–जब चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता है तब आयु का क्षय तथा मृत्यु होती है।

८–पाँचों तत्त्वों के मिलने से चन्द्र स्वर की उक्त बारह अवस्थायें होती हैं।

९–यदि पृथिवी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिये कि–पूछने वाले के मन में मूल की चिन्ता है।

१०–यदि जल तत्त्व और वायु तत्त्व चलते हों तो जान लेना चाहिये कि–पूछने वाले के मन में जीवसम्बन्धी चिन्ता है।

११–अग्नि तत्त्व में धातु की चिन्ता जाननी चाहिये।

१२–आकाश तत्त्व में शुभ कार्य की चिन्ता जाननी चाहिये।

१३–पृथिवी तत्त्व में बहुत पैर वालों की चिन्ता जाननी चाहिये।

१४–जल और वायु तत्त्व में दो पैर वालों की चिन्ता जाननी चाहिये।

१५–अग्नि तत्त्व में चार पैर वालों (चौपायों) की चिन्ता जाननी चाहिये।

१६–आकाश तत्त्व में विना पैर के पदार्थ की चिन्ता जाननी चाहिये।

१७–रवि, राहु, मङ्गल और शनि, ये चार सूर्य स्वर के पाँचों तत्त्वों के स्वामी हैं।

१८–चन्द्र स्वर में पृथिवी तत्त्व का स्वामी बुध, जल तत्त्व का स्वामी चन्द्र, अग्नि तत्त्व का स्वामी शुक्र और वायु तत्त्व का स्वामी गुरु है, इस लिये अपने २ तत्त्वों में ये ग्रह अथवा वार शुभफलदायक होते हैं।

१९–पृथिवी आदि चारों तत्त्वों के क्रम से मीठा, कषैला, खारा और खट्टा, ये चार रस हैं, इस लिये जिस समय जिस रस के खाने की इच्छा हो उस समय उसी तत्त्व का चलना समझ लेना चाहिये।

२०–अग्नि तत्त्व में क्रोध, वायु तत्त्व में इच्छा तथा जल और पृथिवी तत्त्व में क्षमा और नम्रता आदि यतिधर्मरूप दश गुण उत्पन्न होते हैं।

२१–श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, ज्येष्ठा और अनुराधा, ये सात नक्षत्र पृथिवी तत्त्व के हैं तथा शुभफलदायी हैं ।

२२–मूल, उत्तराभाद्रपद, रेवती, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा और आश्लेषा, ये सात नक्षत्र जल तत्त्व के हैं ।

२३–ये (उक्त) चौदह नक्षत्र स्थिर कार्यों में अपने २ तत्त्वों के चलने के समय में जानने चाहियें ।

२४–मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, स्वाती, कृत्तिका, भरणी और पुष्य, ये सात नक्षत्र अग्नि के हैं ।

२५–हस्त, विशाखा, मृगशिर, पुनर्वसु, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी और अश्विनी, ये सात नक्षत्र वायु के हैं ।

२६–पहिले आकाश, उस के पीछे वायु, उस के पीछे अग्नि, उस के पीछे पानी और उस के पीछे पृथिवी, इस क्रम से एक एक तत्त्व एक एक के पीछे चलता है ।

२७–पृथिवी तत्त्व का आधार गुदा, जल तत्त्व का आधार लिङ्ग, अग्नि तत्त्व का आधार नेत्र, वायु तत्त्व का आधार नासिका (नाक) तथा आकाश तत्त्व का आधार कर्ण (कान) है ।

२८–यदि सूर्य स्वर में भोजन करे तथा चन्द्र स्वर में जल पीवे और बाईं करवट सोवे तो उस के शरीर में रोग कभी नहीं होगा ।

२९–यदि चन्द्र स्वर में भोजन करे तथा सूर्य स्वर में जल पीवे तो उस के शरीर में रोग अवश्य होगा[1] ।

३०–चन्द्र स्वर में शौच के लिये (दिशा मैदान के लिये) जाना चाहिये, सूर्यस्वर में मूत्रोत्सर्ग (पेशाब) करना चाहिये तथा शयन करना चाहिये ।

३१–यदि कोई पुरुष स्वरों का ऐसा अभ्यास रक्खे कि–उस के चन्द्र स्वर में दिन का उदय हो (दिन निकले) तथा सूर्य स्वर में रात्रि का उदय हो तो वह पूरी अवस्था को प्राप्त होगा, परन्तु यदि इस से विपरीत[2] हो तो जानना चाहिये कि–मौत समीप ही है।

३२–ढाई २ घड़ी तक दोनों (सूर्य और चन्द्र) स्वर चलते हैं और तेरह श्वास तक सुखमना स्वर चलता है ।

३३–यदि अष्ट प्रहर तक (२४ घण्टे अर्थात् रात दिन) सूर्य स्वर में वायु तत्त्व ही चलता रहे तो तीन वर्ष की आयु जाननी चाहिये ।

१–यदि कोई पुरुष पाँच सात दिन तक बराबर इस व्यवहार को करे तो वह अवश्य रुग्ण (रोगी) हो जावेगा, यदि किसी को इस विषय में संशय (शक) हो तो वह इस का वर्त्ताव कर के निश्चय कर ले॥

२–'विपरीत हो, अर्थात् सूर्य स्वर में दिन का उदय हो तथा चन्द्र स्वर में रात्रि का उदय हो ॥

३४–यदि सोलह प्रहर तक सूर्य स्वर ही चलता रहे (चन्द्र स्वर आवे ही नहीं) तो दो वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिये।

३५–यदि तीन दिन तक एक सा सूर्य स्वर ही चलता रहे तो एक वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिये।

३६–यदि सोलह दिन तक बराबर सूर्यस्वर ही चलता रहे तो एक महीने में मृत्यु जाननी चाहिये।

३७–यदि एक महीने तक सूर्य स्वर निरन्तर चलता रहे तो दो दिन की आयु जाननी चाहिये।

३८–यदि सूर्य; चन्द्र और सुखमना; ये तीनों ही स्वर न चलें अर्थात् मुख से श्वास लेना पड़े तो चार घड़ी में मृत्यु जाननी चाहिये।

३९–यदि दिन में (सब दिन) चन्द्र स्वर चले तथा रात में (रात भर) सूर्य स्वर चले तो बड़ी आयु जाननी चाहिये।

४०–यदि दिन में (दिन भर) सूर्य स्वर और रात में (रात भर) बराबर चन्द्र स्वर चलता रहे तो छः महीने की आयु जाननी चाहिये।

४१–यदि चार आठ, बारह, सोलह अथवा बीस दिन रात बराबर चन्द्र स्वर चलता रहे तो बड़ी आयु जाननी चाहिये।

४२–यदि तीन रात दिन तक सुखमना स्वर चलता रहे तो एक वर्ष की आयु जाननी चाहिये।

४३–यदि चार दिन तक बराबर सुखमना स्वर चलता रहे तो छः महीने की आयु जाननी चाहिये[1] ॥

स्वरों के द्वारा गर्भसम्बन्धी प्रश्न–विचार ॥

१–यदि चन्द्र स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई प्रश्न करे कि–गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि–पुत्री होगी।

२–यदि सूर्य स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई प्रश्न करे कि गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि–पुत्र होगा।

३–यदि सुखमना स्वर के चलते समय कोई आ कर प्रश्न करे कि–गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा वा पुत्री, तो कह देना चाहिये कि–नपुंसक होगा।

४–यदि अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा उधर से ही आ कर कोई गर्भविषयक प्रश्न

१–इन के सिवाय–वैद्यक कालज्ञान के अनुसार तथा अनुभवसिद्ध कुछ बातें चौथे अध्याय में लिख चुके हैं, वहाँ देख लेना चाहिये ॥

करे परन्तु प्रश्नकर्त्ता (पूछने वाले) का चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्र उत्पन्न होगा परन्तु वह जीवेगा नहीं ।

५-यदि दोनों का (अपना तथा पूछने वाले का) सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्र होगा तथा वह चिरञ्जीवी होगा ।

६-यदि अपना चन्द्र स्वर चलता हो तथा पूछने वाले का सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्री होगी परन्तु वह जीवेगी नहीं ।

७-यदि दोनों का (अपना और पूछने वाले का) चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्री होगी तथा वह दीर्घायु होगी ।

८-यदि सूर्य स्वर में पृथिवी तत्त्व में तथा उसी दिन के लिये किसी का गर्भसम्बन्धी प्रश्न हो तो कह देना चाहिये कि-पुत्र होगा तथा वह रूपवान्; राज्यवान् और सुखी होगा ।

९-यदि सूर्य स्वर में जल तत्त्व चलता हो और उस में कोई गर्भसम्बन्धी प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि-पुत्र होगा तथा वह सुखी; धनवान् और छः रसों का भोगी होगा ।

१०-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय चन्द्र स्वर में उक्त दोनों तत्त्व (पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्व) चलते हों तो कह देना चाहिये कि-पुत्री होगी तथा वह ऊपर लिखे अनुसार लक्षणों वाली होगी ।

११-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय उक्त स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि-गर्भ गिर जावेगा तथा यदि सन्तति भी होगी तो वह जीवेगी नहीं ।

१२-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय उक्त स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि-या तो छोड़ (पिण्डाकृति) बँधेगी वा गर्भ गल जावेगा ।

१३-यदि गर्भसम्बन्धी प्रश्न करते समय सूर्य स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो नपुंसक की तथा चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो बाँझ लड़की की उत्पत्ति कह देनी चाहिये ।

१४-यदि कोई सुखमना स्वर में गर्भ का प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि-दो लड़कियाँ होंगी ।

१५-यदि कोई दोनों स्वरों के चलने के समय में गर्भविषयक प्रश्न करे तथा उस समय यदि चन्द्र स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिये कि-दो कन्यायें होंगी तथा यदि सूर्य स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिये कि-दो पुत्र होंगे ॥

गृहस्थों के लिये आवश्यक विज्ञप्ति ॥

स्वरोदय ज्ञान की जो २ बातें गृहस्थों के लिये उपयोगी थीं उन का हम ने ऊपर कथन कर दिया है, इन सब बातों को अभ्यस्त (अभ्यास में) रखने से गृहस्थों को

अवश्य आनन्द की प्राप्ति हो सकती है, क्योंकि स्वरोदय के ज्ञान में मन और इन्द्रियों का रोकना आवश्यक होता है।

यद्यपि प्रथम अभ्यास करने में गृहस्थों को कुछ कठिनता अवश्य मालूम होगी परन्तु थोड़ा बहुत अभ्यास हो जाने पर वह कठिनता आप ही मिट जावेगी, इस लिये आरम्भ में उस की कठिनता से भय नहीं करना चाहिये किन्तु उस का अभ्यास अवश्य करना ही चाहिये, क्योंकि-यह विद्या अति लाभकारिणी है, देखो! वर्त्तमान समय में इस देश के निवासी श्रीमान् तथा दूसरे लोग अन्यदेशवासी जनों की बनाई हुई जागरण-घटिका (जगाने की घड़ी) आदि वस्तुओं को निद्रा से जगाने आदि कार्य के लिये द्रव्य का व्यय कर के लेते हैं तथा रात्रि में जितने बजे पर उठना हो उसी समय की जगाने की चाबी लगा कर घड़ी को रख देते हैं और ठीक समय पर घड़ी की आवाज़ को सुन कर उठ बैठते हैं, परन्तु हमारे प्राचीन आर्यावर्त्तनिवासी जन अपनी योगादि विद्या के बल से उक्त जागरण आदि का सब काम लेते थे, जिस में उन की एक पाई भी खर्च नहीं होती थी। (**प्रश्न**) आप इस बात को क्या हमें प्रत्यक्ष कर बतला सकते हैं कि-आर्यावर्त्तनिवासी प्राचीन जन अपनी योगादि विद्या के बल से उक्त जागरण आदि का सब काम लेते थे? (**उत्तर**) हाँ, हम अवश्य बतला सकते हैं, क्योंकि-गृहस्थों के लिये हितकारी इस प्रकार की बातों का प्रकट करना हम अत्यावश्यक समझते हैं, यद्यपि बहुत से लोगों का यह मन्तव्य होता है कि-इस प्रकार की गोप्य बातों को प्रकट नहीं करना चाहिये परन्तु हम ऐसे विचार को बहुत तुच्छ तथा सङ्कीर्णहृदयता का चिह्न समझते हैं, देखो! इसी विचार से तो इस पवित्र देश की सब विद्यायें नष्ट हो गईं।

पाठकवृन्द! तुम को रात्रि में जितने बजे पर उठने की आवश्यकता हो उस के लिये ऐसा करो कि-सोने के समय प्रथम दो चार मिनट तक चित्त को स्थिर करो, फिर बिछौने पर लेट कर तीन वा सात वार ईश्वर का नाम लो अर्थात् नमस्कारमन्त्र को पढ़ो, फिर अपना नाम ले कर मुख से यह कहो कि-हम को इतने बजे पर (जितने बजे पर तुम्हारी उठने की इच्छा हो) उठा देना, ऐसा कह कर सो जाओ, यदि तुम को उक्त कार्य के बाद दश पाँच मिनट तक निद्रा न आवे तो पुनः नमस्कारमन्त्र को निद्रा आने तक मन में ही (होठों को न हिला कर) पढ़ते रहो[1], ऐसा करने से तुम रात्रि में अभीष्ट समय पर जाग कर उठ सकते हो, इस में सन्देह नहीं है[2] ॥

---

१ निद्रा के आने तक पुनः मन में मन्त्र पढ़ने का तात्पर्य यह है कि-ईश्वरनमस्कार के पीछे मन को अनेक बातों में नहीं ले जाना चाहिये अर्थात् अन्य किसी बात का स्मरण नहीं करना चाहिये ॥

२-हाथकङ्गन के लिये आरसी की क्या आवश्यकता है अर्थात् इस बात की जो परीक्षा करना चाहे वह कर सकता है ॥

योगसम्बन्धिनी मेस्मेरिजम विद्या का संक्षिप्त वर्णन ॥

वर्त्तमान समय में इस विद्या की चर्चा भी चारों ओर अधिक फैल रही है अर्थात् अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुए मनुष्य इस विद्या पर तन मन से मोहित हो रहे हैं, इस का यहाँ तक प्रचार बढ़ रहा है कि-पाठशालाओं (स्कूलों) के सब विद्यार्थी भी इस का नाम जानते हैं तथा इस पर यहाँ तक श्रद्धा बढ़ रही है कि-हमारे जैन्टिलमैन भाई भी (जो कि सब बातों को व्यर्थ बतलाया करते हैं) इस विद्या का सच्चे भाव से स्वीकार कर रहे हैं, इस का कारण केवल यही है कि-इस पर श्रद्धा रखने वाले जनों को बालकपन से ही इस प्रकार की शिक्षा मिली है और इस में सन्देह भी नहीं है कि-यह विद्या बहुत सच्ची और अत्यन्त लाभदायक है, परन्तु बात केवल इतनी है कि-यदि इस विद्या में सिद्धता को प्राप्त कर उसे यथोचित रीति से काम में लाया जावे तो वह बहुत लाभदायक हो सकती है।

इस विद्या का विशेष वर्णन हम यहां पर ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं कर सकते हैं किन्तु केवल इस का स्वरूपमात्र पाठक जनों के ज्ञान के लिये लिखते हैं[2]।

निस्सन्देह यह विद्या बहुत प्राचीन है तथा योगाभ्यास की एक शाखा है, पूर्व समय में भारतवर्षीय सम्पूर्ण आचार्य और मुनि महात्मा जन योगाभ्यासी हुआ करते थे जिस का वृत्तान्त प्राचीन ग्रन्थों से तथा इतिहासों से विदित हो सकता है॥

आवश्यक सूचना—संसार में यह एक साधारण नियम देखा जाता है कि-जब कभी कोई पुरुष किन्हीं नूतन (नये) विचारों को सर्व साधारण के समक्ष में प्रचरित करने का प्रारम्भ करता है तब लोग पहिले उस का उपहास किया करते हैं, तात्पर्य यह है कि-जब कोई पुरुष (चाहे वह कैसा ही विद्वान् क्यों न हो) किन्हीं नये विचारों को (संसार के लिये लाभदायक होने पर भी) प्रकट करता है तब एक वार लोग उस का उपहास अवश्य ही करते हैं तथा उस के उन विचारों को बाललीला समझते हैं, परन्तु विचारप्रकटकर्त्ता (विचारों को प्रकट करने वाला) गम्भीर पुरुष जब लोगों के उपहास का कुछ भी विचार न कर अपने कर्त्तव्य में सोद्योग (उद्योगयुक्त) ही रहता है तब उस का परिणाम यह होता है कि-उन विचारों में जो कुछ सत्यता विद्यमान होती है वह शनैः २ (धीरे २) कालान्तर में (कुछ काल के पश्चात्) प्रचार को प्राप्त होती है अर्थात् उन विचारों की सत्यता और असलियत को लोग समझ कर मानने लगते हैं,

---

१-यह विद्या भी स्वरोदयविद्या से विषयसाम्य से सम्बंध रखती है, अतः यहाँ पर थोड़ा सा इस का भी स्वरूप दिखलाया जाता है॥

२-इतने ही आवश्यक विषयों के वर्णन से ग्रन्थ अब तक बढ़ चुका है तथा आगे भी कुछ आवश्यक विषय का वर्णन करना अवशिष्ट है, अतः इस (मेस्मेरिजम) विद्या के स्वरूपमात्र का वर्णन किया है॥

विचार करने पर पाठकों को इस के अनेक प्राचीन उदाहरण मिल सकते हैं अतः हम उन (प्राचीन उदाहरणों) का कुछ भी उल्लेख करना नहीं चाहते हैं किन्तु इस विषय के पश्चिमीय विद्वानों के दो एक उदाहरण पाठकों की सेवा में अवश्य उपस्थित करते हैं, देखिये-अठारहवीं शताब्दी (सदी) में मेसरे "एनीमल मेगनेतीज़म" (जिस ने अपने ही नाम से अपने आविष्कार का नाम "मेस्मेरिज़म्" रक्खा तथा जिस ने अपने आविष्कार की सहायता से अनेक रोगियों को अच्छा किया) का अपने नूतन विचार के प्रकट करने के प्रारम्भ में कैसा उपहास हो चुका है; यहाँ तक कि-विद्वान् डाक्तरों तथा दूसरे लोगों ने भी उस के विचारों को हँसी में उड़ा दिया और इस विद्या को प्रकट करने वाले डाक्तर मेसर् को लोग ठग वतलाने लगे, परन्तु "सत्यमेव विजयते" इस वाक्य के अनुसार उस ने अपनी सत्यता पर दृढ़ निश्चय रक्खा, जिस का परिणाम यह हुआ कि-उस की उक्त विद्या की तरफ़ कुछ लोगों का ध्यान हुआ तथा उस का आन्दोलन होने लगा, कुछ काल के पश्चात् अमेरिका वालों ने इस विद्या में विशेष अन्वेषण किया जिस से इस विद्या की सारता प्रकट हो गई, फिर क्या था इस विद्या का खूब ही प्रचार होने लगा और थियासोफिकल सुसाइटी के द्वारा यह विद्या समस्त देशों में प्रचरित हो गई तथा बड़े २ प्रोफेसर विद्वान् जन इस का अभ्यास करने लगे।

दूसरा उदाहरण देखिये-ईस्वी सन् १८२८ में सब से प्रथम जब सात पुरुषों ने मद्य (दारू वा शराब) के न पीने का नियम ग्रहण कर मद्य का प्रचार लोगों में कम करने का प्रयत्न करना प्रारंभ किया था उस समय उन का बड़ा ही उपहास हुआ था, विशेषता यह थी कि-उस उपहास में विना विचारे बड़े २ सुयोग्य और नामी शाह भी सम्मीलित (शामिल) हो गये थे, परन्तु इतना उपहास होने पर भी उक्त (मद्य न पीने का नियम लेने वाले) लोगों ने अपने नियम को नहीं छोड़ा तथा उस के लिये चेष्टा करते ही गये, परिणाम यह हुआ कि-दूसरे भी अनेक जन उन के अनुगामी हो गये, आज उसी का यह कितना बड़ा फल प्रत्यक्ष है कि-इँगलेंड में (यद्यपि वहाँ मद्य का अब भी बहुत कुछ खर्च होता है तथापि) मद्यपान के विरुद्ध सैकड़ों मंडलियाँ स्थापित हो चुकी हैं तथा इस समय ग्रेट ब्रिटन में साठ लाख मनुष्य मद्य से बिलकुल परहेज़ करते हैं इस से अनुमान किया जा सकता है कि-जैसे गत शताब्दी में सुधरे हुए मुल्कों में गुलामी का व्यापार बन्द किया जा चुका है उसी प्रकार वर्तमान शताब्दी के अन्त तक मद्य का व्यापार भी अत्यन्त बन्द कर दिया जाना आश्चर्यजनक नहीं है।

इसी प्रकार तीसरा उदाहरण देखिये-यूरोप में वनस्पति की खुराक का समर्थन और मांस की खुराक का असमर्थन करने वाली मण्डली सन् १८४७ में मेनचेष्टर में थोड़े से पुरुषों ने मिल कर जब स्थापित की थी उस समय भी उस (मण्डली) के सभासदों का

उपहास किया गया था परन्तु उक्त खुराक के समर्थन में सत्यता विद्यमान थी इस कारण आज इँग्लैंड, यूरोप तथा अमेरिका में वनस्पति की खुराक के समर्थन में अनेक मण्डलियां स्थापित हो गई हैं तथा उन में हज़ारों विद्वान्, यूनीवर्सिटी की बड़ी २ डिग्रियों को प्राप्त करने वाले, डाक्टर, वकील और बड़े २ इञ्जीनियर आदि अनेक उच्चाधिकारी जन सभासद्रूप में प्रविष्ट हुए हैं, तात्पर्य यह है कि–चाहें नये विचार वा आविष्कार हों, चाहें प्राचीन हों यदि वे सत्यता से युक्त होते हैं तथा उन में नेकनियती और इमानदारी से सदुद्यम किया जाता है तो उस का फल अवश्य मिलता है तथा सदुद्यम वाले का ही अन्त में विजय होता है ॥

यह पञ्चम अध्याय का स्वरोदयवर्णन नामक दशवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥

ग्यारहवाँ प्रकरण—शकुनावलिवर्णन ॥

शकुनविद्या का स्वरूप ॥

इस विद्या के अति उपयोगी होने के कारण पूर्व समय में इस का बहुत ही प्रचार था अर्थात् पूर्व जन इस विद्या के द्वारा कार्यसिद्धि का (कार्य के पूर्ण होने का) शकुन (सगुन) ले कर प्रत्येक (हर एक) कार्य का प्रारम्भ करते थे, केवल यही कारण था कि–उन के सब कार्य प्रायः सफल और शुभकारी होते थे, परन्तु अन्य विद्याओं के समान धीरे २ इस विद्या का भी प्रचार घटता गया तथा कम बुद्धि वाले पुरुष इसे बच्चों का खेल समझने लगे और विशेष कर अंग्रेज़ी पढ़े हुए लोगों का तो विश्वास इस पर नाममात्र को भी नहीं रहा, सत्य है कि–"न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति" अर्थात् जो जिस के गुण को नहीं जानता है वह उस की निरन्तर निन्दा किया करता है, अस्तु–इस के विषय में किसी का विचार चाहे कैसा ही क्यों न हो परन्तु पूर्वीय सिद्धान्त से यह तो मुक्त कण्ठ से कहा जा सकता है कि–यह विद्या प्राचीन समय में अति आदर पा चुकी है तथा पूर्वीय विद्वानों ने इस विद्या का अपने बनाये हुए ग्रन्थों में बहुत कुछ उल्लेख किया है ।

पूर्व काल में इस विद्या का प्रचार यद्यपि प्रायः सब ही देशों में था तथापि मारवाड़ देश में तो यह विद्या अति उत्कृष्ट रूप से प्रचलित थी, देखो! मारवाड़ देश में पूर्व समय में (थोड़े ही समय पहिले) परदेश आदि को गमन करने वालों के सहायक (चोर आदि से रक्षा करने वाले) बन कर भाटी आदि राजपूत जाया करते थे वे लोग जानवरों की भाषा आदि के शुभाशुभ शकुनों को भली भाँति जानते थे, हड़बूकी नामक

सांखला राजपूत हुए हैं; जिन्हों ने प्रदेशगमनादि के शुभाशुभ शकुनों के विषय में सैकड़ों दोहे बनाये हैं, वर्त्तमान में रेल आदि के द्वारा यात्रा करने का प्रचार हो गया है इस कारण उक्त (मारवाड़) देश में भी शकुनों का प्रचार घट गया है और घटता चला जाता है।

हमारे देशवासी बहुत से जन यह भी नहीं जानते हैं कि-शुभ शकुन कौन से होते हैं तथा अशुभ शकुन कौन से होते हैं, यह बहुत ही लज्जास्पद विषय है, क्योंकि शुभाशुभ शकुनों का जानना और यात्रा के समय उन का देखना अत्यावश्यक है, देखो! शकुन ही आगामी शुभाशुभ के (भले वा बुरे के) अथवा यों समझो कि-कार्य की सिद्धि वा असिद्धि तथा सुख वा दुःख के सूचक होते हैं।

शकुन दो प्रकार से लिये (देखे) जाते हैं-एक तो रमल के द्वारा वा पाशा आदि के द्वारा कार्य के विषय में लिये (देखे) जाते हैं और दूसरे प्रदेशादि को गमन करने के समय शुभाशुभ फल के विषय में लिये (देखे) जाते हैं, इन्हीं दोनों प्रकार के शकुनों के विषय में संक्षेप से इस प्रकरण में लिखेंगे, इन में से प्रथम वर्ग के शकुनों के विषय में गर्गाचार्य मुनि[1] की संस्कृत में बनाई हुई पाशशकुनावलि का भाषा में अनुवाद कर वर्णन करेंगे, उस के पश्चात् प्रदेशादिगमनविषयक शुभाशुभ शकुनों का संक्षेप से वर्णन करेंगे, आशा है कि-गृहस्थ जन शकुनों का विज्ञान कर इस से लाभ उठावेंगे।

जो कुछ कार्य करना हो उस का प्रथम स्थिर मन से विचार करना चाहिये, फिर थोड़े चाँवल, एक सुपारी और दुअन्नी वा चाँदी की अगूठी आदि को पुस्तक पर भेंट-रूप[2] रख कर पाँसे[3] को हाथ में ले कर इस निम्नलिखित मन्त्र को सात वार पढ़ना चाहिये, फिर तीन वार पासे को डालना चाहिये तथा तीनों वार के जितने अङ्क हों उन का

१-तीनों लोकों के पूज्य श्री गर्गाचार्य महात्मा ने सत्यपासा केवली राजा अग्रसेन के सामने प्रजा-हितकारिणी इस (शकुनावली) का वर्णन संस्कृत गद्य में किया था उसी का भाषानुवाद कर के यहां पर हम ने लिखा है ॥

२-इस सम्बन्ध का जो द्रव्य इकट्ठा हो जावे उस को ज्ञानखाते में लगा देना योग्य होता है, इस लिये जो लोग देश देशान्तरों में रहते हैं उन को उचित है कि-काम काज से छुट्टी पा कर अवकाश के समय में व्यर्थ गप्पें मार कर समय को न गमावें किन्तु अपने वर्ग में से जो पुरुष कुछ पठित हो उस के यहाँ यथा-योग्य पाँच सात अच्छे २ ग्रन्थों को मँगवा कर रक्खें और उन को सुना करें तथा स्वयं भी बाँचा करें और जो ज्ञानखाते का द्रव्य हो उस से उपयोगी पुस्तकों को मँगा लिया करें तथा उपयोगी साप्ताहिक पत्र और मासिक पत्र भी दो चार मँगाते रहें, ऐसा करने से मनुष्य को बहुत लाभ होता है ॥

३-चौपड़ के पासे के समान काष्ठ; पीतल वा दाँत का चौकोना पासा होना चाहिये, जिस में एक, दो, तीन और चार, ये अंक लिखे होने चाहियें ॥

फल देख लेना चाहिये, (इस शकुनावलि का फल ठीक २ मिलता है) परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि–एक वार शकुन के लेनेपर (उस का फल चाहे बुरा आवे चाहे अच्छा आवे) फिर दूसरी वार शकुन नहीं लेना चाहिये ।

मन्त्र—ओं नमो भगवति कूष्मांडनि सर्वकार्यप्रसाधिनि सर्वनिमित्तप्रकाशिनि एह्येहि २ वरं देहि २ हलि २ मातङ्गिनि सत्यं ब्रूहि २ स्वाहा ।

इस मन्त्र को सात वार पढ़ कर "सत्य भाषे असत्य का परिहार करे" इस प्रकार मुख से कह कर पासे को डालना चाहिये, यदि पासा उपस्थित न हो तो नीचे जो पासावलि का यन्त्र लिखा है उस पर तीन वार अङ्गुलि को फेर कर चाहे जिस कोठे पर रख दे तथा आगे जो उस का फल लिखा है उसे देख ले ॥

पासावलिका यन्त्र ॥

१११	११२	११३	११४	१२१	१२२	१२३	१२४
१३१	१३२	१३३	१३४	१४१	१४२	१४३	१४४
२११	२१२	२१३	२१४	२२१	२२२	२२३	२२४
२३१	२३२	२३३	२३४	२४१	२४२	२४३	२४४
३११	३१२	३१३	३१४	३२१	३२२	३२३	३२४
३३१	३३२	३३३	३३४	३४१	३४२	३४३	३४४
४११	४१२	४१३	४१४	४२१	४२२	४२३	४२४
४३१	४३२	४३३	४३४	४४१	४४२	४४३	४४४

पासावलिका क्रमानुसार फल ॥

१११–हे पूछने वाले! यह पासा वहुत शुभ है, तेरे दिन अच्छे हैं, तू ने विलक्षण वात विचार रक्खी है, वह सब सिद्ध होगी, व्यापार में लाभ होगा और युद्ध में जीत होगी ।

११२–हे पासा लेने वाले! तेरा काम सिद्ध नहीं होगा, इस लिये विचारे हुए काम को छोड़ कर दूसरा काम कर तथा देवाधिदेव का ध्यान रख, इस शकुन का यह प्रमाण (पुरावा) है कि–तू रात को स्वप्न में काक (कौआ), घुग्घू, गीध, मक्खियाँ, मच्छर, मानो अपने शरीर में तेल लगाया हो अथवा काला साँप देखा हो, ऐसा देखेगा ।

११३–हे पूछने वाले! तू ने जो विचार किया है उस का फल सुन, तू किसी स्थान (ठिकाने) को वा धन के लाभ को अथवा किसी सज्जन की मुलाकात को चाहता है, यह सब तुझे मिलेगा, तेरे क्लेश और चिन्ता के दिन बहुत से वीत गये, अब तेरे अच्छे दिन आ गये हैं, इस वात की सत्यता (सचाई) का प्रमाण यह है कि–तेरी कोख पर तिल वा मसा अथवा कोई घाव का चिह्न है ।

११४–हे पूछने वाले ! यह पासा बहुत कल्याणकारी है, कुल की वृद्धि होगी, ज़मीन का लाभ होगा, धन का लाभ होगा, पुत्र का भी लाभ दीखता है और प्यारे मित्र का दर्शन होगा, किसी से सम्बंध होगा तथा तीन महीने के भीतर विचारे हुए काम का लाभ होगा, गुरु की भक्ति और कुलदेवी का पूजन कर, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तेरे शरीर के ऊपर दोनों तरफ मसा; तिल वा घाव का चिह्न है ।

१२१–हे पूछने वाले! तूने ठिकाने का लाभ तथा सज्जन की मुलाकात विचारी है, धातु; धन; सम्पत्ति और भाई बन्धु की वृद्धि तथा पहिले जैसे सम्मान का मिलना विचारा है, यह सब बात निर्विघ्न (विना किसी विघ्न के) तेरे लिये सुखदायी होगी, इस का निश्चय तुझे इस प्रकार हो सकता है कि–तू स्वप्न में अपने बड़े लोगों को देखेगा ।

१२२–हे पूछने वाले ! तुझे वित्त (धन) और यश का लाभ होगा, ठिकाना और सम्मान मिलेगा तथा तेरी मनोऽभीष्ट (मनचाही) वस्तु मिलेगी, इस में शङ्का मत कर, अब तेरा पाप और दुःख क्षीण हो गया, इस लिये तुझे कल्याण की प्राप्ति होगी, इस का पुरावा यह है कि–तू रात को स्वप्न में अथवा प्रत्यक्ष में लड़ाई का करना देखेगा ।

१२३–हे पूछने वाले! तेरे कार्य और धन की सिद्धि होगी, तेरे विचारे हुए सब मामले सिद्ध होंगे, कुटुम्ब की वृद्धि, स्त्री का लाभ तथा स्वजन की मुलाकात होगी, तेरे मन में जो बहुत दिनों से विचार है वह अब जल्दी पूर्ण होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे घर में लड़ाई तथा स्त्रीसम्बंधी चिन्ता आज से पाँचवें दिन के भीतर हुई होगी।

१२४–हे पूछने वाले! तेरी भाइयों से जल्दी मुलाकात होगी, तेरा सुकृत अच्छा है, ग्रह का बल भी अच्छा है, इस लिये तेरे सब काम हो जावेंगे, तू अपनी कुलदेवी का पूजन कर ।

१३१–हे पूछने वाले! तुझे ठिकाने का लाभ, धन का लाभ तथा चित्त में चैन होगा, जो कुछ काम तेरा बिगड़ गया है वह भी सुधर जावेगा तथा जो कुछ चीज़ चोरी में गई है वह भी मिल जावेगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने स्वप्न में वृक्ष को देखा है अथवा देखेगा ।

१३२–हे पूछने वाले! जो काम तू ने विचारा है वह सब हो जावेगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरी स्त्री के साथ तेरी बहुत प्रीति है ।

१३३–हे पूछने वाले! इस शकुन से तेरे धन के नाश का तथा शरीर में रोग होने का सम्भव है तथा तेरे किसी प्रकार का बन्धन है, जान के धोखे का खतरा है, तू ने भारी काम विचारा है वह बड़ी तकलीफ से पूरा होगा ।

१३४–हे पूछने वाले! तुझे राजकाज की तरफ की वा सर्कार की तरफ की अथवा सोना चाँदी की और परदेश की चिन्ता है, तू किसी दुशमन से जीतना चाहता है, यह

सब बात धीरे २ तुझे प्राप्त होगी, जैसी कि तू ने विचारी है, अब हानि नहीं होगी, तेरे पाप कट गये, तू वीतराग देव का ध्यान धर, तेरे सब कार्य सिद्ध होंगे।

१४१–हे पूछने वाले! तेरा विचार किसी व्यापार का है तथा तुझे दूसरी भी कोई चिन्ता है, इस सब कष्ट से छूट कर तेरा मङ्गल होगा, आज के सातवें दिन या तो तुझे कुछ लाभ होगा वा अच्छी बुद्धि उत्पन्न होगी।

१४२–हे पूछने वाले! तेरे मन में धन और धान्य की अथवा घर के विषय की चिन्ता है, वह सब चिन्ता दूर होगी, तेरे कुटुम्ब की वृद्धि होगी, कल्याण होगा, सज्जनों से मुलाक़ात होगी तथा गई हुई वस्तु भी मिलेगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे घर में अथवा बाहर लड़ाई हुई है वा होगी।

१४३–हे पूछने वाले! तेरे विचारे हुए सब काम सिद्ध होंगे, कल्याण होगा तथा लड़की का लाभ होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वप्न में किसी ग्राम में जाना देखेगा।

१४४–हे पूछने वाले! तेरे सब कामों की सिद्धि होगी और तुझे सम्पत्ति मिलेगी इस बात का यह पुरावा है कि–तू अपने विचारे हुए काम को स्वप्न में देखेगा वा देव-मन्दिर को वा मूर्ति को अथवा चन्द्रमा को देखेगा।

२११–हे पूछने वाले! तू ने अपने मन में एक बड़ा कार्य विचारा है तथा तुझे धनविषयक चिन्ता है, सो तेरे लिये सब अच्छा होगा तथा प्यारे भाइयों की मुलाक़ात होगी, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तू ने स्वप्न में ऊँचे मकान पर पहाड़ पर चढ़ना देखा है अथवा देखेगा।

२१२–हे पूछने वाले! तेरे सब बातों की वृद्धि होगी, मित्रों से मुलाक़ात होगी, संसार से लाभ होगा, विवाह करने पर कुल की वृद्धि होगी तथा सोना चाँदी आदि सब सम्पत्ति होगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने स्वप्न में गाय वा बैल को देखा है अथवा देखेगा, तू परदेश में भी जाने का विचार करता है, तू कुलदेवी को मना, तेरे लिये अच्छा होगा।

२१३–हे पूछने वाले! तेरे मन में द्विपद अर्थात् दो पैर वाले की चिन्ता है और तू ने अच्छा काम विचारा है उस का लाभ तुझे एक महीने में होगा, भाई तथा सज्जन मिलेंगे, शरीर में प्रसन्नता होगी और तेरे मनोऽभीष्ट (मनचाहे) कार्य होंगे परन्तु जो तेरा गोत्रदेव है उस की आराधना तथा सम्मान कर, तू माता; पिता; भाई और पुत्र आदि से जो कुछ प्रयोजन चाहता है वह तेरा मनोरथ सिद्ध होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने रात्रि में प्रत्यक्ष में अथवा स्वप्न में स्त्री से समागम किया है।

२१४–हे पूछने वाले ! जो कुछ तेरा काम बिगड़ गया है अर्थात् जो कुछ नुकसान आदि हुआ है अथवा किसी से जो कुछ तुझे लेना है वा जिस किसी ने तुझ से दगाबाज़ी की है उस को तू भूल जा, यहाँ से कुछ दूर जाने से तुझे लाभ होगा, आज तू ने स्वप्न में देव को वा देवी को वा कुल के बड़े जनों को वा नदी आदि को देखा है, अथवा सज्जनों से तेरी मुलाकात हुई है ।

२२१–हे पूछने वाले ! इतने दिनों तक जो कुछ कार्य तू ने किया उस में तुझे बराबर क्लेश हुआ अर्थात् तू ने सुख नहीं पाया, अब तू अपने मन में कुछ कल्याण को चाहता है तथा धन की इच्छा रखता है, तुझे बड़े स्थान (ठिकाने) की चिन्ता है तथा तेरा चित्त चञ्चल है सो अब तेरे दुःख का नाश हुआ और कल्याण की प्राप्ति हुई समझ ले, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है–कि तू स्वप्न में वृक्ष को देखेगा ।

२२२–हे पूछने वाले ! तेरा सज्जनों के साथ विरोध है और तेरी कुमित्र से मित्रता है, जो तेरे मन में चिन्ता है तथा जिस बड़े काम को तू ने उठा रक्खा है उस काम की सिद्धि बहुत दिनों में होगी तथा तेरा कुछ पाप बाकी है सो उस का नाश हो जाने से तुझे स्थान (ठिकाने) का लाभ होगा ।

२२३–हे पूछने वाले ! इस समय तू ने बुरे काम का मनोरथ किया है तथा तू दूसरे के धन के सहारे से व्यापार कर अपना मतलब निकालना चाहता है, सो उस सम्पत्ति का मिलना कठिन है, तू व्यापार कर, तुझे लाभ होगा; परन्तु तू ने जो मन में बुरा विचार किया है उस को छोड़ कर दूसरे प्रयोजन को विचार, इस बात की सत्यता का यही प्रमाण है कि तू स्वप्न में अपने खोटे दिन देखेगा ।

२२४–हे पूछने वाले ! तेरे मन में परस्त्री की चिन्ता है, तू बहुत दिनों से तकलीफ को देख रहा है, तू इधर उधर भटक रहा है तथा तेरे साथ यहाँ पर लड़ाई आदि बहुत दिनों से चल रही है, यह सब विरोध शान्त हो जावेगा, अब तेरी तकलीफ गई, कल्याण होगा तथा पाप और दुःख सब मिट गये, तू गुरुदेव की भक्ति कर तथा कुलदेव की पूजा कर, ऐसा करने से तेरे मन के विचारे हुए सब काम ठीक हो जावेंगे ।

२३१–हे पूछने वाले ! तुझे दोषों के बिना विचारे ही धन का लाभ होगा, एक महीने में तेरा विचारा हुआ मनोरथ सिद्ध होगा और तुझे बड़ा फल मिलेगा, इस बात की सत्यता का यही प्रमाण है कि–तू ने स्त्रियों की कथा की है अथवा तू स्वप्न में वृक्षों को; सूने घरों को; अथवा सूने देश को; वा सूखे तालाब को देखेगा ।

२३२–हे पूछने वाले ! तू ने बहुत कठिन काम विचारा है, तुझे फायदा नहीं होगा, तेरा काम सिद्ध नहीं होगा तथा तुझे सुख मिलना कठिन है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि–तू स्वप्न में भैंस को देखेगा ।

२३३–हे पूछने वाले! तेरे मन में अचानक (एकाएक) काम उत्पन्न हो गया है, तू दूसरे के काम के लिये चिन्ता करता है, तेरे मन में विलक्षण तथा कठिन चिन्ता है, तू ने अनर्थ करना विचारा है, इस लिये कार्य की चिन्ता को छोड़ कर तू दूसरा काम कर तथा गोत्रदेवी की आराधना कर, उस से तेरा भला होगा, इस बात की सत्यता का प्रमाण यह है कि–तेरे घर में कलह है; अथवा तू बाहर फिरता है ऐसा देखेगा, अथवा तुझे स्वप्न में देवतों का दर्शन होगा।

२३४–हे पूछने वाले! तेरे काम बहुत हैं, तुझे धन का लाभ होगा, तू कुटुम्ब की चिन्ता में वार २ मुर्झाता है, तुझे ठिकाने और जमीन जगह की भी चिन्ता है, तेरे मन में पाप नहीं है; इस लिये जल्दी तेरी चिन्ता मिटेगी, तू स्वप्न में गाय को; भैंस को तथा जल में तैरने को देखेगा, तेरे दुःख का अन्त आ गया, तेरी बुद्धि अच्छी है इस लिये शुद्ध भक्ति से तू कुलदेवता का ध्यान कर।

२४१–हे पूछने वाले! तुझे विवाहसम्बन्धी चिन्ता है तथा तू कहीं लाभ के लिये जाना चाहता है; तेरा विचारा हुआ कार्य जल्दी सिद्ध होगा तथा तेरे पद की वृद्धि होगी, इस बात का यह पुरावा है कि–मैथुन के लिये तू ने बात की है।

२४२–हे पूछने वाले! तुझे बहुत दिनों से परदेश में गये हुए मनुष्य की चिन्ता है, तू उस को बुलाना चाहता है तथा तू ने जो काम विचारा है वह अच्छा है, परन्तु भावी बलवान् है इस लिये यह बात इस समय सिद्ध होती नहीं मालूम देती है।

२४३–हे पूछने वाले! तेरा रोग और दुःख मिट गया, तेरे सुख के दिन आ गये, तुझे मनोवाञ्छित (मनचाहा) फल मिलेगा, तेरे सब उपद्रव मिट गये तथा इस समय जाने से तुझे लाभ होगा।

२४४–हे पूछने वाले! तेरे चित्त में जो चिन्ता है वह सब मिट जावेगी, कल्याण होगा तथा तेरा सब काम सिद्ध होगा, इस बात का पुरावा यह है कि–तेरे गुप्त अङ्ग पर तिल है।

३११–हे पूछने वाले! तू इस बात को विचारता है कि–मैं देशान्तर (दूसरे देश) को जाऊँ मुझे ठिकाना मिलेगा वा नहीं, सो तू कुलदेवी को वा गुरुदेव को याद कर, तेरे सब विघ्न मिट जावेंगे तथा तुझे अच्छा लाभ होगा और कार्य में सिद्धि होगी, इस बात की सत्यता में यह प्रमाण है कि–तू स्वप्न में पहाड़ वा किसी ऊँचे स्थल को देखेगा।

३१२–हे पूछने वाले! तेरे मनोरथ पूर्ण होवेंगे, तेरे लिये धन का लाभ दीखता है, तेरे कुटुम्ब की वृद्धि तथा शरीर में सुख धीरे २ होगा, देवतों की तथा ग्रहों की जो पूर्व की पीड़ा है उस की शान्ति के लिये देवता की आराधना कर, ऐसा करने से तू जिस

काम का आरम्भ करेगा वह सब सिद्ध होगा, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि– तू स्वप्न में गाय, घोड़ा और हाथी आदि को देखेगा ।

३१३–हे पूछने वाले ! तेरे मन में धन की चिन्ता है और तू कुछ दिल का नरम है, तेरे दुश्मन ने तुझे दबा रक्खा है, तेरा मित्र भी तेरी सहायता नहीं करता है, तू सज्जनता को बहुत रखता है, इस लिये तेरा धन लोग खाते हैं, सो कुछ ठहर कर परिणाम में तेरा भला होगा अर्थात् तेरा सब दुःख मिट जावेगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे घर में लड़ाई हुई है वा होगी ।

३१४–हे पूछने वाले ! यह शकुन कल्याण तथा गुण से भरा हुआ है, तू निश्चिन्तता (बेफिक्री) के साथ जल्दी ही सब कामों का सिद्ध होना चाहता है; सो वे सब काम धीरे २ सिद्ध होंगे, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि–तू स्वप्न में वृष्टि का होना; सम्पति; तालाव; वा मछली; इन में से किसी वस्तु को देखेगा ।

३२१–हे पूछने वाले ! यह शकुन अच्छा नहीं है, यह काम जो तू ने विचारा है निरर्थक है, एक महीने तक तेरे पाप का उदय है इस लिये इस की आशा को छोड़ कर तू दूसरा काम कर, क्योंकि–यह काम अभी नहीं होगा, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि–तू स्वप्न में प्रोल वा गवैया लोगों को अथवा नगर को देखेगा, सर्कार से तुझे तकलीफ होगी इस लिये यहाँ से और स्थान को चला जा कि–जिस से तुझे तकलीफ न होगी ।

३२२–हे पूछने वाले ! एक महीना हुआ है तब से धन के लिये तेरे चित्त में उद्वेग हो रहा है परन्तु अब तेरे शत्रु भी मित्र हो जावेंगे, सुख सम्पत्ति की वृद्धि होगी, धन का लाभ अवश्य होगा और सर्कार से भी तुझे कुछ सम्मान मिलेगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू ने मैथुन की बात चीत की है ।

३२३–हे पूछने वाले ! यद्यपि तेरे भाग्य का थोड़ा उदय है परन्तु तकलीफ तो तुझे है ही नहीं, तुझे अच्छे प्रकार से रहने के लिये ठिकाना मिलेगा, धन का लाभ होगा, प्यारे सज्जनों की मुलाकात होगी तथा सब दुःखों का नाश होगा, तू मन में चिन्ता मत कर, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वप्न में प्यारों से मुलाकात को देखेगा ।

३२४–हे पूछने वाले ! तेरे मकान और जमीन की वृद्धि होगी, तू व्यापार में सम्पत्ति को पावेगा तथा जो तू ने मन में विचार किया है यद्यपि वह सब सिद्ध तो हो जावेगा परन्तु तेरे मन में कोई खटका तथा चिन्ता है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि तेरे शिर में जखम का निशान है, अथवा तू रात को लड़ाई कर के सोया होगा ।

३३१–हे पूछने वाले ! तू अपने चित्त में काम, कुटुम्ब, घर, सम्पत्ति और धन की

वृद्धि, प्रजा से लाभ तथा वस्त्रलाभ आदि का विचार करता है; सो तू कुलदेव तथा गुरु की भक्ति कर, ऐसा करने से तुझ को अच्छा लाभ होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वप्न में गाय को देखेगा।

३३२–हे पूछने वाले! तुझ को तकलीफ है, तेरे भाई और मित्र भी तुझ से बदल कर चल रहे हैं तथा जो तू अपने मन में विचार करता है उस तरफ से तुझे लाभ का होना नहीं दीखता है, इस लिये तू देशान्तर (दूसरे देश) को चला जा, वहाँ तुझे लाभ होगा, तू आम बात में पराये धन से वर्ताव करता है, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि– तू स्वप्न में भाई तथा मित्रों को देखेगा।

३३३–हे पूछने वाले! तू अपने मन के विचारे हुए फल को पावेगा, तुझे व्यवहार की तथा भाई और मित्रों की चिन्ता है, सो ये सब तेरे विचारे हुए काम सिद्ध होंगे।

३३४–हे पूछने वाले! तू चिन्ता को मत कर, तेरी अच्छे आदमी से मुलाकात होगी, अब तेरे सब दुःख का नाश हुआ, तेरे विचारे हुए सब काम सफल होंगे।

३४१–हे पूछने वाले! तेरे मन में किसी पराये आदमी से प्रीति करने की इच्छा है सो तेरे लिये अच्छा होगा, तू घबड़ा मत, तुझे सुख होगा, धन का लाभ होगा तथा अच्छे आदमी से मुलाकात होगी।

३४२–हे पूछने वाले! तेरे मन में पराये आदमी से मुलाकात करने की चिन्ता है, तेरे ठिकान की वृद्धि होगी, कल्याण होगा, प्रजा की वृद्धि तथा आरोग्यता होगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वप्न में वृक्ष को देखेगा।

३४३–हे पूछने वाले! तुझे वैरी की अथवा जिस किसी ने तेरे साथ विश्वासघात (दगाबाजी) किया है उस की चिन्ता है, सो इस शकुन से ऐसा मालूम होता है कि– तेरे बहुत दिन क्लेश में बीतेंगे और तेरी जो चीज़ चली गई है वह पीछे नहीं आवेगी परन्तु कुछ दिन पीछे तेरा कल्याण होगा।

३४४–हे पूछने वाले! तेरे सब काम अच्छे हैं, तुझे शीघ्र ही मनोवाञ्छित (मन चाहा) फल मिलेगा, तुझे जो व्यापार की तथा भाई बन्धुओं की चिन्ता है वह सब मिट जावेगी, इस बात का यह पुरावा है कि–तेरे शिर में घाव का चिह्न है, तू उद्यम कर अवश्य लाभ होगा।

४११–हे पूछने वाले! तेरे धन की हानि, शरीर में रोग और चित्त की चञ्चलता, ये बातें सात वर्ष से हो रही हैं, जो काम तू ने अब तक किया है उस में नुकसान होता रहा है परन्तु अब तू खुश हो, क्योंकि–अब तेरी तकलीफ चली गई, तूं अब चिन्ता मत कर; क्योंकि–अब कल्याण होगा, धन धान्य की आमद होगी तथा सुख होगा।

४१२–हे पूछने वाले ! तेरे मन में स्त्रीविषयक चिन्ता है, तेरी कुछ रकम भी लोगों में फँस रही है और जब तू माँगता है तब केवल हाँ, नाँ होती है, धन के विषय में तकरार होने पर भी तुझे लाभ होता नहीं दीखता है, यद्यपि तू अपने मन में शुभ समय (खुशवख्ती) समझ रहा है परन्तु उस में कुछ दिनों की ढील है अर्थात् कुछ दिन पीछे तेरा मतलब सिद्ध होगा ।

४१३–हे पूछने वाले ! तेरे मन में धनलाभ की चिन्ता है और तू किसी प्यारे मित्र की मुलाकात को चाहता है, सो तेरी जीत होगी, अचल ठिकाना मिलेगा, पुत्र का लाभ होगा, परदेश जाने पर कुशल क्षेम रहेगा तथा कुछ दिनों के बाद तेरी बहुत वृद्धि होगी, इस बात की सत्यता का यह प्रमाण है कि–तू स्वप्न में काच (दर्पण) को देखेगा ।

४१४–हे पूछने वाले ! यह बहुत अच्छा शकुन है, तुझे द्विपद अर्थात् किसी आदमी की चिन्ता है, सो महीने भर में मिट जावेगी, धन का लाभ होगा, मित्र से मुलाक़ात होगी तथा मन के विचारे हुए सब काम शीघ्र ही सिद्ध होंगे ।

४२१–हे पूछने वाले ! तू धन को चाहता है, तेरी संसार में प्रतिष्ठा होगी, परदेश में जाने से मनोवाञ्छित (मनचाहा) लाभ होगा तथा सज्जन की मुलाकात होगी, तू ने स्वप्न में धन को देखा है, वा स्त्री की बात की है; इस अनुमान से सब कुछ अच्छा होगा, तू माता की शरण में जा; ऐसा करने से कोई भी विघ्न नहीं होगा ।

४२२–हे पूछने वाले ! तेरे मन में ठकुराई की चिन्ता है; परन्तु तेरे पीछे तो दरिद्रता पड़ रही है, तू पराये (दूसरे के) काम में लगा रहा है, मन में बड़ी तकलीफ पा रहा है तथा तीन वर्ष से तुझे क्लेश हो रहा है अर्थात् सुख नहीं है, इस लिये तू अपने मन के विचारे हुए काम को छोड़ कर दूसरे काम को कर, वह सफल होगा, तू कठिन स्वप्न को देखता है तथा उस का तुझे ज्ञान नहीं होता है, इस लिये जो तेरा कुलधर्म है उसे कर, गुरु की सेवा कर तथा कुलदेव का ध्यान कर, ऐसा करने से सिद्धि होगी ।

४२३–हे पूछने वाले ! तेरा विजय होगा, शत्रु का क्षय होगा, धन सम्पत्ति का लाभ होगा, सज्जनों से प्रीति होगी, कुशल क्षेम होगा तथा ओषधि करने आदि से लाभ होगा, अब तेरे पाप क्षय (नाश) को प्राप्त हुए; इस लिये जिस काम को तू विचारता है वह सब सिद्ध होगा, इस बात का यह पुरावा है कि–तू स्वप्न में वृक्ष को देखेगा ।

४२४–हे पूछने वाले ! तेरे मन में बड़ी भारी चिन्ता है, तुझे अर्थ का लाभ होगा, तेरी जीत होगी, सज्जन की मुलाक़ात होगी, सब काम सफल होंगे तथा चित्त में आनन्द होगा ।

४३१–हे पूछने वाले ! यह शकुन दीर्घायुकारक (बड़ी उम्र का करने वाला) है, तुझे दूसरे ठिकाने की चिन्ता है, तू भाई बन्धुओं के आगमन को चाहता है, तू अपने मन में

जिस काम को विचारता है वह सब सिद्ध होगा, अब तेरे दुःख का नाश हो गया है परन्तु तुझे देशान्तर (दूसरे देश) में जाने से धन का लाभ होगा और कुशल क्षेम से आना होगा, इस बात का यह पुरावा है कि-तू स्वप्न में पहाड़ पर चढ़ना तथा मकान आदि को देखेगा, अथवा तेरे पैर पर पचफोड़े का चिह्न (निशान) है।

४३२-हे पूछने वाले! अब तेरे सब दुःख समाप्त हुए तथा तुझे कल्याण प्राप्त हुआ तुझे ठिकाने की चिन्ता है तथा तू किसी की मुलाकत को चाहता है सो जो कुछ काम तू ने विचारा है वह सब होगा, देशान्तर (दूसरे देश) में जाने से धन की प्राप्ति होगी तथा वहाँ से कुशल क्षेम से तू आवेगा।

४३३-हे पूछने वाले! जब तेरे पास पहिले धन था तब तो मित्र पुत्र और भाई आदि सब लोग तेरा हुक्म मानते थे, परन्तु खोटे कर्म के प्रभाव से अब वह सब धन नष्ट हो गया है, खैर! तू चिन्ता मत कर, फिर तेरे पास धन होगा, मन खुश होगा तथा मन में विचारे हुए सब काम सिद्ध होंगे।

४३४-हे पूछने वाले! जिस का तू मरना विचारता है वह अभी नहीं होगा (वह अभी नहीं मरेगा) और तू ने जो यह विचार किया है कि-यह मेरा काम कब होगा, सो वह तेरा काम कुछ दिनों के बाद होगा।

४४१-हे पूछने वाले! तेरे भाई का नाश हुआ है तथा तेरे क्लेश; पीड़ा और कष्ट के बहुत दिन बीत गये हैं; अब तेरे ग्रह की पीड़ा केवल पाँच पक्ष वा पांच दिन की है, जिस काम को तू विचारता है उस में तुझे फायदा नहीं है; इस लिये दूसरे काम को विचार, उस में तुझे कुछ फल मिलेगा।

४४२-हे पूछने वाले! जिस काम का तू प्रारम्भ करता है वह काम यत्न करने पर भी सिद्ध होता हुआ नहीं दीखता है, अर्थात् इस शकुन से इस काम का सिद्ध होना प्रतीत नहीं होता है इस लिये तू दूसरा काम कर।

४४३-हे पूछने वाले! जिस काम का तू प्रारम्भ करता है वह काम सिद्ध नहीं होगा, तू पराये वास्ते (दूसरे के लिये) जो अपने प्राण देता है वह सब तेरा उपाय व्यर्थ है इस लिये तू दूसरी बात का विचार कर; उस में सिद्धि होगी।

४४४-हे पूछने वाले! जिस काम का तू वारंवार विचार करता है वह तुझे शीघ्र ही प्राप्त होगा अर्थात् पुत्र का लाभ, ठिकाने का लाभ, गई हुई वस्तु का लाभ तथा धन का लाभ, ये सब कार्य बहुत शीघ्र होंगे॥

प्रदेशगमनादिविषयक शकुन विचार॥

१-यदि ग्राम को जाते समय कुमारी कन्या, सधवा (पतिवाली) स्त्री, गाय, भरा

हुआ घड़ा, दही, भेरी, शङ्ख, उत्तम फल, पुष्पमाला, विना धूम की अग्नि, घोड़ा, हाथी, रथ, बैल, राजा, मिट्टी, चँवर, सुपारी, छत्र (छाता), सिद्ध (तैयार किये हुए) भोजन से भरा हुआ थाल, वेश्या, चोरों का समूह, गडुआ, आरसी, सिकोरा, दोना, मांस, मद्य, मुकुट, चकडोल (यानविशेष), मधुसहित घृत, गोरोचन, चावल, रत्न, वीणा, कमल, सिंहासन, सम्पूर्ण हथियार, मृदङ्ग आदि सम्पूर्ण बाजे, गीत की ध्वनि, पुत्र के सहित स्त्री, बछड़े के सहित गाय, धोये हुए वस्त्रों को लिये हुये धोबी, ओघा और मुँहपत्ती के सहित साधु, तिलक के सहित ब्राह्मण, बजाने का नगारा तथा ध्वजापताका इत्यादि शुभ पदार्थ सामने दीख पड़ें अथवा गमन करने के समय-'जाओ जाओ' 'निकलो' 'छोड़ दो' 'जय पाओ' 'सिद्धि करो' 'वाञ्छित फल को प्राप्त करो' इस प्रकार के शुभ शब्द सुनाई देवें तो कार्य की सिद्धि समझनी चाहिये अर्थात् इन शकुनों के होने से अवश्य कार्य सिद्ध होता है।

२-ग्राम को जाते समय यदि सामने वा दाहिनी तरफ छींक होवे, काँटे से वस्त्र फट जावे वा उलझ जावे, वा काँटा लग जावे, वा कराहने का शब्द सुनाई पड़े, अथवा साँप का वा बिलाव का दर्शन हो तो गमन नहीं करना चाहिये।

३-चलते समय यदि नीलचास, मोर, भारद्वाज और नेउला दृष्टिगत हो तो उत्तम[1] है।

४-चलते समय कुक्कुट (मुर्गे) का बाईं तरफ बोलना उत्तम होता है।

५-चलते समय बाईं तरफ राजा का दर्शन होने से सब कष्ट दूर होता है।

६-चलते समय बाईं तरफ गधे के मिलने से मनोवाञ्छित कार्य सिद्ध होता है।

७-चलते समय दाहिनी तरफ नाहर के मिलने से उत्तम ऋद्धि सिद्धि होती है।

८-चलते समय सम्पूर्ण नखायुधो का बाईं तरफ मिलना तथा घुसते समय दाहिनी तरफ मिलना मङ्गलकारी होता है।

९-चलते समय गधे का बाईं तरफ मिलना तथा घुसते समय दाहिनी तरफ मिलना उत्तम होता है।

१०-पीछे तथा सामने जब गधा बोलता हो उस समय गमन करना चाहिये।

११-चलते समय यदि गधा मैथुन सेवन करता हुआ मिले तो धन का लाभ तथा कार्य की सिद्धि जानी जाती है।

१२ चलते समय यदि गधा बाईं तरफ शिश्न को हिलाता हुआ दीखे तो कुशल का सूचक होता है।

१३-यदि सुआ (तोता) बाईं तरफ बोले तो भय, दाहिनी तरफ बोले तो महालाभ, सूखी हुई लकड़ी पर बैठा हुआ बोले तो भय तथा सम्मुख बोले तो बन्धन होता है।

१-उत्तम शब्द का अर्थ सर्वत्र शुभफलदायक समझना चाहिये ॥

१४–यदि मैना सामने बोले तो कलह, दाहिनी तरफ बोले तो लाभ और सुख, वाईं तरफ बोले तो अशुभ तथा पीठ पीछे बोले तो मित्रसमागम होता है।

१५–ग्राम को चलते समय यदि बगुला वायें पैर को ऊँचा (ऊपर को) उठाये हुए तथा दाहिने पैर के सहारे खड़ा हुआ दीख पड़े तो लक्ष्मी का लाभ होता है।

१६–यदि प्रसन्न हुआ बगुला बोलता हुआ दीखे, अथवा ऊँचा (ऊपर को) उड़ता हुआ दीखे तो कन्या और द्रव्य का लाभ तथा सन्तोष होता है और यदि वह भयभीत होकर उड़ता हुआ दीखे तो भय उत्पन्न होता है।

१७–ग्राम को जाते समय यदि बहुत से चकवे मिले हुए बैठे दीखें तो बड़ा लाभ और सन्तोष होता है तथा यदि भयभीत हो कर उड़ते हुए दीखें तो भय उत्पन्न होता है।

१८–यदि सारस वाईं तरफ दीखे तो महासुख, लाभ और सन्तोष होता है, यदि एक एक बैठा हुआ दीखे तो मित्रसमागम होता है, यदि सामने बोलता हुआ दीखे तो राजा की कृपा होती है तथा यदि जोड़े के सहित बोलता हुआ दीखे तो स्त्री का लाभ होता है परन्तु दाहिनी तरफ सारस का मिलना निषिद्ध होता है।

१९–ग्राम को जाते समय यदि टिट्टिभी (टिंटोड़ी) सामने बोले तो कार्य की सिद्धि होती है तथा यदि वाईं तरफ बोले तो निकृष्ट[1] फल होता है।

२०–जाते समय यदि जलकुक्कुटी (जलमुर्गाबी) जल में बोलती हो तो उत्तम फल होता है तथा यदि जल के बाहर बोलती हो तो निकृष्ट फल होता है।

२१–ग्राम को चलते समय यदि मोर एक शब्द[2] बोले तो लाभ, दो वार बोले तो स्त्री का लाभ, तीन वार बोले तो द्रव्य का लाभ, चार वार बोले तो राजा की कृपा तथा पाँच वार बोले तो कल्याण होता है, यदि नाचता हुआ मोर दीखे तो उत्साह उत्पन्न होता है तथा यह मंगलकारी और अधिक लाभदायक होता है।

२२–गमन के समय यदि समली आहार के सहित वृक्ष के ऊपर बैठी हुई दीखे तो बड़ा लाभ होता है, यदि आहार के विना बैठी हो तो गमन निष्फल होता है, यदि वाईं तरफ बोलती हो तो उत्तम फल होता है तथा यदि दाहिनी तरफ बोलती हो तो उत्तम फल नहीं होता है।

२३–ग्राम को चलते समय यदि घुग्घू वाईं तरफ बोलता हो तो उत्तम फल होता है, यदि दाहिनी तरफ बोलता हो तो भय उत्पन्न होता है, यदि पीठ पीछे बोलता हो तो वैरी वश में होता है, यदि सामने बोलता हो तो भय उत्पन्न होता है, यदि अधिक शब्द

1–बुरा अर्थात् अशुभ फल का सूचक।

2–'एक शब्द,' अर्थात् एक वार।

करता हो तो अधिक वैरी उत्पन्न होते हैं, यदि घर के ऊपर बोले तो स्त्री की मृत्यु होती है अथवा अन्य किसी गृहजन की मृत्यु होती है तथा यदि तीन दिन तक बोलता रहे तो चोरी का सूचक होता है।

२४–चलते समय कबूतर का दाहिनी तरफ होना लाभकारी होता है, बाईं तरफ होने से भाई और परिजन को कष्ट उत्पन्न होता है तथा पीछे चुगता हुआ होने से उत्तम फल होता है।

२५–यदि मुर्गा स्थिरता के साथ बाईं तरफ शब्द करता हो तो लाभ और सुख होता है तथा यदि भय से भ्रान्त हो कर बाईं तरफ बोलता हो तो भय और क्लेश उत्पन्न होता है।

२६–यदि नीलकण्ठ पक्षी सामने वा दाहिनी तरफ क्षीर वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ बोले तो सुख और लाभ होता है, यदि वह दाहिनी तरफ हो कर तोरण पर आवे तो अत्यन्त लाभ और कार्य की सिद्धि होती है, यदि वह बाईं तरफ और स्थिर चित्त से बोलता हुआ दीखे तो उत्तम फल होता है तथा यदि चुप बैठा हुआ दीखे तो उत्तम फल नहीं होता है।

२७–नीलकण्ठ और नीलिया पक्षी का दर्शन भी शुभकारी होता है, क्योंकि चलते समय इन का दर्शन होने से सर्व सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

२८–ग्राम को चलते समय अथवा किसी शुभ कार्य के करते समय यदि भौंरा बाईं तरफ फूल पर बैठा हुआ दीखे तो हर्ष और कल्याण का करने वाला होता है, यदि सामने फूल के ऊपर बैठा हुआ दीखे तो भी शुभकारक होता है तथा यदि लड़ते हुए दो भौंरे शरीर पर आ गिरें तो अशुभ होता है, इस लिये ऐसी दशा में वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिये और काले पदार्थ का दान करना चाहिये, ऐसा करने से सर्व दोष निवृत्त हो जाता है।

२९–ग्राम को चलते समय यदि मकड़ी बाईं तरफ से दाहिनी तरफ को उतरे तो उस दिन नहीं चलना चाहिये, यदि बाईं तरफ जाल को डालती हुई दीख पड़े तो कार्य की सिद्धि; लाभ और कुशल होता है, यदि दाहिनी तरफ से बाईं तरफ को उतरे तो भी शुभ होता है, यदि पैर की तरफ से ऊपर जाँघ पर चढ़े तो घोड़े की प्राप्ति होती है, यदि कण्ठ तक चढ़े तो वस्त्र और आभूषण की प्राप्ति होती है, यदि मस्तक पर्यन्त चढ़े तो राजमान प्राप्त होता है तथा यदि शरीर पर चढ़े तो वस्त्र की प्राप्ति होती है, मकड़ी का ऊपर को चढ़ना शुभकारी और नीचे को उतरना अशुभकारी होता है।

३०–ग्राम को चलते समय कानखजूरे का बाईं तरफ को उतरना शुभ होता है तथा दाहिनी तरफ को उतरना एवं मस्तक और शरीर पर चढ़ना बुरा होता है।

३१–ग्राम को चलते समय यदि हाथी दाहिने दाँत के ऊपर सूँड़ को रक्खे हुए या सूँड़ को उछालता हुआ सामने आता दीख पड़े तो सुख; लाभ और सन्तोष होता था बाई तरफ वा अन्य किसी तरफ सूँड़ को किये हुए दीखे तो सामान्य फल होता स के अतिरिक्त हाथी का सामने मिलना अच्छा होता है।

३२–यदि घोड़ा अगले दाहिने पैर से पृथिवी को खोदता हुआ वा दाँत से दाहिने ग को खुजलाता हुआ दीखे तो सर्व कार्यों की सिद्धि होती है, यदि बायें पैर को पसारे ए दीख पड़े तो क्लेश होता है तथा यदि सामने मिल जावे तो शुभकारी होता है।

३३–ऊँट का बाईं तरफ बोलना अच्छा होता है, दाहिनी तरफ बोलना क्लेशकारी होता है, यदि साँड़नी सामने मिले तो शुभ होती है।

३४–यदि चलते समय बैल बायें सींग से वा बायें पैर से धरती को खोदता हुआ दीख पड़े तो अच्छा होता है अर्थात् इस से सुख और लाभ होता है, यदि दाहिने अंग से पृथिवी को खोदता हुआ दीख पड़े तो बुरा होता है, यदि बैल और भैंसा इकट्ठे खड़े हुए दीख पड़ें तो अशुभ होता है, ऐसी दशा में ग्राम को नहीं जाना चाहिये, यदि जावेगा तो प्राणों का सन्देह होगा, यदि डकराता (दडूकता) हुआ साँड़ सामने दीख पड़े तो अच्छा होता है।

३५–यदि गाय बाईं तरफ शब्द करती हुई अथवा बछड़े को दूध पिलाती हुई दीख पड़े तो लाभ; सुख और सन्तोष होता है तथा यदि पिछली रात को गाय बोले तो क्लेश उत्पन्न होता है।

३६–यदि गधा बाईं तरफ को जावे तो सुख और सन्तोष होता है, पीछे की तरफ वा दाहिनी तरफ को जावे तो क्लेश होता है, यदि दो गधे परस्पर में कन्धे को खुजलावें, वा दाँतों को दिखावें, वा इन्द्रिय को तेज करें, वा बाईं तरफ को जावें तो बहुत लाभ और सुख होता है, यदि गधा शिर को धुने वा राख में लोटे अथवा परस्पर में लड़ता हुआ दीख पड़े तो अशुभ और क्लेशकारी होता है तथा यदि चलते समय गधा बाईं तरफ बोले और घुसते समय दाहिनी तरफ बोले तो शुभकारी होता है।

३७–ग्राम को चलते समय बन्दर का दाहिनी तरफ मिलना अच्छा होता है तथा मध्याह्न के पश्चात् बाईं तरफ मिलना अच्छा होता है।

३८–यदि कुत्ता दाहिनी कोख को चाटता हुआ दीख पड़े अथवा मुख में किसी भक्ष्य को लिये हुए सामने मिले तो सुख; कार्य की सिद्धि और बहुत लाभ होता है, और फूले हुए वृक्ष के नीचे बाड़ी में; नीली क्यारियों में; नीले तिनकों पर; द्वार की पर तथा धान्य की राशि पर यदि कुत्ता पेशाब करता हुआ दीख पड़े तो बड़ा लाभ र सुख होता है, यदि बाईं तरफ को उतरे वा जाँघ; पेट और हृदय को दाहिने पिछले

पैर से चाटता हुआ अथवा खुजलाता हुआ दीख पड़े तो बड़ा लाभ होता है, यदि र पर; ऊखली की दाहिनी तरफ; श्मशान में; वा पत्थर पर मूतता हुआ दीख पड़े तो क कष्ट उत्पन्न होता है, ऐसे शकुन को देख कर ग्राम को नहीं जाना चाहिये, ग्राम चलते समय यदि कुत्ता ऊँचा बैठा हुआ कान मस्तक और हृदय को खुजलाता हुआ चाटता हुआ दीख पड़े अथवा दो कुत्ते खेलते हुए दीख पड़ें तो कार्य की सिद्धि होती तथा यदि कुत्ता भूमि पर लोटता हुआ वा स्वामी से लाड़ किया जाता हुआ खाट बैठा दीखे तो तो बड़ा क्लेश उत्पन्न होता है।

३९–यदि ग्राम को जाते समय मुख में भक्ष्य पदार्थ को लिये हुए बिल्ली सामने दीर पड़े तो लाभ और कुशल होता है, यदि दो बिल्लियाँ लड़ती हों वा घुर २ शब्द कर रह हों तो अशुभ होता है तथा यदि बिल्ली मार्ग को काट जावे तो ग्राम को नहीं जाना चाहिये

४०–ग्राम को जाते समय छछूँदर का बाईं तरफ होना उत्तम होता है तथा दाहिन तरफ होना बुरा होता है।

४१–ग्राम को जाते समय यदि प्रातःकाल हरिण दाहिनी तरफ जावे तो अच्छा होत है परन्तु यदि हरिण सींग को ठोंके, शिर को हिलावे, मूत्र करे, मल करे वा छींके त दाहिनी तरफ भी अच्छा नहीं होता है।

४२–ग्राम को जाते समय शृगाल का बाईं तरफ बोलना तथा घुसते समय दाहिनी तरफ बोलना उत्तम होता है।

यह पञ्चम अध्याय का शकुनावलिवर्णन नामक ग्यारहवाँ प्रकरण समाप्त हुआ।

इति श्री जैनश्वेताम्बर–धर्मोपदेशक–यतिप्राणाचार्य–विवेकलब्धिशिष्य-
शीलसौभाग्यनिर्मितः जैनसम्प्रदायशिक्षायाः।
पञ्चमोऽध्यायः॥